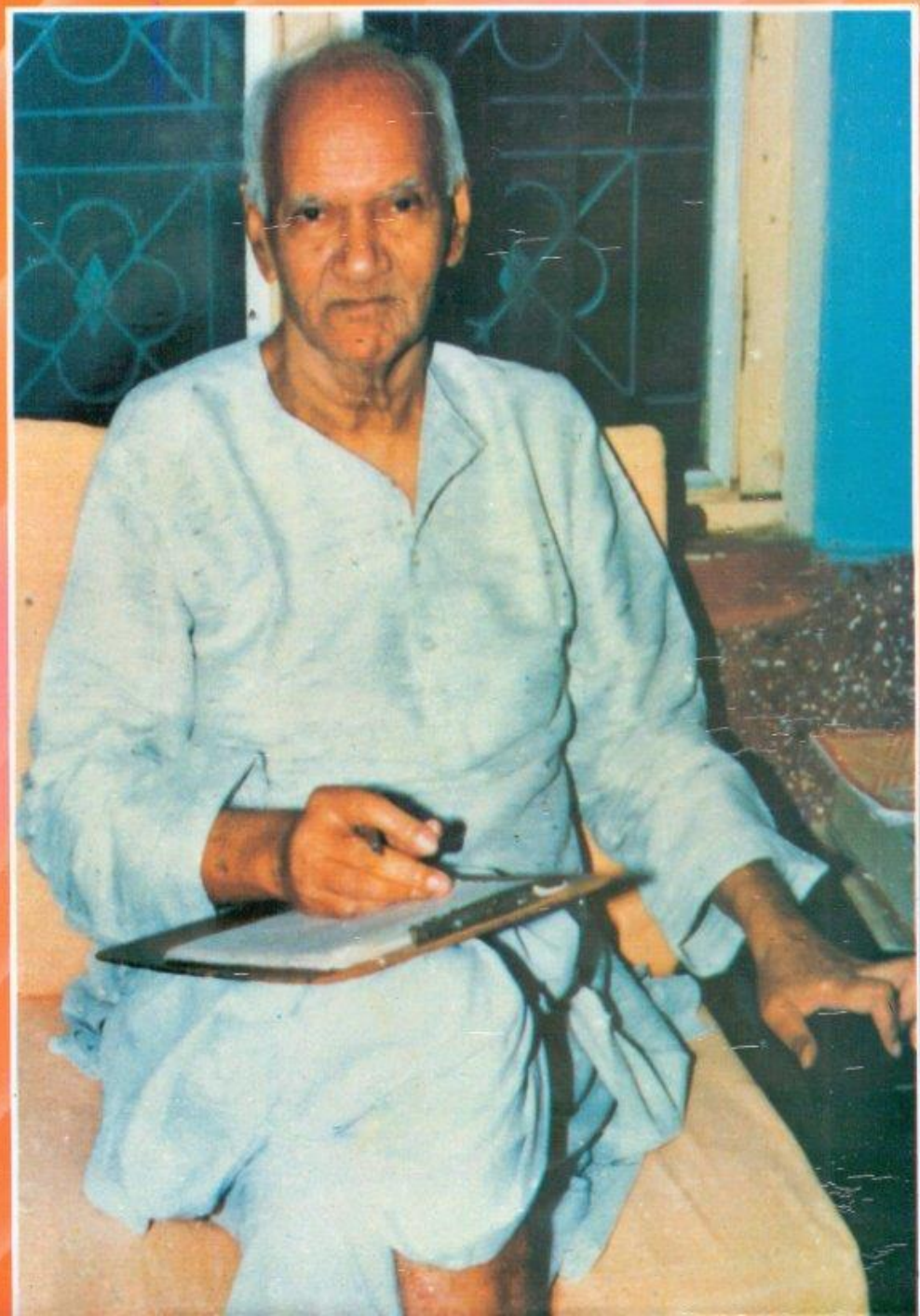
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

प्रज्ञोपनिषद्



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

प्रज्ञोपनिषद्

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस



प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

वेद, उपनिषद, ब्राह्मण एवं आरण्यक इन चार को भारतीय संस्कृति में आदि ग्रन्थों के रूप में मान्यता प्राप्त है । विज्ञानसम्मत सांस्कृतिक विवेचना के साथ हमारा यह वाङ्मय ज्ञान-विज्ञान का विराट भाण्डागार है । कालक्रम में इसके पश्चात् अन्यान्य ग्रन्थों में अठारह पुराणों को लोकप्रियता मिली । जहाँ चारों वेदों में कुल मिलाकर मात्र बीस हजार मंत्र हैं, वहाँ १८ पुराण व उप पुराणों में प्रायः एक करोड़ से भी अधिक मंत्रादि हैं । इन सभी में मिथक माहात्म्य प्रधान कथानक भरे पड़े हैं । समय-समय पर इन सभी में कुछ अंश जुड़ते व कुछ घटते चले गए हैं ।

परमपूज्य गुरुदेव ने एक नयी विधा खोजी "प्रज्ञा पुराण" के रूप में । यद्यपि उनने स्वयं ने निज के स्तर पर वैदिक वाङ्मय का, आर्ष साहित्य का पुनरुद्धार कर उसे १९६०-६१ में जन भाषा में प्रस्तुत किया था । तथापि ऋषि स्तर की उनकी मनीषा ने परिवर्तनशील समय के अनुरूप आज की युग समस्याओं का समाधान बताने वाले कथा प्रधान, विचारोत्तेजक, तथ्य-सम्मत साहित्य की आवश्यकता समझी एवं उसे पौराणिक आधार पर ही किन्तु उपनिषद प्रधान शैली में प्रज्ञापुराण के पांच खण्डों के रूप में लिखकर रख दिया । प्रज्ञापुराण को उनने युग-पुराण- प्रज्ञोपनिषद, जो कथानकों की सम्मति के साथ प्रस्तुत किया गया था, की संज्ञा दी तथा प्रथम खण्ड की भूमिका में लिखा कि अभी इसके पाँच खण्ड ही प्रकाशित किये जा रहे हैं किन्तु बन पड़ा तो पुरातन १८ पुराणों की तरह १८ खण्डों का सृजन करेंगे । अभी तक कथानक सहित इसके चार खण्ड ही जन-जन के समक्ष आए हैं। पाँचवें व छठे खण्डों को १९९६-९७ में प्रकाशित करने की योजना है । इनकी लोकप्रियता इसी से आँकी जा सकती है कि प्रत्येक की विगत दस वर्षों में आठ-आठ आवृत्तियाँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं ।

प्रस्तुत वाङ्मय में 'प्रज्ञोपनिषद' जिसे नाम दिया गया है, मात्र उस शाश्वत विचार प्रवाह में, जिसमें पूज्यवर ने आस्था-संकट के उपचार से लेकर ऋषि परम्परा के पुनर्जीवन एवं सतयुग की वापसी की बात कही है, उसे सूत्ररूप में प्रस्तुत किया गया है । इनमें संस्कृत श्लोकों के साथ उनके अर्थ दिये गये हैं । मूल प्रज्ञा पुराण में पूज्यवर के निर्देशानुसार संपादक तंत्र द्वारा जो टीका-व्याख्या एवं कथानक जोड़े गए थे, वे इसमें नहीं हैं । कथानकों को अलग से एक वाङ्मय में प्रस्तुत कर दिया गया है । पाठकों को पाँचवें व छठे खण्ड के रूप में नया, अभी तक अप्रकाशित प्रतिपादन पढ़ने को मिलेगा । बाद में यह पुराण के खण्डों के रूप में कथानकों के साथ प्रस्तुत होगा । शेष बारह खण्ड अभी इसमें नहीं दिये जा रहे हैं ।

परमपूज्य गुरुदेव को इस युग का व्यास कहा जाता है । इसे प्रज्ञोपनिषद् के विचार प्रवाह के उतार चढ़ाव के रूप में प्रश्नोत्तर शैली में किये गये प्रतिपादन के रूप में देखा- समझा जा सकता है । यह उनकी लेखनी का ही चमत्कार है कि उनने आज के जीवन के हर पक्ष को अपनी तूलिका से स्पर्श किया व उसे ऐसा रंगा है कि वह युगानुकूल चित्रांकन जान पड़ता है । वे प्रज्ञापुराण की भूमिका में लिखते हैं कि "बदलते समय के अनुरूप उसकी परिस्थितियाँ, मान्यताएँ, प्रथाएं, समस्याएं एवं आवश्यकताएँ भी बदलती रहती हैं । तदनुरूप ही उनके समाधान खोजने पड़ते हैं । इस ग्रन्थ का सृजन इसी निमित्त किया गया है ।"

लोक-शिक्षण हेतु अत्यधिक सरल शैली में लिखे गए इस प्रवाह में प्रत्येक खण्ड की अपनी एक विशेषता है। प्रथम खण्ड में युग समस्याओं के कारण उद्भूत आस्था-संकट का विवरण है एवं उससे उबरकर प्रज्ञा युग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लाने की प्रक्रिया रूपी अवतार सत्ता द्वारा प्रणीत सन्देश है । भ्रष्ट-चिन्तन एवं दुष्ट-आचरण से जूझने हेतु अध्यात्म दर्शन को किस तरह व्यावहारिक रूप में अपनाया जाना चाहिए, इसकी इसमें विस्तृत व्याख्या है । द्वितीय खण्ड में उन गुणों का विस्तार से वर्णन है, जिन्हें धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों के रूप में जाना जाता रहा है । सत्य-विवेक, संयमशीलता-कर्तव्यपरायणता, अनुशासन-अनुबन्ध, सौजन्य-पराक्रम, सहकार-परमार्थ, जैसे गुणों को अपनाने से देवमानवों का सृजन व समाज में सत्प्रवृत्तियों की स्थापना का इसमें विवेचन है । तृतीय खण्ड में परिवार संस्था के विभिन्न पक्षों यथा दाम्पत्य जीवन, गृहस्थ दायित्व, नारी-शिशु-वृद्धजनों की परिवार संस्था में भूमिका, सुसंस्कारिता संवर्धन एवं विश्व-परिवार के सतयुगी दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया गया है । चतुर्थ खण्ड देव संस्कृति के विभिन्न उन पक्षों को समर्पित है जो आज लुप्त प्राय हैं । वर्णाश्रम धर्म, पर्व-संस्कार, तीर्थाटन, प्रव्रज्या, मरणोत्तर जीवन, आस्था संकट व अंत में निवारण हेतु निष्कलंक प्रज्ञावतार का इसमें विवेचन है ।

प्रज्ञोपनिषद का पाँचवां खण्ड ''सर्वधर्म समभाव'' को समर्पित है । आज की यह त्रासदी भरी एक ऐसी परिस्थिति है, जिसका समाधान इसके कर्म-व्यवस्था, आत्म-परिष्कार, व्यावहारिक तपोयोग, आत्मबोध, धर्म-धारणा एवं उपासना-आराधना प्रकरण के द्वारा किया गया है । सब धर्मों-संप्रदायों, मतों के कथानक-दृष्टान्त उसकी पुष्टि के लिए आने वाले प्रज्ञा पुराण में जोड़कर व्याख्या के साथ प्रकाशित किये जा रहे हैं । इस वाङ्मय के अंतिम व छठे खंड में देवात्मा हिमालय की ऋषि सत्ताओं के अदृश्य क्रियाकलापों से लेकर मानवीय काया व प्रकृति जगत की अविज्ञात गुत्थियों का वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की धुरी पर समाधान किया गया है । यज्ञ-विज्ञान, मंत्र-शक्ति, ओषधि विज्ञान से लेकर आर्ष संस्कृति के सभी गुह्य पक्षों पर प्रश्नोत्तरी शैली में इसमें समाधान प्रस्तुत है ।

प्रज्ञोपनिषद के रूप में पूज्यवर की चिन्तन-चेतना का वह पक्ष हमने प्रस्तुत किया है, जिसने लाखों ही नहीं, करोड़ों के जीवन को प्रभावित करके नूतन दिशा दी है । एक स्थान पर छह खण्डों की प्रस्तुतीकरण का यह अभिनव प्रयास है ।

- ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञोपनिषद्

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
प्रथम मण्डल	
लोक कल्याण की जिज्ञासा प्रकरण	१.१
अध्यात्म-दर्शन प्रकरण	१.१३
अजस्र अनुदान-उपलब्धि प्रकरण	१.२२
संयमशीलता कर्त्तव्यपरायणता प्रकरण	१.३१
उदार भक्ति-भावना प्रकरण	१.४०
सत्साहस प्रकरण	१.४९
युगान्तरीय चेतना लीला सन्दोह प्रकरण	१.५८
द्वितीय मण्डल	
देव मानव समीक्षा प्रकरण	२.१
धर्म-विवेचन प्रकरण	२.८
सत्य-विवेक प्रकरण	२.१५
संयमशीलता-कर्त्तव्य-परायणता प्रकरण	२.२३
अनुशासन-अनुबन्ध प्रकरण	२.३२
सौजन्य पराक्रम प्रकरण	२.४०
सहकार परमार्थ प्रकरण	२.४७
तृतीय मण्डल	
परिवार-व्यवस्था प्रकरण	३.१
गृहस्थ-जीवन प्रकरण	३.१३
नारी-माहात्म्य प्रकरण	३.२३
शिशु-निर्माण प्रकरण	३.३२
वृद्धजन-माहात्म्य प्रकरण	३.४०
सुसंस्कारिता संवर्धन प्रकरण	३.४८
विश्व-परिवार प्रकरण	३.५७
चतुर्थ मण्डल	
देव संस्कृति-जिज्ञासा प्रकरण	४.१
वर्णाश्रम-धर्म प्रकरण	४.१०
संस्कार पर्व माहात्म्य प्रकरण	४.२२
तीर्थ-देवालय प्रकरण	४.३३
मरणोत्तर जीवन प्रकरण	४.४३
आस्था-संकट प्रकरण	४.५४
प्रज्ञावतार प्रकरण	४.६१
पंचम-मण्डल	
कर्म-व्यवस्था प्रकरण	५.१
आत्मपरिष्कार लोकसाधना प्रकरण	५.१२
व्यावहारिक तपोयोग प्रकरण	५.२३
आत्म बोध प्रकरण	५.३७
धर्म-धारणा प्रकरण	५.५०
सर्वधर्म समभाव प्रकरण	५.५८
उपासना-साधना-आराधना प्रकरण	५.६७
षष्ठ-मण्डल	
देवात्मा हिमालय प्रकरण	६.१
ऋषि प्रकरण	६.७
हिमाद्रि हृदय प्रकरण	६.१३
अदृश्य लोक प्रकरण	६.१९
यज्ञ-विज्ञान-वनस्पति-विज्ञान प्रकरण	६.२५
आत्म शोधन प्रकरण	६.३१
महर्षि परम्परा पुनर्जीवन प्रकरण	६.३७
वन्दना-परिशिष्ट	६.४४
ईश-वन्दना	६.४४
गुरु-वन्दना	६.४५
युगदेव स्तवन	६.४५
महाकालाष्टकम्	६.४७
गुरुमातृ-वन्दना	६.४८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञोपनिषद्

प्रथम मण्डल

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

लोककल्याण-जिज्ञासा प्रकरण

लोककल्याणकृद् धर्मधारणा संप्रसारकः ।
व्रती यायावरो मान्यो देवर्षिर्ऋषिसत्तमः ।। १।।
अव्याहतगतिं प्राप गन्तुं विष्णुपदं सदा ।
नारदो ज्ञानचर्चार्थं स्थित्वा वैकुण्ठसन्निधौ ।। २।।
लोककल्याणमेवायमात्मकल्याणवद् यतः ।
मेने परार्थपारीणः सुविधमन्यदुर्लभाम् ।। ३।।
काले काले गतस्तत्र समस्याः कालिकीमृशन् ।
मतं निश्चित्यस्वीचक्रे भाविनीं कार्यपद्धतिम् ।। ४।।

टीका- लोक कल्याण के लिए जन-जन तक धर्म धारणा का प्रसार-विस्तार करने का व्रत लेकर निरन्तर विचरण करने वाले नारद ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ गिने गये और देवर्षि के मूर्धन्य सम्मान से विभूषित हुए। एक मात्र उन्हीं को यह सुविधा प्राप्त थी कि कभी भी बिना किसी रोक-टोक विष्णुलोक पहुँचें और भगवान् के निकट बैठकर अभीष्ट समय तक प्रत्यक्ष ज्ञानचर्चा करें। यह विशेष सुविधा उन्हें लोक-कल्याण को ही आत्म-कल्याण मानने की परमार्थ परायणता के कारण मिली। वे समय-समय पर भगवान् के समीप पहुँचते और सामयिक समस्याओं पर विचार करके तदनुरूप अपना मत बनाते और भावी कार्य-क्रम निर्धारित करते ।।१-४।।

व्याख्या- परमार्थ में सच्ची लगन यदि किसी में हो तो उसे पुण्य अर्जन के अतिरिक्त आत्मकल्याण का लाभ मिलता है। ऐसे व्यक्ति दूसरों को तारते हैं, स्वयं अपनी नैया भी जीवन सागर में खे ले जाते हैं।

नारद ऋषि को भगवान की विशेष अनुकम्पा इसी कारण मिली कि उन्होंने परहित को अपना जीवनोद्देश्य माना। इसके लिये वे निरन्तर भ्रमण करते, जन चेतना जगाते व सत्परामर्श देकर लोगों को सन्मार्ग की राह दिखाते थे। ध्रुव,प्रहलाद तथा पार्वती को अपने सामयिक मार्गदर्शन द्वारा उन्होंने लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर किया। इसी विभूति ने उन्हें देवर्षि पद से सम्मानित किया तथा भगवान के सामीप्य का लाभ भी उन्हें मिला। चूँकि वे सतत जन सम्पर्क में रहते थे व लोक कल्याण मे रत रहते थे इसी कारण सामयिक जन समस्याओं के समाधान हेतु वे परामर्श-मार्गदर्शन हेतु प्रभु के पास पहुँचते थे व अपनी भावी नीति का क्रियान्वयन करते थे ऐसे परमार्थ परायण व्यक्ति जहाँ भी होते हैं, सदैव श्रद्धा सम्मान पाते हैं।

एकदा हृदये तस्य जिज्ञासा समुपस्थिता ।
ब्रह्मविद्यावगाहाय कालं उच्चैस्तु प्राप्यते ।। ५।।
सञ्चितैश्च सुसंस्कारैः कठोरं व्रतसाधनम् ।
योगाभ्यासं तपश्चापि कुर्वन्त्येते यथासुखम् ।। ६।।
सामान्यानां जनानां तु मनसः सा स्थितिः सदा ।
चंचलास्ति न ते कर्तुसमर्था अधिकं क्वचित् ।। ७।।
कल्पेऽपि चात्मकल्याणसाधनं सरलं न ते ।
वर्त्मपश्यन्ति पृच्छामि भगवन्तमस्तु तत्स्वयम् ।। ८।।
सुलभं सर्वमर्त्यानां ब्रह्मज्ञानं भवेद् यथा ।
आत्मविज्ञानमेवापि योग-साधनमप्युत ।। ९।।
नातिरिक्तं जीवचर्यां दृष्टिकोणं नियम्य वा ।
सिद्ध येत्प्रयोजनं लक्ष्यपूरकं जीवनस्य यत् ।। १०।।

टीका- एक बार उनके मन में जिज्ञासा उठी। उच्चस्तर के लोग तो ब्रह्मविद्या के गहन-अवगाहन के लिए समय निकाल लेते हैं। संचित सुसंस्कारिता के कारण कठोर व्रत-साधन,योगाभ्यास एवं तपसाधन भी कर लेते हैं। किन्तु सामान्य-जनों की मनःस्थिति-परिस्थिति उथली होती है। ऐसी दशा में वे अधिक कर नहीं पाते। थोड़े में सरलता पूर्वक आत्मकल्याण का साधन बन सके ऐसा मार्गदर्शन उन्हें प्राप्त नहीं होता अस्तु,भगवान् से पूछना चाहिए। सर्वसाधारण की सुविधा का ऐसा ब्रह्मज्ञान, आत्म-विज्ञान एवं योग साधन क्या हो सकता है। जिसके लिए कुछ अतिरिक्त न करना पड़े, मात्र दृष्टिकोण एवं जीवन-चर्या में थोड़ा परिवर्तन करके ही जीवन-लक्ष्य को पूरा करने का प्रयोजन सध जाय ।। ५-१०।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्याख्या- जनमानस को स्तर की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक वे जो तत्वदर्शन, साधनतपश्चर्या के मर्म को समझते हैं। उतना कठोर पुरुषार्थ करने योग्य पात्रता भी उन्हें पूर्व जन्म के अर्जित संस्कारों व स्वाध्याय परायणता के कारण मिल जाती है। परन्तु देवर्षि नारद ने जन-जन में प्रवेश करके पाया कि दूसरे स्तर के लोगों की संख्या अधिक है, जो जीवन व्यापार में उलझे रहने के कारण अथवा साधना विज्ञान के विस्तृत उपक्रमों से परिचित होने का सौभाग्य न मिल पाने के कारण अध्यात्मविद्या के सूत्रों को समझ नहीं पाते-व्यवहार में उतार नहीं पाते तथा ऐसे ही उथली स्थिति में जीते हुए किसी तरह अपना जीवन शकट खींचते हैं ।

विशेष लोगों के लिए तो विशेष उपलब्धियाँ हैं। ऐसे असाधारण व्यक्तियों की तो बात ही अलग है उनके जीवन-उपाख्यान यही बताते हैं कि वे विशिष्ट विभूति सम्पन्न होते हैं।

पिपृच्छां च समाधातुं वैकुण्ठं नारदो गतः ।
गत्वाऽव्यच्यं च देवेशं देवेनापि तु पूजितः ।। ११।।
कुशलक्षेमचर्चान्तेऽभीष्टे चर्चाऽभवद् द्वयोः ।
संसारस्य च कल्याणकामना संयुता च या ।। १२।।

टीका- इस पूछताछ के लिए देवर्षि नारद बैकुण्ठ लोक पहुँचे, नारद ने नमन-वन्दन किया, भगवान् ने भी उन्हें सम्मानित किया। परस्पर कुशल-क्षेम के उपरान्त अभीष्ट प्रयोजनों पर चर्चा प्रारम्भ हुई जो संसार की कल्याण-कामना से युक्त थी ।। ११-१२।।

नारद उवाच-

देवर्षिः परमप्रीतः पप्रच्छ विनयान्वितः ।
नेतुं जीवनचर्या वै साधनामयतां प्रभो ।। १३।।
प्राप्तुं च परमं लक्ष्यमुपायं सरलं वद ।
समाविष्टो भवेद्यस्तु सामान्ये जनजीवने ।। १४।।
विहाय स्वगृहं नैव गन्तुं विवशता भवेत् ।
असामान्या जनार्हा च तितीक्षा यत्र नो तपः।। १५।।

टीका- प्रसन्नचित्त देवर्षि ने विनय पूर्वक पूछा- देव संसार में जीवनचर्या को ही साधनामय बना लेने और परमलक्ष्य प्राप्त कर सकने का सरल उपाय बतायें, ऐसा सरल जिसे सामान्य जन-जीवन में समाविष्ट करना कठिन न हो। घर छोड़कर कहीं न जाना पड़े और ऐसी तप-तितीक्षा न करनी पड़े जिसे सामान्य स्तर के लोग न कर सकें ।।१३-१५ ।।

व्याख्या- भगवान से देवर्षि जो प्रश्न पूछ रहे हैं वह सारगर्भित है। सामान्यजन भक्ति-वैराग्य-तप का मोटा अर्थ यही समझते हैं कि इसके लिए एकान्त साधना के मर्म को नहीं जानते। इसी जीवन-साधना,प्रभु परायण करने-उपवन जाने की आवश्यकता पड़ती है। पर इस उच्चस्तरीय तपश्चर्या के प्रारम्भिक चरणजीवन साधना जीवन के विधि-विधानों को जानने, उन्हें व्यवहार में कैसे उतारा जाय इस पक्ष को विस्तार से खोलने की वे भगवान से विनती करते हैं।

रामायण में काकभुशुण्डि जी ने इसी प्रकार का मार्गदर्शन गरुड़जी को दिया है। जीवन साधना कैसे की जाय इसका प्रत्यक्ष उदाहरण राजा जनक के जीवन में भी देखने को मिलता है।

श्री भगवानुवाच-

जिज्ञासां नारदस्याथ ज्ञात्वा संमुमुदे हरिः ।
उवाच च महर्षे त्वमात्थ यन्मे मनीषितम् ।। १६।।
युगानुरूपं सामर्थ्यं पश्यन्नत्र प्रसंगके ।
निर्धारणस्य चर्चाया व्यापकत्वं समीप्सितम् ।। १७।।

टीका- नारद की जिज्ञासा जानकर भगवान बहुत प्रसन्न हुए और बोले-देवर्षि आप तो हमारे मन की बात कह रहे हैं। समय की आवश्यकता को देखते हुए इस प्रसंग पर चर्चा होना और निर्धारण को व्यापक किया जाना आवश्यक भी था ।।१६-१७।।

व्याख्या- जो जिज्ञासा भक्त के मन में घुमड़ रही थी वही भगवान के भी अंतः में विद्यमान थी। भक्त हमेशा भगवान की आकांक्षा के अनुरूप ही विचारते हैं एवं अपनी गतिविधियों का खाका बनाते हैं। सच्चे भक्त की कसौटी पर देवर्षि खरे उतरते हैं, जभी वे जन-सामान्य की समस्या को लेकर प्रभु से मार्ग दर्शन माँगते हैं।

ऋषिवर नारद से श्रेष्ठ और हो ही कौन सकता था जो सामयिक आवश्यकतानुसार-अपने प्रभु के मन की इच्छा जानें व उनकी प्रेरणाओं-समस्याओं के समाधानों को जन-जन के गले उतार सकें ।

अधुनास्ति हि सर्वत्राऽनास्था क्रमपरम्परा ।
अदूरदर्शिताग्रस्ता जना विस्मृत्यगौरवम् ।। १८।।
अचिन्त्यचिन्तना जाता अयोग्याचरणास्तथा ।
फलतः रोग शोकार्तिकलहक्लेशनाशजम् ।। १९।।
वातावरणमुत्पन्नं भीषणाश्च विभीषिकाः ।
अस्तित्वं च धरिनयास्तु संदिग्धं कुर्वतेऽनिशम्।। २०।।

टीका- इन दिनों सर्वत्र अनास्था का दौर है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदूरदर्शिता ग्रस्त हो जाने से लोग मानवी गरिमा को भूल गये हैं। अचिन्त्य-चिन्तन और अनुपयुक्त आचरण में संलग्न हो रहे हैं, फलतः रोग, शोक और कलह, भय,विनाश का वातावरण बन रहा है। भीषण-विभीषिकाएँ निरन्तर धरती के अस्तित्व तक को चुनौती दे रही हैं ।।१८-२०।।

व्याख्या- यहाँ भगवान आज की परिस्थितियों पर संकेत करते हुए अनास्था की बिवेचना करते हैं व वातावरण में संव्याप्त कलुष तथा भयावह परिस्थितियों का कारण भी श्रद्धा तत्व की अवमानना को ही बताते हैं।

मनुष्य के चिन्तन और व्यवहार से ही आचरण बनता है। वातावरण से परिस्थिति बनती है और वही सुख-दुख,उत्थान-पतन का निर्धारण करती है। जमाना बुरा है,कलियुग का दौर है, परिस्थितियाँ कुछ प्रतिकूल बन गयी हैं, भाग्य चक्र कुछ उलटा चल रहा है-ऐसा कह कर लोग मन को हल्का करते हैं, पर इससे समाधान कुछ नहीं निकलता। जन समाज में से ही तो अग्रदूत निकलते हैं। प्रतिकूलता का दोषी मूर्धन्य राजनेताओं को भी ठहराया जा सकता है, पर भूलना नहीं चाहिए कि इन सबका उद्गम केन्द्र मानवी अन्तराल ही है। आज की विषम परिस्थितियों को बदलने की जो आवश्यकता समझते हैं, उन्हें कारण की तह तक जाना ही होगा। अन्यथा सूखे पेड़ को मुरझाते वृक्ष को--हरा बनाने के लिए जड़ की उपेक्षा करके पत्ते सींचने जैसी विडम्बना ही चलती ही रहेगी।

आज अन्तः के उद्गम से निकलने तथा व्यक्तित्व व परिस्थितियों का निर्माण करने वालीआस्थाओं का स्तर गिर गया है। मनुष्य ने अपनी गरिमा खो दी है और संकीर्णस्वार्थपरता का विलासी परिपोषण ही उसका जीवन लक्ष्य बन गया है। वैभव सम्पादन और उद्धत प्रदर्शन,उच्छृंखल दुरुपयोग ही सबको प्रिय है। समृद्धि बढ़ रही है, पर उसके साथ रोग कलह भीप्रगति पर हैं। प्रतिभाओं की कमी नहीं पर श्रेष्ठता संवर्धन व निकृष्टता उन्मूलन हेतु प्रयास ही नहीं बन पड़ते। लोक मानस पर पशु प्रवृत्तियों का ही आधिपत्य है,आदर्शों के प्रति लोगों का न तो रुझान है, न उमंग ही। दुर्भिक्ष सम्पदा का नहीं-आस्थाओं का है। स्वास्थ्य की गिरावट,मनोरोगों की वृद्धि' अपराधवृत्ति तथा उद्दंडता सारे वातावरण में संव्याप्त है और ये ही अदृश्य जगत में उस परिस्थिति को विनिर्मित कर रही हैं, जिसके रहते धरती महाविनाश-युद्ध की विभीषिकाओं-के बिल्कुल समीप आ खड़ी हुई हैं ।

भगवान ने यहाँ स्पष्ट संकेत युग की समस्याओं के मूल कारण आस्था संकट की ओर किया है। सड़ी कीचड़ में से मक्खी, मच्छर, कृमि-कीटक, विषाणु के उभार उठते हैं। रक्त की विषाक्तता फुंसियों के रूप में, ज्वर प्रदाह के रूप में, प्रकट होती है। ऐसे में प्रयास कहाँ हो ताकि मूल कारण को हटाया जा सके।अन्तः की निकृष्टता को मिटाया जा सके। इसी तथ्य की विवेचना वे करते हैं।

ईदृश्यां च दशायां तु स्वप्रतिज्ञानुसारतः ।
जाता नवावतारस्य व्यवस्थायाः स्थिति स्वयम्।। २१।।
प्रज्ञावतारनाम्ना च युगस्यास्यावतारकः ।
भूलोके मानवानां तु सर्वेषां हि मनःस्थितौ ।। २२।।
परिस्थितौ च विपुलं चेष्टते परिवर्तनम् ।
सृष्टिक्रमे चतुर्विंश एष निर्धार्यतां क्रमः ।। २३।।

टीका- ऐसी दशा में अपनी प्रतिज्ञानुसार नये अवतार की व्यवस्था बन गई। प्रज्ञावतार नाम से इस युग का अवतरण भूलोक के मनुष्य समुदाय की मनःस्थिति एवं परिस्थिति में भारी परिवर्तन करने जा रहा है। सृष्टि क्रम में इस प्रकार का यह चौबीसवाँ निर्धारण है ।।२१-२३।।

व्याख्या- आस्था संकट के दौर में भगवान हमेशा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं ऐसी परिस्थिति में ईश्वरीय सत्ता के अवतरण का उद्देश्य एक ही रहता है। गीता में कहा है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ।।

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार-

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहि निज श्रुति सेतु ।
जग विस्तारहिं विशद यश, राम जनम कर हेतु ।।

भावार्थ यह है कि अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना अवतार प्रक्रिया का मूलभूत प्रयोजन है। यह संकल्प विराट् है और अनादिकाल से यथावत् चला आ रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूतकाल के अवतारों में प्रारम्भिक का कार्य क्षेत्र भौतिक परिस्थितियों से जूझना भर था। उसके बाद वालों को अनाचारियों से लड़ना पड़ा। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम, कृष्ण को पूर्ण पुरुष और बुद्ध को विवेक का देवता कहा जाता है। प्रज्ञावतार इन सबका उत्तरार्ध माना जा सकता है। उसका कार्य अपेक्षाकृत अधिक कठिन और व्यापक है। उसे मात्र सामयिक समस्याओं एवं व्यक्तिगत उद्दण्डताओं से ही नहीं जूझना है वरन् लोकमानस में ऐसे आदर्शों का बीजारोपण, अभिवर्धन तथा परिपोषण क्रियान्वयन करना है जो सतयुग जैसी भावना और राम राज्य जैसी व्यवस्था के लिए आवश्यक अन्तःप्रेरणा व्यापक क्षेत्र में उत्पन्न कर सकें। लक्ष्य और कार्य की गरिमा एवं व्यापकता को देखते हुए प्रज्ञावतार की कलाएँ चौबीस होना स्वाभाविक है।

बदलती परिस्थितियों में बदलते आधार भगवान को भी अपनाने पड़े हैं। विश्व विकास की क्रम व्यवस्था के अनुरूप अवतार का स्तर एवं कार्यक्षेत्र भी विस्तृत होता चला गया है। मनुष्य जब तक साधन प्रधान और कार्य प्रधान था तब तक शास्त्र और साधनों के सहारे काम चल गया। आज की परिस्थितियों में बुद्धि तत्व की प्रधानता है। मन ही सर्वत्र छाया हुआ है। महत्वाकांक्षाओं के क्षेत्र में अनात्म-तत्व की भरमार होने से सम्पन्नता और समर्थता का दुरुपयोग ही बन पड़ रहा है। महामारी सीमित क्षेत्र तक नहीं रही, उसने अपने प्रभाव क्षेत्र में समूची मानव जाति को जकड़ लिया है। विज्ञान ने दुनिया को बहुत छोटी कर दिया है और गतिशीलता को अत्यधिक द्रुतगामी। ऐसी दशा में भगवान का अवतार युगान्तरीय चेतना के रूप में ही हो सकता है। जन-मानस के सुविस्तृत क्षेत्र में अपने पुण्य प्रवाह का परिचय देना इसी रूप में सम्भव हो सकता है,जिसमें कि प्रज्ञावतार के प्रादुर्भाव की सूचना सम्भावना सामने है।

वरिष्ठता नराणां तु श्रद्धाप्रज्ञाऽवलम्बिता ।
निष्ठाश्रिता च व्यक्तित्वं सर्वेषामत्र संस्थितम् ।। २४ ।।
न्यूनाधिकता हेतोः क्षीयते वर्धते च तत् ।
उत्थानसुखजं पातदुःखजं जायते वृतिः ।। २५ ।।
अधुना मानवैस्त्यक्ता श्रेष्ठताऽभ्यन्तर स्थिता ।
फलत आत्मनेऽन्येभ्यः संकटान् भावयन्ति ते ।। २६ ।।

टीका- मनुष्य की वरिष्ठता श्रद्धा,प्रज्ञा और निष्ठा पर अवलम्बित है। इन्हीं की न्यूनाधिकता से उसका व्यक्तित्व उठता-गिरता है। इसी (व्यक्तित्व) के उठने-गिरने के कारण उत्थानजन्य सुखों और पतनजन्य दुखों का वातावरण बनता है। इन दिनों मनुष्यों ने आन्तरिक वरिष्ठता गवाँ दी है। फलतः अपने तथा सबके लिए संकट उत्पन्न कर रहे हैं।।२४-२६।।

व्याख्या- श्रद्धा अर्थात् सद्भाव,प्रज्ञा अर्थात् सद्ज्ञान एवं निष्ठा अर्थात् सत्कर्म-तीनों का समन्वित स्वरूप ही व्यक्तित्व का निर्माण करता है। श्रद्धा अन्तःकरण से प्रस्फुटित होने वाले आदर्शों के प्रति प्रेम है। इस *गंगोत्री* से निःसृत होने वाली पवित्र धारा ही सद्ज्ञान और सत्कर्म से मिलकर पतितपावनी गंगा का स्वरूप ले लेती है। इन तीनों का विकास-उत्थान ही मानव को महामानव बनाता है तथा इस क्षेत्र का पतन ही उसे निकृष्ट स्तर का जीवनयापन करने को विवश करता है।

मनुष्य अपनी वरिष्ठता का कारण अपने वैभव-पुरुषार्थ, बुद्धिबल-धनबल को मानता है, जबकि यह मान्यता नितान्त मिथ्या है। व्यक्तित्व का निर्धारण तो अपना ही स्व-अतंःकरण-करता है। निर्णय, निर्धारण यहाँ से होते हैं। मन और शरीर स्वामिभक्त सेवक की तरह अंतःकरण की आकांक्षा पूरी करने के लिए तत्परता और स्फूर्ति से लगे रहते हैं। उन्नति-अवनति का भाग्य-विधान यहीं लिखा जाता है।

अंतःकरण से सद्भाव न उपजेगा तो सद्ज्ञान व सद्-आचरण किस प्रकार फलीभूत होगा ? वस्तुतः तीनों ही परस्पर पूरक हैं ।

यदा मनुष्यो नात्मानमात्मनोद्धर्तुमर्हति ।
कृतावतारोऽलं तस्य स्थितोः संशोधयाम्यहम् ।।२७।।
क्रमेऽस्मिन्सुविधायुक्ताः साधनैः सहिता नराः ।
विभीषिकायां नाशस्याऽनास्थासंकटपाशिताः ।।२८।।
तन्निवारण हेतोश्च कालेऽस्मिंश्चलदलोपमे ।
प्रज्ञावतारूपेऽवतराम्यत्र तु पूर्ववत् ।।२९।।
त्रयोविंशतिवारं यद्भ्रष्टं सन्तुलनं भुवि ।
संस्थापितं मयैवैतद् भ्रष्टं सन्तुलयाम्यहम् ।।३०।।

टीका- जब मनुष्य अपने बल-बूते दल-दल से उबर नहीं पाते तो मुझे अवतार लेकर परिस्थितियाँ सुधारनी पड़ती हैं।इस बार सुविधा साधन रहते हुए भी मनुष्यों को जिस विनाश विभीषिका में फँसना पड़ रहा है उसका मूल कारण आस्था-संकट ही है। उसके निवारण हेतु मुझे इस अस्थिर समय में इस बार प्रज्ञावतार के रूप में अवतरित होना है। पिछले तेईस बार की तरह इस बार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी बिगड़े सन्तुलन को फिर सँभालना है।।२७-३०।।

व्याख्या- मानवी *पुरुषार्थ* की भी अपनी महिमा-महत्ता है लेकिन जब मनुष्य दुर्बुद्धिजन्य विभीषिकाओं के सामने स्वयं को विवश-असहाय अनुभव करता है, तब परिस्थितियाँ अवतार प्रकटीकरण की बनती हैं। भगवान ने हर बार मानवता के परित्राण हेतु असंतुलन की स्थिति में अवतार लिया है और सृष्टि की डूबती नैया को पार लगाया है।

स्रष्टा अपनी अद्भुत कलाकृति विश्व-वसुधा को, मानवी सत्ता को-सुरम्य वाटिका को-विनाश के गर्त में गिरने से पूर्व ही *बचाता* और अपनी सक्रियता का परिचय देता है तथा परिस्थितियों को उलटने का चमत्कार उत्पन्न करता है। यही अवतार है। संकट के सामान्य स्तर से तो मनुष्य ही निपट लेते हैं, पर जब असामान्य स्तर की विपन्नता उत्पन्न हो जाती है तो स्रष्टा को स्वयं ही अपने आयुध सम्भालने पड़ते हैं। उत्थान के साधन जुटाना भी कठिन है पर पतन के गर्त में द्रुतगति से गिरने वाले लोक मानस को उलट देना अति कठिन है। इस कठिन कार्य को स्रष्टा ने समय-समय पर स्वयं ही सम्पन्न किया है। आज की विषम वेला में भी अवतरण की परम्परा को अपनी लीला संदोह प्रस्तुत करते कोई भी प्रज्ञावान प्रत्यक्ष देख सकता है।

अवतार प्रक्रिया आदिकाल से चली आ रही है, और आदिकाल से अब तक मनुष्य जाति ने अनेक प्रकार के उतार-चढाव देखे हैं। स्वाभाविक ही भिन्न-भिन्न कालों में समस्याएँ और असन्तुलन भिन्न-भिन्न प्रकार के रहे हैं।

जब जिस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, तब उसी का समाधान करने के लिए एक दिव्य चेतना, जिसे अवतार कहा गया है प्रादुर्भूत हुई है और उसी क्रम से अवतार-युग प्रवाह को उलटने के लिए अपनी लीलाएँ रचते रहे हैं। सृष्टि के आरम्भ में जल ही जल था। प्राणी जगत में जलचरों की ही प्रधानता थी, तब उस असन्तुलन को मत्स्यावतार ने साधा। जब जल और थल पर प्राणियों की हलचलें बढ़ीं तो उनके अनुरूप क्षमता सम्पन्न कच्छप काया ने सन्तुलन बनाया। उन्हीं के नेतृत्व में समुद्र-मन्थन के रूप में प्रकृति दोहन का पुरुषार्थ सम्पन्न हुआ। हिरण्याक्ष ने समुद्र में छिपी सम्पदा को ढूँढकर उसे अपने ही एकाधिकार में कर लिया तो भगवान् का वाराह रूप ही उसका दमन करने में समर्थ-सक्षम हो सका। जब मनुष्य अपनी आवश्यकता से अधिक कमाने में समर्थ हो गया तो संकीर्ण स्वार्थपरता से प्रेरित सञ्चय की प्रवृत्ति भी बढ़ी। सञ्चय और उपभोग की पशु प्रवृत्ति को उदारता में परिणत करने के लिए भगवान वामन के रूप में छोटे,बौने और पिछड़े लोग उठ खड़े हुए और बलि जैसे सम्पन्न व्यक्तियों को स्वेच्छापूर्वक उदारता अपनाने के लिए सहमत कर लिया गया।

उच्छृंखलता जब उद्धत और उद्दण्ड हो जाती है तब शालीनता से उसका शमन नहीं हो सकता। प्रत्याक्रमण द्वारा ही उसका दमन करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर नरसिंहों की आवश्यकता पड़ती है और उन्हीं का पराक्रम अग्रणी रहता है। उन आदिम परिस्थितियों में भगवान् ने नर और व्याघ्र का समन्वय आवश्यक समझा तथा नृसिंह अवतार के रूप में दुष्टता के दमन एवं सज्जनता के संरक्षण का आश्वासन पूरा किया।

इसके बाद परशुराम,राम,कृष्ण,बुद्ध के अवतार आते हैं। इन सभी का अवतरण बढ़ते हुए अनाचरण के प्रतिरोध और सदाचरण के समर्थन-पोषण के उद्देश्य के लिए हुआ। परशुराम ने शस्त्र बल से सामन्तवादी निरंकुश आधिपत्य को समाप्त किया। राम ने मर्यादाओं के पालन पर जोर दिया तो कृष्ण ने अपने समय की धूर्तता और छल-छद्म से घिरी हुई परिस्थितियों का दमन विषस्य विषमौषधम् की नीति अपना कर किया। कृष्ण चरित्र में कूटनीतिक दूरदर्शिता की इसीलिए प्रधानता है कि इस समय की परिस्थितियों में सीधी उंगली से घी नहीं निकल पा रहा था इसीलिए काँटे से काँटा निकालने का उपाय अपनाकर अवतार प्रयोजन को पूरा करना पड़ा।

बुद्ध के बुद्धवाद का स्वरूप विचार क्रान्ति था। पूर्वार्द्ध में धर्म चक्र का प्रवर्तन हुआ था। धर्म धारणा का सम्मान करते हुए लाखों व्यक्तियों ने उसमें भाव भरा योगदान दिया था। आनन्द जैसे मनीषी, हर्षवर्धन जैसे श्रीमन्त,अम्बपाली जैसी कलाकार, अंगुलिमाल जैसे प्रतिभाशाली बड़ी संख्या में उस अभियान के अंग बने थे। इससे पिछले अवतारों का कार्यक्षेत्र सीमित रहा था, क्योंकि समस्यायें छोटी और स्थानीय थीं। बुद्ध-काल तक समाज का विस्तार बड़े क्षेत्र में हो गया था इसलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्ध का अभियान भी भारत की सीमाओं तक सीमित नहीं रहा और उन दिनों जितना व्यापक प्रयास सम्भव था उतना अपनाया गया। धर्मचक्र प्रवर्तन भारत से एशिया भर में फैला और उससे भी आगे बढ़कर उसने अन्य महाद्वीपों तक अपना आलोक बाँटा।

प्रज्ञावतार-बुद्धावतार का उत्तरार्ध है। बुद्धि प्रधान युग की समस्यायें भी चिन्तन प्रधान होती हैं। मान्यतायें, विचारणायें इच्छायें ही प्रेरणा केन्द्र होती हैं और उन्हीं के प्रवाह में सारा समाज बहता है। ऐसे समय में अवतार का स्वरूप भी तदनुरूप ही हो सकता है। लोकमानस को अवांछनीयता,अनैतिकता एवं मूढ़ मान्यता से विरत करने वाली विचार-क्रान्ति ही अपने समय की समस्याओं का समाधान कर सकती है।

आज आस्था संकट के कारण मनुष्य सुख-समृद्धि से सम्पन्न होने के बावजूद जिस जंजाल में स्वयं फँसा हुआ है एवं अन्यों के लिये विपत्ति बना हुआ है, उसका निवारण आस्था-प्रज्ञारूपी अस्त्र द्वारा ही सम्भव है।

परस्पर सम्वाद में वर्तमान स्थिति का विश्लेषण कर भगवान इसीलिये प्रज्ञावतार के प्रकटीकरण की परिस्थितियाँ देवर्षि को समझाते हैं और पिछले अवतारों का स्मरण दिलाते हुए इस बार भी विभीषिका निवारण हेतु अपनी शक्तियों को संतुलन स्थापना के लिये आवश्यक प्रतिपादित करते हैं।

निराकारत्वहेतोश्च प्रेरणां कर्तुमीश्वरः ।
शरीरिणश्च गृह्णामि गतिसञ्चालने ततः ।।३१।।
अपेक्ष्यन्ते वरिष्ठाश्च आत्मानः कार्यसिद्धये ।
अग्रदूतानिमाद्कर्तुं पुष्टाम्यन्विष्य सर्वथा ।।३२।।
ततो निजप्रभावेण वर्चस्वेन च ते समम् ।
समुदायं दिशां नेतुं भिन्नां कुर्युर्वृतिं पराम् ।।३३।।

टीका- निराकार होने के कारण मैं प्रेरणा ही भर सकता हूँ। गतिविधियों के लिए शरीरधारियों का आश्रय लेना पड़ता है इसके लिए वरिष्ठ आत्माएँ चाहिए। इन दिनों अग्रदूत बनाने के लिए उन्हीं को खोजना,उभारना और सामर्थ्यवान् बनाना है। जिससे कि अपने प्रभाव,वर्चस्व से वे समूचे समुदाय की दिशा बदल सकें। समूचे वातारण में परिवर्तन प्रस्तुत कर सकें ।।३१-३३।।

व्याख्या- अवतार प्रकटीकरण का हमेशा यही स्वरूप रहा है। भगवान प्रेरणा देते हैं एवं उस आदर्शवादी प्रेरणा को शरीरधारी क्रिया में परिणत करते हैं। ईश्वरीयसत्ता जब भी अवतरित होती है, उसके साथ लोक-कल्याण की भावनाओं से सम्पन्न देवात्माएँ भी धरती पर अवतरित होती हैं। वरिष्ठ अग्रगामी-अवतारों के पार्षदगण ही इस प्रेरणा संचार को ग्रहण करते हैं।

संयुक्तश्च प्रयासोऽयं कर्त्तव्यो नारद श्रृणु ।
प्रेरयामि तु सम्पर्कं कुरु साधय पोषय ।। ३४।।
वरिष्ठात्मान एवं च त्यक्त्वा सर्वाः प्रसुप्तिकाः ।
युगमानवकार्यं च साधयिष्यन्ति पोषिताः ।। ३५।।
अनेनागमनं ते तु ममामन्त्रणमेव च ।
उभयपक्षगतं सिद्धं प्रयोजनमिदं ततः ।। ३६।।

टीका- हे नारद ! इसके लिए हम लोग संयुक्त प्रयास करें। हम प्रेरणा भरें, आप सम्पर्क साधें और उभारें। इस प्रकार वरिष्ठ आत्माओं की प्रसुप्ति जागेगी और वे युग मानवों की भूमिका निभा सकने में समर्थ हो सकेंगे। इससे आपके आगमन और हमारे आमन्त्रण का उभयपक्षीय प्रयोजन पूरा होगा ।।३४-३६।।

व्याख्या- संयुक्त प्रयास ही हमेशा फलदायी होते हैं। प्रेरणा निराकार सत्ता की तथा उसका सुनियोजित क्रियान्वयन-दोनों मिलकर प्रयोजन को समग्र-सफल बनाते हैं।

रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द,समर्थ गुरू रामदास तथा शिवाजी, श्रीकृष्ण और अर्जुन,राम और हनुमान,स्वामी विरजानन्द जी तथा दयानन्द ऐसे संयुक्त प्रयासों के उदाहरण हैं। प्रेरणा हमेशा इसी रूप में आती है और पार्षद उसे क्रियान्वित करते हैं।

भगवान् की चेतना और जाग्रत आत्माओं का सहयोग इस उदाहरण से समझा जा सकता है जिसमें कम शक्ति-सामर्थ्य होते हुए भी दो व्यक्ति मिलकर परस्पर पूरक बन गये।

सोत्सुकं नारदोऽपृच्छद्देवात्र किमपेक्ष्यते ।
कथं ज्ञेया वरिष्ठास्ते किं शिक्ष्याःकारयामि किम् ।।३७।।
येन युगसन्धिकाले ते मूर्धन्या यान्तु धन्यताम् ।
समयश्चापि धन्यः स्यात्तात् तत्सृज युगविधिम् ।।३८।।
पूर्वसंचित संस्काराः श्रुत्वा युगनिमन्त्रणम् ।
मौनाःस्थातुंन शक्ष्यन्तिचौत्सुक्यात् संगतास्ततः।।३९।।

टीका- तब नारद ने उत्सुकतापूर्वक पूछा हे देव! इसके लिए क्या करने की आवश्यकता है? वरिष्ठों को कैसे ढूँढा जाय? उन्हें क्या सिखाया जाय और क्या कराया जाय? जिससे युग-सन्धि की वेला में अपनी भूमिका से मूर्धन्य आत्माएँ स्वयं धन्य बन सकें और समय को धन्य बना सकें। भगवान् बोले-हे तात् ! युग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृजन का अभियान आरम्भ करना चाहिए, जिनमें पूर्व सञ्चित संस्कार होंगे, वे युग निमन्त्रण सुनकर मौन बैठे न रह सकेंगे, उत्सुकता प्रकट करेंगे, समीप आवेंगे और परस्पर सम्बद्ध होंगे ।।३७-३९।।

व्याख्या- जागृत आत्माएँ कभी चुप बैठी ही नहीं रह सकतीं। उनके अर्जित संस्कार व सत्साहस युग की पुकार सुनकर उन्हें आगे बढ़ने व अवतार के प्रयोजनों हेतु क्रियाशील होने को बाध्य कर देते हैं।

सत्पात्रतां गतास्ते च तत्वज्ञानेन बोधिता: ।
कार्या: संक्षिप्तसारेण यदमृतमिति स्मृतम् ।। ४०।।
तुलना कल्पवृक्षेण मणिना पारदेन च ।
यस्य जाता सदा तत्वंज्ञानं तत्ते वदाम्यहम् ।। ४१।।
तत्वचिन्तनत: प्रज्ञा जागर्त्यात्मविनिर्मितौ ।
प्राज्ञ: प्रसज्जते चात्मविनिर्माणे च संभवे ।। ४२।।
तस्यातिसरला विश्वनिर्माणस्यास्ति भूमिका ।
कठिना दृश्यमानापि ज्ञानं कर्म भवेत्तत: ।। ४३।।
प्रयोजनानि सिद्धयन्ति कर्मणा नात्र संशय: ।
सद्ज्ञान देव्यास्तस्यास्तु महाप्रज्ञेति यास्मृता ।।४४।।
आराधनोपासना संसाधनाया उपक्रम: ।
व्यापकस्तु प्रकर्तव्यो विश्वव्यापी यथा भवेत् ।।४५।।

टीका- ऐसे लोगों को सत्पात्र माना जाय और उन्हें उस तत्व ज्ञान को सार संक्षेप में हृदयंगम कराया जाय, जिसे अमृत कहा गया है। जिसकी तुलना सदा पारसमणि और कल्पवृक्ष से होती रही है, वही तत्वज्ञान तुम्हें बताता हूँ। तत्व-चिन्तन से प्रज्ञा जगती है। प्रज्ञावान आत्मनिर्माण में जुटता है। जिसके लिए आत्मनिर्माण कर पाना सम्भव हो सका है, उसके लिए विश्व निर्माण की भूमिका निभा सकना अति सरल है, भले ही वह बाहर से कठिन दीखती हो। ज्ञान ही कर्म बनता है। कर्म से प्रयोजन पूरे होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। उस सद्ज्ञान की देवी 'महाप्रज्ञा' है। जिनकी इन दिनों उपासना-साधना और आराधना का व्यापक उपक्रम बनना चाहिए ।।४०-४५।।

व्याख्या- सत्पात्रों को गायत्री महाविद्या का अमृत, पारस,कल्पवृक्ष रूपी तत्व ज्ञान दिया जाना इस कारण भगवान ने अनिवार्य समझा ताकि वे अपने प्रसुप्ति को जगा-प्रकाशवान हो-ऐसे अनेकों के हृदय को प्रकाश से भर सकें। अमृत अर्थात् ब्रह्मज्ञान-वेदमाता के माध्यम से पारस अर्थात् भावना-प्रेम-विश्वमाता के माध्यम से एवं कल्पवृक्ष अर्थात् तपोबल-देवत्व की प्राप्ति-देवमाता के माध्यम से। ये तीनों ही धाराएँ एक ही महाप्रज्ञा के तीन दिव्य प्रवाह हैं। अज्ञान, अभाव एवं अशक्ति का निवारण प्रत्यक्ष कामधेनु गायत्री के अवलम्बन से ही सम्भव है।

गायत्री ब्रह्म विद्या है। उसी को कामधेनु कहते हैं। स्वर्ग के देवता इसी का पय पान करके सोमपान का आनन्द लेते और सदा निरोग,परिपुष्ट एवं युवा बने रहते हैं। गायत्री को कल्पवृक्ष कहा गया है। इसका आश्रय लेने वाला अभावग्रस्त नहीं रहता। गायत्री ही पारस है। जिसका आश्रय-सान्निध्य लेने वाला लोहे जैसी कठोरता कालिमा खोकर स्वर्ण जैसी आभा और गरिमा उपलब्ध करता है। गायत्री ही अमृत है। इसे अन्तराल में उतारने वाला अजर-अमर बनता है। स्वर्ग और मुक्ति को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। यह दोनों ही गायत्री द्वारा साधक को अजस्र-अनुदान के रूप में अनायास ही मिलते हैं। मान्यता है कि गायत्री माता का सच्चे मन से अंचल पकड़ने वाला कभी कोई निराश नहीं रहता। संकट की घड़ी में वह तरण-तारिणी बनती है। उत्थान के प्रयोजनों में उसका समुचित वरदान मिलता है। अज्ञान के अंधकार का भटकाव दूर करने और सन्मार्ग का सही रास्ता प्राप्त करके चरम प्रगति के लक्ष्य तक जा पहुँचना गायत्री माता का आश्रय लेने पर सहज सम्भव होता है।

प्रज्ञा व्यक्तिगत जीवन को अनुप्राणित करती है, इसे ऋतम्भरा अर्थात् श्रेष्ठ में ही रमण करने वाली कहते हैं। 'महाप्रज्ञा' इस ब्रह्माण्ड में संव्याप्त है। उसे दूरदर्शिता,विवेकशीलता,न्यायनिष्ठा,सद्भावना, उदारता के रूप में प्राणियों पर अनुकम्पा बरसाती और पदार्थों को गतिशील-सुव्यवस्थित एवं सौन्दर्य युक्त बनाती देखा जा सकता है। परब्रह्म की वह धारा जो मात्र मनुष्य के काम आती एवं आगे बढ़ाने,ऊँचा उठाने की भूमिका निभाती है महाप्रज्ञा है। ईश्वरीय अगणित विशेषताओं एवं क्षमताओं से प्राणि-जगत एवं पदार्थ-जगत उपकृत होते हैं, किन्तु मनुष्य को जिस आधार पर ऊर्ध्वगामी बनने-परमलक्ष्य तक पहुँचने का अवसर मिलता है उसे महाप्रज्ञा ही समझा जाना चाहिए । इसका जितना अंश जिसे, जिस प्रकार भी उपलब्ध हो जाता है वह उतने ही अंश में कृत-कृत्य बनता है। मनुष्य में देवत्व का-दिव्य क्षमताओं का-उदय उद्भव मात्र एक ही बात पर अवलम्बित है कि महाप्रज्ञा की अवधारणा उसके लिए कितनी मात्रा में सम्भव हो सकी। महाप्रज्ञा का ब्रह्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विद्या पक्ष अन्त:करण को उच्चस्तरीय आस्थाओं से आनन्द विभोर करने के काम आता है। दूसरा पक्ष साधना है, जिसे विज्ञान या पराक्रम कह सकते हैं, इसके अन्तर्गत आस्था को उछाला और परिपुष्ट किया जाता है। मात्र ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता। कर्म के आधार पर उसे संस्कार,स्वभाव,अभ्यास के स्तर तक पहुँचाना होता है। साधना का प्रयोजन श्रद्धा को निष्ठा में-निर्धारण की-अभ्यास की-स्थिति में पहुँचाना है। इसलिये अग्रदूतों,तत्वज्ञानियों,जीवन-मुक्तों एवं जागृत आत्माओंको भी साधना का अभ्यास क्रम नियमित रूप से चलाना होता है।

प्राह नारद इच्छाया: स्वकीयाया भवान् मम् ।
जिज्ञासायाश्च प्रस्तौति यं समन्वयमद्भुतम् ।।४६।।
आत्मा मे पुलकितस्तेन स्पष्टं निर्दिश भूतले ।
प्रतिगत्य च किं कार्यं येन सिद्धयेत्प्रयोजनम् ।।४७।।

टीका- नारद ने कहा- हे देव ! अपनी इच्छा और मेरी जिज्ञासा का आप जो अद्भुत समन्वय प्रस्तुत कर रहे हैं, उससे मेरी अन्तरात्मा पुलकित हो रही है। कृपया स्पष्ट निर्देश कीजिए कि पुन: मृत्युलोक में वापस जाकर मुझे क्या करना चाहिए, ताकि आपका प्रयोजन पूर्ण हो ।।४६-४७।।

उवाच भगवांस्तात ! दिग्भ्रान्तान् दर्शयाग्रत: ।
यथार्थताया आलोकं सन्मार्गे गन्तुमेव च ।।४८।।
तर्कतथ्ययुतं मार्गं त्वं प्रदर्शय साम्प्रतम् ।
उपायं च द्वितीयं तं तदाधारसमुद्भवम् ।।४९।।
उत्साहं सरले कार्ये योजयाभ्यस्ततां यत: ।
परिचितिं युगधर्मे च गच्छेयुर्मानवा: समे ।।५०।।
चरणौ द्वाविमौ पूर्णावाधारं प्रगतेर्मम ।
अवतारक्रियाकर्त्ता चेतना सा युगान्तरा ।।५१।।

टीका- भगवान् बोले- हे तात ! सर्व प्रथम दिग्भ्रान्तों को यथार्थता का आलोक दिखाना और सन्मार्ग अपनाने के लिए तर्क और तथ्यों सहित मार्गदर्शन करना है, दूसरा उपाय इस आधार पर उभरे हुए उत्साह को किसी सरल कार्यक्रम में जुटा देना है, ताकि युग धर्म से वे परिचित और अभ्यस्त हो सकें। इन दो चरणों के उठ जाने पर आगे की प्रगति का आधार मेरी अवतरण प्रक्रिया-युगान्तरीय चेतना स्वयमेव सम्पन्न कर लेगी ।।४८-५१।।

व्याख्या- युग परिवर्तन का कार्य योजनाबद्ध ढंग से ही किया जा सकता है। सबसे पहले तो सुधारकों-अग्रगामियों को अपने सहायक ढूँढ़ने के लिये निकलना होता है- उन्हें उँगली पकड़कर चलना-सिखाना पड़ता है। जब वे अपनी दिशा समझ लेते हैं, उच्चस्तरीय पथ पर चलने के लिये वे सहमत हो जाते हैं, तब उन्हें सुनियोजित कार्य पद्धति समझाकर उनके उत्साह को क्रियारूप देना होता है। यही नीति हर अवतार की रही है। इतना बन पड़ने पर शेष कार्य वह चेतन-सत्ता स्वयं कर लेती है।

समस्या तब उठ खड़ी होती है, जब व्यक्ति ईश्वरीय-सत्ता की इच्छा-आकांक्षा जानते हुए भी व्यामोह में फँसे दिशा भूले की तरह जीवन बिताते हैं अथवा उद्देश्य को जानते हुए भी अपने उत्साह को सही नियोजित नहीं कर पाते।

नारद उवाच-

पप्रच्छ नारदो भगवन् स्पष्टतो विस्तरादपि ।
किं नु कार्यं मया ब्रूहि मानवै: कारयामि किम् ।।५२।।

श्री भगवानुवाच-

उवाच भगवाँस्तात ! हिमाच्छादित एकदा ।
उत्तराखण्ड संशोभिन्यारण्यक शुभस्थले ।।५३।।
तत्त्वावधाने प्राज्ञस्य पिप्पलादस्य नारद ।
प्रज्ञासत्रसमारम्भो जात: पञ्चदिनात्मक: ।।५४।।
अष्टावक्र: श्वेतकेतुरुद्दालकश्रृङ्गिणौ ।
दुर्वासाश्चेति जिज्ञासा: पञ्चाकुर्वन् क्रमादिमे ।।५५।।
तत्वदर्शी महाप्राज्ञस्तेषां संमुख एव स: ।
संक्षिप्तं ब्रह्मविद्याया: प्रास्तौत्सारं सममृषि: ।।५६।।
सर्वसाधारणोऽप्येनं ज्ञातुं बोधयितुं क्षम: ।
इह लोके परे चायमृद्धिसिद्धिप्रद: स्मृत: ।।५७।।
तं प्रसङ्गं, स्मारयामि ध्यानेन हृदये कुरु ।
प्रज्ञापुराणरूपे च योजितं यत्नतस्तु तम् ।।५८।।
वरिष्ठानामात्मानं तु पूर्वं साधारणस्य च ।
हृदयङ्गममेनं,त्वं कारयाद्य महामुने ।।५९।।

टीका- नारद ने पूछा-"भगवन् ! और भी स्पष्ट करें कि क्या करना और क्या कराना है।" भगवान् बोले-"हे तात ! एक बार उत्तराखण्ड के हिमाच्छादित एक शुभ आरण्यक में महाप्राज्ञ पिप्पलाद के तत्वावधान में पाँच दिवसीय 'प्रज्ञा-सत्र' हुआ था। उसमें क्रमश: अष्टावक्र,श्वेतकेतु शृंगी,उद्दालक और दुर्वासा ने पाँच जिज्ञासाएँ की थीं। तत्वदर्शी महाप्राज्ञ ऋषि ने उनके समक्ष ब्रह्मविद्या का सार संक्षेप प्रस्तुत किया था, वह सर्वसाधारण के समझने-समझाने योग्य है, साथ ही लोक-परलोक में उभयपक्षीय ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रदान

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाला भी है। उस प्रसंग का तुम्हें स्मरण दिलाता हूँ। ध्यान-मग्न होकर हृदयंगम करो, सुनियोजित करो और'प्रज्ञा पुराण' के रूप में सर्वप्रथम वरिष्ठ आत्माओं को-तदुपरान्त सर्वसाधारण को हृदयगंम कराओ"।।५२-५९।।

व्याख्या- अध्यात्म विज्ञान के व्यावहारिक शिक्षण की विस्तृत कार्य प्रणाली जानने को उत्सुक देवर्षि को भगवान् एक विशिष्ट प्रज्ञासत्र का स्मरण दिलाते हैं। यह ऋषि प्रणाली है कि किसी भी तथ्य का समर्थन-प्रतिपादन प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा किया जाय। ध्यान मग्न नारद को भगवान ने ज्ञान सत्रों में हुई चर्चा को संक्षेप में अपनी परावाणी-विचार सम्प्रेषण-द्वारा समझा दिया एवं अग्रदूतों तक इसे पहुँचाने-उन्हें इस ज्ञान आलोक से प्रकाशित करने का निर्देश भी दिया।

समाधिस्थो नारदोऽभूत्तस्मिन्नेव क्षणे प्रभुः ।
प्रज्ञापुराणमेतत्तद्हृदयस्थमकारयत् ।। ६०।।
उवाच च महामेघमण्डलीव समन्ततः ।
कुरु त्वं मूसलाधारं वर्षां तां युगचेतनाम् ।। ६१।।
अनास्थाऽऽतपशुष्कां च महर्षे धर्मधारणाम् ।
जीवयैतदिदं कार्यं प्रथमं ते व्यवस्थितम् ।। ६२।।

टीका- नारद समाधिस्थ हो गये। भगवान् ने उस समय प्रज्ञापुराण कण्ठस्थ करा दिया और कहा। इसे युगचेतना की वर्षा मेघों की तरह सर्वत्र बरसाओ। अनास्था के आतप से सूखी धर्म-धारणा को फिर से हरी-भरी बना दो। तुम्हारा प्रथम काम यही है।।६०-६२।।

व्याख्या- बादलों का काम है बरसना तथा जल अभिसिंचन द्वारा सारी विश्व मानवता को तृप्त करना जहाँ अकाल पड़ा हो वहाँ वर्षा की थोड़ी सी बूँदें गिरते ही चारों ओर प्रसन्नता का साम्राज्य छा जाता है-कुछ ही समय में हरियाली फैली दिखाई पड़ती है। समुद्र से उठने वाली भाप जब बादल बनती है तो उसका एक ही उद्देश्य रहता है-वनस्पति जगत तथा सारे जीव जगत में प्राण भर देना।

चेतना विस्तार की यही भूमिका अवतार, महा-मानव,अग्रदूत,जागृत आत्माएँ निभाती हैं। उनका उद्देश्य भी यही होता है। आस्था संकट का जो मूल उद्गम है-अंतःकरण,वहाँ वे व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुँचकर उसके अन्दर हलचल मचाते हैं। मरुस्थल बन गये अंतःस्थल में संवेदनाएँ उभारते हैं, आदर्शवादी उत्कृष्टता के प्रति समर्पण की भावना जगाते हैं, अवतार की प्रक्रिया यही है। भगवान ने नारद ऋषि को वही काम सौंपा ताकि प्रस्तुत परिस्थितियों में प्रव्रज्या द्वारा वे जन-जन में प्रज्ञावतार की प्रेरणा भर सकें। परिवर्तन-विचारणा में परिष्कार तथा संवेदनाओं में उत्कृष्टता परायण उभार की ही परिणति है। युग परिवर्तन की प्रक्रिया जो अगले दिनों सम्पादित होने जा रही है,उसका प्रथम चरण यही है।

महाकाल ने हमेशा बीज रूप में उपयुक्त पात्र को यह संदेश दिया है-वही कालान्तर में फला और मेघ की भूमिका उसने निभाई है। इसी तथ्य को रामायणकार ने इस तरह समझाया है-

राम सिंधु घन सज्जन धीरा,
चन्दन तरु हरि सन्तसमीरा।

अर्थात्-भगवान समुद्र हैं तो सज्जन व्यक्ति बादल के समान। चन्दन वृक्ष यदि भगवान हैं तो सन्त पवन की तरह मलयज सुगन्ध को फैलाने वाले। भगवान से अर्थ है आदर्शवादिता का समुच्चय। मेघ व पवन की ही भाँति संत व सज्जन उस युगचेतना को विस्तारित करते हैं, असंख्यों को धन्य बनाते हैं।

उवाच नारदो देव ! वाच्यः श्राव्यस्त्वयं मतः ।
ज्ञानपक्षः पूरकं तं कर्मपक्षं विवोधय ।। ६३।।
कर्त्तव्यं यद्यदन्यैश्चाप्यनुष्ठेयं, समग्रता ।
उत्पद्यते द्वयोर्ज्ञानकर्मणोस्तु समन्वयात् ।। ६४।।

टीका- नारद बोले-'यह ज्ञान पक्ष हुआ। जिसे कहा या सुना जाता है। अब इसका पूरक कर्मपक्ष बताइये, जो करना और कराना पड़ेगा।' ज्ञान और कर्म के समन्वय से ही समग्रता उत्पन्न होती है ।।६३-६४।।

व्याख्या- कोई सिद्धान्त अपने आप में अकेला पूर्ण नहीं। प्रयोगपक्ष जाने बिना सारा ज्ञान अधूरा है। क्रिया पक्ष, ज्ञान पक्ष का पूरक है। ब्रह्म ज्ञान-तत्व चिन्तन अपनी जगह है, अनिवार्य भी है, परन्तु उसका व्यवहार पक्ष जिसे साधना-तपश्चर्या के रूप में जाने बिना वह मात्र मानसिक श्रम और ज्ञान वृद्धि तक ही सीमित रहेगा, उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। चिकित्सकों को अध्ययन भी करना होता है एवं व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करना होता है। यह समग्रता लाये बिना वे चिकित्सक की पात्रता-पदवी नहीं पाते।

ऐसा अधूरापन अध्यात्म क्षेत्र में बड़े व्यापक रूप में देखने को मिलता है। ब्रह्म की, सद्गुणों की,आदर्शवादिता की, चर्चा तो काफी लोग करते पाये जाते हैं परन्तु उसे व्यवहार में उतारने,जीवन का अंग बना लेने वाले कम ही होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उवाच विष्णुर्ज्ञानार्थं कथा प्रज्ञापुराणजा ।
विवेच्या, कर्मणे प्रज्ञाभियानस्य विधिष्वलम् ।। ६५।।
विधयोऽस्य च स्वीकर्तुं प्रगल्भान्प्रेरयानिशम् ।
युगस्य सृजने सर्वे सहयोगं ददत्वलम् ।। ६६।।
यथातथा विवोध्यास्ते भावुका अंशदायिनः ।
समयस्य च दातारः सोत्साहा उत्स्फुरन्तुयत् ।। ६७।।
संयुक्तशक्त्या श्रेष्ठानां दुर्गावतरणोज्ज्वला ।
प्रचण्डता समुत्पन्ना समस्या दूरयिष्यति ।। ६८।।

टीका- विष्णु भगवान् ने कहा-ज्ञान के लिए प्रज्ञा पुराण का कथा विवेचन उचित होगा और कर्म के लिए प्रज्ञा अभियान की बहुमुखी गतिविधियों में से प्रगल्भों को उन्हें अपनाने की प्रेरणा निरन्तर देनी चाहिए। युग सृजन में सहयोग करने के लिए सभी भावनाशीलों को समय दान, अंशदान की उमंग उभारनी चाहिए। वरिष्ठों की इस संयुक्त शक्ति से ही दुर्गावतरण जैसी प्रचण्डता उत्पन्न होगी और युग समस्याओं के निराकरण में समर्थ होगी ।।६५-६८।।

व्याख्या- युग चेतना को व्यापक करने के बाद कर्म में प्रवृत्त होने के लिये भगवान प्रगल्भों की चर्चा करते हैं। प्रगल्भ अर्थात् साहसी। ऐसे शूरवीर जो सत्प्रयोजनों के लिये कमर कस कर तैयार हो जायें।

अवतारों में उच्चस्तरीय वे ही माने जाते हैं जिनमें सन्त की पवित्रता,सुधारक की प्रखरता के साथ ऋषियों जैसी तत्व दृष्टि होती है। वे उत्कृष्टता को समर्पित होते हैं। अहंता के परिपोषण में लगने वाली शक्ति समर्पण के बाद उनके पास इतनी अधिक मात्रा में बच जाती है जिसके आधार पर सामान्य व्यक्ति भी असामान्य काम कर दिखाते हैं। भगवान कृष्ण,राम, ईसा, दयानन्द, गाँधी, गुरुगोविन्दसिंह, बुद्ध, मीरा, शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास ऐसे जीते-जागते प्रमाणों में से हैं जिन्होंने प्रतिकूलता से जूझने का साहस दिखाया व सत्प्रयोजन में लगने के लिए असंख्यों को प्रेरित किया। ऐसे व्यक्तियों का संगठन तो वह प्रचण्ड चमत्कार कर दिखाता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

धर्मस्य चेतनां भूयो जीवितां कर्तुमद्य तु ।
अधिष्ठात्रीं युगस्यास्य महाप्रज्ञामृतम्भराम् ।। ६९।।
गायत्रीं लोकचित्ते तां कुरु पूर्णप्रतिष्ठिताम् ।
पराक्रमं च प्रखरं कर्तुं सर्वत्र नारद ।। ७०।।
पवित्रतोदारतां तु यज्ञजां च प्रचण्डताम् ।
प्रखरां कर्तुमेवाद्यानिवार्यं मन्यतां त्वया ।। ७१।।

टीका- आज धर्मचेतना को पुनर्जीवित करने के लिए इस युग की अधिष्ठात्री महाप्रज्ञा ऋतम्भरा गायत्री को लोकमानस में प्रतिष्ठित किया जाय। हे नारद ! पराक्रम की प्रखरता के लिए सर्वत्र यज्ञीय पवित्रता, उदारता एवं प्रचंडता को प्रखर करने की आवश्यकता है ।।६९-७१।।

व्याख्या- महाप्रज्ञा को अध्यात्म की भाषा में गायत्री कहते हैं। इसके दो पक्ष हैं-एक दर्शन अर्थात् तत्वचिंतन अध्यात्म, दूसरा व्यवहार अर्थात् शालीनता युक्त आचरण-धर्म। महाप्रज्ञा की परिणति अन्तः क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने पर साधक के व्यक्तित्व में आमूल-चूल परिवर्तन ला देती है। आत्मिक विभूतियाँ-ऋद्धियाँ तथा लोक व्यवहार में प्राप्त सम्पदा-सिद्धियाँ इसी के तत्व चिंतन का प्रतिफल है।

प्रज्ञापीठस्वरूपेषु युगदेवालया भुवि ।
भवन्तु तत एतासां सृज्यानामथ नारद ।। ७२।।
सूत्र संस्कारयोग्यानां प्रवृत्तीनां च सञ्चलेत् ।
नृणां येन स्वरूपं च भविष्यत्संस्कृतं भवेत् ।। ७३।।
सहैव पृष्ठभूमिश्च परिवर्तनहेतवे ।
निर्मिता स्याद् युगस्यास्तु संधिकालस्तु विंशतिः।।७४।।
वर्षाणां, सुप्रभातस्य वेलाऽऽवर्तन हेतुका ।
अवाञ्छनीयताग्लानिः सदाशयविनिर्मितिः ।। ७५।।

टीका- हे नारद ! युग देवालय, प्रज्ञापीठों के रूप में बनें। वहाँ से सृजनात्मक और सुधारात्मक सभी प्रवृत्तियों का सूत्र-संचालन हो, जिससे मनुष्य का स्वरूप एवं भविष्य सुधरे, साथ ही महान् परिवर्तन के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि भी बनने लगे। युग-सन्धि के बीस वर्ष प्रभात की परिवर्तन वेला की तरह हैं। इसमें अवाञ्छनीयता की गलाई और सदाशयता की ढलाई होगी ।।७२-७५।।

व्याख्या- नये युग में इन्हीं प्रज्ञा की अधिष्ठात्री गायत्री के मन्दिर और यज्ञ शालाएँ बननी चाहिए उन्हीं के माध्यम से रचनात्मक कार्य चलने चाहिए। महामना मदनमोहन मालवीय कहा करते थे-

ग्रामे ग्रामे सभाकार्याः ग्रामेग्रामे कथाशुभाः ।
पाठशाला, मल्लशाला, प्रतिपर्वा महोत्सवाः ।।

अर्थात्- गाँव-गाँव ऐसे देवमन्दिर रहें जहाँ से न्याय, पर्व-संस्कार मनाने,विद्याध्ययन,आरोग्य सम्वर्धन के क्रिया कृत्य चलते रहें, केवल मन्दिरों से काम चलेगा नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आद्य शंकराचार्य ने जब मान्धाता से यही बात कही तो उन्होंने चार धामों की स्थापना के लिये अपना अक्षय भण्डार खोल दिया। इन तीर्थों के माध्यम से धर्म-धारणा विस्तार की कितनी बड़ी सेवा हुई है-इसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

मन्दिर मात्र पलायनवादी श्रद्धा नहीं, कर्म योगी निष्ठा जगायें तो ही उनकी सार्थकता है।

जब इन देवालयों से-जनजागृति केन्द्रों के माध्यम से सत्प्रवृत्ति संवर्धन की गतिविधियाँ चलने लगेंगी, तो जन-जन में प्रखरता का उदय होगा तथा परिवर्त्तन के दृश्य सुनिश्चित रूप से दिखाई पड़ने लगेंगे। प्रस्तुत समय सन्धि वेला का है। आज संसार के सभी विद्वान, ज्योतिर्विद, अतींद्रिय दृष्टा इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि युग परिवर्तन का समय आ पहुँचा। परिस्थितियों की विषमता अपनी चरम सीमा पर है। ऐसे में इन युग देवालयों की भूमिका अपनी जगह बड़ी महत्त्वपूर्ण है। सूरदास ने लिखा है-

एक सहस्त्र नौ सौ के ऊपर ऐसौ योग परै ।
सहस्त्र वर्ष लौंसतयुग बीते धर्म की बेलि चढ़े ।।

अर्थात् १९वीं शताब्दी के अन्त में ऐसा ही परिवर्तन होगा जिसके बाद सहस्त्रों वर्षों के लिये धर्म का सुख-शान्ति का राज स्थापित होगा।

संक्रमण वेला में किस प्रकार की परिस्थितियाँ बनतीं और कैसे घटनाक्रम घटित होते हैं इसका उल्लेख महाभारत के वनपर्व में इस प्रकार आता है-

ततस्तु मूले संघाते वर्तमाने युग क्षये ।
यदा चन्द्रस्यसूर्यस्यतथा तस्य वृहस्पतिः ।।
एकराशौ समेष्यन्ति प्रयत्स्यति तदा कृतम् ।
कालवर्षी च पर्जन्योनक्षत्राणि शुभानि च ।।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं भविष्यति निरामयम् ।।

अर्थात्-जब एक युग समाप्त होकर दूसरे युग का प्रारम्भ होने को होता है, तब संसार में संघर्ष और तीव्र हलचल उत्पन्न हो जाती है। जब चन्द्र,सूर्य, वृहस्पति तथा पुष्य नक्षत्र एक राशि पर जायेंगे तब सतयुग का शुभारम्भ होगा। इसके बाद शुभ नक्षत्रों की कृपा वर्षा होती है। पदार्थों की वृद्धि से सुख-समृद्धि बढ़ती है। लोग स्वस्थ और प्रसन्न होने लगते हैं।

इस प्रकार का ग्रह योग अभी कुछ समय पहले ही आ चुका है। अन्यान्य गणनाओं के आधार पर भी यही समय है।

विशिष्ट अवसरों को आपत्तिकाल कहते हैं और उन दिनों आपत्ति धर्म निभाने की आवश्यकता पड़ती है। अग्निकाण्ड, दुर्घटना, दुर्भिक्ष, बाढ़, भूकम्प, युद्ध, महामारी जैसे अवसरों पर सामान्य कार्य छोड़कर भी सहायता के लिए दौड़ना पड़ता है। छप्पर उठाने, धान रोपने, शादी-खुशी में साथ रहने, सत्प्रयोजनों का समर्थन करने के लिए भी निजी काम छोड़कर उन प्रयोजनों में हाथ बँटाना आवश्यक होता है। युग सन्धि में जागरूकों को युग धर्म निभाना चाहिए। व्यक्तिगत लोभ, मोह को गौण रखकर विश्व संकट की इन घड़ियों में उच्चस्तरीय कर्त्तव्यों के परिपालन को प्रमुख प्राथमिकता देनी चाहिए। यही है परिवर्तन की इस प्रभात वेला में दिव्य प्रेरणा, जिसे अपनाने में हर दृष्टि से हर किसी का कल्याण है।

विभीषिकास्तु विश्वस्य दूरीकर्तुं पुनर्भुवि ।
स्वर्ग्यवातवृतिं कर्तुं क्षमानां देवतात्मनाम् ।। ७६।।
मानवानां तु सम्भूतिः कठिना किन्तु तत्र ये ।
योगदानरतास्तेषां श्रेयः सौभाग्यसंभवः ।। ७७।।

टीका- विश्व-विभीषिकाओं को निरस्त करने और धरती पर पुनः स्वर्गीय वातावरण उत्पन्न कर सकने वाले देवमानवों का सृजन करने का कार्य कठिन तो है, पर उसमें योगदान देने वालों को श्रेय-सौभाग्य भी कम न मिलेगा ।। ७६-७७।।

व्याख्या- दैवी प्रकोपों विभीषिकाओं के मूल में जितना दोष भौतिक रूप से मानव द्वारा उससे उद्धत रूप से छेड़छाड़ करने का है उससे भी अधिक भ्रष्ट चिन्तन और निकृष्ट कर्तव्य का आश्रय लेने वाली मानवी प्रकृति का है। नियति इसी से रुष्ट होती है एवं मानव जाति को सामूहिक रूप से विभीषिकाओं के रूप में उभर कर *त्रास* देती है।

परिवर्तन की घड़ियाँ असाधारण उलट-पुलट की होती हैं। असुरता जीवनमरण की लड़ाई लड़ती है और देवत्व उसे पदच्युत कर धरती पर स्वर्ग लाने के दुष्कर कार्य में कई अवरोधों का सामना करता है। यह कार्य कठिन तो है पर असम्भव नहीं। भूतकाल में भी ऐसे अवसरों पर यही दृश्य उपस्थित हुए हैं जैसे कि इन दिनों सामने हैं। ऐसे अवसरों पर ही जो देवमानव आगे आते हैं स्वयं श्रेय पाकर धन्य बनते हैं, सारी मानवता को कृतार्थ कर देते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञावतार की दिव्यसत्ता ही प्रमुख है और इन दिनों वही युग परिवर्तन के सरंजाम जुटा रही है। तो भी समय कर्तृत्त्व का वहन उसे अकेले नहीं करना है। सेनापति अकेला नहीं लड़ता, सैनिक भी साथ चलते हैं। हाथ अकेला पुरुषार्थ नहीं करता, दस अँगुलियाँ व चौबीस पोर भी अपनी क्षमता के अनुरूप अपने ढंग से उस कर्म कौशल में जुड़े रहते हैं।

जागृतात्मवतामेतं सन्देशं प्रापयास्तु मे ।
नोपेक्ष्योऽनुपमः कालः क्रियतां साहसं महत् ।। ७८ ।।
महान्तं प्रतिफलं लब्ध्वा कृतकृत्या भवन्तु ते ।
जन्मन इदमेवास्ति फलमुद्देश्यरूपकम् ।। ७९ ।।
अग्रगामिन एवात्र प्रज्ञासंस्थान निर्मितौ ।
प्रज्ञाभियान सूत्राणां योग्याः संचालने सदा ।। ८० ।।

टीका- अस्तु, जागृत आत्माओं तक मेरा यह सन्देश पहुँचाना कि वे इस अनुपम अवसर की उपेक्षा न करें, बड़ा साहस करें, बड़ा प्रतिफल अर्जित करके कृतकृत्य बनें। यही उनके जन्म का उद्देश्य है। जो अग्रगामी हों उन्हें प्रज्ञा संस्थानों के निर्माण तथा प्रज्ञा-अभियान के सूत्र सञ्चालन में जुटाना ।। ७८-८० ।।

व्याख्या- जागृत आत्माएँ कभी अवसर नहीं चूकतीं। वे जिस उद्देश्य को लेकर अवतरित होती हैं, उसे पूरा किये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। जागृत वे जो अदृश्य जगत में बह रहे प्रकृति प्रवाह को पहचानते हैं, परिवर्तन में सहायक बनते हैं। दूसरे जब आगे चलकर उन परिणामों को देखते हैं तो पछताते हैं कि हमने अवसर की उपेक्षा क्यों कर दी।

साहासादर्शरूपा ये चेतनामुच्चभूमिकाम् ।
निजेन बलिदानेन त्यागेनोद्भावयन्ति ये ।। ८१ ।।
आत्मसन्तोषमासाद्य लोकसम्मानमेव च ।
दैवानुग्रहलाभं च कृतकृत्या भवन्ति ते ।। ८२ ।।

टीका- आदर्श और साहस के धनी अपने त्याग-बलिदान से उच्चस्तरीय चेतना उत्पन्न करते हैं और आत्म-सन्तोष, लोक-सम्मान तथा दैवी-अनुग्रह के तीन लाभ एक साथ प्राप्त करते तथा धन्य बनते हैं ।।८१-८२ ।।

व्याख्या- नव सृजन में अपना सब कुछ लुटा देने वाले कभी घाटे में नहीं रहते। भगवान के काम में लग जाने वाले तीन असामान्य लाभ सहज पा लेते हैं जो एक दूसरे की प्रतिक्रियाएँ ही हैं । जागृत आत्माएँ आदर्शवादिता अपनाकर सत्साहस दिखाती हैं और अंतः में सन्तोष, बहिरंग में सम्मान सहयोग पाती हैं और ऐसों पर ही दैवी अनुदान बरसते हैं,जो उन्हें कृतकृत्य कर जाते हैं।

पेड़ अपने पत्ते गिराते, जमीन को खाद देते और बदले में जड़ों के लिए उपयुक्त खुराक उपलब्ध करते हैं। फल-फूलों से दूसरों को लाभान्वित करते हैं। यह परमार्थ व्रत आज की चिन्तन धारा के अनुसार तो मूर्खता ही ठहराया जायगा और व्यंग्य उपहास का ही कारण बनेगा। किन्तु पर्यवेक्षकों को इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि विश्व-व्यवस्था में ऐसी परिपूर्ण गुंजायश है कि परमार्थ परायणों को लोक सम्मान ही नहीं दैवी अनुदान भी अजस्र परिमाण में मिलते रहें । पेड़ों को बार-बार नये पल्लव और नये फल-फूल देते रहने में प्रकृति कोताही नहीं बरतती। उदारमना घाटा उठाते लगते भर हैं वस्तुतः वे जो देते हैं उसे ब्याज समेत वसूल कर लेते हैं।

इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित महामानवों में से प्रत्येक ने परमार्थ-परायणता की दूरदर्शितापूर्ण नीति अपनाई है। वे बीज की तरह गले और वृक्ष की तरह फले हैं। इस मार्ग पर चलने के लिए उन्हें प्राथमिक पराक्रम यह करना पड़ा कि संचित कुसंस्कारों की पशु-प्रवृत्तियों से जूझे और उन्हें सुसंस्कारी बनने के लिए पूरी तरह दबाया दबोचा और तब छोड़ा जब वे चीं बोल गईं और संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊँचे उठकर आदर्शवादी परमार्थ प्रवृत्ति को अंगीकार करने के लिए सहमत हो गईं।

भगवन्तं ततो नत्वा वांछा साम्यं विचार्य च ।
प्रज्ञापुराणसन्देशमुपदेष्टुं जनं जनम् ।। ८३ ।।
जागृतात्मन प्रज्ञाभियान मार्गे नियोजितुम् ।
संकल्प्य धरणीमायात् प्रसन्नहृदयस्तदा ।। ८४ ।।
सप्तर्षीणां तपोभूमौ विरम्याथ गतक्लमः ।
युगान्तरचिते रूपे विश्वव्यापी बभूव च ।। ८५ ।।

टीका- नारद ने भगवान को नमन किया और उनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिलाते हुए जन-जन को 'प्रज्ञा पुराण' का सन्देश सुनाने जागृत-आत्माओं को प्रज्ञा-अभियान प्रयासों में लगाने का संकल्प लेकर, प्रसन्न हृदय धरती पर उतरे। सप्त ऋषियों की तपोभूमि में थोड़ा विराम-विश्राम करके वे युगान्तरीय चेतना के रूप में विश्वव्यापी बन गये ।। ८३-८५ ।।

व्याख्या- भक्त की स्वयं की कोई इच्छा नहीं होती। वह भगवान का काम करने का संकल्प लेकर जन्मता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है व अपने 'स्व' को चेतन शक्ति में घुला देता है। देवर्षि नारद ने अपनी इच्छा को भगवान की प्रेरणा के साथ मिलाया। एक बार नारद स्वयं मोह में पड़े थे और अपने अहंकार के मद में प्रभु प्रेरणा को समझने में असफल रहे। भगवान ने उनका मोह भंग किया, उन्हें वास्तविकता से अवगत कराया तब से उन्होंने संकल्प ले लिया कि अब आगे से कभी भी अपनी इच्छा को प्रभु से अलग नहीं रखेंगे।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री विष्णु-नारद-सम्वादे "लोककल्याणजिज्ञासा" इति प्रकरणो नाम ।। प्रथमोऽध्यायः ।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

अध्यात्म दर्शन प्रकरण

एकदा तु हिमाच्छन्ने *ह्युत्तराखण्डमण्डने* ।
अभयारण्यके ताण्ड्यशमीकोद्दालकास्तथा ।। १।।
ऋषयः ऐतरेयश्च ब्रह्मविद्या विचक्षणाः ।
तत्वजिज्ञासवो ब्रह्मविद्यायाः संगताः समे ।। २।।
तत्वचर्चारतानां तु प्रश्न एक उपस्थितः ।
महत्वपूर्ण स प्रश्नः सर्वेषां मन आहरत् ।। ३।।
पिप्पलादं पप्रच्छातो महाप्राज्ञमृषीश्वरम् ।
अष्टावक्रो ब्रह्मज्ञानी लोककल्याणहेतवे ।। ४।।

टीका- हिमाच्छादित उत्तराखण्ड के अभयारण्यक में एक बार ताण्डय,शमीक, उद्दालक तथा ऐतरेय आदि ऋषि ब्रह्म विद्या के गहन तत्व पर विचार करने के उद्देश्य से एकत्रित हुए। तत्व-दर्शन के अनेकानेक प्रसंगों पर विचार करते-करते एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आया। उसकी महत्ता ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। महाप्राज्ञ ऋषि पिप्पलाद से, लोक-कल्याण की दृष्टि से ब्रह्मज्ञानी अष्टावक्र ने पूछा ।। १-४।।

व्याख्या- ऋषि धर्मतन्त्र के प्रहरी माने जाते हैं, सदैव जागरूक एवं सामयिक मानवी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने व उन्हें जन-जन तक पहुँचाने वाले।

ब्रह्मज्ञान को जन-मानस तक पहुँचाने के उद्देश्य से ही कुम्भ मेलों एवं अन्य पर्वों पर ऋषिगण एकत्र होते व परस्पर परामर्श द्वारा दैनन्दिन समस्याओं का हल निकालते थे। सूत-शौनक, शिवजी-काकभुशुण्डि, जनक याज्ञवल्क्य, भरद्वाज-याज्ञवल्क्य सम्वाद इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

ऐसे समागम-सत्संग-ज्ञान गोष्ठियों में सदा-सदा से महामानवों के कृत्यों-आचरण को आधार बनाकर जीवन-क्रम की रूपरेखा बनाई जाती रही है। परस्पर चर्चा में मात्र ब्रह्म विद्या के गूढ़ तात्विक विवेचन को ही स्थान न देकर ऋषिगण हर ऐसी जिज्ञासा में रुचि लेते थे जो उस समय की परिस्थितियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हों। भले वे साधारण जन-मानस से सम्बन्धित चर्चा क्यों न हो, हर मनीषी उसमें उतनी ही रुचि रखता था, जितनी कि मुक्ति, योग, साधना जैसे विषयों में।

अष्टावक्र उवाच-

ईश्वरः भूपतिः साक्षाद् ब्रह्माण्डस्य महामुने ।
मानवं राजपुत्रं स्वं कर्तुं सर्वगुणान्वितम् ।। ५।।
विभूतीः स्वा अदाद् बीजरूपे सर्वा मुदान्वितः ।
सृष्टि संचालकोऽप्येष श्रेयसा रहितः कथम् ?।। ६।।

टीका- ब्रह्माण्ड के सम्राट् ईश्वर ने मनुष्य को सर्वगुण सम्पन्न उत्तराधिकारी राजकुमार बनाया। अपनी समस्त विभूतियाँ उसे बीजरूप में प्रसन्नतापूर्वक प्रदान कीं। उसे सृष्टि सञ्चालन में सहयोगी बन सकने के योग्य बनाया, फिर भी वह उस श्रेय से-गौरव से-वञ्चित क्यों रहता है ? ।। ५-६।।

व्याख्या- ब्रह्मज्ञानी अष्टावक्र की जिज्ञासा मानव मात्र से सम्बन्धित है। नित्य देखने में आता है ईश्वर का मुकुटमणि कहलाने वाला,सुर दुर्लभ मानव योनि पाने वाला यह सौभाग्यशाली जीव अपने परम पिता से दो विशेष विभूतियाँ पाने के बावजूद दिग् भ्रान्त हो दीन-हीन जैसा जीवन जीता है। ये दो विभूतियाँ हैं, बीज रूप में ईश्वर के समस्त गुण तथा सृष्टि को सुव्यवस्थित बनाने में उसकी ईश्वर के साथ साझेदार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जैसी भूमिका। बीज फलता है तब वृक्ष का स्वरूप लेता है। इसका बहिरंग स्वरूप उसी जाति का होता है जिस जाति का वह स्वयं है। लघु से महान्, अणु से विभु बनने की महत् सामर्थ्य अपने आपमें एक अलभ्य विरासत है । इसे पाने के लिए उसे न जाने कितनी योनियों में कष्ट भोगना पड़ा।

सहयोग-सहकार भी सुसंचालन के लिए न कि संतुलन को बिगाड़ने के लिए। ऐसे में जब गुण कर्म रूपी बीज भी गलने से इन्कार कर दे एवं मानव संतुलन-व्यवस्था के स्थान पर विग्रह असहयोग करने लगे तो असमंजस होना स्वाभाविक है।

सामर्थ्यन्यूनतायां तु साधनाभाव एव वा ।
प्रतिकूलस्थितौ वापि नरस्त्वसफलो भवेत् ।। ७।।
यत्रैतन्नास्ति तन्नापि सृष्टिरत्नं नरः कथम् ?
दैन्येन ग्लपितेनाथ जीवतीह घृणास्पदः ।। ८।।

टीका- सामर्थ्य की न्यूनता,साधनों का अभाव, प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने पर तो सफल न हो सकने की बात समझ में आती है, किन्तु जहाँ ऐसा कुछ भी न हो, वहाँ मनुष्य जैसा सृष्टि का मुकुटमणि हेयस्तर का जीवन क्यों जिये ? और क्यों घृणास्पद बने ? ।। ७-८।।

व्याख्या- यदि वह सब न होता जिससे मानव समृद्ध-सम्पन्न बन सका है तो मानव के उपरोक्त दो प्रयोजनों सृष्टि उत्पत्ति,सृष्टि संचालन, में असफल रहने की बात स्वीकार्य भी होती, पर ऐसा तो कुछ है नहीं। इसके स्थान पर जन्म देने के बाद उसे तो साधन, सामर्थ्य एवं सहयोगकारी परिस्थितियों का अनुदान भी परम पिता ने उसे दिया है। फिर वह सदैव प्रतिकूलताओं का रोना क्यों रोता है ? यह ब्रह्मज्ञानी जिज्ञासु के लिये एक ऊहापोह बना हुआ है।

सत्ये युगे नराः सर्वे सुसंस्कृतसमुन्नतम् ।
देवजीवनपद्धत्या जीवन्ति स्म, धरामिमाम् ।। ९।।
स्वर्ग्येणैव तु दिव्येन वातावरणकेन ते ।
भरितां विदधानाश्च विचरन्ति, कथं पुनः?।। १०।।
कारणं किं समुत्पन्नं पातगर्ते यथाऽपतन् ।
साम्प्रतीकीं स्थितिं दीनां गताः सर्वेयतो मुने ।। ११।।
दुर्धर्षायां विपत्तौ तु विग्रहे वाप्युपस्थिते ।
उत्पद्यते विवशता नैतदस्ति तु साम्प्रतम् ।। १२।।
सामान्यं दिनचर्यायाः कमश्चलति मानवाः ।
शक्तिसाधनसम्पन्नाः पातगर्ते पतन्ति किम्?।। १३।।

टीका- सतयुग में सभी मनुष्य समुन्नत और सुसंस्कृत स्तर का देव जीवन जीते थे और इस धरती को स्वर्ग जैसे दिव्य वातावरण से भरा-पूरा रखते थे। फिर क्या कारण हुआ जिससे लोग पतन के गर्त में गिरे और आज जैसी दयनीय स्थिति में जा पहुँचे। कोई दुर्धर्ष-विपत्ति-विग्रह आने पर विवशता उत्पन्न हो सकती है, किन्तु सामान्य-क्रम चलते रहने पर भी शक्ति-साधनों से सम्पन्न मनुष्य अधःपतन के गर्त में क्यों गिरते जा रहे हैं ? ।। ९-१३।।

व्याख्या- ऐसी बात नहीं कि जब से मनुष्य को यह जन्म मिला है-सृष्टि की उत्पत्ति व विकास हुआ है-वह हेय स्तर का ही जीवन जीता आया है। मानव सतयुग में सभ्य-सुसंस्कृत जीवन भी जी चुका है। श्रेष्ठता की उस ऊँचाई पर पहुँच कर फिर नीचे गिर पड़ना कहाँ तक उचित माना जायेगा ? होना तो यह था कि आज स्थिति सतयुग से भी श्रेष्ठ स्तर की स्वर्गोपम होती। परन्तु ऋषि पाते हैं कि प्रस्तुत परिस्थितियाँ तो नारकीय स्थिति से भी गयी बीती हैं।

उच्चादर्शाय संसृष्टौ मानवो यदि जीवति ।
तिरश्चां प्राणिनां हेयस्तरेण मनसा तथा ।। १४।।
अनात्माचरणं कुर्यात्सृष्टिसन्तुलनं तथा ।
विकुर्याद् महदाश्चर्य चिन्ताया विषयस्तथा ।। १५।।

टीका- उच्च प्रयोजनों के लिए सृजा गया मनुष्य तिर्यक् योनियों में रहने वाले प्राणियों से भी अधिक हेय स्तर की मनःस्थिति रखे, अनात्म आचरण करे और सृष्टि सन्तुलन बिगाड़े तो सचमुच ही यह बड़े आश्चर्य और चिन्ता की बात है ।। १४-१५ ।।

व्याख्या- सोचा तो यह था कि मनुष्य अपने को श्रेष्ठता से जोड़े रहेगा, आज जीवधारियों के लिये एक आदर्श उदाहरण बनेगा पर स्थिति कुछ विचित्र एवं चिन्ताजनक भी है।

विवेक चूड़ामणि में यह स्पष्ट करते हुए कि मनुष्य भ्रष्ट आचरण की ओर कब प्रवृत्त होता है, संकेत करते हुए कहा गया है-

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च ,पञ्चत्वमापुः स्वगुणेनबद्धाः ।
कुरंगमातंगपतंगमीनभृंगा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ।।

अर्थात्-'हरिण,हाथी,पतिंगा, मछली और भौंरा'-ये अपने-अपने स्वभाव के कारण शब्दादि पाँच विषयों में से केवल एक-एक से आसक्त होने के कारण मृत्यु को प्राप्त होते हैं, तो फिर इन पाँचों विषयों से जकड़ा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ, असंयमी पुरुष कैसे बच सकता है। (उसकी तो दुर्गति सुनिश्चित ही है।)

अन्य जीवधारियों के समान यदि मनुष्य भी शिश्नोदर परायण रहकर अपना आचरण व चिंतन बिगाड़ ले तो फिर यह मानना चाहिए कि वह धरती पर इस योनि में अवतरित होकर भी दुर्भाग्यशाली ही बना रहा। आज मानव की उपभोग की ललक व सुख साधना अर्जित करने की एकांगी घुड़दौड़ ने यह भुला दिया कि इस तथा-कथित प्रगति और सभ्यता का सृष्टि संतुलन पर क्या असर पड़ेगा। उच्छृंखल भौतिकवाद अनियन्त्रित दानव की तरह अपने पालने वाले का ही भक्षण कर रहा है। पर्यावरण असंतुलन और अदृश्य जगत में संव्याप्त हाहाकार मानव की स्वयं की संरचना है जो आस्था संकट के रूप में प्रकट हुआ है और जिसकी प्रतिक्रिया विभिन्न विभीषिकाओं के रूप में मानव जाति को भुगतनी पड़ रही है। इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि ऐसे उदाहरण पहले भी हुए हैं।

साश्चर्यस्यासमञ्जस्य कारणं किं भवेदहो ।
न सामान्यं धियामेतज्ज्ञातव्यं तु प्रतीयते ।। १६ ।।
हेतुना सरहस्येन भवितव्यमिह ध्रुवम् ।
हेतुमेनं तु विज्ञातुमिच्छास्माकं प्रजायते ।। १७ ।।
महाप्राज्ञो भवाँस्तत्ववेत्ता कालत्रयस्य च ।
द्रष्टाऽविज्ञातगुह्यानां ज्ञाता ग्रन्थिं विमोचय ।। १८ ।।
इदं ज्ञातुं वयं सर्वे त्वातुराश्च समुत्सुकाः ।
अष्टावक्रस्य जिज्ञासां श्रुत्वा तु ब्रह्मज्ञानिनः ।। १९ ।।
महाप्राज्ञः पिप्पलादः गम्भीरं प्रश्नमन्वभूत् ।
प्रशशंस च प्रश्नेऽस्मिन्नवदच्च ततःस्वयम् ।। २० ।।

टीका- इस आश्चर्य भरे असमंजस का क्या कारण हो सकता है, यह सामान्य बुद्धि की समझ से बाहर की बात है। इसके पीछे कोई रहस्यमय कारण होना चाहिए। इस कारण को जानने की हम सबको बड़ी इच्छा है। आप महाप्राज्ञ हैं, तत्व वेत्ता हैं, त्रिकालदर्शी हैं, अविज्ञात रहस्यों को समझने वाले हैं। कृपया इस गुत्थी को सुलझाइये। हम सब यह जानने के लिए आतुरतापूर्वक इच्छुक हैं। ब्रह्मज्ञानी अष्टावक्र जी की जिज्ञासा सुनकर महाप्राज्ञ पिप्पलाद ने प्रश्न की गम्भीरता अनुभव की। प्रश्न उभारने के लिए उन्हें सराहा और कहा ।। १६-२० ।।

व्याख्या- यदि यह प्रकरण सामान्य चर्चा से सुलझने जैसा होता तो *प्रज्ञासत्र* में इस जिज्ञासा को उठाये जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यह ऋषि-कालीन परम्परा है कि ऐसे असाधारण-मानवी गरिमा से जुड़े प्रश्नों पर तत्वज्ञान के मर्मज्ञ महाप्राज्ञों से समाधान पूछे जाते रहे हैं एवं तदनुसार अदृश्य-सूक्ष्म जगत् में वातावरण बनाया जाता रहा है। जनक एवं याज्ञवल्क्य तथा काकभुशुण्डि एवं गरुड़ सम्वाद भी इसी प्रयोजन से सम्पन्न हुए हैं। सूत शौनक सम्वाद के माध्यम से *आर्ष* ग्रन्थकार ने कथोपकथन से अनेकानेक समस्याएँ उभारी व सुलझाई हैं।

पिप्पलाद उवाच-

महाभाग ! न ते प्रश्नः केवलं दीपयत्यहो ।
अध्यात्मतत्वज्ञानस्य सारतथ्यान्युतापि तु ।। २१ ।।
लोककल्याणकृच्चापि, श्रोष्यन्त्येनं तु ये जनाः ।
सत्यं ज्ञास्यन्ति यास्यन्ति श्रेयो मार्गेऽविपत्तया ।। २२ ।।
भवन्तः सर्व एतस्याः समस्यायास्तु कारणम् ।
समाधानं च शृण्वन्तु सावधानेन चेतसा ।। २३ ।।

टीका- हे महाभाग ! आपका प्रश्न न केवल अध्यात्म तत्वज्ञान के सार तथ्यों पर प्रकाश डालता है, वरन् लोक कल्याण- कारी भी है। जो इस शंका समाधान को सुनेंगे, वे सभी सत्य को समझेंगे, विपत्ति से बचेंगे और श्रेय-पथ पर चल सकने में समर्थ होंगे। आप सब लोग इस समस्या का कारण और समाधान ध्यानपूर्वक सुनें। ।२१-२३ ।।

व्याख्या- महाप्राज्ञ पिप्पलाद प्रश्न की गम्भीरता को अनुभव करते हुए कहते हैं कि ऐसी जिज्ञासा का समाधान हर सुनने वाले को सत्य का बोध कराता है। वस्तुतः सुनते तो अनेकों हैं पर वे अन्दर तक उसमें प्रवेश कर उसे जीवन में कहाँ उतार पाते हैं। सुननेवाले जिज्ञासु वृत्ति के हों, जन कल्याण ही जिनका उद्देश्य हो, वे कथा श्रवण सार्थक कर देते हैं।

भगवान्निर्ममे नृ न्यछक्तिसौविध्य संयुतान् ।
सुविधां तत्र स्वातन्त्र्याच्चयनस्य च संददौ ।। २४ ।।
दिशां धारां जीवनं च प्राप्तुं गतिविधिं तथा ।
स्वतन्त्रमकरोदन्ये प्राणिनः प्रकृतिं श्रिताः ।। २५ ।।

टीका- भगवान् ने मनुष्य को जहाँ शक्ति और सुविधा से भरपूर बनाया वहाँ उसे एक विशेष सुविधा स्वतन्त्र चयन करने की भी दी है। अपनी दिशा धारा, जीवन-क्रम और गति-विधि अपनी इच्छानुसार अपनाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की छूट दी। अन्य सभी प्राणी तो प्रकृति का अनुसरण भर कर पाते हैं ।।२४-२५।।

व्याख्या- मनुष्य शक्ति साधन सम्पन्न है, इतना कि जितने सृष्टि के अन्य प्राणी नहीं। शरीर बल तो उनके पास भी है पर बुद्धि कौशल तथा अपना मार्ग स्वयं चुनने की छूट ने उसे विशिष्ट विभूति सम्पन्न जीव बना दिया है। इस स्वतन्त्र चयन में भगवान भी कभी हस्तक्षेप नहीं करते।

अस्या: स्वतन्त्रतायास्तूपयोगं क: कथं मुने ।
करोति संमुखे सेयं परीक्षा पद्धति:स्थिता ।। २६।।

टीका- हे मुने ! इस स्वतन्त्रता का कौन किस प्रकार उपयोग करता है, यही परीक्षा-पद्धति हर मनुष्य के सामने है।।२६।।

व्याख्या- विधाता ने मनुष्य को विभूतियाँ तो दे दीं पर साथ ही यह अधिकार भी कि वह उनका जैसा चाहे वैसा उपयोग करे। पर यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस चयन की छूट का दुरुपयोग जो करता है वह दुर्गति को प्राप्त होता है। दूसरी ओर अपना लक्ष्य जानते हुए जो मानवोचित गरिमा का निर्वाह कर सुनिश्चित योजना बनाकर जीवन व्यतीत करते हैं, अपने कल्याण व परमार्थ को साथ जोड़ते हुए जीवन शकट खींचते हैं, वे सद्गति को प्राप्त होते हैं। यह एक चुनौती हर व्यक्ति के समक्ष है कि वह श्रेय पथ को स्वीकार करे अथवा प्रेय को।

विस्मरन्ति स्वरूपं ये त्यक्ता चोत्तरदायिता ।
यै:, पतन्ति तु पातस्य गर्ते ते निश्चितं नरा:।। २७।।

टीका- जो आत्म-स्वरूप को भूलते और उत्तरदायित्वों से विमुख होते हैं, वे पतन के गर्त में गिरते हैं।।२७।।

व्याख्या- आत्मगरिमा को हर कोई नहीं समझता। आत्म तत्व एक अंगारे के समान है जिस पर कषाय-कल्मषों के आवरण चढ़े होते हैं। जो उन्हें हटाने का प्रयास करते हैं वे उसकी चमक व ताप से परिचित-प्रभावित होते हैं। बहुसंख्य ऐसे होते हैं जो अपने अन्दर छिपी सामर्थ्य को पहचान नहीं पाते, जिम्मेदारी का निर्वाह न कर उलटे अपना पतन और कर लेते हैं। जिन्हें आत्मबोध हो जाता है वे अपना स्वरूप समझकर तद्नुसार अपनी जीवन-योजना का निर्धारण करते व कृत-कृत्य होते हैं।

सदुपयुञ्जते ये तु सौभाग्यं प्रस्तुतं क्रमात् ।
उद्गच्छन्ति तथायान्ति पूर्णतां लक्ष्यगां सदा।। २८।।

टीका- जो प्रस्तुत सौभाग्य का सदुपयोग करते हैं, वे क्रमश: अधिक ऊँचे उठते और पूर्णता के लक्ष्य तक जा पहुँचते हैं ।। २८।।

व्याख्या- सामने आया समय बार-बार नहीं आता। मानव जीवन एक सौभाग्य है जो बार-बार नहीं मिलता। विडम्बना यही है कि इसका सदुपयोग करने वाले कम ही होते हैं। जो जीवन का समुचित उपयोग करनां जानते हैं वे क्रमिक गति से ऊँचे उठते हुए चरम ध्येय को अन्तत: प्राप्त करके ही रहते हैं।

प्रत्यक्षं देवता नूनं जीवनं यत्तु दृश्यते ।
देवानुग्रहरूपं च ये तदाराधयन्ति तु ।। २९।।
तेऽधिका: प्राप्नुवन्त्युच्चा उपलब्धी: शनै:शनै: ।
दुरुपयुञ्जते ये ते नरा निघ्नन्ति स्वां गतिम्।। ३०।।
आत्महन्तार इव च दुर्गतिं प्राप्नुवन्ति ते ।
नहि तान् कश्चिदन्योऽपि समुद्धर्तुं भवेत्प्रभु:।। ३१।।

टीका- जीवन प्रत्यक्ष देवता है, वह ईश्वरीय अनुकम्पा का दृश्यमान स्वरूप है। जो उसकी आराधना करते हैं, उपलब्धियों का सदुपयोग करते हैं, उन्हें अधिकाधिक मात्रा में उच्चस्तरीय उपलब्धियाँ धीरे-धीरे मिलती जाती हैं। दुरुपयोग करने वाले अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारते हैं और आत्महत्यारों की तरह दुर्गति का दु:ख भोगते हैं, उनका उद्धार कोई नहीं कर सकता है।। २९-३१।।

व्याख्या- जीवन को एक सहज उपहार मान कर चलने वाले उसके साथ खेलते ही हैं। यदि उसे देवता मानकर चला गया होता तो प्रभु की कृपा का ऐसा दुरुपयोग न होता। और देवताओं की तो मनुष्य अभ्यर्थना-याचना अपनी कामना पूर्ति के लिये करते रहते हैं, पर कभी आत्म देव पर ध्यान नहीं देते। जो सदुपयोग करना जानते हैं वे कभी उपलब्धियों से वंचित नहीं रहते परन्तु दूसरी ओर जो उसका दुरुपयोग करते हैं, वे उसका दण्ड भी भुगतते हैं।

इसी तथ्य को इस प्रकार भी कहा है-

मानुष जन्म अमोल है, होय न दूजी बार ।
पक्का फल जो गिर पड़ा, लगे न दूजी बार ।।

पर इस अमोल मानुष काया का उपयोग कितने कर पाते हैं यह विचारणीय है।

आत्मज्ञानं नरस्यास्ति गौरवं महदुन्मुख: ।
यो दिशां तां प्रति, प्रैतिगतिमन्तर्मुखीं स तु।। ३२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूतं यश्च भविष्यच्च विचार्य वर्तते पुमान् ।
आत्मावलम्बी स याति द्रुतं प्रगतिपद्धतौ ।। ३३।।
नात्र काठिन्यमाप्नोति ये त्यजन्त्यवलम्बनम् ।
उपेक्षयात्महन्तारो दुःखदारिद्र्यभागिनः ।। ३४।।
पदे पदे तिरस्कारं सहन्ते यन्त्रणा भृशम् ।
नारक्यः प्राप्नुवन्त्येव न यान्ति परमां गतिम्।। ३५।।

टीका- आत्मज्ञान ही मनुष्य का सबसे बड़ा गौरव है। जो उस दिशा में उन्मुख होता, अन्तर्मुखी बनता, अपने भूत और भविष्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान का निर्धारण करता है-वह आत्मावलम्बी मनुष्य प्रगति-पथ पर द्रुतगति से बढ़ चलता है। इसमें उसे फिर कोई कठिनाई शेष नहीं रहती। जो इस अवलम्बन की उपेक्षा करते हैं, वे आत्महन्ता लोग दुःख-दारिद्रय के भागी बनते हैं। पद-पद पर तिरस्कार सहते और नारकीय यन्त्रणायें भुगतते हैं, साथ ही सद्गति को प्राप्त नहीं कर पाते ।। ३३-३५ ।।

व्याख्या- मनुष्यों को औरों की अपेक्षा अधिक बुद्धि, विद्या,वैभव,बल,विवेक मिला है। यह बात तो समझ में आती है किन्तु इन शक्तियों का सम्पूर्ण उपयोग बाह्यजीवन तक ही सीमित रखने में उसने बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया। अर्जित कौशल एवं ज्ञान को उसने मात्र शारीरिक सुखोपभोग तक सीमित रखा है। सारे दुःखों का कारण भी यही है कि हम अपने शाश्वत स्वरूप आत्मतत्व को जानने का कभी प्रयास भी नहीं करते। अपने शरीर को भी नहीं पहचान पाये तो इस शरीर का, बौद्धिक शक्तियों का क्या सदुपयोग रहा ?

जो भी व्यक्ति आत्म-तत्व का अवलम्बन लेने के लिये अपने अन्दर की गुफा में झाँकता है तो उसे अपार वैभव-सम्पदा सामग्री बिखरी दिखाई पड़ती है। आत्मावलम्बन का ही चमत्कार है कि मनुष्य अपने विगत के घटनाक्रमों को दृष्टिगत रख भविष्य की योजना बनाता व वर्तमान का निर्धारण सफलतापूर्वक कर पाता है।

भौतिकीःसुविधाः प्रादान्मनुष्येभ्यः प्रभुःस्वयम् ।
दिव्यानां च विभूतीनां निधिं वपुषि दत्तवान्।। ३६।।
किन्तु कार्यमिदं तस्याधीनं च कृतवान प्रभुः ।
यद् विवेकयुतां बुद्धिं स्वतन्त्रां परिदर्शयेत् ।। ३७।।
उपयोगं साधनानां दुरुपयोगमथाश्रयन् ।
सहभाक् स्वर्ग्यधाराया नारक्या वापि संभवेत्।। ३८।।

टीका- ईश्वर ने मनुष्य को भौतिक सुविधाओं का बाहुल्य प्रदान किया, भीतर दिव्य विभूतियों का भण्डार भर दिया। पर इतना काम उसे ही सौंपा कि स्वतन्त्र विवेक बुद्धि का परिचय दे और साधनों का सदुपयोग या दुरुपयोग करके स्वर्ग या नरक की दिशा धारा का सहभागी बने ।। ३६-३८।।

व्याख्या- मनुष्य में ये दो विशेषताएँ एक साथ पायी जाती हैं-(१) बाह्य जगत में प्रचुर मात्रा में उपभोग हेतु सुख-साधन, प्रतिकूल को भी अनुकूल बना सकने योग्य सामर्थ्य तथा (२) अंतः जगत में देवताओं को भी अप्राप्य आत्मिक सम्पदा जो उपयुक्त होने पर उसे ऋषि-देव मानव-महामानव स्तर का बनाती है। सृष्टि में अन्य ऐसा कोई भी जीवधारी नहीं, जिसमें इन दोनों का समन्वय हो। उसे स्रष्टा का पक्षपात नहीं कहेंगे क्योंकि उसने इसके साथ एक उत्तरदायित्व उसी के ऊपर छोड़ दिया है कि वह अपनी विवेक शक्ति, दूरदर्शिता का उपयोग कर इन साधनों को किस सीमा तक, किस प्रयोजन में लगा पाता है ? इस विवेकशक्ति का जागरण जिसमें जितनी मात्रा में हुआ समझना चाहिए वह उतना ही आध्यात्मिक होता चला गया। सदुपयोगी ही स्वर्ग को ले जाने वाली तथा दुरुपयोग नरक की ओर ले जाने वाली पगडण्डी है।

प्रगतिर्मानवानां या दुर्गतिर्वाऽपि दृश्यते ।
तस्य संरचना स्वस्य तात! जानीहि निश्चितम्।। ३९।।
मानवः स्वस्य भाग्यस्य विधाता स्वयमेव हि ।
तथ्यमेतद् विजानन्ति ये ते तु निजचिंतनम् ।। ४०।।
प्रयासं साधुभावाय योजयन्ति न ते पुनः ।
पतनं पराभवं वापि सहन्ते न च यन्त्रणाम् ।। ४१।।

टीका- हे तात ! मनुष्य की जो भी प्रगति-दुर्गति दृष्टिगोचर होती है, वह उसकी स्वयं की संरचना है, यह निश्चित समझो। 'मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप है'- जो इस तथ्य को समझते हैं, वे अपने चिन्तन और प्रयास को सदाशयता के लिए नियोजित करते हैं। ऐसे लोगों में से किसी को भी पतन-पराभव की यन्त्रणा नहीं सहनी पड़ती ।। ३९-४१।।

व्याख्या- आत्मज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि है यह बोध हो जाना कि हम अपने आप में सर्व-समर्थ शक्तिमान सत्ता हैं व अपना भविष्य स्वयं बना सकते हैं। स्रष्टा का यही तो सबसे बड़ा अनुदान है। पुरुषार्थी-आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति कभी भाग्य के भरोसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैठे नहीं रहते। इसीलिये वे हमेशा अपने चिन्तन और प्रयासों को उत्कृष्टता से जोड़कर अपनी परिस्थितियाँ स्वयं विनिर्मित करते हैं। भाग्यवादी तो इसी प्रतीक्षा में अवसर गँवाते चले जाते हैं कि उपयुक्त परिस्थितियाँ हों व बिना श्रम-प्रयास के सब अनुकूल होता चला जाये। शास्त्रों में लिखा है-

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठन्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ।।
चरैवेति, चरैवेति ।।

अर्थात्-सोते रहना ही कलियुग है, जागरणोपरान्त जम्हाई लेना द्वापर है, उठ पड़ना ही त्रेता है, उठकर अपने लक्ष्य के लिये गतिशील हो जाना ही सतयुग है। अतएव लक्ष्य प्राप्ति के लिये चलते रहो, आगे बढ़ते रहो।

वयं यद् ब्रह्मतत्वस्य मुने कुर्मोऽवगाहनम् ।
न विवेच्यो विराट् तत्र परमेतदवेहि यत् ।। ४२।।
मानवानामन्तराले सत्ता या विद्यते प्रभोः ।
तस्या मह महत्तां तु कथं ज्ञातुं क्षमा वयम् ।। ४३।।
कथं पश्याम एवं च कथं कुर्मस्तथात्मसात् ।
प्रयोजनमिदं सर्वं ब्रह्मविद्या प्रचक्षते ।। ४४।।

टीका- हे ऋषि श्रेष्ठ ! हम लोग जिस ब्रह्मतत्व का अवगाहन करते हैं, उसमें उद्देश्य विराट् की विवेचना नहीं, वरन् यह है कि मानवी अन्तराल में विद्यमान ईश्वरीय-सत्ता की महान् महत्ता को किस प्रकार समझा जाय एवं उसे कैसे देखा, उभारा व अपनाया जाय। इस सम्पूर्ण प्रयोजन को ही ब्रह्मविद्या कहते हैं ।।४२-४४।।

व्याख्या- महाप्राज्ञ पिप्पलाद विषय की गूढ़ता को देखते हुए उसे अधिक स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए ब्रह्मविद्या एवं विराट् विश्वपुरुष परब्रह्म की विवेचना में अंतर बताते हैं। सृष्टि का व्यापक विस्तार और उसमें संव्याप्त जड़-चेतन का सम्मिश्रित लीला जगत तो वह पक्ष हुआ जिसे विराट् के नाम से ऋषिवर ने संबोधित किया है । इसी तथ्य को ऋग्वेद में ऋषि ने समझाते हुए कहा है-"हे मनुष्यो! बर्फ से आच्छादित पहाड़, नदियाँ,समुद्र जिसकी महिमा का गुणगान करते हैं, दिशाएँ जिसकी भुजाएँ हैं, हम उस विराट् विश्वपुरुष परमात्मा को कभी न भूलें।"

ब्रह्मविद्या वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत परमपिता के अशंरूप में विद्यमान अपने अंदर अवस्थित सत्ता की महत्ता को समझा, उभारा एवं विकसित किया जाता है। उपासना ईश्वर के इसी रूप की, की जाती है। पर ब्रह्म तो अचिन्त्य, अगोचर है, उसके क्रिया-कलापों को जड़ चेतन में गति-विधियों तथा सृष्टि विज्ञान के विभिन्न स्वरूपों में देखा जा सकता है पर जिस ईश्वर, परमात्मा, भगवान, इष्ट की उपासना-साधना अभ्यर्थना करने की चर्चा की जाती है वह तो मनुष्य के अंदर ही बीज रूप में विद्यमान है। इसे पहचान कर, आच्छादित आवरणों को हटा कर जो विकसित कर लेता है वह महामानव देवदूत,ऋषि स्तर तक जा पहुँचता है। ऋद्धि-सिद्धियाँ इसी आत्मतत्व के अनुदान रूप में बरसती हैं-कहीं बाहर से नहीं टपकतीं।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता के मोक्ष संन्यासयोग विषयक अध्याय में इस गुह्यज्ञान को और भी अधिक अच्छी तरह स्पष्ट किया है। **ईश्वरःसर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**-इस प्रकार कहते हुए भगवान अर्जुन को समझाते हैं-"हे अर्जुन ! यंत्र पर आरूढ़ हुए के समान सब भूतों को अपनी शक्ति से घुमाता हुआ ईश्वर सब जीवधारियों के हृदय में वास करता है। हे भरत पुत्र ! तू उसी ईश्वर की शरण में समर्पित हो जा। उसके प्रसाद से तुझे परमशान्ति और शाश्वत आनंद मिलेगा। यह गुह्य से गुह्यज्ञान मैंने तुझे कहा है, इस पर अच्छी तरह विचार कर"।

मीरा, चैतन्य महाप्रभु,रैदास तथा कबीर आदि सन्तों-महामानवों ने अपने इसी ईश्वर को तो पूजा है। उनकी साधना उपासना अंतर्जगत में विराजमान ईश्वर की थी। प्रतीक उसका कुछ भी हो। यह बह्मविद्या की साधना किस व्यक्ति को कितना ऊँचा उठा सकी यह इसी पर निर्भर करता है कि किसने आत्म तत्व को समझने का प्रयास किया व उसे विकसित किया।

सुविधासम्पदा पूर्णं जगदेतत्तु भौतिकम् ।
सम्पद्भिरात्मिकं तृप्तितुष्टिशान्तिभिराप्लुतम्।। ४५।।
सुविधाः साधनेष्वेव रमन्ते मन्दबुद्धयः ।
यथा क्रीडनकैर्बालास्तथा ते सन्ति निश्चितम्।। ४६।।
आध्यात्मिकस्य जगतः स्वर्ग्यां प्राप्तुं तु सम्पदाम् ।
रुचिर्येषां महाभाग्या धन्यं तेषां हि जीवनम्।। ४७।।

टीका- भौतिक जगत में सुविधा-सामग्री भरी पड़ी है, तो आत्मिक क्षेत्र तृप्ति,तुष्टि और शान्तिरूपी सम्पदा से सम्पन्न है । जो व्यक्ति सुविधा साधनों में रमते हैं, वे खिलौनों से खेलने वाले बालकों की तरह मन्द-बुद्धि हैं। जिन्हें आत्मिक जगत् की स्वर्गीय सम्पदा को प्राप्त करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में रुचि है, उन्हें बड़भागी कहा जाना चाहिए, उन्हीं का मानव-जीवन धन्य है ।। ४५-४७।।

व्याख्या- मनुष्य को बाह्यजगत में भौतिक उपलब्धियाँ मिली हैं तो अन्त:जगत में चेतन शक्ति प्रवाह के रूप में आत्मिक सम्पदा भी। अज्ञानवश मनुष्य भौतिक उपलब्धियों को ही उन्नति-सफलता का प्रतीक मान लेता है। मनुष्य शरीर बल, बुद्धि, धन, वैभव, यश, ऐश्वर्य- पद-प्रतिष्ठा के क्षेत्र में भले ही हिमालय की तरह ऊँचा व सागर की तरह गहरा क्यों न हो, आत्म सम्पदा के अभाव में वह निम्न कोटि का ही जीवन जियेगा, सुख तो होंगे पर शान्ति न होगी, साधन तो होंगे पर तृप्ति न होगी।

भौतिक जगत की मृग-मरीचिका आत्मा की प्यास को कभी बुझा नहीं सकती। ऐसी बात नहीं कि जीवन में भौतिक पदार्थों का कोई मूल्य नहीं। निर्वाह हेतु कुछ सीमा तक वे आवश्यक तो हैं पर दिग्भ्रान्त मनुष्य साधनों को ही साध्य मान कर उनमें भटक जाता है। वस्तुत: जीवन में दोनों का ही समुचित समन्वय करना पड़ता है। एक चित्रकार अपनी रचना में कला एवं सौन्दर्य का समावेश कर ही उसे सर्वश्रेष्ठ बना पाता है। भौतिक जगत यदि कला है तो आत्मिक जगत सौन्दर्य। पहला पक्ष तो वहाँ तक जरूरी है जहाँ तक शरीर निर्वाह के लिये साधनों की आवश्यकता है। दूसरा पक्ष अपने आपको समग्र बनाने, आत्मिक उत्कर्ष द्वारा चरम लक्ष्य पाने के लिये आवश्यक है। जिन्हें आत्मिक जगत की सम्पदा को पाने में रुचि बढ़ती है वे ही धन्य होते हैं और शरीर की दृष्टि से तृप्ति, ज्ञान की दृष्टि से तृष्टि औरआत्मा की दृष्टि से शान्ति का अमूल्य वैभव पाने में सफल होते हैं।

बहिर्मुखा: जना: सर्वे भ्रमजालेषु पाशिता: ।
अन्तर्मुखाश्च तथ्यज्ञा सत्यं श्रेय: श्रयन्त्यलम्।।४८।।

टीका- बहिर्मुखी-भ्रम जञ्जालों में उलझते हैं। अन्तर्मुखी-तथ्यों को समझते-सत्य को अपनाते और श्रेय को पाते हैं ।। ४८।।

व्याख्या- जैसा कि पहले ऋषि श्रेष्ठ ने स्पष्ट किया है-भौतिक जगत और आत्मिक जगत दोनों ही क्षेत्रों में समुचित समन्वय स्थापित कर मनुष्य आत्मोत्थान का पथ प्रशस्त कर सकता है। परन्तु ऐसे व्यक्ति जो बाह्य आकर्षणों से विरत हो अपने आपको आत्मिक पुरुषार्थ में नियोजित कर दें, कम ही होते हैं। इसी आधार पर वे बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी दो समूहों में जन समुदाय को विभाजित करते हैं। पहले भटकते हैं, दूसरे राह खोजते हैं व अनेकों को दिखाते हैं। एक सन्त ने इनकी बड़ी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत उपाख्यान में की है।

अन्तर्जगत उत्थानं पर्यवेक्षणमेव च ।
आत्मविज्ञानमस्त्यस्मिन्नुपलब्धिर्यथा-यथा ।। ४९।।
यस्य तत्क्रमतोगृह्णन्नृषीणां भूमिकामपि ।
देवदूतावताराणां महामानवरूपिणाम् ।। ५०।।
सफलं मानवं जन्म स्वं करोति तथा च स: ।
कल्याणमार्गं जगत: प्रशास्ति च महामुने ।। ५१।।

टीका- अन्तर्जगत् का पर्यवेक्षण और अभ्युत्थान ही आत्म-विज्ञान है। जिसे यह उपलब्धि जितनी मिल सकी, वह उसी क्रम में महामानवों, ऋषियों, देवदूतों और अवतारियों की भूमिका निभाते हुए मनुष्य जन्म को सार्थक करता है तथा जगत् के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करता है ।। ४९-५१।।

व्याख्या- आत्मविवेचन ऋषि प्रणीत विद्या है। अपने अन्दर झाँककर आत्म निरीक्षण, विश्लेषण तथा तदुपरान्त विकास का पथ खोज लेना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। मात्र निरीक्षण ही काफी नहीं, उस क्षेत्र में आगे कैसे बढ़ा जाय ? यह प्रश्न महत्वपूर्ण है । हममें से अधिकांश ऐसे हैं जो बहिरंग तक ही उलझे रहते हैं-कभी अन्दर झाँकते भी नहीं।

जिज्ञासाया: समाधानं त्वेकमेवास्ति तात ! यत् ।
स्वतन्त्रो मानव: स्वस्यां प्रगतौ दुर्गतौ भृशम्।।५२।।
वृत्वा स्वयमनौचित्यमात्मने स विषद्रु मम् ।
स्थिरयत्यात्मनो यस्य गौरवे विपुला रुचि: ।। ५३।।
आत्मनिर्माणरूपे य: पुरुषार्थे रतस्तथा ।
सन्मार्गे साहसं गन्तुं तस्य पातो नसम्भव:।। ५४।।

टीका- हे तात ! आपकी जिज्ञासा का समाधान एक ही है कि मनुष्य को अपनी प्रगति और दुर्गति की पूरी छूट मिली है । अनौचित्य का वरण करके वह अपने लिए स्वयं ही विष-वृक्ष रोपता है। जिसे आत्म गौरव का चाव है, जो आत्म-निर्माण रूपी पुरुषार्थ में रत रहता है, जिसमें सन्मार्ग पर चलने का साहस है, उसका कभी पतन-पराभव नहीं होता ।। ५२-५४।।

व्याख्या- जिसे वास्तव में आत्मगरिमा के प्रति रुझान होता है, वही सत्साहस अपनाता है और प्रगति की दिशा में आगे बढ़ पाता है। यह छूट पूरी तरह से ईश्वर की ओर से मिली है कि मनुष्य किस मार्ग पर चले। अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पतन रोकना अपने ही बस की बात है। वरण जिसने जो किया वह वैसा ही बन गया।

आत्मगरिता के श्रेयाधिकारी किन्हीं भी परिस्थितियों में अपनी आंतरिक महानता भूलती नहीं। वह प्रवाह सहज ही उन्हें उत्कृष्टता की ओर खींच ले जाता है।

सामान्यास्तु जना: सर्वे गृह्णन्तो दूरदर्शिताम् ।
विवेकं संत्यजन्तश्चाकर्षणेषु भ्रमद्धिय: ।। ५५ ।।
कुमार्गगामिनो भूत्वा दुरूहां दु:खसन्ततिम् ।
सहन्ते, मौढ्यमायाया यदि मोक्तुं समे तु ते ।। ५६ ।।
आत्मावलम्बिनां याट्टक् साहसं तु विवेकिनाम् ।
लभ्येरस्तेऽपि कुत्रापि ता विपत्ति विभीषिका: ।। ५७ ।।
द्रष्टुं नैव तु शक्ष्यामो दृष्टा मग्नास्तु यत्र ते ।
समाप्तिं नरकस्यायं हाहाकारो गमिष्यति ।। ५८ ।।

टीका- सामान्य-जन अदूरदर्शिता अपनाते, विवेक को छोड़ आकर्षणों में भटकते हैं। कुमार्गगामी बनकर दुरूह दु:ख सहते हैं, यदि उन्हें इस मूढ़ता की माया से छूटने का और विवेकवान् आत्मावलम्बियों जैसा साहस मिल सके तो कहीं भी उन विपत्ति-विभीषिकाओं के दर्शन न हों जिनमें वे बुरी तरह धँसे-फँसे दृष्टिगोचर होते हैं, साथ ही नारकीय वातावरण का यह हाहाकार समाप्त हो जाय ।। ५५-५८ ।।

व्याख्या- विवेक का आश्रय छोड़ना सबसे बड़ी भूल है। बौद्धिक परावलम्बन व्यक्ति को सामयिक आकर्षणों में ही रस ढूँढने-आनन्द खोजने को विवश करता है, जब कि दूरगामी परिणामों की उसे कभी कल्पना भी नहीं होती।

महामनीषिणस्तत्वज्ञानिन एतदेव हि ।
आत्मतत्वंतु विज्ञातुमुद्बोद्धुं चास्य मूर्च्छनाम् ।। ५९ ।।
प्रौढ़ं परिष्कृतं कर्तुं भजन्ते योग-साधनाम् ।
तपस्यायां रता हेम्न: परिष्कार इवास्ति यत् ।। ६० ।।

टीका- तत्वज्ञानी-महामनीषी इसी आत्मतत्व को समझने, उसकी मूर्छना जगाने और उसे प्रौढ़-परिष्कृत करने के लिए योग-साधना करते और तपश्चर्या में निरत होते हैं। यह कार्य स्वर्ण को परिष्कृत करने जैसा है ।।५९-६०।।

व्याख्या- चूँकि जन समुदाय मूढ़ता की माया से छूट नहीं पाता, प्रसुप्त स्थिति में पड़ा जीवन-शकट खींचता रहता है, तत्वदर्शीगण उन्हें आत्मतत्व की गरिमा जानने का मार्ग बताते हैं। सोये को जगा लेना सबसे बड़ी उपलब्धि है। मात्र जागना ही काफी नहीं, साधना पुरुषार्थ भी किया जाना जरूरी है और शोधन हेतु तपश्चर्या भी। इससे कम में उन कुसंस्कारों से मुक्ति पाना सम्भव नहीं, जो कुहासे के रूप में, काली घटाओं के रूप में आत्मतत्व पर छाये रहते हैं ।

पात्रतायां विकासोऽयं ह्यनेकानेक सम्पदाम् ।
उपलब्धेर्विभूतीनां पन्थाश्च केवल: स्मृत: ।। ६१ ।।

टीका- पात्रता का विकास ही अनेकानेक विभूतियों और सम्पदाओं की उपलब्धि का एक मात्र मार्ग है ।। ६१ ।।

व्याख्या- आत्म तत्व को जगाने व तप पुरुषार्थ को करने के अतिरिक्त भी एक और पक्ष ऐसा रह जाता है जिसे छुए बिना आत्मिक सम्पदा प्राप्त नहीं होती। पात्रता वह पारस है जो अनगढ़ सी धातु को स्वर्ण बना देती है। इसी के बदले दैवी अनुग्रह बरसता है-बिना माँगे मिलता है।

भौतिक क्षेत्र की तुलना में अध्यात्म के प्रतिफल कई गुने अधिक महत्वपूर्ण सामर्थ्यवान और चमत्कारी हैं। किन्हीं-किन्हीं महापुरुषों में उन चमत्कारी विशेषताओं को देख एवं सुनकर हर व्यक्ति के मुँह में पानी भर आता है तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए मन ललचाता है, पर अभीष्ट स्तर का आत्मिक पुरुषार्थ न कर पाने के कारण उस ललक की आपूर्त्ति नहीं हो पाती। पात्रता के अभाव में अधिकांश को दिव्य आध्यात्मिक विभूतियों से वंचित रह जाना पड़ता है जबकि पात्रता विकसित हो जाने पर बिन माँगे ही वे साधक पर बरसती हैं । उन्हें किसी प्रकार का अनुनय-विनय नहीं करना पड़ता है। दैवी शक्तियाँ परीक्षा तो लेती हैं, पर पात्रता की कसौटी पर खरा सिद्ध होने वालों को मुक्तहस्त से अनुदान भी देती हैं। मिलता उन्हें ही है जो लौकिक कामनाओं, ऐषणाओं से मुक्त हैं, निस्पृह और उदार हैं।

आत्मनिरीक्षणं चात्मनिर्माण: सर्वतो महान् ।
पुरुषार्थो मतो नास्ति साधना याचनाऽथ च ।। ६२ ।।
परावलम्बनं नैव विद्यते विद्धि तामत: ।
आत्मनस्तु परिष्कारस्याधार: सुनियोजित: ।। ६३ ।।

टीका- आत्म-निरीक्षण और आत्म-निर्माण ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। साधना न तो परावलम्बन है, न याचना। उसे आत्म-परिष्कार का सुनियोजित आधार ही माना गया है।। ६२-६३ ।।

व्याख्या- इसमें कोई सन्देह नहीं कि जीवन कल्पवृक्ष की तरह असंख्यों सत्परिणामों से भरा पूरा है। पर उसका लाभ तभी मिलता है, जब उसे ठीक तरह साधा, सम्भाला जाय। जीवन क्षेत्र को सुव्यवस्थित बनाने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये किये गये पुरुषार्थ को ही साधना कहते हैं। अपने अन्दर की वृत्तियों का निरीक्षण, उन पर नियन्त्रण तथा सत्प्रवृत्तियों को उनका अंग बना लेने से ही व्यक्तित्व निर्माण का प्रयोजन सधता है।

आत्मनस्तु विकासं यः कर्तुंशक्तः स एव हि ।
सुसंस्कृतश्च सफलस्तथ्यस्यास्य महामुने ।। ६४ ।।
प्रत्यक्षायै क्रियन्तेऽनुभूत्यै च साधनात्मकाः ।
पराक्रमा वयं नैवमृषयो हे मनीषिणः ।। ६५ ।।
अध्यात्मामृतपानस्य सीम्नि बद्धा भवेम तु ।
उपलब्धिभिरेताभिर्बोद्धाः सर्वेजना सदा ।। ६६ ।।
जिज्ञासानां न चैवासां संभवेदनिवार्यता ।
समर्थो न कथं दीनहीनवद् विवधा इमाः ।। ६७ ।।
यातनाः पतनस्याथ पराभूतेश्च सन्ततिम् ।
सहते पातगर्ताच्च बहिरेतुं न हि क्षमः ।। ६८ ।।

टीका- *हे महर्षे ! जो आत्म विकास कर सका, वही सफल सुसंस्कृत बनता है। इस तथ्य की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए ही साधनात्मक पराक्रम किये जाते हैं। हे ऋषि-मनीषियो ! हम सब इस अध्यात्म अमृत का पान करने तक ही सीमित न रहें, वरन् अपनी उपलब्धियों से जन-जन को अवगत करायें। इस स्थिति में ऐसी जिज्ञासा की आवश्यकता ही न पड़े कि समर्थ मनुष्य दीन-हीनों की तरह विविध पतन-पराभव की यातनाएँ क्यों सहता है, पतन के गर्त से बाहर क्यों नहीं निकल पाता ।। ६४-६८ ।।*

व्याख्या- साधना एक पराक्रम है, संघर्ष है जो अपनी ही दुष्प्रवृत्तियों से करना होता है। जो इस संग्राम में जितना सफल होता है वह उतना ही बहिरंग में सुसंस्कृत एवं अन्तरंग की दृष्टि से महान बनता चला जाता है।

साधना में सभ्यता और संस्कृति दोनों का ही समावेश रहता है। इसमें संस्कृति को उद्गम और सभ्यता को प्रवाह कहा गया है। संस्कृति विचारणा, मान्यता, आस्था, निष्ठा में उत्कृष्टता के समावेश को कहते हैं। इसी पृष्ठभूमि की प्रेरणा से गतिविधियों का निर्धारण सम्भव होता है। शालीनता की पक्षधर जीवनचर्या को सभ्यता कहते हैं सभ्य बन सकना उसी के लिए सम्भव है जो सुसंस्कृत हो। संस्कृति मनःसंस्थान में उगाई और बढ़ाई जाती है। सभ्यता अपनाने के लिए शरीर को सधाया जाता है। जंगली जानवरों को सरकस में कलाकारिता दिखाने के लिए जिस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है उसी प्रकार साधनात्मक अनुशासन में जकड़कर अनगढ़ मनुष्य को सुगढ़, सुसंस्कृत बनाया जाता है। इसी प्रयास को सभ्यता सम्वर्धन कहते हैं।

यथार्थज्ञानसंयुक्तं श्रुत्वा तु प्रतिपादनम् ।
आरण्यकस्थिताः सर्वे तुष्टास्ते तु महर्षयः ।। ६९ ।।
समाधानं च लब्धुं तत्सन्दर्भेऽधिकं ततः ।
ज्ञातुमन्या च जिज्ञासा प्रचण्डावेगतोऽवहत् ।। ७० ।।
आरण्यकस्थिताः सर्व ऋषयो ये मनीषिणः ।
सन्दर्भे प्रष्टुमन्यच्च यद्यप्यासन् समुत्सुकाः ।। ७१ ।।
सायंकाले समायाते सन्ध्यावन्दन कर्म च ।
सम्मुखे प्रस्तुतं, सत्रं समाप्तं दैनिकं ततः ।। ७२ ।।
महाप्राज्ञः पिप्पलादो जगाद हे महर्षयः ।
भवन्तोऽधिकमुत्सुकाज्ञातुं प्रत्यक्षमस्ति हि ।। ७३ ।।
सत्र मद्यतनं यातु विश्रमं श्वः पुनश्चलेत् ।
समाधास्याम्यलं ज्ञानसत्रे जिज्ञासितं भृशम् ।। ७४ ।।
उत्थितास्ते प्रसन्नायां मुद्रायां तु महर्षयः ।
नत्वा तं तु महाप्राज्ञं परस्परमथापि च ।। ७५ ।।
ऋषयो दैनिकं कर्तुं साधनाकृत्यमुत्थिताः ।
द्वितीयेऽह्नि ततोऽप्युग्राज्ञातोत्कण्ठातु बोधितुम् ।। ७६ ।।
चलतां हृदये तेषां सर्वेषामेव या भृशम् ।
झंझावात महावेग विजृम्भण पराऽभवत् ।। ७७ ।।

टीका- *इस यथार्थता से भरे प्रतिपादन को सुनकर आरण्यक में उपस्थित ऋषियों को सन्तोष भी हुआ और समाधान भी मिला। पर साथ ही इस सन्दर्भ में अधिक जानने की दूसरी जिज्ञासा और भी प्रचण्ड वेग से उठ पड़ी। आरण्यक में उपस्थित ऋषि-मनीषी इस सन्दर्भ में और कुछ पूछना चाहते थे, पर सायंकाल हो जाने और सन्ध्या-वन्दन का अनिवार्य नित्य-नियम सामने होने के कारण उस दिन का सत्र समाप्त कर दिया गया। महाप्राज्ञ पिप्पलाद ने कहा-मनीषियो, आप लोग इस सम्बन्ध में अधिक जानना चाहते हैं, ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। आप लोग आज के सत्संग को विराम दें। कल पुनः यह ज्ञान-सत्र चलेगा, तब आपकी अन्य जिज्ञासाओं का विस्तारपूर्वक समाधान करेंगे। सभी प्रसन्न मुद्रा में उठे। महाप्राज्ञ को अभिवन्दन और नमन करके ऋषिगण अपने नियमित साधना कृत्य के लिए चले गये। दूसरे दिन और भी अधिक जानने की प्रबल उत्कण्ठा चलते-चलाते उन सबके मन में आँधी-तूफान जैसी मचल रही थी ।। ६९-७७ ।।*

व्याख्या- अध्यात्म दर्शन सम्बन्धी प्रस्तुत समाधान जिस रोचक शैली में महाप्राज्ञ द्वारा किया गया, उससे ऋषि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समुदाय को न केवल अपने इस ज्ञान सत्र के प्रथम दिन में उपस्थिति से सन्तोष व तृप्ति मिली, वहाँ इसी विषय से सम्बन्धित अन्य कई प्रश्न भी अन्दर जन्म लेने लगे। परन्तु जैसा कि आश्रम व्यवस्थानुसार गायत्री-महाप्रज्ञा की संध्या-उपासना का समय आ चुका था, इस समागम को विराम दे दिया गया । एक ओर जिज्ञासा, दूसरी ओर अध्यात्मज्ञान के व्यावहारिकपक्ष नित्य कर्म की अनिवार्यता को दृष्टिगत रख महाप्राज्ञ ने उन्हें अगले दिन इसी विषय के विस्तार में जाकर पुनः मन्थन-परामर्श का क्रम चलाने का आश्वासन दिया व सभी ऋषिगण उल्लास भरे वातावरण में परस्पर नमन कर विसर्जित हो गये ।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः ,युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री पिप्पलाद-अष्टावक्र ऋषि-सम्वादे "अध्यात्मदर्शन" इति प्रकरणो नाम ।। द्वितीयोऽध्यायः ।।

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

अजस्र अनुदान उपलब्धि प्रकरण

आरण्यकस्यं सत्रस्य द्वितीयेऽह्नि मनीषिणः ।
ऋषयः कृतनित्यास्ते प्रभातसमये शुभे ।। १।।
देवदारुतरूणां ते संगताः सघने शुभे ।
उपवने तं महाप्राज्ञं व्यासपीठसुशोभितम् ।। २।।
नत्वा पिप्पलादं ते, क्रमशः स्वं स्वमासनम् ।
यथाक्रमं व्यराजन्त तत्वजिज्ञासवः समे ।। ३।।
स्मारयन् प्रथमं तत्वचिन्तनं निर्गताह्निकम् ।
श्वेतकेतुः समाधातारं पप्रच्छ तु वाग्मिनम् ।। ४।।

टीका- आरण्यक-सत्र के दूसरे दिन प्रातःकाल की वेला में नित्य-नैमित्तिक कर्मों से निवृत्त होकर सभी ऋषि-मनीषी पुनीत देवदारु वृक्षों के सघन-सुन्दर उद्यान में एकत्रित हुए। व्यासपीठ पर विराजमान् महाप्राज्ञ पिप्पलाद को नमन-वन्दन करने के उपरान्त वे सभी तत्वजिज्ञासु अपने-अपने नियत स्थान पर यथाक्रम विराजमान् हो गये। पिछले दिन के तत्व-चिन्तन का स्मरण दिलाते हुए विचारवान् श्वेतकेतु ने समाधानी प्रवक्ता से पूछा ।। १-४।।

श्वेतकेतु उवाच-

देव ! किं सर्वथा मर्त्यः स्वतन्त्रोऽथ च सर्वथा ।
परिपूर्णोऽनपेक्ष्योऽन्यैः प्रगतेः पथि संचरन् ।। ५।।
स्वतन्त्रातायां तस्यास्ति बाधको नहि कोऽपि किम् ।
यद् यद् वांछति तत्तत् सक्षमः कर्तुमृषीश्वरः ।। ६।।
सर्वस्वं किं तदिच्छास्ति सामर्थ्यं च तदीयकम् ।
भवता मानवस्यालं गरिम्णो यद्विनिर्मितौ ।। ७।।
ईश्वरानुग्रहः प्रोक्तो व्यक्तिसौभाग्यमेव च ।
यथार्थमपि तत्रालं, काठिन्यं व्यावहारिकम् ।। ८।।
क्षममाणो बालबुद्धिं कृपया वद मानवः ।
सन्मार्गप्रस्थितोऽन्यस्यापेक्षां कुरुते न वा ।। ९।।

टीका- देव ! क्या मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र और सर्वथा परिपूर्ण है ? क्या उसे प्रगति क्रम पर अग्रसर होते हुए किसी की सहायता अपेक्षित नहीं होती। हे ऋषि श्रेष्ठ ! क्या उसकी स्वतन्त्रता में कोई बाधक नहीं है ? क्या वह जो चाहे सो कर सकता है ? क्या उसकी इच्छा एवं सामर्थ्य ही सब कुछ है ? आपने मनुष्य की गरिमा बताते हुए ईश्वर के अनुग्रह और व्यक्ति के सौभाग्य की चर्चा की थी वह यथार्थ होते हुए भी, उसमें कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ जान पड़ती हैं। हमारी बाल-बुद्धि को क्षमा करते हुए कृपया यह कहें कि मनुष्य को सन्मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अन्य किसी की सहायता अपेक्षित है या नहीं ।। ५-९।।

व्याख्या- जिज्ञासु श्रोता श्वेतकेतु अध्यात्म दर्शन प्रकरण की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए मनुष्य की स्वतन्त्रचयन क्षमता पर अपना असमंजस व्यक्त करते हैं। प्रज्ञासत्र के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रथम दिन के स्पष्टीकरण में महाप्राज्ञ पिप्पलाद ने यह कहा था कि मनुष्य सृष्टि का सिर मौर है, विशिष्ट विभूतियों से सम्पन्न है व उसे विधाता की ओर से अपनी दिशा धारा तथा जीवन की गतिविधियाँ अपनाने की पूरी छूट है। अपनी शंका व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-क्या इसका यह अर्थ है कि मनुष्य को बाह्य क्षेत्र से किसी प्रकार की कोई सहायता अभीष्ट नहीं है ? अन्तर्मुखी बन अपने ही अन्दर से प्रगति की दिशा धारा चुनकर मनुष्य महान बनता है, यह तथ्य सही है, अनुभूत तथ्य है। फिर भी यह जिज्ञासा उनके मन में अभी भी शेष है कि मनुष्य को आत्मावलम्बन व स्वतन्त्र निर्णय बुद्धि के अतिरिक्त भी परम लक्ष्य तक पहुँचने के लिये कौन सा ऐसा पक्ष शेष रह जाता है जिसकी व्याख्या मुनिवर ने नहीं की है।

श्वेतकेतु ने बड़ी बुद्धिमत्ता पूर्वक इस तथ्य को व्यक्त किया है कि ज्ञान मात्र सौभाग्य व ईश्वरीय कृपा की व्याख्या तक सीमित न रहे वरन् उसके व्यावहारिक पक्ष को भी खोला जाय ताकि सामान्य जन उससे लाभ उठा सकें।

यदि थोड़ा गहराई में प्रवेश करें तो हम अपने चारों ओर देखते हैं कि सिद्धान्त तो कईयों को ज्ञात हैं। तत्त्वज्ञान, ब्रह्मविद्या की दृष्टि से वे विद्वान् भी माने जाते हैं पर जब व्यावहारिकता की बात आती है तो वहाँ वे शून्य पाये जाते हैं। ज्ञान का श्रवण तो अच्छा है पर यदि उसे व्यवहार में उतारना आया नहीं तो ऐसा अधूरा ज्ञान किस काम का ? लक्ष्य तक पहुँचने के लिये अध्यात्म विज्ञान के क्षेत्र में भी यही सिद्धान्त लागू होता है-एक चरण सिद्धान्त का, एक व्यवहार का। सिद्धान्त अपनी जगह अटल व यथार्थ होते हुए भी व्यावहारिक न हो तो प्रगति रुकी ही रहेगी।

प्रश्नं श्रुत्वा महाप्राज्ञः प्रसन्नः प्रशशंस सः ।
जिज्ञासूनां मतिं सूक्ष्मां कथयामास तात हे ।। १०।।
सारयुक्ता व आशंका समाधानं च श्रूयताम् ।
तस्याः सर्वैः बुधैः सार्धं सावधानेन चेतसा ।। ११।।

टीका- प्रश्न को सुनकर महाप्राज्ञ बहुत प्रसन्न हुए, जिज्ञासुओं की सूक्ष्म-बुद्धि को सराहा और कहा-तात ! तुम्हारी आशंका सारगर्भित है। उसका समाधान ध्यान-पूर्वक अन्य विद्वानों के साथ श्रवण करें ।। १०-११।।

व्याख्या- प्रज्ञा सम्पन्न समर्थ तत्वदर्शी के पूछे गये उन प्रश्नों की सराहना करते हैं जिनसे संशय का निवारण होता हो तथा आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के सदुद्देश्य को लेकर पूछे गये होते हैं। जिज्ञासा से युक्त उचित प्रश्नों का समर्थों द्वारा समय-समय पर समाधान किया जाता रहा है। अर्जुन के उठाये गये प्रश्नों को सुनकर श्रीकृष्ण ने उनकी सूक्ष्म बुद्धि की प्रशंसा की। महाभारत में गीता का उपदेश ऐसे ही जिज्ञासा से युक्त प्रश्नों तथा उत्तरों से भरा पड़ा है। भारत की यह आर्षकालीन परम्परा रही है। आरण्यकों का संचालन ऐसे ब्राह्मण करते थे जो अध्यात्म विद्या के मर्मज्ञ होते थे। विविध प्रसंगों पर उठाये गये अध्यात्म प्रश्नों का वे युगानुरूप उत्तर देते थे। जिज्ञासु उनका श्रवण करते तथा भावी रीति-नीति निर्धारित करते थे। इसी कारण यहाँ का जीवन सदैव प्रसन्न, सन्तुष्ट, सद्गति शील और स्वर्गीय रहा है ।

पिप्पलाद उवाच-

जीवोंऽश ईश्वरस्यात्ति तेनैवास्ति च संयुतः ।
श्रेष्ठमार्गे प्रयातुं चेद् याचते शक्तिमेष तु ।।१२।।
उदारः सददात्येनां प्राप्य चैवं सहायताम् ।
कृतकृत्या भवन्त्येते भक्तास्तेजस्विनोऽपि च ।। १३।।
सिद्धीस्ता अद्भुतास्ते तु वृतुं शक्ता भवन्ति च ।
अग्रगानां सुरूपाश्च प्राप्यभूतोः गताः श्रमम् ।।१४।।

टीका- जीव ईश्वर का अंश है, उसके साथ जुड़ा हुआ भी है। श्रेष्ठता के मार्ग पर चलने के लिए जब शक्ति माँगी जाती है, तो वह उसे उदारता पूर्वक देता भी है। इस प्रकार की सहायता पाकर अनेकों भक्त-जन कृतकृत्य हुए हैं, तेजस्वी बने हैं, अद्भुत सफलताएँ वरण करने में समर्थ हुए हैं तथा अग्रगामियों के अनुरूप विभूतियाँ प्राप्त करते हुए परम-लक्ष्य तक पहुँचे हैं ।। १२-१४।।

व्याख्या- जिज्ञासा का समाधान विषयानुरूप करते हुए महाप्राज्ञ कहते हैं कि मनुष्य उस परम सत्ता का एक अंश होने के नाते उससे अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। मनुष्य अपने निर्णय के लिये पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र है। इसमें कहीं वह कोई हस्तक्षेप नहीं करता । विवेक का अवलम्बन लेकर मनुष्य जब भी उत्कृष्टता की ओर बढ़ता है तो फिर उसकी मदद के लिये-अनुदान लुटाने के लिए भी वह सहर्ष तैयार हो जाता है। यही परब्रह्म की विशेषता है । चयन की स्वतन्त्रता, औचित्य-अनौचित्य का वरण, यह काम उसने जीव के जिम्मे छोड़ा है तथा भटकने पर सीख, दण्ड आदि के रूप में वापस सही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्ग पर लाना एवं सन्मार्ग पर चलने पर मुक्त हस्त से अनुदान लुटाना यह अपने जिम्मे रखा है। जीव-ब्रह्म की एकता व परस्पर सम्बन्धों की यह विशिष्टता ही मनुष्य रूपी जीवधारी को अन्यों की तुलना में वरिष्ठ ठहराती है।

जिस प्रकार किसी वनस्पति की विशेषताएँ उसका गुण-दोष, जड़-तनेत्वक् यहाँ तक कि फूल-पत्ती आदि के अंश-अंश में ओत-प्रोत हैं, उसी प्रकार निश्चय ही ईश्वर के सारे गुण-विशेषताएँ जीव में हैं, उसका अंश, उसका पुत्र-प्रतिनिधि होने के नाते ओत-प्रोत हैं ।

अनन्तं तत्परं ब्रह्मतदचिन्त्यमगोचरम् ।
समग्रं ततु विज्ञातुं न हि शक्यं कथञ्चन ।। १५ ।।
मनुष्येण सहैंवास्ति सत्ता तु परमात्मनः ।
संयुक्तोत्कृष्टतादर्शवादिता परमात्मना ।। १६ ।।
सघनता तस्य जीवेन सह संयुज्यते तः ।
अनुग्रहेण तस्यापुर्भक्ता भूतीर्वरानलम् ।। १७ ।।

टीका- परब्रह्म अनन्त, अचिंत्य, अगोचर एवं अद्भुत है, उसे समग्ररूप में जान सकना किसी के लिए भी शक्य नहीं। मनुष्य के साथ उसकी परमात्म-सत्ता ही जुड़ती है। उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समुच्चय ही परमात्मा है, जीव के साथ उसी की सघनता जुड़ती है, उसी के अनुग्रह से वैभव वरदान का भण्डार भक्त-जनों को हस्तगत होता है ।। १५-१७ ।।

व्याख्या- परमात्मसत्ता का एक विराट असीम स्वरूप वह है जो हमारे चारों ओर दिग-दिगन्त में व्याप्त है। सामान्य बुद्धि इसे समझ नहीं पाती, न इसे परिपूर्ण रूप में जाना जा सकता है। दूसरा स्वरूप यह है जिससे जीव जुड़ा हुआ है। एक को परब्रह्म एवं दूसरे को परमात्मा कहते हैं। पहला सृष्टि की नियम व्यवस्था, गतिचक्र इत्यादि का नियंत्रण कर्त्ता है, स्फुल्लिगों के रूप में इसी दिव्य ज्योति का प्रकाश भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है।

आदर्शभूतसत्ता तु परमात्मन एव सा ।
युज्यते मानवैर्योग्यैरनुरूपैरलं मुदा ।। १८ ।।
अनुरूपत्वमेवैतदनुकूलत्वमेव च ।
उच्यते पात्रता तां च प्राप्तुमेवाप्त पूरुषाः ।। १९ ।।
उपासनासाधनानां विधानानि व्यधुर्न तु ।
स्तवनोपक्रमस्यास्ति प्रभोर्वोपहृते रतिः ।। २० ।।
पात्रतां विकसितां कृत्वा मनुष्यः परमात्मनः ।
अनेकानेकदिव्यानुदानान्यासादयत्ययम् ।। २१ ।।

टीका- आदर्शों की प्रतीक परमात्म-सत्ता उन्हीं मनुष्यों के साथ जुड़ती-प्रसन्न होती है, जो उसके अनुरूप हैं । इस अनुरूपता-अनुकूलता को ही पात्रता कहते हैं । पात्रता विकसित करने के लिए ही आप्तजनों ने उपासना और साधना का विधान बनाया है। ईश्वर को किसी स्तवन-उपक्रम या उपहार की आवश्यकता नहीं है। पात्रता विकसित करके ही मनुष्य परमात्मा से अनेकानेक दिव्य अनुदान प्राप्त करता है ।। १८-२१ ।।

व्याख्या- परमात्मा उपयुक्त पात्र के साथ ही जुड़ता, सघनता स्थापित करता है और अनुदान वर्षा के माध्यम से अपनी प्रसन्नता-उल्लास व्यक्त करता है। इसके लिये उन्हीं गुणों को अपने जीवन में उतारना होता है जिनका समुच्चय परमात्मसत्ता में है । इतना करने भर से वह पात्रता पा लेता है जो उसे ईश्वर के साथ बैठने योग्य अधिकार दे देती है। पात्रता अर्थात् वह गठ-बंधन जो आत्मसत्ता को परमात्मसत्ता से जोड़कर आदान-प्रदान का क्रम आरम्भ कर देता है। भक्त की गुण कर्मों की उत्कृष्टता व आदर्शों के प्रति समर्पण तथा भगवान की अनुकम्पा यह प्रवाह फिर सतत चलने लगता है।

गुणकर्मस्वभवेषूत्कृष्टत्वस्याभिवृद्धिका ।
परमेशस्य मुख्या साऽनुकम्पा विद्यते ध्रुवम् ।। २२ ।।
एतदाश्रित्य व्यक्तित्वं परिष्कृतमथो भवेत् ।
फलतोऽन्तः प्रखरतां बाह्येससाधु भावनाम् ।। २३ ।।
वर्द्धमानां सदा पश्यत्यलं द्वे यस्य चागते ।
विभूती वस्तुनस्तस्य नास्ति कस्यापि न्यूनता ।। २४ ।।

टीका- गुण-कर्म-स्वभाव में उत्कृष्टता की अभिवृद्धि निश्चित ही परमेश्वर की प्रमुख अनुकम्पा है। इसी के सहारे व्यक्तित्व परिष्कृत होता है। फलतः उपलब्धकर्ता अन्तः-क्षेत्र में प्रखरता और बाह्यक्षेत्र में सद्भावना बढ़ती देखता है। जिन्हें ये दो विभूतियाँ मिलीं, उन्हें किसी भी वस्तु की कमी नहीं रहती ।। २२-२४ ।।

व्याख्या- जब भी प्रभु की कृपा बरसती है तो साधक के अन्तरंग में सद्गुणवृद्धि के रूप में तथा बहिरंग में स्वभाव में सुसंस्कारिता के समावेश के रूप में। यदि इतना परिवर्तन न दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि साधक ने साधना नहीं मात्र समयक्षेप किया, उसकी आवाज ईश्वर तक नहीं पहुँची। साधना की सच्ची फलश्रुति है मनुष्य की अपने आंतरिक दुर्गुणों से संघर्ष लेने योग्य प्रचण्डता और अपने व्यवहार क्षेत्र में सद्भाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का विस्तार। हम पाते यह हैं कि मनुष्य अन्त: के प्रति (अपने दुर्गुणों-स्वभाव में बैठी दुष्प्रवृत्तियों-कुसंस्कारों के प्रति) तो दयालु होता है परन्तु बाह्यक्षेत्र में कड़ा एवं कटु। जब यह स्थिति उलटने लगे तो मानना चाहिए कि साधक की साधना सफल रही-व्यक्तित्व का परिष्कार हुआ और यही प्रभु की अनुकम्पा-विभूति वर्षा है।

ईश्वरस्य तु सद्भक्ति: साधकं मान्य सद्गुणै: ।
परिपूर्णं विनिर्माति सहैवोदारतां तथा ।। २५।।
ददाति येन कार्यं स्वं पूरयन्न्यूनतस्तथा ।
उपलब्धेर्लाभयुतं कर्तुं शक्येत भूतलम् ।। २६।।
एतादृशास्तु भक्ता ये भूसुरास्ते तु निश्चितम् ।
अयाचितमजस्रं ते लभन्ते योगमैश्वरम् ।। २७।।

टीका- सच्ची ईश्वर भक्ति साधक को मानवी सद्गुणों से परिपूर्ण बनाती है। साथ ही ऐसी उदारता प्रदान करती है कि अपना काम न्यूनतम में चलाकर उपलब्धि से विश्व-वसुधा को लाभान्वित किया जा सके। ऐसे भक्तजन इस धरती के देवता होते हैं। उन्हें बिना माँगे ही ईश्वर का अजस्र सहयोग मिलता है।। २५-२७।।

व्याख्या- भक्ति का प्रमाण यह नहीं कि कौन क्या-क्या सिद्धि पा सका। अपितु ईश्वर भक्ति मनुष्य में ऐसी उदारमना वृत्ति का समावेश करती है कि व्यक्ति अपनी नहीं सारी मानवता की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझता है। इसके लिये अपने अंत: में सद्गुणों की वृद्धि कर वह स्वयं औसत नागरिक का जीवन जीता है ताकि सृष्टि के सभी प्राणी उपलब्ध साधनों का आवश्यकतानुसार उपभोग कर सकें।

ईश्वरानुग्रहमात्मविश्वासं योऽधिगच्छति ।
समर्थ: स तथा मन्ये कुबेरेन्द्रानुकम्पित: ।। २८।।
इमान्याप्तुमेकमात्रमुपायो योग्यतोदय: ।
सघनात्मीयता चास्य हेतोर्योज्येश्वरेण तु ।। २९।।
अनुशासनं प्रभोस्तस्य स्वीकर्त्तव्यं भवत्यपि ।
महते समर्पितात्मानस्तद्रूपसमतां गता: ।। ३०।।

टीका- आत्म-विश्वास और ईश्वर अनुग्रह उपलब्ध कर लेने वाला व्यक्ति इतना समर्थ सम्पन्न होता है, मानो उसे इन्द्र-कुबेर का सहयोग मिल गया। इन्हें प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है-अपनी प्रामाणिकता विकसित करना। इसके लिए ईश्वर के साथ सघन आत्मीयता जोड़नी होती है, उसका अनुशासन अपनाना होता है। महान् के साथ समर्पण-विसर्जन करने वाले तद्रूप होते देखे गये हैं ।।२८-३०।।

व्याख्या- सद्गुणों की अभिवृद्धि व्यक्ति में आत्म विश्वास बढ़ाती है। अपने पर विश्वास ही ईश्वरीय सत्ता में विश्वास है-इसे ही सच्ची आस्तिकता कह सकते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रभु की कृपा सामर्थ्य के रूप में (इन्द्र का सहयोग) तथा सम्पन्नता के रूप में (कुबेर का सहयोग) पाते हैं, अपनी विभूतियों का सदुपयोग कर स्वयं धन्य बनते हैं, अनेकों को कृतार्थ कर जाते हैं ।

साधनाऽऽराधनोपासनानां तु त्रिभिरीश्वर: ।
उपायैर्जीवसत्तायां प्रवेशं लभते ध्रुवम् ।। ३१।।
देवोपमचरित्रं च निर्मातुं प्रेरयत्यसौ ।
मनुष्यमेतदालोकानुरूपं ये चलन्ति ते ।। ३२।।
भक्ता असीम सामर्थ्यं प्राप्नुवन्ति यथा च ते ।
आश्रयं कंचनान्यं तु न भजन्ति मुनीश्वरा: ।। ३३।।
सर्वाभ्यश्च दिशाभ्यस्तु वर्षतीव तथांजसा ।
सहयोगोऽनुकूलायां स्थितौ सौभाग्य सम्पदा ।। ३४।।

टीका- उपासना, साधना, आराधना के तीन उपायों से ईश्वर, जीवसत्ता में प्रवेश करता है तथा मनुष्य को देवोपमचिन्तन-चरित्र विनिर्मित करने की प्रेरणा देता है। इस आलोक के अनुरूप साहसपूर्वक चलने वाले, भक्तजन इतनी असीम सामर्थ्य प्राप्त करते हैं कि हे मुनीश्वरो ! फिर उन्हें अन्य किसी का सहारा लेना नहीं पड़ता। उन पर हर दिशा से सहयोग अनायास ही बरसता है, जैसे अनुकूल परिस्थितियों में सौभाग्य-सम्पत्ति आदि ।। ३१-३४।।

व्याख्या- अपने गुण-कर्म-स्वभाव का परिष्कार, अन्दर विद्यमान दिव्य सत्ता पर विश्वास तथा प्रामाणिकता का परिचय देकर मनुष्य इस योग्य बन जाता है कि ईश्वरीय आलोक उसके अन्दर प्रवेश कर सकें । इसके लिये जो उपाय अपनाने होते हैं वे भी अपने स्थान पर अनिवार्य हैं, उपासना-साधना-आराधना के रूप में जो विविध उपक्रम अपनाने होते हैं वे इसी निमित्त होते हैं।

(१) उपासना-उपासना अर्थात् आदर्शों के समुच्चय परब्रह्म के साथ अधिकाधिक समीपता स्थापित करना। उसकी प्रेरणाएँ अधिकाधिक मात्रा में आत्मसात् करना। सान्निध्य की भक्ति भावना उभारना और चन्दन वृक्ष के समीप उगने वाले वृक्षों की तरह अधिकाधिक सुरभित बनते जाना। क्रमश: अग्नि और ईंधन जैसी एकात्मता स्थापित करना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना का अर्थ है समीपता। यों तो भगवान कण-कण में संव्याप्त हैं, ओत-प्रोत हैं पर यह समीपता उथली है, गहरी नहीं। अपने को ईश्वर के समकक्ष-तद्रूप बनाने के लिए उसकी समीपता का उपक्रम बनाना पड़ता है। सामीप्य संगति का माहात्म्य सर्वविदित है। यदि ईश्वर के पास बैठकर भी मानव जीवन घिनौना रहा तो यह उपासना नहीं-बाह्योपचार भर है। ईश्वर उत्कृष्टताओं का भण्डार है। उसकी समीपता से भी वैसी ही विशेषताएँ अंदर बढ़नी चाहिए। चंदन के समीप उगे झाड़-झंखाड़ तक सुगंधित हो जाते हैं। कीट-भृंग का, टिड्डे का हरी घास में रहने से हरे होने का उदाहरण सर्वप्रसिद्ध है। उपासना सच्ची तभी है जब जीवन में ईश्वर घुल जाये।

(२)साधना-साधना का अर्थ है जीवन-साधना। आत्मनिरीक्षण आत्मशोधन, आत्मनिर्माण, एवं आत्मविकास की अन्तः-चेतना उत्पन्न करने के लिए स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन का नियमित प्रबन्ध करना। इस माध्यम से अन्तर्जगत का पर्यवेक्षण कर अभ्युदय का पथ-प्रशस्त करना। अन्तरंग में सुसंस्कारिता का अभिवर्धन और व्यवहार में सज्जनोचित सभ्यता का अभ्यास करना। इन निर्धारणों का संकल्पपूर्वक स्वभाव-अभ्यास का अविच्छिन्न अंग बनाने हेतु प्रयत्नरत रहना। संक्षेप में यही है जीवन साधना जिसमें अनगढ़ को सुदृढ़ बनाया जाता है इसी प्रयास से नर को नारायण बनने का सौभाग्य मिलता है।

वन्य पशुओं के सधने से पालतू हो जाने, किसान की साधना द्वारा ऊबड़-खाबड़ ऊसर जमीन के उर्वर हरीतिमा युक्त हो जाने के उदाहरण ऐसे हैं जो बताते हैं कि साधना के माध्यम से मानव-जीवन को एक उद्यान की तरह पुष्पित-पल्लवित किया जा सकता है। साधना में अपने चिन्तन को उत्कृष्ट और कर्तृत्त्व को आदर्श बनाने के लिये हर पल प्रयत्नशील रहने की सुनिश्चित योजना बनाकर चला जाता है। उपासना कुछ क्षणों की हो सकती है पर साधना अनवरत चलनी चाहिए।

(३)आराधना-लोकमंगल के लिए समाज को अपने उपार्जन-श्रम-समय-सम्पदा का अंश अर्पित करना। सेवा धर्म द्वारा समाज ऋण से मुक्ति, ईश्वरीय अपेक्षा की पूर्ति एवं सर्वतोमुखी प्रगति के तीनों ही उद्देश्य इस उदार परमार्थ परायणता के बदले ही खरीदे जाते हैं।

तमुवाच महाप्राज्ञः श्वेतकेतो ! समर्चना ।
प्रभुसम्पर्किणी वाग्भिरुपचारोपहारकैः ।। ३५ ।।
सदृशैः साधनैर्हीनैः सम्भवेत्किन्तु तस्य ताम् ।
लब्धुं दयामपेक्ष्योऽयमात्मोत्साही च पावनः ।। ३६ ।।

टीका- महाप्राज्ञ ने कहा-हे श्वेतकेतु ! ईश्वर से सम्पर्क जोड़नेवाला, भजन-पूजा तो वचन, उपचार, उपहार जैसे नगण्य साधनों से भी हो सकता है, पर उसकी अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए अपने को पवित्र-प्रखर बनाना होता है ।। ३५-३६ ।।

व्याख्या- महाप्राज्ञ ईश्वर-जीव के परस्पर सम्मिलन-संयोग के दर्शन व प्रक्रिया को समझाते हुए श्वेतकेतु से कहते हैं कि जान-पहचान वाला संबंध तो स्थापित कर लेना आसान है, पर ऐसा सम्पर्क जिसके बदले में दैवी अनुदान बरसने लगें, ईश्वरीय कृपा अपने अन्दर प्रवेश करने लगे तभी सम्भव है जब स्वयं को निश्छल व तेजस्वी बना लिया जाय। बाह्योपचार तथा स्तवन-भजन-पूजन ईश्वर से सम्पर्क स्थापित कर लेने के माध्यम भर हैं। इसके साथ यदि अन्तरंग वैसा ही दीन-मलीन तथा दुर्बल बना रहा तो यह सम्पर्क एकांगी और अधूरा ही है। हमारी आवाज पहुँचे पर उसका उत्तर न मिले तो समझना चाहिए, यह प्रयास असफल है। पवित्रता अर्थात् निश्चलता एवं प्रखरता अर्थात् तेजस्विता ये दो शर्तें पूरी होने पर विद्युत घर से ऊर्जा प्रवाहित होने की तरह प्राण प्रवाह साधक के अन्दर होने लगता है। सच्ची भक्ति यही है, शेष तो मात्र कलेवर है।

तथोदारमना एवं परमार्थे रतो भवेत् ।
सर्वेष्वात्मानमेवं ये पश्यन्त्यात्मनि तानपि ।। ३७ ।।
वण्टयन्ति सुखं दुःखं स्वयं गृह्णन्ति पूरुषा ।
वसुधैव कुटुम्बं च येषामेतच्चराचरम् ।। ३८ ।।
उदारचेतसस्त्वेवं मनुष्याः सत्तया प्रभोः ।
घनत्वंयातिस्वीयाभिःसाधनाभिस्तु कर्मणाम् ।। ३९ ।।

टीका- साथ ही उदारमना एवं परमार्थरत रहना पड़ता *है। जो सबमें अपने को, अपने में सबको देखते हैं, जो दुःख बँटाते और सुख बाँटते हैं, जिनके लिए समस्त संसार अपना कुटुम्ब है-ऐसे उदारचेत्ता मनुष्य अपनी कर्म साधना से परमात्म-सत्ता के साथ घनिष्ठ होते जाते हैं ।। ३७-३९ ।।*

व्याख्या- भगवान की दृष्टि में वही सच्चा भक्त है जो दूसरों के कष्ट में सहभागी बनता है व अपना सुख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

औरों को बाँटता है। भले ही वह पूजा अर्चा न कर पाए ,अपनी इस परमार्थयुक्त कर्म साधना से ही वह ईश्वर का प्रिय पात्र बन जाता है।

सद्भावैश्च सुसम्पन्ना: सत्कर्मनिरताश्च ये ।
आत्मानस्तुल्यरूपास्ते ज्ञेयास्तु परमात्मन: ।।४०।।

टीका- सद्भाव सम्पन्न सत्कर्म-परायण आत्माएँ परमात्मा के ही समतुल्य होती हैं।।४०।।

व्याख्या- जो कर्म सद्भाव से प्रेरितहोकर किये जाते हैं, वे ही फलित होते हैं। कर्म-साधनारत ऐसे ही व्यक्ति देव मानव कहलाते हैं और परमात्मा-सत्ता का अनुग्रह तथा जन-सम्मान पाते हैं।

आत्मशक्ते: पूरिका तु शक्ति: सा परमात्मन: ।
अपेक्ष्यं बाह्यसाहाय्यं महाभाग! तत: श्रृणु ।।४१।।
एतत्साधनया सर्वं सिद्धचत्यात्मनि सौम्य तु ।
परमात्मनि सम्प्रीते प्रीता: सर्वेऽलमञ्जसा ।।४२।।
अयाचितं च साहाय्यं कुर्वते येन चार्जिता: ।
भक्तश्रद्धा विप्रप्रज्ञा साधुनिष्ठा परार्थगा ।।४३।।
ज्ञातव्यं स्त्रोत एवैतत्सामर्थ्यस्य समागतम् ।
तस्य, नास्ति किमप्यत्र दुर्लभं ज्ञायतामिदम् ।।४४।।

टीका- हे महाभाग ! आत्मबल का पूरक परमात्मबल है। बाहरी सहायता अपेक्षित हो तो, इसी एक साधना से और सब सध जाता है। आत्मा और परमात्मा-दो को प्रसन्न कर लेने पर और सब अनायास ही प्रसन्न हो जाते हैं तथा बिना माँगे ही सहायता करते हैं। जिसने भक्त जैसी श्रद्धा, ब्राह्मण जैसी प्रज्ञा और साधु जैसी परमार्थ-निष्ठा अर्जित कर ली, समझना चाहिए उसे सामर्थ्य और सम्पन्नता का स्त्रोत हस्तगत हो गया, अब उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं-ऐसा समझना चाहिए ।। ४१-४४।।

व्याख्या- मानवी बल सीमित है। अपना पुरुषार्थ तो पूरा किया जाना चाहिए पर जब इसकी साधना पूरी हो तब ही परमात्मा से अनुदान पाने की बात सोचनी चाहिये। आत्मा से वरिष्ठ केवल एक ही शक्ति है परमात्मा। और किसी से माँगना, याचना करना मनुष्य को शोभा नहीं देता। मनुष्य को अपनी पात्रता अर्जित कर परमात्म सत्ता से स्वत: ही अनुदान बरसाने की आशा करनी चाहिए।

अपेक्ष्यन्ते लघूनां तु साहाय्यं महतां किमु ।
उपकुर्याल्लघुस्त्वात्मा महत: परमात्मन: ।।४५।।
तेनैव घनसम्बन्ध: कर्त्तव्यस्तोष्य एव स: ।
अनुकम्पां च तस्यैव प्राप्तुं तत्क्रियतां मन: ।।४६।।

टीका- छोटों को बड़ों की सहायता अपेक्षित होती है। छोटा बड़े की क्या सहायता करेगा । आत्मा से वरिष्ठ केवल परमात्मा है। उसी के साथ घनिष्ठता जोड़ने, सन्तुष्ट करने और अनुकम्पा अर्जित करने की बात सोचनी चाहिए।। ४५-४६।।

व्याख्या- *जिस प्रकार पूर्व में ऋषि ने कहा-'आत्म बल का पूरक परमात्म बल है' उसी प्रकार यहाँ भी इसी तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि मनुष्य सहायता का पात्र है तो भी मात्र अपने से वरिष्ठ परमात्मसत्ता से। इन दोनों आत्मा-परत्मामा के बीच और कोई पद नहीं है। मनुष्य को माँगना चाहिए तो अपने से वरिष्ठ-मूल उद्गम स्त्रोत परमात्म शक्ति से। उसी से अपना सम्बन्ध साधना, उपासना,आराधना आदि उपक्रम अपनाकर जोड़ा-और सशक्त किया जाता है ।। ४५-४६।।*

प्राणिनां दानसेवाभि: साधनाभिश्च श्रेष्ठताम् ।
प्राप्येश्वरात्तु संप्राप्ति: प्राणिभ्यश्च विभाजनम्।।४७।।
सत्या सम्पन्नता ह्यत्र सामर्थ्यं चापि विद्यते ।
जीवनस्य च सर्वस्य सार्थक्यं मन्यतामये ।।४८।।

टीका- प्राणियों को तो देने की, सेवा-साधना करते हुए उनसे वरिष्ठ ही बनना चाहिए। ईश्वर से पाना और प्राणियों को बाँटना इसी में सच्ची सम्पन्नता, समर्थता एवं जीवन की सार्थकता है ।। ४७-४८।।

व्याख्या- मनुष्य को जिस प्रकार अपने वरिष्ठ परमपिता से अनुदान मिलते हैं, उसी प्रकार उसे भी मिली वैभव-साधन-गुणकर्म रूपी सम्पदा को अपने पास संचित न रख निरन्तर वितरित करते रहना चाहिए । वरिष्ठ बनने की पहली शर्त यही है कि अपने को जो मिला उसे अन्यों को बाँटा, कि नहीं ? जो देने की उदारता दिखाता है वह पाता भी है। बादल समुद्र से भाप बनकर उठते हैं और उस जल को वापस पृथ्वी को लौटा देते हैं। वे अपने पास संचित रखते तो सृष्टि का संतुलन ही नष्ट हो जाता।

ईश्वरे दृढविश्वासा ये ते कर्मफलस्य हि ।
विधाने विश्वसन्त्येवं क्रियाया या: प्रतिक्रिया: ।।४९।।
उत्पद्यन्ते विलम्बेन ततो विचलिता न ते ।
सन्मार्गे प्रस्थितानां सद्धीचिविश्वासईश्वरे ।।५०।।
चिन्तयन्ति न तेऽनिष्टं भीता नैव विरोधिन: ।
असहाया हताशा न बलिष्ठा ईश्वराश्रिता: ।।५१।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न याचन्ते न कामन्ते भक्तास्ते क्षुद्रतां निजाम् ।
महत्तया तु युञ्जन्ति तत्साम्यं प्राप्नुवन्ति च ।।५२।।
स्तवोपचारपणनमनन्ता: कामनास्तत: ।
वञ्चकास्तु प्रकुर्वन्ति नहि भक्ता: कदाचन ।।५३।।

टीका- ईश्वर विश्वासी उसके कर्म फल विधान पर भी विश्वास करते हैं। अस्तु, वे क्रिया की प्रतिक्रिया उत्पन्न होने में देर लगने से भी विचलित नहीं होते। सन्मार्ग पर चलते हुए जिन्हें ईश्वर के साथ होने का विश्वास रहता है,वे न अनिष्ट की बात सोचते हैं, न विरोधी से भयभीत होते, न एकाकी होने की बात सोचकर हताश ही होते हैं। ईश्वर भक्त सच्चे अर्थों में बलिष्ठ होते हैं। भक्त न याचना करते हैं, न कामना वे अपनी क्षुद्रता को महानता के साथ जोड़ते और तत्सम बन जाते हैं। स्तवन-उपचार के बदले असीम मनोकामनायें पूरी करने की बात प्रपञ्चक करते हैं-भक्त-जन नहीं ।। ४९-५३।।

व्याख्या- आस्तिकता का अर्थ है ईश्वर के नियम-अनुशासन में दृढ़ विश्वास। वे जानते हैं कि कर्म का परिपाक-पारितोषिक बनता है। इसमें समय अवश्य लग सकता है पर उसके लिये धैर्य खोने की आवश्यकता नहीं। वे जानते हैं कि हर क्रिया लौटकर अपने ही ऊपर प्रतिक्रिया करती है। दुष्कर्म में निरत होने वाला व्यक्ति इस तथ्य को भुलाकर तात्कालिक सुख बटोरने में जुटा रहता है, कालान्तर में रोग-शोक-पतन के रूप में जब वे फलित होते हैं तो उसे प्रतिक्रिया का सिद्धान्त ज्ञात होता है। सन्मार्ग पर चलने वाला मन में यह दृढ़ विश्वास रखता है कि वर्तमान में भले ही यह घाटे का सौदा प्रतीत होता है, आगे चलकर जब भी इसके परिणाम आयेंगे वे सुखद ही होंगे।

श्वेतकेतो जगत्यत्र भौतिके दृश्यतामये ।
शरीरस्यबलं शस्त्रबलं संघबलं तथा ।।५४।।
बलं बुद्धेर्धनस्यापि कला कौशलजं बलम् ।
आत्मिके जगति प्रोक्तमेकमात्मबलं त्वलम् ।।५५।।
तस्योपार्जनमीशस्य भक्तिक्षेत्रे तु सम्भवम् ।
सच्चिन्तनेन सत्कर्म बीजस्यारोपणेन च ।।५६।।

टीका- हे श्वेतकेतु ! भौतिक जगत् में शरीर-बल, शस्त्र-बल,संगठन-बल, बुद्धि-बल,धनबल, कला-कौशल जैसी अनेकों सामर्थ्ये हैं, किन्तु आत्मिक जगत् में एक ही बल है-आत्मबल। उसका उपार्जन ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में सच्चिंतन और सत्कर्म का बीजारोपण करते हुए संभव होता है ।। ५४-५६।।

व्याख्या- थोड़ा सा धन जमा हो तो कालान्तर में ब्याज के साथ बढ़ता चला जाता है। मनुष्य के पास बहिरंग जगतकी सम्पदाओं से भी बढ़कर एक ऐसी आत्मिक सम्पदा है जिसे चिन्तन में श्रेष्ठता तथा क्रियाकलापों में उत्कृष्टता का समावेश कर बढ़ाया जा सकता है। अंतर्जगत की यह खेती दिव्य विभूतियों की फसल के रूप में पकती व व्यक्ति को विभूतिवान बनाती है। आत्मबल एक ऐसी विशिष्ट सम्पदा है जो मात्र मनुष्य को ही मिली है। यह बात अलग है कि इस रत्न भण्डार को बहुत कम पहचान पाते व उपयोग कर पाते हैं।

आत्मबलातिरिक्ता तु विभूतिर्नहि जीवने ।
मनुष्यस्य मताश्रेष्ठा विशालात्मा तु यो नर: ।।५७।।
सामर्थ्यवान् स एवास्ति सम्पत्या युक्त एव च ।
उपार्जनमिदं भुक्तावकृत्वा सावधानत: ।।५८।।
महत्सूद्देश्य केष्वेव योजनं महतामिदम् ।
वैशिष्ट्यं वर्तते येन जगत् सन्मंगलं भवेत् ।।५९।।

टीका- आत्मबल से बढ़कर मनुष्य जीवन में और कोई बड़ी विभूति नहीं है। जो इसका धनी है, उसे सामर्थ्यवान् पाया जाता है और सम्पत्तिवान् भी। इस उपार्जन को विलास में न खर्च करके सावधानी से महान् उद्देश्यों में नियोजित करना महामानवों की विशेषता है, जिससे जगत् मंगलमय बन जाता है ।। ५७-५९।।

व्याख्या- भौतिक सामर्थ्य की अपनी महत्ता है, उपयोगिता है पर आत्मिक विभूति से उस की कोई तुलना नहीं की जा सकती। जहाँ भौतिक सम्पत्ति को सम्पदा माना जाता है वहाँ आत्मिक सम्पत्ति को विभूति कहते हैं। एक सिद्धि है तो दूसरी ऋद्धि। इसे भगवान ने इस लिये नहीं दिया कि इसका दुरुपयोग व्यर्थ, अहं प्रदर्शन,बाजीगरी, सिद्धि, चमत्कार आदि में किया जाय। महामानव देवदूत इसीलिये इसे मंगलकारी कार्यों के लिये नियोजित रखते हैं, व्यर्थ नष्ट नहीं करते।

जीवनं देवता नूनं प्रत्यक्षं तस्य लभ्यते ।
अभ्यर्थनाभिरेतत्सत्परिणामपरम्परा ।।६०।।
जीवनं नोपहारोऽस्ति प्रभो:प्रतिनिधिस्तु तत् ।
जीवनोपासनामूला सिद्ध्यतीशस्य साधना ।।६१।।
प्रतिफलानि तस्यास्तु सामान्यं कुर्वते जनम् ।
असामान्यं ध्वनत्येतज्जीवो ब्रह्मैव नापर: ।।६२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- जीवन प्रत्यक्ष देवता है। उसकी अभ्यर्थना करने से हाथों-हाथ सत्परिणामों की प्राप्ति होती है। जीवन को ईश्वर का उपहार नहीं, प्रतिनिधि कहा गया है। जीवन-साधना से ही ईश्वर-साधना सधती है उसी के प्रतिफल सामान्य असामान्य बनाते हैं। ***जीवो ब्रह्मैव नापरः*** *कथन इसी को ध्वनित करता है ।।६०-६२।।*

व्याख्या- जीवन भगवत् सत्ता की साकार प्रतिमा है। जो भी कुछ प्राप्त किया जा सकना सम्भव है, इसी देवता की उपासना से अर्जित किया जा सकता है, इसी तथ्य को ऋषि ने पहले भी अध्यात्म दर्शन प्रकरण में स्पष्ट किया है। यहाँ वे और भी सशक्त स्वर में जीवन साधना को-अपने आपे को महान बनाने की तपश्चर्या पर बल देते हुए कहते हैं कि जीव-बह्म का ही अंश होने से हमेशा उसे ब्रह्म जैसा ही सशक्त सामर्थ्यवान-गुण सम्पन्न होने की बात सोचनी चाहिए। इसी साधना ने सामान्य से व्यक्तियों को असामान्य बनाया है। पर बहुसंख्य व्यक्ति इस देवता को- चेतना की प्रतीक सत्ता को जान नहीं पाते और हेय सा जीवन बिताते रहते हैं।

श्वेतकेतो ! मानवोऽयं महान् पूर्णाद्यतोद्भुवम् ।
उत्पन्नस्तथ्यतस्तेन सोऽपिपूर्णोऽस्ति मन्यताम् ।।६३।।
कषायकल्मषावृत्तो दरिद्रो दीन एव च ।
शिथिलीकरोति यावच्च मालिन्यभवबन्धनम् ।।६४।।
सामीप्य सरलं तस्य तावदीशस्य संभवेत् ।
ईश्वरस्य समीपे यः सामर्थ्यमधितिष्ठति ।।६५।।

टीका- हे श्वेतकेतु, मनुष्य निश्चय ही महान् है। वह ईश्वर से उत्पन्न होने के कारण तथ्यतः पूर्ण ही है, कषाय-कल्मषों से आवृत्त होकर ही वह दीन-दरिद्र बनता है। मलीनता के भव-बन्धनों को जो जितना शिथिल करता है उसके लिए ईश्वर की समीपता उतनी ही सरल बनती जाती है। जो ईश्वर के निकट, है,उसे सामर्थ्य का अधिष्ठाता माना जाता है।। ६३-६५ ।।

व्याख्या- मनुष्य महान है, अपने में समग्र है। यह मात्र इस कारण कि वह ब्राह्मी सत्ता का ही एक अंश है। जिस प्रकार बुझती आग को प्रदीप्त करने के लिये राखरूपी मलीन आवरण हटाना पड़ता है उसी प्रकार मनुष्य पर भी दैनन्दिन जीवन में छाये कषाय-कल्मष को मिटाने की आवश्यकता पड़ती है। ये आवरण अमरबेल की तरह होते हैं जो वृक्ष से पोषण लेती है और उसके ऊपर छाकर उसे शुष्क कर डालती है। यदि जीवसत्ता को परमपिता के सामीप्य का लाभ पाना हो तो उसे इन बन्धन की जंजीरों को तोड़ना ही होगा। मनुष्य दीन-हीन बनता है अपने ही कारण,ईश्वर के समकक्ष बनने का श्रेय पाता है तो वह भी मात्र अपने ही बलबूते।

अरण्यसाधनायां हे ब्रह्मविद्याभिसाधनाः ।
ब्रह्मवेत्तार! आत्मीयं सामर्थ्यं ज्ञायतां भृशम् ।।६६।।
विश्वासस्तत्र कर्तव्यं तच्च वर्धयतानिशम् ।
बलिष्ठतायै साहाय्यं यद्यपेक्षेत भिक्ष तत् ।।६७।।
सहैवात्र च विज्ञेयस्त्वैश्वरोऽनुग्रहः सदा ।
अनुरूपः पात्रताया लभ्यते नात्र संशयः ।।६८।।

टीका- हे आरण्यक साधना में, ब्रह्मविद्या की साधाना में निरत ब्रह्मवेत्ताओ ! आत्मा की सामर्थ्य को समझो उस पर विश्वास करो और बढ़ाओ। बलिष्ठता के लिए यदि सहायता की आवश्यकता पड़े तो ईश्वर से माँगो साथ ही ध्यान रखो पात्रता के अनुरूप ही दैवी अनुग्रह उपलब्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं ।। ६६-६८।।

व्याख्या- ऋषि यहाँ पूर्व कथन की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि अध्यात्म पथ पर चलने वाले हर जिज्ञासु को एक ही तथ्य याद रखना चाहिए-अपनी सामर्थ्य पर दृढ़ विश्वास रखो, वह मूल बीज है जो वृक्षरूप में फलित होकर कृतकृत्य करता है पर उसे भुलाकर प्रभु से याचना मत करो। अपनी सामर्थ्य जब चुक जाये तब प्रभु से माँगो। आत्म विश्वास को याद कर कभी गर्व भी मत करो। यदि तुम सुयोग्य न हुए, उसकी कृपा के पात्र सिद्ध न हो सके तो उसकी कृपा कभी नहीं मिलेगी।

विडम्बनाऽथ दारिद्र्यं वैपन्यंच विभीषिकाः ।
दृश्यन्ते सकंटादीनि संसारे यानि तानि तु ।।६९।।
निकृष्टतोदितानीह चिन्तनस्याथ मन्यताम् ।
दुश्चारित्र्योदितान्येव भ्रष्टतामूलकानि च ।।७०।।

टीका- संसार में दरिद्रता, विपन्नता, विडम्बना, विभीषिका के जो अनेकानेक संकट दृष्टिगोचर होते हैं, वे मात्र चिन्तन में निकृष्टता और चरित्र में भ्रष्टता बढ़ जाने के कारण ही हैं ।। ६९-७०।।

व्याख्या- पूर्व में पूछे गये जिज्ञासु श्वेतकेतु के प्रश्न का समाधान करते हुए व्यावहारिक पक्ष पर आते हुए ऋषि पिप्पलाद कहते हैं कि सूक्ष्म जगत का विक्षोभ मानव जन्य ही है जो दरिद्रता एवं दैवी प्रकोपों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। चिन्तन में जब तक परिवर्तन न होगा, व्यवहार जब तक नहीं सुधरेगा, संव्याप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियाँ और भी विषम होती चली जायेंगी। इसी धरती पर स्वर्ग और नरक देखना हो तो चिंतन-चरित्र की इन प्रतिक्रियाओं के रूप में देखा जा सकता है।

यद्यात्मशोधनेनाथ चात्मनिर्माणकेन च ।
व्यक्तित्वं विकसेत्तर्हि पलायन्त इमान्यपि ।।७१।।
यथा सूर्योदये जाते न ज्ञायन्ते निशाचराः ।
कथं ब्रह्मोदये जाते भ्रष्टा माया विमोहयेत् ।।७२।।

टीका- यदि आत्म-शोधन और आत्म-निर्माण द्वारा व्यक्तित्व को विकसित किया जा सके, तो फिर समस्त संकट उसी प्रकार पलायन कर जाते हैं जैसे सूर्य उदय होने पर निशाचरों का कहीं अता-पता नहीं लगता। भला ब्रह्मज्ञान हो जाने पर भ्रष्टाचार की माया कैसे टिकेगी ।।७१-७२।।

व्याख्या- अपना व्यक्तित्व ऊँचा उठाने के लिये पुरुषार्थ करना होता है। यह पुरुषार्थ किसी भी सांसारिक पराक्रम से बढ़कर है। अपने चिन्तन की निकृष्टता का निवारण और सद्विचारों की स्थापना उसी प्रकार है जैसे प्रातःकाल होते ही अन्धतमिस्रा का मिट जाना। भगवान प्रकाश का पुंज है। उसके और जीवात्मा के बीच जो अन्धेरा है, गहरी खाई है उसे मिटाना व पाटना-यह पराक्रम-पुरुषार्थ सम्पादित किये बिना उसकी एक किरण पाने की आशा करना भी व्यर्थ है।

ऋषिभिर्मानवानां तु दुःखदारिद्र्य कारणम् ।
पतनस्य पराभूतेर्भिन्नत्वं लोकितं द्वयोः ।।७३।।
न्यूनतां तामपाकर्तुं स्वस्मादन्येभ्य एव च ।
व्यचारयन् विभिन्नाँस्तानुपायान् विश्वमंगलान् ।।७४।।

टीका- मनुष्यों के दुःख-दारिद्र्य का पतन-पराभव का कारण आत्मा और परमात्मा की विलगता को ऋषियों ने जाना और वे उस कमी को अपने में से तथा दूसरों में से हटाने के लिए, कल्याणकारी विभिन्न उपाय सोचने लगे ।। ७३-७४।।

व्याख्या- महर्षि पिप्पलाद की ब्राह्मी चेतना, आत्मतत्व एवं दैवी अनुदान सम्बन्धी व्याख्या से सभी जिज्ञासुओं को स्पष्ट भान हो गया कि मानवी पतन के लिये परिस्थितियाँ नहीं, आत्मतत्व पर छाये कषाय-कल्मष ही उत्तरदायी हैं। ऋषियों ने समझ लिया कि विपन्नताओं का मूल स्रोत हमारा अपना आपा ही है। यदि अन्तः क्षेत्र की कालिमा को धोया जा सके तो परमात्मा का प्रकाश अन्दर पहुँचा सकना हर किसी के लिये सहज सम्भव है। हम अपनी कमियों को पहचानें और इन्हें हटाने और उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियाँ-स्थापित करने का उपाय सोचें, इसी में अपना व मानव मात्र का कल्याण है।

दूरीभूतस्तु सन्देहोऽयं समेषां विपत्तयः ।
अन्योत्पादिताः सन्ति यतः पातोत्थिती तथा ।।७५।।
मनुष्यभूमिकाजन्ये तन्मनुष्यस्यं स्वां दिशाम् ।
शोधयित्वानुकूल्ये च प्रतिकूल्यं विवर्तितुम् ।।७६।।
कठिनं नेति तथ्यं स पिप्पलादो महामतिः ।
सगाम्भीर्यं यथाऽवोचत्ततस्तेषां स्वमान्यता ।।७७।।
पुष्टा सात्मनि संयुक्ते परमात्मनि निश्चितः।
संकटानां समाधाने विश्वासः सर्वथा ततः ।।७८।।
द्वितीयाह्निकचर्चायां सर्वे जिज्ञासवश्च ते ।
यथार्थतायुतं पूर्णं समाधानं च लेभिरे ।।७९।।
तृप्ता तथापि जिज्ञासा तेषां नैव तथा च ते ।
सन्दर्भेऽस्मिन्ननेकाश्च पिपृच्छाहृदिविभ्रतः ।।८०।।
साधकाः सत्रपूर्तौ ते नित्यनैमित्तिकां ततः ।
साधनां कर्तुकामास्ते गताः संतति पूर्वकम् ।।८१।।

टीका- सभी का यह सन्देह दूर हो गया कि विपत्तियाँ दूसरों द्वारा थोपी जाती हैं। जब उत्थान-पतन के लिए स्वयं ही भूमिका बनाता है, तो उसे अपनी दिशा-धारा सुधार कर प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलना तनिक भी कठिन नहीं होना चाहिए। यह तथ्य महाप्राज्ञ पिप्पलाद ने जिस गम्भीरता के साथ समझाया उससे उनकी पूर्व मान्यताओं को और भी अधिक बल मिला और आत्मा को परमात्मा से मिला देने पर उनका सुनिश्चित विश्वास हो गया। दूसरे दिन भी इस चर्चा से सभी जिज्ञासुओं को यथार्थता से भरा पूरा समाधान मिला। इतने पर भी उनको सर्वथा तृप्ति न मिली। इस सन्दर्भ की कई और भी बातें कल पूछने की इच्छा मन में रखते हुए साधकगण सत्र अवसान होने पर नित्य-नैमित्तिक साधना के लिए अभिवादन पूर्वक विसर्जित हो गये ।। ७५-८१।।

व्याख्या- मनुष्य का यह भ्रम कि हमारी प्रतिकूलताओं का कारण बहिरंग जगत है-इस तथ्य से मिट जाता है कि जैसी मनःस्थिति एवं आचरण वह बनाता है-वैसा ही उसका संसार होता है। जब भौतिक जगत में बड़ी-बड़ी नदियों की धारा को बदल कर इनकी दिशा बदली जा सकती है तो अन्तर्जगत के इस भागीरथी पराक्रम द्वारा जीव को ब्रह्म से मिलाना, स्वयं को उत्कृष्टता से जोड़ सकना पूरी तरह सम्भव है। दो तार मिलते ही दोनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिशाओं में प्रवाह आरम्भ हो जाता है। एक बार सम्पर्क जुड़ते ही दैवी अनुदान अजस्र मात्रा में बरसने लगता है। फिर मनुष्य देवात्मा-देवदूत-ऋषि स्तर का हो जाता है। यह किस विधा द्वारा किया जाय, इसकी जानकारी महर्षि पिप्पलाद ने दी और सबकी इस सम्बन्ध में बनायी मान्यताओं को और दृढ़ बनाया।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री पिप्पलाद-श्वेतकेतु ऋषि-सम्वादे "ब्रह्मक्षेत्रादजस्रमनुदानोपलब्धि" इतिप्रकरणो नाम ।। तृतीयोऽध्यायः ।।

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

संयमशीलता-कर्त्तव्यपरायणता प्रकरण

तृतीये दिवसे सत्र आरण्यक ऋषिः स तु ।
शृंगी पूर्व प्रसंगं तं स्मारयन्नाह्निकं ततः ।।१।।
शृंगी उवाच-
प्रास्तौषीत्स्वां नवीनां तां जिज्ञासा नतिपूर्वकम् ।
का सा देवता यस्या नरस्तूपासनेन हि ।।२।।
प्रत्यक्षं फलमाप्नोति सुखी भवति सोन्नतः ।
महाप्राज्ञो पिप्पलादो जगाद मानवस्य हि ।।३।।

टीका- तीसरे दिन आरण्यक सत्र में शृंगी ऋषि ने पिछले दिन के प्रसंग का स्मरण दिलाते हुए अपनी नई जिज्ञासा नम्रतापूर्वक प्रस्तुत की। शृंगी ने पूछा-वह कौन सा देवता है जिसकी उपासना से मनुष्य प्रत्यक्ष फल पाता और सुखी समुन्नत बनता है। महाप्राज्ञ पिप्पलाद ने कहा- ।। १-३।।

व्याख्या- प्रज्ञासत्र के पहले दो दिनों में जो चर्चा हुई वह जीव की अपने आप में पूर्णता व ईश्वर-जीव संबंधों के गूढ़ विवेचन से संबंधित थी। इस तत्व दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप जानने की जिज्ञासा शृंगी ऋषि यहाँ प्रकट करते हैं।

पिप्पलाद उवाच-
जीवनं देवता नूनं प्रत्यक्षमन्यदेवताः ।
परलोके कृपां कुर्वन्त्यात्मनो जीवनं परम् ।।४।।
सुसंस्कृतं च सज्जं च कर्त्तुंचेत्क्रियते भृशम् ।
उपासना ततस्तस्या लाभास्त्वस्मिन् हि जीवने ।।५।।
प्राप्यन्ते परलोकेऽपि सन्देहो नाणुरप्यहो ।
अत आवश्यकं यत्तज्जीवनं संस्कृतं भवेत् ।।६।।

टीका- मनुष्य का जीवन स्वयं ही प्रत्यक्ष देवता है। अन्य देवताओं की कृपा तो परलोक में मिलती है पर अपने जीवन को सुघड़, सुसंस्कृत बनाने की उपासना के लाभ तो इस जीवन में भी मिलते हैं, परलोक में भी। इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं। अतः जीवन को सुसंस्कृत बनाना आवश्यक है ।। ४-६ ।।

व्याख्या- महाप्राज्ञ पिप्पलाद कहते हैं कि यह स्वाभाविक है कि मनुष्य अध्यात्म विद्या की समुचित जानकारी होते हुए भी वह प्रतिफल न पा सके जो सहज ही अन्य मनुष्य व्यावहारिक ज्ञान के नाते पा लेते हैं। ईश्वर तो निराकार है। वे प्रेरणा भर देते हैं। उनकी उपासना-उनके समीप बैठने से क्या आशय है, इस असमंजस को खोलते हुए वे कहते हैं कि बिना शरीर धारण किए प्रत्यक्षतः कुछ देना सम्भव है भी नहीं, इसीलिए परमात्मसत्ता स्वयं जीवन देवता के रूप में विराजती है और साधना किए जाने पर समुचित परिणाम भी देती है। अन्य देवी-देवताओं की पूजा-उपासना के शास्त्रोक्त माहात्म्य तो परलोक में पुण्य प्राप्ति इत्यादि से सम्बन्धित हैं पर जीवन में सुसंस्कारिता का समावेश मनुष्य को इसी जीवन में समृद्धि और सामर्थ्य के अनुदान देकर उसे धन्य बनाता है। मनुष्य अपने ही चर्म चक्षुओं से इन सत्परिणामों को जीवन में सार्थक होते देखता है। दर्शन में इसी देवता की 'अयमात्मा ब्रह्म' कहकर उपासना की जाती है। ऐसे जीव-ब्रह्म की साधना प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही रूपों में फलित होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शृंगी उवाच-

सोत्सुकज्ञातुमैच्छत्स ऋषिः शृंगी कथं चसः ।
देवो जीवनरूपी तु पूज्योऽभ्योर्च्यो विबोधय् ।।७।।
उपचारः कोऽत्र ग्राह्यो यद् वरदानं ददातुसः ।
प्रसन्नः कानि चैवायं वरदानानि यच्छति ।।८।।
उपेक्षया च रुष्टश्चेत्ततो हानिश्च कीदृशी ।
आपतत्यपि, चेत्क्रुद्धो दुराचारफलेन सः ।।९।।
कस्याशंका ह्यनिष्टस्य महाभाग विबोधय ।
मूर्मप्रसङ्गमेत तु विस्तरादृषिपुंग व ! ।।१०।।
विधेस्तस्य नहि ज्ञानं सर्वसाधारणस्य तु ।
मर्मस्पर्शिनाऽनेन प्रश्नेन स ऋषीश्वरः ।।११।।
महाप्राज्ञः पिप्पलादः सगाम्भीर्यं जगाद च ।

टीका- शृंगी ऋषि ने उत्सुकतापूर्वक जानना चाहा-जीवन देवता की पूजा अभ्यर्थना कैसे की जाय ? उसे वरदान देने के लिए प्रसन्न करने के निमित्त क्या उपचार अपनाया जाय ? जीवन देवता प्रसन्न होने पर क्या वरदान देते हैं। उपेक्षा करने पर यदि वे रुष्ट होते हैं तो क्या हानि उठानी पड़ती है । यदि वे दुर्व्यवहार के फलस्वरूप क्रुद्ध हो उठें तो किस अनिष्ट की आशंका रहती है। हे महाभाग ऋषीश्वर ! इस मर्म प्रसंग को हमें विस्तारपूर्वक समझाएँ। उसके विधि-विधान की सर्व-साधारण को जानकारी है भी नहीं। मर्मस्पर्शी इस प्रश्न से वह ऋषिश्रेष्ठ महाप्राज्ञ पिप्पलाद गम्भीर होकर बोले ।। ७-११ ।।

व्याख्या- जिज्ञासु ऋषि जीवन देवता की उपासना की महत्ता महाप्राज्ञ के श्रीमुख से सुनकर अपनी उत्सुकता और भी गहन करते हैं। बिना नियम (विधि) और क्रम (विधान) जाने कैसे अनायास ही इस साधना को आरम्भ कर दिया जाय ? जन साधारण को तो यह भी ज्ञात नहीं है कि ये देवता रुष्ट भी होते हैं व प्रसन्न भी। ऐसे में चूक कहाँ व किस प्रकार होती है, उससे कैसे बचा जाय, इसका समाधान लोकहित को दृष्टिगत रख पूछा जाना उचित ही है।

पिप्पलाद उवाच-

जिज्ञासवः इह शृंगियुता मान्या मनीषिणः ।।१२।।
ध्यानेन श्रूयतां देवः जीवनं फलदायकः ।
प्रत्यक्षं तेन सार्धं च व्यवहारो यथा-यथा ।।१३।।
हस्तामलकवत्स्वं प्रभावं परिचाययेत् ।
प्रभावं तस्य माहात्म्यं द्रष्टुं सर्वत्र संभवेत् ।।१४।।
जीवनं भरितं नूनमनुदानैरजस्रगैः ।
येषां सदुपयोगेन परिणामाः समुत्सहाः ।।१५।।

टीका- पिप्पलाद बोले-जिज्ञासु शृंगी ऋषि समेत सभी उपस्थित मनीषिगण ! ध्यानपूर्वक सुनो, जीवन देवता प्रत्यक्ष फलदायक है। उसके साथ किया गया व्यवहार हस्तामलकवत् अपने प्रभाव का तत्काल परिचय देता है। उनका प्रभाव माहात्म्य हर कहीं दृष्टि पसार कर तत्काल देखा जा सकता है। जीवन अजस्र अनुदानों से लदा है। उनका सदुपयोग करने भर से उत्साहवर्द्धक परिणाम प्राप्त होते हैं ।। १२-१५ ।।

व्याख्या- किसी भी बहुमूल्य वस्तु को श्रृंगारदान में सजाकर सुरक्षित रख दिया जाय तो उसकी उपयोगिता कहाँ रही ? यदि इसके बदले में इससे प्राप्त धन को कहीं परमार्थ कार्य हेतु खर्च किया जाय तो पुण्य और यदि मूलधन के रूप में जमा कर दें तो ब्याज के रूप में राशि मिलने लगती है। जीवन देवता हर मनुष्य के भीतर बैठे हैं पर उनका प्रभाव व परिणाम तभी देखा जा सकता है जब अपनी दृष्टि चौड़ी की जाय। जीवात्मा की दूरदर्शिता एवं प्रामाणिकता इसी आधार पर परखी जाती है कि वह इस अनुदान को किसनी जिम्मेदारी व ईमानदारी के साथ प्रयुक्त करता है। जो परीक्षा में उत्तीर्ण होता है उसी की पदोन्नति होती है। जीवन सम्पदाके सदुपयोग की कसौटी पर खरे उतरने वाले ही भौतिक-आत्मिक जगत में श्रेय के भागी बनते हैं।

भ्रान्तेर्वशानुगास्तस्य महत्वं नैव मानवाः ।
जानन्ति याः समाश्रित्योपलब्धीर्दैवजीवनम् ।।१६।।
जीव्यतेऽत्रामृतं यच्च प्रापयन्त्यस्ततां तु तत् ।
असंयमस्य छिद्रेभ्यश्च्यावयन्तस्तु हन्त ते ।।१७।।
निम्बुकं च्युतनीरं तेऽनुगच्छन्तस्तथैव च ।
कंकालशेषकामास्ते दारिद्र्यं दूषयन्ति तु ।।१८।।

टीका- भ्रान्तिवश लोग उसका महत्व नहीं समझते और जिन उपलब्धियों के सहारे देव जीवन जिया जा सकता था, कितने दुःख की बात है उस अमृत को ऐसे ही असंयम के छिद्रों द्वारा बहाकर अस्त-व्यस्त करते रहते हैं। निचोड़े हुए नीबू की तरह वे छूंछ बनकर रह जाते हैं और दरिद्रता का रोनारोते हैं ।। १६-१८ ।।

व्याख्या- यह एक विडम्बना ही है कि जिस अमृत को अपने अन्दर मनुष्य धारण किये है उसे सतत गँवाता है और फिर अपने इस अभाव-दुर्भाग्य पर पछताता-रोता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी है। भगवान ने तो इसे यह सम्पदा इसलिये दी थी कि संयम द्वारा इसे संचित कर उसका सदुपयोग सुनियोजन कर वह अपना जीवन धन्य बनाता पर उस अज्ञान-भ्रान्ति को क्या कहें जो मनुष्य को पशुओं जैसा शिश्नोदर परायण, जीवन जीने को विवश कर देती है।

जीवनं कामधेनुर्गौः पातुं दुग्धं तदीयकम् ।
कठिनं नो सरन्ध्रेषु पात्रेषु यदि दुह्यते ।। १९।।
तर्हि सौभाग्यलाभस्तु कथं तस्याप्तुमिष्यते ।
असंयमस्य छिद्राणि रोद्धुं शक्यानि चेत्तदा ।। २०।।
हानिः सा न भवेद्यस्या कारणादीश्वरेण ना ।
निर्मितः सर्वसम्पन्नो दरिद्रातीह दीनवत् ।। २१।।
संघर्षस्थेयशक्तिः सा क्षीयते तु यतस्ततः ।
मानवः सहते कष्टान्यनेकानि च सर्वतः ।। २२।।

टीका- जीवन कामधेनु गौ है। उसका दूध पाने में कोई कठिनाई नहीं है, किन्तु यदि छेदों वाले पात्र में दुहा जायेगा तो उस सौभाग्य का लाभ किस प्रकार मिल सकेगा। असंयम रूपी छिद्रों को बन्द कर देने से उस हानि से बचा जा सकता है, जिसके कारण ईश्वर द्वारा सर्व सम्पन्न बनाया हुआ मनुष्य दीन-दरिद्र बन कर रहता है और संघर्ष में खड़ा रहने की स्थिति समाप्त हो जाने के कारण अनेकानेक कष्ट सहता है ।। १९-२२।।

व्याख्या- मनुष्य को विधाता ने प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जी सकने योग्य बनाया है। यह सामर्थ्य जीवट कहलाती है और इसका संचय कर सकना हर किसी के लिए सम्भव है। जीवन एक युद्धस्थली है जिसमें मनुष्य को सतत कामुक-प्रतिकूल विचारों से लेकर-चिर संचित प्रवृत्तियों तक एवं ऋतु काल की बदलती परिस्थितियों से लेकर वातावरण में अस्वाभाविक परिवर्तन से जूझना पड़ता है। जीवनी शक्ति, जो उसे मानसिक रूप से लड़ सकने योग्य साहसी एवं उसके शरीर संस्थान को रोगी होने से बचाती है एक ही अनुदान की परिणति है-संयम। जो इसे अपनाता है,वह न रोगी होता है न दुखी, जीवन-संग्राम में कभी पराजित नहीं होता तथा विच्छृंखलित अस्तव्यस्त विचार उसे प्रभावित नहीं कर पाते ।

संयम एवं संघर्ष एक दूसरे के पर्यायवाची हैं तथा असंयम की परिणति ही दीन-दरिद्रता, रोग-शोकों के रूप में होती है। जीवन देवता की उपासना तब ही भली प्रकार सम्भव है जब अपना जीवन-रसों को व्यर्थ बहाना छोड़कर मनुष्य उन्हें सृजनात्मक चिन्तन व कर्तृत्व में नियोजित करे।

शृंगी उवाच-

ऋषिः शृङ्गी पप्रच्छातः परं कतिविधानि तु ।
असंयमस्य छिद्राणि भगवन्नभिमतानि ते ।। २३।।
कथं तेभ्यो जीवनस्य रसश्च्योतति मानवाः ।
गृह्णन्त्यसंयमं किं ते परिणामात् विदन्ति नो।। २४।।
विबोधय रहस्यं मे भूतलं स्वर्गतां व्रजेत् ।
समाप्तिं दुःखदारिद्र्यं येन गच्छेच्च सर्वथा ।। २५।।

टीका- शृंगी ऋषि ने फिर पूछा- भवगन् ! वे असंयम रूपी छिद्र कितने प्रकार के हैं और उनमें होकर किस प्रकार जीवन रस निचुड़ जाता है। इस असंयम को लोग किस निमित्त अपनाते हैं और उसके दुष्परिणामों को क्यों नहीं समझ पाते ? इस रहस्य को समझायें ताकि यह भूतल स्वर्ग हो जाय तथा दुःख-दारिद्रय सर्वथा समाप्त हो जाय ।। २३-२५।।

व्याख्या- ऋषि की आतुरता मानव मात्र को सुखी तथा धरती को स्वर्गोपम परिस्थितियों से परिपूर्ण देखने की है। इसी जिज्ञासावश वे पूछते हैं कि मनुष्य क्यों और किस प्रयोजन से इस गर्त में जा गिरता है। बुद्धिबल-शरीर बल से सम्पन्न होते हुए भी वह असंयमजन्य हानियों को क्यों नहीं समझता ?

ऐसी ही जिज्ञासा असुरों द्वारा बारम्बार पराजित होने पर देवगणों ने प्रजापति से की थी ।

पिप्पलादः प्रशमयन्नौत्सुक्यं सारगर्भितम् ।
उत्तरं प्राददात्तत्र वाचा संयतया ततः ।। २६।।

पिप्पलाद उवाच-

प्रसन्नमुद्रयोवाच सम्पदो जीवनस्य तु ।
क्षेत्राणि सन्ति चत्वारि श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ।। २७।।
शक्तिरिन्द्रियसंबद्धा शक्तिः समयसंयुता ।
विचारशक्तिस्तुर्या च शक्तिः साधनरूपिणी ।। २८।।
आद्यास्तिस्रः प्रदत्तास्ता ईश्वरेण प्रयत्नतः ।
तिसृणां भौतिके क्षेत्रे तुर्याऽर्ज्या पौरुषाश्रया ।। २९।।

टीका- पिप्पलाद ने उत्सुकता को समाधान करने वाला सारगर्भित उत्तर सुसंयत वाणी में दिया। महाप्राज्ञ पिप्पलाद प्रसन्नमुद्रा में बोले-जीवन सम्पदा के चार क्षेत्र हैं, उन्हें सुनिये (१)इन्द्रिय शक्ति (२) समय शक्ति (३) विचार शक्ति और (४) साधन शक्ति। प्रथम तीन ईश्वर प्रदत्त हैं, चौथी को इन तीनों के संयुक्त प्रयत्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से भौतिक क्षेत्र में पुरुषार्थ द्वारा अर्जित किया जाता है ।। २६-२९ ।।

व्याख्या- जीवन सम्पदा के दो मूल विभाजन महाप्राज्ञ बताते हैं कि इन्द्रिय, समय, विचार शक्ति के रूप में जीवन देवता के माध्यम से मनुष्य को दैवी विभूतियाँ मिली हैं। जो भी इन्हें दैवी सम्पदा मानता है वह उतने महत्व भी देता है, कभी अपव्यय नहीं करता। साधना शक्ति न भी हो तो वह इन तीन के माध्यम से अर्जित की जा सकती है। शारीरिक सामर्थ्य-वाणी का सही उपयोग, समय सम्पदा का सुनियोजन तथा विचारों के बिखराव को रोककर एक ही उद्देश्य पर केन्द्रित करने पर अभावों से भरे संसार में रहते हुए भी व्यक्ति साधन एकत्र कर लेता है। साधन शक्ति इसी कारण भौतिक-लौकिक सामर्थ्य मानी गयी है तथा शेष तीन मनुष्य की अपनी विशिष्ट विरासत हैं जो भगवान ने उसे बड़ा सोच समझकर सदुपयोग करने के लिए ही प्रदान की हैं।

इन्द्रियेषु दशस्वेव प्रधाने द्वे तथेन्द्रिये ।
जिह्वोपस्थेति संज्ञे चऽऽहारंजिह्वाविवेकतः ।। ३०।।
गलाधश्चारयत्येषा शब्दानुच्चारयत्यपि ।
रतिर्म्मास्त्युपथस्य सन्ततेः कारणात्तथा ।। ३१।।
स्रावत्यागः, संयमस्तु जिह्वायास्तनुस्वाथ्यदः ।
मनोबलं तथाऽक्षुण्णं जनेनन्द्रियसंयमात् ।। ३२।।
जिह्वाऽसंयमजोऽजीर्णो दौर्बल्यं वर्धते यतः ।
रतिकर्मणि तथाऽऽतुर्यमयोग्यां संततिं तथा ।। ३३।।
यौनरोगाँश्चिन्तनं च विकृतं वर्धयत्यलम् ।
उभयासंयमे स्वास्थ्यं शारीरं मानसं पतेत् ।। ३४।।

टीका- दस इन्द्रियों में दो प्रधान हैं-एक जिह्वा दूसरी जननेन्द्रिय। जिह्वा आहार को जाँच परख कर गले के नीचे उतारने और वार्तालाप के लिए शब्दोच्चारण के काम आती है। जननेन्द्रिय का कार्य सन्तानोत्पादन के लिए रतिकर्म तथा स्रावों का परित्याग है। जिह्वा संयम शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी है और जननेन्द्रिय संयम से मनोबल अक्षुण्ण रहता है। जिह्वा के असंयमी होने से अपच होता है और दुर्बलता व रुग्णता बढ़ती है। रतिकर्म में आतुरता होने से अनुपयुक्त सन्तान, यौन-रोग एवं विकृत चिन्तन का दौर बढ़ता है। दोनों का असंयम रहे तो शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य नष्ट होकर रहता है ।। ३०-३४।।

व्याख्या- जिह्वा से हम स्वाद को दृष्टि में रख भोजन ग्रहण करते हैं तथा बोलते समय क्या सही-क्या गलत इसका ध्यान नहीं रखते तो यह रसना का असंयम एवं वाणी का असंमय कहलाता है। जिह्वा का शरीरगत स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। जिह्वा स्वाद की प्रधानता देकर ऐसे पदार्थ खाती रहती है जो अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी हैं। स्वाद में मात्रा बढ़ती है-फलतः पेट खराब होता है व असंख्यों रोग खड़े होते हैं।

संयमे समयस्यापि शैथिल्ये मानवस्ततः ।
अलसश्च प्रमादी च भवत्येतदवेहि तु ।। ३५।।
क्रियतेऽनियमितं यत्तदपूर्णं शिष्यते ध्रुवम् ।
समयस्योपयोगस्तु योजितेन श्रमेण हि ।। ३६।।
अलसो व्यस्त व्यक्तित्वो दीर्घजीवी भवन्नपि ।
आत्मजीविसमानैव भवन्त्यस्योपलब्धयः ।। ३७।।

टीका- समय संयम में शिथिलता रहने से मनुष्य आलसी प्रमादी बनता है-ऐसा समझो। आलसी अस्त-व्यस्त बहुत दिन जीने पर भी आत्म-जीवियों जितनी उपलब्धियाँ अर्जित नहीं कर पाता है। नियमितता न रहने से जो किया जाता है वह आधा-अधूरा रहता है। समय का सदुपयोग सुनियोजित श्रम से ही किया जा सकता है ।। ३५-३७।।

व्याख्या- आलस्य का अर्थ है शारीरिक श्रम से बचना तथा प्रमाद मानसिक जड़ता का नाम है। शरीर बल होते हुए भी व्यक्ति श्रम से जी चुराये तो उसे प्रमादी कहेंगे। हमारे सबसे समीपवर्ती शत्रु यही हैं, जो काल देवता की अवहेलना स्वरूप जन्म लेते हैं और जीवन सम्पदा का क्षय करते रहते हैं। समय का असंयम ही दोनों का मूल कारण है।

योजनाबद्धरूपेण कार्यनिर्धारणं यदि ।
तत्कालेन चनिर्वाहाद् विज्ञाः साफल्यमाययुः ।। ३८।।
समयाऽसंयमा ये तु ते भवन्त्यल्पजीविनः ।
वरमायुः किमप्यास्तांतेषां नृणांविचार्यताम् ।। ३९।।
ईश्वरेणप्रदत्तेयं समयस्य तु सम्पदा ।
योजयेत्तां श्रमेणाथ मनोयोगेन भूयसा ।। ४०।।
विभिन्नाः सम्पदाश्चापि विभूतीरर्जितुं क्षमाः ।
समयो जीवनं तच्च नाशयन्नश्यति स्वयम् ।। ४१ ।।

टीका- योजना बद्ध कार्य निर्धारण करने और उसका तत्परता पूर्वक निर्वाह करने से ही विज्ञजन अनेकानेक सफलताएँ अर्जित करते हैं। समझलो कि समय के असंयमी ही अल्पजीवी कहलाते हैं, भले ही उनकी आयु कुछ भी हो। समय ईश्वर प्रदत्त सम्पदा है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे श्रम मनोयोगपूर्वक नियोजित करके विभिन्न प्रकार की सम्पदायें, विभूतियाँ अर्जित की जाती हैं। जो समय गँवाता है उसे जीवन गँवाने वाला कहा जाता है ।। ३८-४१।।

सूक्ष्मस्तरस्य कर्मास्ति विचारः कार्यरूपकः ।
युज्यात्सत्सु विचाराणां प्रवाहं समयं यथा ।।४२।।
उपयोगिनां विचाराणामुत्कृष्टानां च सीम्निचेत् ।
चिंतनं सीमितं याति ह्युद्देश्ये सृजनात्मके ।।४३।।
महत्वपूर्णान्येतानि भूयः प्रतिफलानि च ।
उत्पादयन्ति गृह्णन्तिदेशायांजितमानासाः ॥४४॥
सफलास्तत्र जायन्ते विचाराणाममूलता ।
अस्तव्यस्तता चापि विक्षिप्तत्वं हि मन्यताम् ।।४५।।

टीका- विचार सूक्ष्म-स्तर का कर्म है। कार्य का मूल रूप विचार है। समय की तरह विचार-प्रवाह को भी सत्प्रयोजनों में निरत रखा जाय उपयोगी उत्कृष्ट विचारों की मर्यादा में चिन्तन को सीमाबद्ध रखने से वे सृजनात्मक प्रयोजनों में लगते हैं और महत्वपूर्ण प्रतिफल उत्पन्न करते हैं। मनोनिग्रह के अभ्यासी जिस भी दिशा को अपनाते हैं, उसी में सफल होकर रहते हैं। विचारों की अनगढ. अस्त-व्यस्तता एक प्रकार की विक्षिप्तता ही है ।। ४२-४५।।

व्याख्या- जिस प्रकार समय को योजनाबद्ध कर सफलता पायी जाती है उसी प्रकार विचार प्रवाह को भी सुनियोजित कर लक्ष्य विशेष से जोड़ कर लौकिक व आत्मिक जगत में लाभान्वित हुआ जा सकता है। मनुष्य के जो भी बहिरंग में कर्म दिखाई देते हैं वे विचारों की ही परिणति है।"जो जैसा सोचता है और करता है, वह वैसा ही बन जाता है "--इस उक्ति को सदैव स्मरण रखना चाहिये।

क्षीवानिव शुनो नैव विचारान्मनुजः क्वचित् ।
अचिन्त्यचिंतने व्यर्थं दिशाहीनान्नियोजयेत् ।।४६।।
तान् सदैवोपयोगिन्या दिशया धारयाऽपि च ।
नियोजयेद्विचारैश्चामूलैर्योद्धुमनैतिकैः ।।४७।।
सद्विचार चमूः काचिद् भवेद् याऽचिन्त्यचिन्तनैः ।
विचारैर्युद्धचमानेव तॉंस्तु विद्रावयेद्द्रुतम् ।।४८।।

टीका- विचारों को अवारा कुत्तों की तरह अचिन्त्य-चिन्तन में भटकने न दिया जाय। उन्हें हर समय उपयोगी दिशा-धारा के साथ नियोजित करके रखा जाय। अनगढ.-अनैतिक विचारों से जूझने के लिये सद्विचारों की एक सेना बनाकर रखी जाय, जो अचिन्त्य-चिन्तन उठते ही जूझ पड़ें और उन्हें निरस्त करके भगा दें ।। ४६-४८।।

व्याख्या- विचार संयम का सबसे अच्छा तरीका है, उन्हें बिखराव से रोककर उत्कृष्ट उद्देश्य के साथ जोड़ दिया जाय। इसके लिये अपने अन्दर भी एक विरोधी विचारों की सेना उसी प्रकार खड़ी करनी होगी जैसी कि विजातीय द्रव्यों के शरीर में प्रविष्ट होने पर रक्त के कण खड़ी कर देते हैं। निकृष्ट विचारों व उत्कृष्ट चिन्तन की परस्पर लड़ाई ही अन्तर्जगत का देवासुर संग्राम है। विचारों की विचारों से काट एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ है। इसलिये अनिवार्य है कि कुविचारों को सद्विचारों से काटने का महाभारत अहर्निश जारी रखा जाय। विचारों के लिये उपयोगी मर्यादा एवं देशाधारा निर्धारित की जाये जिनमें अभीष्ट प्रयोजन अथवा मनोरंजन के लिये परिभ्रमण करते रहने की छूट रहे। चिड़ियाघरों में जानवरों के लिये बाड़ा होता है उन्हें घूमने-फिरने के लिये छूट तो रहती है,पर उस बाड़े से बाहर नहीं जाने दिया जाता। ठीक यही नीति विचार वैभव के बारे में भी बरती जाय। उसे जहाँ-तहाँ बिखरने न दिया जाय।

परिश्रममनोयोग स्थास्ति वित्तं फलं ध्रुवम् ।
प्रत्यक्षं,नीतियुक्तं तु वित्तमेतदुपार्जयेत् ।।४९।।
देशवासिजनानां च स्तरं हि प्रति पूरुषम् ।
गृह्णन् स्वकीयनिर्वाहः स्वीकर्त्तव्यः सदैव च ।।५०।।
मितव्ययित्वमागृह्णन् योग्यतामत्र वर्धयन् ।
सदाशयत्वमार्गेण भरितव्यास्तु दुर्बलाः ।।५१।।

टीका- परिश्रम एवं मनोयोग का प्रत्यक्ष फल धन है। नीतिपूर्वक कमाया और औसत देशवासी के स्तर का निर्वाह अपनाते हुये बचत की योग्यता को बढ़ाने,सदाशयता को अपनाने एवं असमर्थों की सहायता करने में लगाना चाहिये।। ४९-५१।।

व्याख्या- भौतिक हो या आत्मिक प्रगति, दोनों ही क्षेत्र के पथिक को अपव्यय की तनिक भी छूट नहीं है। प्रश्न यह नहीं कि पैसा अपना है या पराया, मेहनत से कमाया या मुफ्त में मिला है, उसे हर हालत में जीवनोपयोगी-समाजोपयोगी सामर्थ्य मानना चाहिये और एक-एक पाई का उपयोग मात्र सत्प्रयोजनों हेतु ही होना चाहिये।

श्रम,समय एवं मनोयोग से तीन सूक्ष्म सम्पदायें भगवत् प्रदत्त हैं--इन्हीं का प्रत्यक्ष-स्थूल फल धन है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथ्यत: धन को काल देवता एवं श्रम देवता के सम्मिलित अनुदान मानना चाहिये। जैसी दूरदर्शिता समय के अपव्यय के लिये बरतने को कहा जाता है वैसी ही धन की बर्बादी पर भी लागू हो। बचाया धन सदैव परमार्थ में लगे।

नैकधोत्पद्यतेभूयो दुष्प्रवृत्तिस्तत: क्रमात् ।। ५२।।
अपव्ययेन मन्येते दुष्प्रवृत्तीरनेकधा ।
क्रीणन्ति चात्मनोऽन्येषामहितं कुर्वते भृशम् ।।५३।।

टीका- अपव्यय एवं अनावश्यक संग्रह से अनेक प्रकार की दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं। अपव्यय करने वाले मानो बदले में दुष्प्रवृत्तियाँ खरीदते हैं और उनसे अपना तथा दूसरों का असीम अहित करते हैं।। ५२-५३।।

व्याख्या- बुद्धिमानी की सही परख यही है कि जो भी कमाया जाय, उसका अनावश्यक सञ्चय अथवा अपव्यय न हो। जो उपार्जन को सदाशयता में नहीं नियोजित करता वह घर में दुष्प्रवृत्तियाँ आमन्त्रित करता है। लक्ष्मी उसी घर में बसती हैं,फलती हैं जहाँ उसका सदुपयोग हो। आडम्बरयुक्त प्रदर्शन,फैशनपरस्ती, विवाहों में अनावश्यक खर्च, जुआ जैसे दुर्व्यसन ऐसे ही घरों में पनपते हैं,जहाँ उपार्जन के उपयोग पर तो ध्यान नहीं दिया जाता,उपभोग पर नियन्त्रण नहीं होता। भगवान की लानत किसी को बदले में लेनी हो तो धन को स्वयं अपने ऊपर अनाप-शनाप खर्च कर अथवा दूसरों पर अनावश्यक रूप से लुटा कर सहज ही आमन्त्रित कर सकता है।

ऐसे उदाहरण आज के भौतिकता प्रधान समाज में चारों ओर देखने को मिलते हैं। परिवारों में कलह तथा सामाजिक अपराधों की वृद्धि का एक प्रमुख कारण अपव्यय की प्रवृत्ति भी है।

समुद्र संचय नहीं करता, मेघ बनकर बरस जाता है तो बदले में नदियाँ दूना जल लेकर लौटती हैं। यदि वह भी कृपण हो संचय करने लगता तो नदियाँ सूख जाती- अकाल छा जाता और यदि अत्यधिक उदार हो घनघोर बरसने लगता तो अतिवृष्टि की विभीषिका आ जाती। अत: समन्वित नीति ही ठीक है।

धनार्जने यथा बुद्धेरपेक्षा व्ययकर्मणि ।
ततोऽधिकैवसापेक्ष्या तत्रौचित्यस्य निश्चये ।।५४।।

टीका- धन कमाने में जितनी बुद्धिमता की आवश्यकता पड़ती है, उससे अनेक गुनी व्यय के औचित्य का निर्धारण करते समय लगनी चाहिये।। ५४।।

व्याख्या- सही तरीके से कमाना व सही कामों में औचित्य-अनौचित्य का ध्यान रखकर खर्च करना ही लक्ष्मी का सम्मान है। इसीलिये अर्थ संतुलन के मितव्ययिता पक्ष को प्रधानता दी जाती है। ध्यान यही रखा जाय कि जो भी बचाया जाय उसको उचित प्रयोजनों में नियोजित कर दें।

उपेक्षानाजनकार्या न चानीतिर्व्यये तथा ।
समान्यता साधुता सत्परिणामान्विचिंतयेत् ।।५५।।
अन्यथा घातका सिद्धयत्यलं सम्पन्नता तु सा।
दारिद्र्यापेक्षया नूनं समाजस्तेन दूष्यते ।।५६।।

टीका- कमाने में न उपेक्षा की जाय, न अनीति बरती जाय। खर्च करने में सादगी, सज्जनता एवं सत्परिणामों की जाँच पड़ताल रखी जाय। अन्यथा सम्पन्नता दरिद्रता से भी अधिक घातक सिद्ध होती है और इससे समाज में दूषित परम्परायें पनपती हैं।।५५-५६।।

व्याख्या- यह सोचना कि हम भगवान के पुत्र हैं-कहीं न कहीं से वह हमारी व्यवस्था करेगा ही, अत: कमाना जरूरी नहीं,गलत दृष्टि कोण है। इसी प्रकार अधिक के लालच में नीति-अनीति का ध्यान न रख चाहे जैसे उपार्जन कर लिया जाय यह भी गलत है। इस प्रकार अर्जित सम्पदा अतंत: व्यक्ति के लिये हानिकारक एवं अनावश्यक उपभोग समाज के लिये भी दुष्परिणाम उत्पन्न करने वाला होता है।

धन को लक्ष्मी भी कहते हैं,माया भी। सत्प्रवृत्ति में लगे तो ही लक्ष्मी नाम सार्थक है। अपव्यय किया जाय-अनीति के कार्यों में खर्च हो तो यह माया है। माया का नाश भी सदैव ऐसे ही होता है।

शृंगी उवाच-

महाभाग यथाप्रोक्तं भवतातच्चतुष्टयम् ।
असंयमस्य रूपं यत्तन्निवर्तेत चेत्तदा ।। ५७।।
आराधना जीवनस्य देवताया समग्रताम् ।
गच्छत्यभीष्टसिद्धि: किं तत: प्राप्नोति मानव:।।५८।।
अतोऽतिरिक्तं वा किंचित्कर्तव्यमवशिष्यते ।
तन्न: शुश्रु षमाणानां भवानर्हतिशंसतुिम् ।। ५९।।

टीका- शृंगी ऋषि ने फिर पूछा-"हे महाभाग ! क्या आपके द्वारा बताये गये चार प्रकार के असंयम रुक जाने से जीवन देवता की आराधना समग्र हो जायेगी और उससे अभीष्ट फल मिलने लगेगा या इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिरिक्त कुछ और भी करना होगा ? यह आप हम सुनने को उत्सुक व्यक्तियों को बतावें।। ५७-५९।।

पिप्पलाद उवाच-

अयं त्वपव्ययस्यास्ति निरोधः केवलं यतः ।
उपलब्धसम्पदागर्ते पतेन्नापव्ययात्मके ।। ६०।।
विनाशकारिणोनैव परिणामान् समुत्सृजेत ।
उपयोगोऽर्जितस्यापि महत्वं सत्सुयोजनम् ।। ६१।।
सामर्थ्यपरिणामाँस्ताँस्ततः श्रेयोविधायकान् ।
उत्पादयति चेदस्तव्यस्तताया: सुरक्षितम् ।। ६२।।
अनुपयुक्ततायाश्च यदि तद्रक्षितं भवेत् ।
प्रयोजनेषु सत्सूपयुज्येत सृजकेषु चेत् ।। ६३।।

टीका- महाप्राज्ञ पिप्पलाद ने कहा-"भद्र ! यह तो अपव्यय की रोक-थाम भर कही गई है ताकि उपलब्ध सम्पदा अपव्यय के गर्त में गिरकर विनाशकारी परिणाम उत्पन्न न करे। महत्वपूर्ण कार्य तो इस बचत के सदुपयोग और सुनियोजन का है। सामर्थ्य तभी श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न करती है, जब उसे अस्त-व्यस्तता एवं अनुपयुक्तता से बचाकर सृजनात्मक सत्प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त किया जाय।। ६०-६३।।

व्याख्या- संयम निषेधात्मक नहीं विधेयात्मक गुण है। इसका एक पक्ष जहाँ अनावश्यक अपव्यय को रोकना है वहाँ दूसरी ओर उसे सृजनात्मक कार्यों हेतु नियोजित करना भी है। एक पूर्वार्ध है, दूसरा उत्तरार्ध। निरोध न हो व सुनियोजन के प्रयास चलें तो व्यर्थ हैं। निरोध हो व नियोजन कहीं न हो तो वह संचय भी बेकार है।

जिज्ञासु शृंगी ऋषि का समाधान करते हुये महर्षि पिप्पलाद कहते हैं कि संयम पर टिक न पाने का कारण है, उसका स्वरूप न समझ पाना। स्वरूप न समझ पाने से वे उसी तरह फँस जाते हैं,जैसे अँधेरी रात में मार्ग में भरे पानी को सूखी जमीन समझ कर व्यक्ति उसमें पैर फँसा देता है। स्वरूप समझना कठिन नहीं है, परन्तु उसके लिये मनुष्य पूरा प्रयास नहीं कर पाता क्योंकि उसका महत्व नहीं समझता। स्वरूप और महत्व समझने के लिये आवश्यक उद्योग न कर पाना भी असंयम की वृत्ति की ही प्रतिक्रिया है। अस्तु 'जो संयम का लाभ लेना चाहें वे उसका स्वरूप और महत्व समझें।'

जीवनं त्वथ कार्यं च पूरकं तु परस्परम् ।
दृष्ट्वागवा कार्यस्तरं मेयं साफल्यं जीवनस्य हि।। ६४।।
श्रममात्रं न पर्याप्तं तं तु चौराश्चगर्दभाः ।
अपि कुर्वन्त्यथोच्चैस्तु सदुद्देश्यैर्हि यान्यहो ।। ६५।।
कर्तव्यानि निबद्धानि तेषामेवानुपालनम् ।
कर्मयोग इति प्रोक्तः येन विश्वम्भरो भवेत् ।। ६६।।

टीका- जीवन और कार्य एक दूसरे के पूरक हैं। कार्य के स्तर को देखकर ही जीवन की सफलता आँकी जाती है। मात्र श्रम पर्याप्त नहीं,वह तो गधे और चोर भी करते हैं। उच्च उद्देश्यों से जुड़े हुये कर्तव्य-पालन का ही दूसरा नाम कर्मयोग है, जिससे मानव विश्वम्भर कहलाता है।। ६४-६६।।

व्याख्या- किसी भी काम की सफलता का मापदण्ड यह नहीं कि उसकी परिणति क्या हुई, वरन् यह है कि वह किस प्रकार सम्पादित हुआ और उसमें मनोयोग लगा या नहीं। समुचित तत्परता और स्फूर्ति ही श्रम को सार्थक तथा हाथ में लिए कार्य को सफल बनाते हैं।

सदुद्देश्य सुपूर्त्यर्थं योगसाधनवत् सदा ।
कर्मकर्तव्यमत्रास्ति नहि चेत्सफलस्ततः ।। ६७।।
सदुद्देश्य सुपूर्णं यत्तद्धिकर्तव्यपालनम् ।
कुर्वन्नरः सुसन्तोषं लभते चात्मगौरवम् ।। ६८।।
प्रयोजनेषु साफल्यं दूषितेषु लभेत चेत् ।
तथापि सहते लोकभर्त्सनामात्मताडनम् ।। ६९।।

टीका- कर्म को सदुद्देश्यों की पूर्ति के लिये योग-साधना की तरह किया जाना चाहिये। असफल रहने पर भी सदुद्देश्यपूर्ण कर्त्तव्य-पालन से सन्तोष और गौरव मिलता है, जब कि दुष्ट प्रयोजनों में सफलता मिलने पर भी आत्म-प्रताड़ना और लोक-भर्त्सना सहनी पड़ती है ।।६७-६९।।

व्याख्या- कर्म तो सभी करते हैं पर जब वह सदुद्देश्यों से जुड़ जाता है तो योग बन जाता है। मनोयोग पूर्वक किया गया यही कर्म योग-साधना के समतुल्य है। जागरूकता, तत्परता एवं श्रेष्ठता को लक्ष्य रूप में वरण-इसी को कर्त्तव्य पालन कहते हैं, सफलता इसका मापदण्ड नहीं है।

तात ! मानव आबद्धो दायित्वैर्बहुभिर्यथा ।
शारीरं स्वास्थ्यमेतत्तन्मनः सन्तुलनं तथा ।। ७०।।
परिवारसुसंस्कारित्वं समाजस्य तत्तथा ।
प्रतिदानं सुरक्षा च कौलीन्यस्याथ संस्कृतेः ।। ७१।।
दायित्वैर्बहुभिर्बद्ध एभिर्मानव एष तु ।
निर्वाह एषां कर्त्तव्यपालनं परिकीर्तितम् ।। ७२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पारायण्यं तु कर्तव्यस्यास्ति धार्मिकता ध्रुवम् ।
एतत्तु धर्मवित्तृणां परिभाषितमुत्तमम् ।। ७३।।

टीका- हे तात ! मनुष्य अनेक उत्तरदायित्वों से बँधा है। शारीरिक-स्वास्थ्य, मानसिक-सन्तुलन, परिवार की सुसंस्कारिता, समाज का ऋण चुकाना, संस्कृति और शालीनता की सुरक्षा जैसे अनेक जिम्मेदारियों से मनुष्य बँधा है। इनके निर्वाह को कर्त्तव्य पालन कहते हैं। कर्त्तव्य-परायणता ही धार्मिकता है। यही धार्मिकता की धर्मवित्ताओं द्वारा की गई उत्तम परिभाषा है।। ७०-७३।।

व्याख्या- धर्म का अर्थ है अपने सांसारिक और आध्यात्मिक दायित्वों का भली भाँति निर्वाह। धर्म'सम्प्रदाय' का पर्यायवाची नहीं,जैसा कि बहुसंख्य व्यक्तियों ने समझ रखा है। धर्म का शाब्दिक अर्थ है-धारण करना।' किसे? श्रेष्ठता को जीवन में, ताकि लौकिक जीवन में समृद्धि, सामूहिक विकास और आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो।

कर्ममात्रं श्रमो नास्ति तेनोच्चैस्तरकस्य हि ।
मनोयोगस्य भाष्यं च समावेशेन तद्वता ।। ७४।।
उत्कृष्टता तु कार्यस्य कृते तु स्वाभिमानिनः ।
गर्वस्य गौरवस्यापि विषय इति बोध्यताम् ।। ७५।।
उपेक्षयोन्मनस्केन कृतं कार्यं निरर्थकम् ।
भवत्येव तथा कर्तुरपकीर्तिकरं च तत् ।। ७६।।
कर्तव्य यदमुष्मिश्चेत्समावेशो द्वयोरपि ।
एकाग्रताभिरुच्योस्तत्कर्मेतीशार्चनास्तरम् ।। ७७।।

टीका- कर्म मात्र श्रम नहीं, उसके साथ उच्चस्तरीय मनोयोग का तन्मय समावेश होना चाहिये। कार्य की उत्कृष्टता हर स्वाभिमानी के लिये गर्व-गौरव का विषय है-यह समझ लो। उपेक्षापूर्वक अन्यमनस्क होकर किया गया काम निरर्थक ही नहीं जाता, कर्ता को बदनाम भी करता है। जो भी किया जाय उसमें पूरी अभिरुचि और एकाग्रता का समावेश हो तभी वह उस स्तर का कार्य कहा जा सकेगा, जिसे ईश्वर पूजा के समतुल्य माना जाता है।। ७४-७७।।

व्याख्या- कर्म कौशल हर स्वाभिमानी के लिये गौरव का विषय होता है। हर अच्छे काम ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न हुये हैं जिन्होनें अपनी क्रिया-कुशलता को उत्कृष्टता की सीमा तक पहुँचा कर श्रम किया है।

सन्त रैदास की चमड़ा भिगोने की कठौती में गंगा प्रकट हुई थीं, उसका कारण यही था कि वे अपने कार्य में ईश्वर आराधना जितनी ही तन्मयता और सरसता अनुभव करते थे। कबीर कपड़ा बुनते हुये यही अनुभव करते थे कि आयु की हर साँस और समय का हर क्षण मिलाकर जीवन की चादर बुनती है। उनकी यह तन्मयता कार्य को भी उपासना बना देती थी। गांधी जी चाहे प्रार्थना सभा में हों, या चाहे शौचालय साफ करें दोनों में पूरी तरह तन्मय हो जाते थे इसीलिये निर्मल जीवन के अधिकारी बने।

ध्वंसःसरल एनं च लघुरग्निकणोऽपि सः ।
ग्लपितं कीलकं चापि कर्तुं तत्प्रभवेदलम् ।। ७८।।
सृजनात्मककार्येषु गौरवं परिकीर्तितम् ।
चिन्तनं मानवस्याथ प्रयासः सृजकेषु हि ।। ७९।।
प्रयोजनेषुनिरतः सदा स्याज्जीवनस्य तु ।
गरिम्णोऽनुमितिस्तत्र निकषोपमिते भवेत् ।। ८०।।
किं स्तरं कियदेतच्च कार्यं तु सृजनात्मकम् ।
सम्पन्नं प्रतिभाया तु क्रियाकौशलजा तथा ।। ८१।।
प्रखरता द्वयोरत्र प्रशंसाऽस्मिंस्तु वर्तते ।
सत्प्रवृत्ति विवृद्धो तु ताभ्यामुपकृतं न वा ।। ८२।।

टीका- ध्वंस सरल है। उसे छोटी चिनगारी एवं सड़ी कील भी कर सकती है। गौरव सृजनात्मक कार्यों में है। मनुष्य का चिन्तन और प्रयास सृजनात्मक प्रयोजनों में ही निरत रहना चाहिये। जीवन की गरिमा इस कसौटी पर आँकी जाती है कि उसमें किस स्तर का कितना सृजनात्मक कार्य सफल हुआ। क्रिया-कौशल की जो भी प्रतिभा प्रखरता है,उसकी प्रशंसा इस बात में है कि उसके द्वारा सत्प्रवृत्ति संवर्धन में सहायता मिली या नहीं।। ७८-८२।।

व्याख्या- मनुष्य अपनी सृजनात्मक शक्ति के कारण ही वह पद-गौरव पा सका है जो सृष्टि के अन्यान्य जीवधारियों को अप्राप्य है। कार्य का स्तर व क्रिया कौशल जब उत्कृष्ट सृजनशीलता से जुड़ जाते हैं तो करने वाले की गरिमा को और बढ़ा देते हैं। मनुष्य इस धरती को सुव्यस्थित सुन्दर बनाने आया है, बिगाड़ने,मिटाने नहीं, इस मूल प्रतिज्ञा से हटना मानवी गरिमा को गिराना है।

प्रतिभा या रताध्वंसे तस्यास्तु तुलना विधौ ।
प्रशस्ता कथिताविज्ञैर्मूर्खता मन्दबुद्धिजा ।। ८३।।
यतोऽनया न कस्यापकार आचरितः क्वचित् ।
सृजितं किंचिदेवाथ संशोधितमुतापि च ।। ८४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरातन कुसंस्कराभ्यासान्निरसितुं नवैः ।
उत्साहैः साहसैश्चापि युतं साधुप्रयोजनम् ।। ८५ ।।
क्रियाकलापकेष्वेव दैनिकेषु सुमीलयेत् ।
भूयो भूयोऽभिबर्द्धन्तीः प्रवृत्तीः पशुजास्तथा ।। ८६ ।।
निरसितुं श्रमस्तूग्रः स्वीकर्तव्यो भवेत्तुताः ।
आत्मनाऽऽत्मनि संघर्ष अयमित्यभिमन्यताम् ।। ८७ ।।
सर्वैरेवार्जुनस्येयं ग्राह्या सद्भूमिका सदा ।
महाभारतसंग्रामे कर्मक्षेत्रेऽत्र मानवैः ।। ८८ ।।

टीका- ध्वंसरत प्रतिभा की तुलना में विज्ञजनों के मतानुसार मन्दबुद्धि मूर्खता अच्छी, जिसने किसी का बिगाड़ा नहीं, कुछ न कुछ बनाया-सुधारा ही। पुराने कुसंस्कारी अभ्यासों को निरस्त करने के लिए नये उत्साह, नये साहस पूर्वक सत्प्रयोजनों को दैनिक क्रिया-कलाप में सम्मिलित करना पड़ता है और बार-बार उभरने वाली पशु-प्रवृत्तियों को निरस्त करने के लिए कड़ा रुख अपनाना पड़ता है । यह अपने आप से जूझना है-ऐसा जान लो। अर्जुन की भूमिका इस महाभारत में हर कर्मयोगी को निभानी पड़ती है ।। ८३-८८ ।।

व्याख्या- *जो प्रतिभाशाली हैं पर जिनकी बुद्धि कुमार्गगामी है, ध्वंस में नियोजित है, उनसे तो वह व्यक्ति श्रेष्ठ है* जो कम से कम अल्पज्ञता के कारण किसी का कुछ बिगाड़ता तो नहीं। इन्हें सही दिशा देकर कम से कम उपकार की ओर तो प्रवृत्त किया जा सकता है, पर विनाश की ओर प्रेरित बुद्धि तो हर समय कुटिल चाल ही सोचती रहती है।

आरण्यकस्य सत्रस्य समाधानं तृतीयकम् ।
सर्वेभ्योऽरोचतालं तद्देवं च जीवनं प्रति ।। ८९ ।।
श्रद्धोद्गता च सकंल्पः श्रोतृणां हृदये ततः ।
समुत्पन्नः जीवनं तु परमं दैवमित्यहो ।। ९० ।।
मत्वा परिष्कृतं पूर्णं प्रसन्नं कर्मशक्तितः ।
प्रसंगः ईदृशोऽयं तु ज्ञातुं तत्राऽधिकाधिकम् ।। ९१ ।।
औत्सुक्यं हि महर्षीणां तीव्रतामभजत्ततः ।
श्वोऽधिकं ज्ञास्यते साशाःकालेऽयुः सौत्रिकाज्ञया ।। ९२ ।।

टीका- आरण्यक सत्र का तीसरा समाधान सभी को बहुत रुचा। जीवन देवता के प्रति भी श्रोताओं में श्रद्धा उमँगी और संकल्प उभरा कि जीवन को परमदेव मान कर उसे प्रसन्न-परिष्कृत करने में कुछ कमी न रखी जायेगी। प्रसंग ऐसा था जिसे अधिकाधिक जानने के लिए सम्मिलित ऋषियों की उत्सुकता अधिकाधिक प्रचंड होती जा रही थी। कल और अधिक सुनने को मिलेगा इस आशा के साथ नियत समय पर सभी सूत्र-संचालक की आज्ञानुसार विसर्जित हो गये ।। ८९-९२ ।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री पिप्पलाद-श्वेतकेतु ऋषि-सम्वादे "संयमशीलताकर्त्तव्यपरायणता" इति प्रकरणो नाम ।। चतुर्थोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ पंचमोऽध्यायः ।।

उदार भक्तिभावना प्रकरण

चतुर्थे दिवसे तत्र संज्ञता ऋषयः पुनः ।
आरण्यकस्य सत्रे तु ब्रह्मविद्यात्मकेऽन्वहम् ।।१।।
ऋषयः पंक्तिबद्धास्ते पिप्पलादस्य पूर्ववत् ।
तत्वावधाने तत्त्वस्य विवेचनमभूत्क्रमात् ।।२।।
सूक्ष्मबुद्धिबलश्चाद्य तार्किकः प्रथमासने ।
उद्दालकः स्थितो यस्यौत्सुक्यमासीन्महत्तमम् ।।३।।

टीका- चौथे दिन आरण्यक के ब्रह्म विद्या-सत्र में पहले की तरह फिर ऋषिगण एकत्र हुए, पंक्तिबद्ध बैठे और महर्षि पिप्पलाद के तत्वावधान में तत्व-विवेचन का प्रवाह-क्रम चल पड़ा। आज सूक्ष्म-बुद्धि के धनी, तर्क प्रवीण उद्दालक अग्रिम-पंक्ति में बैठे। उन्हें उत्सुकता अधिक थी ।। १-३।।

उद्दालक उवाच-

समयोपयोगे यः प्रोक्तो महाभागाऽत्र कर्मणा ।
तत्रैकोदेव ! सन्देहः सर्वेषां समुदेति यत् ।।४।।
समयक्षेपवल्लाभप्राप्तिस्तु तत्समन्वयात् ।
किं भविष्यथैतावन्मात्रेणात्मिक प्रोन्नतेः ।।५।।
कृते त्वावश्यकः सेत्स्यत्यात्मनो विस्तरः कथम् ।
सीमाबन्धनमात्रं तु नियतेः कर्म भाग्यवत् ।।६।।

टीका- उद्दालक पूछने लगे-हे महाभाग ! समय का सदुपयोग कर्म के माध्यम से होने की विवेचना में एक सन्देह उठता है कि उस समन्वय से मात्र समयक्षेप जितना ही लाभ मिलकर तो नहीं रह जायेगा ? उतने भर से आत्मिक-प्रगति के लिए आवश्यक आत्म-विस्तार का प्रयोजन कैसे सधेगा ? हे महाभाग ! कर्म तो नियति का मर्यादा-बन्धन मात्र है ।। ४-६।।

व्याख्या- प्रथम तीन सत्रों की विषय-विवेचना सुनकर भी सभी जिज्ञासु ऋषि मण्डली का समाधान पूरी तरह हुआ नहीं। कर्मयोग और जीवन साधना,आत्म तत्व और दैवी अनुदान जैसे प्रसंगों को उन्होंने सुना, आत्मसात् किया। पर यह दुविधा उद्दालक ऋषि के मन में यथावत् बनी हुई है कि जीव की, आत्म विस्तार की चरम इच्छा का लक्ष्य इससे किस प्रकार सधेगा ? कर्म तो विधि की व्यवस्थानुसार जीव करते ही रहते हैं पर इससे उस लक्ष्य की सिद्धि कहाँ हुई जिसे आत्मिक प्रगति का अनिवार्य क्रम माना जाता है। अहं का विसर्जन तथा उस महत्तत्व में उसका विलय किस प्रकार बने, यह एक ऐसी जिज्ञासा है जिसका समग्र रूप में समाधान हुए बिना चर्चा अधूरी ही रह जाती है ।

शृंखलायां तु तस्यामाबद्धा हेतुना सदा ।
अस्तव्यस्ततायास्तदनौचित्यं निरुध्यते ।।७।।
क्रमप्राप्तानिदा यित्वान्युचितं वोढुमेव तु ।
संभवेयुस्तथा तस्यां सीमायां ये स्थितः प्रभोः ।।८।।
तरंगाः कथमापूर्तिस्तेषां कर्तुं तु संभवेत् ।
आत्मानं भक्तिभावेन विदधात्यनुप्राणितम् ।।९।।
तदमृतं कथं पातुं शक्यतेति सविस्तरम् ।
सर्वसाधारणस्यालं कल्याणं येन् सम्भवेत् ।।१०।।

टीका- उस शृंखला में आबद्ध रहने से अस्त-व्यस्तता का अनौचित्य रुकता है और लदे हुए उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार सहन कर सकना बन पड़ता है। उतनी सीमा में रहने वाले पुण्य परमार्थ की उन उमंगों की आपूर्ति कैसे कर सकेंगे, जो आत्मा को भक्ति-भावना से अनुप्राणित करती है। उस अमृत का रसास्वादन कैसे किया जाय ? यह विस्तार से बतावें, जिससे सर्वसाधारण का कल्याण हो सके ।। ७-१०।।

व्याख्या- सुव्यवस्थित रीति से किये गये कर्म एवं दायित्वों का निर्वाह जीवन के व्यवहार पक्ष को तो पूरा कर देते हैं परन्तु इसके अतिरिक्त भी एक ऐसी धारा शेष रह जाती है जिसे जीवन में मिलाये बिना वह एक शुष्क स्वचालित व्यवस्था मात्र रह जाता है। वह धारा है-हृदय से निस्सृत होने वाली उमंगें, उच्चस्तरीय संवेदनाएँ, लोकमंगल युक्त परमार्थपरक भावनाएँ जो आत्मा को एक शाश्वत आनन्द की गंगोत्री सिद्ध करते हैं। परमात्मा का यही एक ऐसा गुण है जो आत्मा में कूट-कूट कर भरा है। पर इस अमृत को कैसे जीवन में घोला जाय, इससे स्वयं तथा औरों को कैसे लाभान्वित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जाय, यह जाने बिना अध्यात्म दर्शन की विवेचना अधूरी है, ऐसा ऋषि समझते हैं।

मनुष्य को प्रकृति से जो सम्पदाएँ मिली हैं उन्हें वह संयम पूर्वक सम्भालें और सही ढंग से खर्च करें, यह आवश्यक है। स्थूल दृष्टि वाले यहीं तक मनुष्य के विकास की कल्पना करते हैं। किन्तु प्रश्नकर्ता उद्दालक सूक्ष्म बुद्धि के धनी हैं। इसलिए उन्होंने उससे आगे की बात उठायी। मनुष्य मात्र कुशलता और व्यवस्था में सीमित नहीं हो जाता। यदि ऐसा होता तो संवेदना, आत्मीयता जैसे भावों, तथा कला एवं संगीत जैसी विधाओं की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। देखते हैं कि माँ पुत्र के प्रेम में अपने सारे सुखों की बलि चढ़ा देती है। बेटा माँ के वक्ष से चिपटकर संसार के सारे अभाव भूल जाता है। पति पत्नी एक दूसरे के प्रेम के सहारे बड़े-बड़े खतरे हँसते-हँसते पार कर जाते हैं। इसके विपरीत सम्पन्न घरों के, सारी सुविधाओं से घिरे बालक स्नेह के अभाव में रूखे चिड़-चिड़े देखे जाते हैं।

यह सब उसी अन्त: क्षेत्र से प्रवाहित अमृत धारा की बहिरंग में अभिव्यक्ति ही तो है।

कर्मण: समयस्यापि कुर्वन्तस्ते समन्वयम् ।
महत्वाकांक्षिणो मोहग्रस्ता दृश्यन्त एव हि ।।११।।
श्रमशीला अनेके च प्रयासपरितत्परा: ।
प्राप्यन्ते भिन्नमेतन्न सन्ति ते कर्मयोगिन: ।।१२।।
पुरुषार्थिनस्तु प्रोच्यन्ते सम्पन्ना: सफला अपि ।
प्राप्यन्ते कृतयोगास्ते नैवजीवनसम्पदाम् ।।१३।।
मीयते समयस्याथ कर्मणस्तु समन्वयात् ।
अतिरिक्तं किमप्यास्ते तथ्यं गुप्तं सदैव तु ।।१४।।
यद्येवं कृपयोद्बोधय रहस्यं न: कृपानिधे ! ।
मूर्धन्यस्तत्ववेतृणां सत्रसूत्रस्यचालकम् ।।१५।।
ब्रह्मज्ञ: पिप्पलादस्तां जिज्ञासां ध्यानपूर्वकम् ।
श्रुत्वा प्रसन्नतां यातो विपुलां संजगाद च ।।१६।।

टीका- समय और कर्म का समन्वय करते तो मोहग्रस्त-महत्वाकांक्षी भी देखे जाते हैं। कर्मयोगी न सही, श्रमशील और प्रयास तत्पर तो अनेकों पाये जाते हैं, उन्हें पुरुषार्थी तो कहा जाता है, किन्तु वे जीवन-सम्पदा को कृत-कृत्य करने वाले कहाँ होते हैं ? लगता है समय और कर्म के समन्वय के अतिरिक्त भी कोई तथ्य छिपा रह गया है। यदि ऐसा हो, तो कृपया उस रहस्य का उद्घाटन कीजिए। तत्त्ववेत्ताओं में मूर्धन्य इस सत्र के सूत्र-सञ्चालक ब्रह्मवेत्ता पिप्पलाद ने जिज्ञासा को ध्यानपूर्वक सुना, बहुत प्रसन्न हुए और बोले ।।११-१६।।

व्याख्या- सामान्यतया जीवन व्यापार में यन्त्रवत् कर्म को सफलता का जन्मदाता माना जाता है। देखा भी जाता है कि समय का सुनियोजन और कर्म की तत्परता का समावेश कर भौतिक जगत में सामान्य जन वैभव भी पाते हैं तथा श्रेय भी। परन्तु जिस कारण मनुष्य का मानव शरीर पाना सार्थक कहा जाता है उसका कहीं नाम देखने को नहीं मिलता। उमंगों-संवेदनाओं से रहित जीवन किस प्रकार उद्देश्य की सफलता का कारण बन सकता है, एक बहुत सूक्ष्म जिज्ञासा ऋषिवर उददालक के समक्ष है। श्रमशीलता, कर्त्तव्य परायणता तथा सुव्यवस्था के अतिरिक्त भी जीवन में कोई ऐसा तत्व समाविष्ट होना रह गया है, जिसके बिना जीवन साधना अधूरी है, ऐसा वे मानते हैं। इसे एक अनिवार्य आवश्यकता मानकर वे उस पक्ष को विस्तार से जानने की अपनी व सभी उपस्थित श्रोता विद्वानों की उत्कण्ठा को इस सारगर्भित प्रश्न से व्यक्त करते हैं।

पिप्पलाद उवाच-

अहं क्रमिकचर्चायां तस्मिन्नेव प्रसंगके ।
आसं चर्चितुकामस्तु साधु तत्स्मारितं त्वया ।।१७।।
अधुना तत्प्रसंगेतु वक्तुमुत्साह एष मे ।
वृद्धिंगतो भवद्भिश्च श्राव्यमग्रे सचित्तकै: ।।१८।।

टीका-महाप्राज्ञ-पिप्पलाद ने कहा-क्रमिक चर्चा में उस प्रसंग पर चर्चा करने ही वाला था, किन्तु आपने उसका स्मरण दिलाकर अच्छा ही किया। अब उस सन्दर्भ में कुछ अधिक कहने का मेरा उत्साह बढ़ा है। आगे की बात आप सब ध्यानपूर्वक सुनें ।। १७-१८।।

त्रिधात्मिकायां विश्वस्य व्यवस्थायामृषीश्वरा: ।
प्रकृतीश्वरजीवानामिव क्षेत्रे चितेरपि ।।१९।।
तिस्रोनिर्धारणा: सन्ति प्रगतेस्तु क्रमस्य ता: ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्चनाम्नोच्यन्ते मनीषिभि: ।।२०।।
छात्राध्ययनसम्बन्धिविषयाणामिव क्रमात् ।
एकमेकं समादाय योजयेत् परिवर्धयेत् ।।२१।।

टीका- हे ऋषियो ! इस त्रिधा व्यवस्था में ईश्वर-जीव-प्रकृति की तरह चेतना क्षेत्र के भी प्रगतिक्रम की तीन निर्धारणाएँ हैं। विद्वान लोग एक को ज्ञान, दूसरे को कर्म, तीसरे को भक्ति कहते हैं। इन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छात्रों के अध्ययन विषयों की तरह क्रमशः एक-एक करके जोड़ना-बढ़ाना पड़ता है ।। १९-२१ ।।

व्याख्या- दो वस्तुओं के मिलने से तीसरी बनती है। दिन और रात्रि की मिलन वेला को 'संध्या' कहते हैं। संध्या न रात है, न दिन, पर उसमें दोनों का अस्तित्व है। जीव भी इस प्रकार दो सम्मिश्रणों का तीसरा रूप है। पर ब्रह्म परमात्मा और पंचभौतिक प्रकृति-इन दोनों के सम्मिश्रण से, जो तीसरी सत्ता उत्पन्न होती है उसका नाम 'जीव' है। चेतन ब्रह्म के गुण आत्मिक चेतना, अन्तःकरण एवं भावना के रूप में हमारे अन्दर विद्यमान हैं। प्रकृति जड़ है इसलिए शरीर का सारा ढाँचा ही जड़ है। जीव की चेतना व जड़ से ही वह चलता है।

सृष्टि की ऊपर वर्णित व्यवस्थानुसार चेतना जगत में भी सत्, चित्, आनन्द रूपी परब्रह्म की विशेषताएँ ज्ञान, कर्म व भक्ति की तीन धाराओं के रूप में जीव-सत्ता का प्रगति क्रम निर्धारित करती पाई जाती हैं। न्यूनाधिक मात्रा में व्यक्ति विशेष में इस क्रम में अन्तर पाया जाता है। तीनों ही महत्वपूर्ण हैं व एक दूसरे के बिना अपूर्ण भी।

अध्यात्मनस्तुक्षेत्रस्य विकासक्रम पद्धतौ ।
सर्वप्रथममध्यात्मज्ञानस्यास्ति हि भूमिका ।। २२ ।।
सा न चेन्मानवोजाड्यभवबन्धनपाशितः ।
तिरश्चामिव सम्बद्धः शिश्नोदरपरायणः ।। २३ ।।
वासनायाश्च तृष्णाया अतिरिक्तमथापि च ।
अहंताया न ज्ञातुं स प्रभवेत् स्थितिरीदृशी: ।। २४ ।।
आत्मज्ञानमिदं येन स्वरूपं मानवः स्वकम् ।
कर्त्तव्यं च भविष्यच्च द्रष्टुं पारयति ध्रुवम् ।। २५ ।।
आधारेण स एतेन सुषुप्तिं तां विहाय हि ।
जागृतौ विशति प्रोक्तः देवजन्मात्मबोधकः ।। २६ ।।

टीका- अध्यात्म क्षेत्र के विकास क्रम के मार्ग में सर्व प्रथम आत्म-ज्ञान की भूमिका है। वह न हो तो मनुष्य जड़ता के भव-बन्धनों में ही बँधा रहेगा। पाश-बद्ध तिर्यक् योनियों की तरह शिश्नोदर-परायण ही बना रहेगा। वासना, तृष्णा और अहन्ता के अतिरिक्त और कुछ सूझेगा ही नहीं तथा यही स्थिति बनी रहेगी। वह आत्म ज्ञान ही है, जिसके कारण मनुष्य को अपना स्वरूप, कर्त्तव्य और भविष्य दृष्टिगोचर होता है। उसी आधार पर वह सुषुप्ति छोड़कर जागृति में प्रवेश करता है। आत्मबोध को ही देवजन्म कहा गया है।। २२-२६ ।।

व्याख्या- सांसारिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में ज्ञान की भूमिका अलग है। बाह्य क्रिया कलापों, जीवन व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी से सर्वथा भिन्न अपने आपे का ज्ञान है। 'ज्ञान' को 'प्रकाश' 'दृष्टि' कहा गया है। जिसे वह मिल गयी वह पशु स्तर से ऊँचा उठकर मानव जीवन का लक्ष्य अपने अवतरण का सही उद्देश्य समझ पाता है।

अन्य जीवों व मनुष्यों में अन्तर तो यही है। मनुष्य के अन्तः चक्षु खुलने, अन्दर आलोक पहुँचने भर से वह पेट-प्रजनन वाली अपनी चिरसंचित प्रवृत्ति-प्रेरित क्रियाओं को छोड़कर आत्मिक प्रगति का महत्व समझने और उस दिशा में अग्रसर होने का प्रयास करने लगता है। आत्म ज्ञान का अभाव ही चेतन प्राणधारी मनुष्य की जड़, चलता-फिरता पौधा सिद्ध करता है। जब आत्मज्ञान रूपी प्रकाश किरणें अन्दर प्रवेश करती हैं तो प्रसुप्त की स्थिति जागृति में बदल जाती है।

आत्मप्रेरणयोदेति कृपया च गुरोरयम् ।
यो हि जीवन क्षेत्रस्य प्रथमाभूतिरुच्यते ।। २७ ।।
इमं ये प्राप्नुवन्त्यभ्युदयद्वारमनावृतम् ।
कुर्वन्त्यग्रे सरन्त्येते मुख्यलक्ष्यदिशिध्रुवम् ।। २८ ।।

टीका- यह आत्मप्रेरणा और आत्मबोध गुरु कृपा से होता है। इसे जीवन क्षेत्र की प्रथम विभूति कहा गया है। जो इसे पाते हैं, अभ्युदय का द्वार खोलते और परम लक्ष्य की दिशा में अग्रसर होते हैं ।। २७-२८ ।।

व्याख्या- अध्यात्म क्षेत्र में मार्ग-दर्शक की महत्ता बड़ी महत्वपूर्ण है। पुरुषार्थ तो स्वयं ही करना पड़ता है पर उँगली पकड़ कर चौराहे के भ्रम जंजाल से मुक्ति दिलाना-लक्ष्य बोध करा देना गुरु द्वारा ही सम्भव है। गुरु की कृपा आत्म प्रेरणा के रूप में आती है तथा बोध कराती है कि क्या करना है, किसलिए जीवन मिला है, कैसे इसे सफल बनाना है ? यह हो जाना अर्थात् आत्मिक प्रगति का द्वार खुल जाना । फिर कोई अड़चन मार्ग में नहीं आती ।

आत्मप्रगतिसोपानं द्वितीयं कर्मचोच्यते ।
कर्मार्थात् कर्मयोगोऽयं कर्मयोगश्च सोऽर्थतः ।। २९ ।।
मनुष्यतापक्षधरकर्त्तव्यानीति मन्यताम् ।
अथाप्युत्तरदायित्वपरिपालनमेव च ।। ३० ।।
कर्मनिष्ठा सञ्चितैस्तु कुसंस्कारैः समागताः ।
दुष्प्रवृत्तीर्नियच्छन्ती सत्प्रवृत्तीः सुसंगता ।। ३१ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुर्वन्तीप्रखरं मर्त्यं प्रामाणिकमथापि च ।
पुरुषार्थं दिशाबद्धं कुर्वन्त: कर्मयोगिन: ।। ३२ ।।
पराक्रमं समाश्रित्य तं ततस्ते यशस्विन: ।
भवन्ति विविधास्ते सफलतां प्राप्नुवन्ति च ।। ३३ ।।

टीका- आत्मिक प्रगति का दूसरा सोपान है कर्म। कर्म अर्थात् कर्मयोग, कर्मयोग अर्थात् मानवता के पक्ष धर कर्त्तव्य,उत्तरदायित्वों का परिपालन कर्मनिष्ठा, संचित-कुसंस्कारों के कारण उत्पन्न होने वाली दुष्प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करती और सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव में सम्मिलित करके मनुष्य को प्रामाणिक एवं प्रखर बनाती है। कर्मयोगी अपने पुरुषार्थ को दिशाबद्ध करते हैं, उस पराक्रम के आधार पर अनेकानेक सफलताएँ पाते और यशस्वी बनते हैं ।। २९-३३ ।।

व्याख्या- प्रज्ञासत्र के तीसरे दिन संयमशीलता-कर्त्तव्य-परायणता प्रकरण के अन्तर्गत चर्चा करते हुए महाप्राज्ञ पिप्पलाद ने कर्म योग को संयम का पूरक बताते हुए कहा था कि उच्च उद्देश्यों से जुड़े कर्त्तव्यों का पालन करते हुए ही मनुष्य विश्वम्भर कहलाता है। आज मनुष्य के चेतना क्षेत्र की तीन धाराओं के अन्तर्गत चर्चा करते हुए वे आत्मज्ञान के बाद कर्मनिष्ठा की व्याख्या करते हैं। कर्म तो सभी करते हैं पर आत्मिक प्रगति के अन्तर्गत जब भी कर्मयोग की व्याख्या की जाती है, उसे मनुष्यता से जुड़ा तथा दिशा बद्ध होने पर ही समग्र एवं मानवी पुरुषार्थ को सफल बनाने वाला माना जाता है। ऐसे कर्मयोगी ईश्वर द्वारा बड़े विश्वास से सौंपी गयी जिम्मेदारियों का पूर्ण निर्वाह करते हुए आत्म-नियन्त्रण का अभ्यास कर अपनी प्रखरता सत्प्रयोजनों में नियोजित कर देते हैं।

वर्द्धते चेद्विकासस्य क्रमो ज्ञानेन कर्म च ।
युज्यते प्रौढताऽऽयाति ततोभक्तिर्विजृम्भते ।। ३४ ।।
क्रीडन्त्येवार्भकास्ते च क्रीडन्त्यपि किशोरका: ।
प्रौढा: क्रीडन्ति कुर्वन्ति पौरुषोपार्जनान्यपि ।। ३५ ।।
ज्ञानस्य कर्मणो भक्तेस्त्रिवेणी सेदृशं मता ।
गंगायमुनायोर्योगे यथा शुभ्रा सरस्वती ।। ३६ ।।
ज्ञानस्य कर्मणश्चापि संयुक्तोऽभ्यास एष चेत् ।
दिशां शुद्धां क्रामतीत्थं तत्र भक्तेर्नवोदय: ।। ३७ ।।
आत्मनस्तु विकासस्य प्रौढतायां तु कर्मणा ।
ज्ञानेन सह भक्ते: स उदयो नव उच्छलेत् ।। ३८ ।।

टीका- विकासक्रम बढ़ता है, तो ज्ञान के साथ कर्म जुड़ता है। प्रौढ़ता आती है, तो कर्म के अतिरिक्त भावना की उमंगें भी उभरती हैं। बालक मात्र खेलते हैं, किशोर खेलते और पढ़ते हैं, प्रौढ़ खेलते भी हैं, पढ़ते भी हैं और उपार्जन पुरुषार्थ भी करने लगते हैं। ज्ञान,कर्म और भक्ति की त्रिवेणी ऐसी ही है, जैसे गंगा में यमुना का मिलन और इससे कुछ ही आगे उनके साथ सरस्वती का समन्वय। ज्ञान और कर्म का संयुक्त अभ्यास यदि सही दिशा में चल रहा होगा, तो उसमें भक्ति का नया उभार भी होगा। आत्म-विकास की प्रौढ़ता में ज्ञान-कर्म के साथ भक्ति का नया उभार उमँगता है।। ३४-३८ ।।

व्याख्या- सद्ज्ञान प्रेरित कर्मों में भावना का समावेश आंतरिक परिपक्वता का चिह्न है। यह आध्यात्मिक प्रगति की चरम सीमा है।*भाव*-संवेदनाओं, श्रेष्ठता की उमंगों के जीवन में समावेश का अर्थ है श्रद्धा को ईश्वर विश्वास को-अपने अन्त: में स्थान दे देना। ज्ञान व कर्म को जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में सत्यप्रयोजनों से जोड़ दिया हो, भक्ति की भावतरंगें स्वत: ऊपर उमड़ आती हैं। ज्ञान, कर्म भक्ति की यह त्रिवेणी व ऐसा तीर्थराज हम सबके अन्दर विराजमान है जिसमें स्नान अवगाहन कर हम अपने जीवन को कृत-कृत्य बना सकते हैं।

प्रेमादर्शान् प्रतीत्थं तानुन्नेतुं चाप्यनुन्नतान् ।
वर्धमानजनाँश्चापि प्रोत्साहयितुर्मज्जसा ।। ३९ ।।
सहजा या समुत्कण्ठा तत्र भक्तेर्मनोरमा ।
सुषमा दृश्यन्ते दिव्या विशाला च महामुने ।। ४० ।।

टीका- आदर्शों के प्रति प्रेम। पिछड़ों को उठाने की- बढ़तों को बढ़ाने की -सहज उत्कण्ठा में भक्ति की झाँकी मिलती है, जो दिव्य व विशाल होती है ।। ३९-४० ।।

व्याख्या- भक्ति का अर्थ है-श्रेष्ठता से प्रगाढ़ स्नेह। भक्ति हमेशा सोद्देश्य होती है और उसमें देवत्व के अनुरूप ही आत्म विस्तार की भावना का समावेश होता है। सच्चा भक्त कभी भी अपने से छोटों-पिछड़ों को उठाये बिना अपने उत्कर्ष की बात नहीं सोचता। भक्ति का अर्थ विह्वल होकर भावना का मात्र स्मरण करना नहीं अपितु अपने भीतर उमड़ने वाली श्रद्धा और करुणा से असंख्यों-असमर्थों को अनुप्राणित करना है।

स्वशरीरे कुटुम्बे च सीमितं प्रेम प्रोच्यते ।
मोहो, व्यापकतां यातो भक्तित्वेन प्रशस्यते ।। ४१ ।।
उदार सेवारूपेऽथ साधनारूपकेऽपि वा ।
उदारा परिणतिस्तस्या स्वत्वं सर्वेषु वर्धते ।। ४२ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहि तत्र पर: कोऽपि दृश्यते तात् स्वकात् सदा ।
सुसंस्कृताँश्च सुखिन: कर्तुमाकुलतोचिता ।। ४३।।
भक्तेषु मनुजेष्वेवमाकुलत्वं तु दृश्यते ।
ग्रहीतुं विस्मरन्तस्ते दातुमेव स्मरन्ति हि ।। ४४।।

टीका- प्रेम जब शरीर-परिवार तक सीमित रहता है, तो उसे मोह कहा जाता है, किन्तु जब वह व्यापक आत्मीयता के रूप में प्रकट होता है, तो भक्ति भावना के रूप में सराहा जाता है। उसकी परिणति उदार सेवा-साधना के रूप में होती है। सभी अपने लगते हैं। कोई विराना नहीं रहता। अपनों को सुखी और सुसंस्कृत बनाने के लिए आकुलता उत्पन्न होना स्वाभाविक है । भक्तजनों में ऐसी ही पारमार्थिक आकुलता पायी जाती है। वे लेने की बात भूल जाते हैं, देना ही देना स्मरण रहता है ।। ४१-४४।।

व्याख्या- परिवार परिकर से प्रेम आरंभ होता है एवं विश्व परिवार तक पहुँचकर विस्तृत बन जाता है। जो परिवार को स्नेह-सहकार से न भर सका, वह विश्व को क्या प्यार बाँट पायेगा ?

दातुं सर्वस्य मर्त्यस्य सन्ति स समय: श्रम: ।
चिन्तनं कौशलं शौर्यं परामर्शार्हताऽपि च ।। ४५।।
अतिरिक्तमत: स्वस्योपार्जनं सञ्चयस्तथा ।
आंशिकस्तु भवत्येव पार्श्वे सर्वस्य निश्चितम् ।। ४६।।

टीका- देने के लिए हर मनुष्य के पास श्रम, समय, चिन्तन,कौशल, प्रभाव, परामर्श जैसी ईश्वर-प्रदत्त क्षमताएँ अनेकों हैं। इसके अतिरिक्त अपना उपार्जन एवं संचय भी कुछ न कुछ अवश्य हर किसी के पास होता है ।। ४५-४६।।

व्याख्या- कोई आवश्यक नहीं कि देने वाला धन की दृष्टि से समर्थ-सम्पन्न ही हो। हर व्यक्ति ईश्वर की दी हुई ऐसी विभूतियों से लदा हुआ है कि अन्त: में सदाशयता हो तो यह अक्षय भण्डार कभी खाली नहीं होने वाला। अपनी उपार्जित सम्पदा श्रम, समय, चिन्तन, कौशल, प्रभाव, परामर्श, रूपी छह दिव्य विभूतियों से अलग है। परमार्थ प्रयोजन हेतु कोई श्रमदान करना चाहे तो संयुक्त शक्ति से भवन निर्माण, अस्वच्छता निवारण एवं व्यक्तिगत रूप से अशक्त-असमर्थ की सहायता कर सकना सम्भव है। समय सम्पदा का उपयोग सत्प्रवृत्ति विस्तार,निरक्षरों को अक्षर ज्ञान जैसे पुण्य प्रयोजनों में हो सकता है। चिन्तन के माध्यम से मनीषी साहित्य सेवा, विचार क्रान्ति तथा लोगों के जीवन में विधेयात्मक मोड़ लाने का कार्य करते रहे हैं। कौशल शिल्पी के पास भी होता है व चिकित्सक के पास भी। अपना क्रिया कौशल एवं अर्जित ज्ञान ईश्वरीय उपहार मानकर उसे बाँटना आरम्भ करे तो निस्वार्थ सेवा सुश्रूषा तथा सृजनात्मक गति-विधियों के रूप में व्यक्ति निश्चय ही परमार्थ कार्य कर सकता है।

कुछ व्यक्तित्व सम्पन्न, व्यवहार कुशल होने के नाते समाज में अपना विशेष प्रभाव रखते हैं। स्वयं न दे सकने की स्थिति में होते हुए भी सत्प्रवृत्ति विस्तार हेतु वे अपना दबाव ऐसे वर्ग पर रखते हुए समाज सेवा कर सकते हैं जो स्वयं अपनी ओर से देने की पहल नहीं करता। परामर्श में विलक्षण-अदभुत सामर्थ्य है। दिग्भ्रान्त व्यक्ति को अपने अनुभव जन्य परामर्श से सही दिशा में चलने हेतु प्रवाह बना देना-किसी का जीवन बदलने के समान है।

संकीर्णायां तु स्वार्थस्य परतायां नियन्त्रणे ।
जाते न्यूनतमे तेषां निर्वाहक्रम उच्चलेत् ।। ४७।।
सुरक्षितो निधि: पार्श्वे स इयान् कर्मयोगिन: ।
चरितार्थयितुं भक्तेर्भावनां पारमार्थिके ।। ४८।।
प्रयोजने ऽनुदानानि प्रस्तूयाच्छलाघ्यकानि हि ।
कृपणेषु हि दारिद्र्यं कृत स्थानं तु दृश्यते ।। ४९।।

टीका- संकीर्ण स्वार्थपरता पर अंकुश लगते ही न्यूनतम में उनका निर्वाह क्रम चल जाता है। कर्मयोगी के पास इतनी बचत पूँजी रहती है, कि वह भक्ति-भावना को चरितार्थ करने के लिए परमार्थ-प्रयोजनों के लिए सराहनीय अनुदान प्रस्तुत कर सके। दरिद्रता तो मात्र कृपणों पर छाई रहती है ।। ४७-४९।।

व्याख्या- भक्ति भावना अन्दर तक ही सीमित न रहे। वह परमार्थ हेतु सत्कर्मों के रूप में अभिव्यक्त हो तो ही वह सार्थक है। वृत्ति कृपण जैसी हो तो कुबेरों का खजाना भी व्यर्थ है। उदार के लिये तो प्रतिकूल परिस्थिति में भी परमार्थ की आकुलता रहती है।

निराकार: प्रभुश्चित्ते नरस्यावतरत्ययम् ।
तस्यानुभूतिरुच्चस्य स्तरस्यैव तु प्रेमके ।। ५०।।
भवति ज्ञायते या च भक्तिरूपेण मानवै: ।
आदर्शाबद्धमात्मीयत्वं हि भक्तेस्तु भावना ।।५१।।
तस्या अभ्यास एकान्त ईश्वरायात्मनो मुने ।
समर्पणस्य श्रद्धाया उदयाय विधीयते ।। ५२।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपक्वामवस्थां सा श्रयते तु यथा-यथा ।
उदारात्मीयतारूपे व्यापके समुदेति च ।। ५३।।

टीका- ईश्वर निराकार है। उसका अवतरण मनुष्य के अन्त:करण में होता है। उसकी अनुभूति उस उच्चस्तरीय-प्रेम में होती है जिसे भक्ति रूप में मनुष्यों द्वारा जाना जाता है। आदर्शों के साथ लिपटी हुई आत्मीयता ही भक्तिभावना है। भक्ति का एकान्त अभ्यास ईश्वर को आत्म-सर्मपण करने की श्रद्धा उभारने के रूप में किया जाता है। जैसे-जैसे वह परिपक्व होती है, उदार-आत्मीयता के रूप में प्रकट होती और व्यापक बनती है ।। ५०-५३।।

व्याख्या- ईश्वर का सही स्वरूप है अंत: में श्रेष्ठता के प्रति अनुराग विकसित होना तथा उसका आत्मीयता के रूप में बहिरंग में व्यक्त होकर चारों ओर फैल जाना। अहं विसर्जन के इस पुरुषार्थ को श्रद्धा कहते हैं, जिसे उभारने मात्र के लिये भक्ति का एकान्त अभ्यास किया जाना है यह प्राथमिक स्थिति है-क्रमिक गति से विकसित होकर यह अपने तक सीमित न रहकर चारों ओर विस्तृत हो जाती है। सब अपने ही दिखाई पड़ते हैं।

प्रेमेव परमेशोऽस्ति स आनन्दस्वरूपधृक् ।
जडो वा चेतनो वाऽपि प्रियतां याति प्रेमत: ।।५४।।
ईश्वरं प्रति प्रेम्णैति श्रद्धाऽऽदर्शान् प्रति ध्रुवम् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु दृष्टिकोणो भविष्यति ।।५५।।
वसुधैव कुटुम्बं च भावनाया: क्रियान्विति:।
कर्तारस्ते क्रियालापाश्चलिष्यन्त्यञ्जसैव तु ।।५६।।

टीका- प्रेम ही परमेश्वर है। वह आनन्दस्वरूप है। जिस जड़-चेतन से प्रेम करते हैं, वही प्रिय लगने लगता है। ईश्वर के प्रति प्रेम उमड़ेगा तो आदर्शों के प्रति श्रद्धा बढ़ेगी। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का दृष्टिकोण उभरेगा और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को क्रियान्वित करने वाले क्रियाकलाप सहज ही चल पड़ेंगे ।। ५४-५६।।

व्याख्या- ईश्वर-प्रेम का माप दण्ड एक ही है-आदर्शों से घनिष्ठ रूप में जुड़ जाना। अपना आपा ही सर्वत्र बिखरा दिखाई दे तथा सारी धरती अपना परिवार, तो सारे क्रिया कलाप स्वत: ही परमार्थ युक्त होने लगते हैं। सघन प्रेम जिस पर आरोपित किया जाता है वही आत्मीय हो जाता है। भक्ति की यही भावना व्यक्ति को परमेश्वर की श्रेष्ठ सन्तान सिद्ध करती है।

बालानां भक्षणे प्रीतिस्तथा ऽदाने परन्तु ते ।
प्रौढा विभज्य काले च क्षुधार्तास्ते ददत्यपि ।।५७।।
एवंविधा उदारानुदानिनो ये वरं तु ते ।
अभावग्रस्ता दृश्यन्ते रसाग्राहिविलासिनाम् ।।५८।।
आत्मतोषस्य लोकस्य मानस्याऽनुग्रहस्य च ।
दैवस्य त्रिविधो लाभ: प्राप्यते तैस्तु य: सदा ।।५९।।
स समस्तस्य विश्वस्य वैभवादतिरिच्यते ।
आनन्ददायकत्वेनामृतं लब्धं तु तैर्नरै: ।। ६०।।

टीका- बालकों को खाने और पाने में रुचि होती है,किन्तु प्रौढ़-परिपक्व मिल-बाँट कर ही नहीं खाते, अवसर आने पर स्वयं भूखे रह कर भी दूसरों को खिलाते हैं। ऐसे उदार अनुदानी रस लेने वाले बिलासियों की तुलना में अभावग्रस्त तो दीखते हैं, पर उन्हें आत्म-सन्तोष, लोक-सम्मान एवं दैवी अनुग्रह का जो त्रिविध लाभ सदा मिलता है, उसे संसार भर के समस्त वैभव से भी अधिक आनन्ददायक पाया जाता है, मानो उन्होंने अमृत पा लिया है ।। ५७-६०।।

व्याख्या- देने वाले, खिलाने वाले ही भगवान की दृष्टि में प्रौढ़ परिपक्व हैं। वे स्वयं बहिरंग में तो निर्धन अभावग्रस्त दिखाई पड़ते हैं पर उनकी अंत: की सम्पदा का भण्डार इतना विशाल होता है कि सारा लौकिक वैभव उसके समक्ष झुकता है। ऐसा करके बदले में वे आत्मसन्तोष, जन श्रद्धा तथा प्रभु की अजस्र अनुकम्पा की विभूतियाँ पाते हैं जो उन्हें धन्य बनाती हैं तथा सच्ची सम्पदा से विभूषित करती हैं।

उदारमनसां भक्त जनानां जीवनं मुने ।
विप्राऽपरिग्रहित्वेन स्वभावेन युतं भवेत् ।। ६१।।
परायणं परार्थे च साधूनामिव जायते ।
न भवन्ति धनाध्यक्षा यद्यप्येते तथापि तु ।।६२।।
आत्मिकानां विभूतीनां निर्धीस्ते प्राप्नुवन्त्यलम् ।
कुबेरसम्पदा येभ्यो न्यूना मन्येत निश्चितम् ।।६३।।

टीका- उदारमना भक्तजनों का जीवन ब्राह्मणों जैसा अपरिग्रही और साधुओं जैसा परमार्थ-परायण रहता है। अस्तु वे धनाध्यक्ष तो नहीं बनते, पर आत्मिक विभूतियों का इतना भण्डार उन्हें उपलब्ध होता है जिसकी तुलना में कुबेर की सम्पदा भी स्वल्प मानी जा सके ।। ६१-६३।।

व्याख्या- भक्त कभी स्वयं के लिये सम्पन्नता नहीं चाहता-सदैव बाँटने को आतुर रहता है। इसी को 'ब्राह्मण' वृत्ति कहते हैं। ब्राह्मण वर्ण-जाति से नहीं अपितु व्यक्ति कर्मों से होता है । ऐसा सादा जीवन जीकर वह विश्व मानव के कल्याण की परमेश्वर की इच्छा में ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी इच्छा मिलाता है। ब्राह्मण को प्रलोभन कभी विचलित नहीं करते व जो भी उपलब्ध होता है उसी में सन्तोष कर लेते हैं।

भक्तेरुदारभावस्य जायते त्वरुणोदयः ।
सहकारिप्रवृत्तौ तत्प्रयासोऽत्र विधीयताम् ।। ६४ ।।
वासः परस्परापेक्षी विभाजापेक्षि भोजनम् ।
स्थितिः प्रमोदपूर्णा च ह्यस्या एवोपलभ्यते ।। ६५ ।।
सहयोगेन पन्थाः स प्रशस्तः प्रगतेर्मतः ।
संघबद्धत्वमेवेदं सामर्थ्यं परमं स्मृतम् ।। ६६ ।।

टीका- भक्ति की उदार-भावना का अरुणोदय सहकारिता की प्रवृत्ति में होता है, अतः इस दिशा में प्रयास करना चाहिए। हिल-मिल कर रहने-मिल बाँट कर खाने से ही हँसती-हँसाती परिस्थितियाँ उपलब्ध होती हैं। सहयोग से ही प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है। संघबद्धता सबसे बड़ी सामर्थ्य है ।। ६४-६६ ।।

व्याख्या- दैनन्दिन जीवन में भक्ति जब समाविष्ट होती है तो उसका शुभारंभ सहकारिता की भावना से होता है। परस्पर अपना उपार्जन बाँट कर खाने की सदाशयता से विकसित होती है। एकाकी पन समाप्त होता है तो अन्दर की संकीर्णता का अन्धकार पलायन कर जाता है व उदारता का प्रकाश व्याप्त हो जाता है।

संकीर्णस्वार्थभावं ये नरा गृह्णन्ति सर्वदा ।
दिव्याभ्यो वञ्चिता नूनमनुभूतिभिरेव ते ।। ६७ ।।
भक्तिमात्राश्रयेणेमे लाभाः प्राप्यन्त एकदा ।
आत्मकल्याणमीशाप्तिर्विश्वकल्याणमेव च ।। ६८ ।।

टीका- संकीर्ण-स्वार्थपरता को अपनाने वाले इस दिव्य अनुभूति से वंचित ही रह जाते हैं। भक्ति ही एक मात्र अवलम्बन है, जिसके सहारे आत्मकल्याण, विश्वकल्याण और ईश्वरमिलन के त्रिविध परम लाभ एक साथ मिलते हैं ।। ६७-६८ ।।

व्याख्या- संकीर्ण स्वार्थपरता को ही भव-बन्धन माना गया है जिसके पाश में बँधा जीव भक्ति भावना के उच्चस्तरीय आनन्द को प्राप्त करने से वंचित रह जाता है।

धागे में गाँठ लगी हो तो वह सुई के छेद में नहीं घुस सकता और उससे सिलाई नहीं हो सकती। मन में स्वार्थ भरी संकीर्णता की गाँठ लगी हो तो वह ईश्वर में नहीं लग सकता और जीवन लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता।

जिस प्रकार रेशम के कीड़े अपनी लार से अपना घर बनाते हैं, और उसी में जकड़ कर मरते रहते हैं । पर जो चतुर कीड़े होते हैं, वे उस लार से बने घर को काट कर बाहर निकल आते हैं और उड़ जाते हैं। उसी तरह मनुष्य अपने लिये बन्धन अपने आप अज्ञान से खड़े करता है, उन्हीं में जकड़ा-सड़ता मरता रहता है। यदि वह चाहे तो विवेक रूपी मुख से उन्हें काट भी सकता है और रेशम के कीड़े की तरह बंधन से मुक्त भी हो सकता है।

मनुष्य को कृत-कृत्य करने वाली एक दिव्य अनुभूति अनुदान ईश्वर प्रदत्त है-वह है-ईश्वर भक्ति। जो व्यक्ति अपने को इस लाभ से वंचित रखना चाहता है वही संकीर्ण स्वार्थी बनता है। जो भक्ति का आश्रय लेकर आत्मीयता का क्षेत्र व्यापक बनाता है, वह अपना तो हित साधता ही है, सारे विश्व का कल्याण करता है एवं प्रत्यक्ष अनुभूति उसे ईश्वर से साक्षात्कार के समान होती है। भक्ति ही अंततः मुक्ति का कारण बनती है।

आत्मीयं प्रेमयत्तस्य भावनोद्भरितं मनः ।
प्रत्यक्षं स्वर्ग आनन्दानुभूतिं तु रसन्ति ये ।। ६९ ।।
भवन्ति कृतकृत्यास्ते प्राप्तं प्राप्तव्यमेव तैः ।
एकार्थसुखसौविध्यभावः संकीर्ण स्वार्थजः ।। ७० ।।
स नाशयति नूनं तं भक्तिभावं तथा च ये ।
अपेक्षया परेषां तु विलासविभवान्विताः ।। ७१ ।।
भवितुं मनुजा यान्ति महत्वाकांक्षितां हि ते ।
जायन्ते निष्ठुरा नूनमाततायिन एव च ।। ७२ ।।

टीका- आत्मीयता की प्रेमभावना से लबालब भरा हुआ, अन्तःकरण प्रत्यक्ष स्वर्ग है। उस आनन्दभरी अनुभूति का जो रसास्वादन करते हैं, कृत कृत्य बन जाते हैं, उन्हें मानों अपना सम्पूर्ण प्राप्तव्य प्राप्त हो जाता है । एकाकी सुख-सुविधा की बात सोचने वाली संकीर्ण-स्वार्थपरता-भक्ति-भावना को नष्ट करती है। दूसरों की तुलना में जो अधिक वैभववान्,विलासी बनने की महत्वाकांक्षा रखते हैं, वे मनुष्य निष्ठुर एवं आततायी ही बन सकते हैं ।। ६९-७२ ।।

व्याख्या- लबालब भरा प्याला छलक पड़ता है। जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में आत्मीयता रूपी रस भरा हुआ है, उससे छलकाये-बाँटे बिना रहा नहीं जाता। वह मात्र एक ही चिन्तन में लीन रहता है-किसे दूँ, कैसे बाँटूं। फूल से सुगन्ध छिपाये नहीं बनती। वायु को सुवासित किये बिना उसे सन्तोष नहीं। मधु मक्खी, भौरों को वह अपना रस पीने के लिए आमंत्रित करती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। कुछ यही स्थिति ऐसे व्यक्ति की होती है जो सदैव आनन्द की अनुभूति में मग्न अपने अन्दर स्वर्ग लिए उस आनन्द को बाँटने में सतत तैयार रहता है। भगवान ऐसे ही व्यक्ति के अन्तःकरण में प्रवेश करते हैं।

अहम्मन्यतया सार्धमुदारा भक्तिभावना ।
स्थातुं नैव समर्थास्ति द्वयोरेको विशिष्यते ।।७३।।
जीवनं सरलमुच्चविचारा इति भावनाम् ।
भक्ताभजन्तिस्वल्पं च भुञ्जतेभोजयन्त्यलम् ।।७४।।
याचन्ते स्वल्पमेवालं प्रयच्छन्ति च हर्षिताः ।
अल्पं कामयमानास्ते दातुकामाभवन्त्यलम् ।।७५।।

टीका- अहम्मन्यता और उदार-भक्तिभावना का एक साथ रह सकना शक्य नहीं। दोनों में से एक को प्रमुखता देनी होती है। इसलिए भक्तजन सादा जीवन-उच्च-विचार का सिद्धान्त अपनाते हैं। खाते कम और खिलाते अधिक हैं, माँगते कम और देते अधिक हैं, चाहते कम और देने की इच्छा अधिक रखते हैं-इसी में प्रसन्न रहते हैं।। ७३-७५।।

व्याख्या- सादा जीवन ही सन्त की मुख्य विशेषता है। यदि ऐसा नहीं है तो सञ्चय की भावना उच्च-विचारों को अन्दर प्रवेश नहीं करने देगी। 'मैं' तक सीमित व्यक्ति-उदार नहीं हो सकता और उदार आत्मीयता से भरा व्यक्ति अपना 'मैं' समष्टि में विलय कर देता है। मानव मात्र के प्रति कर्त्तव्य की पुकार स्वयं की *महत्वाकांक्षाओं* के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ती।

भक्तिर्भावुकता नैव तत्रोच्चादर्शता मता ।
सरलं ये तु जीवन्ति तेषामेषा तु सम्भवेत् ।।७६।।
अन्ये तात्कालिकान् भावावेशान् भक्तिं वदन्ति तु ।
भ्रमन्ति ते भ्रमावर्ते परांश्च भ्रामयन्त्यपि ।।७७।।

टीका-भक्ति, भावुकता नहीं है। उसके पीछे उच्च-आदर्श जुड़े रहते हैं। सादा जीवन जीने वालों के लिए भक्ति-भावना जैसी उच्च-विचारधारा अपना सकना सम्भव है। दूसरे लोग तो सस्ते भावावेशों को ही 'भक्ति' कहते हैं और भ्रम में पड़े रहते हैं तथा औरों को भी भ्रमित कर देते हैं ।। ७६-७७।।

व्याख्या- भक्ति अन्तः की उदारता का नाम है जो सत्कर्मों में परिणत होती है। थोड़ा सा रोमांच, भावुकता का प्रवाह ही बहुसंख्य व्यक्तियों को भ्रम में डाल देता है। कीर्त्तन, स्तवन आदि की महत्ता है उसे निरुद्देश्य बनाकर मात्र आडम्बर रच देने से भ्रम जंजाल और फैलता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं तो कुछ पाते नहीं, अपने साथ कई मन्द बुद्धि भावुकों को भी भक्ति के आनन्द से वंचित कर दिग्भ्रान्त कर देते हैं। आदर्श यदि जीवन में न उतरें तो ऐसा सस्ता भावावेश किस कामका ?

संकीर्णास्वार्थपरतैव विद्यते भवबन्धनम् ।
लोभमोहावहंकार इति तस्यास्त्रयः सुताः ।।७८।।
इदं कुटुम्बं यत्रापि वासमाधास्यति ध्रुवम् ।
तत्रेर्ष्याकलहद्वेषपातदुर्व्यसनानि च ।।७९।।
प्रसंगात्प्रत्यहं नूनमुदेष्यन्ति तथेदृशाः ।
आत्मप्रताडनां लोकभर्त्सनां प्राप्नुवन्ति च ।।८०।।

टीका- संकीर्ण-स्वार्थपरता ही भव-बन्धन है। लोभ-मोह और अहंकार उसी के तीन पुत्र हैं। यह परिवार जहाँ भी बसेगा वहाँ ईर्ष्या, द्वेष, कलह, दुर्व्यसन और पतन के प्रसंग आये दिन उभरते रहेंगे। ऐसे लोग आत्म-प्रताड़ना और लोक-भर्त्सना सहते रहते हैं ।। ७८-८०।।

व्याख्या- संकीर्ण स्वार्थपरता आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग में चट्टान बनकर आ खड़ी होती है, इस प्रसंग की चर्चा महाप्राज्ञ इसी प्रकरण में पहले कर चुके हैं। भक्ति तत्व की व्याख्या करने के उपरान्त वे इस अवरोध का विस्तार करते हुए बताते हैं कि उदार आत्मीयता व्यवहार में न उतरने का मूलकारण लोभ, मोह और अहंकार रूपी भव बन्धन ही हैं । तीनों ही एक से एक बढ़कर हैं। यह तय नहीं किया जा सकता कि कौन प्रथम है, कौन द्वितीय ? यह परिवार ऐसा है जिसमें रावण, अहिरावण जैसे सगे भाई प्रतीत होते हैं। तिनके जैसी हलकी कोई वस्तु पर्वत जैसी भारी बनकर आदर्शवादी कहे जाने वाले व्यक्तियों को दिग्भ्रान्त कर उनके मनः क्षेत्र पर भूत-पिशाच की तरह कैसे चढ़ बैठती है और भली-चंगी परिस्थितियाँ होते हुए भी नारकीय उत्पीड़नों की तरह निरन्तर संत्रस्त करती रहती है, उसका प्रत्यक्ष उदाहरण दैनन्दिन जीवन के प्रसंगों में देखा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति भीतर की लानत और बाहर का धिक्कार दोनों जीते जी सहते व नरक भोगते हैं।

पूजयाऽपि प्रसीदन्ति तेषु देवा न किन्तु ते ।
दुरात्मनां मनोभावं ज्ञात्वा क्रुध्यन्ति नित्यशः ।।८१।।
सन्तापं शमयत्येनां पूर्णतो भक्तिभावना ।
अतो भक्तिश्च मुक्तिश्च सघने संयुते मते ।।८२।।
स्वार्थान्धतां नरो यावन्मात्रया यो त्यजत्यसौ ।
अनुपातेन तेनैव जीवन्मुक्तो भविष्यति ।।८३।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- पूजा करने पर भी देवता प्रसन्न नहीं होते और इन दुरात्माओं की मनःस्थिति को समझते हुए उन पर कोप ही बरसाते रहते हैं। भक्ति भावना ही इस तपन को पूर्णरूपेण बुझाती है। इसलिए भक्ति और मुक्ति को परस्पर सघन-संयुक्त माना जाता है। जो जिस मात्रा में स्वार्थान्धता का परित्याग करेगा, वह उसी अनुपात में जीवन्मुक्त बनता जायेगा ।। ८१-८३ ।।

व्याख्या- लोभ-मोह-अहंता की बेड़ियों में जकड़े व्यक्ति अपना मन समझाने को पूजा-पाठ जैसा बाह्योपचार कर भी लें तो भी दैवी कोप के भागी होते ही हैं। अपनी गरिमा को भुलाकर जो भी अमानवीय कृत्यों में उलझता है, उसकी मनःस्थिति भगवत्सत्ता के समक्ष तो नंगी ही रहती है, बहिरंग थोड़े ही प्रभावित करता है।

भगवान तो भाव के भूखे हैं । भावहीन उपचार का वे धोखा मानते हैं । जब भावना पूर्वक, अपना सब कुछ उसको समर्पित कर भक्ति की जाती है तो वह अग्नि शान्त होती है जो व्यक्ति को जीते जी नरक का त्रास भोगने को विवश कर देती है। जैसे-जैसे ये बन्धन ढीले होते जाते हैं, भक्त-भगवान परस्पर सघन होते चले जाते हैं तथा व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर, जीवन्मुक्ति की ओर बढ़ता चला जाता है।

ईशप्राप्तेर्भक्तिरेकमवलम्बनमस्ति हि ।
उदारात्मीयभावानुप्राणिताऽऽदर्शवादिनी ।। ८४ ।।
सा परायणता या तु परार्था तत्र दृश्यते ।
भक्तेः सा भावनासत्याययादिव्यत्वमाप्यते ।। ८५ ।।

टीका- ईश्वर-प्राप्ति का एक मात्र अवलम्बन भक्ति ही है। उदार आत्मीयता से अनुप्राणित आदर्शवादी, परमार्थ परायणता में ही सच्ची भक्तिभावना के दर्शन होते हैं। जो मनुष्य को दिव्य बनाती है।। ८४-८५ ।।

व्याख्या- भक्ति वह सूत्र है जो जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ कर उसे दिव्य बना देती है। भक्ति अन्तः से उफन कर आने वाली, परहित के लिये त्याग-समर्पण की भावना है। यही मानव को महामानव बना देती है। बाह्य कर्मकाण्ड में उलझ कर जो परमात्मा के इस दिव्य स्वरूप को समझता है वह कभी भटकता नहीं।

यथा वेलादिनेनेयं रात्रेस्तु मिलनस्य हि ।
उषःकालोबुधैःप्रोक्तःप्राणिनो यत्र जाग्रति ।। ८६ ।।
परात्मना ऽऽत्मनः संगस्यास्ति नूनं तथा त्वयम् ।
भक्तिभावोदयो ह्येष प्रमाणमिह गोचरम् ।। ८७ ।।

टीका- जैसे रात्रि के दिन के साथ मिलन वेला को उषःकाल कहते हैं, जिसमें प्राणि-मात्र जग जाते हैं, वैसे ही आत्मा और परमात्मा से मिलन का प्रत्यक्ष प्रमाण भक्ति-भावना के उदय में देखा जाता है।। ८६-८७ ।।

व्याख्या- भक्ति एक प्रकार से अन्दर के अन्धकार को मिटाने वाला दिव्य प्रकाश है। आत्मा-परमात्मा का मिलन जीव का परम लक्ष्य है और यह उन्हीं में सम्भव हो पाता है जिनमें अन्तः से भक्ति तत्व का उदय होता है। भगवान से मिलने का एक ही प्रत्यक्ष प्रमाण है- भक्ति का आनन्द। जिसके बहिरंग में आत्मीयता विस्तार व परमार्थ साधन के रूप में जितनी मात्रा में यह परिलक्षित होने लगे, समझना चाहिये कि वह भगवान के उतना समीप पहुँच गया। यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति अपना मूल अस्तित्व खो दे, अपनी सत्ता को परमात्म सत्ता में समाहित मानले।

आदर्शान्प्रतिभक्तिः सा भवत्येनां तु व्यक्तिभिः ।
देवताभिस्तु काभिश्चिद् योजकात्तु महामुने ।। ८८ ।।
भिन्नां मोहप्रसंगाच्च मन्यत उच्चसंश्रयाम् ।
ज्ञानस्य कर्मणो भक्तेस्त्रिवेण्यां तत्र तद्दिने ।। ८९ ।।
स्नाता जिज्ञासवो जाताः प्रसन्नास्ते मनीषिणः ।
अज्ञायि ब्रह्मविद्याया गुप्तानां रहसामलम् ।। ९० ।।
लाभो ऽसाधारणस्त्वस्मिन् सत्संगे प्राप्यते तु तैः ।
इत्थं सत्रं समाप्तं तच्चतुर्थं ते मनीषिणः ।। ९१ ।।

टीका- हे मुनीश्वर ! भक्ति आदर्शों के प्रति होती है। उसे किसी व्यक्ति या देवता के साथ जुड़ने वाले मोह प्रसंग से सर्वथा भिन्न एवं उच्चस्तरीय ही माना गया है। ज्ञान कर्म के साथ भक्ति की त्रिवेणी में स्नान करके उस दिन सभी जिज्ञासु मनीषी बहुत प्रसन्न हुए। ऐसा लगा मानो ब्रह्मविद्या का असाधारण लाभ इस सुयोग सत्संग में उन्हें उपलब्ध हो रहा है। इस प्रकार चौथा सत्र दिवस समाप्त हुआ।। ८८-९१ ।।

व्याख्या- उदार भक्ति भावना प्रकरण का समापन करते हुये महाप्राज्ञ दुहराते हैं कि भक्ति सदैव सही अर्थों में आत्मसात् की जाय। माध्यमों को ही लक्ष्य न मानकर, साध्य मानकर आत्मज्ञान, कर्त्तव्यों का परिपूर्ण निष्ठा से पालन तथा आदर्शों से सघनता जोड़ने का अभ्यास करते हुये आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब तक इस क्रम का अभ्यास न होगा, समय क्षेप तो होगा ही, भ्रम-जंजाल के भटकाव थकान और लदेगें। मनीषियों ने ईश्वरीय सत्ता के सही स्वरूप को समझा और मनुष्य के परम कर्त्तव्य आदर्शों के परिपालन हेतु निष्ठापूर्वक जुट गये।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्या ऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री पिप्पलाद श्वेतकेतु ऋषि सम्वादे "उदारभक्तिभावनेना" इति प्रकरणो नाम ।।पञ्चमोऽध्यायः।।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

सत्साहस-संघर्ष प्रकरण

आरण्यकस्य सत्रस्य पञ्चमे दिवसे शुभे ।
जिज्ञासुः स हि दुर्वासा महर्षिः प्रमुखोऽभवत् ।।१।।
स्थितः सोऽग्रिमपंक्तौ च जिज्ञासां स्वां च व्याहरन्।
ओजोगम्भीरया वाचा पिप्पलादमथाब्रवीत् ।।२।।

टीका- पाँचवें दिन के आरण्यक सत्र के प्रमुख जिज्ञासु थे-महर्षि दुर्वासा। वे अग्रिम पंक्ति में बैठे और अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुये ओजपूर्ण- गम्भीर स्वर में पिप्पलाद से बोले।। १-२।।

दुर्वासा उवाच-

ब्रह्मविद्या प्रवृतेः सम्वर्धनस्य प्रसङ्गके ।
देव! यद् भवता प्रोक्तं कृतार्थ वयमत्र तु ।।३।।
तथाप्येकं तु पश्यामो ह्यसमञ्जसमत्र यत् ।
संसारे व्याप्त दुर्भावैः संघर्षः किं विधो भवेत् ।।४।।
आसुराक्रमणैरात्मरक्षायै के ह्युपायकाः ।
आश्रितव्या इदं चापि कृपयाद्य निगद्यताम् ।।५।।
स्त्रष्टुः पवित्रसृष्टौ तु कस्माद्धेतोरवस्थितम् ।
अधर्मास्तित्वमेतद् यज्जगत्सर्वं दुनोत्यलम् ।।६।।

टीका- देव ! आपने ब्रह्मविद्या के सत्प्रवृत्ति संवर्धन प्रसंग पर जो प्रकाश डाला, उससे हम सभी कृतार्थ हुये हैं, फिर भी एक असमंजस बना हुआ है कि इस संसार में सर्वत्र संव्याप्त दुष्टता से किस प्रकार निपटा जाय? आसुरी आक्रमणों से आत्मरक्षा के लिये किन उपायों का अवलम्बन लिया जाय ? कृपया यह भी बतायें कि स्रष्टा की पवित्र सृष्टि में अधर्म का अस्तित्व किस कारण बना हुआ है, जो सारे जगत को पीड़ित किये हुये है।। ३-६।।

व्याख्या- महर्षि दुर्वासा कहते हैं कि पहले चार सत्र व्याख्यानों के सत्संग से आत्मकल्याण , विश्वकल्याण, ईश्वर-मिलन जैसे दैवी अनुदान तो पा लिये। जो मनुष्य को पाने योग्य दिव्य विभूति सद्ज्ञान है, उसे पाकर मार्गदर्शन मिला है पर एक अड़चन फिर भी बनी है। अच्छाई के साथ बुराई भी चारों ओर व्याप्त है। हम भले बनें, वह तो ठीक है। पर सर्वत्र संव्याप्त दुष्टता तो अपनी कुटिल भूमिका निभायेगी ही। उससे कैसे मोर्चा लिया जाय ? दुःख यह भी होता है कि पृथ्वी पवित्र है, जीव मात्र सबके कल्याण-उत्थान हेतु ही स्रष्टा द्वारा भेजे गये हैं, फिर अधर्म क्यों? सत्प्रवृत्ति संवर्धन के साथ दुष्टता-प्रतिकार, दुष्प्रवृत्ति-निवारण की चर्चा किये बिना अध्यात्म दर्शन की विवेचना का प्रसंग अधूरा ही रह जाता है।

दुर्वाससो महर्षेस्तां सहजां प्रकृतिं तथा ।
प्रवृत्तिं पिप्पलादस्य कृतः प्रश्नोऽभ्यरोचत ।।७।।
समयानुकूलं तं प्रश्नं श्रुत्वा च सराह्य च ।
सत्रसञ्चालको ऽवादीत्पिप्पलादो हसन्निव ।।८।।

पिप्पलाद उवाच-

रुचेर्भवत आसक्तेरपि चात्र समर्थनम् ।
समाधानं च सम्मानं ब्रह्मविद्याविधौ वरम् ।।९।।
अनीतेः प्रतिरोधोऽपि नीतिपक्षसमर्थनम् ।
एकमास्ते तथाऽस्यापि महत्त्वं विद्यते ध्रुवम् ।।१०।।

टीका- महर्षि दुर्वासा की सहज प्रकृति और प्रवृत्ति को देखते हुये उनके द्वारा उठाया गया प्रश्न पिप्पलाद को अच्छा लगा,उस समयानुकूल प्रश्न को सुनकर और सराहना करके सत्र के सूत्र सञ्चालक पिप्पलाद ने हँसते हुये कहा- आपकी रुचि और रुझान का भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मविद्या में समुचित समाधान, सम्मान और समर्थन है। अनीति का प्रतिरोध-नीति समर्थन का एक पक्ष है तथा इसका भी निश्चित महत्व है।।७-१०।।

व्याख्या- ऋषि गणों की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं। दुर्वासा ऋषि का सहज स्वरूप एक ही रहा है-'अनीति के विरुद्ध कड़ा मोर्चा बनाना।' तपश्चर्या- भक्ति-परमार्थ यह भी एक क्षेत्र है और दुष्टता से संघर्ष भी इसका दूसरा पहलू है। यहाँ वे अपनी उसी भूमिका की मर्यादा महाप्राज्ञ पिप्पलाद से जानना चाहते हैं। महाप्राज्ञ उनके इस रुझान व मन:स्थिति को जानते हुये कहते हैं कि ब्रह्मविद्या में अनीति के विरुद्ध प्रतिकार को भी समान महत्व दिया गया है। ब्रह्मविद्या व साधना विज्ञान के महत्वपूर्ण ग्रन्थों 'गीता' एवं 'दुर्गासप्तशती' में साधना-समर, अनीति-प्रतिरोध की ही विवेचना की गई है। गीता में 'युद्धस्व' संबोधन स्थान-स्थान पर आया है। अपने अंत: के कुसंस्कारों से, बाहर के आक्रमणों से युद्ध ही इन दोनों ग्रंथों का मूल विषय है। इस पक्ष की अवहेलना किये बिना अध्यात्म दर्शन की चर्चा अधूरी ही रह जाती है। अवांछनीयता, अनैतिकता हर युग में, हर अवतार के समय में पायी गयी है। इनसे संघर्ष की हर एक युगानुकूल भूमिका बनी व तदनुसार तैयारी हुई है। ध्वंस व सृजन,सुधार एवं दुलार भगवत् सत्ता के ये दो पक्ष सदा-सदा से मुखरित होते आये हैं। उनकी चर्चा अध्यात्म ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर की गई है।

संसारेऽवाञ्छनीयत्वमतएव तु विद्यते ।
सहानुभूतिं कुर्यात्तन्न्यायनिष्ठां प्रति सदा ।। ११।।
समर्थने च तस्या हि प्रखरं तत्पराक्रमम् ।
कर्तुं च प्रेरयेद्रात्रिर्नोचेच्छ्रैष्ठ्यं दिनस्य न ।। १२।।
अनस्तित्वमनीतेश्चेन्नीते: किं गरिमा जनै: ।
ज्ञायेताऽधर्मसद्भावे धर्मसंस्थापनोदय: ।। १३।।
यदि रोगा न सन्त्येव चिकित्सायास्तत: कथम्।
विज्ञानस्य भवेत्सा तु स्थापना प्रगतिस्तथा ।। १४।।
अज्ञाननन्य हानिभ्य आत्मानं रक्षितुं वयम् ।
मनीषिण: सदा ज्ञानसाधनां कर्तुमुद्यता: ।। १५।।
एवं स्रष्टा हानियुक्तमनावश्यकमप्यद: ।
अवाञ्छनीयताऽस्तित्वं स्थापयामास मन्यताम्।।१६।।

टीका- संसार में अवांछनीयता भी इसलिये है कि वह न्यायनिष्ठा के प्रति सहानुभूति उभारे और उसके समर्थन में प्रखर पराक्रम करने की प्रेरणा दे। यदि रात्रि न हो तो दिन की विशिष्टता ही न रहे। अनीति का अस्तित्व न हो तो नीति की गरिमा लोग कैसे समझेंगे? अधर्म के रहने पर ही धर्म संस्थापना का प्रयास होता है। यदि रोग ही न हों तो चिकित्सा विज्ञान की स्थापना और प्रगति ही कैसे हो? अज्ञान की हानियों से बचने के लिये हम मनीषी लोग ज्ञान की साधना करते हैं। इसी प्रकार स्रष्टा ने अनावश्यक एवं हानिकारक लगते हुये भी संसार में अवाञ्छनीयता का अस्तित्व रखा है- ऐसा समझो।। ११-१६।।

व्याख्या- भगवान अपने प्रिय राजकुमार की परीक्षा अवांछनीयता की माया रचकर ही लेते हैं। जब तक इनसे जूझने का माद्दा अन्दर से उत्पन्न नहीं होता, प्रखरता उत्पन्न नहीं होती। खिलाड़ी को पैना बनाने के लिये अपने से अच्छे कुशल खिलाड़ी से ही खिलाया जाता है। कोई भी प्रशिक्षक मार्ग दर्शक इसमें सहानुभूति का व्यवहार नहीं करता। भगवान भी एक परीक्षक है। वह चाहता है कि उसका बेटा समर्थ बने और वह तब तक सम्भव नहीं जब तक मोर्चे पर उसे खुला न छोड़ दिया जाय।

महाप्राज्ञ दिन-रात्रि, अनीति-नीति,अधर्म-धर्म, रोक-चिकित्सा, अज्ञान-ज्ञान के मर्मस्पर्शी उदाहरणों द्वारा अपने मन्तव्य को बड़ी कुशलता पूर्वक स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि इस अनीति-अनाचार को भी भगवान की एक देन मानें जो हमारी परीक्षा सतत लेती रहती है। कुरेद-कुरेद कर यह देखती है कि पराक्रम, मन्यु, सत्साहस की मनुष्य में कहीं कमी तो नहीं है।

मानवी बुद्धि सहज ही सोच सकती है कि अवाछंनीयताएँ अनावश्यक होते हुये भी क्यों विद्यमान हैं। यह भी इसलिये है कि हमें नीतिस्थापना के लिये प्रेरणा मिले। सहज ही कमरे में गंदगी प्रवेश करती है पर सफाई के लिये हमें प्रेरणा दे जाती है। शरीर से विजातीय द्रव्य पसीने आदि के रूप में सहज क्रम में निकलते हैं पर हमें स्वच्छता की प्रेरणा दे जाते हैं।

व्यायामभवने ये तु युद्ध यन्ते हि परस्परम् ।
शूरावीराश्च जायन्ते बलिष्ठा नात्र संशय:।।१७।।
पराक्रमो नरस्यास्ति महत्त्वमहितो गुण: ।
उदय:सम्भवस्तस्य संघर्षेणैव नान्यथा ।। १८।।
एताहशे त्वनायाते जीवनेऽवसरे नर: ।
वञ्चित:प्रतिभायाश्च प्रखरताया अपि त्वलम्।।१९।।
येन स निष्प्रभं दीनहीनमेव हि जीवति ।
जागृतिस्तत्परत्वं च प्रखरता सन्ति सद्गुणा:।।२०।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इमे त्रयो गुणा न्यायपक्षमाश्रित्य सर्वथा ।
युद्धयमाने भजन्त्याशु विकासं तु महामुने ।। २१ ।।

टीका- व्यायामशाला में दैनिक रूप से परस्पर जूझने से ही शूरवीर बलिष्ठ होते हैं- इसमें सन्देह नहीं। पराक्रम मनुष्य का महत्वपूर्ण गुण है। उसे संघर्ष द्वारा ही उभारा जाता है। ऐसा अवसर न आने पर मनुष्य प्रतिभा और प्रखरता से वंचित रहता है, जिससे वह गया-गुजरा दीन-हीन जीवन ही जी सकेगा। जागरूकता, तत्परता और प्रखरता - ये तीनों गुण न्याय के समर्थन में अन्याय से जुझने पर ही विकसित होते हैं।। १७-२१।।

व्याख्या- शरीर में बल हो,न हो, अन्दर से प्रखरता न उभरे तो वह व्यर्थ है। शरीर की दृष्टि से बलिष्ठ बनने के लिये पहलवान नित्य साधना करते हैं, अपने से अधिक समर्थ बलशाली से दो-दो हाथ करते हैं तभी उनके गुण उभर कर आते हैं। मात्र आहार व नित्य व्यायाम तो सिद्धान्त का एकांगी पक्ष है। व्यवहार वह है जिसमें अपने आपको सान पर चढ़ाया जाता है। यदि मनुष्य इससे दूर भागता है अथवा उसे अवसर नहीं मिलता तो वह अन्त: की प्रखरता, बुद्धि का पैनापन तथा शरीर की बलिष्ठता जैसी विभूतियों से वंचित ही बना रहता है। जब वह जूझने का साहस पैदा कर लेता है तो जागरूकता, तत्परता, प्रखरता जैसी सद्गुण सम्पदा पाकर कृत-कृत्य हो जाता है। जागरूकता अर्थात् वांछनीय-अवांछनीय पहचान सकने की क्षमता, तत्परता अर्थात् तुरन्त निर्णय लेकर क्रियान्वयन करने की क्षमता, प्रखरता अर्थात् न्याय, रक्षा हेतु किस प्रकार मोर्चा लेना, इस क्षमता का विकास।

विश्व इतिहास की रश्मियाँ यह बताती हैं कि संसार संघर्ष का रंगमंच है जिसमें व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र अपने सिद्धान्तों, आदर्शों की रक्षा के लिये संघर्षरत होकर अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। यह संघर्ष ही वस्तुत: श्रेष्ठता की कसौटी है। ऐसा देखने में आया है कि इन युद्धों में हार उन्हीं की हुई जो आदर्श-हीन और दुर्बल मनोबल के थे। पर जो सत्य, न्याय और आदर्शों का संबल लेकर लड़े उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सका। उन्हीं को विजय मिली, न्याय जिनके पक्ष में था, क्योंकि सत्य की शक्ति मानवों को निरन्तर युद्ध करने की क्षमता प्रदान करती है और जो लम्बे समय तक संघर्षरत रह सकता है सुनिश्चित रूप से अन्तिम विजय भी उसे ही उपलब्ध होती है।

अज्ञानं चाप्यभावश्च श्रेण्यामस्यां निरूपिते ।
देवास्त्रयो ज्ञानकर्मौदार्यनामान एव ते ।। २२ ।।
अज्ञानमथ सोड भावोऽन्यायश्चैतेत्रयोड सुरा: ।
विद्यन्तेऽनादिकालाच्च युद्धयन्तेतुत्रयस्त्रिभि: ।। २३ ।।
दैवासुरस्तु संग्राम एष एवास्य हे मुने ।
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे महाभारतकस्य तु ।। २४ ।।
साधना समरस्यैते सन्ति योद्धार एव ये ।
योद्धव्यं तै: सदैवात्र युद्धाद् ये विरमन्ति च ।। २५ ।।
भर्त्सनां ते लभन्ते च मोहग्रस्तो यथार्जुन: ।
वाञ्छन्नपि न वै कश्चित् संघर्षाद्दूरमाव्रजेत ।। २६ ।।

टीका- अज्ञान और अभाव भी इसी श्रेणी में आते हैं। तीन देवता हैं-ज्ञान, कर्म और औदार्य। तीन असुर हैं- अज्ञान, अभाव और अन्याय। इन्हीं के बीच अनादिकाल से संघर्ष चलता आ रहा है। यही देवासुर संग्राम है। इसी महाभारत के धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में साधन-समर के शूरवीर योद्धा को निरन्तर जूझना पड़ता है। जो इससे बचने का प्रयत्न करेगा उसे मोहग्रस्त अर्जुन की तरह भर्त्सना सहनी पड़ेगी, कोई संघर्ष से बचना चाहे तो भी नहीं बच सकता ।। २२-२६ ।।

व्याख्या- अनीति की ही श्रेणी में अज्ञान और अभाव आते हैं। ज्ञान, कर्म और उदारता इन तीन देववृत्तियों की चर्चा पिछले प्रकरण में की जा चुकी है। संसार में प्रकाश और अन्धकार के युग्म की तरह इन देवों के भी प्रतिरोधी अज्ञान, अभाव, अन्याय के रूप में विराजमान हैं। अन्तर्जगत के समरांगण में हर व्यक्ति को एक संग्राम का सामना करना होता है जिसमें ज्ञान से अज्ञान को, कर्मशीलता से अभाव को तथा उदारता की वृत्ति से अन्याय को चुनौती देकर उन्हें परास्त करना पड़ता है। इन तीन असुरों की काट इन तीन अस्त्रों से ही हो सकती है। इसका अन्य कोई विकल्प नहीं।

मनुष्य चाहे तो भी इस संघर्ष से बच नहीं सकता। विशाल भारत की स्थापना व संकीर्ण स्वार्थपरता को मिटाने के लिये स्वयं भगवान के रहते हुये भी 'महाभारत' हुआ ही। अज्ञान, अभाव व अनाचार की वृत्ति यदि अन्दर विद्यमान है तो इनसे प्रतिकार हेतु स्वयं को तैयार करना ही पड़ेगा। नहीं करेंगे तो मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। उसे किसी न किसी प्रकार ऐसा करने की सीख मिलती है व उसे सही कदम उठाने के लिये विवश कर देती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मक्षिका मसका यूका मत्कुणा मूषकादय: ।
वृश्चिकादयएतेऽस्मान् विवशान कुर्वते भृशम् ।। २७ ।।
आत्मरक्षां प्रकर्तुं तान् दूरीकर्तुं महामुने ।
आक्रान्तॄन् साहसं ग्राह्यमित्थं सर्वत्र दृश्यते ।। २८ ।।
अनौचित्यस्य सहनात्तु स्वमस्तित्वं विपद्यते ।
द्वितीया हानिरेषास्यादाक्रान्तारस्तु निर्भया: ।। २९ ।।
स्वस्यास्तु दुष्टतायास्ते परिमाणे महत्तमे ।
प्रयोगमाचरिष्यन्ति यच्च कष्टकरं भवेत् ।। ३० ।।
साधनै: साहसेनापि यास्यन्तीमे सुपुष्टताम् ।
व्यक्तय: कश्चनान्येभ्यो विपद्धेतुकरा मता: ।। ३१ ।।

टीका- मक्खी, मच्छर, खटमल, जुएँ, चूहे, साँप, बिच्छू आदि इस बात के लिए विवश करते हैं कि आत्म रक्षा का प्रबन्ध किया जाय और आक्रान्ताओं को हटाने के लिए साहस अपनाया जाय, यही बात सर्वत्र देखी जाती है। अनौचित्य को सहन करते रहने से तो अपना अस्तित्व ही संकट में पड़ जायेगा, दूसरी हानि यह होगी कि आक्रमणकारी निर्द्वन्द्व होकर अपनी दुष्टता को अधिक बड़े परिमाण में प्रयुक्त करेंगे-जो कि कष्टकर होगा। साहस और साधन बढ़ते रहने से वे अधिक परिपुष्ट होंगे और कुछ व्यक्ति अन्यों के लिए भारी विपत्ति का कारण बनेंगे ।। २७-३१ ।।

व्याख्या- बहिरंग जगत में भी दुष्प्रवृत्तियाँ इतनी व्यापक हैं कि उनसे बच पाना सम्भव नहीं। उपाय एक ही है, उनसे संघर्ष किया जाय, दुष्टता को सहन न कर उसका प्रतिकार किया जाय। मनुष्य जैसे समर्थ प्राणी के लिये इससे हेय प्रसंग क्या हो सकता है कि कुछ गिने-चुने दुर्धर्ष व्यक्ति असंख्यों के लिये कष्ट का कारण बनें। कारण एक ही है-दुष्टता को सहन किया गया, इसीलिए वह दूने परिमाण में और भी निर्द्वन्द्व होकर आक्रमण करने का साहस कर सकी।

मक्खी-मच्छर जैसे जीव प्राणी जगत में हैं पर इस वृत्ति के व्यक्ति भी समाज में होते हैं। उनकी उपस्थिति यही माँग करती है कि उनसे सचेत रहा जाय व जमकर मोर्चा लिया जाय।

अनीत्याचरणं पापं यथा भीरुतया तथा ।
तस्या अप्रतिरोधोऽपि पापमेवानुविद्यते ।। ३२ ।।
वस्तुतो भीरवस्ते हि दुष्टतां पोषयन्त्यलम् ।
वरं संघर्षशीलास्ते स्वयं ग्रहणन्तु हानिकाम् ।। ३३ ।।
परं साहसिका तेषां धर्मनिष्ठा तु या तया ।
निर्दोषाणामसंख्यानां रक्षा भवतिसर्वथा ।। ३४ ।।

टीका- अनीति करना जितना पाप है, उतना ही कायरतावश उसका प्रतिरोध न करना भी पाप है। वस्तुत: कायर ही दुष्टता का परिपोषण करते हैं। जूझने वाले, स्वयं भले ही घाटे में रहें पर उनकी इस साहसिक धर्मनिष्ठा से असंख्य निर्दोषों की रक्षा होती है ।। ३२-३४ ।।

व्याख्या- कायर मनुष्य अनाचार के सामने घुटने टेक देते हैं, दुम दबा कर भाग जाते हैं अथवा उसे सहन करते रहते हैं। इससे प्रकारान्तर से अनीति को ही बढ़ावा मिलता है। इसके विपरीत प्राणवान जीवन धारी मनुष्य अकेले बिना किसी योजना-निर्धारण के तो कभी लड़ते नहीं परन्तु अपने आपको जुटाकर-बिखराव समेट कर शक्ति भर प्रतिकार करते हैं, भले ही इसमें उनकी जान ही क्यों न चली जाय।

आतंकवादिनां भंक्तुं साहसं प्रतिरोधनात् ।
अतिरिक्तं न मार्गं तत्किमप्यस्ति महामुने ।। ३५ ।।
क: प्रभावो हिंस्रकेषु पशुष्वास्ते च दुर्जना: ।
धर्मोपदेशबोद्धार: किं भवन्ति विचार्यताम् ।। ३६ ।।
यद्येवं सम्भवेत्तर्हि रावणोऽङ्गदबोधित: ।
दुर्योधनश्चकृष्णेन नम्रौस्यातां न बोधित: ।। ३७ ।।
लंकाकाण्डस्य किं स्यातां महाभारतकस्य च ।
आवश्यकता यतो देवा: प्रत्याक्रमणरक्षका: ।। ३८ ।।
सहनेन सुगुप्त्या वा शान्ति प्रार्थनयाऽपि वा ।
असुरताया: कुत आस्त आत्मरक्षा सुसंभवा ।। ३९ ।।

टीका- आतंकवादियों के हौसले तोड़ने के लिए प्रतिरोध के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। हिंस्र पशुओं पर अनुनय-विनय का क्या प्रभाव पड़ता है ? दुरात्मा भी धर्मोपदेश कहाँ सुनते हैं-यह विचार लो। यदि ऐसा होता तो अंगद के समझाने पर रावण और कृष्ण के समझाने पर दुर्योधन बदल न गया होता ? तब लंकाकाण्ड और महाभारत की आवश्यकता ही क्यों पड़ती ? देवता प्रत्याक्रमण के बाद ही आत्मरक्षा कर सके हैं ? सहने, छिपने और शान्ति की रट लगाने से भी असुरता से आत्म-रक्षा कहाँ होती है ।। ३५-३९ ।।

व्याख्या- अनीति के पक्षधर मानवता के शत्रु होते हैं, उन्हें हिंसक खूंखार प्राणी के समकक्ष ही समझा जाना चाहिए। उन्हें मात्र प्रतिरोध की भाषा समझ में आती है, सत्परामर्श और शान्ति-सन्धि की चर्चा उनसे नहीं की जाती। वे अन्दर से बाहर तक कुटिल दुर्बुद्धि व दुराचार से भरे पड़े होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनीत्यातंङ्कहेतोर्या घटना दुःखदायिका: ।
दृश्यन्ने, दृश्यमानानां प्रतिरोद्धुं मनो भवेत् ।।४०।।
अज्ञानं चाप्यभावश्चावाञ्छनीयौ मतौ तथा।
यद्यप्येतौ तु विद्येते परोक्षौ व्यक्तिगौधुवम् ।।४१।।
अनयोर्हेतुना व्यक्ति: समाजश्चार्तयन्त्रणा ।
सहेते स भवेत्तस्मात्प्रतिरोधोऽप्यनीतिवत् ।।४२।।
न्यायिक: प्रतिबन्धोऽस्ति विरोधेऽनीतिपद्धते:।
राजसत्तारुणद्ध्येनं, नैतौरोद्धुं किमप्यहो ।।४३।।
अनयोरस्ति दायित्वं लोकसेविनरेषु हि ।
सुधारकेषु शूरेषु तेऽग्रगा दूरयन्त्विमौ ।।४४।।
प्रत्यक्षं दृश्यते हानिर्या तु साक्रमणोदिता ।
प्रत्यक्षवादिनो ऽवांछनीयता तास्तु संजगु: ।।४५।।
दूरीकर्तुं च तान्येव निरतास्ते भवन्ति हि ।
विरला:केचनैवेदं जानन्ति पुरुषास्तु यत् ।।४६।।
अग्निवज्ज्वलका नैव घुणा वल्मीककास्तथा।
तेजसाप्यं च कुर्वन्ति लौहस्तम्भं धराशयम् ।।४७।।

टीका- अनीति के आतंक से जो दुर्घटनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, वे ही ध्यान में आती हैं और प्रतिरोध की बात सोची जाती है, किन्तु व्यक्तिगत एवं परोक्ष होते हुए भी अज्ञान तथा अभाव भी उतने ही अवांछनीय हैं । इनके कारण भी व्यक्ति तथा समाज को असह्य यन्त्रणाएँ सहनी पड़ती हैं। इसलिए उनका प्रतिरोध अनीति की तरह ही होना चाहिए। अनीति के विरुद्ध कानूनी प्रतिबन्ध है और राजसत्ता उसकी रोक-थाम करती है किन्तु अज्ञान और अभाव के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष मोर्चा नहीं है। इसे सँभालने का उत्तरदायित्व लोक-सेवी सुधारक शूरवीरों के कन्धों पर रहा है। उन्हें ही आगे बढ़कर इन अवाँछनीयताओं को निरस्त करना होता है। आक्रमणों से होने वाली हानि प्रत्यक्ष दीखती है इसलिए प्रत्यक्षवादी उन्हीं को अवांछनीयता समझते और निरस्त करने में लगे रहते हैं। यह विरले ही जानते हैं कि आग की तरह प्रज्ज्वलनशील न होने पर भी तेजाब , घुन, दीमक आदि भी सुदृढ़ शहतीर को धराशायी बना देते हैं ।। ४०-४७।।

व्याख्या- अज्ञान वह जो औचित्य-अनौचित्य में अन्तर न कर सके, अभाव यह जो कर्म से पलायन की ओर मनुष्य के उन्मुख होने से उत्पन्न हुआ हो। दोनों असुर सहोदर हैं जो बौद्धिक ज्ञान एवं भौतिक वैभव से नहीं-मान्यता से सम्बन्ध रखते हैं। अज्ञान पढ़े-लिखों और अपढ़ों में समान रूप से व्याप्त होता है। सुशिक्षित व्यक्ति वांछनीय-अवांछनीय में भेद कर पायें, जरूरी नहीं। सारे अन्धविश्वास एवं मूढ़ मान्यताएँ यहीं से जन्म लेती हैं एवं समाज को खोखला व व्यक्ति को दरिद्र बना देती हैं।

अनीति प्रत्यक्ष होने, आक्रमण होने के कारण दिखाई भी पड़ जाती है और समाज को अज्ञान और अभाव भी उतना ही त्रस्त किए हैं, जितना अनीति-अनाचार। सामान्यतया संघर्ष की बात सोची जाती है तो वह हिंसा, अपराध, दमन,शोषण, जैसे अनाचारों के विरुद्ध ही होती है पर एक परोक्ष मोर्चा ऐसा है जो सतत् संघर्ष की जूझने की आवश्यकता बताता है। राजसत्ता अनीति के लिये सुरक्षा व्यवस्था बनाती है पर अज्ञान-अभाव का मोर्चा तो मात्र समाज सुधारक ही सम्भाल सकते हैं जो जनहित के लिये समर्पित हों, रोग का लक्षण जानकर चिकित्सा हेतु सदैव उद्यत रहते हों।

भ्रष्टता चिन्तनस्याथ दुष्टताचरणस्य च ।
मान्यतामोहरूपास्ता अन्धाश्चापि परम्परा: ।।४८।।
दुष्प्रवृत्तस्य एतास्तु ज्ञायतां हे मुनीश्वरा: ।
आक्रामकात्वनीतिर्या सेवं तास्तु भयंकरा: ।।४९।।
विनाशलीला: कुर्वन्ति ये चाक्रान्तार एव ते।
व्यक्तित्वादथशक्यन्ते गृह्णातुं च नियन्त्रितुम् ।।५०।।
दुष्प्रवृत्तय एतास्तु स्वभावे मानवस्य हि ।
प्रविष्टा नैव दृश्यन्ते नैव दुन्वन्ति चाप्यलम् ।।५१।।
कठोरप्रतिरोधस्य सामुख्यं नैव कुर्वते ।
संघर्षशीलताक्षेत्रमत्यन्तं व्यापकं मतम् ।।५२।।

टीका-चिन्तन की भ्रष्टता, आचरण की दुष्टता, मूढ़-मान्यताएँ, अन्ध परम्पराएँ जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ भी आक्रामक अनीति की तरह ही भयावह होती और विनाशलीला रचती हैं। आक्रमणकारी, व्यक्ति होने से वे सहज ही पकड़े और दबाये भी जा सकते हैं। दुष्प्रवृत्तियाँ मनुष्य के स्वभाव में घुसी होने के कारण दीखती भी नहीं, अखरती भी नहीं और कड़े प्रतिरोध का सामना करने से भी बची रहती हैं। संघर्षशीलता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है ।। ४८-५२।।

व्याख्या- जो हानि परोक्ष है, चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देती इसलिये हानि नहीं लगती । वैयक्तिक दुश्चिन्तन और उससे प्रेरित दुर्व्यवहार तथा अविवेक पूर्ण प्रचलन उतने ही भयंकर हैं जितने कि व्यापक स्तर पर हिंसक आक्रमण। अज्ञान-अभाव जन्य ये दुष्प्रवृत्तियाँ घुन की-दीमक की तरह समाजरूपी भवन को निरन्तर धीरे-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धीरे नष्ट करती रहती हैं। ऊपर से भले ही समाज विकास की दिशा में बढ़ता दिखाई दे, पर ये परोक्ष दुष्प्रवृत्तियाँ जितनी आर्थिक, सामाजिक, नैतिक हानि समाज को अब तक पहुँचा रही हैं,उसकी गणना आँकड़ो में नहीं की जा सकती ।

सतीत्व हरण, पर्दा प्रथा, दहेज, विवाह में अपव्यय-प्रदर्शन, अंधविश्वास-भूतपलीत, ओझागिरी, झाड़ फूँक, नशाखोरी, फिजूलखर्ची, फलित ज्योतिष, बेईमानी, मिलावट, रिश्वतखोरी, आदि ऐसी दुष्प्रवृत्तियाँ हैं जो व्यक्ति, परिवार, समाज से सीधे सम्बन्ध रखती हैं। इनसे संघर्ष भी उसी व्यापक स्तर पर लिया जाना चाहिए जैसा कि प्रत्यक्ष अपराधों के विरुद्ध लिया जाता है। ये प्रचलन किस प्रकार जन्म लेते हैं इनका कारण जानने पर क्षोभ तो होता ही है, हँसी भी आती है।

एकं क्षेत्रंचिन्तनस्य व्यक्तिगस्य मतं तथा ।
स्वभावचरणाभ्याससम्मानानां च विद्यते ।। ५३।।
पशवृत्तेः संचिता ये कुसंस्कारास्त एषु हि ।
क्षेत्रेषुदृढमूलाश्च स्थिताःसूक्ष्मेक्षिकाबलात् ।। ५४।।
अन्विष्यैतांस्तथाहानीरेतेषामनुमाय च ।
निरस्तुं योजनायोगः सुसंस्कारो विपक्षकः ।। ५५।।
यस्तस्य स्थापनामाद्यं पदं प्रगतिशालिनी ।
धर्मनिष्ठा तु या तस्या जगद्वश्यं जितात्मनः ।। ५६।।

टीका- एक क्षेत्र अपने व्यक्तिगत चिन्तन, स्वभाव, चरित्र एवं अभ्यास, सम्मान का है। पशु प्रवृत्तियों के संचित कुसंस्कार इन्हीं क्षेत्रों में अपनी जड़ें जमाये बैठे रहते हैं। इनको बारीकी से ढूँढना, उनकी हानियों का अनुमान लगाना, निरस्त करने की योजना बनाना, प्रतिद्वन्द्वी सुसंस्कारिता की स्थापना करना प्रगतिशील धर्मनिष्ठा का प्रथमचरण है। जो अपने अन्तः को जीतता है, वही बाह्य संसार को जीत सकता है ।। ५३-५६।।

व्याख्या- प्रज्ञा सत्र के प्रथम चार प्रकरणों में महाप्राज्ञ अंतर्जगत का पर्यवेक्षण, आत्म निर्माण, अंतःक्षेत्र का समर-इन पक्षों पर चर्चा कर चुके हैं, उसी का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि संघर्ष अपने से आरम्भ होता है। पहले अपने ही चिन्तन में, संचित संस्कारों एवं अभ्यास के कारण सभी दुष्प्रवृत्तियों से मोर्चा लेना पड़ता है।

कुटुम्बं तनुरिवैतत् स्नेहस्तस्मै तु दीयताम् ।
प्रगतेः पोषणस्यापि साधनादि च दीयताम् ।। ५७।।
ध्यानमुत्तरदायित्वे दीयतां ते भवन्तु हि ।
सुयोग्याश्च समर्थाः सुसंस्काराः स्वावलम्बिनः।। ५८।।
एतदर्थं कुटुम्बस्य पारम्पर्य क्रमे मुने ।
अपेक्ष्यं भवतीहैतत्परिवर्तनमप्यलम् ।। ५९।।
अस्मै नम्रस्य मन्दस्य सौहार्दभरितस्य च ।
विरोधशोधनस्यास्ति महत्वमिति मन्यताम् ।।६०।।
मोहाद् ये न करिष्यन्ति नरा एतद्धि निश्चितम्।
स्नेहिनः परिवारस्य तेऽहितं साधयन्त्यहो ।। ६१।।

टीका- शरीर की तरह परिवार भी है। परिजनों को दुलार भी दिया जाय और पोषण प्रगति के साधन जुटाने में भी कमी न रखी जाय, किन्तु इस उत्तरदायित्व को भी ध्यान में रखा जाय कि उनमें से प्रत्येक को सुयोग्य, समर्थ, स्वावलम्बी एवं सुसंस्कारी भी बनाना है। हे मुने ! इसके लिये परिवार के परम्परागत ढर्रे में बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ सकता है। इसके लिए धीमे, विनम्र एवं सौहार्द पूर्ण विरोध-सुधार की आवश्यकता पड़ेगी ही। जो मोहवश इससे बचेंगे वे स्नेह-पात्र परिजनों का निश्चित ही अहित करेंगे।। ५७-६१।।

व्याख्या- जब आदमी स्वयं लोभ-मोह अहंता जैसे बंधनों से छुटकारा पाने में पूरी शक्ति लगा देता है तब उसे निश्चित ही सफलता मिलती है। पर यह क्षेत्र परिवार निर्माण बिना अधूरा ही है। परिवार जनों से मोह अलग बात है उनका हित साधन अलग। परिवार के प्रति एक आँख दुलार व एक आँख सुधार की रखी जाय। अपनी प्रमुख जिम्मेदारी है-परिवार परिजनों में सुसंस्कारिता का समावेश। इसमें एक बहुत बड़ी अड़चन आती है-बहुत समय से चला आ रहा ढर्रा, जिसमें आमूलचूल परिवर्तन अकस्मात् लाना दुष्कर जान पड़ता है। इसे किसी भी स्थिति में सुधारपरक नीति बना कर किया ही जाना चाहिये। जब आदमी का सुधार धीरे-धीरे होता है तो परिवार में बीजारोपण कर उसे वृक्ष बनते देखने में चमत्कारी प्रतिफल की आशा नहीं करना चाहिये।

सामाजिकेषु बाहुल्यंकुरीतीनां विधिष्वलम् ।
भवत्येव तथैकस्य कालस्य रीतयो मुने ।। ६२।।
अयोग्या अपरेकाले हानिदाश्चापि संमताः ।
जीर्णतायां वरो मान्योनरोरुग्णःश्लथोभवेत्।। ६३ ।।
रोतीनां विषयेऽप्येवं जीर्णोद्धार इव क्रमः ।
संशोध्याया अथ त्याज्यास्त्याज्याः साहसपूर्वकम्।। ६४।।

टीका- सामाजिक प्रचलनों में कुरीतियों की भरमार रहती है। एक समय की प्रथायें दूसरे समय में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी बनती रहती हैं। जीर्णता आने पर अच्छा खासा मनुष्य भी अस्त-व्यस्त और रुग्ण रहने लगता है। प्रचलनों के सम्बन्ध में भी यही बात है। जिन्हें सुधारना, बदलना आवश्यक हो,उन्हें टूट-फूट की मरम्मत करने की तरह साहस पूर्वक बदल ही लेना चाहिए ।। ६२-६४।।

व्याख्या- परम्पराएँ सामयिक होती हैं,शाश्वत नहीं। समयानुसार उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता पर ध्यान रख सुधारक उनमें काट-छाँट करते हैं और समाज का कायाकल्प करते हैं। जीर्ण भवन शीघ्र धराशायी होता है। समाज में आज जो परम्पराएँ घुसी पड़ी हैं, वे भी इसी प्रकार उसे जीर्ण-शीर्ण बना रही हैं। उन्हें समय-समय पर गौतम बुद्ध, आद्य शंकराचार्य,ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, शरतचन्द्र, राजा राममोहनराय, स्वा० दयानन्द, महामना मालवीय जैसे अवतारी पुरुषों व सुधारक-शूरवीरों ने आ-जाकर सुधारा है व गलाई-ढलाई का उपक्रम अपना कर समाज को नयी दिशा दी है ।

लोकप्रवाहकस्यास्ते जलमार्गं तु पंङ्किलम् ।
प्रायोऽल्पाःसज्जनाःसन्ति बहवोऽसंस्कृता जनाः।। ६५।।
गतिःसाऽनुपयोग्या हि प्रायो रीतिषु धावति।
यथावत्सा नहि ग्राह्या, हंस क्षीरंजलात्पिवेत् ।।६६।।
स इवात्रापि कर्तव्या नीरक्षीर विवेकिता ।
ततश्चोचितमास्ते यत्तद्ग्राह्यं मानवैः सदा ।।६७।।

टीका- लोक प्रवाह के नाले में सदा कूड़ा-करकट ही अधिक बहता है । सज्जनों की संख्या कम और अनगढ़ कुसंस्कारियों की अधिक रहती है। अस्तु, प्रथा-प्रचलनों में अनुपयुक्तता का बहुमत ही आगे रहता और उछलता हैं। उसे ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं करना चाहिए, वरन् हंस जैसे पानी से दूध पी लेता है, उसकी नीर-क्षीर विवेक बुद्धि अपनाकर जो उचित उपयुक्त हो, मनुष्य को उसी को अपनाना चाहिए ।। ६५-६७।।

व्याख्या- आज अवांछनीयता का प्राधान्य है एवं श्रेष्ठता कम ही दृष्टिगोचर होती है। आस्था संकट की परिणति स्वरूप उत्पन्न यह परिस्थिति उलटी जा सकती है, यदि जन समुदाय को उत्कृष्टतापरक मान्यताओं का पक्ष धर बनने के लिये सहमत किया जा सके। यह समाज स्तर पर एक विशाल-व्यापक विचार क्रान्ति से ही सम्भव है। उचित-अनुचित में भेद बता पाना तो सम्भव है जब जनमानस विवेक शक्ति-प्रज्ञा का सहारा ले व मात्र उचित को अपनाये-औरों को भी अपनाने को प्रेरित करे। जब भी परम्पराओं का प्रश्न आये विवेकशील का कर्त्तव्य है कि वे समूह की बात को सत्य न मानकर मात्र समझदारों की बात न माने-अपनी स्वयं की दृष्टि भी उसी अनुरूप विकसित करें ।

आकर्षणानि सर्वस्वं कालिकानि न मन्यताम्।
परिणामेषु कर्त्तव्यो विचारो दूरगामिषु ।।६८।।
दुःखदाः परिणामा ये लाभास्तात्कालिकामताः।
त्याज्यास्ते साहसेनैवं भविष्यन्मंगलं व्रजत् ।।६९।।

टीका- तात्कालिक आकर्षणों को ही सब कुछ नहीं मानना चाहिए। उसके दूरगामी परिणामों पर भी विचार करना चाहिए। जो परिणाम में दुःखद हो, ऐसे तुरन्त के लाभ का साहस पूर्वक परित्याग ही कर देना चाहिए , इससे भविष्य मंगलमय बन जायेगा ।। ६८-६९।।

व्याख्या- हर मान्यता के निर्धारण में दूरगामी परिणामों का सदैव ध्यान में रखा जाय। दहेज तत्काल तो लाभकारी प्रतीत होता है। लगता है यश मिल रहा है, सबकी निगाहों में हम ऊँचे हैं, हमारी बेटी सुखी रहेगी पर जब विवाहो-परान्त अनापशनाप माँगें आने लगती हैं तो अपनी अदूरदर्शिता पर दुःख होता है। यही पिता अपनी लड़की के विवाह में तो आदर्श की डींग हाँकने में नहीं हिचकता पर जब बेटे का ब्याह समीप आता है तो सारे आदर्श न जाने कहाँ तिरोहित हो जाते हैं। हर व्यक्ति यह संकल्प ले ले कि हम दूरदर्शिता अपनायेंगे, समाज में सत्प्रवृत्ति विस्तार हेतु स्वयं से शुभारम्भ करेंगे तो इन कुरीतियों के उन्मूलन में देर न लगे।

विवेकयुक्तो य आस्ते परामर्शः स मन्यताम्।
बालानां वा परेषां वा नायोग्य आत्मनामपि ।।७०।।
तथ्यानां गरिमा श्लाघ्यो व्यक्त्यपेक्षतया मुने।
नवीनत्वं पुराणत्वं श्रेष्ठतायै न वाञ्छितम् ।।७१।।
परंद्रष्टव्यमेतद्यत्तथ्यं सत्यं किमस्ति च ।
अभ्यस्तं विधिमुत्सृष्टुं मनो भवति शंङ्कितम् ।।७२।।
परिवर्तनसंक्लेशैर्योद्धुं नोत्सहते जनः ।
साहसाऽभावतोऽनीतेरग्र आत्मार्पणं ध्रुवम् ।।७३।।

टीका- विवेकयुक्त परामर्श छोटे और परायों का भी मानें। अनुपयुक्त निर्देश बड़ों या अपनों का भी नहीं मानना चाहिए। व्यक्तियों की तुलना में तथ्यों की गरिमा अधिक है। बात नई है या पुरानी इस आधार पर उसे वरीयता न दी जाय, वरन् यह देखा जाय कि तथ्य एवं सत्य द्वारा समर्थन किसका होता है। अभ्यस्त ढर्रे को बदलने में मन कच्चा पड़ता है। उलट-पुलट के झंझट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से सभी बचना चाहते हैं। इस साहसहीनता के कारण अनीति के सामने सिर झुकाना पड़ता है ।। ७०-७३।।

व्याख्या- सन्मार्ग पर चल पड़ने का परामर्श कहीं से भी मिले, विवेक युक्त हो तो स्वीकार कर लेना चाहिये चाहे कहने वाला हमसे छोटा ही क्यों न हो। बड़े चाहें तो भी अनौचित्य को स्वीकार न करें। हमेशा बात को तर्क, तथ्य एवं प्रमाणों की कसौटी पर कसें, यह मानकर नहीं कि ऐसा पहले भी होता रहा है इसलिये सही है।

समाज का सहज प्रवाह एक अभ्यस्त ढर्रे के रूप में है। इस ढर्रे को बदलना ही साहसिकता है। मछली धारा को उल्टा चीरकर चलती है और ऊपर पहुँच जाती है। धारा प्रवाह में तो शरीर से बलिष्ठ पर बुद्धि से अल्प हाथी जैसे प्राणी भी बहते देखे जाते हैं। बुद्धिमत्ता इसी में है कि जो भी अनुचित है उसे पलट डालने में जरा भी असमंजस न बरतें। इस साहस के अभाव में ही अनीति व्यक्ति पर हावी हो जाती है।

शूरा अपि च वीराश्च विख्याता ये जनास्तुते ।
दृश्यन्ते दुर्बला: प्राय: क्षेत्रे सैद्धान्तिके सदा ।।७४।।
आत्मविश्वासिनो ये ते सदाऽऽदर्श समर्थने ।
एकाकिन:स्थिता:सन्तु सहाया: सन्तु वा न वा।।७५।।
निन्दाया वा प्रशंसायाश्चिन्ता नैवात्रयुज्यते ।
संघर्षो मल्लयुद्धो न चात्रासीषुनिपातनम् ।।७६।।
उपेक्षया विरोधेन तथैवा ऽसहयोगत: ।
प्रारम्भिकं सुपूर्णं स्यात् प्रयोजनमितिस्फुटम् ।।७७।।
अनीतिमात्मा जानाति यन्नग्राह्यमदोऽमुना ।
सहयोग: कथंचिन्न युज्यते वा समर्थनम् ।।७८।।

टीका- शूर-वीर समझे जाने वाले भी सिद्धान्त क्षेत्र में दुर्बल पड़ते हैं। आत्म-विश्वासियों को आदर्शों के समर्थन में एकाकी अड़ा रहना चाहिए, साथी हों या न हों। उन्हें निन्दा, प्रशंसा की चिन्ता ऐसे प्रसंगों पर नहीं करनी चाहिए। संघर्ष मल्लयुद्ध को नहीं कहते और न उसमें सदा तीर-तलवार चलाने की ही आवश्यकता पड़ती है। उपेक्षा, असहयोग, विरोध करने से भी संघर्ष का आरम्भिक प्रयोजन स्पष्ट पूरा होता है। जिसे आत्मा अनीति माने उसका समर्थन, सहयोग तो किसी भी मूल्य पर नहीं करना चाहिए ।। ७४-७८।।

व्याख्या- बाहर से शूरवीरता की बात करते तो अनेकों देखे जाते हैं पर जब उन सिद्धान्तों को व्यवहार में उतारने की बात आती है तब सही परीक्षा होती है। सिद्धान्त क्षेत्र की बहादुरी तलवार चलाने वाली क्रिया परक बहादुरी से अलग है यह सम्पदा है जो कमजोर व्यक्ति को भी अनीति के पक्षधर मजबूत विरोधी से संघर्ष में विजयी बनाती है। महात्मा गाँधी कुल ९६ पौण्ड के क्षीण काय व्यक्ति थे। पर उनकी सैद्धान्तिक सामर्थ्य करोड़ों हाथियों के बराबर थी। इसी के बल पर वे "कभी सूरज न डूबने वाले" ब्रिटिश साम्राज्य से मोर्चा ले सके। ऐसा सत्साहस आदमी को अनीति से सहयोग न करने, मोर्चा लेने की प्रेरणा देता है।

शारीरं बलमुन्नेतुं संयम: साधनापि च ।
कर्तव्येऽर्जितमेतच्च मनोबलमपिदृढम् ।।७९।।
सत्यस्य निकषे ऽसिद्धं प्रतिपादनमस्ति यत् ।
अस्वीकार्यमिदं नूनं भवत्येव महामुने ।।८०।।
आत्मनो बलमुन्नेतुं सफलास्ते भवन्ति हि ।
अवांछनीयताभिर्नो सम्बद्धास्तु भवन्ति ये ।।८१।।
ऐश्वर्यं तु समादाय चारित्र्यं चापि केवलम् ।
सामर्थ्यमात्मना बाह्या नौकात्मीयेदृशैर्नरै: ।।८२।।
विना सहगामिनो ऽप्येते विनैव च समर्थनम् ।
नीतिमार्गेऽभयं यान्ति न गच्छन्त्यसमंजसम् ।।८३।।

टीका- शरीर बल उभारने के लिए संयम-साधना करनी पडती है दृढ़ मनोबल अर्जित करने के लिए तथ्य और सत्य की कसौटी पर खोटे सिद्ध होने वाले प्रतिपादनों को अस्वीकार करना होता है। आत्मबल बढ़ा सकने में वे ही सफल होते हैं, जो अवाञ्छनीयता से समझौता नहीं करते। ईमान और भगवान् का समर्थन लेकर अपनी नाव आप खेते चले जाते हैं। साथी और समर्थक न होने पर भी नीति-पथ पर अकेले चलते रहने में भी उन्हें कोई भय, असमंजस नहीं लगता ।। ७९-८३।।

यान्ति साहसिका ह्यग्रे सफला: स पराक्रमा:।
भवन्ति,प्रतिकूलाभि: स्थितिभिर्युद्धमाचरेत् ।।८४।।
अनीत्यायुद्धयमानैर्न हानिलाभौ तु गण्यताम् ।
प्रखरताया विनाकोऽपि क्षेत्रे कुत्रापिप्रोद्भवेत्।।८५।।
पराक्रम: श्लाघनीय: सार्थं साहसिकैर्मिलेत् ।
सौजन्यं शोभते स्फीतं जायते साहसेन च ।।८६।।

टीका- साहसी ही आगे बढ़ते हैं, पराक्रमी ही सफल होते हैं। प्रतिकूलताओं से जूझना ही पड़ता है, अनीति से टकराने में हानि-लाभ का विचार नहीं करना चाहिए। प्रखरता के बिना किसी भी क्षेत्र में कोई बड़ी प्रगति कर सकने में सफल नहीं होता । पराक्रम ही सराहा जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। साहसी को साथी मिलते हैं। सज्जनता की शोभा साहसिकता से ही निखरती है ।। ८४-८६ ।।

व्याख्या- साहसी का जीवन क्रम किस प्रकार होता है, इस पर किसी कवि ने कहा है-

"लीक लीक गाड़ी चले, लीकहिं चले कपूत ।
बिना लीक के ये चले, शायर, सिंह, सपूत ।।"

ऐसे, बिना किसी बंधन के प्रतिकूलताओं से मोर्चा लेकर भी, घाटा सहकर भी आनन्द लेने वाले सच्चे पराक्रमी कहलाये जाते हैं। सज्जनता और साहस दोनों का अद्‌भुत युग्म ऐसे नर पुगंवों में देखने को मिलता है। इस पथ पर चलते-चलते उन्हें साथी मिलते चले जाते हैं। महात्मा गाँधी को अफ्रीका आन्दोलन से भारत को स्वतन्त्रता मिलने तक बराबर साथी मिलते चले गए। अंग्रेजों से जूझते हुए भी 'महात्मा' नाम के अनुरूप शालीनता को यथावत् रखते हुए उनमें वह प्रखरता थी कि सम्राट व वाइसराय उनसे आँख नहीं मिला पाते थे।

ऐसे जितने भी व्यक्ति ऊँचे उठे हैं, अपने साहस-प्रखरता सम्पादन के बल पर ही। गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, गणेश शंकर विद्यार्थी, वल्लभ भाई पटेल, लाला लाजपतराय जैसे महामानव अपनी प्रखरता के बल पर ही सम्मान पा सके और भारत भूमि की स्वतन्त्रता हेतु अपना जीवनोत्सर्ग कर सदा के लिये अमर हो गए। प्रखरता वह आध्यात्मिक गुण सम्पदा है जो सज्जनता के साथ शोभा पाकर निखर उठती है। ऐसे व्यक्ति आत्मबल के सहारे बिना किसी भय के बढ़ चलते हैं।

दुर्वासास्तु महर्षि: स मान्यतानां समर्थनम् ।
श्रुत्वा स्वानां प्रसन्नो ऽभूद्विवशो ऽचिन्यत्तथा ।। ८७ ।।
क्रोधावेशाच्चपंगु: स्यान्नरो ऽन्यांछिक्षयेत्किमु ।
विकृतो जायतेऽसिद्ध:किं परान् साधयेदहो ।। ८८ ।।
संशोधनविधौ भावं गृहीत्वा सर्वदैव तु ।
चिकित्सकस्य रुग्णस्य स्निग्धं परुषमाचरेत् ।। ८९ ।।

टीका- *महर्षि दुर्वासा अपनी मान्यताओं का समर्थन सुन कर प्रसन्न तो हुए पर साथ ही यह भूल सुधारने के लिये भी विवश हुए कि क्रोध के आवेश में मनुष्य स्वयं अपंग हो जाता है और दूसरों को सुधारने की अपेक्षा अपने को ही बिगाड़ बैठता है। स्वयं न सुधरा हुआ दूसरों को क्या सुधारेगा। सुधार प्रक्रिया में रोगी और चिकित्सक का भाव रखकर स्नेहभरी कठोरता बरतने की आवश्यकता है ।। ८७-८९ ।।*

व्याख्या- सारा प्रतिपादन सुनकर महर्षि दुर्वासा ने यह अनुभव किया कि प्रखरता की महत्ता तो है पर वह आवेश युक्त न होकर शालीनता युक्त हो। सुधारने की प्रक्रिया में यदि व्यक्ति स्वयं आवेशग्रस्त हो जाय तो उसके वचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ऐसे व्यक्ति दूसरों को क्या सुधारेंगे। सन्त तो चिकित्सक के समान होता है जो आवश्यकता पड़ने पर हितकारी परामर्श भी पथ्य व कड़वी दवा के रूप में कठोरता पूर्वक देता है और स्नेह सहानुभूति भी। सन्निपात की अवस्था में रोगी उसे कुछ भी कह दे, वह उसे कुछ नहीं कहता । पर जहाँ आवश्यकता पड़ती है वहाँ उससे कठोरता से पेश आने में भी कोई कमी नहीं छोड़ता। इसीलिये सज्जनता व प्रखरता साथ चलना चाहिए। आवेश में आने वाला समय आने पर अपने बल का भी प्रयोग नहीं कर पाता।

समाप्तं पंचमं सत्रं तदारण्यकमथात्र ते ।
श्रोतारो ब्रह्मविद्याया महत्त्वं मेनिरे भृशम् ।। ९० ।।
प्रतिपादितं तयायच्चतदाध्यात्मिक वैभवम् ।
गरिमापंचशीलस्य सावधानैरबुद्धयत् ।। ९१ ।।
आध्यात्मिकत्वमास्तिक्यं धार्मिकत्वमुदारहृत् ।
भक्तिभावस्तुयस्तस्यानौचित्यस्यापि संमुखे ।। ९२ ।।
संघर्षशीलतां प्राप्तुं व्रतिनस्ते ऽभवन् समे ।
संस्कृतेर्देवतानां तु निर्धारणगणस्य तु ।। ९३ ।।
आलोकं प्रतिवेश्माथ गत्वा लोकस्य मानसे ।
संस्थापितुं प्रवज्यायां चर्चायां तेऽचलन्मुदा ।। ९४ ।।
इत्थं पंचदिनस्येदं सत्रमारण्यकं वृहत् ।
सोत्साहं च समुल्लासं साफल्यं समुपेयिवान् ।। ९५ ।।

टीका- *पाँचवें दिन का आरण्यक सत्र समाप्त हुआ । श्रवण कर्त्ताओं ने ब्रह्मविद्या का महत्व समझा तथा उसके द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक पञ्चशीलों की गरिमा को ध्यान पूर्वक समझा और वे आध्यात्मिकता, आस्तिकता धार्मिकता, उदार भक्ति भावना तथा अनौचित्य के विरोध में संघर्ष-शीलता अपनाने के लिए व्रतशील हुए, साथ ही देव-संस्कृति के इन सभी निर्धारणों का आलोक*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर-घर जाकर जन-जन के मन-मन में उतारने के लिए प्रव्रज्या पर प्रसन्नतापूर्वक निकल पड़े। इस प्रकार वह पञ्चदिवसीय आरण्यक सत्र बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ और उत्साह भरे वातावरण में समाप्त हो गया ।। ९०-९५ ।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री पिप्पलाद-दुर्वासा ऋषि-सम्वादे "सत्साहस संघर्ष" इति प्रकरणो नाम ।। षष्ठोऽध्यायः ।।

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

युगान्तरीयचेतना-लीला सन्दोह प्रकरण

उमाशङ्करसंवादामरां श्रुत्वा कथां तु यः ।
निवृत्तो जन्ममृत्युभ्यां शुककायानिवासकः ।। १ ।।
वैशम्पायन एकस्मिन् दिनेऽगान्मेरुपर्वते ।
महालयैकशेषं तं मार्कण्डेयं समाजितुम् ।। २ ।।
हर्षान्वितावुभौ नत्वाऽन्योन्यं तावृषिसत्तमौ ।
चर्चायां परमार्थायां मार्कण्डेयं स पृष्टवान् ।। ३ ।।

टीका- *शिव-पार्वती संवाद की अमर कथा सुनकर जरा-मृत्यु से निवृत्त हुए शुककाया में निवास करने वाले महर्षि वैशम्पायन का एक बार सुमेरु पर्वत पर महाप्रलय में भी एक मात्र जीवित रहने वाले देवात्मा मार्कण्डेयजी से समागम हुआ। दोनों ने हर्षाभिव्यक्ति की और नमन-वन्दन, के उपरान्त परमार्थ चर्चा करने लगे। वैशम्पायन ने मार्कण्डेयजी से पूछा ।। १-३ ।।*

व्याख्या- महर्षि वैशम्पायन एवं देवात्मा मार्कण्डेय जी का एक दूसरे से मिलना व युगान्तरीय चेतना के संदर्भ में समागम कर परस्पर जानकारी प्राप्त करना एक ऐसे तन्त्र का द्योतक है जो युगों-युगों से ऋषिगणों के मध्य चलता चला आया है। इसी माध्यम से वे अदृश्य जगत की भूत, वर्तमान व भविष्य की गतिविधियों का पर्यवेक्षण, विश्लेषण एवं क्रियान्वन हेतु निर्धारण करते आये हैं।

महर्षि वैशम्पायन ने शुकयोनि में तत्वज्ञान सुना था। शिव-पार्वती की तत्व दर्शन चर्चा में आसपास कोई जीवधारी शेष न रहा था-विधि का विधान ही कुछ ऐसा था कि शुकयोनि में बैठे महर्षि महाप्रज्ञा के उस तत्वज्ञान का श्रवण कर सके जिसने उन्हें अमर बना दिया। काया बदलती रहती है पर यह बह्मज्ञान शाश्वत है।

उनसे चर्चा कर रहे देवात्मा मार्कण्डेय जी मृकण्ड ऋषि के पुत्र थे। वे भी चिरायु माने जाते हैं। जिस समय प्रलय ने सारे जगत को निगल लिया, उस समय भी वे बचे रहे, यह आख्यान यही स्पष्ट करता है कि देवात्माओं का महाप्रलय भी कुछ नहीं बिगाड़ पाती। अपने शील व परहित हेतु तपस्या के कारण ऋषि मार्कण्डेय भगवान शंकर से वरदान पाकर अजर,अमर हुए, भूत-भविष्य और वर्तमान के सभी ज्ञानों के ज्ञाता बने तथा पुराणों का आचार्यत्व भी उन्हें प्राप्त हुआ।

प्रलय का अर्थ है महाविनाश-संहार। खण्ड प्रलय अनेकों कल्पों में होती रही है। यह भगवान की माया का ही वैभव है मनुष्य को सत्पथ पर लाने के लिये । ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी देवात्मा पुरुष जीवित रहते हैं और संहार के बाद सृष्टि प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। भगवान भी विनाश के बाद सृजन चाहते हैं अतः उनकी सहायता करते हैं।

ब्रह्माजी ने प्रलय के समय मानव बीजों की रक्षा की ताकि अपना प्रजापति वाला कर्त्तव्य तदुपरांत निभा सकें व सृष्टि बनी रहे। इसी प्रकार रावण का भगवान के हाथों संहार हुआ परन्तु देवपुरुष विभीषण जीवित रहे तथा वे भी चिरायु माने जाते हैं। महाभारत युद्ध एक विनाशलीला के रूप में सम्पन्न हुआ जिसमें अधिसंख्य लोग मारे गये परन्तु श्रीकृष्ण समर्पित धर्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परायण पाण्डवादि जीवित रहे। यह अनादि काल से चला आ रहा सृष्टि का क्रम है।

वैशम्पायन उवाच-

प्रज्ञायुगसमारम्भे मन्त्रणातिमहत्वगा ।
विष्णुनारदयोर्मध्ये जातामंङ्गलदा नृणाम् ।। ४।।
योजना निश्चिता सैका नीतिर्निर्धारिताऽभ्भूत्।
इत्येव ज्ञातं तत्राग्रे किमभूद् विदितं न हि ।।५।।
त्रिकालज्ञो भवाँस्तत्र सन्दर्भे विश्वमंङ्गले ।
अद्यावधिह्यभूत्किं च भाव्यग्रे कृपया वद ।।६।।

टीका- देव ! जब प्रज्ञायुग का शुभारम्भ हो रहा था तब भगवान विष्णु देवर्षि नारद के बीच कुछ गुप्त मन्त्रणा हुई थी जो मनुष्यों के लिए मंगलमय थी। एक योजना बनी और एक नीति निधारित हुई थी, इतना ही विदित है। उस प्रसंग में आगे क्या हुआ, इसकी कोई जानकारी नहीं मिली। आप त्रिकालज्ञ हैं उस मंगलमय सन्दर्भ में बताने का अनुग्रह करें कि अब तक क्या हो चुका और आगे क्या होने वाला है ? ।। ४-६।।

व्याख्या- प्रथम अध्याय में देवर्षि नारद की जिस जिज्ञासा का समाधान भगवान विष्णु ने किया व तदनुसार मानवता के परित्राण हेतु निर्देश दिये थे, उस सम्बन्धी योजना की जानकारी तो त्रिकालज्ञ ऋषियों को थी। परन्तु इसे समग्ररूप में किस प्रकार क्रियान्वित किया गया, महर्षि वैशम्पायन अपनी जिज्ञासा इस सन्दर्भ में प्रकट करते हैं एवं प्रज्ञावतार लीला प्रकरण का विस्तार महाकाल द्वारा योजना बद्ध रूप से संचालित कार्य पद्धति तथा भविष्य की सम्भावनाओं के विषय में उनसे अपना मन्तव्य बताने का अनुरोध करते हैं। परिस्थिति की समय-समय पर होने वाली समीक्षा का यह एक शाश्वत क्रम है।

देवात्मा स समाकर्ण्य मार्कण्डेयो महामुनिः ।
जिज्ञासामुमुदेऽत्यर्थं दिव्यांदृष्टिंसमाश्रयत् ।।७।।
तया भूतं भविष्यच्च दृष्टवान् ध्यानपूर्वकम् ।
ततो गम्भीरमुद्रायां वाण्या संस्कृतयाऽगदत् ।।८।।

मार्कण्डेय उवाच-

काययाऽमर ! वैशम्पायन ! तं तु महामुने ।
प्रसंगं रोचकं चापि मार्मिकं श्रृणु ध्यानतः ।।९।।

टीका- देवात्मा मार्कण्डेय इस जिज्ञासा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टि को केन्द्रित किया और उससे भूत और भविष्य को ध्यान पूर्वक देखा। वर्तमान में क्या हो रहा है यह भी जाना। तदनुसार गम्भीर मुद्रा में सुसंस्कृत वाणी से तथ्यों पर प्रकाश डालते हुये बोले- हे काया से अमर महामुने वैशम्पायन ! वह प्रसंग बड़ा ही रोचक और मार्मिक है, तुम ध्यान पूर्वक सुनो ।। ७-९।।

व्याख्या- त्रिकालज्ञ ऋषियों के लिए काल-मन्वन्तर कोई अर्थ नहीं रखते हैं । चौदह मन्वन्तर बताये गये हैं जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों ही कालों में चलते रहते हैं। इन्हीं के द्वारा एक सहस्र चतुर्युगी वाले कल्प के समय की गणना की जाती है।

भगवतेऽर्पितकायः स तदिच्छा चिन्तको मुनिः ।
कर्त्ता तदनुसारं यो देवर्षिर्नारदः स्वकाम् ।।१०।।
भक्तिप्रसारिकां भूतकालिकीं कार्यपद्धतिम् ।
परिवर्तितरूपां स व्यधात्कालज्ञ आप्तवाक् ।।११।।
युगधर्मानुरूपस्य ज्ञानस्यापि च कर्मणः ।
उत्कृष्टता प्रसारे च विस्तरे निरतोऽभवत् ।।१२।।

टीका- भगवान के लिये समर्पित, उन्हीं की इच्छानुसार सोचने और करने वाले देवर्षि नारद ने अपनी भूतकाल की भक्ति प्रसार वाली कार्य पद्धति बदल दी, चूँकि वह कालज्ञ तथा आप्त हैं। युग धर्म के अनुरूप ज्ञान और कर्म की उत्कृष्टता का प्रसार करने लग गये ।। १०-१२।।

महाप्राज्ञस्य सम्पन्ना पिप्पलादस्य पञ्चमे ।
तत्वावधाने पूर्वं तु प्रसङ्गँस्तान् महामुने ।।१३।।
आद्ये प्रज्ञापुराणस्य खण्डे पूर्णं न्योजयत् ।
प्रसङ्गस्यास्य वृत्तान्तां वरिष्ठैर्युगपूरुषैः ।।१४।।
जनं जनं ज्ञापितुं स तत्परोऽभवदेवहि ।
नूतना चेतना येन दीप्यते तेषु सा ऽनिशम् ।।१५।।
सृजनस्याथ रूपे हि कर्मचेतन्य एव तत् ।
प्रज्ञाभियानं तस्यैव प्रयासस्याङ्गतगांतम् ।।१६।।
दावानल इवाभूत्स प्रचण्डो व्यापकस्तथा ।
झञ्झावातसमानश्च निरन्तरमथाप्यभूत् ।।१७।।

टीका- हे मुने ! महाप्राज्ञ पिप्पलाद के तत्वावधान में सम्पन्न हुए प्रज्ञा सत्र के पाँचों प्रसंगों को उनने प्रज्ञा पुराण के प्रथम खण्ड के रूप में सुनियोजित किया और प्रसंग की जानकारी वरिष्ठ युग पुरुषों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने में जुट गये, जिससे उनमें नई चेतना का स्फुरण प्रारम्भ हो गया। सृजन की कर्म चेतना के रूप में प्रज्ञा अभियान भी उसी प्रयास का अंग बना और दावानल की तरह प्रचण्ड तथा आँधी-तूफान की तरह व्यापक होता चला गया ।।१३-१७।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्याख्या- इस प्रकरण में देवात्मा मार्कण्डेय प्रज्ञा सत्रों की जानकारी महर्षि वैशम्पायन को देते हैं और युग परिवर्तन की पृष्ठ भूमि-प्रज्ञा अभियान का सृजन चेतना का आभास उन्हें दिलाते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि चेतन जगत में घुमड़ रहे परिवर्तन उसी महाप्रज्ञा-भगवत् सत्ता के शक्ति प्रवाह के ही अंग हैं जो आने वाले समय में युगान्तरीय भूमिका निभाने जा रही है । सूक्ष्म जगत में चलने वाले प्रवाहों की प्रतिक्रिया से सभी परिचित हैं। लोक प्रवाह में जब अवांछनीयता की *विषाक्तता* भर जाती है तो पतन-पराभव का संकट उठ खडा होता है। उनका निराकरण भी सूक्ष्म जगत में ही होता है। उसका तूफानी प्रभाव सारे वातावरण को झकझोर डालता है।

आँधी आती है तो तिनके भी आकाश में उड़ने लगते हैं। सघन वर्षा की बूंदें इतनी शक्तिशाली होती हैं कि मकानों तक को गिरा देती हैं। दावानल की तीव्रता समुद्र को भी उबालकर भाप बनने पर विवश कर देती है इसी प्रकार समय के प्रवाह में तिनकों-पत्तों की तरह अगणित व्यक्ति बहते चले जाते हैं। आँधी का रुख जिधर होता है उधर ही पेड़ों की डालियाँ और पौधों की कमर झुकी दिखाई देती है । इसे प्रवाह का दबाव कह सकते हैं। दूसरी ओर प्रखर व्यक्तित्वों की समष्टि चेतना भी इस प्रकार के वातावरण के निर्माण का कारण बनती है। ओजस्वी, मनस्वी, तपस्वी स्तर की प्रतिभाऐं अपनी प्रचण्ड उर्जा के वातावरण को गरम करती हैं और इस गर्मी से परिस्थितियों के प्रवाह में असाधारण मोड़ आते और परिवर्तन होते हैं।

सृजन की प्रेरणा ऐसे ही प्रयासों को जन्म देती आयी है। भगवान राम के आह्वान पर देवशक्तियाँ सेतुबन्ध हेतु नल-नील-वानरों के रूप में आयीं तो श्री कृष्ण के साथ मिलकर उन्होंने गोवर्धन उठवाया। बुद्ध ने विवेक धर्म एवं संगठन की शरण लेने हेतु जागृतात्माओं का आह्वान किया और युग की पुकार पर अवांछनीयताओं का विरोध करने भिक्षुओं का विशाल समुदाय उनके साथ हो गया। इसी इतिहास की पुनरावृत्ति अब होने जा रही है। वर्त्तमान में चल रही गतिविधियाँ उसी समष्टिगत प्रयास का एक अभिन्न अंग है।

जागृतात्मभिराधारे तस्मिन्नाकर्ण्य मन्त्रणाम् ।
युगस्य, जीवनं येषु श्लथं ते भवबन्धनम् ।।१८।।
कुर्वन्तो युगधर्मस्य निर्वहे निरता मुदम् ।
एकोदीपोह्यनेकाँस्तान् दीपानज्वालयत्क्षणात् ।।१९।।
ज्वालां गतः स्फुलिंगश्च बीजं वृक्षत्वमाश्रयत् ।
प्रभाताह्वानमाकर्ण्य तमिस्रानिद्रिता जनाः ।।२०।।
आयच्छमानश्चाङ्गनि स्थिता उत्थायचोन्नताः।
प्रयाताः कालिकाह्वानं पूर्णंकर्तुंरताःसमे ।। २१।।

टीका- *जागृत आत्माओं ने उस आधार पर युग निमन्त्रण सुना और जिनमें जीवन था, वह भव बंधनों को शिथिल करते हुए उस युग धर्म के निर्वाह में प्रसन्नता से जुट गये। एक से अनेकों दीप जले, चिनगारी ज्योति ज्वाला बनी। बीज ने वृक्ष का रूप धारण किया और प्रभात का आह्वान सुनकर तमिस्रा के कारण उनींदे पड़े लोग भी अँगड़ाई लेते उठे और तन कर खड़े हो गये-चले और समय की माँग पूरी करने में जुट गये ।। १८-२१।।*

व्याख्या- जब भी महाकाल का आमंत्रण आता है तो वे ही इस पुकार को सुनकर उस पर कुछ कर दिखाने का संकल्प लेते हैं जो आत्मतत्व पर छाये संकीर्ण स्वार्थपरता रूपी कषाय-कल्मषों को हटाते हुये स्वयं को उस महत् प्रयोजनों के साथ जोड़ देते हैं। भावनात्मक कृपणता ही है जो समय सामने होते हुये भी व्यक्ति को माया के भवबंधनों में भटकने को लाचार कर देती है।

कोटिशः कपिभल्लूक भूमिकां निरवाहयन् ।
एकैकशश्चमत्कारन् कुर्वन्तो युगपर्ययम् ।। २२।।
कर्तुं ते सफला जाताः वृत्तिः शुद्धा समस्ततः।
वैशम्पायन नैवैतत्सर्वं माया विनिर्मितम् ।। २३।।

टीका- *करोड़ों ने रीछ-वानरों की भूमिका निभाई और एक से एक बड़े चमत्कार उत्पन्न करते हुये युग बदलने की भूमिका निभा सकने में सफल हुये। चारों ओर वातावरण शुद्ध हो गया। हे वैशम्पायन यह सब जादू की तरह नहीं हो गया।। २२-२३।।*

व्याख्या- जिस युगान्तरकारी परिवर्तन की चर्चा ऋषिवर यहाँ कर रहे हैं वह सामान्य नहीं एक असामान्य पुरूषार्थ है। सत्प्रयोजन हेतु किये गये आदर्शवादी सहयोगी प्रयासों को हमेशा दैवी सहायता मिलती है पर उसमें भी रीछ वानरों जैसी भूमिका निभानी पड़ती है। इतिहास के महान परिवर्तनों में ऐसे ही अगणित पृष्ठ भरे पड़े हैं जिनसे प्रतीत होता है कि अग्रगामी लोगों की तुलना में अवरोधों की संख्या अधिक थी, उनका पुरुषार्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम पड़ता था पर उदार श्रम शीलता एवं साहसिकता ने इस या उस प्रकार ऐसी अनुकूलता बनायी कि परिस्थितियाँ साथ देती चली गयीं। चमत्कार अपने आप नहीं होते- सम्पादित किये जाते हैं। युग परिवर्तन जैसा महान कार्य जब सामने हो तो कृष्ण के बाल गोपालों के सत्याग्रह से मध्यकाल की क्रांतियों तथा गाँधी के सत्याग्रह के उदाहरण देख लेना उचित होगा जिनमें असंख्यों को खपना पड़ा। यही स्रष्टा की सदा-सदा से परिवर्तन की प्रक्रिया रही है। सृजन और ध्वंस दोनों का युग्म साथ चलता है।

प्रयासेऽस्मिन्नसंख्येय देवमानवपौरुषम् ।
प्रचण्डमभिनन्द्यश्च त्याग: सन्तोषकारक: ।। २४ ।।
बलिदानमभूद्यच्च सुकृतं नरजन्मन: ।
अनीते: प्रतिरोधे च संघर्ष: सहसोदित: ।। २५ ।।
अज्ञानोन्मूलनं जातं दूरी कर्तुमभावकान् ।
अनेकानेकसृज्यानां प्रवृत्तीनां नियोजनम् ।। २६ ।।
कार्यान्वयनमप्यत्र प्राचलत्तन्निरन्तरम् ।
युग चेतनाग्रदूतास्ते प्रज्ञापुत्रस्वरूपिण: ।। २७ ।।

टीका- इस प्रयास में असंख्यों देवमानवों को प्रचण्ड पुरुषार्थ और अभिनन्दनीय, तुष्टिप्रद, त्याग, बलिदान करना पड़ा, जो मानव जीवन का उत्तम पुण्य है। अनीति के विरुद्ध संघर्ष उभरा, अज्ञान का उन्मूलन किया गया और अभावों को दूर करने के लिये अनेकानेक सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों का नियोजन तथा कार्यान्वयन निरन्तर चल पड़ा । युग चेतना के अग्रदूत प्रज्ञा पुत्रों के रूप में प्रकट हुये।। २४-२७।।

व्याख्या- महाकाल के आमन्त्रण पर समष्टि चेतना के वाहक जिस रूप में प्रकट होते हैं उन्हें ही ऋषि ने यहाँ देवमानव अग्रदूत-प्रज्ञा-पुत्र के नाम से सम्बोधित कर उनके सत्साहस का वर्णन किया है। जिस किसी ने भी प्रज्ञा का विवेक का सन्देश सुना, उसने अपना चिन्तन और आचरण उसके अनुरूप ढाला। ऐसे में अपने स्वपरिवार तथा हितैषी कहे जाने वाले परिजनों को असन्तुष्ट कर ही महामानव उस श्रेय-सौभाग्य को प्राप्त कर सके हैं जिसे स्तुत्य त्याग एवं बलिदान के रूप में जाना जाता है। ऐसे आदर्श वादी संकीर्ण-'स्व' परायण परामर्श-अनुरोधों-आग्रहों को विनयपूर्वक अस्वीकार कर देते हैं तथा प्रचलित ढर्रे से अलग हट कर अपनी राह स्वयं बनाते हैं। अपनी इसी अग्रगामी भूमिका के कारण युगों-युगों तक के लिये इतिहास में उनका नाम अमर हो जाता है।

व्रतिनो नवनिर्माण स्वनिर्माणस्य चाभवन् ।
युगदेवाङ्घ्रिषु श्रद्धाञ्जली: सङ्कल्पजा ददु: ।। २८ ।।
पञ्चमुख्यग्निवेद्यास्ते पुरोऽदुर्देवदक्षिणा ।
आत्मनिर्मितयेऽगृह्णन् साधनासेवयोस्तथा ।। २९ ।।
स्वाध्यायस्य व्रतं सर्वे संयमस्यापि तद्दृढम् ।
परिवारं स्वं स्वमेवाथ पञ्चशील प्रवृत्तिभि: ।। ३० ।।
अभ्यस्तं कर्तु मेवैते निश्चयं मुदिता व्यधु: ।
इत्थमात्मविनिर्माण: परिवारविनिर्मिति: ।। ३१ ।।
शृंखलाबद्धतो जाता व्यरमन्नो क्षणं क्वचित् ।
तेन संस्कारयुक्ता च देवमानवनिर्मिति: ।। ३२ ।।

टीका- उन (प्रज्ञापुत्रों) ने आत्म निर्माण और नव निर्माण के लिए व्रत ग्रहण किये और संकल्पों की श्रद्धाञ्जलियाँ युगदेवता के चरणों पर अर्पित कीं। पञ्चमुखी अग्निवेदिका के सम्मुख उनने देवदक्षिणा समर्पित की और आत्म निर्माण के लिए साधना, स्वाध्याय,संयम, सेवा के दृढ़ व्रत लिए और अपने-अपने परिवारों को पंचशील की सत्प्रवृत्तियों से अभ्यस्त करने का प्रसन्नता से निश्चय किया। इस प्रकार आत्म निर्माण और परिवार निर्माण की श्रृंखला चल पड़ी जो क्षण भर भी नहीं रुकी और उससे देवमानवों का निर्माण चल पड़ा ।। २८-३२।।

व्याख्या- विश्वनिर्माण व युगान्तरीय परिवर्तन की प्रक्रिया आत्म क्षेत्र से आरम्भ होती है। आत्म निर्माण कर सकने वाले पुरुषार्थी ही नवसृजन हेतु व्रतशील हो पाते हैं। भावावेश में कूद पड़ने वाले सामयिक श्रेय भले ही पालें, स्वयं को धन्य नहीं बना पाते।

हमेशा महामानव अपने तथा अपने परिवार में सत्प्रवृत्तियों का समावेश करके ही अपनी अग्रगामी भूमिका सार्थक करते आये हैं। बिना त्याग किए-कुसंस्कारिता से पीछा छुड़ाये आत्म निर्माण सम्भव नहीं और इस साधना के बिना देव मानव बनना संभव नहीं। पंचमुखी अग्नि सतत यही प्रेरणा देती चली आयी है। व्यक्ति वही अभिनन्दनीय है जो सद्गुणों को अपने अन्दर समाविष्ट करने के लिये कड़ा संघर्ष करता है और व्रतशील जीवन जीने के लिये कृत संकल्प होता है। अग्नि के समक्ष ली गयी ऐसी प्रतिज्ञा को ही देव दक्षिणा नाम दिया गया है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता, प्रखरता तेषां सत्प्रवृत्युदयं व्यधात् ।
दुष्प्रवृत्तिक्रमो भग्नस्तासां शेषत्व हेतवे ।। ३३।।
कश्चिन्नवसरो भूय आगामिष्यति निश्चितम्।
अगृह्णन् युगस्रष्टार औदार्यमंशमर्पितुम् ।। ३४।।
समयं दातुमेवापि संचिता शक्तिरद्भुता ।
दुर्गावतरणं यातु सामर्थ्यमद्भुतं ददौ ।। ३५।।
इमां शक्तिं समाश्रित्य दूरीभूतं महत्तमः ।
देवतत्वान्यलं प्रापुर्बलमासुर्यमत्यगात् ।। ३६।।

टीका- उन(प्रज्ञा पुत्रों) की प्रखरता से सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ती चली गईं और अब उन दुष्प्रवृत्तियों के शेष रहने का कोई अवसर नहीं आयेगा। युग सृजेताओं ने समयदान अंशदान की उदारता अपनाई और उस अद्भुत सामर्थ्य को जन्म दिया, इस शक्ति के सहारे अन्धकार मिटा। देवतत्वों को बल मिला और असुरता निरस्त होती चली गई ।। ३३-३६।।

व्याख्या- प्रज्ञावतार जन-जन में यह चेतना जगा रहा है कि उन्हें अपने जीवन क्रम में आदर्शवादिता को अधिकाधिक मात्रा में धारण करना होगा। उच्चस्तरीय भाव संवेदनाऐं मूर्च्छित अन्तःकरण में नहीं जन्म लेतीं। प्रज्ञावतार की प्रेरणा व प्रभाव से लोग अपने भीतर नई उमंगें उठती अनुभव कर रहे हैं और मस्तिष्क में उत्कृष्टता के प्रति रुचि उत्पन्न हो रही है। युगपरिवर्तन के बीजांकुर प्रखर प्राणवान सुसंस्कारी जाग्रत आत्माओं में सत्प्रवृत्तियों के उफन पड़ने व अवरोध बनी दुष्प्रवृत्तियों के समूल नष्ट होने के रूप में फूट रहे हैं। ऐसे सेनापतियों के तत्पर होने पर ही सैनिक युद्ध मोर्चे की ओर बढ़ते हैं। ऐसों की उदारता औरों के लिए प्रेरणा का प्रकाश पुंज बन जाती है।

प्रवृत्ति बदलते ही सब कुछ बदल जाता है। यदि आंतरिक प्रवृत्ति नहीं बदली तो बहिरंग कभी भी नहीं बदल सकता । मूल प्रवृत्ति उभर कर आयेगी ही।

सुप्रभातमिदं प्रज्ञा युगस्याभून्महामुने ।
जागृतात्मांशदानं तदृषिरक्तमिवाऽभवत् ।। ३७।।
समर्थं संस्कृतेर्नव्य सीतायाः जन्मनः कृते ।
सत्प्रवृत्तीरसंख्येया इदं सामर्थ्यमासृजन् ।। ३८।।
पोषयामास ताः सर्वा वर्षा इव सुमंङ्गलाः ।
प्रक्रियैषात्मनिर्माण युगनिर्माण संयुता ।। ३९।।
विख्यातिमगमद्देवदक्षिणा नामतो भुवि ।
प्रस्तुतं वह्निसाक्षित्वं श्रद्धाञ्जलय एतिकाः ।। ४०।।
दातृभ्यः सौभगस्यासन् श्रेयसां कारणानि च।
गरिम्णो मानवस्याभूत पुनर्जीवनकस्य तु ।। ४१।।
निमित्तं कारणं धन्य पीयूष परिपोषणम् ।
प्रक्रियैषा दधौ रूपं युगशक्तेः सुशोभना ।। ४२।।
परिवर्तनकस्याभून्निमित्तिं कारणं त्वियम् ।
वर्तमाने चलत्येतद् भविष्यदुज्ज्वलं मतम् ।। ४३।।

टीका- महामुने ! यह प्रज्ञायुग का सुप्रभात सिद्ध हुआ । जागृत आत्माओं का अंशदान ऋषि-रक्त की तरह संस्कृति की अभिनव सीता को जन्म देने में समर्थ हुआ। इस सामर्थ्य ने अगणित सत्प्रवृत्तियों को सृजा और उन्हें परिपोषण प्रदान किया जो मांगलिक वर्षा के समान सिद्ध हुई। अग्नि की साक्षी प्रस्तुत की गई। ये श्रद्धाञ्जलियाँ दाताओं के लिए श्रेय सौभाग्य की कारण बनीं और मानवी गरिमा के पुनर्जीवन का निमित्त कारण बनीं जो धन्य एवं अमृत पोषण सिद्ध हुआ। इस प्रक्रिया ने युग शक्ति का रूप धारण किया और परिवर्तन का निमित्ति कारण बनी। वर्तमान में यही सब चल रहा हैं। उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित है ।। ३७-४३।।

व्याख्या- प्रज्ञायुग में जागृतात्माओं ने वही प्रक्रिया अपनायी है जो संघशक्ति उपार्जित करने के लिये असुरता निवारण हेतु ऋषियों द्वारा रक्त अंश रूप में एकत्र कर सीता जन्म की भूमिका तथा रावण संहार हेतु राम भगवान के अवतरण का मूल प्रयोजन बनी थी। यह उदारमना देववृत्ति जब उभर कर आती है उसके सत्परिणाम अपार होते हैं। निष्ठावानों का श्रम सीकर ही शक्ति प्रदाता होता है। विभूतिवानों के पास देने के लिये प्रतिभा, कौशल, साधन सब कुछ हैं पर महत्ता तभी है जब देने की प्रवृत्ति अन्दर से उभरे। बूँद-बूँद से मिलकर समुद्र बनता है। आज महाकाल हर जागृतात्मा की परख-निष्ठा की कसौटी इसी को मानते हैं किसने अपने को कितना उदार बनाया व सत्प्रवृत्तियों हेतु कितना समर्पण किया।

यत्रार्जुन इवास्त्येव कर्मवीरस्तथा च सः ।
सूत्रसञ्चालकोऽप्यत्र भगवानिव भासते ।। ४४।।
तत्रासाफल्य हेतुर्न कश्चिदस्ति मनागपि ।
प्रसङ्गेऽस्मिन् महालाभस्तैर्नरैः प्राप्यते भृशम् ।। ४५।।
भगवतः सहगा ये तु भूत्वा तेषां सुमङ्गले ।
युगपर्ययविधौ युक्ता भावकास्तु निरन्तरम् ।। ४६।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- जहाँ अर्जुन जैसे कर्मवीर और भगवान जैसे सूत्र संचालक हों वहाँ असफलता का कोई कारण नहीं। इस प्रसंग में सबसे अधिक लाभ उन्हें मिलना है जो भगवान के सहचर बनकर उनकी मगंलमय युग परिवर्तन प्रक्रिया कार्यान्वित करने में भावना पूर्वक निरन्तर जुटे हुए हैं ।। ४४-४६ ।।

व्याख्या- अवतार की योजना व सूत्र संचालन इतना सुनियोजित होता है कि उसमें कहीं किसी प्रकार का असमंजस-असफल होने का ऊहापोह मन में नहीं होना चाहिए। भगवान-महाकाल के साथ साझेदारी जिस-जिस ने की है वह युगान्तरीय परिवर्त्तनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर अपने जीवन को सार्थक बना सका है । तथ्य यही है कि महानता रूपी अवसर सामने होने पर उससे लाभ लेने एवं प्रभु के सृष्टि के नव सृजन कार्य में सहभागी बनने में व्यक्ति कितना साहस व उदारता दिखाता है।

वस्तुतः महानता आग के समान है, उसके सम्पर्क में जो भी आता है - गरिमायुक्त एवं तद्रूप होता चला जाता है। पृथ्वी का वैभव सूर्य के अनुदान से मिला है। यदि सूर्य का तापमान मात्र तीस डिग्री घट जाय तो समूची धरती चालीस फुट बर्फ से ढक जायगी। इसी प्रकार तीस डिग्री तापमान बढ़ जाय तो यहाँ भी बुध ग्रह जैसी भयानक गर्मी तपेगी और वृक्ष वनस्पतियों से लेकर जल,थल और नभचर प्राणियों में से किसी का भी जीवित रह सकना सम्भव नहीं होगा। इसे पृथ्वी का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि वह एक उपयुक्त स्तर के स्नेह सूत्र में सूर्य के साथ बँधी और आदान-प्रदान का उपयोगी सिलसिला चल पड़ा। मछलियाँ जलराशि के सहयोग बिना अपने बलबूते किस प्रकार जीवित रह सकती हैं ? उनकी संरचना अतिमहत्वपूर्ण होते हुए भी यह सम्भव नहीं कि अपने पैरों पर खड़ी रह सकें और जलराशि की उपेक्षा करके अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकें।

महानता के साथ सम्पर्क साधना, उसके सहयोग का सुयोग पा लेना भी कई बार अप्रत्याशित सौभाग्य बनकर सामने आता है। यों वैसे अवसर सदा सर्वदा हर किसी के लिए उपलब्ध नहीं रहते।

रामचरित्र के साथ जुड़ जाने पर कितने ही सामान्य स्तर के प्राणियों ने सामान्य क्रिया-कलापों के सहारे असामान्य श्रेय पाया। इस तथ्य को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। बन्दर स्वभावतः इधर-उधर लकड़ी-पत्थर फेंकते रहते हैं, समुद्र पर पुल बनाने में प्रायः इतनी ही कूद-फाँद उन्हें करनी पड़ी होगी, पर उसे सुयोग ही कहना चाहिए कि उतनी छोटी-सी उदार श्रमशीलता को ऐतिहासिक बना दिया और कथा-वाचक उसकी भावभरी चर्चा करते-करते अघाते नहीं, ऐसे आदर्शवादी सहयोगों की सफलता में कर्त्ताओं का पुरुषार्थ ही नहीं-दैवी सहायता भी काम करती है और श्रेय उन अग्रगामी साहसियों के पल्ले बँध जाता है। नल-नील ने समुद्र पर पुल बनाया और पत्थर पानी पर तैरने लगे। इस प्रकार के घटनाक्रम सामान्य स्थिति में देखे नहीं जाते। दैवी प्रयोजनों में दैवी सहायता की असाधारण मात्रा उपलब्ध होती है।

कृष्ण चरित्र पर दृष्टिपात करने से भी यह तथ्य असाधारण रूप से उभरकर आगे आता है। गोपियों का छाछ पिलाना, थोड़ी सी हँसी ठिठोली कर देना, ग्वालबालों का लाठी सहारा जैसे कृत्य ऐसे नहीं हैं जिन्हें दैनिक जीवन में सर्वत्र घटित होते रहने वाले सामान्य उपक्रमों में भिन्न समझा जा सके। इतने पर भी वे सहयोग पुराण-उपाख्यानों में बहुत बार दुहराये-सराहे जाते रहते हैं, उनमें अनेकों योद्धा लड़ते और हारते-जीतते रहते हैं, पर अर्जुन, भीम जैसों को जो श्रेय मिला उनकी गरिमा असामान्य हो गई। अंर्जुन-भीम वे ही थे, जिन्हें बनवास के समय पेट भरने के लिए और जान बचाने के लिए बहुरूपिए बनकर दिन गुजारने पड़े थे। द्रौपदी को निर्वसन होते आँखों से देखने वाले पाण्डव यदि वस्तुतः महाभारत जीत सकने जैसी समर्थता के धनी रहे होते तो न तो दुर्योधन, दुःशासन वैसी धृष्टता करते और न पाण्डव ही उसे सहन कर पाते। कहना न होगा कि पाण्डवों की विजय श्री में उनकी वह बुद्धिमत्ता ही मूर्धन्य मानी जायेगी जिसमें उनने कृष्ण को अपना और अपने को कृष्ण का बनाकर भगवान से घोड़े हँकवाने जैसे छोटे काम कराने को विवश कर दिया था । यदि वे वैसा न कर पाते और अपने बलबूते जीवन गुजारते तो स्थिति सर्वथा भिन्न होती और यायावरों की तरह जैसे-तैसे जिन्दगी व्यतीत करते।

बुद्ध के साथ जुड़ने का साहस न कर पाते तो हर्षवर्धन, अशोक, आनन्द, राहुल, कुमारजीव, संघमित्रा, अम्बपाली आदि की जीवनचर्या कितनी नगण्य रह गई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती-इसका अनुमान लगा सकना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए। गाँधी के साथ यदि विनोबा, राजगोपालाचार्य, नेहरू, पटेल, राजेन्द्र बाबू आदि न घुले होते-अपना पृथक्-पृथक् वर्चस्व बनाकर चले होते तो वह स्थिति बन नहीं पाती जो बन सकी। नेहरू और लालबहादुर शास्त्री की घनिष्टता प्रसिद्ध है। यदि उस सघनता को ताक पर रख दें और अपने-अपने बलबूते उठने बैठने की बात सोचें तो फिर परिणाम भी कुछ दूसरे ही स्तर के होने की बात सामने आ खड़ी होगी।

चाणक्य के साथ चन्द्रगुप्त, समर्थ के साथ शिवाजी, परमहंस के साथ विवेकानन्द की सघनता दोनों पक्षों के लिए कितनी सन्तोषजनक परिणाम प्रस्तुत कर सकी-इसे कौन नहीं जानता ।

दिनं नहि सुदूरं तत् यत्र काल विपर्ययः ।
चिन्तनं स्याच्चरित्रं च नराणां परिवर्तितम् ।।४७।।
उत्कृष्टता संस्कारैःसंस्कृतास्ते नरा ध्रुवम् ।
विमुखाश्चर्निकृष्टत्वात् स्वार्थसंकीर्णताग्लपेत् ।।४८।।
वर्धिष्यन्तेऽञ्जसावश्यं सहसा सत्प्रवृत्तयः ।
उदारसहयोगेन हर्षोल्लासोदयो भवेत् ।।४९।।
आगामि दिवसेष्वेवं नापराधा न विग्रहाः ।
द्रक्ष्यन्ते,सीमितेष्वेव साधनेषु प्रसन्नताः ।।५०।।
तेष्वसीमसुखस्याथ शान्तेश्चापि महामुने ।
उपलब्धेर्भविष्यन्ति दृश्यान्यक्षिचराण्यलम् ।।५१।।
विषमताविनाशः स्यादेकतोत्पत्तिरेव च ।
समस्ताः मानवाः स्थास्यन्त्येकराष्ट्रव्रता इव ।।५२।।
एकां भाषां वदिष्यन्ति विश्वधर्मं तथा च ते।
संस्कृतिं मानवीयां च स्वीकरिष्यन्ति प्रेमतः ।।५३।।
द्रक्ष्यन्ते मानवाः देवरूपिणो जगतीतले ।
कोणे-कोणे सुखस्याथ शान्तेश्चैश्वर्या वृतिर्भवेत् ।।५४।।
प्रज्ञायुगो भूतकालाच्छ्रेष्ठः सत्ययुगादपि ।
ज्ञास्यते श्रेय आधास्यन् व्रजिष्यति वरिष्ठताम् ।।५५।।

टीका- वह दिन दूर नहीं जब समय बदला होगा। मनुष्यों के चिन्तन,चरित्र में भारी हेर-फेर उत्पन्न होगा। वे निकृष्टता से विमुख होकर उत्कृष्टता के ढांचे में ढलेंगे। संकीर्ण स्वार्थपरता घटेगी तो सत्प्रवृत्तियाँ अनायास ही बढ़ती चली जायेंगी। उदार सहयोग बढ़ने पर सर्वत्र हर्ष उल्लास छाता ही है। अगले दिनों न कहीं अपराध दृष्टिगोचर होंगे न विग्रह, सीमित साधनों में प्रसन्नता होगी। तथा उन्हीं में असीम सुख-शान्ति, उपलब्ध करने के स्वर्गीय दृश्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगेंगे। विषमता मिटेगी और एकता उत्पन्न होगी। समस्त मनुष्य एक राष्ट्र बनाकर रहेंगे, एक भाषा बोलेंगे । विश्व धर्म और मानवी संस्कृति को सभी प्रेम पूर्वक स्वीकार करेंगे। मनुष्य देवता जैसे दीखने लगेंगे और धरती के कोने-कोने में सुख-शान्ति का स्वर्गीय वातावरण बन, जायेगा। प्रज्ञायुग को भूतकाल के सतयुग से भी अधिक श्रेष्ठ समझा जायेगा और इसे ही वरिष्ठता का श्रेय प्राप्त होगा ।। ४७-५५ ।।

व्याख्या- प्रज्ञायुग के भावी स्वरूप पर त्रिकालज्ञ ऋषि अपना पूर्व कथन व्यक्त करते हुये उसे श्रेष्ठता-आदर्शों से भरा युग बताते हैं। आज की घुमड़ती हुई विभीषिका की घटाएँ तथा उन्हीं के साथ चल रही सृजन की गति-विधियों को दृष्टिगत रख अन्यान्य दृष्टा मनीषियों, *अतीन्द्रिय* चेतना सम्पन्न व्यक्तियों ने भी इसी प्रकार के मन्तव्य प्रकट किये हैं। यह समय विनाश का नहीं, नव निर्माण का है। बीज अकुंर रूप में जन्म ले चुका है, प्रज्ञावतार का आवेश असंख्यों विश्व वासियों को अपनी प्रेरणा से प्रेरित कर रहा है, उसे देखकर ही भविष्य के प्रति आशा *बँधने* लगती तथा उल्लास की उमँगें उठने लगती हैं। यह इस बारका ही नहीं, हर बार का प्रसंग है कि संव्याप्त भ्रष्टता-निकृष्टता निवारण हेतु अवतार प्रक्रिया ने सृजन की प्रक्रिया को अपने हाथों सम्पन्न किया है। वर्तमान में भी जो भावनात्मक प्रवाह चल रहा है उसका उद्देश्य एक ही है, हजारों वर्षों की कलंक कालिमा को धोकर मानवता के अतीत कालीन उज्ज्वल गौरव की पुनः स्थापना करना।

वैशम्पायन संवादः विष्णुनारदयोस्तु यः ।
ततः प्रज्ञापुराणस्य विस्तरस्य तथैव च ।।५६।।
प्रज्ञाभियानकस्यापि विश्वगो विस्तरस्तु यः ।
परिचयस्तस्य संक्षिप्तो बोधितोऽयं मयाऽधुना।।५७।।
दिव्यदृष्ट्या स्वरूपं च भविष्यत्कालिकं पुनः।
स्पष्टमेव महाभाग करामलकवद् ध्रुवम् ।।५८।।
प्रज्ञावतारलीलेयं प्रखरा प्रोज्ज्वला मता ।
निरस्ताः पूर्णतो यत्र भयानकविभीषिकाः ।।५९।।
स्वर्गावतरणं भूमौ यदास्ते परिवर्तनम् ।
तुलनस्यैतत्तु द्रक्ष्यन्ति ये ते स्युरथ विस्मिताः ।।६०।।
प्रज्ञायुगः सर्वश्रेष्ठो भविष्यति युगो भुवि ।
स्थापका भुवि ये तस्य श्लाघ्याः प्रज्ञासुतास्तु ते ।।६१।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तेषां भगीरथायास भूमिकायास्तु वर्णनम् ।
उत्साहवर्धकं वंश्या: करिष्यन्ति युगे युगे ।।६२।।
श्रोतारो युगस्रष्ट्रणां श्लाघयन्तस्तु भाग्यकम्।
हन्त तत्राभविष्याभवाम भूरिभाग्यका: ।।६३।।

टीका- हे वैशम्पायन ! विष्णु नारद सम्वाद से लेकर प्रज्ञापुराण के विस्तार और प्रज्ञा अभियान के विश्वव्यापी विस्तार का संक्षेप परिचय मैंने कराया है। हे महाभाग ! दिव्य दृष्टि से भविष्य का स्वरूप भी हाथ में रखे आँवले की तरह स्पष्ट है। पिछले सभी अवतारों की तुलना में प्रज्ञावतार की लीला कहीं अधिक प्रखर प्रोज्ज्वल मानी जायेगी। ऐसी, जिसमें भयानक विभीषिकाओं को निरस्त कर दिया गया है। उस स्थान पर स्वर्ग के धरती पर उतारने जैसे परिवर्तन पर जो भी तुलनात्मक दृष्टि डालेंगे, वे आश्चर्यचकित हुये बिना न रहेंगे । प्रज्ञा युग सर्वश्रेष्ठ युग होगा। उसे धरती पर उतारने वाले प्रज्ञापुत्र श्लाघ्य हैं। उनकी भगीरथ जैसी भूमिका का उत्साहवर्धक वर्णन अगली पीढ़ियों के लोग युगों-युगों तक करते रहेंगे। सुनने वाले इन युग सृजेताओं के भाग्य की सराहना करते हुए सोचेंगे, काश ! हम उन दिनों रहे और कार्यरत बने होते तो कितने सौभाग्यवान् कहलाते ।। ५६-६३।।

व्याख्या- मध्यकाल का इतिहास सबके सामने है। जिस प्रकार वर्तमान युग की गति विधियाँ चल रही हैं और चारों ओर आस्था संकट के बादल घुमड़ते दिखाई देते हैं, यह भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। परिस्थितियाँ ऐसी विकट हैं कि बिना ध्वंस के नवसृजन अब सम्भव नहीं। प्रात:वेला में सूर्योदय के पूर्व अंधतमिस्रा और गहन हो जाती है। ऊषा की लालिमा छाते ही अन्धकार मिटने लगता है व प्रात: का संकेत देते पक्षी चहचहाने लगते हैं । यही अवसर अवतार के प्रकटीकरण का है। प्रबुद्ध आत्माएँ अपने अन्दर इतना प्रकाश धारण किये रहती हैं कि उपयुक्त अवसर को पहचानें और रीछवानर-ग्वालों-भिक्षुओं की तरह अवतार के सहयोगी बनें,दैवी निर्देषों के अनुरूप अपनी गतिविधियाँ मोड़ दें। गीताकार कृष्ण-अर्जुन को महाभारत में गाण्डीव उठाने के लिए ललकारते हैं। स्वयं पाँचजन्य बजाकर युद्ध घोषणा करते हैं। यह एक ऐतिहासिक प्रसंग नहीं वरन् हर आत्मवादी को अनिवार्य रूप से अपनाने के लिए प्रस्तुत ईश्वरीय मार्गदर्शन है जो इस महाभारत में मोहग्रस्त हो पीछे रह जाते हैं, वे समय बीत जाने पर पछताते हैं व सोचते हैं कि श्रेय सौभाग्य का समय समीप होते हुए भी हम क्यों नहीं इस अवसर का सदुपयोग कर पाये ?

स्वतन्त्रता संग्राम में जिन्होंने भावभरी भूमिका निभाई, वे पेन्शन पाने, शासन में उच्च पद पाने के श्रेयाधिकारी बने थे। वह समय निकल जाने के उपरान्त कोई उस सौभाग्य को पाना चाहे तो यही कहना पड़ेगा कि समय निकल गया। उनींदे लोग उन दिनों असमंजस की स्थिति में पड़े रहने पर मात्र पश्चाताप ही कर सकते हैं। गाँधी की डाँडी यात्रा एवम् धरसना के नमक सत्याग्रह का स्मरण सदा ही किया जाता रहेगा। बाद में तो कितनों ने ही नमक बनाया और कारागार भुगता था।

यह विचित्र लीला सन्दोह हर अवतार के साथ देखने में आया है कि उनके रहते कोई उन्हें पहचान नहीं पाता। अवतार की सृजन प्रक्रिया प्रज्ञाचक्षुओं से ही देखी जा सकती है, चर्म चक्षुओं से नहीं। निवेदिता ने विवेकानन्द को पहचाना, व पटेल, नेहरू ने गाँधी को। आनन्द, अशोक, हर्षवर्धन ने बुद्ध के विचार क्रान्ति अभियान को पहचाना और समय रहते उसके सहयोगी बने। बाद में जब वे आकर चले गये तो अवसर चूकने वाले ऐसे असंख्यों थे जो उन दिनों भी उनके समकालीन थे पर स्वयं को धन्य न बना पाये।

इन दिनों महाकाल ने आग्रह पूर्वक प्राणवानों को सहयोग देने के लिए बुलाया है। वस्तुत: यह श्रेयाधिकारी बनने का सौभाग्य सन्देश भर है। भगवान के काम, समय के उपक्रम एवम् दिव्य शक्तियाँ अपनी अदृश्य क्षमता के आधार पर स्वयं ही सम्पन्न कर लेती हैं। रीछवानर रूठ-मटक कर बैठ जाते तो भी सीता वापिसी और लंका की दुर्गति निश्चित थी। ऐसे अवसरों का सबसे बड़ा लाभ वे अग्रगामी उठाते हैं जो संकीर्ण स्वार्थपरता को छोड़कर समय की माँग पूरी करने के लिए बिना समय गंवाये अग्रिम मोर्चे पर जा खड़े होते हैं। युग-सन्धि की प्रस्तुत प्रभात वेला को ठीक ऐसा ही मुहूर्त समझा जाना चाहिए, जिसमें साहसी, सदाशयी छोटे-छोटे कदम बढ़ाने पर भी अत्यधिक श्रेय संचित कर सकने वाले दूरदर्शियों में गिने जायेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मार्कण्डेय उवाच-

तावती तात ! श्रोतव्या कथा यस्यां तु चिन्तनम् ।
मननं संभवेच्चापि समाप्तव्यः प्रसङ्गकः ।। ६४ ।।
सन्ध्यावन्दनहेतोश्च गच्छामो वयमद्य तु ।
भविष्यत्यवसरश्चेज्ज्ञानचर्चा भविष्यति ।। ६५ ।।

टीका- मार्कण्डेयजी ने वैशम्पायन से कहा-"तात ! कथा उतनी ही सुननी चाहिए जिस पर चिन्तन-मनन हो सके। आज का प्रसंग समाप्त किया जाय। हम लोग सन्ध्या वन्दन के लिए चलें। अवसर हुआ तो भविष्य में फिर ज्ञान चर्चा करेंगे ।। ६४-६५ ।।

व्याख्या- ज्ञान को पहचानने की प्रक्रिया ही चिन्तन-मनन है। ज्ञान की आभा तब वाणी-चेहरे पर परलक्षित होती है जब वह रक्त में मिलता है। किसी भी वस्तु को यदि ठीक से आत्मसात करना हो तो उसकी घुटायी जरूरी है। मार्कण्डेयजी ने युगान्तरीय चेतना के लीला सन्दोह प्रकरण की कथा का वैशम्पायन जी के श्रीमुख से श्रवण कर उस पर चिन्तन व आगे की सम्भावित परिवर्तन प्रक्रिया के विषय में मनन की चर्चा कर प्रस्तुत प्रसंग समाप्त करते हैं ।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री मार्कण्डेय-वैशम्पायन ऋषि-सम्वादे "युगान्तरीय चेतना लीला सन्दोह" इति प्रकरणो नाम ।। सप्तमोऽध्यायः ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वितीय मण्डल

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

देवमानव-समीक्षा प्रकरण

एकदा नैमिषारण्ये ज्ञानसंगम उत्तमः ।
मनीषिणां मुनीनां च बभूव परमाद्भुतः ।। १।।
काश्याः पाटलिपुत्रस्य ब्रह्मावर्तस्य तस्य च ।
आर्यावर्तस्य सर्वस्य यानि क्षेत्राणि सन्ति तु ।। २।।
कपिलवस्तोर्विशेषेण तेभ्यः सर्वेऽपि संगताः ।
प्रज्ञापुरुषसंज्ञास्ते मूर्धन्या धन्यजीवनाः ।। ३।।

टीका- एक बार मुनि-मनीषियों का एक उत्तम ज्ञान संगम नैमिषारण्य क्षेत्र में हुआ, जो अपने आप में बड़ा अद्भुत था। आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त, काशी, कपिलवस्तु, पाटलिपुत्र आदि समीपवर्ती क्षेत्रों के सभी मूर्धन्य उत्तम जीवनयापन करने वाले प्रज्ञा पुरुष उस में एकत्र हुये।। १-३।।

ज्ञान संगम इस भूमि की, ऋषि युग की विशेषता रही है। ज्ञान की अनेक धाराएँ हैं। अपने-अपने विषयों के विशेषज्ञ उन्हें समयानुरूप विकसित करते रहते हैं। विकसित धाराओं का उपयोग जनहित के लिये किया जाता है। वह तभी संभव है, जब भिन्न-भिन्न धाराओं में हुये विकास को जन आवश्यकता के अनुरूप मिलाकर जन साधारण तक पहुँचाने योग्य बनाया जाये। प्राचीन काल में अध्यात्म और इस युग में विज्ञान का विकास इसी ढंग से सम्भव हुआ है।

ज्ञान धाराओं का संगम तब संभव हो पाता है, जब उन्हें समझने और अपनाने वाले मूर्धन्य श्रेष्ठ व्यक्ति उसमें रुचि लें । जिन्होंने उन्हें विकसित किया, ऐसे प्रज्ञा-पुरुष, और जिन्होंने उन्हें जीवन सिद्ध बनाया, ऐसे उत्तम जीवन जीने वाले अग्रगामी,दोनों ही प्रकार के सत्पुरुष इस संगम में एकत्रित हुये हैं।

ओषधियाँ बनायी जाती हैं फिर उन्हें निश्चित क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाता है। सेना के लिये अस्त्र विकसित किये जाते हैं; कुशल व्यक्तियों द्वारा उनका प्रयोग-परीक्षण किया जाता है। उनके आधार पर विकसित करने वाले तथा प्रयोग करने वाले गम्भीर परामर्श करते हैं, संशोधन करते हैं, तब वह संगम बनता है, जिससे व्यापक स्तर पर उन उपलब्धियों को व्यवहार में लाया जा सके।

समागमाः पुराप्येव समये जनबोधकाः ।
काले काले भवन्ति स्म सद्विचाराभिमन्थनैः।।४।।
बहुमूल्यानि रत्नानि यथा सागरमन्थनैः ।
यत्र दिव्यानि सर्वाणि प्रादुर्भूतानि सन्ततम् ।। ५।।
मनीषिणोऽधिगच्छेयुर्मार्गदर्शनमुत्तमम् ।
शोचितुं कर्तुमेवाऽपि सहैवाऽत्र जनाः समे ।। ६।।
लभन्तां समयं मुक्त्यै काठिन्यात्प्रगतेः पथि ।
गन्तुं चाऽपि समारोह एतदुद्दिश्य निश्चितः ।। ७।।

टीका- समागम पहले भी समय-समय पर होते रहते थे, ताकि विचार मन्थन से समुद्र मन्थन की तरह कोई बहुमूल्य रत्न निकले; मनीषियों को अधिक सोचने और करने का सामयिक प्रकाश मिले; साथ ही जन समुदायों को कठिनाई से छूटने और प्रगति पथ पर अग्रसर होने का अवसर उपलब्ध होता रहे। इस बार का समारोह भी इसी प्रयोजन के लिये नियोजित किया गया था ।।४-७।।

समुद्र मंथन से विचार मंथन अधिक लोकोपयोगी है। समुद्र मंथन से रत्न एक बार ही निकले थे, पर विचार मंथन से रत्नों की प्राप्ति हर काल में होती रहती है। इसलिये मनीषी लोग विचार मंथन के लिये एकत्र होते रहते हैं। यों विचार मंथन अकेले भी होता है; पर जब कई मनीषी एक साथ बैठकर विचार मंथन करते हैं, तो एक दूसरे के विचारों से उभरने वाली प्रेरणा से, स्फूर्ति से सामान्य की अपेक्षा अनेक गुना लाभ मिलता है।

सभी उपनिषद्, दर्शन आदि ऋषियों के विचार मंथन से उपजे रत्न हैं। वे अनन्त काल से अगणित व्यक्तियों को लाभ पहुँचाते आ रहे हैं। योग और चिकित्सा के सूत्र भी ऐसे ही विचार मंथन से विकसित हुये हैं। प्राचीनकाल में मंत्रि-परिषदें राज्य की, समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की विभिन्न समस्याओं के समाधान इसी प्रकार विचार मंथन से निकालती थीं। ऋषिगण भी अपने-अपने आश्रमों-आरण्यकों में यह क्रम चलाते थे। जब तक यह परिपाटी चली, तब तक समयानुकूल विचारों, आदर्शों की शोध होती रही, आचरण होते रहे और सामाजिक उत्कर्ष का क्रम सतत् चलता रहा।

जिज्ञासानां समाधानहेतोरत्र विशेषत: ।
व्यवस्था विहिता प्रातर्नित्यकर्मविनिर्वृतौ ।। ८।।
सत्संगो निश्चित: सर्वैस्तत्र रम्ये तपोवने ।
क्रम: सप्ताहपर्यन्तं भविष्यत्यपि निश्चित: ।। ९।।
तद्दिने विधिवत्तस्य शुभारम्भो बभूव च ।
अभूत्तत्र समाध्यक्ष आश्वलायन उत्तम: ।। १०।।
सर्वे कुर्वन्ति प्रश्नान् स्वान् सभाध्यक्ष: क्रमादसौ।
उत्तरं दास्यतीत्येवं व्यवस्था तत्र निश्चिता ।। ११।।

टीका- जिज्ञासाओं के समाधान के लिये उस समागम में विशेष व्यवस्था की गई थी। प्रात: नित्य कर्म से निवृत्त होने पर सत्संग चलाने का निश्चय उस रमणीय तपोवन में हुआ। एक सप्ताह तक यह क्रम चलना था। सो उस दिन उसका विधिवत् शुभारम्भ हुआ। सत्राध्यक्ष आश्वलायन थे। ऐसी व्यवस्था थी, कि प्रश्न कोई भी कर सकते थे और उत्तर केवल सत्राध्यक्ष ही देते थे।। ८-११ ।।

प्रथमे दिवसे तत्र जिज्ञासां प्रस्तुतां व्यधात् ।
ऐतरेयो महर्षि: स श्रेष्ठ आचारवान् मुनि:।।१२।।
देव लब्धा: समानास्ता: सुविधा मानवै: समै:।
प्रभुदत्ता: परं तेषु मानवा: केचनात्र तु ।। १३।।
उदरम्भरितायां ते सन्तानोत्पत्ति केऽथवा ।
सीमिताश्च सदैवात्र तैलयन्त्रवृषा इव ।। १४।।
जीवनं यापयन्त्येवं पशुतुल्यस्थितिं गता: ।
ताडिता:पतिता: किं वा जनै: सर्वैस्तिरस्कृता:।।१५।।
संकटानात्महेतोश्च भावयन्ति सदैव ते ।
पातयन्ति जनानन्यान् पीडयन्त्यपि सन्ततम्।। १६।।

टीका- प्रथम दिन की जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुये सदाचारी मुनि श्रेष्ठ ऐतरेय ने पूछा- हे देव ! मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त सभी सुविधाएँ प्राय: समान मात्रा में उपलब्ध हैं। पर उनमें कुछ तो पेट-प्रजनन भर तक सीमित रहकर कोल्हू के बैल के समान मरते-खपते पशुओं की तरह साँसें पूरी कर लेते हैं। कुछ पतित-तिरस्कृत बनते-प्रताड़नाएँ सहते-दिन गुजारते हैं। अपने लिये संकट खड़े करते और दूसरों को सदा गिराते-सताते रहते हैं।। १२-१६ ।।

ईदृशा अपि सन्त्यत्र जना ये स्वयमुन्नता: ।
भवन्त्यन्यान् यथाशक्ति सदैवोत्थापयन्त्यपि ।। १७।।
तारयन्ति स्वयं श्रेयो यश: सम्मानमेव च ।
सहयोगं महामर्त्या विन्दन्त्येते सुरोपमा: ।। १८।।
असंख्या: प्रेरणां तेभ्य: प्राप्नुवन्ति तथैव च।
पुरावृत्तकरास्तेषां गाथा: स्वर्णाक्षरेषु च ।। १९।।
लिखन्त्यस्या भिन्नतापा: कारणं किं च विद्यते ।
उच्यतां भवता देव! विषयेऽस्मिन्तु विस्तरात् ।। २०।।

टीका- किन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं, जो स्वयं ऊँचे उठते, दूसरों को उठाते, पार करते, श्रेय प्राप्त करते हैं। ऐसे देवोपम महामानवों को यश-सम्मान और सहयोग भी मिलता है। असंख्य, उनसे प्रेरणाएँ ग्रहण करते हैं। इतिहासकार उनकी गुण-गाथाएँ स्वर्णाक्षरों में लिखते हैं। इस भिन्नता का कारण क्या है? सो समझाकर कहिये।। १७-२० ।।

प्रश्नकर्ता ऋषि ने मनुष्य को तीन स्तरों में विभाजित किया है-

(१) वे, जो मनुष्य जन्म का भी पशु-स्तर तक ही प्रयोग करते हैं। विचार, भावना एवं विशेष-क्रिया शक्ति का प्रयोग ही नहीं करते। ढर्रे का जीवन भर जीते हैं।

(२) वे, जो मनुष्य को प्राप्त विशेषताओं के उपयोग के लिये लालायित तो रहते हैं, पर उन्हें उत्थान की जगह पतन की उल्टी दिशा में लगा देते हैं।

(३) तीसरे वे, जो मानवीय विशेषताओं का सही ढंग से प्रयोग करने में सफल हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता यह जानना चाहते हैं कि एक ही योनि के प्राणी मनुष्य में इतना अन्तर कैसे और क्यों हो जाता है ?

आश्वलायन उवाच-

तात ! मर्त्या: समाना: वै निर्मिता: प्रभुणा समे।
प्रिया: सर्वेऽपि तस्यात्र निर्विशेषं दयानिधे: ।। २१।।
सर्वेभ्यो व्यतरत् सोऽत्र समाना: सुविधा: प्रभु:।
मार्गं चिन्वन्ति मर्त्याश्चस्वेच्छया मार्गमाश्रिता:।। २२।।
यान्ति तत्रैव यत्रायं विरामं मार्ग एति च ।
उच्यन्ते स्वार्थिनस्त्वत्र पशवो नररूपिण: ।। २३।।
स्वार्थमेवानुगच्छन्ति नरास्ते तु प्रतिक्षणम् ।
अन्येषां सुखसौविध्ये सहयोगं न कुर्वते ।। २४।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राप्नुवन्ति य दैवैतद् निगिरन्ति च पूर्णत: ।
कष्टे कस्याऽपि नोदेति भावना प्रत्यहं चते।। २५।।
साहाय्यस्याऽपि नोदेति भावना प्रत्यहं च ते।
अन्विषन्ति परत्रेह निजास्ता: सुविधा: नरा:।।२६।।
सहानुभूतिमेतेऽपि नाप्नुवन्ति च कस्यचित् ।
जीवन्तो नीरसं मृत्योर्दिवसान् पूरयन्ति ते ।। २७।।

टीका- आश्वलायन बोले- हे तात ! भगवान् ने सभी मनुष्य समान बनाये हैं। उस दयानिधि को सभी पुत्र समान रूप से प्यारे हैं। सभी को उसने समान सुविधायें तथा परिस्थितियाँ भी प्रदान की हैं। लोग अपनी इच्छानुसार मार्ग चुनते हैं और जहाँ वह मार्ग जाता है, वहाँ जा पहुँचते हैं। स्वार्थ-परायणों को नर-पशु कहते हैं। वे अपने काम से काम रखते हैं। दूसरों की सुख-सुविधा में हाथ नहीं बँटाते। जो पाते हैं, निगलते रहते हैं। किसी के दु:ख में उन्हें सहानुभूति नहीं उपजती। सहायता करने की इच्छा भी नहीं होती। लोक और परलोक में अपनी ही सुविधायें खोजते हैं। ऐसों को किसी की सहानुभूति भी नहीं मिलती। फलत: वे एकाकी-नीरस जीवन जीते हुये मौत के दिन पूरे करते हैं।। २१-२७।।

दयालु परमपिता प्यार के नाते विकास के अवसर सभी को देता है। विकास के अवसरों का लाभ उठाकर जो व्यक्ति योग्यता बढ़ा लेते हैं, उन्हें वह महत्वपूर्ण कार्य योग्यताओं के आधार पर सौंपता है। विकास के अवसर और सौंपे गये कार्य, इन दोनों में अन्तर न कर पाने से मनुष्य समझता है, कि भगवान् किसी को अधिक अवसर देता है, किसी को कम।

मार्गों के लक्ष्य निश्चित हैं; पर मनुष्य चुनते समय मार्ग के लक्ष्य की अपेक्षा मार्गों की सुविधाओं को रुचि अनुसार चुन लेता है। जो मार्ग पकड़ लिया, उसी के गन्तव्य पर पहुँचना पड़ता है; फिर यह चाह महत्व नहीं रखती, कि कहाँ पहुँचना चाहते थे।

जो स्वार्थ तक ही सीमित हैं; वे नर-पशु हैं। पशु अपने शरीर निर्वाह, अपनी रक्षा और अपने वंश विस्तार से अधिक सोच नहीं पाते। मनुष्य सोचने की क्षमता रखता तो है; पर स्वार्थवश पशुओं की सीमा से आगे बढ़ता नहीं,इसलिये नर पशु कहलाता है।

स्वार्थी किसी अन्य से सहानुभूति नहीं बरत पाता, इसीलिये उसे भी वह नहीं मिलती। वह नीरस एकाकी जीवन जीता है।

येषां प्रवृद्धास्त्वाकांक्षा आतुरा विभवाय ये।
अहं त्वाप्त्यै स्पृहास्त्येषां कुबेरइवचाढ्यताम्।।२८।।
वृत्रहेव सुसामर्थ्यमधिगन्तुं सदैव तु ।
सज्जास्ते जीवितुं नैव सामान्यैरिव नागरै: ।। २९।।
दर्पाहंकारयोर्नैव विना ते तु प्रदर्शनम् ।
तृप्तिं नानुभवन्त्येव पुरुषाश्चेट्टशा द्रुतम् ।। ३०।।
अर्जितुं सम्पद: स्वस्य वर्च: स्थापयितुं समे ।
कुटुम्बस्याऽपि जायन्ते व्यग्रा लोकेषणारता:।। ३१।।

टीका- जिनकी महत्वाकांक्षायें अतिशय बढ़ी-चढ़ी हैं, जो बड़प्पन और वैभव बटोरने के लिये आतुर हैं, जिन्हें कुबेर सा धनी, इन्द्र सा समर्थ बनने की ललक है, वे औसत नागरिक का सामान्य जीवन जीने और सन्तोषपूर्वक रहने के लिये तैयार नहीं होते। दर्प और अहंकार प्रदर्शन किये बिना जिन्हें तृप्ति नहीं होती। ऐसे लोग जल्दी ही सम्पदा बटोरने और अपना तथा परिवार का वर्चस्व बढ़ाने के लिये आतुर हो उठते हैं।। २८-३१।।

नर पशुओं से भी गिरे नर पिशाचों की मनोदशा का वर्णन करते हुये यह चित्रण किया गया है। नर पशु सामान्य जीवन की ही कल्पना कर पाते हैं, इसलिये उनके स्वार्थ से सीमित हानियाँ होती हैं; परन्तु इसी स्वार्थी श्रेणी के वे लोग जिनकी महत्वाकांक्षायें बढ़ी-चढ़ी होती हैं, उनकी स्थिति नर-पशुओं से भिन्न होती है। ऐसे व्यक्तियों की-

(१) औसत नागरिक जीवन पंसद नहीं होता।

(२) बड़प्पन धन, वैभव बटोरने के लिये वे उचित ढंग, उचित माध्यमों की प्रतीक्षा नहीं कर पाते, उद्यत हो उठते हैं।

अस्या उत्कटलिप्सायां पूर्त्यै गृह्णन्ति ते तत:।
कुकर्माचरणं तत्र प्रवृत्तीरासुरी: सदा ।। ३२।।
मार्गमेतद् विना ते च नरा नानुभवन्ति तु ।
वृत्त्या सरलतयास्यातां सात्विकत्वं च सौम्यता।।३३।।
श्रमस्तत्र विशेष: स धैर्यवत्ता तथैव च ।
अल्पलाभ सुसन्तोषवृत्तिमत्ताऽप्यपेक्षिता ।। ३४।।
स्वीकुर्वन्ति न चेदं ते पुरुषा उद्धता इह ।
अन्यान् वञ्चयितुं लोकान्तथा पातयितुं पुन:।।३५।।
शोषणं पीडनं नृणां कर्तुं नैव कदाचन ।
संकोचं तेऽधिगच्छन्ति राक्षसा:क्रूरतां गता:।। ३६।।

टीका- इस उत्कट ललक लिप्सा की पूर्ति के लिये उन्हें कुकर्म करने और अपराधी असुर प्रवृत्तियाँ अपनाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रहता। सौम्य सात्विकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो सादगी के साथ ही निभती है। उसमें अधिक परिश्रमी, धैर्यवान् और स्वल्प सन्तोषी रहना पड़ता है। यह उन उद्धतों को स्वीकार्य नहीं होता। ऐसी दशा में दूसरों को ठगने, चूसने, गिराने और सताने में क्रूरता के धनी को कोई संकोच नहीं होता ।। ३२-३६ ।।

उद्धत स्थिति में ऐसे लोग कुकर्म और अपराधी मार्ग ही अपनाते हैं। उचित ढंग अपनाने का धैर्य न होने से वे शोषण की अनीति अपनाते हैं। सौम्यता की सम्पदा एकत्र नहीं कर पाने से क्रूरता के धनी बन जाते हैं, उसी का उपयोग करते हैं।

असुरा: दानवा: ह्येते दैत्या: नूनं नरा: समे।
पिशाचानां च वर्गेऽपि गण्यन्ते स्वार्थसौहृदा: ।। ३७ ।।
जुगुप्स्यास्ते भयाल्लोभाद्देवमर्त्यै: कदाचन ।
अनुनेया: परं रोष: सर्वेषां हृदि तान् प्रति ।। ३८ ।।
प्राप्यैवावसरं लोका: प्रतिशोधं भजन्ति च ।
मित्राण्यपि च शत्रुत्वं भजन्ते समये सति ।। ३९ ।।
धिक्तैवैतेषु सर्वत्र वर्षतीह प्रताड़नाम् ।
सहन्ते ते लभन्ते च दण्डं राजसमाजयो: ।। ४० ।।
नारक्यस्ताड़नास्तेभ्य: परलोके सुनिश्चिता: ।
अशान्तास्ते परान् सर्वानशान्तानेव कुर्वते ।। ४१ ।।

टीका- यह नर निशाच वर्ग है। इन्हें असुर या दैत्य-दानव भी कहते हैं। उन पर घृणा बरसती है। भय या लोभ से ही कोई उनकी चापलूसी भले करे। भीतर ही भीतर सभी को रोष रहता है। दाँव लगते ही लोग प्रतिशोध लेते हैं। मित्र भी अवसर मिलने पर शत्रु जैसा आचरण करते हैं। सर्वत्र उन पर धिक्कार बरसती है। वे आत्म-प्रताड़ना सहते हैं। समाज दण्ड भी भुगतने पड़ते हैं। परलोक में उनके लिये नारकीय प्रताड़नाएँ सुनिश्चित ही हैं। वे सदा अशान्त रहते हैं तथा औरों को भी अशान्त बनाते हैं।। ३७-४१ ।।

दुष्टों को सहयोग समर्थन भयवश मिलते हैं, भावनावश नहीं। इसीलिये मौका मिलते ही किसी अन्य भय या लोभ के कारण लोग उन्हें हानि पहुँचा देते हैं। उन्हें ऊपर दर्शाए कई रूपों में अपनी दुष्टता का दण्ड मिलता रहता है।

वर्गस्तृतीयोऽप्यत्रास्ति देवमानवरूपिणाम् ।
आकांक्षा लौकिकीन्त्यक्त्वा सामान्यैर्नागरैरिव ।। ४२ ।।
जीवनं निर्वहन्त्यत्र परिवारं लघुं निजम् ।
स्वावलम्बिनमित्यर्थं कर्वतेऽपि च संस्कृतम् ।। ४३ ।।
संग्रहेच्छां न गृह्णन्ति दर्पं नैव महत्वगम् ।
वाञ्छन्त्येवं प्रियां विप्रवृत्तिं स्वीकुर्वतामिह ।। ४४ ।।

टीका- तीसरा वर्ग देवमानवों का है। वे लौकिक महत्वाकांक्षाओं को विसर्जित करके औसत नागरिक स्तर का निर्वाह स्वीकार करते हैं। परिवार छोटा रखते और उसे स्वावलम्बी-सुसंस्कारी बनाते हैं। संग्रह की लालसा नहीं रखते। बड़प्पन का दर्प दिखाने की भी इच्छा नहीं रखते और स्वेच्छा से ब्राह्मण वृत्ति अपना लेते हैं ।। ४२-४४ ।।

देव मानव साधारण मनुष्यों में से ही उठकर आते हैं। हर व्यक्ति भगवान की-सृष्टा की साकार प्रतिमा है। जब उसे यह बोध नहीं रहता कि वह क्या है व यहाँ क्यों आया है तो प्रभु उसे बोध भी करा देते हैं। मनोकामनाओं के बन्धन से छुड़ाकर उसे नर-नारायण बना देते हैं।

नृणां परार्थकार्येषु बाधानैवोपजायते ।
निर्वाह: परमार्थश्च सिद्धयत: सार्धमेव तु ।। ४५ ।।
अनुभवन्ति च प्रत्यक्षमिदं ते देवमानवा: ।
गुणकर्मस्वभावानां स्तरं कुर्वन्ति प्रोन्नतम् ।। ४६ ।।
क्षणं नैव तु व्यर्थं ते ह्यापयन्ति सदैव च ।
विवेकस्याथ शौर्यस्य दायित्वस्याऽपि मानवा: ।। ४७ ।।
विश्वास भावनायाश्च शुभादर्शै: स्वजीवनम् ।
ओतं प्रोतं प्रकुर्वन्ति दिव्यां दृष्टिं श्रयन्तिच ।। ४८ ।।

टीका- श्रेष्ठ वृत्तियाँ अपना लेने के उपरान्त फिर मनुष्य को परमार्थ प्रयोजनों में संलग्न होने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। निर्वाह और परमार्थ भली प्रकार साथ-साथ निभता रह सकता है, इसे वे प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। अपने गुण-कर्म-स्वभाव का स्तर उठाते हैं। एक क्षण भी निरर्थक नहीं गुजारते। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी के आदर्शों से जीवन को ओत-प्रोत करते हैं तथा दिव्य दृष्टि प्राप्त करते हैं।। ४५-४८ ।।

सामान्य व्यक्ति को यह लगता है कि परमार्थ करेंगे, तो निर्वाह में कमी पड़ जायेगी। यह सामान्य वृत्तियों के लिये सही भी हो सकता है। श्रेष्ठ वृत्ति वालों का निर्वाह-व्यय बहुत सीमित रह जाता है तथा पुरुषार्थ बहुत बढ़ जाता है। उनका निर्वाह उनके पुरुषार्थ के एक छोटे से अंश से ही पूरा हो जाता है। शेष जो बचता है वह परमार्थ में ही लगाते हैं।

एक निष्ठ होकर उच्च उदेद्श्यों के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षण-क्षण का उपयोग करने वाले गुणों की दैवी सम्पदा को सच्ची सम्पदा समझने वालों को दिव्य दूर-दर्शिता अपनानी पड़ती है।

अत्र ते चात्मकल्याणं विश्वकल्याणमेव च ।
प्रयोजनं तु पश्यन्ति सिद्धमेवोभयं नराः ।। ४९।।
हृदि चोत्कृष्टताहेतोः श्रद्धा नित्यं च चिन्तने।
प्रज्ञोदेति शुभादर्शपक्षगा मंगलोन्मुखी ।। ५०।।
फलतश्चेट्टशा मर्त्या देवतुल्यप्रवृत्तयः ।
व्यवहारे स्वके लोकमानसस्य परिष्कृतेः ।। ५१।।
सत्प्रवृत्तिविकासस्य शुभे द्वेऽपि प्रयोजने ।
स्वीकुर्वन्ति चमुख्यत्वाद् वंशराष्ट्राभिपूजिताः।।५२।।

टीका- आदर्शवादी जीवन क्रम में वे आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण के दुहरे प्रयोजन सधते देखते हैं। अन्तःकरण में उत्कृष्टता के प्रति श्रद्धा — चिन्तन में आदर्शों की पक्षधर मंगलमयी प्रज्ञा उभरती है। फलतः ऐसी देवोपम प्रवृत्ति के लोग अपने कर्म-व्यवहार में लोकमानस के परिष्कार और सत्प्रवृत्ति संवर्धन के दो प्रयोजनों को प्रमुखता देते हैं और अपने वंश व राष्ट्र में पूजे जाते हैं।। ४९-५२।।

सामान्य दृष्टि वाले व्यक्ति परमार्थ परायण जीवन में व्यक्तिगत हानि देखते हैं। आत्मकल्याण की बात भी सोचते हैं तो संसार को मिथ्या कहकर केवल अपने भले की बात को महत्व देते हैं। महामानव स्तर के व्यक्ति ऐसा मार्ग पकड़ते हैं, जो आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण दोनों को एक साथ उपलब्ध कराता है। लोकमानस के परिष्कार के प्रयास से व्यक्ति स्वयं भी परिष्कृत होता रहता है। समाज में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने में उसके अन्दर भी वे पनपती हैं। इस प्रकार दोहरा लाभ मिल जाता है।

सञ्चितं ज्ञानमेतेषामभ्यस्तः पुण्यदायकः ।
परार्थः सततं कार्यरूपतामधिगच्छतः ।। ५३।।
आत्मसन्तोषमेतेऽतः प्राप्नुवन्ति तथैव तु।
सम्मानं सहयोगं च विपुलं ते भजन्त्यपि ।। ५४।।
अनुकम्पा च दैवी सा वर्षतीवात्र तेषु तु ।
त्रिविधानां सुयोगानां कारणादन्तरंगके ।। ५५।।
क्षेत्रे यान्ति महत्वं ते लभन्ते चोन्नति तथा।
संसारे प्रगतेर्मार्गे ते नराः अभियान्त्यलम् ।। ५६।।

टीका- उनका संचित सद्ज्ञान और अभ्यस्त पुण्य परमार्थ निरन्तर कार्यान्वित होता रहता है। फलतः वे असीम आत्म सन्तोष पाते हैं। लोक सम्मान और सहयोग उन्हें प्रचुर मात्रा में मिलता है। दैवी अनुकम्पा निरन्तर बरसती है। इन त्रिविध सुयोगों के कारण वे अन्तरंग क्षेत्र में महान् बनते - ऊँचे उठते और संसार क्षेत्र में प्रगति पथ पर आगे बढ़ते हैं ।। ५३-५६ ।।

सामान्य व्यक्ति अपने सद्गुणों को केवल अपने भले के लिए प्रयुक्त करने के मोह में उन्हें रोके रहता है। न वे प्रयोग में आने पाते हैं, न अपना प्रभाव दिखा पाते हैं। सत्पुरुषों को अपने ज्ञान और पुरुषार्थ को अविरल प्रयुक्त करने का अभ्यास होता है। इसी आधार पर उन्हें ऊपर वर्णित तीन अतिमहत्वपूर्ण विभूतियाँ मिलती रहती हैं। वे अन्तरंग और बाह्य जगत दोनों में सन्तोषजनक प्रगति करते और श्रेय सम्मान पाते हैं।

ईदृशा एव लोकाश्च महामानवसंज्ञकाः।
उच्यन्ते धन्यतां यान्ति स्वयं चान्यान्नरानपि।।५७।।
सम्पर्के चागतान् धन्यान् कुर्वते चन्दनस्य ते।
द्रुमा अन्यान् सुगन्धाञ्च यथावृक्षान्निरन्तरम्।।५८।।
तेषामेव जनानां च कारणात् सकलं स्वयम्।
वातावरणमित्यर्थं जायते गन्धवन्धुरम् ।। ५९।।
दुःखदग्धा अपीहैते गन्धं धूपइवोत्तमम् ।
प्रकाशमपि तन्वन्ति प्रदीप इव प्रोज्जवलम् ।। ६०।।
यस्मिन् काले तथा क्षेत्रे पुरुषाः ईदृशा भुवि।
जायन्ते तानि सर्वाणि धन्यतां यान्ति भूतले।।६१।।

टीका- इसी प्रकार के व्यक्तियों को महामानव कहते हैं। वे स्वयं धन्य बनते हैं। सम्पर्क वालों को चन्दन वृक्ष की तरह धन्य बनाते हैं। उनके कारण समूचा वातावरण महकने लगता है। जलने पर भी वे धूप की तरह सुगन्ध और दीप की तरह प्रकाश फैलाते हैं। जिस समय, क्षेत्र में ऐसे लोग जन्मते हैं, वह भी उनकी गतिविधियों के कारण धन्य बन जाता है।। ५७-६१।।

महामानव की उपमा सदैव से चन्दन वृक्ष से दी जाती रही है। सर्प जैसे दुष्ट प्राणी भी उनके संसर्ग में दुष्टता भूलकर शान्ति का अनुभव करते हैं। परन्तु उनके विष दोषों से सत्पुरुष नितान्त अप्रभावित रहते हैं। अपना प्रभाव-सुगन्ध, आसपास के वृक्षों तथा क्षेत्र पर डालते रहते हैं। कटने, घिसने, पिसने, जलने पर भी सुवास ही देते हैं। सभी उन्हें सम्मान सहित माथे से लगाते हैं, देवताओं पर चढ़ाते हैं। इसीलिये स्वयं धन्य होते हैं, सम्पर्क के व्यक्ति और क्षेत्र भी धन्य बन जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुनयो वयमत्रैवं महत्तापथमाश्रिताः ।
प्रतीयमानाश्चाभावैर्ग्रस्ताःअपि निरन्तरम् ।। ६२।।
सम्मानास्पदमायाता जनानामत एव तु ।
मार्ग एषोऽस्ति वै देवमानवानां सुनिश्चितम्।। ६३।।
कर्तव्यमिदमस्माकं मार्गोऽस्मिन् गन्तुमुन्मुखाः ।
जनाः सर्वे यथास्युस्ते तथा प्रेर्या निरन्तरम्।। ६४।।
सुखमुत्कर्षजन्यं ते लप्स्यन्ते वयमप्यलम् ।
श्रेयोऽधिकारिणः स्याम बहुमूल्यं यदुच्यत ।। ६५।।

टीका- हे मुनि वर्ग ! हम सब महानता के पथ पर चले हैं। अभावग्रस्त दीखने पर भी जन-जन के सम्मानास्पद बने हैं। देव जनों का यही मार्ग है। हमारा कर्तव्य है कि जन-जन को इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें। इससे उन्हें उत्कर्षजन्य सुख मिलेगा और हम श्रेयाधिकारी बनेंगे, जो बहुमूल्य कहा जाता है।। ६२-६५ ।।

महानता के पथ पर चलने वाले अभावग्रस्त जैसे दिखते भर हैं, होते नहीं। उनके पास दैवी सम्पदा की भारी पूँजी होती है, जिससे चाहें तो लौकिक सम्पदा भी पैदा की जा सकती है। जन-जन को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा वे ही दे सकते हैं, जो स्वयं उस मार्ग के नैष्ठिक साधक हों और जनता की श्रद्धा के पात्र भी हों। श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वालों को उन्नति का सुख मिलता है और चलाने वाले श्रेय पाते हैं।

महामानवसंज्ञानामुत्पादनमिहोदितम् ।
उद्यानं कल्पवृक्षाणां स्थापनं पुण्यदं यथा ।। ६६।।
प्रयासेऽस्मिन्च प्रत्येकदृष्ट्या स्वस्याऽपि सम्मतम्।
कल्याणं पुरुषैरन्यैः सहैव विश्वमंगलम् ।। ६७।।
स्वीकृतौ संयमस्याथ सन्तोषस्याऽपि हे जनाः।
विप्रवृतौ च सामर्थ्यमवशिष्यत एव यत् ।। ६८।।
सत्प्रवृत्तिविकासे च पुण्ये च परमार्थके ।
नियुञ्जन्ते तु ये तेऽत्र साधवः संस्मृता बुधैः।। ६९।।

टीका- महामानवों का उत्पादन इस विश्व में कल्प वृक्षों के उद्यान के लगाने जैसा पुण्यफलदायक है। उस प्रयास में हर दृष्टि से, हर किसी का साथ ही अपना भी कल्याण है, जिसे विश्वकल्याण कहना अधिक उपयुक्त है। संयम एवं सन्तोष की ब्राह्मण-वृत्ति अपनाने के उपरान्त जो सामर्थ्य बचती है उसे सत्प्रवृत्ति संवर्धन में लगाने, पुण्य परमार्थ में नियोजित करने वाले ही साधु कहलाते हैं।। ६६-६९ ।।

महामानवों को कल्पवृक्ष के समान कहा गया है। कल्पवृक्ष के सान्निध्य में हर व्यक्ति कामना पूर्ति का सुख पाता है। महामानवों के प्रयास से ही अभाव दूर होते हैं। इसीलिये महामानव बनाने, बढ़ाने का प्रयास सर्वोपरि परमार्थ है। संयम से बचाना और परमार्थ में लगाना ही साधुता है।

सतामेव च देशोऽयमस्माकं पथिशोभने ।
आत्मकल्याणके पादन्यासोऽस्माभिः कृतोऽत्र च।।७०।।
द्वितीयश्चरणोऽयं स्याद्देवमानवनिर्मितौ ।
संलग्नाः स्याम एवेह सुखं शान्तिरनेन च ।। ७१।।
स्यातां पन्थः प्रशस्तः स्यात्प्रगतेरपि सन्ततम्।
समृद्धेश्च नहि न्यूना योगाभ्यासादियं भुवि।। ७२।।
लोकानां साधनाया च स्वीकृत्योभयथा स्वतः।
प्रयोजनं सुसिद्धं स्यान्निर्बाधं मंगलोन्मुखम् ।। ७३।।

टीका- हमारा देश तो सन्तों का है ही। आत्म कल्याण के मार्ग पर कदम बढ़ा चुके, अब दूसरा चरण यह उठाना चाहिये कि संसार में देव मानवों के उत्पादन में जुट पड़ें। इसी से संसार की सुख-शान्ति बढ़ेगी। प्रगति और समृद्धि का पथ प्रशस्त होगा। लोक साधना किसी भी योगाभ्यास से कम नहीं है। इसे अपनाने पर दुहरा प्रयोजन निर्बाध रूप से सधता है। जिसका प्रवाह मंगलोन्मुख होता है।। ७०-७३ ।।

महानता के मार्ग पर दो चरणों में अग्रसर हुआ जाता है-आत्म कल्याण और जनकल्याण। लोक जीवन को ऊँचा उठाना ही लोक साधना है। इसी में ऊपर कहे दोनों चरण शामिल हैं। लोक साधना से वे सभी लाभ पाये जा सकते हैं, जो किसी उच्चस्तरीय योग साधना से प्राप्त होते हैं।

भारत सन्तों का देश रहा है, वेश से नहीं, प्रवृत्तियों से। ऋषिगण सारे विश्व में घूमकर जन-जन का मार्ग दर्शन करते थे। इसीलिये सारे विश्व में भारत को सन्तों का देश माना जाता रहा है। **'स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः'** अपने चरित्रों के प्रभाव से सारे विश्व के मानवों का शिक्षण करते रहने का उद्घोष ऋषियों का ही रहा है।

सन्त के वेश में तो सन्त गये ही हैं, व्यापारी एवं शासकों के रूप में भी इस देश से सन्त ही गये हैं। यदि कहीं अनीति करने वाले राजा मिले, तो उन्हें परास्त करके राज्य पर स्वयं अधिकार नहीं किया, उन्हीं में से किसी सत्पुरुष को राज्य सौंप दिया। श्रीराम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने बालि को मारकर सुग्रीव और रावण को मार कर विभीषण को राज्य दिया।

श्रीकृष्ण ने जीवन भर युद्ध किया, पर कहीं की सत्ता नहीं छुई । सत्पात्रों को ही अधिकार सौंपते रहे। परशुराम जी ने भी २१ बार दुष्टों के हाथ से राज्य छीन कर सज्जनों को सौंपा था। स्वयं कुछ नहीं लिया। सभी का प्रयास एक ही रहा है, कि सज्जनों की परिपाटी विश्व स्तर पर बनी रहे।

पुराणानामृषीणां तां दिव्यां साधुपरम्पराम्।
महामानवनिर्माणे रताः स्याम स्वयं तथा ।। ७४।।
प्रव्रज्या तीर्थयात्रायामपि तस्य कृते सदा।
अस्मादेव च लोकेषु पशुवृत्तिभ्यःएव ते ।। ७५।।
पैशाचिक कुकृत्येभ्यो विरतिः स्यात्पिशाचता।
क्षीणा स्यात्पशुशोधने महामानवतोदयः ।। ७६।।
तीर्थयात्राऽभिसम्बद्धप्रयोजनप्रसंगतः।
यथा समयमस्माकं गतयो विधयस्तथा ।। ७७।।
वर्द्धिता अधिकं स्युः सा लक्ष्यप्राप्तिर्यतो भवेत्।
यां विना भूतले सत्ययुगस्य स्यान्न सम्भवः।। ७८।।

टीका- हम ऋषियों की महान परम्परा अपना कर महामानवों के उत्पादन में निरत रहें और उसके लिये प्रव्रज्या की तीर्थ-यात्रा में निरत रहें। इसी से लोगों को पशु-प्रवृत्तियों और पैशाचिक उद्दण्डताओं से विरत होने का दबाव पड़ेगा। महामानव बढ़ते हैं, तो पशु सुधरते और पिशाच दबते हैं। तीर्थयात्रा के प्रयोजन में अब हमारी गतिविधियाँ समय को देखते हुये और भी अधिक बढ़ जानी चाहिये, ताकि हम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें, क्योंकि बिना इसके पृथ्वी पर सतयुग नहीं आ सकेगा।। ७४-७८।।

मानव की पशुता और पैशाचिकता को किसी दबाव या उपदेश से दूर नहीं किया जा सकता। उसे श्रेष्ठता का सशक्त वातावरण ही ठीक करता है और यह महामानवों की संख्या बढ़ने से ही सम्भव होता है। नरपशु उदाहरण से सुधर जाते हैं, पिशाचों पर दबाव देना पड़ता है, नियंत्रण में रखना पड़ता है। महामानव महामानवों के सम्पर्क से ही बनते हैं। इसीलिये महामानव तीर्थ यात्रा क्रम में सतत् सम्पर्क चलाते रहते हैं।

सत्पुरुषों के सान्निध्य से पशु स्तर के लोग सुधर जाते हैं, पिशाच स्तर वालों को शक्तिपूर्वक दबाना पड़ता है।

भगवान श्री राम की वन यात्रा प्रारम्भ हुई। अविकसित स्तर के आदिवासी जो केवल स्वार्थ में लगे रहते थे, वे सहज उत्साह में ही श्रेष्ठ मार्ग में लग गये। उनका स्वार्थ परायण होने का कारण उचित प्रेरणा-मार्गदर्शन का अभाव भर होता है। सत्पुरुषों के सान्निध्य से उनमें उत्साह जागता हैं केवट निषाद से लेकर कोल भील तक सज्जनता के आवरण में आ जाते हैं। किन्तु मारीच, सुबाहु, ताड़का, खरदूषण आदि को शक्ति प्रयोग से दबाना पड़ता है।

श्री कृष्ण के सान्निध्य में ग्वाल-बालों से लेकर मथुरावासियों तक में सज्जनता का संचार हुआ; परन्तु कंस, जरासंध, कौरवों आदि को बलपूर्वक ही दबाना पड़ा। महामानवों के बढ़ने से ही वातावरण बदलता है। जब जिस तरह का परिवर्तन आवश्यक हुआ तब उसी तरह के महामानव पैदा हुये हैं।

जब विदेशी आक्रान्ता स्वदेश में छा गये तो लगातार महाराणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, गुरु गोविन्द सिंह, बन्दा वैरागी जैसे शौर्य सम्पन्न सत्पुरुष पैदा हुये।

जन चेतना झंकृत करने के लिये चैतन्य,मीरा, सूर, तुलसी, नानक, दादू आदि की श्रृंखला उमड़ पड़ी।

भारत स्वतंत्रता के क्रम में तिलक, गोखले, रानाडे, गाँधी, सुभाष, नेहरू, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन और आजाद, भगतसिंह, सचीन जैसे सत्पुरुषों का क्रम बना, आगे भी यही क्रम चलना है।

सत्पुरुषों के उत्पादन और वातावरण परिष्कार के लिये श्रेष्ठ जनों द्वारा तीर्थ-यात्रा क्रम ही उपयोगी रहा है।

नारद जी इसी निमित्त सदा चलते रहते थे रुकते नहीं।

बुद्ध के परिव्राजक सतत् चलते रहने का संकल्प लेकर ही निकलते थे। दूर देशों तक उन्होंने हाथ में बोधिवृक्ष की डाल लेकर तीर्थ यात्राएँ कीं।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी 'भज गोविन्दम्' की धुन बोलते हुये देश के चारों कोने एक कर दिये थे।

चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन से सद्भाव जगाते बंगाल से ब्रज तक और फिर द्वारिका तक तीर्थ यात्रा क्रम से ही चले।

सन्त तुलसी दास जी ने तो सत्पुरुषों के समूह को चलता-फिरता तीर्थराज कहा है-"जो जग जंगम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीरथ राजू।" उसे सत्पुरुषों के उत्पादन का अमोघ सूत्र माना है।

मज्जन फल देखिय तत्काला ।
काक होंहि पिक, बकहु मराला।।

सत्पुरुषों के सान्निध्य से उस दिव्य तीर्थ में स्नान से कौए जैसी प्रवृत्ति के कठोर व्यक्ति कोयल जैसे मधुर स्वभाव के हो जाते हैं। बगुले जैसे छली हंस जैसे मुक्ता चुनने वाले नीर-क्षीर विवेक सम्पन्न हो जाते हैं। इसीलिये ऋषिगण तीर्थ यात्रा क्रम को अधिक बढ़ाने का संकल्प लेते है।

प्रश्नोत्तरेण चानेन तत्रत्यानामभून्महान् ।
सन्तोषस्तु सतां तस्माद् युगधर्मानुरूपतः ।। ७९।।
तीर्थयात्राऽभिसम्बद्धां पुण्यां तां च परम्पराम् ।
सोत्साहं तैर्विधातुं तु निश्चितं समुदायगैः ।। ८०।।
शान्तिपाठेन चाऽन्यान्यं वन्दनक्रियया समम्।
सत्संगोऽद्यतनस्तत्र समाप्तिं प्रययौ शुभः ।। ८१।।

टीका- इस प्रश्नोत्तर क्रम से सभी उपस्थित सन्त समुदाय को बड़ा सन्तोष हुआ। उनने युग धर्म की दृष्टि से तीर्थयात्रा की पुण्य परम्परा को और भी अधिक उत्साह के साथ चलाने का निश्चय किया। शान्ति पाठ और अभिवन्दन की प्रक्रिया के साथ आज का सन्त समागम विसर्जित हो गया।। ७९-८१।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः श्री आश्वलायन-ऐतरेय-सम्वादे "देवमानव-समीक्षा" इति प्रकरणो नाम ।। प्रथमोऽध्यायः।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

धर्म-विवेचन प्रकरण

द्वितीयस्य दिनस्यात्र संगमे मुनयः समे ।
मनीषिणो यथाकालं संगता उत्सुका भृशम् ।। १।।
मौद्गल्यः प्रश्नकर्त्ताऽभूद्ऋषिरद्यतनो महान् ।
पप्रच्छ भगवन् ह्यस्तु महामानवनिर्मितः ।। २।।
अभिवृद्धिरिह प्रोक्ते महिमाऽस्यास्तथोदिता ।
अनिवार्यत्वमतत्रैद् विषये ज्ञातुमस्ति च ।। ३।।
कान् व्रतान् पालयन् मर्त्यः देवता जायते ध्रुवम्।
महामानव आदेयं तेन किं त्याज्यमत्र च।। ४।।
विचार्यं किं विधेयं च किं किमेतत्तु विस्तरात्।
उच्यतां येन मर्त्याः स्युर्महामानवतां गताः ।। ५।।

आश्वलायन उवाच--

मौद्गल्यप्रमुखा मान्या ऋषयः संगतास्त्विह।
सर्वे शृण्वन्तु धर्मोऽस्ति केवलं ह्यवलम्बनम् ।। ६।।
तथाविधं यदाश्रित्य मानवाः शान्तिमाप्नुयुः ।
सुखं चापि वसेयुस्ते रक्षिताः सर्वतः स्वतः।। ७।।

टीका--दूसरे दिन के सन्त - समागम में सभी उत्सुक मुनि-मनीषी यथा समय उपस्थित हुये। आज के प्रश्नकर्ता मनीषी मौद्गल्य थे। उन्होंने पूछा--"हे भगवन्! कल महामानवों के उत्पादन-अभिवर्धन की महिमा और आवश्यकता बताई गई थी। उसे सुनकर यह जानने की उत्सुकता बढ़ी है कि किन व्रतों को अपनाने से मनुष्य देवमानव बनता है। उसे क्या छोड़ना पड़ता है और क्या अपनाना होता है ? क्या सोचना और क्या करना पड़ता है ? सो विस्तारपूर्वक कहें, जिससे मनुष्य महामानव बन सकें।। १- ५।।

आश्वलायन जी ने कहा-हे मौद्गल्य समेत सभी ऋषि वर्ग आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें। धर्म ही एक मात्र अवलम्बन है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य सुखशान्ति पाते, सुरक्षित रहते, आगे बढ़ते, और श्रेय पाते हैं।। ६-७।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्द्धन्ते चाऽधिगच्छन्ति श्रेयः सर्वविधं सदा ।
धर्मो येषां प्रियः सर्वं जगत् स्निह्यति तेषु च ।।८।।
बलिष्ठो जायतेह्यात्मा कृपा वर्षति च प्रभोः ।
त्यक्तो धर्मस्तु येनामुं त्यजन्त्येव जनाः समे ।। ९।।
स्वीकरोति च धर्मं यो नरः स्वागम्यते नरैः ।
धर्मं रक्षति यः साक्षाद्रक्षितः स्वयमेव सः ।। १०।।
विकरोति च धर्मं यो विकृतिं याति स स्वयम् ।
महत्वस्योपलब्धेर्ये नराः सन्तीच्छुकास्तु ते ।। ११।।
धारणां धर्मजां सर्वे गृहन्त्येव तथैव च ।
धर्मात्मभिः समं स्वं ते कुर्युश्चाचरणं सदा।। १२।।

टीका--जिन्हें धर्म प्रिय है वे वृद्धि को प्राप्त करते हैं और सब प्रकार के कल्याण को भी। उन्हें समस्त संसार प्यार करता है। उनकी आत्मा बलिष्ठ होती है और ईश्वर का अजस्र अनुग्रह उपलब्ध होता है। इसलिये महानता उपलब्ध करने के इच्छुकों को धर्म-धारणा अपनानी चाहिये और अपना आचरण धर्मात्माओं जैसा बनाना चाहिये। जिसने धर्म को छोड़ दिया, उसे सब छोड़ देते हैं। जो धर्म को अपनाता है उसे सब अपनाते हैं, जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी अपनी रक्षा होती है। जो धर्म को हराने का प्रयास करता है, वह स्वयं हार जाता है ।। ८-१२।।

धर्म-धारणा ही वह आदर्श है जिसे लक्ष्य मानकर महामानव स्वयं सफलता पाते एवं अनेकों के लिये दिशा धारा छोड़ जाते हैं। यदि स्वयं उदाहरण प्रस्तुत किया गया तो अन्य अनेकों सामान्यजन कैसे प्रेरणा ग्रहण करेंगे ? अनुकरणीय कर्तृत्व धर्म के सूत्रों को जीवन में उतार कर ही बन पड़ता है, आचरण को श्रेष्ठ, उत्कृष्ट आदर्शवादिता का पक्षधर बनाना पड़ता है। धर्म का आचरण महामानवों का स्वयं का जीवन तो धन्य बनाती ही है,मेंहदी पीसने वाले के हाथ स्वतः रंग जाने के समान उन्हें तो लाभान्वित करता ही है, समाज में सत्प्रवृत्तियों से भरा श्रेष्ठता का वातावरण भी बनता है।

धर्म को जो सही अर्थों में समझते हैं, वे अनावश्यक क्रियाकृत्यों परम्परागत मान्यताओं में स्वयं को नहीं उलझाते। धर्म के तत्वदर्शन को जीवन में उतारते हैं। स्वयं को आत्मबल सम्पन्न बनाकर अन्य अनेकों के लिये प्रेरणा पुञ्ज बनते हैं।

यश्चलेद्धर्ममार्गं च संस्थितोऽप्यत्र भूतले।
स्वर्गस्थैरिव देवैः स श्रेष्ठतां यास्यति स्वयम्।। १३।।
श्रुत्वा ध्यानेन तत्सर्वं विचार्याऽपि दृढ़ं ततः।
औत्सुक्यात्पुनरेवायं मौद्गल्यायन आह च।। १४ ।।

टीका--जो धर्म मार्ग पर चलेगा, वह इस धरती पर रहते हुये भी स्वर्ग में रहने वाले देवताओं की तरह श्रेष्ठ बनेगा। इस बात को सुनकर तथा विचार कर मौद्गल्य अपनी उत्सुकता प्रकट करते हुये बोले।। १३-१४।।

मौद्गल्यायन उवाच--

धर्माः अनेके सन्त्यत्र संसारे देव तत्र च ।
निर्धारणानि भिन्नानि समेषां निर्णयः कथम्।। १५।।
कर्तव्यश्चैषु किं ग्राह्यं त्याज्यं किं पुरुषेण च।
सन्देहेऽस्मिन् मतिस्तेन भ्रमतीव निरन्तरम् ।। १६।।

टीका--मौद्गल्यायन ने कहा-हे देव ! संसार में अनेकानेक धर्म हैं। सबके निर्धारणों में भिन्नता है। इनमें से किसे अपनाया जाय, किसे नहीं– इसका किस आधार पर निर्णय किया जाय ? इस संदेह में हमारी बुद्धि भ्रमित हो रही है।। १५-१६।।

अपनी स्वार्थ संकीर्णता और वर्ग विशेष के लिये गढ़ी गई मान्यतायें और परम्परायें धर्म के यथार्थ रूप को विकृत बना देती हैं और सम्प्रदायवाद को जन्म देती हैं। उसे पूर्ण नहीं समझना चाहिये।

आश्वालयन उवाच–

एक एव तु धर्मोऽस्ति भद्रा निर्धार्यतामिदम्।
सर्वेभ्यश्च समानः स कर्तव्यं व्यक्तिगं च तत्।।१७।।
सामाजिकं च दायित्वं मन्तव्यं पुरुषैरिह ।
औत्सुक्यं चिन्तयस्यैवं शालीन्यं व्यवहारगम्।। १८।।
चरित्रादर्शवादित्वं त्रयमेतत्समन्वितम् ।
उच्यते धर्मं इत्येवमृषिभिर्दिव्यदृष्टिभिः ।। १९।।

टीका--आश्वलायन ने कहा– भद्र ! धर्म एक ही है। वह सब मनुष्यों के लिये एक जैसा है। उसे व्यक्तिगत कर्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह समझा जाना चाहिये। दिव्य दृष्टि सम्पन्न ऋषि चिन्तन की उत्कृष्टता, चरित्र की आदर्शवादिता और व्यवहार की शालीनता के समन्वय को धर्म कहते हैं।। १७-१९।।

धर्म की गरिमा भावना क्षेत्र को दिशा देने के कारण सर्वोपरि मानी गयी है। व्यक्तित्व का गठन एवं परिष्कार धर्म के स्वरूप पर निर्भर है। धर्म मात्र एक एवं शाश्वत ही हो सकता है। मानवी अन्तःकरण में उच्चस्तरीय आस्था जमाना, विचारों में सदाशयता जोड़ना, जिसका लक्ष्य हो, वह सारे विश्ववासियों के लिये सार्वभौम रहेगा। समाजगत अथवा वर्ण जातिगत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विभाजनों के अनुरूप बदलेगा नहीं। यह भली भाँति समझ लिया जाना चाहिये कि भावना एवं विचारणा ही व्यक्ति की मौलिक सम्पदा एवं क्षमता है। इन्हीं का महत्व सर्वोच्च है। मानव के उत्थान पतन की भूमिका का सूत्र संचालन यहीं से होता है। यदि क्रिया-प्रक्रिया को नीति निष्ठा युक्त बनाने वाले धर्म का प्रारूप ही बदलने लगे तो नैतिकता समाज से लुप्त हो जायेगी। जहाँ धर्म है, वहीं नीति का, सदाचार का, श्रेष्ठता का निवास है। सम्प्रदायगत विभाजनों से सामान्य जनों को भ्रमित नहीं होना चाहिये अपितु धर्म के सार्वभौम शाश्वत स्वरूप को समझने, व्यवहार में उतारने का प्रयास करना चाहिये।

धर्म का उद्देश्य स्वत: पूरा हो जाता है, जब व्यक्ति उदात्त चिन्तन अपनाने, संकीर्ण स्वार्थपरता त्यागने एवं विभूतियों को समाज कल्याण हेतु समर्पित करने को उद्यत हो जाता है।

त्रिवेणी संगमं चैनमवगाहन्त एव ये ।
कायाकल्पमिवात्रैते लाभं विन्दन्ति मानव: ।। २०।।
ते मानवशरीरस्था देवा इव सदैव च।
श्रेय: सम्मानमित्यर्थं विन्दन्त्यानन्दमुत्तमम ।। २१।।
भूय एव वदाम्येतद् धर्म एक इहोदित:।
समानश्चापि सर्वेभ्यो मनुष्येभ्य: स वर्तते ।। २२।।

टीका--इस त्रिवेणी संगम का अवगाहन करने वाले काया-कल्प जैसा लाभ अर्जित करते हैं। उन्हें मनुष्य शरीर में रहते हुये भी देवताओं जैसा श्रेय, सम्मान और आनन्द मिलता है। मैं फिर कहता हूँ कि धर्म अनेक नहीं-एक है। वह सभी मनुष्य मात्र के लिये एक जैसा है।। २०-२२।।

ऋषि श्रेष्ठ ने उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्शवादी चरित्र एवं शालीनता युक्त व्यवहार के समन्वय को त्रिवेणी संगम के समान पवित्र मानते हुये धर्म के इस स्वरूप को अपनाने वाले का कायाकल्प होने की व्याख्या यहाँ की है। वास्तविक त्रिवेणी यही है जो हमारे अन्त:में विराजती है। मानस में "काक होहिं पिक बकहुँ मराला" के माध्यम से इसी की महत्ता बतायी गई है। धर्म धारणा का जितना अच्छा स्पष्टीकरण इन तीन सूत्रों के माध्यम से होता दिखायी देता है, ऐसा किसी अन्य व्याख्या में दृष्टिगोचर नहीं होता। मनुष्य मात्र, एक है, धर्म का स्वरूप शाश्वत है, वह भी एक है। गुण कर्म, स्वभाव में यदि परिवर्तन न हो तो धर्म सम्बन्धी सारे बाह्य उपकरण, शास्त्र-ग्रंथादि मात्र आडम्बर बन कर रह जाते हैं। जो इस तत्व दर्शन को हृदयंगम कर उन पर चलने का प्रयास करते हैं, वे निश्चित ही धर्म परायण कहे जा सकते हैं।

वर्तते शाश्वतो देवविहित: स सनातन: ।
सुयोजित: स मर्त्यस्य नूनमत्रान्तरात्मनि ।। २३।।
प्रियानुभूतिर्धर्म: स आत्मनो विद्यते तथा ।
जगन्मंगलमूलश्च निर्णय: परमात्मन: ।। २४।।
एक: स: स्वयमेवाऽपि पूर्ण: एव च विद्यते।
खण्डशो भवितुं नैव सोऽर्हतीत्येव चिन्त्यताम् ।। २५।।
कालानुसारं क्षेत्राणामनुसारमपीह च ।
वर्गानुसारं वा धर्मपारम्पर्यमनेकधा ।। २६।।
दृश्यते यत्र धर्म: स सम्प्रदायो मतोऽथवा ।
पक्ष एव मत: साक्षान्मर्त्यभेदकरोऽशुभ: ।। २७।।

टीका- वह शाश्वत, सनातन और ईश्वरकृत है। उसे मनुष्य की अन्तरात्मा में संजोया गया है। वस्तुत: धर्म तो आत्मा की पुकार है, ईश्वर का निर्णय है और विश्व-कल्याण का वास्तविक कारण है। वह एक और अपने में समग्र है। उसके खण्ड नहीं हो सकते हैं--यह दृढ़ता से समझ लो। क्षेत्र, समय, वर्ग के आधार पर जो धर्म परम्परायें चलती हैं वे सम्प्रदाय कहलाती हैं। मत, पक्ष तो अनेक हैं।। २३-२७।।

स्वसमाजानिवार्याणि वीक्ष्याभीष्टानि तत्र ते।
मूर्धन्या: पुरुषास्तेषामाविर्भावं व्यधु: पृथक् ।। २८।।
कालेन सह चैतेषु परिवर्तनमप्यलम् ।
जायते तत्र तत्रैव सम्प्रदायेषु तद्यत: ।। २९।।
परिष्कारकरामर्त्या महामानवसंज्ञका: ।
उत्पद्यन्ते प्रकुर्वन्ति जीर्णोद्धारमिवास्यते ।। ३०।।
यत्र यत्रानिवार्य: स्याद् वीक्ष्य तेषु च विक्रियाम्।
वस्त्रगेहेष्विवायान्ति सम्प्रदायेषु विक्रिया: ।। ३१।।
जीर्णोद्धारश्चलत्येषां स्वच्छताऽपि तथैव च ।
समाजस्योपयोगाय तदैवार्हन्ति वस्तुत: ।। ३२।।

टीका--अपने-अपने समाज की आवश्यकता देखते हुये मूर्धन्य जनों ने उनका आविर्भाव एवं प्रचलन किया है। समय बदलने के साथ-साथ उनमें हेर-फेर और सुधार-परिवर्तन होता रहता है। हर धर्म सम्प्रदाय में सुधारक उत्पन्न होते रहते हैं, जो ,जब, जहाँ टूट-फूट और विकृति दीखती है, तब उसकी मरम्मत करते रहते

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। वस्त्रों और मकानों की तरह सम्प्रदाय में भी विकृतियाँ प्रवेश करती हैं और उनकी सफाई मरम्मत चलती रहती है। तभी वास्तव में ये समाज के उपयोगी हो सकते हैं।। २८-३२।।

देव संस्कृति की यह विशेषता रही है कि समय-समय पर मनीषी अवतरित होते रहे हैं एवं युगानुकूल *परिस्थितियों* को दृष्टि में रखते हुये अपेक्षित सुधार परिवर्तन धर्म दर्शन में करते रहे हैं। वे यह भली प्रकार से जानते हैं कि मूलतत्व दर्शन एक होते हुए भी समय के अनुसार धर्म सम्प्रदायों के कलेवर में परिवर्तन करना पड़ सकता है। रुका हुआ पानी सड़ता व कीचड़ बनकर दुर्गन्ध फैलाता है। यदि प्रवाह न बनाया जाये तो विकृतियाँ समाज के वातावरण को दूषित कर सकती हैं। समय-समय पर पुनिरीक्षण एवं तर्क तथ्य, प्रमाणों के आधार पर विवेचना कर इसी लिये संस्कृति का परिशोधन किया जाता रहा है। यही एक महत्वपूर्ण कारण है कि अनेकों मत-मतान्तर होते हुये भी देव संस्कृति अब भी एक बनी हुई है। पूर्वाग्रहों की विडम्बना से वह सर्वथा मुक्त है।

सम्प्रदायस्य धर्मस्य भेदोऽस्माभिस्तु पूर्णतः।
ज्ञेय उद्गम एतेषामेक इत्यनुभूयताम् ।। ३३।।
एकस्यैव समुद्रस्य लहर्यस्ताः सुविस्तृताः ।
सूर्यस्यैकस्य विद्यन्ते किरणास्ते समेऽपि च ।। ३४।।
मेघवर्षोदिता नद्यो निर्झरा इव ते समे ।
तत्प्रवाहोऽभियात्यत्र जलधेर्दिशि सन्ततम्।। ३५।।

टीका--हमें सम्प्रदाय और धर्म का अन्तर समझना चाहिये। साथ ही यह भी अनुभव करना चाहिये कि उन सब का उद्गम एक है। वे एक ही समुद्र की अनेकानेक आकार-विस्तार वाली लहरें हैं। एक ही सूर्य की अनेक किरणें हैं। मेघ वर्षा की एक ही प्रक्रिया से वे नदी-निर्झरों की तरह जन्मे हैं और उन सबका प्रवाह समुद्र में जा मिलने की दिशा में समान रूप से प्रवाहित हो रहा है।। ३३-३५।।

इस तथ्य को न समझने वाले, अपनी-अपनी श्रेष्ठता का दर्प दिखाते हुये झगड़ते रहते हैं, पर सत्य तो कुछ और ही है।

मौद्गल्ययायन उवाय-

भवतः कृपया ज्ञातं महाप्राज्ञ ! समैरपि ।
अस्माभिर्धर्म आधारो महामानवनिर्मितौ ।। ३६।।
स्पष्टं जातं च धर्मोऽस्ति व्यक्तिकर्तव्यगस्तथा।
समाजोत्तरदायित्वस्थित आदर्शनिर्वहः ।। ३७।।
बोध्यतां लक्षणान्यत्र यान्यादाय तु साधकः।
तत्तद् धर्मादिनिष्ठोऽपि महतां जीवनेऽर्जयेत् ।। ३८।।

टीका--मौद्गल्य जी ने कहा-हे महाप्राज्ञ ! आपकी कृपा से हमने समझा कि महामानव बनने में धर्म का आधार बनता है। यह भी स्पष्ट हुआ कि धर्म व्यक्तिगत कर्त्तव्यों और सामाजिक उत्तारदायित्वों के आदर्शनिष्ठ निर्वाह को कहते हैं। कृपया यह और स्पष्ट करें, कि वे कौन से लक्षण है, जिन्हें किसी भी धर्म सम्प्रदाय का साधक जीवन में अपनाकर महानता अर्जित कर सकता है।। ३६-३८।।

आश्वलायन उवाच-

लक्षणानि दशैवाऽस्य धर्मस्योक्तानि मूर्धगैः ।
युग्मपञ्चकरूपे च ज्ञातुं शक्या नरैस्तु ते ।। ३९।।
प्रथमे सत्यमेतत्तु विवेकश्चापरे पुनः ।
कर्तव्यं संयमस्तत्र तृतीये त्वनुशासनम् ।। ४०।।
व्रतधारणमेतस्मिञ्चतुर्थे च पराक्रमः ।
स्नेहसौजन्यमेवापि पञ्चमे सहकारिता ।। ४१।।
परमार्थश्च गणितुं स शक्यः शक्यादशैव च।
प्रहरित्वेन ते मर्त्यगरिम्णो गदितुं भृशम् ।। ४२।।

टीका--आश्वलायन ने कहा- मूर्धन्यों ने धर्म के दस प्रधान लक्षण बतलाये हैं। इन्हें पाँच युग्मों में भी जाना जाता है। प्रथम युग्म में आते हैं-सत्य और विवेक। द्वितीय में संयम और कर्तव्य, तृतीय में अनुशासन और व्रत धारण, चतुर्थ में स्नेह-सौजन्य और पराक्रम तथा पंचम में सहकार और परमार्थ को गिना जा सकता है। इन दसों को मानवी गरिमा के प्रहरी दस दिक्पाल कहा जा सकता है।। ३९-४२।।

धर्म की परिभाषा को सत्राध्यक्ष ऋषि श्रेष्ठ आश्वलायन ने यहाँ जिन दस गुणों के रूप में स्पष्ट किया है; वह स्वयं में अद्भुत हैं। धर्मधारणा का मर्म समझने वाले सत्य, विवेक, संयम, कर्तव्य, अनुशासन, व्रत-धारण, स्नेह, सौजन्य, पराक्रम, सहकार एवं परमार्थ जैसे मानवोचित गुणों को ही प्रधानता देते एवं अन्यान्यों को इन्हें अपनाने की प्रेरणा देते हैं। अध्यात्म के नाम पर दुन्दुभि बजाने वाले बहुसंख्यक व्यक्ति इस विधा का 'क, ख, ग,' भी नहीं जानते एवं मात्र वेश बाह्याडम्बर तक स्वयं को सीमित रखकर समयक्षेप तो करते ही हैं, अन्य भोले व्यक्तियों के मन में धर्म के प्रति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अनास्था जमा देते हैं। समय-समय पर मनीषीगण इसीलिये अवतरित होते रहते हैं ताकि वे जनमानस में संव्याप्त भ्रान्तियाँ मिटा सकें एवं उन्हें धर्म के सही तत्वदर्शन का पक्षधर बना सकें।

धर्मस्यैषां दशानां तु लक्षणानां हि विवृतिः।
समन्वितेऽथ संक्षेपे वक्तुं पञ्चापि संभवाः ।। ४३।।
योगशास्त्र इमान्येव प्रकारान्तरतो बुधाः ।
यमादि नामतस्तत्र प्रोक्तान्यात्मशुभान्यलम्।। ४४।।
स्वीकृत्येमानि सिद्ध्येत्स संयमस्त्विन्द्रियोदितः ।
पञ्चानामपि तेषां च प्राणानां सिद्ध्यति स्वयम्।
उपप्राणैः सहैवात्र विद्या पञ्चाग्नि शब्दिता।।४५।।

टीका--इन धर्म के दस लक्षणों की व्याख्या संक्षेप में और समन्वित रूप में करनी हो, तो उन्हें पाँच युग्म के रूप में भी माना जा सकता है। योगशास्त्र में इन्हीं को प्रकारान्तर से पाँच यम और पाँच नियम कहा गया है, जो आत्म कल्याणकारी माने गये हैं। इन्हें अपनाने से पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों का संयम सधता है। इन्हें अपनाने के बाद ही पाँच प्राणों, पाँच उपप्राणों की पञ्चाग्नि विद्या सम्पन्न होती है।। ४३-४५।।

योगिनश्चैतदाश्रित्य कुर्वतेऽनावृतान् समान्।
पञ्चकोषान् सिद्धयस्ता ऋद्धयश्चैभिरेवतु ।। ४६।।
संगताः सन्ति चैतानि योगान् पंचविधांस्तथा।
साधितुं तानि पञ्चैव तपांस्यर्हन्ति च क्रमात्।।४७।।

टीका--योगी जन इन्हीं को अपना कर पाँच कोषों का अनावरण करते हैं। पाँच ऋद्धियाँ और पाँच सिद्धियाँ- इन्हीं पाँचों गुणों के साथ जुड़ी हैं। यही पाँच योग और पाँच तप साधने की आवश्यकता पूर्ण करते हैं।। ४६-४७।।

शिवस्याप्यथ रामस्य पञ्चायतनमुत्तमम् ।
बोधयन्तीदमेते च बराप्ताः पाण्डुपुत्रकाः।। ४८।।
पञ्चगव्यं पापनाशि पुण्यं पञ्चामृतं तथा ।
इमान्येव यतस्ते द्वे चैतेषां पोषके ध्रुवम् ।। ४९।।

टीका--इन्हीं को गीता के पाँच-पाण्डव, राम पंचायतन और शिव पंचायतन समझा जा सकता है। पापनाशक पंचगव्य और पुण्य संवर्धक पंचामृत भी इन्हीं को मानना चाहिये, क्योंकि वह इनके पोषक हैं।। ४८-४९।।

पञ्चैव धर्मपुण्यानि जीवने व्यावहारिके ।
व्यवहर्तुं परः प्रोक्तः पुरुषार्थो मनीषिभिः।। ५०।।
एतानि पालयन्त्यत्र जना ये प्रेरयन्त्यपि ।
पालितुं साधनान्येव वार्जयन्ति तथा शुभाम्।।५१।।
वातावृतिं विनिर्मान्ति श्रेयो गच्छन्ति ते जनाः।
लोकेऽथ परलोकेऽपि कृतकृत्या भवन्त्यलम् ।।५२।।

टीका--इन पाँच धर्म पुण्यों को जीवन में उतारना मनीषियों द्वारा परम पुरुषार्थ माना गया है। जो इन्हें पालते हैं, पालने की प्रेरणा देते हैं, साधन जुटाते और वातावरण बनाते हैं, वे लोक और परलोक में श्रेय पाते तथा हर दृष्टि से कृत-कृत्य हो जाते हैं।। ५०-५२।।

जीवन की सार्थकता इसी में है कि कर्तव्य धर्म निबाहते हुये बहते निर्झर की तरह जिया जाय। जहाँ तक हो सके, दूसरों के लिये सार्थक एवं स्वयं को आत्मिक प्रगति की दृष्टि से ऊँचा उठाने वाला गरिमा भरा जीवन जीना ही श्रेयस्कर एवं वरणीय है। महापुरुषों का जीवनक्रम इसकी साक्षी देता है कि उन्होंने धर्म के इन दस लक्षणों का परिपालन करके एक समग्र सार्थक जिन्दगी जी। वे न केवल स्वयं धन्य हुये, अन्य अनेकों के लिये प्रेरणा के प्रकाश स्तम्भ भी बने।

मौद्गल्य उवाच--

कृतकृत्या वयं देव! श्रुत्वा धर्मस्य लक्षणम्।
भवतः मूलभूतं तज्जीवनं सर्वदेहिनाम् ।। ५३।।
प्रत्यक्षे जीवने किन्तु धर्मस्यार्थास्तु स्वेच्छया।
प्रयोगाश्च कृताः कैश्चिन्मूलाधारातिदूरगाः।।५४।।
स्थितावेवं विधायां च महत्तोपार्जनादिषु ।
धर्मधारोपयोगः स कथमत्र तु सम्भवेत् ।। ५५।।

टीका--मौद्गल्य जी बोले- हे देव ! अपने धर्म के मूलभूत लक्षण, जो प्राणिमात्र का जीवन है, समझकर हम कृत-कृत्य हुये हैं, किन्तु प्रत्यक्ष जीवन में धर्म के मनमाने अर्थ प्रयोग किये गये हैं जो इन मूल आधारों से बहुत दूर हो गये हैं। ऐसी स्थिति में महानता के उपार्जन में धर्म-धारणा का उपयोग कैसे संभव है ? ।।५३-५५।।

आश्वलायन उवाच--

धर्मध्वजनि एवं च समाश्रित्य व्यधुर्बहुम् ।
अनाचारमपि स्वार्थधियाऽनर्थानपि व्यधुः।। ५६।।

टीका--आश्वलायन जी बोले--लोगों ने धर्म की आड़ में अनाचार भी बरते हैं। उसके चित्र-विचित्र अर्थ भी लगाये हैं।। ५६।।

मनुष्य का सहज स्वभाव है कि स्वार्थ की पक्षधर ऐसी मान्यता जो उसको लाभ पहुँचाती हो, पुष्टि स्वयं करे, अन्यान्यों से कराये ताकि बहुमत उसके पक्ष में हो। ऐसा बहुधा होता तब है, जब सभी उसके जैसे ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्तन के व्यक्ति समाज में विद्यमान हों एवं प्रतिकार हेतु आने का किसी में कोई साहस न हो।

ततोऽपि मूले धर्मस्य भेदो नैवोपजायते ।
मेघाक्रान्तो ग्रहाक्रान्तो भवत्येव दिवाकरः ।। ५७ ।।
तथापि सत्ता नैवास्य तस्मात्स्वल्पं विकम्पते।
गंगायां प्रपतन्त्यत्र मलिनानि जलान्यपि ।। ५८ ।।
जलचरादिकजीवानां विष्ठादेरपि जाह्नवी ।
पवित्रतां निजां नैव जहात्येषाऽन्यपावनी।। ५९ ।।
आरोहन्ति च कीटास्ते प्रतिमां परमात्मनः ।
न्यूनतां गौरवं नैव प्रयात्यस्यास्ततोऽपि च ।। ६० ।।
धर्मच्छायाश्रिता नूनमनाचाराः सदैव च ।
संशोध्याः परमेतेन महत्तायामथापि च ।। ६१ ।।
उपयोगेऽपि धर्मस्य सन्देहः क्रियतां नहि ।
महामानवतां यान्ति धर्मात्मानो नरास्त्विह ।। ६२ ।।

टीका--तो भी इससे धर्म के मूल स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। सूर्य पर बादल छाते और ग्रहण पड़ते रहते हैं, तो भी उसकी सत्ता स्वल्पमात्र भी विकम्पित नहीं होती। गंगा के प्रवाह में अनेकों गंदे स्त्रोतों से जल आकर उसमें मिलता रहता है तथा जलचर आदि जीवधारी भी उसमें गंदगी करते रहते हैं, तो भी उसकी पवित्रता में कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि उसमें स्वतः अन्यों को पवित्र करने की शक्ति है। देव-प्रतिमा पर कृमि-कीटक भी चढ़ जाते हैं, पर इससे उनकी गरिमा कम नहीं होती। धर्म की आड़ में चलने वाले अनाचार को सुधारा-बदला जाना चाहिये, पर उसकी महत्ता एवं उपयोगिता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। धर्म परायण ही महामानव बनते हैं।।५७-६२।।

ग्राह्या धर्मधृतिर्नूनं महामानवतां गतैः ।
पराभवन्ति चाधर्मा विपुलं वैभवं तथा ।। ६३ ।।
पराक्रमश्च नात्यर्थं तिष्ठतोऽस्व रिरक्षया ।
उच्छलन्नपि नश्येत्स जलबुद्बुदतां गतः ।। ६४ ।।
इन्धनानीव लोकेऽस्मिज्ज्वलन्त्यपि तत्क्षणात्।
भस्मतां यान्ति स्वल्पेन कालेनैते सदैव च ।। ६५ ।।

टीका--महामानवों को अनिवार्यतः धर्मधारणा अपनानी होती है। अधर्मी का पराभव होता है। उसका विपुल वैभव और पराक्रम भी उसकी रक्षा में देर तक नहीं टिकता। पानी में उठने वाले बबूले की तरह क्षण भर की उछल-कूद के उपरान्त उसका अन्त होते देखा जाता है। अधर्मी क्षण भर ईंधन की तरह जलते-उबलते दीखते हैं, पर उनके राख बनकर समाप्त होने में भी विलम्ब नहीं लगता।। ६३-६५ ।।

अधर्म का स्वरूप विराट प्रलयंकारी दीखता भर है। दीपक की लौ बुझने के पूर्व तेजी से लपक उठती है पर अन्ततः बुझकर धुआँ ही परिणिति बनकर रह जाता है। अनीति के पक्षधरों आक्रान्ताओं के पास चाहे कितना ही वैभव क्यों न हो, बल की दृष्टि से वे सम्पन्न भले ही क्यों न हों, हार उनकी होकर ही रहती है। यह एक अकाट्य-शाश्वत सिद्धान्त है एवं इसमें किसी को संशय नहीं होना चाहिये। विभिन्न अवतारों के प्राकट्य के समय अनीति हमेशा चरम सीमा पर रही है परन्तु छोटे-छोटे साधनों एवं पुरुषार्थ की दृष्टि से नगण्य से व्यक्तियों को अपना सहायक बनाकर उन्होंने अधर्म की त्रासदी को मिटाया एवं धर्म की स्थापना की है। इससे एक तथ्य स्पष्ट होता है कि अधर्म-अनीति-दमन से जूझने के लिये संघ शक्ति के जुटने भर की आवश्यकता है। वह नष्ट तो होगी ही, उसे झुकना पड़ेगा ही पर तब ही जब जन-जन का मन्यु जागे, उनमें चेतना उमगे।

व्यवस्था जगतश्चैषा कर्मणः फलमाश्रिता ।
चलत्यत्र तरोर्जन्मप्रौढता मध्यगो महान्।। ६६ ।।
कालो विलम्बरूपोऽयं व्यत्येत्येवं सुकर्मणाम्।
परिणामस्य प्राप्तौ स विलम्बः सम्भवत्यलम्।। ६७ ।।
कारका इव वर्षन्ति दुर्जनाः पीडयन्ति च ।
मर्यादां सकलां धान्यसम्पदामिव सर्वदा ।। ६८ ।।
ते स्वयं नष्टतां यान्ति द्रवीभूताः परं क्षुपाः।
प्ररोहन्ति पुनस्ते तु कथञ्चित्समये गते ।। ६९ ।।
विलम्बं वीक्ष्य गच्छेन्न भ्रमं कर्मफले नरः ।
हताशेन न भाव्यं च शुभमार्गानुयायिनः ।। ७० ।।

टीका--कर्मफल की सुनिश्चितता के आधार पर ही यह विश्व व्यवस्था चल रही है। वृक्ष को उगने से लेकर प्रौढ़ होने में देर लगती है। सत्कर्मों के सत्परिणाम मिलने में देर हो सकती है। इसी प्रकार दुर्जनों को ओलों की तरह बरसते और मर्यादाओं की फसल नष्ट करते देखा जाता है, पर ओले गलकर स्वयं नष्ट हो जाते हैं परन्तु उनके कारण टूटे हुये पौधे कुछ समय बाद फिर नये सिरे से पल्लवित होते देखे गये हैं। कर्मफला में विलम्ब लगते देखकर सन्मार्ग में प्रवृत्त किसी को भी न भ्रम में पड़ना चाहिये और न हताश होना चाहिये।। ६६-७० ।।

बीज को गलकर वृक्ष का रूप लेने की प्रक्रिया समय साध्य है। जो अधीरता बरतते हैं कर्मों का प्रतिफल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तुरन्त चाहते हैं, उन्हें निराश ही होना पड़ता है। इससे यह नहीं सोचना चाहिये कि दुष्कर्मों की प्रतिक्रिया नहीं होती, जो दूरदर्शी होते हैं, वे कर्म फल व्यवस्था में सच्चे आस्तिकवादी की तरह विश्वास रखते हैं।

धर्मधारणया मर्त्या जायन्त उन्नतास्तथा ।
महामानवतां तस्मादधिगच्छन्ति चान्ततः ।। ७१।।
केवलं धर्मचर्चां ते श्रुत्वाऽधीत्याऽपि वा पुनः।
सन्तुष्टा नैव जायन्ते कृतां वा धार्मिकीक्रियाम् ।।७२।।
पर्याप्तं न विजानन्ति परं तत्रानुशासनम् ।
विद्यते यद् विगृह्णन्ति तदैवैते स्वतस्तथा ।। ७३।।
नैवालस्यं प्रमादं वा भजन्ते ते मनागपि ।
निर्धारणानि कर्तुं च व्यवहारान्वितानि तु ।। ७४।।
ईदृशा एव मर्त्यास्तु महामानवतामिह ।
अञ्जसाऽऽसाद्य सार्थक्यं नयन्त्यत्र स्वजीवनम ।।७५।।

टीका- धर्म-धारणा अपनाकर मनुष्य ऊँचे उठते-आगे बढ़ते और महामानव कहलाते हैं। वे मात्र धर्म-चर्चा सुनने-पढ़ने से सन्तुष्ट नहीं होते और न धर्मानुष्ठानों के क्रिया-कृत्य को ही पर्याप्त मानते हैं, वरन् उसके जुड़े हुये अनुशासन को अपनाते और निर्धारणों को क्रियान्वित करने में आलस्य-प्रमाद नहीं बरतते। ऐसे लोग सहज ही महामानव बनने की जीवन-सार्थकता उपलब्ध करते हैं।। ७१-७५ ।।

निर्मातव्यं जगत्सर्वं महामानवरूपिभिः ।
कल्पवृक्षैः सुपूर्णं तन्नन्दनं वनमुत्तमम् ।। ७६।।
साधु विप्रस्तरा देवपुरुषा निर्वहन्तु च ।
उपार्जनस्य दायित्वमेतन्मर्त्यशुभावहम् ।। ७७।।
एतदर्थं व्यवस्थास्यात्स्वाध्यायस्याथ सन्ततम् ।
सत्संगस्य तथा सेवासाधनासंयमादिकाः ।। ७८।।
क्रियान्विता भवन्त्वत्र सत्प्रवृत्तय एव च।
धर्मस्यात्रमहत्वं च बोध्यं बोध्याः परेऽपि च।। ७९।।
परिणतीस्तस्य प्रत्यक्षास्तथ्यतर्कप्रमाणकैः ।
शक्याः कर्तुं प्रबुद्धैश्चेन्नराणां हृदयंगमाः ।। ८०।।

टीका--संसार को महामानवों के कल्पवृक्षों से हराभरा नन्दन वन बनाया जाना चाहिये। इस उपार्जन का मंगलमय उत्तरदायित्व साधु ब्राह्मण स्तर के देव-पुरुषों को उठाते रहना चाहिये। इसके लिये स्वाध्याय और सत्संग की व्यवस्था बनी रहनी चाहिये। साधना, संयम और सेवा की सत्प्रवृत्तियों को नियमित रूप से कार्यान्वित होते रहना चाहिये। धर्म का महत्व समझा और समझाया जाना चाहिये। उसके प्रत्यक्ष परिणामों के आधार पर हृदयंगम कराया जा सके, तो उसे सहज ही लोग अपनाने लगेंगे।। ७६-८०।।

अञ्जसैव तदा धर्ममनुयास्यन्ति तं जनाः ।
धर्मात्मानः स्वमाचारं प्रस्तुन्वन्तु नृसम्मुखे ।। ८१।।
उत्तमं चेज्जनाः सर्वेऽप्यनुयास्यन्ति तं तदा।
आचरन्ति च यच्छ्रेष्ठाः सामान्या अनुयान्तितम् ।।८२।।

टीका- धर्मात्मा अपना आचरण-उदाहरण लोगों के सम्मुख रखें तो लोग उसका अनुकरण करने लगेंगे। प्रतिभाशाली जो करते हैं, उसी का अनुकरण-अनुगमन होने लगता है।। ८१-८२।।

प्रारम्भ में थोड़े ही लोगों पर प्रभाव पड़े तो भी हर्ज नहीं। हर व्यक्ति अपनी बात मान ले, यह आवश्यक तो नहीं।

धार्मिका धर्ममाख्यान्तु परं तेन सहैव च ।
आचरन्तोऽपि निष्ठां स्वामादर्शे प्रस्तुवन्तु च।। ८३।।
आचरन्ति जना एवं येऽपि ते वस्तुतः समे।
धर्ममुत्तमरीत्याऽत्र सेवन्ते सत्यसंश्रयाः ।। ८४।।
लभन्ते पुण्येमेतेऽत्र जना धर्मप्रचारगम् ।
तस्य सेवाविधेश्चापि साधनाया उताऽपि च।। ८५।।
धर्मस्य चर्चया किञ्चित्सिद्ध्यं येन्नैव प्रयोजनम्।
वाचालयोपदेशस्य भाररूपतया भुवि ।। ८६।।

टीका- धर्म प्रेमी, धर्म का बखान-विवेचन भी करें; किन्तु साथ-साथ उसका आचरण करते हुये आदर्श के प्रति अपनी निष्ठा का प्रमाण-परिचय भी प्रस्तुत करें। जो ऐसा करते हैं वे धर्म की सच्ची सेवा करते हैं। धर्म प्रसार की महती सेवा-साधना का पुण्य और श्रेय ऐसों को ही मिलता है। धर्म की चर्चा करने मात्र से किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। वाचालतापूर्ण उपदेश भार-रूप ही होते है।। ८३- ८६।।

अतीतकालीन इतिहास महान धर्म प्रेमियों, सच्चे धर्म सेवियों से भरा पड़ा है।

कर्मणो वचनस्यात्र भिन्नत्वादुपहास्यताम् ।
उपदेष्टा व्रजत्यत्राऽविश्वासो वर्द्धतेऽपि च।। ८७।।
महामानवतां यातुं धर्मस्याचरणं तथा ।
धर्मविस्तरजं कार्यविधिं चोभयपक्षगम् ।। ८८।।
श्रुत्वाऽस्य स्वीकृतेर्दिव्यः परामर्शः सुखावहः ।
श्रोतृणां तत्र सोऽभूच्च भविष्यत्समये समैः।। ८९।।
अत्र कार्य विधौ ध्यानं दातु चाऽधिकमेव तु ।
निश्चितं स्वप्रयासे च क्रमो नव्यः सुयोजितः।।९०।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरण्यकं स्वकं दिव्यं सर्वे स्थापयितुं तथा ।
प्रयोजनमिदं कृत्वा तीर्थयात्राऽभिनिर्गमे ।। ९१।।
उपक्रमाय सोत्साहं योजना विस्तृता निजे ।
चित्ते निर्मातुमारब्धा व्यधुः स्फुरितचेतनाः ।। ९२।।

टीका- वचन और क्रम की भिन्नता रखने पर उपहास होता है, अविश्वास बढ़ता है। महामानव बनने के लिये धर्माचरण और धर्म विस्तार की उभयपक्षीय कार्य विधि अपनाने का परामर्श सभी श्रोता जनों को बहुत सुहाया। उनने भविष्य में इस ओर अधिकाधिक ध्यान देने और प्रयास करने का निश्चय किया। इस सम्बन्ध में अब तक के अपने प्रयास में नई तत्परता के समावेश का नया कार्यक्रम बनाया। वे आरण्यक चलाने और तीर्थयात्रा पर इस प्रयोजन के लिये निकलने की उत्साहपूर्वक तैयारी के लिये सुविस्तृत योजनायें अपने-अपने मन में बनाने लगे; क्योंकि उनकी चेतना जग गई थी।।८७-९२।।

समये च समाप्तेऽयं सत्संगोऽद्यतनस्ततः ।
वातावृतौ शुभोत्साहपूर्णायां विधिपूर्वकम् ।। ९३।।
समाप्तस्तेऽन्वभवन् सर्वे महामानवतैव च ।
लब्धव्या पुरुषैरेवं भवेत्स्वर्गः स्वयं धरा ।। ९४।।

टीका- समय समाप्त होने पर आज का सत्संग उत्साह भरे वातावरण में विधिवत् समाप्त हो गया। सभी ने अनुभव किया कि महामानव बनना मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है, उसी से पृथ्वी स्वयं स्वर्ग बन जायेगी।। ९३-९४।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्री आश्वलायन-मौद्गल्य ऋषिसम्वादे "धर्म विवेचन" इति प्रकरणो नाम
।। द्वितीयोऽध्यायः ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

सत्य-विवेक प्रकरण

दिनं तृतीयमद्याभूत्सत्संगस्य यथाविधि ।
यथापूर्वं शुभोत्साहयुक्तवातावृतौ पुनः ।। १।।
गोष्ठ्या अद्यतनायाश्च शुभारम्भो ह्यभूदयम्।
आप्तुममृतवर्षां तु उत्सुकाः सर्व एव हि ।। २।।
कौण्डिन्यः प्रश्नकर्ता स पप्रच्छाद्यतनो मुनिः ।
पूर्वोक्तानां तु युग्मानां विषये बुद्धिमत्तमः ।। ३।।

टीका- सन्त समागम का आज तीसरा दिन था। नित्य की भाँति उत्साह भरे वातावरण में आज की ज्ञान गोष्ठी का शुभारम्भ फिर हुआ। सभी इस अमृतवर्षा को अधिक अपना लेने के लिये उत्सुक हो रहे थे। आज के प्रश्नकर्त्ता बुद्धिमान कौण्डिन्य मुनि ने पूर्वोक्त युग्मों के सम्बन्ध में पूछा-।। १-३।।

कौण्डिन्य उवाच-

संगतिः काऽनयोरत्र देव ! सत्यविवेकयोः ।
तयोर्युग्मेन धर्मस्य पञ्चमस्य कथं शुभा ।। ४।।
क्रियते चरणस्यैषापूर्तिरेतद् विविच्यताम् ।
भवता विस्तराद् येन धर्मरूपं नरो व्रजेत ।। ५।।

टीका- कौण्डिन्य बोले- हे देव ! सत्य और विवेक की परस्पर क्या संगति है ? उन दोनों का युग्म किस प्रकार धर्म के पाँच चरणों में से एक की पूर्ति करता है, सो उसका विस्तार पूर्वक विवेचन करें, जिससे धर्म का रूप मनुष्य समझ सकें।। ४-५।।

पिछले दिनों महामानवों के विकास के लिये धर्म की आवश्यकता तथा धर्म के ऐसे लक्षण बतलाये गये थे, जो प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय में समान रूप से विद्यमान हैं। उन्हीं लक्षणों में से प्रथम युग्म का विस्तार करने का आग्रह विचारवान् श्रोताओं की ओर से किया गया।

आश्वलायन उवाच-

सत्यस्यार्थस्तु श्रेयोऽस्ति यदाचारे निगूहितम् ।
तिष्ठति, भ्रमस्वार्थौ तौ स दुराग्रह एव च ।। ६।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वरूपं नौत्सहन्ते ते प्रत्यक्षं तस्य निर्गतम् ।
भित्वा चावरणं गन्तुं याथार्थ्यं दूरदर्शिनः ।। ७।।
वैपरीत्येन वाप्येतत्सत्यमास्ते तिरोहितम् ।
मान्यतानां विभिन्नानां पारम्पर्यस्यकारणैः ।। ८।।
भिन्नस्याज्ञानहेतोश्च सत्यं भिन्नं प्रभासते ।
अतो विवेकपूर्वं च गहनं परिचीयते ।। ९।।

टीका--आश्वलायन ने कहा- सत्य का अर्थ-श्रेय। वह आवरणों से ढका रहता है। भ्रम, स्वार्थ और आग्रह उसका यथार्थ स्वरूप प्रकट नहीं होने देते। दूरदर्शिता से इन आवरणों को वेध कर यथार्थता तक पहुँचने की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न स्तरों की मान्यताओं, परम्पराओं के कारण सत्य आवरणों में छिपा होता है। अज्ञान के कारण भी कुछ से कुछ भासता है, इसलिये विवेकपूर्वक गहराई में उतरना पड़ता है।। ६-९।।

सत्य का स्वरूप छिपाने वाले तीन आवरण भ्रम, स्वार्थ और आग्रह कहे गये। भ्रम के अन्तर्गत जानकारी का अभाव, एकांगी जानकारी, गलतफहमियाँ एवं तत्काल के आर्कषण आदि प्रकरण आते हैं।

स्वार्थ में औचित्य को छोड़कर अपने-पराये का भाव, व्यापक हित की जगह सीमित का लाभ, दूसरे की श्रम प्रतिभा जैसी विभूतियों पर अपनी छाप डालना आदि सम्मिलित रहते हैं। इसे संकीर्णता भी कह सकते हैं।

आग्रह के अन्तर्गत, परम्परावश, अभ्यासवश, भयवश, प्रमादवश, अहंकारवश दूसरे पक्ष को न देखने की प्रवृत्तियाँ आती हैं। इसे दुराग्रह भी कह सकते हैं।

यह सभी सत्य से दूर रखने वाली वृत्तियाँ हैं, अत: विवेक का अभ्यास ही इनको भेदकर सत्य का बोध कराता है।

सत्य प्रत्यक्ष दृश्यमान होते हुए भी मायाजाल में उलझा होने के कारण सामान्यतया प्रकाश में नहीं आ पाता। यह एक विडम्बना भी है और विवेकवानों के लिए एक परीक्षा भी।

यह सत्य है, कि भारतीय संस्कृति देव संस्कृति है और हमारा वास्तविक हित उसी के अनुगमन से होगा पर पश्चिमी भौतिकवादी भोगवाद की लहर हमें अधिक उपयोगी दिखाई देती है, यह एक भ्रम है।

यह सत्य है कि हर घर में बेटे भी हैं और बेटियाँ भी। बेटियों के सम्बन्ध का प्रश्न आता है, तो लोग बन जाते हैं सिद्धान्तवादी। पर जब बेटे का प्रश्न आता है तब दहेज की आकांक्षा करने लगते हैं। सत्य की यह उपेक्षा स्वार्थजन्य है।

यह सत्य है कि परिवार निर्माण में नारी की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है, इसलिये उसे योग्यता तथा सम्मान दोनों दिये जाने चाहिये। किन्तु परम्परागत आग्रह के कारण उसे मानते हुये भी क्रियान्वित नहीं किया जाता। यह सत्य पर आग्रह का आवरण है।

सत्यभागं वचः सत्यं मन्यते यादृशं श्रुतम् ।
दृष्टं वा विद्यते यच्च कर्तव्यं तद्विनाछलम्।।१०।।
यथार्थतोऽस्य प्राकट्यं सत्यमत्राऽभिधीयते ।
सीमामिमां समुल्लंघ्य यान्त्यग्रे तत्वदर्शिनः ।। ११।।
सत्यं यथार्थतैवेति श्रेयो भावत्वमेव च ।
सद्भावभरितश्रेयः साधनायै च कर्म यत् ।। १२।।
कथितं च वचः सत्यं विद्यते तत्परं भवेत् ।
बालबोधाय च प्रोक्तमलंकारधियाऽपि वा ।। १३।।

टीका- सत्य वचन को सत्य का एक अंग मानते हैं। जैसा सुना-देखा या किया जाता है, उसे बिना छल किये यथार्थ रूप में प्रकट कर देना सत्य का मोटा स्वरूप है, पर तत्वदर्शी लोग इस परिधि से आगे जाते हैं कि यथार्थता ही सत्य है। श्रेय भावना सत्य है। सद्भावनापूर्ण श्रेय साधना के लिये किये गये कृत्य और कहे गये वचन भी सत्य हैं। भले ही उन्हें बालबोध के लिये आलंकारिक ढंग से हेर-फेर करके भी कहा गया हो।। १०-१३।।

सत्य का मोटा स्वरूप सबकी समझ में सहज ही आ जाता है । सत्य का सूक्ष्म स्वरूप कठिनाई से समझ में आता है। दोनों समझे बिना सत्य अधूरा रह जाता है। तत्वदर्शी सूक्ष्म तत्व को अधिक महत्व देते हैं, इसीलिये विवेक पूर्वक सत्य की उस गहराई तक जाने का आग्रह करते हैं।

कहानीकार और कवि के कथन में सत्य कम, कल्पना अधिक होती है। पर वे झूठे नहीं कहलाते। अपनी कल्पना के आधार पर जीवन के उन सत्यों को स्पष्ट कर देते हैं, जिसे वैसे समझना या समझाना कठिन होता है।

श्रेष्ठ चिकित्सक परिस्थितियाँ देखकर रोगी को कभी उसके छोटे असंयम से भी बड़े नुकसान की बात कहकर भयभीत कर देते हैं। कभी कठिन रोगों को भी सामान्य कह कर उनका मनोबल बनाये रखते हैं। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब उद्देश्य और सद्भाव को देखते हुये झूठ की सीमा में नहीं आता।

मनोवैज्ञानिक मनोरोगियों के साथ तथा कुशल अभिभावक और शिक्षक बालकों के साथ ढेरों बनावटी शब्द प्रयोग में लाते हैं पर वे सभी श्रेय तत्व के नाते श्रेष्ठ सत्य माने जाते हैं।

सम्बद्धताऽनयोरस्ति मुने सत्यविवेकयोः ।
परस्परं भवेदेको यत्र तत्रैव चापरः ।। १४ ।।
विवेकेनैव सत्यस्य स्वरूपं ज्ञायते तथा ।
तदाश्रित्यैव सत्यस्य प्राप्त्यै च प्रक्रमेन्नरः ।। १५ ।।
ग्रस्तः पूर्वाग्रहैर्मर्त्यो भवत्येव स्वभावतः ।
पारम्पर्यस्य वंशस्य वातावरणकस्य च ।। १६ ।।
संस्काराणां च हेतोस्ता मान्यतास्तस्य व्यक्तिगाः ।
स्वभावं यान्ति ता एव सर्वस्वं मन्यते च सः ।। १७ ।।

टीका- सत्य और विवेक परस्पर जुड़े हुये हैं। जहाँ एक होगा वहाँ दूसरा भी रहेगा। विवेक से सत्य का स्वरूप समझा और उसके सहारे सत्य की प्राप्ति के लिये आगे बढ़ा जाता है। मनुष्य स्वभाव से ही पूर्वाग्रहों से ग्रसित होता है। वंश परम्परा, वातावरण और संचित कुसंस्कारों के कारण उसकी कुछ अपनी मान्यताएँ और आदतें बन जाती हैं। वह उन्हीं को सब कुछ मान लेता है।। १४-१७ ।।

सत्य और विवेक एक सिक्के के दो पहलू हैं और एक गाड़ी के दो पहियों की तरह हैं। सत्य के लिये विवेक का सहारा चाहिये तथा विवेक की सार्थकता सत्य तक पहुँचने में ही है। मनुष्य में पूर्वाग्रह के तीन कारण बतलाये गये हैं-

(१) वंश परम्परा के आधार पर कुछ मान्यताएँ बन जाती हैं। जातिगत छोटे-बड़े की मान्यता वंश परम्परा के आधार पर है। अपने से भिन्न वंश के श्रेष्ठ गुण वालों को भी अपने से हीन सिद्ध करने का मन इसी आधार पर होता है। अनेक अलन-चलन कुरीतियाँ यह सब वंश परम्परा पर आधारित हैं।

(२) वातावरण जन्य पूर्वाग्रह भी सत्य से दूर रखे रहते हैं। जो सुख में पले हैं, वे किसी दुखी या भूखे की मजबूरी नहीं समझ पाते। दरिद्रता में पले व्यक्ति सम्पन्नों के उत्तरदायित्वों के बारे में कोई सद्भाव नहीं रखते। भीड़ में सामूहिक लहर उठती है, तो समझदार भी तोड़-फोड़ करने लगते हैं। उस माहौल के बाहर आते ही विचार काम करने लगता है।

(३) संचित संस्कार-अभ्यास। यह बिल्कुल व्यक्तिगत आग्रह होता है। जिसे व्यंग्य करने का अभ्यास है, उसे यह नहीं समझ पड़ता, कि लोग अकारण बुरा क्यों मान जाते हैं। खर्चीले हाथ वाला मितव्ययिता के लाभ नहीं समझना चाहता और कंजूस उदारता से बचकर रहना चाहता है। आलसी श्रम की महत्ता को, क्रोधी शालीन व्यवहार को, आवारा समय के महत्व को झुठलाते ही रहना चाहते हैं, इस स्तर के सभी अभ्यासगत पूर्वाग्रह किसी न किसी सत्य को नजरंदाज करते रहते हैं।

प्रतिपादनमन्येषां तथा तेऽनुभवा अपि ।
अयोग्या हि प्रतीयन्ते तेन चाग्रहिणो नराः ।। १८ ।।
सत्यं स्वमान्यतां यावन्मन्यते सीमितं परम् ।
अपेक्ष्याऽन्योक्तिव्याख्यैव ज्ञातुं रूपं च तस्यतु ।। १९ ।।
विवेकिनो भवन्त्येव न्यायाधीशा इव स्वतः ।
निष्पक्षा आग्रहैर्हीना औचित्यां श्रयिणोऽभयाः ।। २० ।।
स्वीकारे च त्रुटेः स्वस्या संकोचं नाश्रयन्ति ते ।
नाग्रहश्च समग्रस्य स्वस्य तेषां मतस्य च ।। २१ ।।

टीका- ऐसे व्यक्ति को दूसरों के प्रतिपादन और अनुभव गलत प्रतीत होते हैं। ऐसी दशा में आग्रही मनुष्य अपनी ही मान्यता तक सत्य को सीमित मानता है। जब कि उसका समग्र स्वरूप जानने के लिये अन्यान्य कथनों पर विचार किये जाने की आवश्यकता है। विवेकशील न्यायाधीश की तरह निष्पक्ष होते हैं, आग्रही नहीं होते। जहाँ जितना औचित्य परिलक्षित होता है, उसे बिना संकोच के स्वीकार करते हैं। ऐसे लोगों को न भूल मानने में संकोच होता है और न अपने मत के समग्र होने का ही आग्रह होता है।। १८-२१ ।।

मानवी अचेतन कुछ इस प्रकार ढला हुआ है कि अपने मत के पक्ष में वह अनेकों प्रमाण जुटा लेता है एवं दूसरों के सही प्रतीत हो रहे मन्तव्यों को भी सहज स्वीकारता नहीं। किसी भी तथ्य को समझने के लिये उसके हर पहलू पर विचार किया जाना चाहिये। एकाँगी चिन्तन तो संकीर्ण बुद्धि की तरह है। कुएँ में बैठे मेंढक को अपने चारों ओर की दुनिया ही सब कुछ लगती है। ऐसे कूपमण्डूक मनुष्यों में भी विद्यमान होते हैं, जो अपने इक्कड़पन, सोचने की पूर्वाग्रहयुक्त आदत के कारण अन्यान्य व्यक्तियों के मतों को हँसी में उड़ा देते हैं, भले ही प्रकारान्तर से वह उनके हित में ही क्यों न जाती हो। जो समझदार होते हैं, वे इतने विनम्र होते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं कि गलती बतायी जाने पर क्षुब्ध नहीं होते अपितु ऐसों के प्रति कृतज्ञता ही जताते हैं। सर्वांगपूर्ण प्रगति का रहस्य ही यही है कि अपने को पूरी तरह खाली रखा जाय, पक्ष एवं विपक्ष दोनों मतों को सुनने समझने का विवेक विकसित किया जाय ।

व्यक्ति को पता नहीं रहता कि वह स्वयं किन-किन पूर्वाग्रहों के प्रभाव में है। इसलिये सत्य शोध करने के इच्छुक को विभिन्न पक्षों से विचार करने वाले विचारकों के मतों को भी अध्ययन करने और संतुलित निष्कर्ष निकालने का अभ्यास करना चाहिये। विवेक इसी प्रकार तीव्र होता है। न्यायाधीश का न्याय और विज्ञान की प्रगति इसी आधार पर संभव हुई है। इसीलिये सत्पुरुष परामर्श लेने तथा उदारतापूर्वक भूल सुधार करने के अभ्यस्त होते हैं।

यथार्थं च परिज्ञातुं तर्कं तथ्यं प्रमाणकम् ।
अन्वेष्टुमुभयोः पक्षे विचारः कर्तुमिष्यते ।। २२।।
तदैव शक्यते ज्ञातुं विद्यते का यथार्थता ।
प्रयुञ्जते बुद्धिमेनां न्यायाधीशा विशेषतः ।। २३।।
श्रृण्वन्त्युभयवार्तां ते पक्षयोः कुर्वते तथा ।
यत्नं तथ्यं तल्लब्धुमावेशेऽज्ञानतोऽपि वा ।। २४।।
बलाऽपि च यत्प्रोक्तं पक्षपात धिया नहि ।
तत्र ध्यानं प्रकुर्वन्ति तत्वजिज्ञासवः क्वचित् ।। २५।।
गृह्यते नीतिरेषैव यदा तर्हि तु सम्भवम् ।
यथार्थता परिज्ञानं सत्यं द्रष्टुं च वस्तुतः ।। २६।।

टीका- यथार्थता को जानने के लिये तर्क, तथ्य और प्रमाण ढूँढने का उभयपक्षीय प्रतिवेदन पर विचार करना पड़ता है। तब कहीं पता चलता है कि यथार्थता क्या है? न्यायाधीश इसी बुद्धि का प्रयोग करते हैं। दोनों पक्षों की बात सुनते हैं। तथ्य तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। आवेश या अज्ञान में तथा बलपूर्वक पक्षपात के कारण जो कहा गया है, तत्वजिज्ञासु उस पर ध्यान नहीं देते। यही नीति अपनाने पर यथार्थता समझ सकना संभव होता है और सत्य के दर्शन होते हैं।। २२-२६।।

सत्य तक पहुँचने के लिये न्यायाधीश की तरह विभिन्न पक्षों के तर्क,तथ्य, प्रमाण सुनने समझने का सुझाव ऋषि ने दिया है। परन्तु सावधान भी किया है कि तीन स्थिति वालों के कथन को निर्णय का आधार नहीं बनाना चाहिये।

(१) आवेशग्रस्त द्वारा दिये गये तथ्य प्रामाणिक नहीं होते। आवेशग्रस्त स्थिति ही असंतुलन की है। असंतुलन को आधार बनाकर संतुलित निर्णय हो ही नहीं सकता, इसीलिये सत्य शोधक को आवेशग्रस्त मनोभूमि में किसी निर्णय पर नहीं पहुँचना चाहिये।

(२) अज्ञान में कई बार लोग ऐसी बातें कह जाते हैं जो उनके स्वयं के खिलाफ पड़ जाती है। जानकारी पूरी न हो तो सत्य शोधक को निर्णय लेने से पूर्व कुछ चिन्तन कर लेना चाहिये।

(३) बल पूर्वक पक्षपात, किसी लोभ, भय या किसी अहसान के दबाव में दिये गये विवरण प्रामाणिक नहीं होते। सही निर्णय लेने के लिये साधक को ऐसी दबाव भरी मनःस्थिति के बाहर आने का प्रयास करना चाहिये।

कौण्डिन्य उवाच-

दृश्यते प्राय एवात्र महाभाग ! बुधा अपि ।
हानिलाभस्थितिज्ञा न हितं चिन्वन्ति दूरगम् ।। २७।।
कुर्वते भ्रमतश्चात्र निर्णयं विपरीतगम् ।
कथमेतद् भवत्यस्माद् विवेकी रक्ष्यतां कथम् ।। २८।।

टीका- कौण्डिन्य ने कहा- हे महाभाग ! देखा गया है कि अपना हानि-लाभ पहचानने वाले समझदार व्यक्ति भी दूरगामी हितों को नहीं पहचान पाते, भ्रम में गलत निर्णय ले बैठते हैं, ऐसा क्यों होता है ? और ऐसी भूलों से विवेकवान् का बचाव कैसे होता है ?।। २७-२८।।

आश्वलायन उवाच-

दूरदर्शित्वभावोऽपि विवेकस्यार्थतां गतः ।
न च वस्तुपरिज्ञानमात्रं तस्यार्थं इष्यते ।। २९।।
विवेकबुद्धिरादत्ते परिणामान् सुदूरगान् ।
प्रारम्भे हानिमादाय भविष्यत्यधिको यदि ।। ३०।।
लाभः समर्थनं तस्य कर्मणः कुरुतेऽत्र च ।
लाभदानि प्रतीयन्ते कार्याण्यादौ झटित्यलम् ।। ३१।।
दुःखदानि तथान्ते च जायन्ते कानिचित्तथा।
आदौ कष्टप्रदायन्ते सुखदानि भवन्ति च ।। ३२।।
एतादृश प्रसंगेषु भ्रान्तिग्रस्ता भवन्ति ते ।
अदूरदर्शिनो ये तु लाभं पश्यन्ति चादिमम् ।। ३३।।
तदर्थं महतीं हानिं भविष्यत्कालजां त्विमे ।
प्राप्नुवन्ति नरा येनाभ्युदयं नोपयान्ति ते ।। ३४।।

टीका- आश्वलायन बोले-विवेक का तात्पर्य दूरदर्शिता भी है। वह मात्र समझदारी तक ही सीमित नहीं है। विवेकवान दूरगामी परिणामों को भी देखते हैं और आरम्भ में तनिक सी हानि उठाकर भविष्य में यदि अधिक लाभ की सम्भावना हो,तो उसका समर्थन भी करते

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। कई काम तत्काल तो लाभदायक प्रतीत होते हैं, किन्तु अन्त में दुःख देते हैं। कुछ आरम्भ में तो कष्टकर लगते हैं, किन्तु उनका परिणाम अन्ततः सुखद होता है। ऐसे प्रसंगों में अदूरदर्शी तो भ्रमग्रस्त होते हैं और तत्काल लाभ के लिये भविष्य में बड़ी हानि उठाते हैं, साथ ही अभ्युदय को भी प्राप्त नहीं हो पाते।।२९-३४।।

समझदारी की परिभाषा यहाँ सही परिपेक्ष्य में समझना अनिवार्य है। तथाकथित समझ के धनी बुद्धिमान तो समाज में अनेकों व्यक्ति देखे जाते हैं किन्तु विवेकशीलता की पूरक दूरदर्शिता का उनमें नितान्त अभाव होता है। बहुसंख्य व्यक्ति इसी में आते हैं। मनुष्य जीवन जितनी कठिनाई से मिलता है उतना ही दुष्कर है, अपने दूरगामी हितों को भली भाँति पहचान कर अपने क्रियाकलापों को तदनुसार नियोजित करना। चासनी में लिपट कर प्राण गँवाने वाली मक्खी की तरह तात्कालिक आकर्षण तो मायाजाल से भरे इस संसार में पग पग पर विद्यमान हैं। उनसे स्वयं को बचाना एक बहुत बड़ा पराक्रम पुरुषार्थ है। मनुष्य को वह समझ, जिसे विवेक नाम दिया गया है, से भली-भाँति सम्पन्न बनाकर सृजेता ने उसे अपना मुकुटमणि बनाकर इस जगती पर भेजा है। अन्यान्य जीवों को यह विशेषता प्राप्त नहीं है। फिर यह क्यों होता है कि उसकी इस दुर्लभ निधि "समझ" पर भी समय-समय पर पर्दा पड़ता रहता है एवं प्रगति के स्थान पर अवनति की ओर-पतन के गर्त में लुढ़कने लगता है। प्रस्तुत प्रसंग में इसी जिज्ञासा को उठाया व सत्राध्यक्ष द्वारा उसके समाधान का प्रसास किया गया है।

वस्तुतः विवेक की सामान्य समझदारी तक ही सीमित नहीं माना गया है। समझ तो सभी प्राणियों में होती है। भक्ष्य-अभक्ष्य सभी पहचानते हैं। अपने-पराये बच्चों की पहचान भी सभी कर लेते हैं। किससे उनको हानि हो सकती है, यह भी सभी जीव समझते हैं। पर विवेक तो दूरगामी परिणामों पर विचार करके तदनुसार निर्धारण को कहते हैं। मनुष्य ने प्रगति विवेक के आधार पर की है। साधना, अनुशासन, व्यवस्था, तंत्र यह सब विवेक के आधार पर ही विकसित हुये हैं। तत्काल के आकर्षणों को छोड़कर स्थायी लाभ इसी आधार पर मिल पाते हैं।

विवेकिनः परं ये तु लघ्वीं हानिं विलोक्य ते।
हानिमादिसमुद्भूतां स्वीकृत्यापि प्रयोजने।। ३५।।
शोभने लग्नचित्ताश्च मोदन्ते परिणामतः ।
व्यवसायरता मल्ला कृषका वा यथा च ते।। ३६।।
विद्यार्थिनस्तपोवेषा मालाकारा अथापि च ।
एतेषां धैर्यमेवैतान् कुरुते लक्ष्यगान् सदा ।। ३७।।

टीका- जो विवेकवान् हैं, वे तुरन्त ही छोटी हानि को देखकर कृषक, माली, विद्यार्थी, व्यवसायी, पहलवान की तरह आरम्भिक घाटा एवं कष्ट सहकर भी सत्प्रयोजनों में लगे रहते हैं और अन्त में उस प्रयास के सत्परिणाम का आनन्द लेते हैं। इनका धैर्य ही इन्हें लक्ष्य तक पहुँचाता है।। ३५-३७।।

विवेक का लक्षण है–तत्काल के लाभ के आकर्षण अथवा प्रारम्भिक कष्ट के भय से श्रेष्ठतम उपलब्धियों की ओर बढ़ने से रुके नहीं । इसके लिये दूरदर्शिता के साथ सुनियोजन की भी आवश्यकता पड़ती है। कृषक, माली, विद्यार्थी, व्यवसायी और पहलवान आदि इसी कोटि के साधक होते हैं। कृषक भूखा होने पर भी पास में रखे हुये बीज बोने के अन्न को खाने के आकर्षण से बचा रहता है। बीज को मिट्टी में डालते समय प्रत्यक्ष हानि दिखती है, श्रम भी बहुत पड़ता है, पर फसल के लिये वह यह सब स्वीकार करता है, तभी फसल पाता है। माली कृषक की तरह सर्दी गर्मी भूल कर पौधों को लगाता और पालता-पोषता है। अपने ही लगाये पौधों को एक स्थान से उखाड़ना-दूसरी जगह लगाना बेकार का श्रम-सा दीखता है। अपने लगाये-पोसे पौधों को कैंची से काटना बेदर्दी का काम दीखता है, परन्तु बगीचे की सुन्दरता, पौधों की सुसज्जा इसी से उभरती है।

अदूरदर्शिनो जाले स्पशित्वा लोभसंगताः ।
विहगानांचमत्स्यानां गतिं गच्छन्ति मानवाः।। ३८।।
ते स्मरन्ति न लोभेन जायमानां सुदुर्गतिम् ।
शाकरिष्वप्सु गच्छन्त्या मक्षिकाया अपीदृशी।। ३९।।
दुर्गतिर्जायते यस्मादुचिता नुचितस्थितिम् ।
सत्याऽसत्य विविक्तिं च विवेकः कुरुते स्वयम्।।४०।।
भिन्नाभ्यस्ता जना अत्र प्रवाहे वहदेव तत् ।
असत्यं सत्यरूपेण गृह्णन्ति भ्रममोहिताः ।। ४१।।
स्वयं तिष्ठन्ति तेऽन्याश्च तथैवोपदिशन्त्यपि।
बहवः किं नराः कार्यं कुर्वते चिन्तयन्तिकिम्।।४२।।

टीका- अदूरदर्शी जाल में फँसने वाली मछली-चिड़िया की तरह प्रलोभन पर आतुर होकर यह भूल जाते हैं कि अन्धा लालच क्या हानि करता है ? चासनी पर टूट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पड़ने वाली मक्खी की भी ऐसी ही दुर्गति होती है। विवेक ही उचितानुचित का-सत्यासत्य का निर्णय कर पाता है, अन्यथा अभ्यस्त प्रवाह में बहने वाले तो असत्य को ही सत्य मान लेते हैं। अधिकांश लोग क्या करते और क्या सोचते हैं, इसी भ्रम में मोहित वे स्वयं भी भ्रमित हो जाते हैं और दूसरो को भी भ्रमित करते हैं।। ३८-४२।।

मनुष्य के लिये बिना विवेक की शरण लिये यह निर्णय लेना कठिन हो जाता है कि कौन सा रास्ता अनुकरणीय है। दैनिक जीवन में जो भी घटना क्रम देखने में आते हैं, उनमें अभ्यस्त ढर्रा ही दृष्टिगोचर होता है। यदा-कदा अपवाद रूप में कहीं कोई औचित्य के रूप में वरण करने योग्य प्रसंग होता भी है तो विवेक बुद्धि के अभाव में उसे पहचान पाने में सामान्य मनुष्य असमर्थ ही रहते हैं। यह तथ्य मोटे तौर से अधिकांश जन मानस पर लागू होता देखा जा सकता है।

ढर्रे के चिन्तन के कारण ही मनुष्य एक प्रकार के स्वसम्मोहन के शिकार देखे जाते हैं, जिसमें जो कुछ भी अपने आस-पास घट रहा है उसमें काट-छाँट किये बिना, हंस की तरह नीर-क्षीर विवेक अपनाए बिना भेड़ चाल अपनाना उन्हें सरल, सुविधाजनक प्रतीत होता है। ढर्रे को तोड़ना, मछली के धारा को चीरकर उल्टा चल देने के समान है। ऐसा साहस बहुधा देखने मे नहीं आता ।

आधारमिममाश्रित्य सत्याऽसत्यविनिर्णयः ।
भवितुं युज्यते नात्र नृगरिम्णोऽनुकूलगम्।। ४३।।
किमिहास्ति समावेश आदर्शित्वस्य कुत्र सः।
सत्यस्योत्कृष्टतायाश्चत्वसत्यास्ति विवेचनम् ।।४४।।
एतदाश्रित्य कर्त्तव्यं भवतीह परीक्ष्यताम् ।
तर्कप्रमाणशाणे तदौचित्यं हेम नान्यथा ।। ४५।।

टीका- सत्य असत्य का निर्णय इस आधार पर करना चाहिये कि मानवी गरिमा के अनुरूप क्या है? आदर्शवादिता का समावेश किसमें है ? सत्यासत्य की विवेचना इसी उत्कृष्टता के आधार पर होनी चाहिये। तर्क और प्रमाण की ऐसी कसौटी बनानी चाहिये जिससे सत्य रूपी स्वर्ण की सही परीक्षा हो सकना सम्भव हो।। ४३-४५ ।।

पिछले प्रतिपादनों में प्रचलित ढर्रे में न बहने की सलाह दी गयी थी। सत्यानुयायी जन-प्रवाह को नहीं मानवीय गरिमा और आदर्शवादिता के पक्ष में तर्क ही तथ्य की कसौटी को प्रयोग करते हैं। सत्य की ही नहीं, सत्य पथ के पथिक की परीक्षा भी इसी कसौटी पर होती है। जन-प्रवाह के वेग में असुविधाओं और यश के आकर्षणों की अग्नि परीक्षा में से सत्य का साधक केवल उत्कृष्ट आदर्शों के पक्ष में निर्णय लेता हुआ अपने खरे होने का प्रमाण देता है।

राजहंस इव क्षीरनीरयोर्निश्चयं नरः ।
कुर्याद् यत् तदुत्कृष्टं गृह्यतां हर्षपूर्वकम् ।। ४६।।
उष्णता च प्रकाशश्च यथा सूर्ये गुणावुभौ ।
समन्वयस्तथा सत्ये प्रवृत्योस्तु द्वयोरपि ।। ४७।।
यथार्थता च तत्रैका न्यायनिष्ठमिदं तथा ।
दूरदर्शित्वमन्या सा प्रवृत्तिर्मङ्गलोन्मुखी ।। ४८।।
समन्वयो ऽनयो पूर्णसत्यमत्राभिधीयते ।
यदेकांगगतं तच्चाऽपूर्णमेवाभिमन्यताम् ।। ४९।।

टीका- मनुष्य को राजहंस की तरह नीर-क्षीर विवेक करना चाहिये और जो उत्कृष्ट है, उसी को हठपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य में गर्मी और रोशनी दो गुण हैं, उसी प्रकार सत्य में दो प्रवृत्तियों का समन्वय है,एक यथार्थता दूसरी मंगलोन्मुख न्यायनिष्ठ दूरदर्शिता। इन दोनों का समन्वय ही पूर्ण सत्य है, एकांगी तो अधूरा रहता है।। ४६-४९ ।।

सत्य के एक पक्ष यथार्थ को तो मनुष्य जल्दी पकड़ लेता है। पर दूसरे पक्ष लोक हितकारी न्यायनिष्ठा, दूरदर्शिता को कम ही लोग पकड़ पाते हैं। ऋषि कहते हैं, कि उसके बिना सत्य अधूरा रह जाता है। दूरदर्शिता ऐसी, जिसमें न्याय और लोकमंगल सधता हो, बड़े प्रयत्न से आती है। उसके लाभ भी बहुत हैं, मानव को महामानव वही बनाती है, परन्तु उसके मुकाबले में आकर्षण और भ्रम भी कम नहीं आते। उनसे बचने के लिये उस उत्कृष्ट वृत्ति को हठपूर्वक पकड़ने का सूत्र ऋषि समझा रहे हैं। सभी महापुरुषों ने ऐसा ही किया है। हंसवृत्ति भी यही है।

सत्य के-उत्कृष्टता के-साधक का आदर्श हंस और चातक होता है। हंस इस बात से प्रभावित नहीं होता कि किसने क्या खाया वह तो उत्कृष्टता के मोती चुगता है। वह न मिले तो उसे अभक्ष्य खाने की अपेक्षा लंघन मंजूर होता है। विवेक की दृष्टि से तो उसका नीर-क्षीर विवेक प्रसिद्ध है ही।

चातक मात्र स्वाति बूँदों का ही पान करता है। हीन रसपान करने की अपेक्षा प्यासा रह जाना पसंद करता है। उत्कृष्टता के साधक ऐसे ही नैष्टिक होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कौण्डिन्य उवाच-

कृपालो मानवे पूर्णं सत्यं प्राप्तुं सदैव सा ।
समीहा विद्यतेऽथापि शक्तिः पूर्णा च विद्यते ।। ५० ।।
तथापि विकलं सत्यं कथमादाय तिष्ठति ।
भवेद् विडम्बनायाश्च कथं मुक्तिरिदं वद ।। ५१ ।।

टीका- कौण्डिन्य ने कहा- हे कृपालु ! मनुष्य में पूर्ण सत्य प्राप्त करने की चाह भी है और सामर्थ्य भी, फिर भी वह एकांगी सत्य में उलझकर क्यों रह जाता है? इस विडम्बना से मुक्ति कैसे मिले ? कृपया यह रहस्य स्पष्ट करें ।। ५०-५१ ।।

किसी भी *उपलब्धि* के लिये इच्छा और सामर्थ्य यह दो महत्वपूर्ण आधार माने जाते हैं। मनुष्य में यह दोनों होते हुये भी उसे अभीष्ट उपलब्धि क्यों नहीं होती, यह रहस्य कौण्डिन्य जानना एवं इस प्रतिपादन से अन्य उपस्थित साधकों को लाभान्वित कराना चाहते हैं।

मनुष्य पूर्णता चाहता है-इसका प्रमाण हर कदम पर मिलता है। उसे उसके बिना संतोष नहीं मिलता। चाहे विज्ञान के माध्यम से हो, चाहे दर्शन के माध्यम से, वह सृष्टि के रहस्य स्पष्ट करने पर तुला रहता है।

सामर्थ्य में मनुष्य की समता कोई प्राणी नहीं कर सकता, यह सर्वमान्य है। रामचरित मानस में लिखा है-

'नर तन सम नहिं कवनिऊ देही।
जीव चराचर जाँचत जेही' ।।

शास्त्रों के अनुसार देवता भी मनुष्य शरीर में इस लिये आना चाहते हैं कि सत्य की जिस गहराई तक जाने की सामर्थ्य मनुष्य में है, वह किसी अन्य देहधारी में नहीं।

एक रोचक प्रसंग मिलता है कि सिकन्दर ने सिन्ध के ब्राह्मणों से कुछ बेढब प्रश्न पूछे थे। उदेद्श्य था उनकी मानसिक क्षमता की परीक्षा तेना। उसमें एक प्रश्न था-"सबसे बुद्धिमान जीव कौन है?" विद्वान ने उत्तर दिया "वह जो मनुष्य की निगाह से बचा है।"

भाव यह था, कि जितने भी जीव मनुष्य की निगाह में आये, उसने सभी को अपने नियन्त्रण में ले लिया। उसके नियन्त्रण के बाहर वही रह सकता है जो उसकी निगाह से बच जाय। अर्थात मनुष्य की सामर्थ्य का कोई मुकाबला नहीं।

पुराणों में अनेक प्रसंग आते हैं जब देवताओं में शर्त लगी , मनुष्य की परीक्षा ली गयी। लम्बे से लम्बे संघर्ष के बाद मनुष्य ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की और देवताओं ने उनकी सराहना की, अभिनन्दन किया। देव शक्तियाँ भी मनुष्य की सामर्थ्य के सामने नतमस्तक होती रही हैं।

ऐसा मनुष्य एकांगी सत्य में ही फँस कर क्यों रह जाता है-यहाँ पर यही जिज्ञासा ऋषि द्वारा व्यक्त की गई है।

आश्वलायन उवाच-

सत्यं नारायणः साक्षादसीमश्चाऽपि विद्यते ।
सीमिता च मनुष्याणां बुद्धिराग्रहिणी लघुः ।। ५२ ।।
अंशो ज्ञातस्तया नूनमेक एवाधुनाऽपि च ।
शेषं ज्ञेयं च यत्तत्तु विद्यतेऽत्यधिकं ततः ।। ५३ ।।
मनुष्यः सत्यसम्प्राप्त्यै क्रमशोऽभ्यक्रमीदिह ।
साफल्यमंशतश्चाऽपि तत्र सोऽध्यगमत्तथा ।। ५४ ।।
अपर्याप्तानि मन्तुं च ज्ञानानि स्वस्यतानि वा ।
पूर्वजानां स्वकानां न लघुतावहमस्ति तु ।। ५५ ।।

टीका- आश्वलायन जी बोले- सत्य ही नारायण है। नारायण असीम है और मानवी बुद्धि सीमित है, वह विविध आग्रहों से और भी छोटी हो गई है। उसने अब तक सत्य का एक अंश ही जाना है, जो जानना शेष है, वह कहीं अधिक है। मनुष्य क्रमशः सत्य की प्राप्ति के लिये क्रमिक यात्रा करता रहा है और आंशिक सफलता प्राप्त करता रहा है। पिछली जानकारियों को अपर्याप्त मानने में अपनी या पूर्वजों की कोई हेठी नहीं है ।। ५२-५५ ।।

मनुष्य अपने क्षेत्र में समग्र है; किन्तु विराट के स्तर पर बहुत ही सीमित । वह किसी न किसी काल और क्षेत्र में बँधा रहता है, इसलिये उसी परिधि के सत्य समझ सकता है। वह भी तब, जब दिमाग को खुला रखा हो। उसे यदि आग्रहों के दायरे में सीमित रख छोड़ा है, तो अपने काल और क्षेत्र के अनुरूप भी सत्य को पकड़ नहीं पाता।

प्रत्येक पीढ़ी की अपनी काल-परिधि होती है। उस परिधि से बाहर निकलने पर सत्य के नये आयाम सामने आते हैं। जिनके सामने वह आयाम नहीं आये, उन्होंने उसे मान्यता नहीं दी,तो कोई दोष नहीं हुआ। परन्तु पूर्व जानकारी को सब कुछ मान लेने पर नये आयामों की उपेक्षा होती है, तो वह दोष है।

बाल्ये वस्त्राणि यान्येष परिधत्ते शिशुः सदा।
तानि प्रौढे न गृह्णाति कोऽपि कालेविनिर्गते ।।५६ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देशकालानुरूपेण यदीत्थं ता: परम्परा: ।
स्वीकृता भिन्नरूपेण तत्र नो विग्रहादिकम् ।। ५७ ।।
विद्यते सर्व एवैते धर्मात्मानो विदन्तु तत् ।
तथ्यं गृह्णन्तु सत्यं च विवेकं हितमात्मन: ।। ५८ ।।
टीका- बालकपन में जो वस्त्र पहने जाते हैं, समय बीत जाने पर प्रौढ़ावस्था में उन्हें कोई नहीं पहनता। इस प्रकार यदि देश-काल के अनुरूप परम्परायें भिन्न प्रकार से अपनाई गई हों, तो उसमें विग्रह जैसी कोई बात नहीं है। सभी धर्म प्रेमियों को तथ्य समझना और सत्य तथा विवेक को अपनाना ही उचित है; चूँकि इसमें उनका अपना भी कल्याण है।। ५६-५८।।

परम्परा की भिन्नता का प्रश्न सामने आने पर बहुधा विग्रह उठ जाते हैं। एक परम्परा का अभ्यस्त व्यक्ति दूसरी परम्परा वाले को हीन भाव से देखने का प्रयास करता है। परन्तु सत्य और विवेक को देखना चाहिये कि किन्हीं परिस्थिति विशेष में कोई खास परम्परा उचित रही। जितने अंशों में परिस्थितियाँ बदलीं, उतने अंशों में परम्पराओं में परिशोधन कर लेने में न किसी धर्म का उल्लंघन होता है और न किसी निष्ठा का हनन होता है। इससे तो औचित्य को परिपोषण मिलता और विकासक्रम आगे बढ़ता है।

वार्ता काऽपि चचालायमितिहासो नृणां क्रमात् ।
अस्मादेव न चाऽन्योऽस्ति पन्था विज्ञात उत्तम:।।५९।।
प्राप्तज्ञानस्य लाभं च विन्दन्तोऽतो यदस्ति च।
अज्ञातं ज्ञातमेवाद: प्रयासोऽपि विधीयताम् ।। ६०।।
इतिहासं च सम्मान्य भविष्यन्निर्मितिस्तथा ।
निर्धारणस्य हेतोश्चाऽपिहिता बुद्धिरिष्यते ।। ६१।।
तत्वज्ञानस्य सिद्धान्तस्त्वयमेव हि विद्यते ।
आधारमिममाश्रित्य विज्ञानं जृम्भितं स्वयम् ।। ६२।।
यथास्थानं स्वपादौ च स्थिरौ यैर्विहितौ नरै: ।
प्रगते: पथि यातुं च शक्यं नाग्रहिभिस्तु तै: ।।६३।।
टीका- मानवी प्रगति का इतिहास क्रम से चला है और इससे भिन्न कोई उत्तम मार्ग विदित भी नहीं है। अत: उपलब्ध जानकारी का लाभ उठाते हुये भी जो अविज्ञात है, उसे समझने का प्रयास करें। इतिहास का सम्मान करते हुये भी भविष्य में निर्माण एवं निर्धारण के लिये मस्तिष्क खुला रहे। तत्वज्ञान का सिद्धान्त यही है। विज्ञान इसी आधार पर विकसित हुआ है। पैरों को यथास्थान जमाये रखने के आग्रही प्रगति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकते।। ५९-६३।।

व्यवधान या विघ्न बाधा उपस्थित होने पर भी अपने उद्देश्य से विचलित न होना दृढ़ता का प्रमाण है। परन्तु अपनी दृढ़ता सिद्ध करने के प्रयास में व्यक्ति प्रगति ही न करे,यह कोई समझदारी नहीं हुई । विचारों की दृढ़ता और बात है तथा विचारों की जड़ता उससे भिन्न है। जड़ता अपने से भिन्न कुछ सुनना नहीं चाहती, दृढ़ता बिना विवेक की कसौटी पर कसे किसी भी बात को यों ही स्वीकार नहीं कर लेती।

प्रस्तुत जानकारी का लाभ उठाते हुये जानकारी बढ़ते चलने के क्रम से ही तत्व ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता सभी का विकास हुआ है। इस क्रम को रुकने नहीं देना चाहिये। प्रत्येक फैक्ट्री सफल उत्पादन के साथ उसमें नये सुधारों पर शोध करती रहती है। नयी दृष्टि देने वालों को यह कहकर अपमानित नहीं किया जाता कि तुम पिछले उत्पादन का महत्व घटा रहे हो। बल्कि प्रोत्साहन देकर अपने उत्पादन का स्तर बढ़ाया जाता है।

मन्तव्यं धर्ममूलं च सत्यमेवाप्तुमप्यत: ।
अतिरिक्ताश्च भिन्नास्ता ज्ञातुंवाञ्छाऽस्तु मान्यता: ।। ६४।।
औचित्यस्य यथार्थस्य दिशायामभियातृभि: ।
निष्पक्षस्याधिगन्तव्यो न्यायस्याश्रय उत्तमै: ।। ६५।।
ज्ञानं चेदृशमेवात्र मनुष्यं सत्यमार्गणे ।
करोत्यग्रेसरं येन पूर्णलक्ष्याप्तिसम्भव: ।। ६६।।
पुरुषा आग्रहिण: स्वं च सीमाबन्धनमेव तु ।
सर्वस्वं मन्यमाना हि भजन्ते हि दुराग्रहम् ।। ६७।।
दूरं सत्यात्समग्राच्च तिष्ठन्त्येव निरन्तरम् ।
विवेकालम्बनं तस्मात्सत्याप्त्यै ध्रुवमिष्यते ।। ६८।।
टीका- धर्म के मूल स्वरूप को सत्य माना जाय। इसके अतिरिक्त अन्यान्य मान्यताओं के सम्बंध में अधिक जानने की इच्छा रखी जाय। औचित्य और यथार्थ की दिशा में बढ़ते हुये उत्तम पुरुषों के द्वारा निष्पक्ष न्याय का आश्रय लिया जाय। ऐसा विवेक ही मनुष्य को सत्य की खोज में अग्रसर करता है। पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँच सकना इसी प्रकार सम्भव हो पाता है। आग्रही अपने सीमा बन्धन को ही सब कुछ मानकर उसका हठ करते हैं और समग्र सत्य से दूर ही बने रहते हैं। इसलिये विवेक का अवलम्बन सत्य की प्राप्ति के लिये अनिवार्य माना गया है।। ६४-६८।।

वेदान्त का प्रथम सूत्र है–**"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"** अब ब्रह्म की जिज्ञासा करते हैं। जिज्ञासा, नया जानने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की इच्छा प्रत्येक प्रगति का आधार रही है। विवेकवान जानने योग्य की खोज और वरण का क्रम सतत् बनाये रखते हैं।

अरोचतेदं सर्वेभ्यो विवेचनमिहाद्भुतम् ।
भ्रान्तेभ्यो विकृतारीतीः प्रति चाग्रहिणस्तु यो ।।६९।।
तेभ्यः याथार्थ्यबोधाय सर्वैरनुमितं त्विदम् ।
दूरदर्शित्वयुक्ताश्च प्राप्तु वै ज्ञानशीलताः ।। ७०।।
अनिवार्यं विधातुं च लोकमानसमुन्नतम् ।
नियते समये सत्रं समाप्तिं तदगादलम् ।
हर्षिता धर्ममासाद्य सम्प्रदायतिरोहिताम् ।। ७१।।

टीका- आज का विवेचन सभी को बहुत सुहाया। भ्रान्तियों और विकृतियों के प्रति आग्रही लोगों को यथार्थता समझाने के लिये सभी ने अनुमान किया कि दूरदर्शी विवेकशीलता को अपनाने के लिये उन्नत लोक मानस बनाना आवश्यक है। सत्र नियत समय पर विधिवत् समाप्त हो गया। सभी लोग सम्प्रदायों की चहारदीवारी में बँटे-छिपे धर्म को जानकर अतीव प्रसन्न हुये।। ६९-७१।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्रीआश्वलायन–कौण्डिन्य ऋषिसम्वादे "सत्य॰ विवेक", इति प्रकरणो नाम
।। तृतीयोऽध्यायः।।

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

संयमशीलता–कर्त्तव्यपरायणता प्रकरण

चतुर्थो दिवसस्त्वद्य सत्रस्याभूच्छुभोदयः ।
मनीषिणां समेषां हि संगतानामवर्द्धत ।। १।।
जिज्ञासूनां स उत्साहो धर्मस्यास्य विशालताम् ।
महत्वं चान्वभूवँस्ते जगन्मंगलमुत्तमम् ।। २।।
ज्ञानगोष्ठी समारब्धा विधिवद्विद्वदुत्तमः ।
विद्रुथः प्रणमन्नेवाऽध्यक्षं पप्रच्छ सादरम् ।। ३।।

टीका- आज सत्र का चौथा दिन था। उपस्थित मनीषियों एवं जिज्ञासुओं का उत्साह बढ़ रहा था। उन्हें धर्म की महानता और विशालता का और भी अच्छी तरह अनुभव होने लगा था। आज की ज्ञानगोष्ठी विधिवत् आरम्भ हुई, तो विद्वान विद्रुथ ने अध्यक्ष का अभिवादन करते हुये आदर सहित पूछा–।। १-३।।

विद्रुथ उवाच–

धर्मस्यापरयुग्मस्य भगवन् प्रविवेचनम् ।
क्रियतां कश्च सम्बन्धः कर्तव्ये संयमेऽस्ति च।। ४।।
उभौ कथं सुसम्बद्धौ मतौ तौ हि परस्परम्।
उदतारीन्महाप्राज्ञ एवं स आश्वलायनः ।। ५।।

टीका- विद्रुथ बोले- हे भगवन् ! धर्म के दूसरे युग्म की विवेचना करें। संयम और कर्त्तव्य का आपस में क्या सम्बन्ध है? दोनों एक दूसरे के साथ जुड़े हुये या गुँथे हुये क्यों माने गये हैं ? महाप्राज्ञ आश्वलायन ने उत्तर देते हुये इस प्रकार कहा–।। ४-५।।

आश्वलायन उवाच–

सत्राध्यक्षः अबोधयत् समुदायमुपस्थितम् ।
सज्जनाः ! भगवान् प्रादात् प्रत्येकस्मै नराय तु।।६ ।
विभूतिर्विपुलायाश्च सुप्तास्तिष्ठन्ति नित्यशः ।
स्थूलेऽस्मिन् तथा सूक्ष्मे शरीरे बीजरूपतः।। ७।।
साधनायाः प्रयत्नेन तास्तु वर्द्धयितुं तथा ।
परिपुष्टा विधातुं च शक्याः सर्वैस्तु मानवैः ।। ८।।
उद्बोधिता न चाप्येता इयत्यां रान्ति विग्रहे ।
मात्रायां येन निर्वाहक्रमं शान्त्या सुखेन च ।
पर्याप्ताः पूरितुं तास्तु सन्ति चाक्षयतां गताः।। ९।।

टीका- सत्राध्यक्ष श्री आश्वलायन जी ने उपस्थित जन-समुदाय को समझाया कि सज्जनो ! भगवान ने हर व्यक्ति को विपुल परिमाण में विभूतियाँ प्रदान की हैं। वे उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में–बीज रूप में प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हैं। साधना के थोड़े प्रयत्न के साथ, उन्हें जगाया-बढ़ाया और परिष्कृत किया जा सकता है। न जगाया जाय तो भी वे इतनी मात्रा में हैं कि निर्वाहक्रम को सुख-शान्ति से भरा-पूरा रखने की दृष्टि से पर्याप्त हैं, इन्हें अक्षय समझना चाहिये।। ६-९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर मानव तनधारी उस विराट् चेतन का एक अंग है। विधाता ने मनुष्य में विभूतियों के रूप में अगणित विशेषतायें कूट-कूट कर भर दी हैं। जानकारी के अभाव में तो बहुमूल्य वस्तु को भी निरर्थक समझकर फेंक दिया जाता है। पारस पर कपड़ा पड़ा हो तो समीपस्थ लोहे का टुकड़ा स्पर्श पाने पर भी सोने में नहीं बदलता। लगभग यही स्थिति सूक्ष्म विलक्षणताओं से सम्पन्न मनुष्य की है। जौहरी अपनी कीमती अलभ्य वस्तुओं को संभालकर रखता है। कोषागारों में जमा धनराशि कड़े पहरे में रखी व स्थानान्तरित की जाती है। हर कोई उनके समीप नहीं पहुँच सकता। केवल वह व्यक्ति जो हैसियत रखता है अथवा जिसकी साख है, वह विधिपूर्वक इस राशि को पाने का हकदार है।

आत्मिक विभूतियाँ विधाता ने तीन शरीरों के रूप में काया के सूक्ष्म संस्थान में छिपाकर रखी हैं। इन्हें प्रयास-पुरुषार्थ द्वारा जगाया जा सकता है। बिना साधना अनुशासनों के ये प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती हैं। सामान्य अंश जो उनका बहिरंग में दृश्यमान है वह निर्वाह आदि के लिये—सामान्य जीवनचर्या के लिये प्रर्याप्त है। ऋषिगण मनुष्य की सूक्ष्म संरचना का एवं प्रसुप्त भण्डागार की असीम सामर्थ्य का परिचय देकर उन सम्भावनाओं की एक झलक झाँकी दिखाते हैं, जिन्हें जगाया जा सके तो अतिमानवी क्षमतायें अर्जित कर सकना सम्भव है।

भगवान ने मनुष्य को विभूतियाँ देते समय दोनों प्रकार के व्यक्तियों का ध्यान रखा है। (१) जो विकास के इच्छुक हैं, उच्च लक्ष्यों की आकांक्षा रखते हैं।(२) वे जो सामान्य जीवन जीना चाहते हैं।

जिस रूप में विभूतियाँ मिली हैं, उसी रूप में इनका ठीक-ठीक प्रयोग कर लिया जाय; तो मनुष्य का निर्वाह सही, संतोषप्रद ढंग से हो सकता है। पर विशिष्ट स्तर पाना है, तो तीनों शरीरस्थ विभूतियों को जागृत, विकसित करके उनका उपयोग करना आवश्यक है। स्थान-स्थान पर आप्त वचनों के माध्यम से मनुष्य को अपने इस भण्डागार को तीन शरीर-पञ्च कोषों-षट्चक्रों से विनिर्मित वैभव साम्राज्य को हस्तगत करने, ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न बनने के संकेत दिये गये हैं। जो इन सूत्रों को समझते हैं, वे साधना पुरुषार्थ में प्रवृत्त होते एवं सिद्ध पुरुष महामानव की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

आसां दुरुपयोगं नो प्राणिनोऽन्ये तु कुर्वते ।
स्वस्थं जीवन्त्यतः सर्वे ससुखं सर्वदैव च ।। १०।।
केवलं मानवोस्त्येष दर्पोन्मत्तस्तु यः सदा ।
मर्यादास्ताभिनत्त्याऽसंयमः स्वीकरोति च ।। ११।।
प्रकृतेर्दण्डसंस्थित्या स्खलत्येव पदे-पदे ।
दुःसहं दुःखमाप्नोति समुदायोऽत्र सोऽब्रवीत् ।।१२।।

टीका- अन्य प्राणी इनका अपव्यय-दुरुपयोग नहीं करते, अतएव स्वस्थ और सुखी जीवन जीते हैं। मात्र मनुष्य ही ऐसा है जो दर्प में उन्मत्त होकर मर्यादाओं को तोड़ता है असंयम बरतता है और प्रकृति की दण्ड व्यवस्था के अनुसार पग-पग पर ठोकरें खाता और दुःसह दुःख सहता है।। १०-१२।।

रोग और दुःखों का कारण भगवान की ओर से किसी सामर्थ्य की कमी के कारण पैदा नहीं होते। वे होते हैं ईश्वरीय प्रकृति द्वारा स्थापित मर्यादाओं के उल्लंघन से। जब तक उल्लंघन बंद करके अनुशासन को अंगीकार नहीं किया जाता, सारे उपचार बेकार हो जाते हैं। यह मर्यादाएँ वह समझता तो है, पर उन्मत्त होकर उन्हें भूल जाता है, तोड़ देता है।

जनसमुदाय उवाच—

प्रज्ञब्रूतामिहास्माकं पुरोऽसंयमाशु तम् ।
यस्माद्धेतोर्नरोरोग शोकाक्रान्तश्च जायते ।। १३।।
वयं सर्वे स्वरूपं तत्तस्य ज्ञातुं समुत्सुकाः ।
परिणामं, च येन स्याज्जीवनं सफलं तु नः।। १४।।

टीका- जनसमुदाय ने पूछा— हे प्रज्ञावान् ! उस असंयम का वर्णन कीजिये, जिसके कारण मनुष्य को रोग-शोकों से आक्रान्त होना पड़ता है। हम सब उसके स्वरूप और प्रतिफल को जानने के इच्छुक हैं, जिससे हमारा मनुष्य जीवन सफल हो सके।। १३-१४।।

कोण्डिन्य उवाच—

चतस्रो भगवाञ्छक्तिः प्रत्येकस्मै नराय तु ।
दत्तवाञ्जन्मतो, शक्तिरिन्द्रियाणां मताऽदिमा।।१५।।
द्वितीया कालशक्तिश्च विचाराणां तृतीयका ।
साधनानाञ्चतुर्थी सा शक्तिः प्रोक्ता बुधैरिह।। १६।।
शक्तयस्तिस्र एतेषां शरीरे मनसि स्थितः ।
चतुर्थी विपुलायां सा मात्रायां विद्यतेऽभितः।। १७।।
सम्पदा प्रकृतेरत्र पुरुषार्थेन स्वेन याः ।
अर्जितुं शक्यते मर्त्यैर्यथेच्छं प्रकृतेः सदा ।। १८।।

टीका- कोण्डिन्य बोले— हे सज्जनो ! भगवान ने हर मनुष्य को चार स्तर की शक्ति जन्मजात रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रदान की है, इनमें एक है- इन्द्रिय शक्ति, दूसरी- समयशक्ति, तीसरी-विचारशक्ति और चौथी- साधनशक्ति। तीन शक्तियाँ उसके शरीर और मन में भरी पड़ी हैं। चौथी प्रकृति सम्पदा के रूप में सर्वत्र विपुल परिमाण में विद्यमान है। वह अपने पुरुषार्थ द्वारा उसमें से जितनी चाहे बटोर सकता है।। १५-१८।।

यहाँ चारों शक्तियों के स्वरूप और अनुशासन समझने योग्य हैं। इनमें इन्द्रियशक्ति और विचारशक्ति यह हर प्राणी के साथ पैदा होती है । मनुष्य को यह अन्यों की अपेक्षा विशेष क्रम में प्राप्त हैं। संसार की सारी कुशलतायें इन्हीं शक्तियों के प्रयोग से बनी हैं, जैसे मजदूर, पहलवान आदि इन्द्रिय शक्ति के बिना काम नहीं कर सकते। विद्वान, वकील, विचारकों में विचार शक्ति प्रधान होती है, परन्तु इन्द्रिय शक्ति के बिना वे उसे व्यक्त नहीं कर सकते।

पहलवान, खिलाड़ी, चित्रकार, शिल्पी, संगीतकार- यह सब अपने विचार संयोग से इन्द्रियों का कलात्मक प्रयोग कर सकने में कुशल हो जाते हैं। साधना एवं अभ्यास द्वारा इन दोनों शक्तियों को विकसित तथा उचित अनुपात में संचित किया जाता है।

शिक्षक, विद्वान, वकील, डाक्टर, इन्जीनियर, लेखक अपनी विचार शक्ति को इन्द्रियशक्ति के सहारे *प्रकट करते हैं। लिखना, आपरेशन करना, पढ़ना आदि* क्रियाऐं इसी क्रम में आती हैं।

समय सम्पदा -इन्द्रिय और विचार शक्तियों की तरह मनुष्य के अधिकार में नहीं होती। वह उसे घटा बढ़ा नहीं सकता। परन्तु वह मिलती सबको है। प्रति दिन २४ घन्टे सबको मिलते हैं। जब तक जीवन है तब तक समय भी मिलता है। पर उसका मूल्य मनुष्य अपनी इन्द्रिय और विचार शक्ति के संयोग से ही पा सकता है। इस संयोग की कुशलता को पुरुषार्थ कहा जाता है। जो किसी समय की अवधि में अपनी इन्द्रिय और विचार शक्ति का जितना अच्छा उपयोग कर सकता है वह उतना ही पुरुषार्थी कहा जा सकता है।

साधन शक्ति दैवी सम्पदा है। साधन सब भगवान ने बना रखे हैं। मनुष्य इनका रूपान्तरण भर अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता है। यही नहीं उन्हें कहीं अपनी या किसी दूसरे की अधिकार सीमा में एकत्र भी कर सकता है। परन्तु उनको इच्छानुरूप स्वरूप देना या एकत्रित करना बिना पुरुषार्थ के संभव नहीं। इसीलिये ऋषि कहते हैं कि इन्हें पुरुषार्थ के द्वारा जितना चाहे बटोरा जा सकता है । संसाधनों की विपुल सम्पदा प्रकृति के भाण्डागार में समायी हुई है। अनेकों व्यक्ति पराक्रम पुरुषार्थ से इन्हें हस्तगत कर सम्पन्न होते, स्वयं को पुष्ट बनाते देखे जा सकते हैं। लेकिन इस उपयोग की भी अपनी सीमा है। जब यह अनावश्यक दोहन की स्थिति में पहुँच जाता है तो उसे प्रकृति की प्रताड़नायें भी सहनी पड़ती हैं। यही बात प्रकारान्तर से अन्य तीन मानव की सीमा रेखा में आने वाली शक्तियों इन्द्रिय सम्पदा, समय सम्पदा एवं विचार सम्पदा पर भी लागू होती है। जब इनका महत्व भूलकर इनका अनावश्यक दुरुपयोग किया जाता है एवं इन्हें व्यर्थ ही अकारण नष्ट किया जाता है तो मनुष्य को तरह-तरह के त्रास भुगतने पड़ते हैं। जितनी महत्वपूर्ण निधियाँ ये सभी शक्तियाँ अपने आप में हैं, उतना ही महत्वपूर्ण उनका सार्थक सदुपयोग एवं सुनियोजन भी है। ऋषि इसी कारण मनुष्य के रोग-शोकों का कारण जानने के लिये असंयम के स्वरुप का भी स्पष्टीकरण चाहते हैं ताकि हानियों को जानते हुये मनुष्य उनसे बचने के उपाय सोच सके।

जननेन्द्रियस्य जिह्वायाश्चाञ्चल्यमधिगत्य तु।
नरा बुद्धिं निजामत्रोदरं तद्दूषयन्त्यलम् ।। १९।।
शारीरिकैमनिसैश्च रोगैर्ग्रस्तो भवन्त्यलम्।
आलस्येन प्रमादेन समयं यापयन्ति च ।। २०।।
ते दरिद्रा विकासेन रहिता एव सर्वदा ।
तिष्ठन्ति मानसं चैषां शरीरं मलपीडितम् ।। २१।।
दोषजीर्णं जराग्रस्तमिवाशक्तं भवेत्ततः ।
सम्पदा समयोऽप्यास्ति प्रभुदत्ता नरश्च याम्।। २२।।
श्रमे नियोजितां कृत्वा योग्यताः सम्पदा अपि।
सर्वा एवार्जिताः कर्तुं सक्षमो नात्र संशयः।। २३।।
श्रमपूर्वं च यावान् स कालो व्यत्येति शोभने।
पुरुषार्थे जीवितं यत्तज्जीवनं मान्यतामिह ।। २४।।

टीका- जीभ और जननेन्द्रिय का चटोरापन अपनाकर लोग अपना पेट तथा मस्तिष्क खराब करते हैं और शारीरिक, मानसिक रोगों से ग्रसित होते हैं। समय को आलस्य-प्रमाद में बिताने वाले दरिद्री और पिछड़ेपन से ग्रस्त बने रहते हैं। उनके शरीर और मन को जंग खा जाती है तथा वे जराग्रस्त की तरह अशक्त हो जाते हैं। समय भी ईश्वर प्रदत्त सम्पदा है। श्रम में उसे नियोजित रख कर हर प्रकार की योग्यतायें तथा सम्पदायें अर्जित की जा सकती हैं। जितना समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रमपूर्वक श्रेष्ठ पुरुषार्थ में व्यतीत हुआ है, उतना ही जीवन जिया मानना चाहिये।। १९-२४।।

इन्द्रिय शक्ति के सदुपयोग के सूत्र यहाँ ऋषि ने स्पष्ट किये हैं। एक है इन्द्रिय शक्ति को व्यसनों में बर्बाद न होने देना। दूसरा है उपयोगी श्रम में इन्हें लगाना। जितने समय इन्द्रियों को श्रम में लगाया जायेगा, उतनी ही योग्यता और सम्पन्नता बढ़ेगी।

यह सत्य स्वीकार करने वाले खिलाड़ी लम्बे समय तक अभ्यास का श्रम करते हैं। शिल्पी और व्यापारी लम्बे समय अपने-अपने श्रम में लगाते हैं। कलाकार और संगीत साधक भी लम्बी अवधि तक अपनी कला निखारने के श्रम करते हैं। इसी आधार पर सम्पन्नता और योग्यता पाते हैं। इसीलिये कहा है, जितना समय इस प्रकार श्रम पुरुषार्थ में लगा, उतना ही जीवन जिया समझा जाना चाहिये।

बलमान्तरिकं नूनं विचारोऽयं तथैव च ।
स यस्मिन् क्वापि लक्ष्ये तु तत्तथा विनियुज्यते ।। २५।।
प्रगतिस्तदनुरूपेण तत्र साफल्यमप्यलम् ।
जायते परमेनं तु लोकास्ते नाशयन्त्यपि ।। २६।।
कल्पनासु विनिक्षिप्य विकृतासु च तं नरा:।
बाधा: प्रकृतिमार्गे च भावयन्ति सुकण्टका:।। २७।।

टीका- विचार आन्तरिक बल और पुरुषार्थ है, उसे जिस किसी भी लक्ष्य पर नियोजित किया जाता है- उसी में तदनुरूप प्रगति होती और सफलता मिलती है। लोग अस्त-व्यस्त और विकृत कल्पनाओं में उलझाये रहकर उसे नष्ट भी करते हैं और विकृतियों में उलझा कर अपने लिये संकट भी उत्पन्न करते हैं।। २५-२७।।

विचार शक्ति के सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण और व्यावहारिक तथ्य स्पष्ट किया गया है। लक्ष्य तक पहुँचने का पुरुषार्थ इन्द्रिय शक्ति के माध्यम से ही करना पड़ता है और उसी आधार पर सफलतायें प्राप्त होती हैं। पर इन्द्रिय शक्ति को पकड़ कर विशेष दिशा में लगा देने का पुरुषार्थ विचार बल द्वारा ही संभव होता है। जो विचार दुर्बल हैं उस दिशा में इन्द्रिय शक्ति कभी लग ही नहीं पाती और उपलब्धियाँ तो उसके बाद ही मिलती हैं।

सही दिशा में इन्द्रिय शक्ति न लग पाने से उपलब्धियाँ नहीं मिलतीं। बात यहीं तक सीमित नहीं, विचार बहकते हैं तो इन्द्रियाँ भी बहकती हैं और हजार तरह की परेशानियाँ मनुष्य स्वयं पैदा कर लेता है।

न्यूनता साधनानां न विद्यते कुत्रचित्क्षितौ ।
तेऽधिगन्तुं च शक्यास्तु योग्यतां श्रमशीलताम्।।२८।।
मनोयोगमथोद्बोध्य सर्वैरेव च मानवै: ।
सार्थयन्ति धनं सद्भ्यो युञ्जते ये सदागमम्।।२९।।
मात्राऽल्पाऽपि च तस्यैषा प्रयच्छति महत्फलम्।
सन्निवेशं समाश्रित्य यद्यप्यतुलवैभवा: ।। ३०।।
नरा दुरुपयुञ्जाना नाशयन्तस्तु तत्स्वयम् ।
यान्ति नाशं यथा नौका छिद्रे जाते तिमज्जन्ति।।३१।।

टीका- साधनों की कहीं कमी नहीं। वे योग्यता, श्रमशीलता और मनोयोग बढ़ाकर अभीष्ट मात्रा में उपार्जित किये जा सकते हैं। ईमानदारी से कमाने और सत्प्रयोजनों में ही उन्हें प्रयुक्त करने वाले धन को सार्थक बनाते हैं। उसकी थोड़ी मात्रा भी सदुपयोग के आधार पर महान प्रतिफल प्रदान करती है, जबकि विपुल सम्पदा वाले भी उसका दुरुपयोग करने पर उसे नष्ट करते, साथ ही स्वयं भी नष्ट होते हैं। छेद होने पर नौका पानी में डूब जाती है।। २८-३१।।

यह एक स्मरणीय तथ्य है कि योग्यता श्रम और मनोयोग के संयोग से ही साधन बनते हैं, बढ़ते हैं।

धन साथक बनता है नेकी से कमाने और भलाई में खर्च करने से। घातक बनता है दुरुपयोग से। भी छिद्र हीन नौका पार कर देगी, बड़ी से बड़ी छेद वाली होगी तो डुबो देगी।

साधन कमाना मनुष्य के हाथ में है। गई-गुजरी परिस्थितियों में भी अनेकों व्यक्तियों ने अध्यवसाय पुरुषार्थ के माध्यम से साधन जुटाकर स्वयं को सम्पन्न बनाया है। योग्यता अकेली पर्याप्त नहीं। योग्यता के साथ परिश्रम एवं काम में तन्मयता का सम्पुट न हो तो वह भी निरर्थक ही चली जाती है। एक बार कमा लेने पर भी उसके यदि सदुपयोग का मार्ग न बनाया गया तो वह सारा परिश्रम व्यर्थ ही जाता है,उपार्जन कर्ता को कष्ट पहुँचाता व अपयश का भागी बनाता है।

दुग्धे दुग्धे च चालन्यां पश्चात्तापोऽभिलभ्यते।
असंयमस्य छिद्रेषु पूर्वोक्तेषु चतुर्ष्वपि ।। ३२।।
सम्पदाया जीवनस्य स्रवन्त्यंशास्ततो नरः ।
दीनं दरिद्रमात्मानमभाग्यमसहायकम् ।। ३३।।
अनुभवन्ति नरा ये तु समये सावधानताम् ।
आश्रित्य संयमं चात्मशक्तिस्रोतोऽन्तयन्ति नो।। ३४।।
परं विवेकपूर्वं तत्सर्वं सद्भ्यो नियुञ्जते ।
क्वोपयोज्या संयमेन सञ्चिता: सम्पदा इति।। ३५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्धे बोधयत्यस्मान् यत्तु धर्मानुशासनम्।
भद्रा: शृण्वन्तु तत् सर्वे भवन्तो ध्यानपूर्वकम्।।३६।।

टीका- चलनी में दूध दुहने से मात्र पश्चात्ताप ही हाथ रहता है। इसी प्रकार असंयम के उपरोक्त चार छिद्रों में होकर जीवन सम्पदा के महत्वपूर्ण अंश बह जाते हैं और मनुष्य अपने आपको दीन, दरिद्र, असहाय, अभागा अनुभव करता है। बुद्धिमान वे हैं, जो समय रहते इस दिशा में सतर्कता बरतते हैं और संयमी रहकर अपने शक्ति भन्डारों को नष्ट नहीं होने देते, वरन् विवेकपूर्वक उन्हें सत्प्रयोजनों में ही नियोजित किये रहते हैं। संयम द्वारा संचित सम्पदा का कहाँ उपयोग करना चाहिये, इस सम्बन्ध में धर्मानुशासन जो कहता है, उसे भद्रजनों ! आप ध्यान पूर्वक सुनें।। ३२-३६।।

शक्ति का मूल स्रोत, जीवन सम्पदा जब तक संचित है, उसके अपव्यय के छिद्र बन्द कर दिये गये हैं। जीवन को साध लिया गया है तो मनुष्य से बढ़कर सौभाग्यशाली कोई नहीं। आगे बढ़ने का मार्ग उसके लिये खुला है। भौतिक उपलब्धियों आत्मिक प्रगति का पथ उसे समृद्धि के चरम शिखर पर ले जाता है। अक्षय जीवन जीते हुये वह स्वयं तो धन्य होता ही है, संचित सम्पदा सामर्थ्य के सुनियोजन द्वारा विश्व वसुधा को भी लाभान्वित करता है। असंयम के माध्यम से इस जीवन को क्रमशः खोखला बनाते हुये उपलब्धियों को खोते चले जाना एक ऐसी विडम्बना है, जिसका वर्णन करते हुये शास्त्र वचनों में अनेकों अनुशासन मानवी गरिमा के अनुरूप बताये गये हैं। वह स्वयं को तो हानि पहुँचाता ही है, समष्टि का एक अंग होने के नाते स्रष्टा के प्रति कृतघ्नता बरतने का दोषी भी ठहरता है। ऋषि यहाँ पर मात्र संयम को ही नहीं, संचित सामर्थ्य के सुनियोजन परमार्थ हेतु उनके सदुपयोग को एक प्रकार का धर्मानुशासन बताते हुये उसे अमल में लाने के लिये जोर दे रहे हैं।

मनुष्याय प्रभुर्यत्र व्यतरच्चिन्तनं महत् ।
स्वतंत्रमपि कर्तृत्वं तत्राऽबध्नादपि प्रभु: ।। ३७।।
नरं त्वनेककर्तव्यश्रृंखलाभिरुदारधी: ।
संगच्छध्वं संवदध्वं कर्तुं स व्यवहारगम् ।। ३८।।

टीका- मनुष्य को ईश्वर ने जहाँ स्वतंत्र चिन्तन और कर्तृत्व की क्षमता प्रदान की है, वहाँ उसे अनेकानेक कर्त्तव्यों की जंजीरों में भी जकड़ा है, क्योंकि वह उदारचेता है, 'संगच्छध्वं संवदध्वम्' को व्यावहारिक रूप देना चाहता है।। ३७-३८।।

परमात्मा "उदार चेता" है। अर्थात प्राणी मात्र के हित के लिये अपने अनुदान उदारतापूर्वक खर्च करना चाहते हैं। परन्तु साथ ही साथ **"संगच्छध्वं"** अर्थात् सबकी सहयोगात्मक प्रगति को भी व्यावहारिक स्वरूप देना चाहते हैं। मनुष्य को स्वतंत्र चिन्तन और कर्तृत्व की क्षमता इसलिये दी है कि वह स्वयं भी बढ़े और सहयोगात्मक वातावरण बनाते हुये औरों को भी बढ़ाये।

सौंपे गये विशेष कर्तव्य पूरे कर सकने योग्य विशेष विभूतियाँ, विशेष क्षमतायें मनुष्य को दी गई हैं। यदि मनुष्य कर्तव्यों से मुकरता है अथवा विशेष क्षमताओं का अन्य कोई उपयोग करता है तो ईश्वरीय अनुबन्धों का उल्लंघन करता है।

उदारता मात्र देने को नहीं कहते। देने के साथ अनुशासन का जुड़ा होना यही बताता है कि परमेश्वर कितना न्यायकारी, नियम व्यवस्था को पसंद करने वाला है। यदि यह न होता तो अनुदान लुटाते रहते, अनुकम्पाएँ बरसती रहतीं, कुपात्र भी उस बहती गंगा में हाथ धोते एवं कहीं भी कर्त्तव्यों का, मर्यादा का स्थान नहीं होता। मनुष्य स्रष्टा को प्रिय है, उसका राजकुमार है उसी कारण दुलार व सुधार की समन्वित नीति के नाते उसे अनुदानों के साथ कर्त्तव्यों से भी बाँध दिया गया है। यह प्रकारान्तर से मानव के हित में ही है। मनुष्य आजादी से अपने संबंध में सोच सकता एवं कर्तृत्वों का निर्धारण कर सकता है पर यह छूट एक सीमा विशेष में ही है। परमात्मा एक स्व नियंत्रित, सुनियोजित व्यवस्था है जिसके चलते वह मर्यादाओं का उल्लंघन करते ही तुरन्त उनके दुष्परिणामों को भी भोगता है। ये उसे सचेत करने एवं सही मार्ग पर लाने हेतु व्यावहारिक दृष्टि से जरूरी भी है।

पशवो नाभिजानन्ति कार्याकार्यस्थितिं तत:।
कार्यं स्वं कुर्वते सर्वं प्रकृते: प्रेरणानुगम् ।। ३९।।
स्वातन्त्र्यं च मनुष्याय दत्त्वाऽपेक्षितमत्र यत्।
उपयोगं विशेषाया: सुविधाया: स आचरेत्।। ४०।।
कर्तव्यपालनाख्येषु कार्येष्वेव न चाऽन्यथा।
चित्तं सन्तुलितं स्वस्थं वपुश्चारित्र्यमुज्ज्वलम्।।४१।।
कर्तुं दायित्वमस्यास्ति त्रीण्येतानि प्रभोश्च मे।
न्यासं विविच्य रक्षन्ति तान्ययोग्योपयोगत:।। ४२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोजनेषु सत्स्वेव योजना बद्धरूपत: ।
युज्जते ते दृढन्यासा लक्ष्यं यान्ति च निश्चितम् ।।४३।।

टीका- पशुओं को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं होता, वे मात्र प्रकृति-प्रेरणा का अनुसरण करके ही अपना काम चला लेते हैं, किन्तु मनुष्य को जो स्वतन्त्रता प्रदान की गई है, उसके साथ ही ईश्वर ने यह अपेक्षा भी की है कि वह इस विशेष सुविधा का उपयोग मात्र उन्हीं कार्यों में करेगा, जिन्हें कर्त्तव्य पालन कहते हैं। शरीर को निरोग, मन को सन्तुलित और चरित्र को उज्ज्वल रखना मनुष्य का उत्तरदायित्व है। इन तीनों को ईश्वर की धरोहर समझकर, जो उन्हें अनुपयुक्तताओं से बचाये रहते हैं, सत्प्रयोजनों में योजनाबद्ध रूप से जुटाये रहते हैं, उनके पैर लड़खड़ाते नहीं और अभीष्ट लक्ष्य तक निश्चय पूर्वक पहुँचते हैं।। ३९-४३।।

ध्यान देने योग्य सूत्र है, विशेष शक्तियों के उपयोग की स्वतंत्रता केवल निर्धारित कर्त्तव्यों के लिये है।

यह भी ईश्वर द्वारा सौंपे गये कर्त्तव्य हैं, कि (१)शरीर को स्वस्थ-निरोग रखें।(२) मन को सन्तुलित बनायें–भटकने न दें। तथा (३) अपने चरित्र को साफ सुथरा रखें; क्योंकि इनके बिना उच्चस्तरीय कर्त्तव्यों का पालन संभव नही होता।

इन उद्देश्यों में भी मनुष्य भटक जाता है शरीर को उच्चादर्शों में लगाने के लिये स्वस्थ रखना है, वह भूल जाता है। उसे सुन्दर और ताकतवर इसलिये बनाना चाहता है, कि दूसरों को रिझा सके और मनमानी कर सके। इसी तरह मन को सन्तुलित नहीं, तुष्ट करने के फेर में पड़ जाता है। चरित्र उज्ज्वलता की जगह झूठी वाहवाही के लिये प्रयास करने लगता है। ऋषि कहते हैं, कि भ्रमों में जो नहीं पड़ते, वे न लड़खड़ाते हैं, न भटकते हैं, लक्ष्य तक पहुँच ही जाते हैं।

विद्रुथ उवाच-

साधका: ज्ञातुमिच्छन्ति प्राज्ञ ! संयमकारणान् ।
संचितां शक्तिमत्रैते कर्तव्यस्यैव पालने ।। ४४।।
कथं न साधका: सर्वे समर्थास्तु भवन्त्यहो ।
महत्ता मार्ग आर्षे का गन्तुं बाधास्तु वृत्तय: ।।४५।।

टीका- विद्रुथ बोले- हे प्राज्ञ ! साधक समझना चाहते हैं कि संयम द्वारा अपनी शक्तियाँ बचाकर कर्त्तव्यपालन में प्रयुक्त करने में साधक समर्थ क्यों नहीं होते ? महानता के इस ऋषि प्रणीत मार्ग पर बढ़ने में कौन सी प्रवृत्तियाँ बाधक होती हैं।। ४४-४५।।

आश्वलायन उवाच-

भद्रा ! मर्त्यस्य तृष्णा सा वासनाऽहंत्वमप्यलम् ।
गभीरत्वं समुद्रस्य तिरस्कुर्वन्ति वस्तुत: ।। ४६।।
एतेषां पूर्तिहितोश्चेत्समस्ता: सुविधास्तथा ।
सम्पदा अपि विश्वस्य दत्ता स्यान्नहि तृप्तिदा ।।४७।।
दावानलस्य ज्वालेव सन्ति त्रीण्यपि निश्चितम् ।
एतेषां शान्तये न्यूनं जगतो वैभवेन्धनम् ।। ४८।।

टीका- आश्वलायन बोले-भद्रजनो ! मनुष्य की वासना, तृष्णा, अहंता समुद्र से भी अधिक गहरी है। इनकी पूर्ति के लिये संसार की समस्त सुविधा-सम्पदा झोंक दी जाय तो भी पूर्ति न हो सकेगी। यह तीनों ही दावानल जैसी अग्नि ज्वालायें हैं। इन्हें शान्त करने के लिये संसार के समस्त वैभव का ईंधन भी कम है।। ४६-४८।।

सत्राध्यक्ष ने वासना, तृष्णा और अहंता को समुद्र और अग्नि ज्वाला के समकक्ष बताया है। समुद्र तीन चौथाई है और सूखी जमीन एक चौथाई। एक चौथाई से तीन चौथाई को कभी पाटा नहीं जा सकता। इसी तरह साधनों से वासना, तृष्णा, अहंता का पेट भरा नहीं जा सकता।

ज्वाला देखने में तो छोटी दीखती है। लगता है, उसे थोड़े से सामान से ढक देना सम्भव है। पर वह सामान ईंधन के समान है, वह उससे शान्ति नहीं होती। पुरातन काल से लोग इस भ्रम में पड़ते आ रहे हैं। प्रयास बहुतों ने किया, पर सफल कोई न हो सका।

एतेषां तुष्टये सर्वं न्यूनमेवार्जितं नृणाम् ।
लोभादिकं तु पूर्त्यै स्यादलं नाऽसीमितंकृतम् ।।४९।।
घृतेन दीप्यते वह्निर्मोहान्धस्तेन मानव: ।
कर्तव्यं पालनं नैव चिन्तयत्येष चात्मन: ।। ५०।।
लोभातिरिक्तं नैवायं किञ्चित्कुत्राऽपि पश्यति ।
कर्तव्यनिश्चये बुद्धिर्नैवास्यैवं प्रवर्तते ।। ५१।।
तस्य पालनहेतोश्च साहसोत्साहयो: कथम् ।
भाव: स उदयं गच्छेद् विनाऽभ्यांसिद्धिरेव का ।।५२।।

टीका- इनकी तुष्टि के लिये जो भी जुटाया जायेगा, वह कम पड़ जायेगा। लोभ, मोह और अहंकार की पूर्ति के लिये कितना ही कुछ किया जाय, वह कम ही पड़ता जायेगा। घृत डालने से आग और भड़कती है। ऐसी दशा में मोहान्ध व्यक्ति कर्त्तव्य पालन की बात सोच ही नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाता। उसे लालच के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। ऐसी दशा में कर्त्तव्य निर्धारण में उसकी बुद्धि काम ही नहीं देती। उसका पालन करने के लिये उत्साह और साहस जगेगा ही कैसे ? और बिना कर्त्तव्य पालन के कोई लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकेगा।।४९-५२।।

वासना से मोह, तृष्णा से लोभ और अहंता से अहंकार उसी प्रकार बढ़ते हैं जैसे घी या ईंधन से अग्नि। जब ये दोष बढ़ जाते हैं तो मनुष्य की सोचने समझने की शक्ति क्षीण और नष्ट हो जाती है। उनका सम्मोहन मनुष्य पर छा जाता है। गीता में लिखा है- सम्मोहित व्यक्ति की स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृति भ्रम होते ही बुद्धि की क्षमता नष्ट हो जाती है। बुद्धि नाश के साथ मनुष्य भी नष्ट हो जाता है।

यहाँ ऋषि समझा रहे हैं कि कर्तव्य के प्रति उत्साह और साहस जागे तब कर्तव्य सधता है। पर दोषों से सम्मोहित व्यक्ति तो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य सोच ही नहीं पाता। उसे निभाने की स्थिति तो दूर की बात है। आदमी लक्ष्य सिद्धि तो चाहता है, पर लक्ष्य तक जाने का मार्ग कर्त्तव्य पालन से ही बना है। उस पर चले बिना लक्ष्य पर कैसे पहुँचे ?

कर्तव्यपालनं नूनं गौरवं महतां महत् ।
तेनैवाप्नोति सन्तोषः पुरुषो दुर्लभं परम् ।। ५३।।
कर्मयोगो मतः सर्वसुलभः सर्वसम्मतः ।
कल्याणकारकोऽत्यर्थं यत्रचैकमतं नृणाम् ।। ५४।।
कर्तव्यपालकान् मर्त्यान् शूरान् धर्मरतांस्तथा।
भक्तान् वदन्ति कर्तव्ये सार्थक्यं जीवनस्य तु।। ५५।।
व्यवस्था प्रगतिश्चात्र विद्यन्ते सुप्रसन्नता ।
दायित्वमुह्यते कर्मपालनाधारमाश्रितम् ।। ५६।।
मनुष्यश्चेदृशो याति गौरवं दर्शयत्यपि ।
मार्गं स्वयं मनुष्येभ्योऽसंख्येभ्यो धन्यजीवितः।। ५७।।

टीका- कर्तव्यपालन ही सबसे बड़ा गौरव है। सन्तोष उसी से मिलता है। कर्मयोग को सर्वसुलभ, सर्वमान्य और सर्वोपरि कल्याणकारक माना गया है। इसमें सबका एक मत है। कर्तव्य कर्म करने वाले शूरवीर धर्मनिष्ठ और ईश्वर भक्त माने जाते हैं। जीवन की सार्थकता भी कर्तव्यपालन में है। प्रसन्नता, व्यवस्था और प्रगति भी इसी में है। उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर्तव्यपालन के आधार पर ही बन पड़ता है। ऐसा ही स्वनामधन्य मनुष्य गौरवशाली बनता और असंख्यों का मार्गदर्शन करता है।। ५३-५७।।

कर्तव्य के लिये मनुष्य के मन में उत्साह क्यों उभरे ? इस मनोवैज्ञानिक समस्या का हल ऋषि जानते हैं। व्यक्ति को उत्साह आता है उपलब्धियों के लिये। ऋषि स्पष्ट करते हैं, कि जीवन की महानतम उपलब्धियाँ कर्तव्य के आधार पर ही मिलती है,जैसे-

गौरव, जिसे पाने के लिये मनुष्य सदा लालायित रहते हैं और शास्त्र भी उसे पाने योग्य कहते हैं।

सन्तोष, जिसे जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि कहा है। बड़ी से बड़ी चीज या पद पाकर भी यदि सन्तोष अनुभव न हुआ, तो वह निरर्थक सी लगती हैं। सन्तोष, प्यार के दो शब्दों में भी मिला, तो उस पर राज्य न्योछावर हो जाते हैं।

शूरवीर, धर्मनिष्ठ और ईश्वर भक्त कहलाना असामान्य गौरव माना जाता है। इसका भी आधार कर्तव्य ही है।

जीवन की सार्थकता तथा दूसरों का हित कर सकने का पुण्य-परमार्थ, यह भी ऐसी उपलब्धियाँ हैं, जिन्हें छोटे से छोटे व्यक्ति से लेकर बड़े-से-बड़े महापुरुष तक महत्व देते हैं।

यश भी पुण्य के आधार पर मिलता है। रामचरित मानस में लिखा है-"पावन यश कि पुण्य बिनु होई" पुण्य कुछ और नहीं, उच्चस्तरीय कर्तव्यों का फलितार्थ है।

इन सब आधारों, तथ्यों को जो ध्यान में रखते हैं, उनमें कर्तव्यों के प्रति उत्साह, साहस और उमंग रहती है; वे कर्तव्य समझने में या उसके परिपालन में कभी नहीं चूकते।

योगेषु कर्मयोगोऽतो विद्यते महतां महान् ।
गीता सर्वस्वमप्येतन्मूलं संसारसम्पदाम् ।। ५८।।
कर्तव्यपालनं नूनं सुलभं मोददं तथा ।
भूयो भूयः इदं सर्वैः स्मर्तव्यं हि दिवानिशिम्।। ५९।।
व्यवधानं च तस्याऽत्राकरणे केवलं त्विदम् ।
दुष्प्रवृत्तिर्न मर्त्यास्तु क्षमन्ते रोद्धुमात्मनः ।। ६०।।
लोभे नियंत्रणं नैव सम्भवत्यपि चैव हि ।
अन्धस्येव स्थितिर्मोहाज्जायते च नृणामिह।। ६१।।

टीका- योगों में कर्मयोग की महत्ता महान कही गई है। यही गीता का सार व विश्व वैभव का मूल है। कर्तव्य पालन सुलभ भी है और आनन्ददायक भी, यह बात बार-बार दिन रात-याद रखनी चाहिये, किन्तु उसके न बन पड़ने में एक मात्र व्यवधान यही है कि लोग अपनी दृष्प्रवृत्तियों पर अंकुश नहीं रख पाते। लालच पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नियंत्रण करते नहीं बन पड़ता। मोह से अन्धे जैसी स्थिति बन जाती है।। ५८-६१।।

जो कर्तव्य मानव होने के नाते सौंपा गया है, उसे पूरा करना ही मानव का सबसे बड़ा धर्म है। योगत्रयी की जीवन साधना में कर्मयोग को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। व्यावहारिक अध्यात्म की इस साधना से गीताकार के अनुसार व्यक्ति जीवन्मुक्ति की दिशा में सहज ही बढ़ता रह सकता है। मोक्ष निर्वाण सम्बन्धी सारा ब्रह्मज्ञान अपने स्थान पर है एवं कर्मयोग की जीवन साधना अपनी जगह। जो इसकी उपेक्षा करता है वह इहलोक तो खोता ही है; परलोक को भी खो देता है। गीताकार कहते हैं 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। मनुष्य को कर्म साधना का उपदेश देते हुये कहा गया है कि वह फल के परिणाम की आकांक्षा किये बिना उनमें लिप्त हुये बिना सतत् कर्म करता रहे। यही सच्चा अध्यात्म है।

कर्मयोग सुलभ होते हुये भी उसमें निरत न हो पाने का एक ही कारण है-चिन्तन में सतत् समाने वाली, व्यामोह पैदा करने वाली दृष्प्रवृत्तियों का पनपते रहना, उन पर नियंत्रण न होना एवं विवेक को खोकर अपना लक्ष्य भूल जाना। यह मानव के साथ जुड़ी एक ऐसी विडम्बना है जो उसे आत्मिक प्रगति के मार्ग पर चलने में सतत् रोड़े अटकाती रहती है।

अहंकारी भवत्येवोन्मादीवावेशतां गतः ।
सत्सु चैतेषु दोषेषु समीहा मानवस्य तु ।। ६२।।
आकांक्षाः केवलं ताश्च सदा पूरयितुं द्रुतम् ।
उच्छलन्ति स्वकर्तव्यपालने स्युस्तथाऽक्षमाः।। ६३।।
स्पृहास्तं तु नयन्त्येव यत्र कुत्राऽपि वै बलात् ।
स्पृहावात्यागृहीतश्च शान्तिं विन्दति नो मनाक्।।६४।।
त्यागोऽप्यपेक्ष्यते नूनं कर्तव्यस्यात्रपालने ।
श्रमश्चाऽपि तथा सार्वभौमं पौरुषमप्यलम्।। ६५।।
इमा सर्वाविभूतिश्च लिप्सा सा पूर्वमेव हि ।
उदरस्थाः करोत्येव लुब्धोऽकिञ्चित्करो भवेत्।। ६६।।

टीका- अहंकारी उन्मादी जैसा आवेशग्रस्त होता है। इन दोष-दुगुर्णों के रहते मनुष्य की इच्छा मात्र महत्वाकांक्षायें पूर्ण करने के लिये ही उभरती रहती है।वह कर्तव्यपालन में समर्थ हो ही नहीं पाता । लिप्सायें उसे कहीं से कहीं घसीट ले जाती हैं। लिप्सापूर्ति के झंझावात में पड़ा हुआ व्यक्ति क्षण भर भी शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता है। कर्तव्यपालन में त्याग भी करना पड़ता है और श्रम-पुरुषार्थ भी। इन सब विभूतियों को लिप्सा अपने पेट में पहले से ही उदरस्थ कर लेती है। ऐसी दशा में लोलुपों से कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ता।। ६२-६६।।

कर्तव्य के लिये आदर्शनिष्ठ उत्साह उमड़ना चाहिये। पर अहं के कारण महत्वाकांक्षाओं का उन्माद उमड़ता है तो फिर कर्तव्य किस के सहारे हो?

कर्तव्य में त्याग, श्रम, पुरुषार्थ लगाना पड़ता है पर लूट, खसोट, मौज, मजा की लिप्सा के रहते वे कहाँ पैदा हों, कहाँ रुकें ?

शान्त चित्त से कर्तव्य निर्धारण और विवेकपूर्वक प्रगति के चरण बनाये जाते हैं। महत्वाकांक्षा में लिप्त व्यक्ति को क्षण भर भी शान्त चित्त से सोचने का अवसर ही नहीं मिलता।

ऐसी स्थिति में कुछ कर न पाना ही नियति बन जाती है। जो सोचने, करने की स्थिति बनाये रह पाते हैं वे विपरीत स्थिति में भी करने योग्य कर ही लेते हैं।

क्रिया विचारणा भिन्ने कर्तव्यस्यात्र पूर्तये ।
मनोयोगः श्रमोऽथाऽपि संयमश्चाप्यपेक्षिताः ।। ६७।।
योक्तुं तेषां च प्राप्त्यर्थं नरःसंयमशीलताम् ।
भजेदेव स्पृहा चाऽपि नियम्यैव च वै नरैः ।। ६८।।
इयन्नैव च ये कर्तुं पारयन्ति नरा भवेत् ।
दिवास्वप्नायितं तेषां कर्मयोगः सदैव तु ।। ६९।।
प्रतिकूलस्थितौ चाऽपि कर्मयोगो न त्रस्यति ।
युद्ध्यमानस्तु ताभिः स बुद्ध्या तरति चापदः।। ७०।।

टीका- सोचना और करना भिन्न है। कर्तव्यपालन के लिये जिस मनोयोग और श्रम -संयम का लगाया जाना आवश्यक है, उसे बचाने के लिये मनुष्य को संयमशील बनना पड़ता है। लिप्साओं पर अंकुश लगाना पड़ता है। जो इतना नहीं कर पाते, उनके लिये कर्मयोग एक दिवा-स्वप्न मात्र बनकर रह जाता है। प्रतिकूल स्थिति आ जाने पर भी कर्मयोगी त्रस्त नहीं होता है,उन स्थितियों से युद्ध करता हुआ, वह बुद्धि से उन विपत्तियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।। ६७-७०।।

सही सोचना प्रथम चरण है। परन्तु सोचने के साथ श्रम, पुरुषार्थ, अभ्यास का क्रम न बिठाया जाय तो कर्तव्य नहीं सधता।

लिप्सा पर अंकुश लगाना आना चाहिये। आकांक्षा पूर्ति नहीं उनके शोधन का, अध्यात्म और ईश्वर निष्ठ जीवन का अधिक महत्व है, जो यह नही कर पाते वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगति के स्वप्न शेखचिल्ली की तरह देख सकते हैं। या तो कर्तव्य पथ पर बढ़ ही नहीं पाते और बढ़ते हैं तो जरा से व्यवधानों से अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। कर्मयोगी व्यवधानों को अपने श्रम पुरुषार्थ के बल पर पार करते हैं और धन्य कहलाते हैं।

सुरसा वदनात्सोऽयं मारुतिर्निर्गतो बहिः ।
मशकं रूपमाश्रित्य मनुजन्माऽपि चेदृशम् ।। ७१।।
परित्यज्य निराशां वै दुराशां दूरयन्नपि ।
कर्मयोगी भवेदेवं जीवश्चेश्वरतां व्रजेत् ।। ७२।।
योगाभ्यासेषु सर्वेषु तपः संयमजं मतम् ।
अनिवार्यमहंकारो लोभो मोहस्तथैव च ।। ७३।।
अंकुशास्त्रय एवैते दम्भा उन्नतिबाधकाः ।
स्वल्पसन्तोषवृत्त्या च वर्तितव्यं सुयोगिभिः।। ७४।।
उत्साहः स्वस्तथाऽऽकांक्षा आदर्शैः योक्तुमुत्तमाः।
विनाऽऽदर्शं सदिच्छां च ज्ञानं पापायतेऽपि तु।। ७५।।

टीका- सुरसा के मुख से हनुमान मच्छर बनकर बाहर निकल आये। कुत्साओं को नियन्त्रित करके ही मनुष्य कर्मयोगी बन सकता है- जीव होता हुआ भी ईश्वर बन सकता है। हर योगाभ्यास में संयम की तपश्चर्या अनिवार्य रूप से आवश्यक बताई गयी है। कर्मयोगी को लोभ, मोह और अहंकार के तीन शत्रुओं का दमन करना चाहिये। स्वल्प सन्तोषी बनकर रहना चाहिये और उमंगों-आकांक्षाओं को आदर्शों के साथ जोड़ना चाहिये। बिना सदिच्छाओं के, बिना आदर्श के ज्ञान भी पाप पूर्ण हो जाता है।।७१-७५।।

हनुमान अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहते थे, सुरसा से मुक्ति पाना आवश्यक था। लिप्सायें लौकिक पुरुषार्थ के अनुपात में बढ़ती ही जाती हैं। लिप्साओं के सामने पुरुषार्थी नहीं स्वल्प-सन्तोषी बनकर ही पार जाना उचित है। हनुमान जी ने यही किया। प्रत्येक प्रगति के इच्छुक साधक के लिये भी यही अभीष्ट है। योग का लक्ष्य है जीव ऊपर उठकर ईश्वरत्व तक पहुँचे, इसके लिये नीचे खींचने वाली कुत्साओं से बचना है। यह कार्य संयम से ही सम्भव है। इसीलिये हर प्रकार के योग में संयम का अनिवार्य स्थान है।

आदर्श पहचानना ही पर्याप्त नहीं। अपनी आकांक्षायें और उमंगें उनके साथ जोड़नी होती हैं। मात्र जानकारी है पर आकांक्षा नहीं तो जानते हुये न बढ़ना और-भी बड़ा पाप बन जाता है।

तृष्णाः स्वाश्च वशीकुर्याद् यावदेव नरः स्वयम् ।
तावदेव स्वकर्तव्यपालनं सम्भवेद् भृशम् ।। ७६।।
संयमाधारमाश्रित्य सञ्चितैर्विभवैर्नरः ।
साधनानि स्वकर्तव्यपालनस्यार्जितुं क्षमः ।। ७७।।
ब्राह्मणविप्रवृत्तेश्चाऽभ्यस्ता वै साधवो मताः ।
अस्यार्थश्चायमेवास्ति दुष्प्रवृत्तिरिमास्तथा ।। ७८।।
महत्वपूर्णाकांक्षाश्च नियम्यैव च सम्भवेत् ।
परोपकारो विप्राणां यश्च नैसर्गिको गुणः ।। ७९।।

टीका- जो मनुष्य अपनी तृष्णाओं पर जितना अंकुश लगा सकेगा, उसके लिये उतनी ही तत्परता के साथ कर्त्तव्य पालन सम्भव हो सकेगा। संयम के आधार पर सम्भव हुई बचत से ही कर्त्तव्यपालन के आवश्यक साधनों को लगाया जा सकना सम्भव होता है। ब्राह्मण तथा ब्रह्मवृत्ति के व्यक्ति ही साधु बन सकते है। इसका अर्थ है- महत्वाकांक्षाओं-त्रिविध दुष्प्रवृत्तियों का दमन करने के उपरान्त ही परमार्थ-परायण हो सकना सम्भव है,जो ब्राह्मणों का स्वाभाविक गुण देखा जाता है।। ७६-७९।।

यहाँ ऋषि कहते हैं कि ब्राह्मण वह है जिसमें संयम की सहज वृत्ति है। जो आवश्यकतायें बढ़ाने में नहीं, दुष्प्रवृत्तियों के दमन में गौरव समझता है। साधु का अर्थ है,सहज परमार्थ-परायण। जिसमें ब्राह्मणवृत्ति नहीं, उससे साधु के कर्त्तव्य-उत्तरदायित्व नहीं संभल सकेंगे।

धर्मस्याऽपरयुग्मस्य कर्तव्यसंयमाख्ययोः ।
द्वयोरन्योऽन्यसम्बन्धे ज्ञाते ते तुतुषः स्थिताः।।८०।।
स्पृहा नियमनान्नूनं विना कर्तव्यपालनम् ।
सम्भवेन्नैव तथ्यं च जना जानन्ति ये त्विदम्।। ८१।।
समर्थास्ते नरा एव धर्तुं धर्मस्य पावनम्।
पादं तृतीयं येनेमे देवत्वं प्राप्नुयुर्ध्रुवम् ।। ८२।।
प्रतिपादनमेतच्च ज्ञानगोष्ठ्यामभून्मतम् ।
समेषां कृतकृत्यांश्च मेनिरे स्वान् समे ततः।। ८३।।
नियते समये सोऽयं समारोहो विसर्जितः ।
भ्रान्तेर्वार्त्या विधूता च यया लोकोविखण्डितः।। ८४।।

टीका- धर्म के दूसरे युग्म संयम और कर्त्तव्य का अन्योन्याश्रय संबन्ध समझने पर सभी उपस्थित जनों को बहुत सन्तोष हुआ। लिप्सा-नियमन के बिना कर्त्तव्य-धर्म का पालन नहीं बन सकता, इस तथ्य को जो लोग समझते हैं, वे ही धर्म के तीसरे चरण की अवधारणा करने में समर्थ होते हैं, जिससे सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवत्वको प्राप्त हो सकते हैं। ज्ञानगोष्ठी में आज का प्रतिपादन सभी को बहुत भाया और उन्होंने अपने को इस प्रतिपादन से कृत-कृत्य माना। नियत समय पर समारोह विधिवत् विसर्जित हुआ। भ्रान्ति का वातचक्र ध्वस्त हो गया, जिसने मनुष्यों को खण्ड-खण्ड कर अलग-अलग फेंक दिया था।। ८०-८४।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः, श्री आश्वलायन-विद्रुथ ऋषिसम्वादे "संयमशीलता-कर्त्तव्यपरायणता" इति प्रकरणो नाम चतुर्थोऽध्यायः।।

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

अनुशासन - अनुबन्ध प्रकरण

पञ्चमे दिवसे तत्र निश्चिते समये पुनः ।
ज्ञानगोष्ठी समारब्धा सत्संगसमयोद्भवा ।। १।।
जिज्ञासवः समे स्वानि चासनानि तु भेजिरे ।
प्रेरणा भावबोधिन्यो लभ्यन्ते प्रतिपादनैः ।। २।।
प्रतिपादनमाश्रुत्य सर्वं सर्वे व्यधुश्च तत् ।
हृदयंगममेतेऽत्र संगताः पुरुषाः स्वयम् ।। ३।।

टीका- पाँचवें दिन सन्त समागम की ज्ञानगोष्ठी नियत निर्धारण के अनुसार निश्चित समय पर आरम्भ हुई। सभी जिज्ञासुओं ने अपने-अपने आसन सँभाले। प्रवचन-प्रतिपादनों से सभी को भावभरी प्रेरणाएँ मिल रही थीं। सभी प्रतिपादनों को सुनने के साथ-साथ गम्भीरतापूर्वक हृदयंगम भी कर रहे थे।। १-३।।

उद्दालक उवाच-

देवधर्मस्य श्रुत्वेतद् युग्मयोऽस्तु विवेचनम्।
आनन्दः परमः प्राप्तः समैरस्माभिरुत्तमः ।। ४।।
तत्पालनाय सर्वेषामुत्साहः समुदेति च ।
वचोऽमृतमिदं नव्यं जीवनं नः प्रयच्छति ।। ५।।
प्रकाशमपि, तद् युग्मं तृतीयं कृपया भवान्।
प्रकाशयतु सम्बन्धः कोऽनुबन्धस्य चाडस्य तु।। ६।।
अनुशासनस्य मध्ये स भिन्नता का च विद्यते।
व्यवहारोपयोगी च बोधो धर्मस्य स्यादयम्।। ७।।

टीका- उद्दालक बोले- हे देव ! धर्म के दो युग्मों की विवेचना सुनकर हम सब को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। उनके परिपालन में सभी को भारी उत्साह उमड़ रहा है। आपके अमृत वचन हम सबको नया जीवन नया प्रकाश दे रहे हैं। अब कृपा कर तृतीय युग्म पर प्रकाश डालें और बतायें कि अनुशासन और अनुबन्ध का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? उनके बीच भिन्नता क्या है, जिससे धर्म का व्यवहारोपयोगी बोध हो जाय ।। ४- ७।।

आश्वलायन उवाच-

अनुशासनमत्राहुर्गुणं सामाजिकं बुधाः ।
सभ्यता शब्दितोऽप्येतदनुबन्धस्तथास्ति सः ।। ८।।
गुणस्त्वान्तरिको यां च संस्कृतिं कथयन्त्यपि ।
सुसंस्कारित्वशब्देन जना जानन्ति कुत्रचित् ।। ९।।
द्विधैतयोः प्रयोगस्तु क्षेत्रयोर्भवति द्वयोः ।
एकमुद्गलमूलं तु द्वयोरेवास्ति वस्तुतः ।। १०।।

टीका- श्री आश्वलायन ने कहा- विद्वानों ने अनुशासन को सामाजिक गुण कहा है और इस बाह्य अनुबन्ध को सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है। इसका दूसरा रूप आन्तरिक गुण के रूप में होता है, जिसे सुसंस्कारिता या संस्कृति के नाम से जाना जाता है। इनके प्रयोग तो दोनों क्षेत्रों में दो प्रकार से होते हैं, पर उनका मूल उद्गम एक ही है।। ८- १०।।

धर्म के तृतीय युग्म के रूप में यहाँ पर सभ्यता अनुशासन के रूप में बहिरंग में कार्य करने वाले एवं संस्कृति अनुबन्ध के रूप में अन्तरंग में क्रियाशील दो गुणों की चर्चा की गयी है। सभ्यता एक प्रकार का बाह्य अनुबन्ध है एवं संस्कृति एक प्रकार का आत्मानुशासन। इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे के पूरक एवं मिलकर समग्र बनते हैं। इन दोनों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूलभूत स्रोत एक ही है। शब्दों के रूप में इन्हें चाहे जिस तरह अभिव्यक्ति दी जाय; व्यक्तित्व को निखारने उसे पूर्ण मानव के रूप में विकसित करने के लिये इन दोनों ही गुणों को अपरिहार्य माना गया है।

अनुबन्ध की व्याख्या करते हुये उसे अन्तः से उद्भूत अनुशासन बताया गया है। संस्कृति, जो संस्कारों का अभिवर्धन कर अन्तःक्षेत्र को प्रखर बनाती है, इसी का पर्यायवाची शब्द है। सभ्यता बहिरंग से निभने वाला अनुशासन है, अन्तः की बाहर अभिव्यक्त होने वाली प्रतिक्रिया है। इस प्रकार मोटे तौर से दोनों ही गुण एक ही मूल से उपजने वाले वृक्ष की दो शाखाएँ हैं।

सुसंस्कारिता को किसी भी वर्ग, समाज, देश या संस्कृति का मेरुदण्ड कहा जा सकता है। इसके अभाव में बाह्योपचार निरर्थक है। सारा वैभव इसके न होने की स्थिति में धूलि के समान हो जाता है। कितने ही समूह बाहर से सम्पन्न पर संस्कारों की दृष्टि से खोखले नजर आएँ तो समझना चाहिये कि यह वैभव क्षणिक है। अन्दर का शून्य बाहर भी विपन्नता उपजा कर छोड़ेगा। यह भी उचित ही कहा गया है कि सभ्यता अथवा अनुशासन आंतरिक अनुबन्ध सुसंस्कारिता के पूरक हैं। दोनों का सह अस्तित्व एक दूसरे के कारण है,यद्यपि दोनों के कार्य क्षेत्र अलग-अलग हैं।

अनुशासन मर्यादापालन को कहते हैं और अनुबन्ध आत्मसंयम के लिये किये गये पुरुषार्थ को। मनुष्य को स्वतंत्रता तो मिली है। वह स्वेच्छा से कुछ भी भला-बुरा कर सकता है, किन्तु धर्म-धारणा ने उस पर सन्मार्ग में ही चलते रहने हेतु अनुशासन के अंकुश भी लगाये हैं। हाथी बलिष्ठ होता है। उसकी उपयोगिता भी है, किन्तु अंकुश के बिना वह सही रास्ते पर चलता नहीं। स्वच्छन्द होने की स्थिति में कहीं भी भटकता है, पर जब महावत का अंकुश अनुशासन उसकी गति-विधि को नियंत्रित करता और अभीष्ट दिशा में चलने का मार्गदर्शन करता है, तभी उसकी क्षमता का सही उपयोग होता है। उसके बिना वह उच्छृंखलता अपनाकर विनाशकारी घटना क्रम भी खड़े कर सकता है। हर समाज, वर्ग, समूह के लिये ऋषिगणों ने बाह्य मर्यादाओं, वर्जनाओं एवं संस्कार रूपी आत्मानुशासन का प्रावधान यही सोचकर किया है कि मनुष्य स्वभावतः उच्छृंखल है। उसे नियंत्रित रखने एवं आत्मिक प्रगति के पथ पर बढ़ाने हेतु इस प्रकार का सीमा बन्धन अनिवार्य है। देव संस्कृति की यह विशेषता अपने आप में अनुपम है।

शालीनता समुद्भूतं द्वयमेवेति मन्यताम् ।
यथाऽऽदर्शान् प्रति त्वास्था सद्भावःसद्विचारणाम् ।।११।।
तत्रोदयं समायातो यत्रोत्कृष्टं च चिन्तनम् ।
अपरान् प्रति सम्मानभावना यत्र चात्मनि ।। १२।।
सौजन्यस्य समारोहस्तत्रैवैतत्तु सम्भवेत् ।
कर्तव्यपालनं नूनं नागराणां न चान्यथा ।। १३।।
निर्वहेच्च सदाचारस्तत्र चाऽप्यनुशासनम् ।
व्यवहारे समागच्छेत् सभ्यता शब्दितं तु यत् ।।१४।।
संभवेच्छलयुक्तं न नाटकीयस्य वस्तुतः ।
सौजन्यस्य च पाखण्डं झटिति प्रकटं भवेत् ।। १५।।

टीका- दोनों ही शालीनता के उत्पादन हैं। जहाँ आदर्शों के प्रति आस्था होगी, वहाँ सद्भावना सद्विचारणा पनपेगी। जहाँ उत्कृष्ट चिन्तन चल रहा होगा, दूसरे के प्रति सम्मान का भाव होगा, अपने में सज्जनता का आरोपण रहा होगा,वहीं नागरिक कर्त्तव्यों का परिपालन बन सकेगा । वहीं शिष्टाचार निभेगा और सभ्यता के रूप में जाना जाने वाला अनुशासन अपनाया जा सकेगा, यह छल पूर्वक नहीं हो सकता। नाटकीय सज्जनता का पाखण्ड प्रकट होने में देर नहीं लगती।। ११-१५ ।।

सभ्यता का व्यवहार सुसंस्कारिता के बलबूते ही बन पड़ता है। जैसा अन्तरंग होता है वैसा ही बहिरंग में परिलक्षित होता है। कोई यह चाहे कि वह बाहर से साज सज्जा एवं वेशभूषा से स्वयं को सभ्य-सम्माननीय बना ले तो भी उसका अन्तरंग उसके चिन्तन के अनुरूप होने के कारण, वह व्यवहार में कहीं न कहीं अपनी झलक दिखा ही देगा। उच्चस्तरीय भाव परक चिन्तन की परिणति सभ्य अनुशासित व्यवहार के रूप में होती है। आदर्श निष्ठा सदैव अच्छे आचरण, दूसरों के प्रति परमार्थ परायणता, पर-दुःख कातरता, एकात्मभाव के रूप में परिलक्षित होती है। अन्तः की सुसंस्कारिता कभी भी अन्तः तक ही सीमित होकर नहीं रह जाती। चिन्तन श्रेष्ठ हो एवं व्यवहार में उसका कोई प्रतिबिम्ब न झलके तो उस चिन्तन से क्या लाभ ? सुसंस्कारिता, सदाचार, सभ्य व्यवहार, कर्त्तव्य परायणता को जन्म दे, तो ही उसकी सार्थकता है। इस प्रकार संस्कृति व सभ्यता एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयासाऽऽसादितो यस्तु शिष्टाचारः स जायते।
अल्पेऽपि प्रतिकूल्ये तु विशीर्णत्वं स्वतः क्षणात्।। १६।।
टीका- सीखा हुआ शिष्टाचार, तनिक सी प्रतिकूलता पड़ते ही अस्त-व्यस्त हो जाता है।। १६।।

बाह्य जगत का लोकाचार जिस नींव पर टिका है वह है- आत्मानुशासन-संस्कारों की श्रेष्ठता, आदर्श निष्ठा। ऐसे लोकाचार में स्थिरता होती है। मात्र प्रदर्शन के लिये किये जाने वाले आडम्बर तो क्षणिक होते हैं, थोड़ी सी चमक भर दिखाकर तिरोहित हो जाते हैं। दुनिया की यह रीति है कि यहाँ बहिरंग को अधिक प्रधानता दी जाती है। जो दूरदृष्टि सम्पन्न विवेकशील होते हैं, वे मात्र बहिरंग के सभ्य व्यवहार को ही नहीं देखते, अंतरंग की सुसंस्कारिता को ही दृष्टि में रखकर व्यक्ति का तदनुसार मूल्यांकन करते हैं। यदि शिष्टाचार शिक्षण द्वारा अभ्यास में आ भी गया तो भी उसकी जड़ें तब तक कमजोर ही हैं जब तक कि वह संस्कारों में समाविष्ट न हो जाये। यहाँ पर सत्राध्यक्ष ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि बाहर से थोपी सभ्यता-शिष्टता अस्थिर होती है एवं परिस्थितियाँ थोड़ी भी विरुद्ध होने पर गड़बड़ा जाती हैं। अंतः का यथार्थवादी स्वरूप दृष्टिगोचर हो जाता है।

यथार्थत्वं गभीरत्वं यत्र तत्र समापतेत्।
झञ्झावातोऽपि चेत्तर्हि सदाचारतरुर्दृढः।। १७।।
न भवेच्चलमूलः सस्थिरता तत्र पूर्ववत्।
पारम्पर्येण संस्कार निर्मितिर्युज्यते त्वतः।। १८।।
टीका- जहाँ यथार्थता और गंभीरता होती है, वहाँ आँधी-तूफान आने पर भी सद्व्यवहार रूपी परिपुष्ट वृक्ष की जड़ें हिलती नहीं। स्थिरता यथावत् बनी रहती है। अतः संस्कारों को पैदा करने की परम्परा बनाये रखनी चाहिये।। १७-१८।।

संस्कारों को व्यवहार में समाविष्ट करके ही कोई व्यक्ति सुसंस्कृत कहलाया जा सकता है। महामानवों की यही रीति-नीति रही है। वे वास्तविकता एवं गंभीर आदर्शवाद में विश्वास रखते हैं। न तो स्वयं हवा में उड़ते हैं, न दूसरों को इसके ख्वाब दिखाते हैं। अंतः में दृढ़ता से जमे संस्कार व्यक्ति को प्रखर-तेजस्वी-मनस्वी बनाते हैं। ऐसे व्यक्ति जो कहते हैं, वह प्रभावकारी होता है। कथनी व करनी में अन्तर न होने से वे सहज ही सभी के लिये अनुकरणीय बन जाते हैं। महामानव प्रगति का समापन किसी बिन्दु विशेष को न मानकर सतत् संस्कार अभिवर्धन की, आदर्शवादिता को अंतः में समाविष्ट करते रहने को अपनी परम्परा सतत चलाये रखते हैं। उनका जीवन जीती जागती किताब बन जाता है। वह बताता है कि किसी को भी ऊँचा उठना हो तो उसे पहले अपनी जड़ें मजबूत बनाना चाहिये। उथलेपन की विडम्बना से बचना चाहिये।

सम्बन्धे संस्कृतेरेतद् विद्यते साऽऽत्मनिर्भरा।
भवति स्वगरिम्णस्तु द्रष्टारः सम्मुखे स्थिताः।। १९।।
नराः किं कुर्वते नैतज्ज्ञातु पश्यन्ति कुत्रचित्।
अशुभेषु शुभेष्वेते सन्ति कालेषु मानवैः।। २०।।
भिन्नप्रकृतिभिर्योगे स्वौत्कृष्ट्यं प्रतिनिर्भराः।
झञ्झावाते न जायन्ते विक्षुब्धा गिरयश्चला।। २१।।
टीका- संस्कृति की यह विशेषता है कि यह आत्म निर्भर होती है। अपनी गरिमा का बोध रखने वाले यह नहीं देखते कि सामने वाले क्या करते हैं। वे भले और बुरे अवसरों पर विपरीत प्रकृति के व्यक्तियों से पाला पड़ने पर भी अपनी उत्कृष्टता के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर रहते हैं। बवण्डर आने पर भी पर्वत न तो हिलते हैं और न विक्षुब्ध विपन्न होते हैं।। १९-२१।।

अनुकूलतायें-प्रतिकूलतायें जीवन में सदैव आती रहती हैं। किन्तु इन झंझावातों से अप्रभावित बने रहकर आदर्शनिष्ठ व्यक्ति प्रयास-पुरुषार्थ में सतत् निरत रहते हैं। वे इन क्षणिक परिवर्तनों से विचलित नहीं होते। उन्हें अपने सुदृढ़ संस्कारों के कारण स्वयं पर, अपने श्रेष्ठता के समर्थक चिन्तन पर विश्वास होता है एवं वही उन्हें सारी कठिनाइयों से उबार कर महानता के पथ पर ले जाता है।

श्रेष्ठतानां समाजस्था मर्यादा अनुशासनम्।
उच्यते पालनीयं तत्सर्वैरेव च मानवैः।। २२।।
अनुशासनजा नूनं व्यवस्था स्थिरता ततः।
प्रगतिः स्थिरता हेतोः समागच्छति च क्रमात्।।२३।।
टीका- श्रेष्ठता की समाजगत मर्यादाओं को अनुशासन कहते हैं। वह सभी के लिये पालने योग्य है। उसके प्रति किसी को उपेक्षा या अवज्ञा नहीं बरतनी चाहिये। अनुशासन से व्यवस्था चलती है। व्यवस्था से स्थिरता रहती और प्रगति होती है।।२२-२३।।

समाज की सुव्यवस्था का मूलभूत आधार है निर्धारित अनुशासनों का परिपूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह। न्याय एवं प्रशासनिक विभाग शासन तंत्र की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर से इस कार्य को निभाते हैं। वे नागरिकों को इस बात का आश्वासन देते हैं कि सम्हगत व्यवस्था में कहीं ढील न आने दी जायगी। जहाँ भी कहीं वर्जनाओं का उल्लंघन होगा, वहाँ समुचित दण्ड का भी प्रावधान होगा।

जहाँ तक समाज का नागरिक स्तर पर प्रश्न उठता है, वह जन-जन के मन में संव्याप्त अनुशासन पर निर्भर है। सामाजिक बन्धनों से कोई भी मुक्त नहीं है। वे सबके ऊपर समान रूप से लागू होते हैं। किसी भी समूह,समाज या तंत्र की व्यवस्था का मूल है हर एक के मन में अनुशासन की-जिम्मेदारी की भावना का विकसित होना। राष्ट्रीय चरित्र का यही मापदण्ड है कि वहाँ के नागरिक अपने कर्त्तव्यों के प्रति कितने सचेत हैं। किसी ने उनके लिये क्या किया, इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि वे समाज एवं राष्ट्र गत वर्जनाओं का पालन करते हैं, अथवा नहीं।

उद्धता शिक्षिता मर्त्या: स्वाहंकारसमुद्भवम् ।
कुसंस्कारत्वमाश्रित्योच्छङ्खलत्वं चरन्त्यलम् ।।२४।।
फलतस्तु सहन्ते ते दु:खान्यन्येभ्य: एव च ।
भवन्ति दु:खदा नीचै: पतन्त: पातयन्त्यपि ।।२५।।
अनुशासनहीनत्वात् विशीर्णत्वमुपैति यत् ।
तस्मात्सम्पन्नता नश्येत् सामर्थ्येन सहैव तु ।। २६।।
अपेक्षया च लाभस्य ततो दृश्यं तु दु:खदम् ।
प्रत्यक्षतामुपैत्येवं पश्चात्तापोऽवशिष्यते ।। २७।।

टीका- उद्धत अनगढ़ लोग अपनी अहंता की कुसंस्कारिता से प्रेरित होकर उच्छृङ्खलता बरतते हैं। फलत: स्वयं गिरते और दूसरों को गिराते हैं। अनुशासनहीनता से जो बिखराव उत्पन्न होते हैं, उसके कारण उपलब्ध समर्थता एवं सम्पन्नता बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और उनके द्वारा लाभ के स्थान पर हानि का दु:खदायी दृश्य ही सामने आता है एवं पश्चात्ताप ही शेष रहता है।। २४-२७।।

समाज समग्ररूप में एक अनुशासनबद्ध तंत्र है। मनुष्य उसकी एक इकाई है। किसी भी भवन का यदि एक भाग कमजोर होता है तो वह शीघ्र ही गिर जाता है। लकड़ी में लगी घुन शहतीर को खोखला कर उसे टूटने को विवश कर देती है। इस पर टिकी बुनियाद कमजोर ही होती है। सेना के सिपाही एक होकर जब लड़ते हैं तो सामने वालों के छक्के छुड़ा देते हैं। किन्तु यदि ये ही स्वतंत्र रूप से निर्णय लेकर अनियंत्रित युद्ध करें तो मुट्ठी भर व्यक्ति ही इन पर काबू पा सकते हैं।

समाज तंत्र पर भी यही बात लागू होती है। अहमन्यता व्यक्ति को उद्धत बना देती है एवं वे सभ्यता की अपनी वर्जनायें भूल कर जो व्यवहार करते हैं, अन्तत: वह उनके एवं सारे समूह-समाज के विनाश का कारण बनता है। झाड़ू की सींकें जब तक एक साथ बँधी हैं, तब तक उपयोगी भी हैं। एक बार अलग होने पर वे कूड़े में फेंकने लायक रह जाती हैं। मनुष्य समर्थ है, सर्वगुण सम्पन्न है, किन्तु अनुशासन के अभाव में वह एक उच्छृङ्खल, वन में घूमते शेर के समान है। संस्कारवश उत्पन्न अनगढ़ता और चिन्तन में समाई अहंता उनकी सामर्थ्य को भी क्षीण कर डालती है एवं ऐसे व्यक्ति अन्तत: दुख के कारण बनते हैं। इन्हें जानना-पहचानना व इनके सुधार के प्रयास करना बहुत अनिवार्य है ताकि समाज की व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे, सभी सुख-शान्ति पूर्वक एक साथ रह सकें।

सृष्टिस्थितौ हि सर्वत्र व्यवहारोऽभिजायते ।
अनुशासनज: सर्वे निर्जीवा जीविनोऽथवा ।। २८।।
ग्रहा: पदार्था: पिण्डाद्या वनस्पति समा अपि ।
अनुशासनसम्बद्धा: स्थिरा: सन्त्यात्मसत्तया ।। २९।।
एषु येऽपि च गृह्णन्ति स्वेच्छाचारं व्रजन्ति ते ।
विनाशं स्वयमन्येभ्यो विपत्तिर्भावयन्त्यपि ।। ३०।।

टीका- सृष्टि व्यवस्था में सर्वत्र अनुशासन ही बरता जा रहा है। ग्रह-पिण्ड, पदार्थ, वनस्पति तथा सजीव-निर्जीव सभी सृष्टि व्यवस्था के अनुशासन में जकड़े रहकर ही अपनी सत्ता बनाये हुये हैं। इनमें से जो भी स्वेच्छाचार बरतता है, वह स्वयं तो नष्ट होता ही है, दूसरों के लिये भी विपत्ति खड़ी करता है।।२८-३०।।

मनुष्य की काया से लेकर जीव-जन्तु समुदाय तक, पदार्थों में दौड़ लगाते अणु-परमाणु समूहों से लेकर ब्रह्माण्डव्यापी ग्रह नक्षत्रों तक तथा विराट प्रकृति के अनन्य घटक वृक्ष-वनस्पति समुदाय में एक ही एकात्म भाव समाया हुआ है। वह है समष्टिगत अनुशासन का। कोई भी क्रिया व्यापार अनुशासन की परिधि से बाहर नहीं है। यदि ऐसा न होता तो सारी सृष्टि में अराजकता की स्थिति आ गयी होती एवं विधाता का सारा सिराजा बिखर गया होता। इसका दूसरा पक्ष भी उतना ही सही है। जो भी इस नियम को तोड़ता एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकृति व्यवस्था के प्रतिकूल आचरण करता है, उसे स्वयं दण्ड भुगतना पड़ता है। बिगाड़ से अव्यवस्था उत्पन्न कर समूह के अन्य घटकों के लिये तो विपदा वह उत्पन्न कर ही जाता है।

अनुशासनपराश्चात्र संयुक्तां सैनिका निजाम् ।
परिचाययन्ति शक्तिं ते लोके मान्या भवन्ति च।। ३१।।

टीका- सैनिक अनुशासन पालते और संयुक्त शक्ति का परिचय देते हैं, इसी से सभी पर उनकी धाक रहती है।। ३१।।

जीवन क्षेत्र में भी अनुशासन पालन करने वाले अपनी धाक जमाये और दूसरों पर छाये रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गाँधी जी थे।

लघव: कीरका ताश्च चीटिका मधुमक्षिका ।
वल्मीककृमयश्चाऽपि तेऽनुशासनगौरवम् ।। ३२।।
जानन्ति मानवा एव तत: किं ज्ञानशीलताम्।
परित्यज्य हि स्वीकुर्युरौच्छृं खल्यमनीप्सितम्।। ३३।।
अपमानं गरिम्णो यत्तस्य नूनं च विद्यते ।
व्यवहारे नात्ममानी तत्कदाचिन्नियोजयेत्।। ३४।।

टीका- चींटी, दीमक तथा मधुमक्खी जैसे छोटे कृमि-कीटक अनुशासन का महत्व समझते हैं, फिर मनुष्य ही क्यों अपनी विवेकशीलता खोकर अनभीष्ट उच्छृंङ्खलता बरते। यह उसकी गरिमा का अपमान है, जिसे कभी भी आत्म सम्मानी को अपने व्यवहार में सम्मिलित नहीं होने देना चाहिये।। ३२-३४।।

यहाँ पशुपक्षियों-जीवजन्तुओं के उदाहरणों द्वारा प्रकृतिगत अनुशासन की महत्ता बताते हुये मनुष्य के लिये तो उसे अनिवार्य बताया ही गया है। मनुष्य जीवधारी समुदाय में सर्वश्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न प्राणी माना जाता है। उससे तो विधाता की अपेक्षाएँ और भी अधिक हैं।

सम्मानं नृगरिम्ण: सा ह्यनुशासनसंसृति: ।
अनुशासिता: समर्था: स्युरन्याश्चाप्यनुशासितान्।। ३५।।

टीका- अनुशासन पालना मानवी गरिमा का सम्मान है। जो अनुशासन पालते हैं, वे ही दूसरों को अपने अनुशासन में रख सकने में समर्थ होते हैं।। ३५।।

स्वयं अपने पर अनुशासन निभा पाने में ही वह समर्थता विकसित हो पाती है, जिससे वह अन्य व्यक्तियों के लिये अनुकरणीय बनता है। जीवन की दैनन्दिन गतिविधियों में इसका कितना समावेश हुआ, इसी पर समर्थन-सहयोग एवं जन सम्मान निर्भर है।

कर्तुमुच्छृंखला ये तु स्वयं तादृक् प्रतिक्रिया:।
अयोग्या सम्मुखे तेषामुपयान्ति सुपीडका:।। ३६।।
प्रकृत्तेरनिवार्येयं दण्डदानव्यवस्थिति: ।
श्रमं कर्तुं विशीर्णा तां नाह्वयेन्नाशमात्मन:।। ३७।।

टीका- उच्छृंखलता अपनाने वालों को बदले में वैसी ही अनुपयुक्त प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ता है। प्रकृति की दण्ड व्यवस्था अपरिहार्य है, उसे अस्त-व्यस्त करने के प्रयत्न-अपना कर सर्वनाश करने की मूर्खता- किसी को नहीं करनी चाहिये।।३६-३७।।

लोकसेवां सामाश्रित्याऽनृण: समाजिकादृणात्।
मर्यादैवास्ति पूता च वानप्रस्थपरम्परा ।। ३८।।
प्रामाणिकत्वमाप्तुं च नीतिमत्ता समीहिता ।
अनिवार्यतया चात्र चरित्रे तु कलंकता ।। ३९।।
पवित्राणां तथा तासां मर्यादानां विलंघनम्।
कुरुतो दुर्बलं मर्त्यमविश्वस्तो भवेच्च स:।। ४०।।

टीका- लोकसेवा अपनाकर समाज ऋण से उऋण होना मर्यादा है। वानप्रस्थ पुनीत परम्परा है। प्रामाणिकता अर्जित करने के लिये नीतिवान् होना आवश्यक है। चरित्र पर उँगुली उठाने एवं पवित्र मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाला मनुष्य भीतर से दुर्बल पड़ जाता है और उसका विश्वास चला जाता है।।३८-४०।।

मर्यादा, अनुशासन, व्यवस्था- इन सबकी परिधि बड़ी विस्तृत है। व्यक्ति को स्वयं पर तो अंकुश लगाना ही पड़ता है, स्वयं को चरित्रवान् बनाना पड़ता है, अपने पुरुषार्थ-साधन को सत्कार्यों में नियोजित भी करना पड़ता है। अन्त: से उद्भूत सुसंस्कारिता-व्यवहार में अनुशासन एवं नीति निष्ठा-परमार्थ परायणता के रूप में सार्थक बनती है। दोनों ही एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।

कुरीतीनां तथैवान्धक्रमाणां च विरोधिता ।
अन्यरूपोपयुक्तानां व्यवस्थानामिह स्वयम् ।। ४१।।
सामाजिकानां दुर्वृत्योल्लंघनस्य प्रदर्शनम् ।
अन्यदेव चरित्रेण युक्तो भवति शक्तिमान् ।। ४२।।
मर्यादापालको मर्त्य: पुरुषोत्तम उच्यते ।
असामान्यं बलं तस्याऽसामान्यश्च पराक्रम:।। ४३।।

टीका- कुरीतियों का-अन्ध परम्पराओं का विरोध करना एक बात है और उपयुक्त समाज व्यवस्थाओं का उल्लंघन करने में उच्छृंखलता दिखाना सर्वथा दूसरी। चरित्रवान् ही शक्तिवान होता है। जो मर्यादाओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपालन करता है, उसे पुरुषोत्तम कहते हैं। उसका बल-पराक्रम असाधारण होता है।। ४१-४३।।

ऐसा व्यक्ति छोटा हो, तो भी उसकी प्रामाणिकता ही उसे वजनदार बना देती है। सच बात कहने में वे हिचकते नहीं।

धर्मयुग्मे तृतीये च शास्त्रकारैस्तु मानितः ।
अनुशासनवत्सोऽयमनुबन्धो महत्ववान् ।। ४४।।
आत्मानुशासनं ह्येतद् व्यवहार्यं निजेच्छया ।
कृत्यप्रकृतिसम्बन्धे विचाराकांक्षयोरपि ।। ४५।।
सामाजिकावृतौ सत्यामपि क्षेत्रस्य चाऽस्य तु ।
औत्कृष्ट्यावरणं कार्यं स्वयमेव नरैरिह ।। ४६।।

टीका--धर्म के तृतीय युग्म में शास्त्रकारों ने अनुशासन की तरह ही 'अनुबन्ध' को भी महत्व दिया है। यह आत्मानुशासन है, जो अपनी आकांक्षाओं, विचारणाओं गतिविधियों तथा आदतों के सम्बन्ध में स्वेच्छापूर्वक बरता जाता है। सामाजिक दबाव होते हुये भी, उस क्षेत्र की उत्कृष्टता का वरण स्वयं ही करना होता है ।।४४-४६।।

स्वेच्छा से अपने ऊपर लागू किया गया अनुशासित जीवन क्रम इतना सरल नहीं है, जिसे सहज अपनाया जा सके। समाज-व्यवस्था, प्रचलन, रीति-रिवाज एवं तत्कालीन प्रवाह के दबाव जैसे प्रतिरोधों से जुझते हुये कसौटी पर खरे उतरना एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ है। क्या उचित है, क्या अनुचित, इसकी काट-छाँट करते हुये श्रेष्ठता का चयन खुद ही करना पड़ता है। इतना विवेक जिसका जागृत हो, वही महामानव बनने की दिशा में आगे बढ़ सकने की पात्रता रखता है।

महतां मानवानां तु व्यवहारोऽथ चिन्तनम्।
अन्तःस्थितौ प्रेरणायां यातो निर्भरतां सदा।। ४७।।
गृह्णन्ति श्रेष्ठता मात्रमनीप्सितमिमे क्षणात्।
पराङ्मुखं प्रकुर्वन्ति विकृतिं यान्ति नो ततः।। ४८।।

टीका- महामानवों का चिन्तन तथा व्यवहार अन्तः की स्थिति तथा प्रेरणा पर निर्भर रहता है। वे दूसरों से मात्र श्रेष्ठता की प्रेरणायें ही ग्रहण करते हैं। अवांछनीयता के आरोपण को वे तत्काल वापस लौटा देते हैं, इसी से वे विकृत स्थिति में नहीं पहुँचते हैं।। ४७-४८।।

जैसी अन्दर से उद्भूत प्रेरणायें होती हैं वैसा ही बाह्य जीवन क्रम ढल जाता है। श्रेष्ठता पर भी मापदण्ड लागू होता है। महामानव बनने की उमंग अन्तः से तो जन्मती ही है, प्रचलन प्रवाह से संव्याप्त उत्कृष्ट प्रेरणाओं के चयन पर भी यह निर्भर करता है कि कौन किस स्तर तक विकसित है। मात्र उचित का चयन एवं अवांछनीय का निरस्तीकरण ही महामानवों के जीवन की रीति-नीति होनी चाहिये।

आनुकूल्यं प्रपश्यन्ति जीवात्मपरामात्मनोः ।
केवलं तेन सन्तुष्टा तिष्ठन्त्यात्मरताः सदा।। ४९।।
ध्यानं ददति निन्दायां स्तुतौ वा ते यदात्विमे।
न्यायनिष्ठैः कृते स्यातामपक्षैश्च विवेकिभिः।। ५०।।
विवेकहीनाः पश्यन्ति स्वानुरूपान् समानपि।
निन्दन्ति वा प्रशंसन्ति निःसारां दृष्टिमाश्रिताः।
तन्न ध्यायन्ति विज्ञास्तु जायन्ते न प्रभाविताः।। ५१।।

टीका- वे मात्र आत्मा और परमात्मा की अनुकूलता का ही ध्यान रखते हैं और इतना बन पड़ने से ही पूर्ण सन्तुष्ट रहते हैं। निन्दा-स्तुति पर वे तभी ध्यान देते हैं, जब वह निष्पक्ष, विवेकवान् और न्यायनिष्ठों द्वारा की गई हो। अविवेकी तो अपने अनुरूप सबको देखते हैं और उथला दृष्टिकोण अपना कर निन्दा या प्रशंसा करते हैं, उस पर विज्ञजन न तो ध्यान देते हैं और न प्रभावित होते हैं।।४९-५१।।

निन्दा विवेकवान की ग्राह्य है, क्योंकि उससे उचित-अनुचित का पता चलता है। अनर्गल प्रलाप करने वालों की संसार में कोई कमी नहीं। उन पर न तो ध्यान देने की आवश्यकता है, न ही स्वयं के चिन्तन को असंतुलित होने देने की। महामानवों की सबसे बड़ी विशेषता है औचित्य का वरण एवं निन्दा-प्रशंसा से विचलित हुये बिना सही मार्ग पर चलते जाना। इस कसौटी पर जो "क्षुरस्यधारा" के समान है, खरे उतरना हर किसी के लिये सहज नहीं है।

अनुशासनं परैरेव द्रष्टव्यं भवतीति यः ।
पालयेत्पूज्यते स तु निन्द्यते य उपेक्षकः ।। ५२।।
अन्तरंगोऽनुबन्धस्तु ज्ञानं तस्यात्मनो भवेत् ।
तपसा तेनस्वात्मैव बलिष्ठो जायते ध्रुवम् ।। ५३।।
व्यक्तित्वं स्वं समुद्गच्छेत् सन्तोषोल्लासयोरपि।
प्राप्तिर्भवति सोऽयं चानुबन्धो व्रतधारणम् ।। ५४।।
दुर्विचारपरित्यागसद्विचाराप्तिरेव च ।
अनुबन्धो बुधैः प्रोक्तः संस्कर्ता यो नृणामिह।। ५५।।

टीका- अनुशासन दूसरों को दीख पड़ता है। पालन करने वालों की प्रशंसा और तोड़ने वालो की निन्दा होती है, अनुबन्ध अन्तरंग होता है। उसकी जानकारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने को ही रहती है। उस तपश्चर्या से अपनी ही आत्मा बलिष्ठ होती है-अपना ही व्यक्तित्व उभरता है और अपने को ही सन्तोष-उल्लास की प्राप्ति होती है। अनुबन्ध व्रत धारण को कहते हैं। मात्र श्रेष्ठ विचारों को अपनाना, बुरे विचारों का मनः क्षेत्र में प्रवेश करते समय उन्हें खदेड़ भगाना अनुबन्ध है, जो मनुष्यों को सुसंस्कृत बनाता है।। ५२-५५।।

अनावेशस्थितिर्बुद्धेः सदा सन्तुलनं तथा ।
शुभाशुभोक्तौ शान्त्या च विचारः पर्यवेक्षणम्।। ५६।।
पक्षस्याऽस्य विपक्षस्य कृत्वा निष्पक्षभावतः ।
न्यायाऽवाप्तिरिह प्रोक्तं शीलं सर्वसुखाकरः।। ५७।।

टीका- आवेश में न आना, सन्तुलन बनाये रहना, भले-बुरे कथन पर शान्तिपूर्वक विचार करना और पक्ष-विपक्ष का पर्यवेक्षण करते हुये किसी निष्पक्ष न्याय-निष्कर्ष पर पहुँचना शील है जो समस्त सुखों का खजाना है।। ५६-५७।।

कृत्यान्यवाञ्छनीयानि भ्रमविस्मृतिकारणात् ।
जायन्तेऽत्र बहून्येवं दुर्बुद्ध्याऽपि तथैव च ।। ५८।।
भिन्नतामुभयोः कुर्वन्ननुरूपेण शोधितुम् ।
यत्नो यो धैर्यमाहुस्तं सर्वाण्येतानि सन्ति च।। ५९।।

टीका- कितने ही अवाञ्छनीय कृत्य भूल या भ्रमवश बन पड़ते हैं, कई जानबूझ कर दुष्ट बुद्धि से होते हैं। दोनों में अन्तर करते हुये तदनुरूप सुधार का प्रयत्न करना धैर्य कहलाता है। यह सभी व्रत अनुबंध हैं।। ५८-५९।।

अनुबंध की, जो आन्तरिक अनुशासन का ही दूसरा नाम है, परिधि बड़ी विस्तृत है। यह एक प्रकार का व्रत बंधन है, जिसमें आंतरिक पुरुषार्थ के माध्यम से आत्मावलोकन पर्यवेक्षण कर अपने दोष-दुर्गुण मिटाकर चिन्तन को दिशा दी जाती है। यह एक समयसाध्य प्रक्रिया है। कभी-कभी व्यक्ति दुर्बुद्धिवश ऐसे कृत्य कर बैठता है जो मर्यादा लाँघ जाते हैं। इन पर कड़ी दृष्टि अनिवार्य है। इन पर रोकथाम लगाकर शील को निभाना एक बहुत बड़ा आत्मिक पुरुषार्थ है।

व्रतानुबन्धनामानि मानवोत्कर्षहेतवः ।
सदा व्यसनराहित्यं स्वभावोऽयोग्य एष यः ।। ६०।।
तद्धानीनां परिज्ञानं तेषां त्यागः शनैः शनैः।
एकवारेण वाऽप्येषा कथिता व्रतशीलता ।। ६१।।

टीका- व्रत और अनुबन्ध ही मानव उत्कर्ष के हेतु हैं। दुर्व्यसनों से बचे रहना, जो अनुपयुक्त आदतें स्वभाव का अंग बन गई हैं, उनकी हानियों को समझना और एक बारगी अथवा धीरे-धीरे छोड़ने में लग पड़ना व्रतशीलता है।।६०-६१।।

व्रतों से जुड़कर ही व्यक्ति ऊँचा उठ पाता है। संकल्पबद्ध हो जाने पर पुरुषार्थ पूरे मनोयोग से उस दिशा में नियोजित हो जाता है। जो भी अवांछनीय है उससे बचना जितना जरूरी है, उतना ही सत्प्रवृत्तियों से जुड़ना भी।

अविकासस्थिता याश्च सत्प्रवृत्तय उन्नतान्।
तासां बीजांकुरान् कर्तुं लग्नतोत्साहिनस्तु या।। ६२।।

टीका- जो सत्प्रवृत्तियाँ अभी विकसित नहीं हो पाई हैं उनके बीजांकुरों को अंकुरित-पल्लवित करने में उत्साहपूर्वक लग पड़ना अनुबन्ध है।। ६२।।

संकल्प अकेले ही पर्याप्त नहीं। उन्हें खाद-पानी देना भी जरूरी है। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य सत्प्रवृत्तियों के जीवन में समावेश हेतु तत्परता से जुट पड़ता है।

अनुबन्धः समाख्यातो गुणकर्मस्वभावके ।
क्षेत्रे सद्वृत्तिमात्राणां वर्धनस्य मनः स्थितिः।। ६३।।
दुष्प्रवृतिः सदा सर्वस्तराः शीघ्रतयैव ताः ।
दूरीकर्तुं च सोत्साहं तत्परत्वमपीह च ।। ६४।।

टीका- गुण-कर्म- स्वभाव के क्षेत्र में मात्र सत्प्रवृत्तियों को ही पनपने-बढ़ने देना चाहिये। दुष्प्रवृत्तियाँ जब भी जिस स्तर की भी उगती दीखें, उन्हें सहन न करना- अविलम्ब उखाड़ फेंकनें में तत्परता प्रकट करना अनुबन्ध है।। ६३-६४।।

यदा-कदा पनप उठने वाली बुराइयों की बाढ़ की कटाई-छँटाई समय पर करते रहना बहुत जरूरी है। यह अनुबन्ध, अनुशासन व्रतशीलता की परिभाषा में ही समाया एक ऐसा तथ्य है, जिसे हर व्यक्ति को सतत् ध्यान में रखना चाहिये।

अन्विषन्ति कुसंस्कारान् सञ्चिताञ्जागृतात्मनः।
उत्पाटयन्ति ता मालाकारा इव तृणादिकम्।। ६५।।
उद्यानात्सततं व्यक्तेः स्वभावादात्मनोऽस्ति सा।
श्रेष्ठता या अभिव्यक्तिर्दृश्यन्ते सज्जनाः सदा।। ६६।।

व्यक्ति का स्वभाव ही उसके बहिरंग व्यवहार में झलकता है। माली की तरह आदमी को आत्मिक क्षेत्र में सतत् निराई-गुड़ाई कर सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने का अभ्यास करते रहना चाहिये। यही वास्तविक पराक्रम है, जो मानव को देवमानव बनाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्कर्माभिरता विज्ञा गुणवन्तो भवन्ति ते ।
प्रतिभाः क्षमतास्ते च वर्धयन्ति वरिष्ठताम् ।। ६७ ।।
कुमार्गप्रस्थितानन्यान् वीक्ष्य नानुसरन्ति तान् ।
न चाकृष्टा भवन्त्येते तैर्नैर्न प्रभाविताः ।। ६८ ।।
परं मार्गं विनिर्मान्ति स्वयमेवात्मनः सदा ।
निर्मान्ति श्रेष्ठतां स्वां तेऽक्षुण्णांसंकल्पमात्रगाम् ।। ६९ ।।

टीका- विज्ञजन तो गुणवान् भी होते हैं। वे अपनी क्षमता, प्रतिभा तथा वरिष्ठता का स्तर निरन्तर बढ़ाते रहते हैं। दूसरे को कुमार्ग पर चलते देखकर, उनका अनुसरण नहीं करते, न उनसे प्रभावित-आकर्षित होते हैं, वरन् अपना मार्ग आप बनाते हैं। अपनी श्रेष्ठता एकाकी संकल्प के आधार पर अक्षुण्ण रखते हैं।। ६७-६९ ।।

कहा गया है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। इसका अर्थ यही हैं कि चुनाव की स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुये मनुष्य को औचित्य के पथ का ही अवलम्बन लेना चाहिये। कोई और न मिले तो एकाकी पुरुषार्थ के बल पर अपना ध्येय निर्धारित कर श्रेय पथ पर चल पड़ना चाहिये। महापुरुष लीक पर न चलकर, इसी कारण अपना मार्ग स्वयं बनाते एवं उत्कृष्टता का वरण कर प्रगति के चरम शिखर पर जा पहुँचते हैं।

एतादृशैर्नैरन्येऽसंख्या लोकाः प्रभाविताः ।
जायन्तेऽनुसरन्त्येतान् भव्यान् मंगलरूपिणः ।। ७० ।।
प्रभावयन्ति नो तांस्तु दुर्जना अपि तु स्वयम् ।
स्वसौजन्यप्रभावेण कुर्वते तान्स्वतोऽन्यथा ।। ७१ ।।

टीका- ऐसे दृढ़ निश्चय मनुष्यों से अगणित लोग प्रभावित होते और अनुसरण करते हैं- ऐसे मनुष्य भव्य मंगल स्वरूप होते हैं। दुर्जन उन्हें प्रभावित नहीं कर पाते, वरन् वे अपनी सज्जनता के प्रभाव से उन्हें ही बदलने में सफल होते हैं।। ७०-७१ ।।

खण्डयन्ति व्रतं स्वं नो दृढसंकल्पसंयुताः ।
संयोगात्खण्डिते प्रायश्चित्तं ते कुर्वते ध्रुवम् ।। ७२ ।।
त्रुटौ कदाचिज्जातायां पातयन्ति मनोबलम् ।
नैव तेऽपि तु द्वैगुण्यसाहसेन पुनस्तथा ।। ७३ ।।
निश्चयं तं समादाय पुनः स्यान्न त्रुटिः क्वचित् ।
अर्जयन्ति ततस्तत्र महत्तच्च मनोबलम् ।। ७४ ।।
मालिन्यं चिन्तनक्षेत्रसमुद्भूतं नरास्तु ये ।
क्षालयन्ति जयन्त्यत्र विचारैस्तु विचारकान् ।। ७५ ।।
चारित्र्यं न पतत्येषां भ्रष्टता चिन्तने तु या ।
दुष्टतायाः समावेशमाचारे कुरुते तु सा ।। ७६ ।।
तथ्यमेतद् विजानन्ति रक्षन्त्यात्मानमत्र च ।
अवाञ्छनीयताऽऽकर्षात्तैरेवात्मधनुर्धरैः ।। ७७ ।।
प्रेम सत्सहयोगोऽपि चाऽऽप्यते परमात्मनः ।
यतात्मा यो नरो नैव स पराजयते क्वचित् ।। ७८ ।।
विश्वजेता स एवास्ति यतात्मा मानवस्तु यः ।
बोधयन्ति नरं चैतत् पन्थानः शास्त्रदर्शिताः ।। ७९ ।।

टीका- संकल्पवान अपना व्रत तोड़ते नहीं, संयोगवश कभी टूटे, तो उसका प्रायश्चित्त करते हैं। कभी कोई भूल होने पर मनोबल गिरने नहीं देते, वरन् दूने साहस के साथ फिर उस निश्चय पर आरूढ़ होते और भूल की पुनरावृत्ति न होने देने के लिये अधिक मनोबल जुटाते हैं। जो चिन्तन क्षेत्र की मलीनता को धोता रहता है, कुविचारों को, सद्विचारों की सेना एकत्रित कर, परास्त करता रहता है। उसका चरित्र गिरने नहीं पाता। चिन्तन की भ्रष्टता ही आचरण में दुष्टता का समावेश करती है, जो इस तथ्य को जानते और अवांछनीयता के आकर्षण से आत्म-रक्षा करते रहते हैं, उन आत्मिक क्षेत्र के धनुर्धरों को ही भगवान् का सच्चा प्यार और सहयोग मिलता है। जिसने अपने को जीत लिया, वह और किसी से हारता नहीं। आत्म विजयी को ही विश्वविजेता कहते हैं। शास्त्रदर्शित समस्त मार्ग मानवमात्र को यही बोध कराते हैं।।७२-७९ ।।

अनुशासन यही सिखाता है कि जो भी मन में सत्संकल्प रूपी बीज उठा, उसे पूरी तरह निष्ठा से निभाया जाय। ऐसी स्थिति में महामानवों के पास उनकी बहुमूल्य सम्पदा मनोबल ही सहायक बनती है। वे चरित्रनिष्ठा पर कड़ी दृष्टि रखते हैं एवं विचार को विचारों से काटकर अपने चिन्तन को परिष्कृत बनाये रखते हैं। जिन्होंने इस प्रकार अपने भीतर वाले को सही कर लिया, अपने पर अंकुश लगा लिया, उसे सच्चे अर्थों में शूरवीर कहा जा सकता है।

धर्मानुशासनस्येदमनुबन्धस्य विद्यते ।
द्वन्द्वं संस्कृतिशब्देन सभ्यतायाः पदेन च ।। ८० ।।
व्यवहरन्ति जना अन्ये ययोर्योगान्निरुह्यते ।
नागरित्वस्य भावोऽयं तथा सामाजिकस्य सः ।। ८१ ।।
ज्ञायते लोक एते च सदाचारस्य नामतः ।
व्यवहारस्य नाम्नाऽपि सतश्च यत्र तत्र तु ।। ८२ ।।

टीका- यह धर्म का अनुशासन और अनुबंध वाला युग्म है। कितने ही इसे सभ्यता और संस्कृति के नाम से, इसकी विवेचना करते हैं। दोनों के मिलने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नागरिकता और सामाजिकता निभती है। उन्हें सद्व्यवहार और सदाचार के नाम से भी जाना जाता है।।८०-८२।।

जनैः साद्भिश्च तत्रत्यै प्रखरत्वसमन्वयः ।
पूतत्वेन सह ज्ञातः सोऽनिवार्यतयाऽथ तैः ।। ८३।।
विनयेनाथ सौजन्यभावेन सह च ध्रुवम् ।
अन्वभूवन्निदं सर्वे महत्ता पथगामिभिः ।। ८४।।
जीवने व्यक्तिगे भाव्यमनुशासनवर्तिभिः ।
क्षेत्रे सामाजिके भाव्यं मर्यादानिष्ठतां गतैः ।। ८५।।
ज्ञातः समागमोऽद्यैष उपयोगी परः समैः ।
उपस्थिता जनाश्चास्य दिनस्यैतद् विवेचनम्।। ८६।।
मत्वा विशेषरूपेण प्रभावपरिपूरितम् ।
प्रसन्नवदनाः सर्वे ययुः सत्र विसर्जनात् ।। ८७।।

टीका- *उपस्थित सन्तजनों ने पवित्रता के साथ-साथ प्रखरता का समन्वय रहने की आवश्यकता समझी। नम्रता और सज्जनता के साथ इस बात की भी आवश्यकता अनुभव की कि महानता के पथ पर चलने वालों को व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन प्रिय और सामाजिक क्षेत्र में उपयुक्त मर्यादाओं के परिपालन में निष्ठावान् होना चाहिये। आज का समागम अतीव उपयोगी समझा गया। उपस्थितजन इस दिन के प्रवचन का विशेष प्रभाव लेकर, प्रसन्नचित्त हो विसर्जित हुये।।८३-८७।।*

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः, श्री आश्वलायन-उद्दालक ऋषिसम्वादे " अनुशासनोऽनुबन्धः," इति प्रकरणो नाम ।। पञ्चमोऽध्यायः ।।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

सौजन्य-पराक्रम प्रकरण

प्रभाते पुण्यवेलायां प्रारब्धः सत्समागमः ।
नैमिषारण्यगां वातावृतिं पूतां भृशं पुनः ।।१।।
ज्ञानालोकेन कुर्वंश्च प्रखरां समशोभत ।
आगन्तारश्च सर्वेऽपि मुनयस्ते मनीषिणः ।। २।।
ज्ञानगंगावगाहेन श्रमे भ्रान्तेर्गते भृशम् ।
अन्वभूवन्नुदारास्ते धर्मात्मानः प्रसन्नताम् ।। ३।।
गतिशीलः प्रसंगोऽभूदवलम्ब्य कथं नरः ।
धर्मस्य धारणां दिव्यां सर्वसाधारणादपि ।। ४।।
जीवनादधिगन्तुं च महामानवतामिह ।
अर्हतीति कथं तिष्ठन् सामान्ये नरविग्रहे ।। ५।।
देवजीवनजं प्राप्तुमानन्दं संभवेदिति ।
मार्गदर्शनमस्याऽऽसीत्सत्रस्य प्रतिपादनम् ।। ६।।
आरुणिः प्रश्नकर्त्ता च पप्रच्छ विनयानतः ।
सत्राध्यक्षं च सत्रेस्मिन् दिव्ये सोद्यतनो मुनिः।। ७।।
धर्मस्य धारणायाश्च भगवन् विषये शुभे ।
ब्रूतां युग्मस्य तुर्यस्य सौजनस्य तथैव च ।। ८।।
पराक्रमस्य सम्बन्धः वर्तते कः परस्परम् ।
धर्माधारौ कथं प्रोक्तावुभावपि बुधैरिह ।। ९।।

टीका- प्रभात की पुण्य वेला में नित्य चलने वाला सन्त-समागम नैमिषारण्य के पुनीत वातावरण को और भी अधिक प्रकाश -प्रखरता से भर रहा था। आगन्तुक उदार धर्मात्मा, मुनि-मनीषी इस ज्ञानगंगा का नित्य अवगाहन करते हुये भ्रान्ति की थकान दूर हो जाने से अतीव प्रसन्नता अनुभव कर रहे थे। प्रसंग गतिशील था। धर्म-धारणा का अवलम्बन करके किस प्रकार सर्वसाधारण से महामानव बनने का सुयोग मिल सकता है, किस प्रकार सामान्य मनुष्य कलेवर में रहते हुये भी देव जीवन का आनन्द लिया जा सकता है, इसका मार्गदर्शन इस सत्र का विशेष विषय था। आज के प्रश्नकर्त्ता आरुणि ने विनयावनत होकर सत्राध्यक्ष से पूछा - हे भगवन् ! धर्म धारणा के चतुर्थ युग्म 'सौजन्य और पराक्रम' के सम्बन्ध में प्रकाश डालने का अनुग्रह करें। बतायें कि उनका परस्पर क्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्ध है और उनको धर्म का आधार क्यों कहा गया है? ।। १-९ ।।

आश्वलायन उवाच–

उपस्थिता जनाः सर्वे शृण्वन्त्ववदधत्वपि ।
धर्मः शब्दान्तरेणाऽत्र मन्तव्यः शुभकर्मता ।। १० ।।
कर्तव्यमिदमेवास्ति मानवानां तथैव च ।
आत्मपूर्णत्वमेवाथ विश्वकल्याणमप्युत ।। ११ ।।
उभयं प्रयोजनं सिद्ध्येदनेन विधिना स्वतः ।
सादर्शा दृढ़तां प्राप्तुमर्ज्याश्च क्षमताः शुभाः ।। १२ ।।
एतासु प्रथमं युक्तं स्नेहसौजन्यमेव तु ।
तत्परत्वं समग्रं च द्वितीयमभिमन्यताम् ।। १३ ।।

टीका- आश्वलायन ने कहा- प्रश्नकर्त्ता समेत सभी उपस्थितजन ! ध्यान से सुनें। धर्म को दूसरे शब्दों में सत्कर्म समझें। यही मनुष्य का कर्त्तव्य है। आत्मिक पूर्णता और विश्व कल्याण का उभयपक्षीय प्रयोजन भी इसी से पूर्ण होता है। इस आदर्शवादी दृढ़ता को प्राप्त करने के लिये कुछ प्रमुख क्षमतायें अनिवार्य रूप से अर्जित करनी होती हैं। इनमें एक है- स्नेह-सौजन्य और दूसरी है-समग्र तत्परता।। १०-१३ ।।

एका सज्जनता प्रोक्ता तथा कर्मठताऽपरा ।
उभयोरपि सम्बन्धः कथ्यते च पराक्रमः ।। १४ ।।
पराक्रमश्च देवानां बलविक्रम उच्यते ।
आधारमिममाश्रित्य स्थितिमुच्चां भजन्तिते ।। १५ ।।
सर्वेषां प्राणिनां ते च कल्याणे मानवाः सदा ।
जायन्ते निरताः श्रेयो विन्दन्त्यपि च सन्ततम् ।। १६ ।।

टीका- सज्जनता और कर्मठता यह दोनों जब मिलते हैं, तो उनका समन्वय पराक्रम कहलाता है। इसी आधार पर वे उच्चतम स्थिति तक पहुँचते हैं। सबका कल्याण करने में निरत रहते हैं और श्रेय प्राप्त करते हैं।। १४-१६ ।।

धर्म की परिधि असीम है। परिभाषा सरल नहीं, अपितु बहुमुखी होने के कारण किंचित-क्लिष्ट भी। धर्म कर्त्तव्यनिष्ठा का पर्यायवाची माना जा सकता है, श्रेष्ठता से अभिपूरित कार्यों में जो निरत हो, वही सच्चा धर्म कहा जा सकता है। मात्र अपनी मुक्ति नहीं, समष्टिगत हित की बात सोचने वाला ही प्रगति के पथ पर बढ़ सकता है। ऋषि श्रेष्ठ यहाँ धर्म के चौथे युग्म के रूप में पारस्परिक स्नेह-सद्भाव एवं सर्वांगपूर्ण तत्परता की चर्चा कर रहे हैं। दोनों ही एक दूसरे के पूरक एवं आदर्श के पथ पर चलने वालों के लिये अनिवार्य हैं। विनम्रता जितनी अनिवार्य है, उद्देश्य के प्रति लगन-दृढ़निष्ठा भी जीवन में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ये दोनों जब मिलते हैं, तब प्रखर पराक्रम जन्म लेता है। इस प्रकार दृढ़ता से युक्त विनम्रता एवं जागरूकता का समन्वय उस गुण को जन्म देता है, जो जीवन व्यापार चलाने एवं ऊँचा उठने के लिये सभी को अभीष्ट है।

अस्ति सज्जनता नूनं गुणः प्रथमतां गतः ।
नम्राः विनयवन्तश्च मधुरव्यवहारिणः ।। १७ ।।
सभ्यताऽभ्याससम्पन्नाः सुसंस्कारयुता नराः ।
उच्यन्ते सज्जना लोके सत्यपक्षानुगाः सदा ।। १८ ।।
हेतोः सज्जनतायाश्च शोभा सा वर्धते नृणाम् ।
अशिष्टा दुष्टसंस्कारा नरा ये सन्त्यसंस्कृताः ।। १९ ।।
सर्वे मानवतां ते तु कुर्वते हि कलंकिताम् ।
धूमकेतुसमास्ते तु जगतः श्रेयसां कृते ।। २० ।।
सज्जनाः पुरुषैः सर्वैर्व्यवहारं शुभं सदा ।
कुर्वते शत्रुभिश्चापि रोगो नाश्योन रोगवान् ।। २१ ।।
प्रवृत्तेरपराधिन्या दमने गृह्यतामपि ।
शल्यक्रियेव चाऽदत्ता चिकित्साकारिणेव च ।। २२ ।।
उपक्रमस्तु कर्तव्यो येन ते गलिता क्रमान् ।
अन्यानवयवान् कुर्युः कदाचिद् गलितान्नहि ।। २३ ।।
स्नेहे सद्भावप्राधान्यं पक्षपातस्य न स्थितिः ।
जायते तत्र सद्भावः हितेच्छां बोधयत्यलम् ।। २४ ।।

टीका- सज्जनता मनुष्य का आरम्भिक गुण है। नम्र, विनयशील, मधुर व्यवहार वाले, सभ्यता की परम्परा से अभ्यस्त, सुसंस्कारी सत्य के पक्षपाती व्यक्तियों को सज्जन कहते हैं। सज्जनता से ही मनुष्य की शोभा बढ़ती है। अशिष्ट,अनगढ़, कुसंस्कारी तो मानवता को कलंकित करते हैं, वह विश्व कल्याण के विनाशसूचक धूम्रकेतू हैं। सज्जन हर किसी के साथ सद्व्यवहार करते है, शत्रु के साथ भी-अपराधी के साथ भी। रोग को मारा और रोगी को बचाया जाता है। अपराधी प्रवृत्ति का दमन करने में चिकित्सक द्वारा की गई शल्य चिकित्सा जैसा उपक्रम अपनाया जाना चाहिये, जो सड़े अवयव को इसलिये काटकर फेंक देता है कि उसके कारण होने वाली सड़न अन्य अवयवों को भी न गला डाले। स्नेह में पक्षपात नहीं, सद्भाव की प्रधानता होती है। सद्भाव का तात्पर्य हितकामना है।। १७-२४ ।।

व्यावहारिक अध्यात्म की शुरूआत सज्जनता से होती है। जिनके अन्तः के संस्कार प्रबल प्रखर होते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे किसी भी स्थिति में चाहे वे कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हो, धर्म को नहीं छोड़ते। सज्जनता की शोभा सद्भाव जन्य सद्व्यवहार में है। वे पाप से घृणा करते हैं, पापी से नहीं। जहाँ अन्त: में परहित की भावना होगी, वहां सामने वाला अपने कितना ही समीपवर्त्ती क्यों न हो, दृष्टि औचित्यपरक न्यायमूलक होगी। ऐसे व्यक्ति का साथ धर्म भी कभी नहीं छोड़ता।

औदासीन्यमुपेक्षा च शोभते न परस्परम् ।
भाव: स्वत्व परत्वाख्यो नोपयुक्तो मतो नृणाम्।। २५।।
हानिरेवैभिरत्रास्ति प्राप्यतेऽनादरात्सदा ।
अनादरो मानलाभ: सहयोगस्य चाऽपि स: ।। २६।।
लाभ: सद्व्यवहारेण जायते यत आत्मन: ।
पिपासा प्रेमसम्बद्धा जायते तस्य तर्पणम् ।। २७।।
आवश्यकं यथाऽऽहारो दीयते वपुषेऽपि स: ।
प्रतीयन्ते प्रियाश्चात्म भावदन्येऽपि मानवा:।। २८।।
विस्तरेण प्रियस्यापि प्रसाद: प्राप्यते सदा ।
परित: स्वं स्वमान्यानां जनानां वासमान्यता।। २९।।
क्रियते तदनुसारं च व्यवहारे सुखावहा ।
परिणतिर्दृश्यते तत्र तत्कालं मोदिनी नृणाम्।। ३०।।

टीका- एक दूसरे के प्रति उदासी-उपेक्षा और परायेपन का भाव बरतना उपयुक्त नहीं। इससे हानि ही हानि होती है। अनादर के बदले अनादर ही मिलता है। सद्व्यवहार की प्रतिक्रिया भी सम्मान और सहयोग के रूप में उपलब्ध होती है। आत्मा को प्रेम की प्यास है। उसे तृप्त करना भी शरीर को भोजन देने की तरह ही आवश्यक है। दूसरों के प्रति आत्मीयता की भाव स्थापना करने पर वे प्रिय लगते हैं। प्रिय का विस्तार होने से प्रसन्नता बढ़ती है। अपने चारों ओर-अपने लोग रहने की मान्यता बनाने और तदनुसार व्यवहार करने पर उसकी सुखद परिणति हाथों-हाथ दीखने लगती है, जो मानव-मात्र को सुखद होती है।।२५-३०।।

जो दूसरों के साथ जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। जो भले होते हैं, उन्हें बदले में सहयोग समर्थन एवं सम्मान मिलता है। जो दूसरों का अपमान करते हैं, वे बदले में वही पाते भी हैं। अपने अन्दर की दुनियाँ जिसकी जैसी भी है, वही बहिरंग में परिलक्षित होती है। मनुष्य स्वभावत: सद्भाव-स्नेह-प्रेम का प्यासा है। उसी से उसका अन्त:करण बना है और वही उसे दूसरों से भी अपेक्षित भी है। जब स्नेह के स्थान पर ईर्ष्या पनपने लगे तो स्वभावत: उसकी प्रतिक्रिया भी वैसी होती है।

इसे विडम्बना ही कहा जाना चाहिये कि लोग रोग, शोक और पतन के कारण बाहर ढूँढते-दूसरों पर थोपते हैं, पर सच तो यह है कि ये आन्तरिक विग्रह के परिणाम होते हैं। बीमारियाँ मन से उपजती है। स्वस्थ रहना हो तो मन को ठीक रखना आवश्यक है।

व्यवहारो निजोऽभ्येति समीपे स्वस्य स तथा।
शब्दो वा कन्दुकश्चाऽपि सम्मुखस्थ गृहस्य तु।। ३१।।
शिखरात् प्रतिहतौ तीव्रमायातस्तु यथा ध्रुवम्।
स्नेह सौजन्य लाभश्चारम्भकर्त्रेऽधिको भवेत्।। ३२।।
अपेक्षायो कृतं यं तु नरमुद्दिश्य तस्य तु ।
प्रत्यक्षं परिणाम: स सेवासाद्भावजो मत: ।। ३३।।
अतिरिक्ततया पुण्यं प्राप्यते वर्द्धते तथा ।
मानमाधारमेनं च समाश्रित्याप्यते च यत् ।। ३४।।
प्रामाण्यं च वरिष्ठत्वं सहयोगो नृणां तत: ।
प्राप्तुं सा न्यूनता नैव काऽपि कुत्राऽपि दृश्यते।। ३५।।

टीका- अपना व्यवहार गुंबज की आवाज की तरह, फेंकी हुई गेंद की तरह, सामने वाले से टकरा कर अपने पास ही लौट आता है। जिसके प्रति स्नेह, सौजन्य बरता गया है। उसे जितना लाभ होता है उसकी तुलना में उस शुभारम्भ करने वाले को अधिक लाभ मिलता है। सेवा के बदले सेवा, सद्भाव के बदले सद्भाव, मिलने का परिणाम तो प्रत्यक्ष ही है। इसके अतिरिक्त पुण्यफल भी मिलता है, सम्मान बढ़ता है और इस आधार पर प्रख्यात हुई प्रामाणिकता और वरिष्ठता पर जन-सहयोग मिलने में भी कमी नहीं रहती ।।३१-३५।।

यह बात छोटे से छोटे और बड़े से बड़े प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अनिवार्य सत्य है। छोटे इसी आधार पर बड़े बनते तथा बड़े इसी आधार पर व्यापक सम्मान और श्रद्धा अर्जित करते हैं।

महान्तो मानवास्त्वेनमाधारमभिगम्य ते ।
जाता: समुन्नता याता अग्रे सर्वेभ्य: एव च।। ३६।।
स्नेहसौजन्ययुक्तानि तेषां वाक्यानि स तथा ।
व्यवहारोऽपि सर्वेस्तु मानितो मानवै: शुभ:।। ३७।।
फलतश्च कृतज्ञत्वभावस्योपकृतेरपि ।
अतिरिक्ततया लाभा: प्राप्ता:प्राप्यतथात्विमान्।। ३८।।
नर: स्यान्मुदितोऽश्रान्तं गौरवी पुलकाञ्चित:।
जनानां सहयोगेन कर्तु नृनुन्नतान् समान्।। ३९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नैतिकाऽध्यात्मिकक्षेत्रे लभतेऽवसरः सदा ।
आधारमिममाश्रित्य शिष्टाचारस्य जायते ।। ४०।।
व्यवहृते सहयोगस्य दिव्या सा तु परम्परा।
वातावृतिर्यतोऽन्ते च निर्मितास्याच्छुभावहा।। ४१ ।।
अवसरः प्रगतेः सर्वैराप्यते नीतिराश्रिता ।
स्नेहसौजन्ययोः सिद्धौ परार्थः स्वार्थ एव च।। ४२।।

टीका- महामानव इसी आधार पर ऊँचे उठे और सबसे आगे बढ़े हैं। उनके स्नेह, सौजन्य से भरे वचन और व्यवहार हर किसी को बहुत भाये। फलतः उनको कृतज्ञता-प्रत्युपकारभावना का अतिरिक्त लाभ भी मिला। इन उपलब्धियों को प्राप्त कर सकने वाला व्यक्ति प्रसन्न-पुलकित रहता है, गौरवान्वित होता है। जन-सहयोग से ही लोगों को ऊँचा उठाने- आगे बढ़ाने का अवसर भौतिक और आत्मिक क्षेत्र में मिलता है। इस आधार पर जन समुदाय में शिष्टाचार, सद्व्यवहार और सहयोग की परम्परा पलती है और उससे उत्तम वातावरण बनता है सभी को प्रगति का अवसर मिलता है। स्नेह -सौजन्य की नीति अपनाने पर स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही समान रूप से सधते हैं।। ३६-४२।।

महामानवों की पौध से मलयागिरि चन्दन की तरह सुवासित वायु के प्रवाह चलते है, एवं सम्पर्क में आने वाले क्षेत्र को प्रभावित करते चले जाते हैं। ऐसे व्यक्ति स्वयं श्रेय को प्राप्त होते हैं एवं अन्य अनेकों के लिये प्रेरणा स्रोत्र बनते हैं। समाज में श्रेष्ठ परम्पराएँ इसी कारण जन्मती व उस वर्ग-समूह को ऊँचा उठाती है। प्रकारान्तर से स्नेह-सौजन्य भरी परमार्थ साधना व्यक्ति के हित के साथ समष्टिगत हित साधन भी करती है। इस प्रकार वह हर दृष्टि से जीवन में उतारने योग्य है।

उद्दण्डादुर्जनास्ते तु न पराक्रमशालिनः ।
भवन्ति तेऽपराधित्वधिया क्राम्यन्ति सन्ततम्।। ४३।।
क्रियात्मकेषु कार्येषु न तु लग्नतया क्वचित्।
स्थातुं समर्था जायन्ते समाजपरिपन्थिनः ।। ४४।।
धैर्यं मनोबलं चाऽस्य कृतेऽपेक्ष्ये भवन्त्यपि ।
आदर्शनिष्ठायोगाच्च कार्याण्यत्र महान्त्यपि।। ४५।।
कष्टानि सहमानैश्च क्रियन्ते तानि मानवैः।
संकल्पं चेदृशं तस्मादधिगच्छन्ति सन्ततम् ।। ४६।।
मनःस्थितौ तथेदृश्यां नैति कश्चिन्निराशताम्।
योद्धुमुत्सहते चात्राऽसाफल्ये प्रतिगामिभिः।। ४७।।
पराक्रमयुतानां च नराणां साहसैः श्रमैः ।
मनोबलेन सिद्धानि कार्याण्यत्र महान्त्यपि ।। ४८।।

टीका- दुर्जन उद्दण्ड भर होते हैं, पराक्रमी नहीं । वे अपराधी प्रवृत्ति अपनाकर आक्रमण कर सकते हैं, पर किसी सृजनात्मक कार्य में लगनपूर्वक देर तक टिके नहीं रह सकते, वस्तुतः वे समाज के शत्रु हैं। इसके लिये धैर्य और मनोबल चाहिये। आदर्शवादी निष्ठा के योगदान से महान कार्य बन पड़ते हैं। कष्ट सहकर भी उन्हें करते रहने का संकल्प इन्हीं कारणों से मिलता है। ऐसी मनःस्थिति होने पर असफलता की स्थिति में भी निराशा नहीं आती और प्रतिकूलताओं से जूझने का साहस अक्षुण्ण बना रहता है। पराक्रमी लोगों के अथक श्रम, अदम्य साहस और अटूट मनोबल के सहारे ही संसार के महान कार्य बन पड़े हैं।। ४३-४८।।

पराक्रम सौजन्य के साथ ही निभता है। सज्जनता कभी उद्धत उच्छृंखलता को प्रश्रय नहीं देती। सौम्य होना ठीक है, परन्तु अनीति सहकर नहीं। उसके लिये पर्याप्त साहस-संकल्प बल होना चाहिये ताकि दृढ़ता से उद्दण्डों से जूझा जा सके। विनम्रता युक्त पराक्रम ही वस्तुतः महामानवों के लिये अभीष्ट है। यह मानवीय गुण, मानवीय चेतना के उस अमृत के समान है, जिसके सहारे दुर्जन समुदाय को भी बदला जा सकता है। अटूट लगन व धैर्य के सहारे वे यह भी कर दिखाते हैं ।

तुलिता मणिमुक्ताभिः शोभनाः श्रमसीकराः।
लग्नता सिद्ध्यधिष्ठात्री प्रोक्ता कामदुघा बुधैः।। ४९।।
तत्परत्वं तन्मयत्वं सुयोगं यत्र गच्छतः ।
साफल्याप्तौ न सन्देहस्तत्र कश्चिद्भवेन्नृणाम्।। ५०।।
कालश्रममनोयोगत्रयाणां यः समन्वयः ।
स्रोतः सर्वविधानां तत् साफल्यानां मतं स्वतः।। ५१।।
रहस्यमेतज्जानन्ति नराः स्वीकुर्वते च ये ।
इयं भाग्यमहालक्ष्मीश्छायेवैतानुपासते ।। ५२।।
जीवितुं तु कियत्केन नेदं वर्षैस्तु गण्यते ।
परं पौरुष संलग्नश्रममाश्रित्य गण्यताम् ।। ५३।।

टीका- स्वेदकणों की मणि - मुक्ताओं से तुलना की गई है। लगन को सिद्धियों की अधिष्ठात्री कहा गया है। यह कामधेनु है। तत्परता और तन्मयता का जहाँ भी सुयोग बनता है, वहाँ सफलता मिलने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है। समय, श्रम और मनोयोग का समन्वय ही समस्त प्रकार की सफलताओं का स्रोत्र है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जो इस रहस्य को अपनाते हैं, भाग्य लक्ष्मी उन्हें चारों ओर से घेरे रहती है। कौन कितना जिया, इसका मूल्यांकन वर्षों के हिसाब से नहीं वरन् पुरुषार्थ में लगे श्रम के आधार पर किया जाता है।। ४९-५३।।

अकेला श्रम भी निरर्थक है। समय प्रचुर मात्रा में हो पर श्रम का माद्दा न हो काम के प्रति तन्मयता न हो, तो वह भी व्यर्थ हो जाता है। जहाँ आदमी के पसीने की बूदें गिरती हैं, वह धरती धन्य हो जाती है। सार्थक श्रम भले ही वह सीमित समय में किया है, समृद्धि लाता है, उस व्यक्ति के जीवन को सार्थक बना देता है।

अत्येति साहसं सर्वान् पुरुषार्थफलं महत् ।
प्राप्यते मानवैः सर्वैरलसा भाग्यवादिनः ।। ५४।।
भवन्ति दोषारोपं च नरेष्वन्येषु कुर्वते ।
वर्द्धयन्ति नराःस्वां तु योग्यतांपुरुषार्थिनः ।। ५५ ।।
न चाञ्चल्यं श्रयन्त्येते स्वीकुर्वन्ति च कर्म यत् ।
प्रतिज्ञापूर्वकं तच्च पूर्णं ते कुर्वते ध्रुवम् ।। ५६।।
असाफल्यमिह प्रोक्त लग्नेन मनसा तथा ।
पूर्णेनाथ श्रमेणापि न कृतं कर्मनिश्चितम्।। ५७।।
समयावधिपर्यन्तमिति तथ्यं विदन्ति ये ।
नासाफल्ये निराशास्ते कुर्वतेऽपि तु कर्म तत्।। ५८।।
मनौयोगेन ते सर्वे द्वैगुण्येन व्रजन्ति च ।
सिद्धिं सुखानि सर्वाणि करस्थानि च कुर्वते।। ५९।।

टीका- साहस बाजी मारता है। पुरुषार्थ का फल सभी को मिलता है। आलसी भाग्य की दुहाई देते और दूसरों पर दोष लगाते रहते हैं। पुरुषार्थी अपनी योग्यता बढ़ाते हैं। चञ्चलता को फटकने नहीं देते। जिस काम को हाथ में लेते हैं, उसे प्रतिज्ञापूर्वक करते रहते हैं। असफलता का तात्पर्य है, पूरे मन और श्रम के साथ पूरे समय तक काम न करना। जो इस तथ्य को जानते हैं वे असफलता मिलने पर निराश नहीं होते। वरन् दूने मनोयोग के साथ काम करते हैं, और सिद्धि को प्राप्त कर समस्त सुखों को अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं।। ५४-५९।।

संसार में आज तक किसी को कुछ अनायास ही नहीं मिल गया है। इसलिये किसी को दोष देने, ईर्ष्या करने की अपेक्षा सफलता का पथ पहचानना हर किसी के लिये आवश्यक है।

आशा विश्वास शक्तिः सा बलकौशलसाधनैः।
विभवैरपि प्रोक्ता च श्रेष्ठा सर्वगुणान्विता।। ६०।।
वाञ्छतीह नरः स्वं यः सुखिनं च समुन्नतम्।
साहसी पुरुषार्थी स श्रमशीलः सदा भवेत्।। ६१।।
प्रयोजनेषु सन्दर्भस्थितेष्वेव मनः सदा ।
नियोजयेन्न चाऽन्यत्र भ्रामयेत्तन्निरर्थकम् ।। ६२।।

टीका- आशा और विश्वास की शक्ति-बल कौशल और साधन की सम्पदा से भी अधिक है। जो सुखी रहना चाहते हो, उन्नतिशील बनना चाहता हो उसे चाहिए। कि पुरुषार्थी रहे, साहस अपनाये और श्रमशील बने। मन को प्रस्तुत प्रयोजनों में लगाये रहे, उसे इधर-उधर न भटकने दे।। ६०-६२।।

निराश हो जाना मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। महामानव सदैव ही इससे बचने की शिक्षा देते रहते हैं। निराश व्यक्ति के लिये बड़े कार्य करना। सम्भव नहीं होता।

श्रमतः कच्छपोऽजषीच्छशकं तीव्रगामिनाम् ।
सन्ततं मन्दगत्याऽपि श्रमलग्ना पिपीलिका ।। ६३।।
शिखरं भूधरस्यैषा याति भारयुताऽपि तु ।
बयो विहगीडोऽपि तच्छ्रमं ख्याति सुन्दरः।। ६४।।
मनोयोगं च, मूर्खास्ते श्रमलग्ना भवन्त्यपि ।
विद्वांसो निर्धनाश्चाऽपि धनवन्तो न संशयः।। ६५।।

टीका- कछुये ने खरगोश से बाजी जीती थी। चींटी धीरे-धीरे किन्तु अनवरत श्रम करके बोझ लिये-लिये पर्वत शिखर पर जा पहुँचती है। बया पक्षी का इतना सुन्दर घोंसला होना, उसके अथक श्रम और समुचित मनोयोग का ही प्रतिफल है। श्रम सलग्न होने पर मूर्खों को विद्वान और निर्धनों को धनवान् बनने का अवसर मिलता है।। ६३-६५।।

यदि लगन सच्ची हो, संकल्प बल दृढ़ हो एवं श्रम करते रहने पर भी धैर्य रखें रहने का गुण मनुष्य में हो, तो भले ही प्रगति की गति धीमी हो, सफलता अन्ततः मिलकर ही रहती है। हर कार्य तत्परता एवं तन्मयता का समन्वय होने पर ही श्रेष्ठ बनता है। कारीगर, मूर्तिकार, चित्रकार सुन्दर-आकर्षक कृति तभी बना सकते हैं, जब तनिक भी विचलित हुये बिना वे पूर्ण मनोयोग से उसमें लगे रहें। परीक्षा में सफलता इसी आधार पर मिलती है। व्यक्ति-व्यक्ति के कार्य एक से होते हुये भी परिणतियाँ भिन्न-भिन्न इसलिये होती हैं कि एक ने उसमें अपने आपको पूरी तरह झोंक दिया, दूसरा किसी तरह टाल-मटूल करता हुआ समय पूरा करता रहा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कभी निराश न होने वाले-सदैव अपने काम में तत्परता से लगे रहने वाले-कर्मयोगी कहलाते हैं। उनके हाथ में जो काम होता है, वह निश्चित ही पूरा होता है, सुन्दर परिणति को प्राप्त होता है। ऐसे पुरुषार्थी अपने अध्यवसाय से उच्च स्थिति तक पहुँचते हैं।

योजितां दिनचर्यां ये कृत्वा लग्नाः परिश्रमे।
सन्ततं स्वास्थ्यमेतेषां दृढं दृढतरं भवेत्।। ६६।।
बर्द्धतेबुद्धिमत्ताऽपि व्यसनेभ्यश्च रक्षितः ।
जायते समये रिक्ते व्यसनानि स्फुरन्ति तु।। ६७।।
आधारं नोपयुक्तं चेल्लभते मतिरप्यतः ।
कुकल्पनाऽभिलग्नात्पथभ्रष्टस्ततो भवेत् ।। ६८।।

टीका- योजनाबद्ध दिनचर्या अपनाकर, जो अनवरत परिश्रम में लगे रहते हैं, उनका स्वास्थ्य सुदृढ़ रहता है, बुद्धिमत्ता बढ़ती है, बुराइयों से बचे रहने का अवसर मिलता है। खाली समय में दुर्व्यसन ही बन पड़ते हैं और मस्तिष्क के लिये कुछ उपयुक्त सोचने का यदि कोई आधार न हो तो वह कुकल्पनाओं में लग पड़ता है और मनुष्य पथ-भ्रष्ट हो जाता है।। ६६-६८।।

चंचल मन वाले, अनियमित जीवन क्रम अपनाने वाले, जीवन में असफल ही रहते हैं। खाली दिमाग को शैतान का घर कहा गया है, जो कि सत्य है। यदि मन को सही दिशा में नियोजित न किया जाय, तो वह न जाने कहाँ-कहाँ भटकता फिरता एवं व्यक्तित्व अनगढ़ बनाता है। मन को इसीलिये काम में लगाना, व्यस्त रखना बहुत अनिवार्य है।

कुविचारा भवन्त्येते घातकास्तु तथा यथा ।
कुकर्माणि कृतान्यत्र तस्मादेतान्न चिन्तयेत्।। ६९।।
छुरिका जीर्णतां याति या हि नैवोपयुज्यते ।
नैष्कर्म्यं पुरुषो याति पशुर्वा चेष्टते न यः ।। ७०।।
स्वाभिर्विशेषताभिश्च हीनो भवति स क्रमात् ।
अभिशापैरतश्चैभिरात्मानं रक्षितुं नरैः ।। ७१।।
उपयोगिश्रमेष्वेतच्छरीरमुपयुज्यताम् ।
स्वाध्यायैः सद्विचारैश्च सत्संगेन मनोऽपि च।। ७२।।
भवेत्कार्यरतं नित्यं मनोयोगेन कर्मणाम् ।
कृतानां श्लाघ्यतां याति स्वरूपं सन्ततं स्वतः।। ७३।।
उपेक्षयाऽस्थिरेणाऽपि मनसा वा कृतानि तु।
कार्पण्यसंगतानीव जायन्ते नाऽपि स तथा।। ७४।।
लाभ आसाद्यते यद्वन्मनोयोगकृतैर्भवेत् ।
सामर्थ्याच्छ्रमशीलत्वं महत्त्वेनातिरिच्यते ।। ७५।।

टीका- कुविचार भी कुकर्मों की तरह ही घातक होते हैं, अतः इनका चिन्तन नहीं करना चाहिये। बेकार पड़े चाकू को जंग खा जाती है। बैठा ठाला मनुष्य या पशु धीरे-धीरे निकम्मा बनता जाता है और अपनी सहज विशेषताओं से हाथ धो बैठता है। इन अभिशापों से बचने के लिये हर समझदार व्यक्ति को अपना शरीर उपयोगी श्रम में लगाये रहना चाहिये। मन को सद्विचारों से, स्वाध्याय और सत्संग के सहारे कार्यरत रखे रहना चाहिये। कामों को मनोयोगपूर्वक करने से उनका स्वरूप प्रशंसनीय बन जाता है, इसके विपरीत उपेक्षा और अन्यमनस्कतापूर्वक किये गये काम बेतुके होते हैं तथा उनसे वैसा लाभ नहीं मिलता जैसा कि मनोयोगपूर्वक करने से मिल सकता था। क्षमता से भी अधिक महत्व श्रमशीलता का है।। ६९-७५।।

मनुष्य के कर्त्तव्य का निर्धारण उसका चिन्तन करता है। यह सही ही कहा गया है कि जो जैसा सोचता है, वैसा ही करता है व वैसा ही बन जाता है। इसीलिये व्यक्ति को सतत् सत् चिन्तन में स्वयं को नियोजित रखे रहने की महत्ता प्रतिपादित की जाती रही है।

साहसं तत्पराक्रमोऽप्याशायुक्तमनः स्थितिः ।
पराक्रमोऽस्ति योग्याश्च नरास्ते साहसं विना।। ७६।।
न शक्नुवन्ति कार्याणि कर्तुं तानि महान्ति ते।
अविकासस्थितावेव तिष्ठन्त्यवसरेऽपि च।। ७७।।

टीका- साहस भी पराक्रम है। आशान्वित रहना पराक्रम है। अनेकों सुयोग्य और समर्थ व्यक्ति साहस के अभाव में बड़े काम नहीं कर पाते और अवसर रहते हुये भी पिछड़ेपन की स्थिति में पड़े रहते हैं।। ७६-७७।।

साहस एवं विधेयात्मक दृष्टिकोण अध्यात्म का पहला पाठ है। सन्त का अर्थ यह नहीं कि अनुचित भी हो तो भी चुप रहें, सहते रहें। इस परिभाषा को मस्तिष्क से निकाल कर ही सच्चे अध्यात्म की उपलब्धि संभव है।

श्रेष्ठाः परम्परा ग्राह्या न च कुप्रचलानि तु।
स्वीकार्याणि न चाऽनीतिः कार्या सह्याऽपि वापुनः।।७८।।
अवाञ्छनीयता नाशं कर्तुं संघर्षशीलता ।
तथैव पुण्यदा पुण्यं नीतिन्यायार्जनं यथा।। ७९।।
अनीतिपीडितोद्धारस्तथा श्लाघ्यो यथा च तत्।
पीडितोद्धारसाहाय्यं कष्टदूरकरं नृणाम् ।। ८०।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- कुप्रचलनों को स्वीकार न किया जाय। मात्र श्रेष्ठ परम्पराएँ ही अपनाई जाँय। अनीति न करें और न अनीति सहें। अवांछनीयताओं का विरोध-उन्मूलन करने के लिये संघर्ष करना भी उतना ही बड़ा पुण्य है, जितना कि नीति-न्याय को अर्जित करना । अनीति के उत्पीड़ितों को बचाना भी उतना ही सराहनीय है, जितना कि दु:खियों की उदार सहायता करके, उन्हें कष्टों से निवृत्ति दिलाना।। ७८-८०।।

स्वयं अपना विवेक प्रयोग न कर अंध परम्पराएँ स्वीकार कर लेना, अनीति सहना एवं ऐसे किसी अभियान सें अपना सहयोग दर्शाना भी एक प्रकार से कायरता का एवं अनीति सहयोग का परिचायक है। हर व्यक्ति को समाज में रहना है, तो अंवाछनीयता का प्रतिकार भी करना होगा एवं संघर्ष हेतु तत्पर भी होना होगा। सज्जनता पराक्रम के साथ ही शोभा देती है। शौर्यरहित सौम्यता एक प्रकार की कायरता है। जिसमें मन्यु जागृत नहीं है, वह मानवी काया में होते हुये भी मनुष्य नहीं है। महामानव इसीलिये न केवल सत्प्रयोजनों में स्वयं को नियोजित करते हैं, अन्य दुखियों की सहायता करते हैं, वरन् दुष्टों-पीड़ितों से उनकी रक्षा भी करते हैं। यह बल-पराक्रम ही सच्चा शील है, मानवी गरिमा का द्योतक है।

पराक्रमश्च सौजन्यं विपरीतमिव द्वयम् ।
भिन्नं प्रतीयमानं तदवच्छिन्नं परस्परम् ।। ८१।।
रहस्यं नव्यरूपेण श्रोतृभिस्तच्छ्रुतं समै: ।
द्वयोर्महत्वमादातुं प्रयोक्तुं च समं द्वयम् ।। ८२।।
सहमतिं स्वां समे व्यक्तां व्यधु: पूर्णतया नरा:।
युगनिर्माणपन्थाश्च दृष्टस्तै: सम्मुखे स्फुरन्।। ८३।।
सत्रे विसर्जिते सर्वेऽप्यभिवादनपूर्वकम् ।
मनीषिण: प्रयान्तस्ते सार्थक्येऽस्य समेऽप्यलम्।
अन्वभूवश्च सन्तोषं हर्षं प्राप्येव सन्निधिम्।। ८४।।

टीका- सौजन्य और पराक्रम एक दूसरे से भिन्न एवं विपरीत जैसे लगते हैं, पर वे दोनों किस प्रकार परस्पर अविच्छिन्न हैं-इस रहस्य को श्रवणकर्त्ताओं ने नये रूप में समझा। वे दोनों को समान महत्व देने और साथ-साथ प्रयोग में लाने के लिये पूर्णतया सहमति व्यक्त करने लगे। युगनिर्माण का मार्ग उन्हें स्पष्ट रूप से दीखने लगा। सत्र विसर्जित हुआ। अभिवादनपूर्वक विदा लेते हुये सभी मनीषियों को इस सुयोग की सार्थकता पर बड़ा हर्ष और सन्तोष अनुभव हो रहा था, मानों कोई श्रेष्ठ निधि हाथ लग गई हो।। ८१-८४।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो:, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयो:, श्री आश्वलायन-आरुणि ऋषि सम्वादे " सौजन्य:-पराक्रम ," इति प्रकरणो नाम ।। षष्ठोऽध्याय:।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

सहकार - परमार्थ प्रकरण

अन्योद्य दिवसः सोऽयं सत्समागमसत्रजः ।
नैमिषे दूरदेशेभ्यः संगतास्ते मनीषिणः ।। १।।
मुनयःसर्व एवैत औदास्यमभजन्निह ।
विचारयन्तः सत्रस्य श्वोऽवसानं तु दुःसहम् ।। २।।
दायित्वानि गृहीतुं च स्वानि गन्तव्यमेव तैः ।
स्वस्वक्षेत्रेषु भूलोके विधातुं स्वर्गिणां गृहम् ।। ३।।
उषित्वा सह सर्वैस्तु दिवसेष्वेषु सप्तसु ।
लब्धो यः परमानन्दः प्राप्तं पीयूषमुत्तमम् ।। ४।।
संयोगस्तादृशः कुत्र प्राप्स्यतेऽस्माभिरुत्तमः ।
नैव जानीम इत्येतत्कारणं तस्य मुख्यतः।। ५।।
आयोजनस्य हेतोश्च सर्वे याताः प्रसन्नताम् ।
पदयात्रा विशालास्ताः कुर्वन्तः कष्टदा अपि ।। ६।।
मार्गेषु विविधेष्वेव स्थानेष्वेभिः स्थितेस्तथा ।
जनसम्पर्ककार्यस्य समस्यानां समाहितेः ।। ७।।
धर्मचैतन्यगा वातावृतेरपि विनिर्मितेः ।
लाभः प्राप्तो ह्यनेकानां पुण्यानामपि तैरिह ।। ८।।
श्रेयोस्य ददति स्म ते सर्वमायोजनस्य तु ।
व्यवस्थापकवर्गेभ्यः सन्तुष्टाः पूर्णतः समे ।। ९।।
निवर्तनस्य कालेऽथ भिन्नैः पथिभिरेव च ।
पातुं क्षेत्रेषु भिन्नेषु धर्मश्रद्धाकरा अपि ।। १०।।
कार्यक्रमा मतौ तेषामुद्भवन्ति स्म सन्ततम् ।
कर्मठत्वकषग्राव तुल्या लोकहिताऽऽवहाः ।। ११।।
प्रारब्धो नियते काले दिनस्याऽस्य पुरोगमः ।
प्रश्नानां शृखंलायाश्च सोपानं चरमं त्विदम्।। १२।।
जिज्ञासूनां वरिष्ठश्च सोऽनुरोधं व्यधात्स्वयम् ।
अध्यक्षं चरमं युग्मं वक्तुं धर्मधृतेः शुभम् ।। १३ ।।

टीका- आज सन्त-समागम सत्र का अन्तिम दिन था। नैमिषारण्य में एकत्रित दूर-दूर से आये हुए मुनि-मनीषी यह सोचकर उदास थे कि कल यह समारोह समाप्त हो जायेगा। उन्हें अपने-अपने क्षेत्रीय उत्तरदायित्व सँभालने के लिए तथा पृथ्वी को देवताओं का स्वर्ग बनाने के लिए जाना पड़ेगा। साथ-साथ रहकर इन सात दिनों में जो आनन्द उठाया-अमृत कमाया, वैसा सुयोग फिर न जाने कब-कहाँ मिलेगा ? उदासी इसी बात की थी। वैसे वे सभी इस आयोजन के लिए लम्बी कष्ट-साध्य पद-यात्रायें करते हुए आने पर भी बहुत प्रसन्न थे। मार्ग में उन्हें अनेक स्थानों पर ठहरने-जन सम्पर्क साधने - समस्याओं के समाधान करने एवं धर्मचेतना का वातावरण बनाने जैसे - अनेक पुण्य-परमार्थों का लाभ भी तो मिला था। इसका श्रेय इस आयोजन की व्यवस्था करने वालों को ही परम संतुष्ट हो कर वे दे रहे थे। वापस लौटते हुए दूसरे मार्ग से जाने और अन्यान्य क्षेत्रों में धर्म - श्रद्धा उत्पन्न करने वाले कार्यक्रमों की योजनायें उनके मस्तिष्क में उठ रही थीं। जो उनकी कर्मठता के लिए कसौटी के पत्थर के समान व लोक हितकारी थीं । नियत समय पर पिछले दिनों की भाँति ही इस दिन का आयोजन भी शुरू हुआ। प्रश्नों की शृंखला का आज अन्तिम सोपान था। जिज्ञासुओं में वरिष्ठ जरत्कारू ने धर्म - धारणा के अन्तिम सुन्दर युग्म पर प्रकाश डालने का अनुरोध करते हुए सत्राध्यक्ष से कहा- ।।१-१३।।

जरत्कारुरुवाच-

समन्वयः कथं देव ! परार्थसहकारयोः ।
उभयोरैक्यतस्तथ्यमेकं कस्मात्प्रजायते ।। १४।।
अस्मान् बोधयितुं सर्वं रहस्यमिदमुत्तमम् ।
अनुग्रहो विधातव्यो भवद्भिः करुणापरैः ।। १५।।

टीका- जरत्कारु ने कहा-हे देव ! सहकार और परमार्थ का समन्वय कैसे होता है ? दोनों के मिलने से एक तथ्य कैसे बनता है ? हे दयानिधे ! इस रहस्य को समझाने का अनुग्रह करें।।१४-१५।।

आश्वलायन उवाच-

युग्मे पञ्चमके बद्धाविमौ द्वौ तु परस्परम् ।
सहकारपरार्थाख्यावुदारत्वाभिबोधकौ ।। १६।।
जायते व्यापकक्षेत्रे यदाऽऽत्मीयत्वविस्तरः ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु भावनोदेति तत्र च ।। १७।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदेत्युदारविश्वासो वसुधैव कुटुम्बकम् ।
इतिरूपे सहास्तित्वं सहभुक्तिरुपैत्यलम् ।। १८।।

टीका- आश्वलायन जी बोले-पंचम युग्म में सहकार एवं परमार्थ जुड़े हुए हैं, जो उदारता के बोधक हैं। आत्मीयता का विस्तार जब व्यापक क्षेत्र में होता है, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना जगती है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उदार विश्वास विकसित होता है, तभी मिल-जुल कर रहना और मिल-बांट कर खाने का व्यवहार चरितार्थ होता है।।१६-१८।।

धर्म के शाश्वत स्वरूप को बनाने वाले विभिन्न गुणों की चर्चा प्रसंग में यहाँ अन्तिम चरण में सहकार एवं परमार्थ के परस्पर सम्बन्धित युग्म की चर्चा ऋषिवर कर रहे हैं। इनका जीवन में समावेश होने पर सब ओर अपना ही स्वरूप परिलक्षित होने लगता है। जब प्राणी मात्र में अपना ही आपा दृष्टिगोचर होने लगे, तो व्यवहार में उदार परमार्थ परायणता एवं सहयोग-सहकार की भावनायें विकसित होने लगती हैं। सारा विश्व एक कुटुम्ब के रूप में विकसित होने की पारिवारिकता-समष्टिगत एकता की भाव-संवेदना विकसित होना इसकी चरम स्थिति है। महामानवों का कोई न अपना होता है, न पराया। जैसे उनके लिए अन्य परिजन, मित्र, बन्धु होते हैं, वैसे ही सभी प्राणी-मात्र होते हैं। इसी कारण वे समष्टिगत हित की बात सोचते हैं, मात्र अपने परिवार की सुख-सुविधाओं-स्वर्ग प्राप्ति, मोक्ष की संकीर्ण मान्यता मन में नहीं लाते।

स्वामी रामतीर्थ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की व्याख्या करते हुए कहते थे-"हाथ का कमाल इसी में है कि वह अपना हित समस्त शरीर के हित में जुड़ा हुआ रखे। किसी भी अंग को अभाव या कष्ट हो, तो उसके निराकरण का उपयोग करे। यदि हाथ यह कर्तव्य धर्म छोड़ दे और कलाई तक ही अपने को सीमित कर ले, तो वह स्वयं भी नष्ट होगा और सारे शरीर को नष्ट करेगा।

"सम्पूर्ण जगत् एक शरीर है, व्यक्ति उसका एक छोटा अवयव। अवयव शरीर के साथ जुड़ा रहे; समाज के सुख, शान्ति और प्रगति का प्रयास करे, इसी में उसका हित साधन है। दूसरों की उपेक्षा करके संकीर्ण स्वार्थपरता में निरत व्यक्ति स्वयं मरते और समूचे समुदाय को मारते हैं।"

"यह सहकार-सामंजस्य परम्परा लड़खड़ाने से ही सामाजिक जीवन में विग्रह पनपते और अपराध बढ़ते हैं। देखने में भले ही व्यक्ति अपराध के लिए दण्डित हों; पर यह सच है कि उसके लिए सारा समाज उत्तरदायी होता है।

माहात्म्यं सहकारस्य वदन्तस्तेब्रुवन्नजनान् ।
प्राणी सामाजिको नूनं मानवोऽस्ति न संशयः।। १९।।
प्रगतिः स्थैर्यमस्यास्ति सहकारसमाश्रिते ।
समाजेन कुटुम्बेन शासनेनाऽपि सन्ततम् ।। २०।।
समूहवादिनीशिक्षा लभ्यते मानवेन तु ।
एकाकित्वं कीटकानां कृमीणां प्रकृतिर्मता ।। २१।।

टीका- सहकार की महिमा बताते हुए उन्होंने कहा-'मनुष्य सामाजिक प्राणी है।' उसकी स्थिरता और प्रगति सहकार पर ही निर्भर करती है। परिवार, समाज और शासन के माध्यम से मनुष्य को समूहवादी बनने की शिक्षा मिलती है। एकाकीपन कृमि-कीटकों का स्वभाव है।।१९-२१।।

मनुष्य जन्म से लेकर बड़ा होने तक जिस आधार पर विकास करता है, उसके मूल में समाज के हर घटक का सहयोग-सहकार है। सभ्यता, सुसंस्कारिता, विवेकशीलता जैसे गुण भी पारिवारिकता के बल पर ही पनपते हैं। एकाकी कोई न जी सकता है, न आगे बढ़ सकता है। वैभव को प्राप्त करने के बाद कोई यह कहे कि यह उनका अकेले का पुरुषार्थ है,तो इसे आत्मप्रवंचना ही कहा जाएगा।

अल्पं विकसिता ये तु पशवः पक्षिणोऽपि ते।
समूहे निवसन्त्येवं पालयन्त्यनुशासनम् ।। २२।।
वल्मीककीटा यद्येते एताश्च मधुमक्षिकाः ।
पिपीलिकाश्च गृह्णन्ति सहकारं भवन्त्यपि ।। २३।।
सुखिनोऽपेक्षयाऽन्येषामुन्नतास्थितिगास्तथा ।
तिष्ठेयुर्मानवास्तर्हि कथं निम्नस्थितिस्थिताः।। २४।।

टीका- थोड़ा सा विकास जिनका हुआ है, वे पशु-पक्षी भी समूह बनाकर रहते हैं और तदनुसार अनुशासन पालते हैं। जब दीमक, चींटी और मधुमक्खी जैसे प्राणी सहकारिता अपनाते और अपेक्षाकृत अधिक सुखी-समुन्नत स्थिति में रहते हैं, तो मनुष्य को ही क्यों पीछे रहना चाहिए ?।।२३-२४।।

मनुष्य तो सृष्टि का सिरमौर है। पशुपक्षी तो मूक होते हैं, उपलब्धियाँ भी उनकी गौण हैं, किन्तु सहकारिता के अनुशासन में वे भी बँधे रहते एवं सतत् विकास करते हैं। उनके उदाहरण मनुष्य के लिए शिक्षा ग्रहण करने योग्य हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता का आधार यही तो माना जाता है कि उसमें बुद्धि एवं विवेक का तत्व विशेष है। उसमें कर्तव्यपरायणता, परोपकार, प्रेम, सहयोग,सहानुभूति, सहृदयता तथा सम्वेदनशीलता के गुण पाये जाते हैं; किन्तु इस आधार पर वह सर्वश्रेष्ठ तभी माना जा सकता है, जब सृष्टि के अन्य प्राणियों में इन गुणों का सर्वथा अभाव हो और मनुष्य इन गुणों को पूर्णरूप से-क्रियात्मक रूप से-प्रतिपादित करे। यदि इन गुणों का अस्तित्व अन्य प्राणियों में भी पाया जाता है और वे इसका प्रतिपादन भी करते हैं, तो फिर मनुष्य को सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानने के अहंकार का क्या अर्थ रह जाता है ?

मानवस्य समस्तायाः प्रगतेः सर्वमेव हि ।
रहस्य सहकारस्य भावनायां स्थितं ध्रुवम् ।। २५ ।।
अस्तव्यस्त स्थितैर्नैव तृणै रज्जुविनिर्मितिः ।
संभवाऽस्ति न निर्मातुं शक्या सम्मार्जिनी दृढा ।। २६ ।।
शलाकाभिर्ननैरत्र पतिताभिरितस्ततः ।
इष्टिकाश्चेत्पृथक् स्युस्ताः कथं गृहविनिर्मितिः ।। २७ ।।
संभवा मौक्तिकैर्माल्या ग्रथितैरेव जायते ।
समूह एवं सैन्यानां शत्रून् विजयते ध्रुवम् ।। २८ ।।
सहकारस्वभावेन मर्त्यानां सुखदायिनी ।
कटुम्बरचना जाता भुवि स्वर्गायिता नृणाम् ।। २९ ।।
समाजो निर्मितोऽथाऽपि राष्ट्रसंघटनं वरम् ।
जातं, संघटनानां च विविधानामिह ध्रुवम् ।। ३० ।।
माध्यमेन हि जातानि कार्याण्याशुमहान्त्यपि ।
रामः कृष्णोऽथ बुद्धोऽपुः साफल्यं सहयोगिभिः ।। ३१ ।।

टीका - मनुष्य की प्रगति का सारा रहस्य उसकी सहकार भावना में सन्निहित है। बिखरे तिनकों से रस्सा नहीं बटा जा सकता। बिखरी सीकों से बुहारी नहीं बनती। ईंटें अलग-अलग रहें, तो भवन कैसे बने? मोतियों के मिलने से ही हार बनता है। सैनिकों का समूह ही शत्रु पर विजय प्राप्त करता है। मनुष्य के सहकार-स्वभाव से ही परिवारों की स्वर्गोपम सुखद-संरचना हुई है, समाज बना है, राष्ट्रों का गठन हुआ है। विभिन्न संगठनों के माध्यम से ही महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुये। राम, कृष्ण और बुद्ध ने सहयोगियों की सहायता से ही आश्चर्यजनक सफलता पाई।। २५-३१।।

एकाकी प्रयत्नों से संसार का कोई भी आदमी नहीं बढ़ पाया, क्योंकि सफलता का रहस्य मिल-जुल कर काम करने में है।

सेनासंयुक्तशक्तिः सा कुरुते कार्यमुत्तमम् ।
कुटुम्बं संघटितं नूनं समाजोऽपि तथा च सः ।। ३२ ।।
बुद्धिं यातोऽथ मर्त्याश्च वियुक्ता यान्ति विग्रहम् ।
वैरं भेदं सहन्ते न प्रातिकूल्यं मनागपि ।। ३३ ।।
यान्तीवाऽकालजं मृत्युमतो ज्ञातव्यमेव तु ।
माहात्म्यं संघजोत्थं तु प्राणिमंगलकारकम् ।। ३४ ।।

टीका- सेना की संयुक्त शक्ति ही काम करती है। संगठित परिवार और समाज फलते-फूलते हैं, जबकि विलगाव से आक्रान्त भेद, फूट, फसाद में लगे हुये तनिक भी प्रतिकूलता सहन नहीं कर पाते और बेमौत मरते हैं। संगठन का महत्व समझा जाना चाहिये, जो प्राणिमात्र का मंगलकारक है।। ३२-३४।।

जब भी कभी पतन होता है, तो उसका मूल कारण संगठन का अभाव माना जाना चाहिये। मनुष्य की संकीर्णता, अलगाववादी प्रवृत्ति ही उसकी प्रगति में बाधक बनती है।

स्वार्थिवर्गः सदा दोषग्रस्ततां याति सन्ततम् ।
तत्प्रभावेण जीर्णश्च विना कालं विनश्यति ।। ३५ ।।
अतो विचारशीलैश्च वसितव्यं सुसंगतैः ।
भोक्तव्यं च सदा भोज्यं यथायोग्यं विभज्य च ।। ३६ ।।
दूरदर्शित्वमत्राऽस्ति गरिमा च नृणां ध्रुवम् ।
कुर्वते सहयोगं ते सहयोगिन उन्नताः ।। ३७ ।।
वसन्ति मोदमानाश्च तेभ्यः क्षुद्रेभ्यः एव ते ।
प्रसन्नाश्चाधिकं तस्मात्सहयोगो महाबलम् ।। ३८ ।।

टीका- स्वार्थियों का समुदाय दोष-दुर्गुणों से ग्रसित होता जाता है और उनके दबाव के कारण समय से पूर्व ही दम तोड़ते देखा जाता है। अस्तु, सभी विचारशीलों को हिलमिल कर रहना चाहिये- मिल-बाँट कर खाना चाहिये। इसी में दूरदर्शिता एवं गरिमा है। सहयोग करने वाले सहयोग पाते हैं और एकाकीपन की क्षुद्रता अपनाने वालों की तुलना में कहीं अधिक प्रसन्न एवं समुन्नत रहते हैं- अतः स्पष्ट है सहयोग में बहुत बड़ी शक्ति है।। ३५-३८।।

स्वार्थी बहुधा अत्याचारी होते हैं। धर्म, पंथ, सम्प्रदाय आदि के नाम पर विश्व में जितने भी अत्याचार, लूटमार, मारकाट या विघटन हुये हैं, अथवा हो रहे हैं, उन सबके पीछे खुले या छद्म रूप में स्वार्थियों की अपनी हित कामना ही निहित रही है। भले ही वे इस कुचक्र रचना में विनष्ट हो गये हों या रहे हों।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थान्ध अत्याचारियों के हाथ में 'धर्म' एक ऐसा कारण- साधन है,जिससे जनता में विषमता स्थापित होती चली जाती है। यह मनुष्यों में समता को नहीं रहने देता। इसके द्वारा धनिक, विद्वान, राजनेता, शासकगण अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। श्रमिकों-मजदूरों में इसी के द्वारा गुलामी की आदत कायम रखी जाती है। धर्म के बहाने लोगों को अनहोनी बातों पर–चमत्कारों पर विश्वास दिलाकर मनुष्यों के अज्ञान को चिरस्थायी बनाया जाता है। इस तरह छल–छद्म से चालाक और धूर्त लोग अपना काम बनाते हैं, मजदूर, अनपढ़ और अज्ञानी लोग लुटते हैं। बडे–बड़े मठाधीश, महन्त, पोप, पण्डे–पुजारी, मौलवी–मुल्ले आम आदमी के इसी अज्ञान का लाभ उठाकर मौज मजे उड़ाते हैं और लोगों को बराबर लूटा करते हैं।

स्वार्थ या विग्रह का विष बहुत ही भंयकर होता है। यह जिस किसी के जीवन में आया, उसको नष्ट करके ही छोड़ता है।जो देता है, वह पाता है। जो रखने का प्रयास करता है,वह अन्ततः हानि ही उठाता है।

निरमात्सहयोगेन समुदायं तथा व्यधात् ।
मिलित्वा शुभकर्माणि दानाऽऽदानेऽध्यगादपि ।। ३९ ।।
आदिकालात्क्रमादत्र प्रगतेः पथिसंचलन् ।
आगतो वर्तमानां च स्थितिं विकसितां पराम् ।। ४० ।।
सहकारप्रधानश्च स्वभावोऽत्र विशिष्यते ।
नैकाकिनो महामर्त्यान्यवात्सु कुत्रचिद् भुवि ।। ४१ ।।
निर्ममुस्ते समूहं तु प्रयासैश्च समूहगैः ।
संकल्पा सुमहान्तस्तैः पूरिताः शीघ्रमेव च ।। ४२ ।।
सत्प्रयोजनहेतोश्च सहकारः स्थिरो दृढ़ः ।
प्राप्यते येषु लोकस्य हितं कर्मसु संस्थितम् ।। ४३ ।।
यथा तथोदयं याति सहयोगस्य शोभना ।
लोकश्रद्धा जगत्पीडा तमिस्रा चन्द्रिका शुभा ।। ४४ ।।

टीका- इसीलिये मनुष्य ने सहयोगपूर्वक समुदाय गठित किये, मिल-जुलकर काम करना सीखा। आदान–प्रदान का क्रम अपनाया और अनादिकाल से लेकर क्रमशः प्रगति पथ पर चलता हुआ वर्तमान स्थिति तक आ पहुँचा। इसमें उनके सहकार प्रधान स्वभाव का ही चमत्कार है। महामानव एकाकी नहीं रहे। उनने समूह बनाये और सामूहिक प्रयासों के बल पर बड़े संकल्प शीघ्र पूरे किये हैं। ठोस और स्थायी सहकार सत्प्रयोजनों के लिये ही मिलता है। जिन कार्यों के पीछे लोकहित का जितना समावेश रहता है, उनमें सहयोग देने भी लोक श्रद्धा उतनी ही उमड़ती है, जो संसार की व्यथा रूपी रात्रि में चन्द्रिका के उदय के समान सिद्ध होती है।। ३९–४४।।

सामूहिकता एक ऐसी शक्ति है, जिससे सारे संसार को जीता जा सकता है। निर्बल वर्ग भी जब अपनों को साथ लेकर खड़ा हो जाता है, तो शक्तिवानों को भी उनके आगे पराजय स्वीकार करनी पड़ती हैं।

स्वस्मै वर्गविशेषाय स्वार्थबुद्धया च यानि तु ।
क्रियन्ते तानि कार्याणि मन्यन्ते स्वार्थगानि हि ।। ४५ ।।
विचारयन्ति येषां स लाभस्ते पुरुषाः स्वयम् ।
श्रमं कुर्वन्तु किं तैश्च परेषां हि प्रयोजनम् ।। ४६ ।।
परं न्यायस्य यत्राऽयमौचित्यस्य तथैव च ।
साहाय्यस्यार्तिजानां च प्रश्नः सन्तिष्ठते पुरः ।। ४७ ।।
चित्तं तत्र समेषां हि योगदानाय सन्ततम् ।
समुत्सहत एवात्र सर्वकल्याणकाम्यया ।। ४८ ।।
रीतिर्नीतिरिमेऽभूतां महतां भुवि सर्वथा ।
सहकारमहत्वं तैर्ज्ञातं सर्वसुखावहम् ।। ४९ ।।
स्वभावं ते चरित्रं च योग्यं व्यक्तिगतं तथा ।
व्यधुस्तैषां च प्रामाण्ये विश्वसेयुर्जनाः समे ।। ५० ।।
कार्याणि यानि तैरत्र हस्तगानि कृतानि तु ।
अभूवंस्तानि सर्वाणि नूनं लोक हितान्यलम् ।। ५१ ।।

टीका- निजी अथवा वर्ग स्वार्थ के लिये जो काम किये जाते हैं, उन्हें लोग स्वार्थ प्रेरित मानते हैं और सोचते हैं, जिनका लाभ है, वे ही श्रम करें, अन्यों को उनसे क्या प्रयोजन ? पर जहाँ न्याय का, औचित्य का, पीड़ितो की सहायता का प्रश्न आता है, वहाँ सभी का मन, सभी की कल्याणकामना से उनमें योगदान करने के लिये उमँगता है। महामानवों की रीति–नीति यही रही है। उनने सभी के लिये सुखकर सहकार का महत्व समझा है। व्यक्तिगत स्वभाव और चरित्र को इस योग्य बनाया है कि लोग उनकी प्रामाणिकता पर विश्वास कर सकें। उनने जिन भी कामों में हाथ डाला, वे सभी ऐसे थे, जिनके साथ लोकहित जुडा रहा।। ४५–५१।।

मानव परहितकारी सहकारी भावना को विकसित करके ही महामानव बनते हैं। यह एक प्रकार का आत्म निर्माण का–प्रामाणिकता अर्जन करने का तप तो है ही, उनकी सेवा–साधना भी है, जो उन्हें इतने ऊँचे पद पर पहुँचाती है। परमार्थ से ही स्वार्थ भी निभता है, व्यक्ति स्वयं भी लाभान्वित होता है, इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थसिद्ध्यै दलानां निर्मातारो भवन्त्यपि ।
दुरात्मानो दुराचारा दुष्टास्ते कूटयोधिनः ।। ५२ ।।
षडयन्त्राणि बहून्यत्र कर्तुं दुरभिसन्धकाः ।
पार्श्वगां समितिं चण्डां कुटिलां स्थापयन्त्यपि ।। ५३ ।।
दुःसहन्ते तथैतेभ्यः म्रियन्ते घ्नन्ति चाऽपरान् ।
एतादृशानां यत्नानामुद्दण्डानां विधीयते ।। ५४ ।।
चर्चा यद्यपि सर्वत्र जनैः शुद्धेन चेतसा ।
नैताञ्जनाः प्रशंसन्ति न चैभिः सहयुञ्जते ।। ५५ ।।
अत एवंविधान्यत्र साफल्यानि नृणामपि ।
सामान्यानां हि दृष्टौ तान्युपेक्षाण्येव सन्ति तु ।। ५६ ।।
साफल्यानि प्रशंसन्ति तानि नो केचिदत्र तु ।
एतादृश्यां दशायां ते गण्यन्ते खलनायकाः ।। ५७ ।।
सदाचारयुताः सन्ति महामानवतां गताः ।
सतां सभां विनिर्मान्ति सम्मिलन्ति च तत्र वा ।। ५८ ।।
विचारयन्ति यच्चाऽपि कुर्वते यच्च निश्चितम् ।
समाविष्टं भवेल्लोकहितं गहनमद्भूतम् ।। ५९ ।।

टीका- स्वार्थ सिद्धि के लिये गिरोह बनाने वाले तो अनेकों दुष्ट,दुरात्मा, कुचाली और कुचक्री भी होते हैं। वे षडयन्त्र रचने और दुरभिसन्धियाँ करने के लिये चाण्डाल–चौकड़ियाँ खड़ी करते रहते हैं, इसके लिये दुस्साहस भी करते हैं। मारने के साथ–साथ मरते भी हैं। ऐसे उद्दण्ड प्रयत्नों की चर्चा तो लोग भारी मन से करते हैं; पर उनकी कोई प्रशंसा नहीं करता, न कोई सच्चे मन से समर्थन करता–न कोई सच्चे मन से सहयोग ही देता है। अतएव इस स्तर की मिली हुई सफलतायें भी सर्वसाधारण की दृष्टि में उपेक्षित ही बनी रहती हैं, उन्हें कोई सराहता नहीं । ऐसी दशा में कर्त्ताओं की खलनायकों में ही गणना होती है। महामानव चरित्रवान् होते हैं; सज्जनों का संगठन खड़े करते या उनमें सम्मिलित रहते हैं; जो सोचते और करते हैं, उनमें अद्भुत लोकहित का समावेश रहता है।। ५२–५९ ।।

तात्कालिक आवेश और आततायी से भयभीत होकर आज अक्सर लोगों को दुष्टों का साथ देते देखा जाता है; पर दुष्टता की शक्ति बड़ी कमजोर होती है। शक्ति तो यथार्थ में वहीं है, जो किसी को ऊँचा उठाये, आगे बढ़ाये।

सत्प्रयोजनहेतोश्च व्यक्तिभ्यस्त्वर्पितानि तु ।
योग्येभ्यस्त्वनुदानानि प्रत्यायान्ति प्रयच्छतः ।। ६० ।।
असंख्यतां गतान्येव प्रियंग्वादीनि तानि तु ।
वप्तुरायान्ति शस्यानि सहस्रत्वं गतानि च ।। ६१ ।।

टीका- सत्प्रयोजनों के लिये प्रामाणिक व्यक्तियों के हाथ में सौंपे गये अनुदान असंख्य गुने होकर देने वाले के पास वापस लौटते हैं। मक्का, बाजरा आदि के बीज उगने पर सहस्रों गुने होकर बोने वाले के पास वापस लौटते हैं।।६०-६१।।

श्रमस्याऽपि धनस्याथ बीजानीशस्य तस्य तु ।
क्षेत्रे परार्थरूपे च वपन्यत्र जनास्तु ये ।। ६२ ।।
लाभ एव भवेत्तेषां मर्त्यसद्वृत्तिवर्धने ।
पाताऽविकासपीडानां वारणे सम्पदामथ ।। ६३ ।।
क्षमतायाश्च तस्यास्तु समुत्सर्गः सदा नरैः ।
अंशस्य महतः कार्यं आत्मा तेन प्रसीदति ।। ६४ ।।
योऽर्जयेत्केवलं स्वस्मै भुंक्ते चाऽपि तु केवलम् ।
स्तेनमाहुर्नरं तं तु सदैकान्तगतिं ततः ।। ६५ ।।

टीका- परमार्थी ईश्वर के खेत में अपने श्रम तथा धन का बीज बोते हैं। इस व्यवसाय में लाभ ही लाभ है। मनुष्य को सत्प्रवृत्ति–संवर्धन के लिये –पतन, पीड़ा और पिछड़ापन हटाने के लिये-अपनी क्षमता और सम्पदा का बड़ा भाग उत्सर्ग करना चाहिये, इससे आत्मा तृप्त होती है। जो अपने लिये ही कमाता है, आप ही खाता है, उसे चोर कहा गया है, चोर भी एकान्तप्रिय होता है।।६२–६५ ।।

जीवन व्यापार में यदि ईश्वर को अपना साझीदार बना लिया जाय, तो लाभ ही लाभ है। परहित हेतु जिन्होंने जन्म लिया है, ऐसे व्यक्ति अपने श्रमसीकरों एवं सम्पदा–सामर्थ्य के माध्यम से लोक मानस को ऊँचा उठाने का पुरुषार्थ करते हैं। वे समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य समझते हैं व जानते हैं कि उन्हें जो कुछ भी मिला है, समाज का एक अंग होने के नाते ही मिला है। इसीलिये उनके हर कृत्य में समष्टिगत हित का समावेश रहता है। यह परोपकार उन्हें जो आत्मसंतोष प्रदान करता है, उसकी तुलना दुनियाँ के किसी वैभव से नहीं की जा सकती।

वर्षन्ति वारिदा नित्यं निःस्वार्थं सरितोऽपि च ।
भूखण्डान् प्राणिनस्तृप्तान् कुर्वते जलसम्पदा ।। ६६ ।।
वृक्षाः फलन्ति यच्छन्ति मेषा ऊर्णां ददत्यलम् ।
भूमिरुत्पादयत्यन्नमेवं यच्छत्स्वपि क्वचित् ।। ६७ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नानुदानेषु चैतेषां न्यूनता काऽपि जायते ।
हस्तेनैकेन योदद्यादीशः प्रतिददात्यलम् ।। ६८।।
तस्मै हस्तेन चाऽन्येन स आदत्ते वरानिव ।
अदातारस्तु शुष्यन्ति म्लायन्त्यम्भोव पाल्वलम् ।।६९।।
निर्झरा यद्यपि स्वल्पा वहन्तो विशदाः सदा।
तिष्ठन्त्येते नरैर्भाव्यमुदारैः परमार्थगैः ।। ७०।।

टीका- बादल निःस्वार्थ भाव से बरसते हैं। नदियाँ अपनी जल सम्पदा से भूखण्डों और प्राणियों की प्यास बुझाती हैं। वृक्ष फल देते हैं। भेड़ ऊन देती है। भूमि अन्न उपजाती है। इन अनुदानों को निरन्तर देते रहने पर भी उन्हें कोई घाटा नहीं पड़ता। एक हाथ से देने पर वरदान की तरह भगवान् उन्हें प्रति दान देता भी रहता है, जिन्हें उसका दूसरा हाथ ग्रहण करता रहता है। जो नहीं देता,वह छोटे पोखरों के जल जैसा सूखता और सड़ता है, जबकि छोटे निर्झर भी सदा बहते और स्वच्छ रहते हैं। अतः मनुष्य को उदार व परमार्थ-परायण होना चाहिये।। ६६-७०।।

मनुष्य को प्रकृति से यह सीख लेना चाहिये कि सदैव देने वाला बदले में पाता है। जड़-निर्जीव समझे जाने वाले पदार्थ, प्रकृति के घटक एवं जीव जन्तु भी दैनन्दिन जीवन में देकर के लेने के सिद्धान्त को अपनाते हैं, तो फिर मनुष्य ही क्यों ऐसा बर्त्ताव करता है, जिससे वह एकाकी, संकीर्ण, स्वार्थी बनता चला जाता है।

जलचक्रे शरीरस्य चक्रेऽथ प्रकृतेरपि ।
आदानस्य प्रदानस्य पारम्पर्यं तु विद्यते ।। ७१।।
दान योऽवरुणद्ध्यत्र नैति सम्पन्नतां क्वचित्।
विपरीततया नश्येत् ग्लायति प्रतिवासरम् ।। ७२।।
संकीर्णत्वं च भीरुत्वं कृपणत्वमथापि च ।
सृष्टिव्यवस्थितेरस्ति पूर्णतस्त्ववहेलनम् ।। ७३।।
स्वीकृत्येमानि लाभस्य ये चाशां कुर्वते नराः ।
अदूरदर्शिनो हानि यान्ति शोचन्ति चान्ततः।। ७४।।

टीका- शरीर चक्र, जल-चक्र और प्रकृति-चक्र में आदान-प्रदान की परम्परा है,जो देना बन्द करता है, वह सम्पन्न तो बनता नहीं, उल्टे सड़ता और नष्ट होता देखा जाता है। संकीर्णता, कृपणता और कायरता सृष्टि व्यवस्था की अवहेलना है। इन्हें अपनाकर जो लाभ की बात सोचते हैं, वे अदूरदर्शी बहुत घाटा सहते और अन्ततः बुरी तरह पछताते हैं।। ७१-७४।।

इकॉलोजी विज्ञान के नियम-अनुशासनों के अनुसार परस्पर आदान-प्रदान ही सृष्टि की सुव्यवस्था का प्राण है। शरीर के जीवकोष निरन्तर झड़ते हैं, नये आते रहते हैं। शरीर नित्य आहार ग्रहण करता है एवं विसर्जन करता है। यह संतुलन जरूरी है। प्राण वायु ग्रहण करके मनुष्य विषाक्त वायु छोड़ता है जिन्हें वृक्ष वनस्पति ग्रहण करते व बदले में मनुष्य के लिये प्राण वायु प्रचुर मात्रा में देते हैं। वृक्ष वनस्पतियों को अपने उपकार के बदले में मनुष्य व जीवधारियों से उर्वरक रूपी पोषण मिलता है। यह सारी व्यवस्था अन्योन्याश्रित सम्बन्धों पर टिकी है।

उदारात्मीयताऽऽदानात्परार्थैकपरायणात् ।
दृष्ट्या व्यापकया चात्मा विकासं यातिहर्षितः।। ७५।।
वैभवं कृपणानां तु दुर्गतिग्रस्ततां व्रजेत् ।
यत्र तिष्ठेद् ग्लापयेत्तत्तीक्ष्णाम्ल इव सन्ततम् ।। ७६।।
नश्येद् येन समूलं तदुच्यतां बौद्धिको भ्रमः ।
नृणामेष यदिच्छन्ति क्षमतां सञ्चितां निजाम्।। ७७।।
लाभं तस्य च वाञ्छन्ति दातुमल्पेभ्य एव तु।
पार्श्वस्थेभ्यो मता मूर्खाः कुशला अपि चान्ततः।। ७८।।

टीका- आत्मा का विकास उदार आत्मीयता, परमार्थ-परायणता और व्यापक दृष्टिकोण अपनाये रहने में है। कृपणों का वैभव दुर्गतिग्रस्त होता है और जहाँ भी वह ठहरता है, तेज अम्ल की तरह उसे गला जला कर समाप्त कर देता है। इसे मतिभ्रम ही कहना चाहिये कि लोग अपनी क्षमता को संचित करके रखना चाहते हैं और उसका लाभ कुछ थोड़े से ही समीपवर्त्ती लोगों को देना चाहते हैं। इस नीति के अपनाने में चतुरता अनुभव करने वाले लोग अन्ततः मूर्खों के समूह में गिने जाते हैं। ७५-७८।।

कृपण बुद्धि के संकीर्ण मानस वाले व्यक्ति इहलोक एवं परलोक दोनों में ही अपयश पाते हैं। व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी उदार परमार्थपरायणता, सहकारिता एवं समष्टिगत पारिवारिकता की भावना के आधार पर होता है। ऐसे व्यक्तियों की इस संसार में कमी नहीं है, जिन्होंने एषणा में लिप्त होकर शान्त मनःस्थिति में ही सारी जिन्दगी काट दी एवं अन्त में हाथ धुनते-पछताते कूच कर गये ।

उदारमानसैर्लोकैर्बहु विश्वाय चाऽर्पितम् ।
दानमेकं समर्प्यासावनुदानानि विंशतिम् ।। ७९।।
अधिगन्तुमभूदर्हो नात्मसन्तोष आप्यते ।
लोकमानं तथा दैवोऽनुग्रहो मानवैः समैः।। ८०।।
उदारमानसाः सन्ति ये मतास्तेऽधिकारिणः।
दैवानामनुदानानामुदारा ये नराः स्वयम् ।। ८१।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तेषु वर्षति चोदार्यं विश्वस्यापि नरेष्वलम् ।
कृपणेषु समाजस्य प्रभोः कोपश्च वर्षति ।। ८२ ।।
पापकृत्यमिदं प्राहुः संसारक्रमपद्धतौ ।
व्यतिरेकसमुत्पादितया दुर्गतिकं नृणाम् ।। ८३ ।।

टीका- उदारमना लोगों ने विश्व वसुधा को बहुत कुछ दिया है। जिसने जितना दिया है, वह उसी अनुपात में 'एक दान के बदले बीस अनुदान' अर्जित करने में सफल हुआ है। आत्म-सन्तोष, लोक सम्मान और दैवी अनुग्रह हर किसी को नहीं मिलते। इन दैवी अनुदानों के अधिकारी मात्र उदारमना ही होते हैं। जो स्वयं उदार हैं,उसी पर संसार की उदारता बरसती है। कृपणता अपनाने से समाज भी रुष्ट रहता है और भगवान का कोप भी बरसता है। यह संसार क्रम में व्यतिरेक उत्पन्न करने के कारण तथा मनुष्यों की दुर्गति करने वाला होने से पापकृत्य माना गया है।। ७९-८३।।

दैवी अनुदान अनायास ही नहीं मिलते। जो परमार्थ में स्वयं को नियोजित करते हैं, जिनकी दृष्टि उदार होती है, दूसरों के प्रति जिनके मन में करुणा होती है, उन्हें परमपिता अजस्र अनुदानों से लाद देते हैं

मूल्यं धर्मधृतेरात्मप्रगतेश्चैवमेव हि ।
निश्चोयते नरेणात्मजीवने कियती च सा ।। ८४ ।।
गृहीतोदारता चाथ परार्थाभिरतिस्तथा ।
दर्शिता स्वर्गमुक्त्यात्मं फलं तत्र फलेत्तरौ ।। ८५ ।।

टीका- धर्मधारणा और आत्मिक प्रगति का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाता है कि अपने जीवन क्रम में कितनी उदारता अपनाई और परमार्थ परायणता दर्शाई। स्वर्ग और मुक्ति का पुण्य प्रति फल इसी परमार्थ परायणता के वृक्ष पर लगता है।।८४-८५।।

धर्म धारणा को प्रतीक और कर्मकाण्ड तक सीमित रखने वाले लोग भगवान को पाने के झूठे भ्रम में रहते हैं। भगवान तो सेवा में उदारता में विद्यमान हैं।

धर्मस्य धारणायाश्च युग्मैरन्यै समं समे ।
जानन्तु पंचमं युग्मं महत्वमहितं भुवि ।। ८६ ।।
धर्म आचरणस्यापि विषये विद्यते यतः ।
क्रियायां परिणतं ते च कुर्वते मानवास्ततः ।। ८७ ।।
कथनेनाऽथवा लोके श्रवणेन तु केवलम् ।
प्राप्यते ज्ञानमात्रं तु दिशाबोधश्च जायते ।। ८८ ।।
धर्मचर्चाऽनिवार्याऽतः समैरेव मता परम् ।
पर्याप्ता नैव नूनमाचारेण विना भुवि ।। ८९ ।।

टीका- धर्मधारणा के अन्य चार युग्मों की भाँति यह पाँचवां युग्म भी अतीव महत्वपूर्ण है। धर्म आचरण का विषय है। उसे कर्म में परिणत किया जाता है। कथन-श्रवण से तो जानकारी प्राप्त होती और दिशा मात्र मिलती है। अतएव धर्मचर्चा को आवश्यक तो समझा गया है, पर उसे आचरण में लाये बिना पर्याप्त नहीं माना गया।। ८६-८९।।

धर्म वस्तुतः पढ़ने भर की वस्तु नहीं, वह तो महानता का आचरण है। उसे अपनाने से ही धर्म धारणा परिपक्व होती है और सिद्धि प्राप्त होती है।

सत्रे समाप्ते सर्वेऽपि जनास्ते तु परस्परम् ।
आलिलिंगुर्गृहीत्वा च गले रोमांचिताः समे ।। ९० ।।
सत्राध्यक्षं प्रणेमुस्ते यो ववर्षाऽमृतं वचः ।
आगतेभ्यश्च धर्मस्य धारणाया महत्वगम् ।। ९१ ।।
तत्वज्ञानं सगाम्भीर्यं बोधयामास यत्नतः ।
सर्वेर्गन्तुं द्वितीयेऽहि निजस्थानानि निश्चितम् ।। ९२ ।।
निजेष्वाचरणेष्वेव स्वरूपं शोभनं समे ।
धर्मस्य धारणायास्ते निरचिन्वन् समाहितुम् ।। ९३ ।।
वातावृतौ सदुत्साहभरितायां तपोवने ।
सत्रं समाप्तं तदा दिव्यं जयघोषपुरस्सरम् ।। ९४ ।।
भूयोऽपि चेदृशं दिव्यं भवेदायोजनं तथा ।
तत्र सम्मिलिताः स्याम वाञ्छा चेतसि सोद्गता ।। ९५ ।।

टीका- सत्र समापन पर सभी उपस्थित जन गले मिले एवं हर्ष से गद्गद् हो गये। सत्राध्यक्ष को नमन-अभिनन्दन किया, जिनने ऐसी अमृत वर्षा की और आगुन्तकों को धर्म-धारणा के तत्वज्ञान को गम्भीरतापूर्वक समझाने का सफल प्रयत्न किया। कल सभी को अपने-अपने स्थानों को जाना था। सबने अपनी-अपनी गतिविधियों में धर्मधारणा के इस स्वरूप को और भी अच्छी तरह समाविष्ट करने का निश्चय किया। अत्यन्त उत्साह के वातावरण में जयघोष के साथ तपोवन में आयोजित वह सत्र समाप्त हुआ। दूसरी बार फिर ऐसे ही आयोजन के होने और उसमें सम्मिलित होने की आकांक्षा सभी के मन में उठ रही थी ।।९०-९४।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्री आश्वलायन-जरत्कारु ऋषि सम्वादे "सहकारः-परमार्थ", इति
प्रकरणो नाम सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तृतीय मण्डल
।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

परिवार-व्यवस्था प्रकरण

एकदा तु हरिद्वारे कुम्भपर्वणि पुण्यदे ।
पर्वस्नानस्य सञ्जातः समारोहोऽत्र धार्मिकः ।। १ ।।
देशान्तरादसंख्यास्ते सद्गृहस्थाश्च संगताः ।
अवसरे च शुभे सर्वे पुण्यलाभाप्तिकाम्यया ।। २ ।।
सद्भिर्महात्मभिश्चाऽपि संगत्यात्र परस्परम् ।
सन्दर्भेसमयोत्पन्नस्थितीनां विधयः शुभाः ।। ३ ।।
मृग्यास्तथा स्वसम्पर्कक्षेत्रजानां नृणामपि ।
समस्यास्ताः समाधातुं सत्प्रवृत्ते र्विवर्धने ।। ४ ।।
मार्गदर्शनमिष्टं च राष्ट्रकल्याणकारकम् ।
भागीरथीतटे तस्मात्सम्मर्दः सुमहानभूत् ।। ५ ।।
पुण्यारण्येषु गत्वा च सर्वे देवालयेष्वपि ।
प्रेरणाः प्राप्नुवन्त्युच्चा धार्मिकास्ते जनः समे ।। ६ ।।

टीका- एक बार पुण्यदायी कुम्भपर्व पर हरिद्वार क्षेत्र में विशाल पर्व-स्नान का धर्म समारोह हुआ । देश-देशान्तरों से अगणित सद्गृहस्थ उस अवसर पर पुण्य-लाभ पाने के लिए एकत्रित हुए। साधु-सन्तों को भी परस्पर मिल-जुलकर सामयिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में उपाय खोजने थे, साथ ही अपने संपर्क क्षेत्र के लोगों की समस्यायें सुलझाने एवं सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के सन्दर्भ में राष्ट्र-कल्याणकारी मार्गदर्शन भी करना था। भागीरथी के तट पर अपार भीड़ थी, तीर्थ आरण्यकों और देवालयों में पहुँचकर धर्म-प्रेमी उच्चस्तरीय प्रेरणायें प्राप्त कर रहे थे ।। १-६ ।।

कुम्भ आदि पर्वों पर-तीर्थस्थानों पर भारी संख्या में सन्तों और गृहस्थों के संगम होते रहने के प्रमाण स्थान-स्थान पर मिलते रहते हैं । मोटी मान्यता यह है कि समय-विशेष पर स्नान आदि का विशेष पुण्य प्राप्त करने के लिए ही लोग पहुँचते हैं । वह भी एक पुण्य हो सकता है, किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में अनेक महत्वपूर्ण उद्देश्यों की चर्चा की गयी है।

अनादिकाल से ऋषियों का-सन्तों का-एक देश-व्यापी तन्त्र,कार्य करता रहा है। अपनी-अपनी साधनाओं से उपलब्ध महत्वपूर्ण सूत्रों का एकीकरण, बदलती परिस्थितियों के अनुरूप धर्म-तन्त्र के क्रियात्मक सूत्रों का निर्धारण, सामाजिक-राष्ट्रीय समस्याओं के सन्दर्भ में सर्वसम्मत हल तथा तदनुरूप मार्गदर्शन की व्यवस्था-जैसे महत्वपूर्ण पुण्यदायी कार्य ऐसे अवसरों पर किए जाते थे। इनका लाभ जनसामान्य भी उठाते थे और जन-जन तक पहुँचाने का क्रम भी चलता रहता था ।

अस्मिन् पर्वणि धौम्यश्च महर्षिः सव्यधाच्छुभम् ।
सत्रं तत्र गृहस्थानां मार्गदर्शनहेतवे ।। ७ ।।
तस्या आयोजनस्येयं सूचना विहिताऽत्र च ।
शंखनादेन घण्टानां निनादेनाऽपि सर्वतः ।। ८ ।।

टीका- इस पर्व आयोजन के बीच महर्षि धौम्य ने सद्गृहस्थों के मार्गदर्शन हेतु एक विशेष सत्र का आयोजन किया। इस आयोजन की सूचना शंख बजाते हुए सभी को दे दी गयी ।। ७-८ ।।

प्राचीनकाल के ऋषियों ने अपने समय की समस्याओं पर उसी समय की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए प्रकाश डाला था। आज की स्थिति उस समय से भिन्न है। आज वे समस्यायें नहीं रहीं, जो प्राचीन काल में थीं। तब परिवार सीमित और सुसंस्कारी होते थे, साधन भी पर्याप्त थे। परन्तु अब नयी समस्यायें सामने हैं, उनके समाधान आज के हिसाब से ही ढूँढने होंगे। यह काम युगद्रष्टाओं और काल पुरुषों का है। वे ही समय-समय पर युगानुरूप समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करते रहे हैं। यहाँ महर्षि ने बदलती परिस्थितियों में समयानुकूल समाधान प्रस्तुत करने के लिए सद्गृहस्थों -सामान्यजनों को आमन्त्रित किया है।

सत्रसप्ताहमारब्धं विषयेष्वपि च सप्तसु ।
प्रथमे दिवसे चाभूदौत्सुक्यमधिकं नृणाम् ।। ९ ।।
जिज्ञासवो गृहस्थाश्च बहवस्तत्र संगताः ।
गृहिण्योऽपि विवेकिन्यो बहव्यस्तत्र समागताः ।।१० ।।
उपस्थितान् गृहस्थाँश्च संबोध्योवाच तत्र सः ।
ऋषिर्धौम्यो गृहस्थस्य गरिम्णो विषयेऽद्भुतम् ।।११ ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुण्यदं घोषितं तच्च गृहेऽपि वसतां नृणाम् ।
वातावृतेस्तपोभूमेः समानाया विनिर्मितेः ।। १२ ।।
गुरुकुलस्य विशालस्य संचांलनविधेरिव ।
ओजस्विन्यां गभीरायां वाचि वक्तव्यमाह च ।। १३ ।।

टीका- सत्र प्रारम्भ हुआ। इसे सात दिन चलना था और सात विषयों पर प्रकाश डाला जाना था। प्रथम दिन उत्सुकता अधिक थी। बहुत से जिज्ञासु गृहस्थ उपस्थित हुए। विचारशील महिलायें भी उसमें बड़ी संख्या में उपस्थित थीं। उपस्थित सद्गृहस्थों को सम्बोधित करते हुए, महर्षि धौम्य ने गृहस्थ-धर्म की अद्भुत गरिमा बताई। उसे घर में रहते हुए तपोवन का वातावरण बनाने और गुरुकुल चलाने के समान पुण्य-फलदायक बताया। गम्भीर ओजस्वी वाणी में अपना प्रतिपादन प्रस्तुत करते हुए वे बोले ।। ९-१३ ।।

गृहस्थ-धर्म जीवन का एक पुनीत, आवश्यक एवं उपयोगी अनुष्ठान है। आत्मोन्नति करने के लिए यह एक प्राकृतिक, स्वाभाविक और सर्वसुलभ योग है। गृहस्थ-धर्म के परिपालन से ही आत्म-भाव की सीमा बढ़ती है, एक से अनेक तक आत्मीयता फैलती-विकसित होती है । इसमें मनुष्य अपनी दिन-दिन की खुदगर्जी के ऊपर अंकुश लगाता जाता है, आत्मसंयम सीखता और स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी, परिजन आदि में अपनी आत्मीयता बढ़ाता जाता है। यही उन्नति धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है और मनुष्य सम्पूर्ण चर-अचर में जड़-चेतन में, आत्मसत्ता को ही समाया देखता है। उसे परमात्मा की दिव्य ज्योति जगमगाती दीखती है ।

गृहस्थाश्रम ऐसा आश्रम कहा है, जिसकी परिधि में आज के विश्व की बहुसंख्य जनसंख्या समा जाती है। इस दृष्टि से इस आश्रम की मर्यादाओं में किसी भी भले-बुरे परिवर्तन का प्रभाव सर्वाधिक लोगों को प्रभावित करता है, जो कि समाज की एक इकाई है। समाज का एक स्वरूप ही मनुष्य का अपना परिवार है। परिवार संस्था को लौकिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए अतीव उपयोगी माना गया है। परिवार जीवन की परिभाषा करते हुए ऋषि-मनीषियों ने कहा है-"परिवार परमात्मा की ओर से स्थापित एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा हम अपना आत्म-विकास सहज ही में कर सकते हैं और आत्मा में सतोगुण को परिपुष्ट कर सुखी, समृद्ध जीवन प्राप्त कर सकते हैं। मानव जीवन की सर्वांगीण सुव्यवस्था के लिए पारिवारिक जीवन प्रथम सोपान है। मनुष्य केवल सेवा, कर्म और साधना में ही पूर्ण शान्ति प्राप्त कर सकता है।"

जिस प्रकार परमात्मा और आत्मा में सिवाय छोटे बड़े स्वरूप के और कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार समाज और परिवार में कोई अन्तर नहीं है। परिवार को समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाना समाज के उत्थान करने की एक छोटी-प्रक्रिया है। उसको क्रियात्मक रूप देने की प्रयोगशाला परिवार है। समाज सेवा का परिपूर्ण अवसर अपने परिवार के छोटे से क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है और उतने का सुधार कर सकना सरल एवं साध्य भी है। यदि हम सब अपने कौशल, ज्ञान और क्षमता का पूरा-पूरा लाभ देकर परिवार के माध्यम से समाज सेवा का उत्तरदायित्व निभाते चलें, तो जल्दी ही वे परिस्थितियां आ सकती हैं, वह सुकाल आ सकता है, जो कभी प्राचीन युग में रही हैं। शास्त्र का वचन है-

तथा तथैव कार्याऽत्र न कालस्य विधीयते ।
अभिन्नेव प्रयुञ्जानो ह्यमिन्नेव प्रलीयते ।।

अर्थात् "इस संसार के साथ हमारा संयोग है, इसी संसार में हमारा लय हो जायेगा, तब हमें जिस समय जो कर्तव्य हो, वही करना अनिवार्य है। व्यक्तिगत सुविधा अथवा असुविधा को लेकर कर्त्तव्य के पुण्य पथ पर चलते रहना चाहिए।" इसीलिए धर्म ने गृहस्थाश्रम को तपोभूमि कहकर उसकी महत्ता स्वीकार की है।

गृहस्थ एव इज्यते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
चुतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ।।

अर्थात्"गृहस्थ ही वास्तव में यज्ञ करते हैं। गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं। इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका सिरमौर है।" गृहस्थ जीवन एक तप है, एक साधना है। इसका समुचित प्रयोग करके ही वास्तविक जीवन लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

यहाँ ऋषि श्रेष्ठ ने गृहस्थाश्रम को तपोवन बताते हुए उसकी गरिमा बताने एवं इस आश्रम को एक समग्र गुरुकुल व्यवस्था के रूप में चलाने-विकसित करने की महत्ता दर्शाने का प्रयास आरम्भ किया है। उन्होंने अपने उद्बोधन का शुभारम्भ ही गृहस्थाश्रम के माहात्म्य से किया है। जो स्पष्टतः इस प्रकरण की गम्भीरता जताता है।

धौम्य उवाच-

गृहस्थाश्रमधर्मस्य परिपालनमप्यहो ।
योगभ्यास इवास्तीह संयमादात्मनः सदा ।। १४ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यथाकालं तु ये चैनं धर्मं सम्पादयन्त्यलम् ।
परलोकेऽथ लोकेऽपि सुखं सन्तोषमेव च ।। १५ ।।
यशं श्रेयश्च विन्दन्ति मोदन्ते सर्वदा तथा ।
स्वप्रयासानुरूपं च लभन्ते पुण्यमुत्तमम् ।। १६ ।।
सद्गतेरधिकारित्वं प्राप्यते यान्ति निश्चितम् ।
जीवनस्य परं लक्ष्यं पदं च योगिनो यथा ।। १७ ।।

टीका- महर्षि धौम्य ने कहा-गृहस्थ धर्म का परिपालन भी एक प्रकार का योगाभ्यास है। चूँकि इसमें सदा आत्मसंयम का पालन करना पड़ता है। जो इसे यथा समय-सही रूप में सम्पन्न करते हैं, वे लोक और परलोक में सुख सन्तोष, यश एवं श्रेय को प्राप्त करते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं। अपने प्रयास के अनुरूप वे पुण्यफल पाते और सद्गति के अधिकारी बनकर योगियों की तरह ही जीवन लक्ष्य तक पहुँचते और परमपद पाते हैं ।। १४-१७ ।।

गृहस्थ धर्म का पालन करना एक प्रकार से योग की साधना करना है। अनेक प्रकार के योगों में एक "गृहस्थ योग" भी है। इसमें परमार्थ, सेवा, प्रेम, सहायता, त्याग, उदारता और बदला पाने की इच्छा से विमुखता-यही दृष्टिकोण प्रधान है। यह योग महत्वपूर्ण, सर्वसुलभ तथा स्वल्प श्रम-साध्य है। योग के नाना रूपों का एक ही प्रयोजन है-आत्मभाव को विस्तृत करना, तुच्छता को महानता के साथ बाँध देना। भगवान मनु का कथन है कि गृहस्थाश्रम में पुरुष, उसकी पत्नी और सन्तान मिलकर ही एक पूर्ण 'मनुष्य' बनता है, उनकी आत्मीयता का दायरा क्रमशः बढ़ता ही जाता है। अकेले से पति-पत्नी दो में, फिर बालक के साथ तीन में, सम्बन्धियों में-पड़ौसियों में, गाँव,प्रान्त, प्रदेश, राष्ट्र और विश्व में यह आत्मीयता क्रमशः बढ़ती है। अन्ततः समस्त जड़ चेतन में आत्म-भाव फैल जाता है और अन्त में जीव पूर्णतया आत्मसंयमी हो जाता है। गृहस्थ योग की छोटी-सी सर्वसुलभ साधना जब अपनी विकसित अवस्था तक पहुँचती है तो आत्मा परमात्मा बन जाता है और पूर्णता की प्राप्ति होती है ।

ऋषि श्रेष्ठ यहाँ यह समझा रहे हैं कि परिवार निर्माण एक विशिष्ट स्तर की साधना है, उसमें योगी जैसी प्रज्ञा और तपस्वी जैसी प्रखर प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है। कलाकार अपने आपको साधता है, किन्तु परिवार निर्माता को एक समूचे समुदाय के-विभिन्न प्रकृति और स्थिति के लोगों का निर्माण करना पड़ता है। यह कार्य सघन आत्मीयता, समग्र दूरदर्शिता एवं समर्थ तत्परता से ही सम्भव हो सकता है। इसके लिए धरती जैसी सहनशीलता, पर्वत जैसा धैर्य धारण और सूर्य जैसी प्रखरता का समन्वय सँजोना पड़ता है। इन सद्गुणों के अभाव में सुसंस्कृत-सुसंस्कारी परिवार के निर्माण का संयोग संभव नहीं ।

लघुराष्ट्रं समाजोऽल्पः परिवारस्तु वर्तते ।
सीमिताश्च जनास्तत्र परिवारे भवन्त्यपि ।। १८ ।।
अतएव विधातुं च गृहस्थं सुव्यवस्थितम् ।
विकासोपेतमप्यत्र सुविधा अधिकामताः ।। १९ ।।
वसतां परिवारे च सञ्चालनकृतामपि ।
दायित्वमुभयोरेतत्समुदायमिमं सदा ।। २० ।।
समाजं राष्ट्रमेवाऽपि सादर्शं निर्मितुं समान् ।
सद्भावान् बुद्धिमत्तां च क्रियाकौशलमाश्रयेत् ।। २१ ।।

टीका- परिवार एक छोटा राष्ट्र या समाज है। उसमें सीमित लोग रहते हैं। अस्तु, उसे सँभालने, विकसित करने का अभ्यास करते रहने की सुविधा भी अधिक है। जो परिवार में रहें या उसे चलायें, उन दोनों ही वर्गों का उत्तरदायित्व है कि इस समुदाय को एक आदर्श समाज, आदर्श राष्ट्र बनाने में अपनी समस्त सद्भावना, बुद्धिमत्ता एवं क्रिया-कौशल नियोजित करें ।। १८-२१ ।।

महर्षि ने बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र यहाँ दिया है। जो व्यक्ति की, समाज की, राष्ट्र की महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ सँभालना चाहते हैं, वे उसके अनुकूल अनुभव किसी परिवार को आदर्श ढंग से संचालित करके प्राप्त कर सकते हैं। अभ्यास का यह मार्ग सबके लिये खुला है।

समाज को आदर्श बनाने के लिये कोई कुछ कर सके या न कर सके, पर उसकी एक इकाई अपने परिवार को उस आधार पर विकसित किया जा सकता है। पारिवारिक प्रवृत्तियाँ ही संयुक्त होकर सामाजिक स्तर पर प्रकट होती हैं। परिवार में रहने वाला हर छोटा-बड़ा व्यक्ति इस जिम्मेदारी को समझे और निबाहे तो परिवार भी आदर्श बने और समाज भी।

यह एक जाना-माना सिद्धान्त है कि जैसा साँचा होगा वैसी ही मूर्तिकार की रचना ढलेगी। समाज एक ऐसी मूर्ति है, जिसका साँचा परिवार है। समाज निर्माण, समाज सुधार, सत्प्रवृत्ति विस्तार सबसे पहले परिवार संस्था से आरम्भ होता है। आदर्श परिवार ही किसी सशक्त समाज की आधार शिला बनाते हैं। इसी कारण महामानवों का ध्यान परिवार पर सर्वाधिक रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुत: परिवारस्तु संयुक्तं कथितं बुधै: ।
पुण्यं संघटनं यस्य सुव्यवस्था मता तु सा ।। २२।।
सद्भावस्य बाहुल्यात्सहकारस्य सन्ततम् ।
कर्त्तव्यपालने बुद्धि: कर्त्तव्या परिवारगै: ।। २३।।
अधिकारोपलब्धेश्च यावत्य: सुविधाश्च ता: ।
भवेयु:कर्म कर्तुं च तत्र यत्नो विधीयताम् ।। २४।।
स्वापेक्षया परेषां हि सुविधासु भवेद् यदि ।
ध्यानं तदैव कस्मिंश्चित्समुदाये तु मित्रता ।। २५।।
आत्मीयता तथा नूनं सहकारस्य भावना ।
विकसिता दृश्यते यैश्च बिना शून्यंहिजीवनम् ।।२६।।

टीका – परिवार वस्तुत: एक पवित्र संयुक्त संगठन है। उसकी सुव्यवस्था पारस्परिक सद्भाव-सहकार की बहुलता से ही बन पड़ती है। सभी सदस्य कर्त्तव्यपालन पर अधिक ध्यान दें और अधिकार उपलब्ध करने की जितनी सुविधा मिले, उसी में से किसी प्रकार काम चलाने का प्रयत्न करें। अपनी अपेक्षा दूसरों की सुविधा का ध्यान अधिक रखने पर ही किसी समुदाय में मैत्री, आत्मीयता एवं सहकार के सद्भाव विकसित होते हैं, जिनके बिना जीवन शून्य प्रतीत होता है।।२२-२६।।

परिवार क्या है ? इसका बड़ा सुन्दर विवेचन यहाँ किया गया है। सामान्य रूप से एक कुटुम्ब के व्यक्ति परिवार में माने जाते हैं। परन्तु ऋषि कहते हैं यह सद्भावना और सहकार के आधार की पृष्ठ भूमि पर विनिर्मित पावन संगठन है। इस आधार पर यदि एक कुटुम्ब के व्यक्ति भी स्वार्थ भरी आपाधापी के बीच रहते हैं, सद्भाव सहकार उनमें नहीं है तो वह भी परिवार नहीं; मजबूरी में एक बाड़े में बन्द जानवर जैसे लोग हैं।

दूसरी ओर कोई भी व्यक्ति यदि परस्पर उच्च उद्देश्यों को लक्ष्य करके सद्भाव-सहकारपूर्वक साथ-साथ रहते हैं, तो वह एक परिवार है। ऐसा परिवार सभी के लिये आवश्यक होता है। ऋषि, सन्त आदि आश्रमों में इसी आधार पर परिवार भाव बना कर रहते हैं। जहाँ परिवार भाव है, वहाँ कोई भी समूह परिवार कहलाता है। इसीलिए पारिवारिकता को आदर्श सामाजिक व्यवस्था माना जाता है।

व्यक्ति एकाकी रह तो सकता है, पर वह बड़ी कष्टकारी साधना है। भ्रूणावस्था से लेकर बड़े होकर स्वावलम्बी बनने तक मानव के विकास में समाज का हर घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोई चाहे कि वह बिना किसी के सहयोग के अपनी यात्रा चलाता रहे, तो ऐसे व्यक्ति को इक्कड़, संकीर्ण, स्वार्थी ही कहा जायेगा।

परिवार की सार्वभौम नूतन परिभाषा में मैत्री के आधार पर बना वह संगठन भी आता है, जिसके हर सदस्य परस्पर अन्योन्याश्रित होते हैं, एक दूसरे के सद्भाव का अवलम्बन लेकर आगे बढ़ते हैं। कोई जरूरी नहीं कि व्यक्ति विवाह करके, परिवार बसाकर ही गृहस्थ धर्म निभाएँ। यदि वह एक परिवार विशेष को पारिवारिकता का पोषण देता है, तो प्रकारान्तर से परिवार धर्म की साधना ही करता है। महत्ता संगठन की-संरचना की-नहीं उस भावना की, निष्ठा की-है, जो ऐसी प्रक्रिया अपनाने पर अन्त में विकसित होती है।

एतत् कुटुम्बसंस्थाया: घटनं नैव केवलम् ।
कामकौतुकहेतोर्वा भोजनस्य कृते पुन: ।। २७।।
वस्तुसंग्रहरक्षार्थं नित्यकर्मव्यवस्थिते: ।
इयन्मात्राय दायित्वं बृहत्कश्चित्कथं वहेत् ।। २८।।
एतास्तु सुविधा द्रव्यात्पण्यशालासु चाञ्जसा ।
प्राप्तुं शक्या व्ययश्चाऽपि न्यूनस्तत्र भवेत्तथा।।२९।।
दायित्वेभ्योऽपरेभ्यश्च मुक्तास्तिष्ठति मानव: ।
इयत्यपि नरा बद्धा कुटुम्बस्यानुशासने ।। ३०।।

टीका- परिवार संस्था का गठन काम-कौतुक, भोजन-व्यवस्था,सामान की सुरक्षा एवं नित्यकर्मों की व्यवस्था मात्र के लिए नहीं होता। इतने भर के लिए कोई क्यों तैयार होगा ? ये सुविधायें तो सराय में पैसा चुकाते रहने पर और भी सरलतापूर्वक मिल सकती हैं। उनमें खर्च भी कम पड़ेगा और जिम्मेदारियों से भी मुक्त रहा जा सकेगा । इतने पर भी हर बुद्धिमान् व्यक्ति परिवारगत अनुशासन में ही बँधना चाहता है ।। २७-३०।।

परिवार परम्परा को प्रोत्साहित करने में ऋषियों का मन्तव्य केवल इतना ही नहीं रहा कि व्यक्ति एक से बहुत होकर रहें। दु:ख तकलीफ पड़ने पर उसका हाथ बँटाने वाला साथ हो। व्यक्ति व्यवस्थित रूप में स्थाई होकर रहे और परिजनों के साथ अधिक उल्लासपूर्ण जीवनयापन करे। इस असाधारण मन्तव्य के साथ उनका एक इससे कहीं ऊँचा मन्तव्य भी रहा है, वह यह-कि परिवार के माध्यम से मनुष्य आत्म-कल्याण की ओर भी अग्रसर हो। उसमें सामाजिकता, नागरिकता और सबसे बड़ी बात-विश्व-मानवता का कल्याणकारी भाव जागे। वह अपने जैसे अन्य मनुष्यों के लिए त्याग,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहानुभूति, सौहार्द एवं आत्मीयता का अभ्यास कर सके। पारिवारिक जीवन में ही आध्यात्मिक गुणों को विकसित करने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है।

यहाँ एक ऐसा भ्रम दूर करने का प्रयास किया गया है, जिसमें अधिकांश लोग उलझकर रह जाते हैं। परिवार की आवश्यकता जीवन की सामान्य सुविधाओं के लिए होती है। यह आम मान्यता बन गई है। यदि यही सच होता, कामवासना की तुष्टि, भोजन व्यवस्था, सामान की सुरक्षा, नित्यकर्म की सुविधायें आदि के लिए तो धर्मशाला जैसी व्यवस्था ही काफी होती।

परन्तु ऐसा है नहीं। मनुष्य की एक बड़ी आवश्यकता है, सघन आत्मीयता की अनुभूति, अपनत्व का विस्तार, अन्तरंग स्नेह का रसास्वादन। पाश्चात्य परम्परा में परिवार को स्थूल व्यवस्था के लिए बनाया गया, एक ठेका मानकर प्रयोग किया गया। पहले तो कुछ समय यह व्यवस्था अच्छी लगी, पर फिर क्षोभ, असन्तोष उभरने लगा। वहाँ साधन खूब हैं, एक दूसरे की स्वतन्त्रता में कोई बाधक नहीं बनता, बल्कि पति-पत्नी, बच्चों और माँ-बाप के बीच यह सघन स्नेह नदारद हो गया, जिसे मानवीय अन्तःकरण की खुराक माना जाता रहा है।

अनेक सर्वेक्षणों के आधार पर यह पाया गया है कि अमेरिका जैसे सम्पन्न राष्ट्र में ८० प्रतिशत व्यक्तियों को सोने के लिए नींद की गोली लेनी पड़ती है। उनमें से आधे से अधिक के मानसिक तनाव का कारण उनके पारिवारिक जीवन में स्नेह सद्भाव, आत्मीयता का पूर्ण अभाव पाया जाना है।

स्थातुमिच्छन्ति तत्रास्ति योग आत्मपरिष्कृतेः ।
समाजाय सुयोग्यानां नागराणां समर्पितेः ।। ३१।।
वातावृतौ सुयोग्यायां व्यक्तिस्तिष्ठति सर्वदा ।
सन्तुष्टा च प्रसन्ना च निश्चिन्ता च कुटुम्बके।।३२।।
अतएव चिरादेष मनुष्यो वसति स्वयम् ।
कृत्वा परिवारनिर्माणं वैशिष्ट्यं मौलिकंत्विदम्।।३३।।
पारिवारिकताऽऽधारं समाश्रित्यैव जीवनम् ।
अभूद् विकसितं तस्य जीवनं पशुतां गतम्।।३४।।
सामूहिकस्य योगोऽभूदुत्कर्षस्यैवमेष तु ।
सृष्टेर्मुकुटरत्नं यन्मनुष्यः कथ्यतेऽधुना ।। ३५।।

टीका- इसके साथ आत्म-परिष्कार और समाज को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने का परमार्थ भी जुड़ा हुआ है। उपयुक्त वातावरण में रहकर व्यक्ति प्रसन्न, सन्तुष्ट और निश्चिन्त रहता है। इसलिए मनुष्य चिरकाल से परिवार बनाकर रहता आ रहा है। यह उसकी मौलिक विशेषता है। पारिवारिकता के आधार पर ही उसका पशु-तुल्य निजी जीवन विकसित हुआ है और सामूहिक उत्कर्ष का ऐसा सुयोग बन सका है, जिसमें मनुष्य को सृष्टि का मुकुटमणि कहा जाता है ।। ३१-३५ ।।

मानव-सभ्यता का जितना विकास वर्तमान समय में दिखलाई पड़ता है, उसका अधिकाशं श्रेय परिवार प्रथा को ही दिया जा सकता है। जिस युग में मनुष्य बिना परिवार के एकाकी रहता था तब उसमें और अन्य पशुओं में बहुत थोड़ा ही अन्तर था। परिवार बनाकर रहने के पश्चात् उस पर स्त्री और बच्चों की सुरक्षा तथा पालन का जो उत्तरदायित्व आया, उसी से उसमें सामूहिकता तथा सहयोग की वृत्तियाँ उत्पन्न हुयीं। इसी के द्वारा उसे स्वार्थ, त्याग और समाज सेवा का पाठ पढ़ने को मिला, जिससे क्रमशः लोगों को संगठन और सहयोगपूर्वक काम करने का अभ्यास बढ़ता गया और मानव समाज अन्य प्राणियों से सशक्त स्थिति में पहुँच सका तथा स्रष्टा की उत्कृष्टतम कृति कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर सका।

अध्यात्म क्षेत्र में सामान्यतया यह मान्यता बन गई हैं कि गृहस्थ एक बन्धन है, उससे जान छुड़ाने का प्रयास किया जाय। इस मान्यता ने गृहस्थाश्रम की पवित्रता और उसकी व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया है। यह बात ठीक है कि कुछ महापुरुष गृहस्थ बसाये बिना भी अपना कार्य करते रहे हैं, परन्तु इससे गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता संदिग्ध नहीं हो जाती।

प्राचीनकाल के इतिहास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी गृहस्थ थे। योग-साधना एवं वनवास के समय भी उनकी पत्नियाँ साथ रहती थीं। सभी गृहस्थ मुनि सपत्नीक रहते थे। महर्षियों में प्रधान सप्त-ऋषियों की भी पत्नियां थीं, उनके बच्चे भी थे। देवताओं में सभी गृहस्थ हैं। ईश्वर के अवतारों में भी अधिकांश ने अपना गृहस्थ बनाया है। भगवान राम और कृष्ण जिनका नाम लेकर हम भवसागर से पार होते हैं, गृहस्थ ही तो थे। दाम्पत्य जीवन की आवश्यकता एवं उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उन्होंने मर्यादापालन के लिए एक सद्गृहस्थ के रूप में ही अपना चरित्र प्रस्तुत किया है। जीवन की सुविधा तो गृहस्थ-जीवन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ती है, साथ ही कितने जीवन लक्ष्यों की पूर्ति में भारी सहायता मिलती है।

चर्चामिमां महर्षिः स धौम्योऽग्रे वर्धयन्पुनः ।
उवाच भद्राः शृणुत परिवारस्तु वर्तते ।। ३६ ।।
दिव्या प्रयोगशालेव सद्गुणोन्मेषकारिणी ।
तस्य सञ्चालनं सम्यक् निर्धारणमथाऽपि च ।। ३७ ।।
यदि स्यान्निश्चितं तत्र सुयोग्याः शिक्षितास्तथा ।
नागराः संभावेष्यन्ति महापुरुषसंज्ञकाः ।। ३८ ।।
गुणं कर्म स्वभावं च कर्तुमुच्चस्तरं तथा ।
व्यक्तित्वं प्रखरं कर्तुं पाठशालेव च स्मृतः ।। ३९ ।।
अस्ति व्यायामशालेव परिवारस्तुनिश्चितम् ।
जीवनस्योपयुक्तानि वैशिष्ट्यानि समभ्यसन् ।। ४० ।।
समर्थो जायते यत्र नरः सर्वत एव च ।
आत्मनः परिवारस्य हितं राष्ट्रस्य सिद्ध्यति ।। ४१ ।।

टीका- ऋषि प्रवर धौम्य अपनी चर्चा आगे बढ़ाते हुए पुनः बोले-हे भद्रजनो ! परिवार तो सद्गुणों को विकसित करने की एक प्रयोगशाला है। उसका सही निर्धारण एवं सुसंचालन किया जा सके, तो निश्चय ही उस परिकर में से सुयोग्य-शिक्षित नागरिक एवं महामानव निकलेंगे। गुण-कर्म-स्वभाव को उच्चस्तरीय बनाने एवं व्यक्तित्व को गौरवशाली बनाने का पाठ इसी पाठशाला में पढ़ा जाता है। यही वह व्यायामशाला है जिसमें जीवन भर काम आने वाली विशिष्टताओं का अभ्यास करते हुए हर दृष्टि से समर्थ बना जा सकता है, जिससे अपने परिवार का-राष्ट्र का हित सिद्ध होता है ।। ३६-४१ ।।

परिवार को यहाँ एक प्रयोगशाला, पाठशाला एवं व्यायामशाला की उपमा देते हुए एक ऐसी टकसाल बताया गया है, जहाँ समर्थ राष्ट्र के लिए अभीष्ट महामानवों की ढलाई होती है।

मनुष्य का सारा जीवन भाँति-भाँति की परीक्षाओं से निपटते हुए कटता है। परिवार रूपी प्रयोगशाला में गुण, कर्म, स्वभाव की अच्छी खासी परीक्षा हो जाती है। जहाँ पारिवारिक वातावरण श्रेष्ठ कोटि का होगा, वहाँ के प्रयोग निष्कर्ष भी अनुपम होंगे। महामानवों के जीवन ऐसे ही प्रयोगों की कड़ी कसौटी पर खरे उतर कर श्रेष्ठ बन सकने में समर्थ हुए हैं ।

पाठशाला सुसंस्कारिता सम्वर्धन के साथ-साथ व्यक्ति के कर्तृत्व को लक्ष्य के साथ जोड़ देने हेतु विनिर्मित एक परिकर है। मात्र स्कूली पढ़ाई पर्याप्त नहीं। जब तक जीवन के विभिन्न पहलुओं का व्यावहारिक अध्ययन-अध्यापन यहाँ नहीं होगा, यह पठन-पाठन व्यर्थ है। व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाने का काम पारिवारिक पाठशाला करती है।

व्यायामशाला में शरीर को बलिष्ठ बनाने, अपनी सामर्थ्य को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। भाँति-भाँति के संयम-अनुशासन पालने पड़ते हैं। व्यक्ति जब तक पूरी वर्जिस नहीं कर लेता, उसका एक बार किया हुआ व्यायाम पर्याप्त नहीं माना जाता। जागरूकता, कर्मठता के विकास हेतु जरूरी है कि परिवार को एक व्यायामशाला मानते हुये अपने विकारों पर नियंत्रण की एवं समर्थता-विशिष्टता बढ़ाने की साधना भली प्रकार की जाय, ताकि, परिवार की-समाज की-राष्ट्र की- एक सर्वांगीण इकाई के रूप में मनुष्य विकसित हो सके।

अधिसंख्य महापुरुषों का जीवन इस तथ्य का साक्षी है कि उन्होंने पारिवारिक वातावरण में ही महानता का पाठ सीखा।

दूरदर्शित्वभावस्य तथैव सुव्यवस्थितेः ।
श्रेष्ठोऽभ्यासो गृहे कर्तुं शक्योमर्त्येनचाञ्जसा ।। ४२ ।।
न तथा शक्यते प्राप्तुमन्यत्राऽनुभवो न च ।
प्रशिक्षणं लभेताऽपि व्यवहारानुकूलगम् ।। ४३ ।।
आदिकालात्समाश्रित्याऽऽधारं तं पारिवारिकम् ।
चलतीह तु विश्वस्य व्यवस्था स्वर्गसौख्यदा ।। ४४ ।।
दिनेषु तेषु चाऽभूत् सा वातावृतिरतः शुभाः ।
सत्यस्यात्र युगस्येव मर्त्यकल्याणकारिका ।। ४५ ।।
परम्पराऽवहेलैव कारणं प्रमुखं तु तत् ।
नरो येन महान् स्वार्थी क्षुद्रो जातो निरन्तरम् ।। ४६ ।।
समस्याभिरनेकाभिस्तथार्दन्ते च विपत्तिभिः ।
वृतः परं भविष्यन्तु वर्तते प्रोज्ज्वलं ध्रुवम् ।। ४७ ।।

टीका- सुव्यवस्था और दूरदर्शिता का जितनी अच्छी तरह अभ्यास घर-परिवार के बीच किया जा सकता है, उतना व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं अनुभव अर्जित कर सकना अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं हो सकता। स्वर्ग के समान सुखदायी विश्व-व्यवस्था आदिकाल से पारिवारिकता के आधार पर चलती रही है। सतयुगी वातावरण उन दिनों इसी कारण बना भी रहा , जो मनुष्य मात्र के कल्याण का कारण था। उस महान् परम्परा की अवहेलना ही मुख्य कारण है, जिससे मनुष्य स्वार्थी व क्षुद्र बनता चला गया और अन्त में अनेकानेक समस्याओं एवं विपत्तियों से घिर गया; लेकिन उसका भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है ।। ४२-४७ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार एक पूरा समाज, एक पूरा राष्ट्र है। भले ही उसका आकार छोटा हो, पर समस्यायें वे सभी मौजूद हैं-जो किसी राष्ट्र या समाज के सामने प्रस्तुत रहती हैं। प्रधान मंत्री या राष्ट्रपति को जो बात अपने देश को समुन्नत बनाने के लिये सोचनी-करनी चाहिये, वही सब कुछ व्यवस्था एवं दूरदर्शिता किसी सद्गृहस्थ को परिवार निर्माण के लिये अपनानी पड़ती है। परिवार को एक सहयोग-समिति, एक गुरुकुल के रूप में विकसित करना पड़ता है, जिससे परिवार का वातावरण अच्छा बने,परिजनों को सुसंस्कृत स्तर तक पहुँचाया जा सके। भारत में या विश्व में कहीं भी जब कभी भी आदर्श सामाजिक व्यवस्था -स्वर्गीय परिस्थितियाँ बनी हैं, उसका आधार पारिवारिकता की भावना ही रही है। उस भावना के उदय से परिस्थितियाँ सुधरीं और उसके विलय से बिगड़ीं। देश-विदेश के अगणित उदाहरण इसके साक्षी हैं।

प्रस्तोतव्यः स आदर्शः पुरुषैरग्रजैः सदा ।
अनुकुर्वन्तु तं सर्वं तथैवाऽन्येऽनुजन्मनः ।। ४८।।
कुतोऽप्येताः समायान्ति दुष्प्रवृत्तय उद्धताः।
परं प्रभावितान् कर्तुं सदस्यान् परिवारगान् ।। ४९।।
सत्प्रवृत्तिभिराभिश्चेदिष्टं तत्पुरुषैर्वरैः ।
सदाचारैर्निजैरेवादर्शाः स्थाप्याः स्वयं शुभाः।। ५०।।
शिक्षा वास्तविकी चैवं दीयते नोपदेशजः ।
प्रभावः प्रभवत्यत्र यथाऽऽचारसमुद्भवः ।। ५१।।

टीका - परिवार के बड़े लोग छोटों के सामने अपना आदर्श रखें, ताकि वे उनका अनुकरण कर सकें। दुष्प्रवृत्तियाँ तो कहीं से भी दौड़ती हैं। पर, सत्प्रवृत्तियों से पारिवारिक सदस्यों को प्रभावित करना हो, तो उसके लिये बड़ों को ही अपना उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। वास्तविक शिक्षा इसी प्रकार दी जाती है। प्रभाव उपदेशों का नहीं, सामने प्रस्तुत होते रहने वाले आचरण का पड़ता है।। ४८-५१।।

पतन सरल है, उत्थान कठिन। पानी का प्रवाह नीचे की ओर ही बहता है। उसे ऊँचा उठाना हो, तो काफी पुरुषार्थ करना पड़ता है। मनुष्य का स्वभाव कुछ इस प्रकार का है कि उसे पतन-पराभव के गर्त में जाते तनिक भी देर नहीं लगती। चिन्तन को ऊर्ध्वगामी बनाने हेतु सत्प्रवृत्तियों के उदाहरण ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दुष्प्रवृत्तियों के लिये किसी को आमंत्रित नहीं करना पड़ता। वे जहाँ कमजोरी देखती हैं आ धमकती हैं।

ऊँचा उठने की प्रवृत्ति तभी अन्दर से उमड़ती है, जब वैसा ही आचरण बड़े भी करें। पारिवारिक जन अनुकरण हेतु अपने से बड़ों को ही देखते हैं । यदि घर के सभी वरिष्ठजन स्वयं निष्ठापूर्वक उस दिशा में प्रवृत्त हुये हों ,तो सहज ही सबको वह मार्ग अपनाने की प्रेरणा मिलती है। वरिष्ठों से तात्पर्य है, वे जिन्हें अग्रणी-आदर्शपुंज माना जाता है। चाहे परिवार छोटा हो अथवा बड़ा, समाज हो अथवा संस्था, राज्य हो अथवा राष्ट्र, सभी पर यह एक ही तथ्य समान रूप से लागू होता है। शिक्षा देने की व्यावहारिक एवं आदर्श विधि यही है कि स्वयं भी वैसा ही आचरण किया जाय। कथनी व करनी में अन्तर न हो। वाणी से भले ही कितना ही आदर्श शिक्षण क्यों न दिया जा रहा हो,स्वयं आचरण में न उतारा गया, तो वह थोथा ही सिद्ध होता है।

शिष्टाचारं तथा सर्वे सदस्याः परिवारगाः ।
व्यवहरन्तु ससम्मानं मधुरं प्रवदन्तु च ।। ५२।।
वार्तालापं कटुं नैव नाऽपमानयुतं तथा ।
प्रकुर्वन्तु प्रणामस्य स्वीकुर्वन्तु परम्पराम् ।। ५३।।
अपशब्दोपयोगोऽथ भूत्वा क्रोधवशस्तथा ।
केशाकेशि न कर्त्तव्यं बाहूबाहवि वा पुनः।। ५४।।

टीका- परिवार का हर सदस्य एक दूसरे के साथ शिष्टाचार बरतें। सम्मान करें। मधुर शब्द बोलें। कटु और अपमानसूचक वार्तालाप कोई न करे। परस्पर अभिवादन की परम्परा का निर्वाह होता रहे। अपशब्द कह बैठना, आवेश में आकर मारपीट करना सभ्यजनों को शोभा नहीं देता।। ५२-५४।।

परिवार का सन्तुलन बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि परिजनों में सभी शिष्टाचार का पालन करते और एक-दूसरे के सम्मान का ध्यान रखते हैं अथवा नहीं। किसी के प्रति सम्मान प्रकट करने या प्रणाम करने से मनुष्य छोटा नहीं हो जाता, वरन् इससे श्रेष्ठत्व की प्रतिष्ठा ही होती है और उस उच्च भावना का लाभ भी बिना मिले रहता नहीं। शुद्ध अन्तःकरण से किया हुआ नमन आन्तरिक शक्तियों को जगाता है। इसलिये श्रेष्ठ पुरुषों ने सदैव ही इस मर्यादा का पालन किया है। सम्मान से प्रत्येक मनुष्य को एक प्रकार की आध्यात्मिक तृप्ति मिलती है उसे प्रत्येक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति चाहता है, इसलिये विपरीत परिस्थितियों में भी इस नैतिक मर्यादा का पालन करना चाहिये।

कटुता वर्द्धतेऽनेन द्वेषो मालिन्यमेव च ।
मानसं समुदेत्यत्र नैव भद्रा अशिष्टताम् ।। ५५ ।।
व्यवहारे प्रगृह्णन्तु बुद्धिरत्र विधीयताम् ।
यत्नः हस्तावलम्बेन सहयोगे विधीयताम् ।। ५६ ।।
औदासीन्येन वोपेक्षाभावेनाऽपि शनैः शनैः ।
घनत्वं हीयते प्रेम्णः सहकारेण वर्द्धते ।। ५७ ।।
आत्मन्येव मनो येषां स्वार्थबुद्ध्या प्रवर्तते ।
सद्भीचामवहेला च ये कुर्वन्ति नरास्तु ते ।। ५८ ।।
तिरस्कारं लभन्ते च हानिं विन्दन्त्यपि भृशम् ।
लाभो मानवदेहस्य प्राप्यतेऽनेन नो क्वचित् ।।५९ ।।

टीका- इससे कटुता बढ़ती है, द्वेष और मनोमालिन्य पनपता है। अतः हे भद्रपुरुषो ! अशिष्टता को परिवार व्यवहार में कहीं कोई स्थान न मिले, इसका समुचित ध्यान रखा जाय। हर सदस्य एक दूसरे का हाथ बँटाने-सहयोग देने का प्रयास करे। उपेक्षा और उदासी बरतने से घनिष्ठता घट जाती है। प्रेम और सहकार से सद्भाव बढ़ता है। मात्र अपना ही ध्यान रखने वाले और साथियों की अवहेलना करने वाले स्वार्थीजन बदले में तिरस्कार पाते और घाटे में रहते हैं, उन्हें मानव शरीर के कोई लाभ हस्तगत नहीं होते।। ५५-५९ ।।

परिवार भाव का विकास करने के इच्छुक साधकों को ऋषि सूत्र बतलाते हैं कि-

(१) सहकार से सद्भाव बढ़ता है।

(२) उपेक्षा, उदासी से घनिष्ठता घटती है।

उपेक्षा, उदासी, स्वार्थ, संकीर्णतावश ही होती है। उदार परमार्थी इस भाव के शिकार नहीं हो पाते।संकीर्ण स्वार्थपरता तिरस्कार का-घाटे का कारण बनती है।

इसलिये ऋषि चाहते हैं कि मतभेद होने पर भी अथवा परिहास में भी अशिष्टता को परिवार में स्थान न मिले। वैचारिक मतभेदों को सहज शिष्टाचारपूर्वक, बिना किसी को अपमानित किये सुलझाया जा सकता है किन्तु जब पारस्परिक वाद-विवाद तक नौबत आ जाती है, तो मनोमालिन्य गहरी जड़ें जमा लेता है।

यदि हल्का-फुल्का जीवन जीने का, एक-दूसरे को सहयोग देने का मार्ग अपनाया जाय तो प्रतिक्रिया स्वरूप जन सहयोग एवं लोक सम्मान स्वतः मिलने लगेगा। सद्भाव पाने का एक ही मार्ग है, शिष्टाचार की पृष्ठभूमि पर टिका पारस्परिक सहकार।

सीमितः परिवारः स्यात् संख्या स्वल्पैव सन्ततेः ।
सुखदा हानयोऽसंख्या बहुप्रजननोद्भवाः ।। ६० ।।
जनन्या हीयते तत्रारोग्यमायुष्यमेव च ।
परिवारसदस्यानां क्षीयन्ते सुविधास्तथा ।। ६१ ।।
प्रत्येकेन सदस्येन हानिरेव च लभ्यते ।
अभिवृद्ध्याऽनया नूनं नवया चिन्त्यतामिदम् ।। ६२ ।।
सञ्चालकः कुटुम्बस्य तैलयन्त्रवृषो यथा ।
तथा भ्रमति चार्थस्य भारवाहितया ततः ।। ६३ ।।
उद्विग्नश्च भवत्येष विवेकं परिहाय च ।
नीत्यनीती परित्यज्य यततेऽधिकमर्जितुम् ।। ६४ ।।

टीका- परिवार छोटा रहे। बच्चों की संख्या अधिक न बढ़े। बहुप्रजनन की असंख्यों हानियाँ हैं। जननी का आयुष्य और आरोग्य घटता है। परिवारगत सुविधाओं में नये सदस्य बढ़ने से कटौती होती है। हर सदस्य को इस नयी अभिवृद्धि से घाटा उठाना पड़ता है। यह बात बहुत चिन्ताजनक है। परिवार संचालक को अर्थ भार वहन करने के लिये कोल्हू के बैल की तरह जुतना पड़ता है उद्विग्न होना पड़ता है। उसे विवेक खोकर - नीति-अनीति का ध्यान रखे बिना अधिक कमाने का प्रयास करना पड़ता है।। ६०-६४ ।।

किसी भी प्रकार के उत्तरदायित्व को भली प्रकार निभाने के दो सूत्र हैं। (१) उत्तरदायित्व निभाने की अपनी क्षमता-योग्यता का विकास (२) उत्तरदायित्वों को अनावयश्यक रूप से बढ़ने न देना।

परिवार के संदर्भ में भी ऋषि इन दोनों सूत्रों पर ध्यान दिलाते हैं। पिछले श्लोकों में वे सूत्र बतलाये गये, जिनसे पारिवारिक आत्मीयता, सद्भाव का विकास हो। यह भाव जितने विकसित, पुष्ट होंगे परिवार उतने ही श्रेष्ठ बनेंगे।

दूसरा सूत्र है- उत्तरदायित्व बढ़ने न देने का। इसमें दो बातें ध्यान देने योग्य हैं, पहली बात है, बच्चों की संख्या न बढ़ने देना। दूसरी है, व्यय न बढ़ने देना। यहाँ बच्चों की संख्या बढ़ने से होने वाली हानियों पर ध्यान दिलाया गया है। (१) जननी का स्वास्थ्य (२) सदस्यों की सुविधाओं में कटौती (३) संचालक पर दबाव और अनीति करने की मजबूरी।

शिशवोऽपि भवन्त्यस्मात्स्नेहसौख्यप्रशिक्षणैः ।
वञ्चिताः फलतस्तेषां विकासस्त्ववरुद्ध्यते ।। ६५ ।।
अन्धकारमयं चैव भविष्यज्जायते ध्रुवम् ।
यत्र राष्ट्रे समाजे वा जनसंख्या विवर्द्धते ।। ६६ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अभावसंकटग्रस्ता जायन्ते तत्र पूरुषाः ।
बहुप्रजननं तस्मात्त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता ।। ६७।।
प्रसंगेऽस्मिंश्चयः कश्चिद् यावर्ती न्यूनतां भजेत् ।
बुद्धिमान् स तथैवात्र महान् वक्तुं भविष्यति।। ६८।।

टीका- ऐसी स्थिति में बच्चे भी समुचित दुलार, प्रशिक्षण एवं सुविधा-साधनों से वंचित रहते हैं। फलतः उनका विकास रुकता है और भविष्य अन्धकारमय बनता है। जिस समुदाय अथवा राष्ट्र में जन संख्या बढ़ती है, वे अभावग्रस्त होते और संकटों से घिरे रहते हैं। अतः सुख चाहने वालों को बहु प्रजनन से बचना ही चाहिये। जो इस संदर्भ में जितना अधिक कटौती कर सके, उसे उतना ही बुद्धिमान कहा जायेगा।। ६५- ६८।।

बच्चे अधिक पैदा करने से माता-पिता तथा परिजनों को, समाज को होने वाली हानि पर पिछले प्रतिपादन में ध्यान दिलाया गया था। यहाँ स्वयं बच्चों पर,नयी पीढ़ी पर होने वाले कुप्रभावों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

सन्तति को जन्म देने का उद्देश्य है परिवार को, समाज को श्रेष्ठ उत्तराधिकारी प्रदान करना है। स्पष्ट है कि जो हों, वे श्रेष्ठ समर्थ और योग्य हों। इसीलिये देव संस्कृति ने सन्तान की संख्या की अपेक्षा उनके स्तर को बढ़ाने का समर्थन किया है। कहा गया है-

वरमेको गुणी पुत्रो, न च मूर्खशतान्यपि ।
एकश्चन्द्रः तमो हन्ति, न च तारा गणैरपि।।

अर्थात्- एक गुणी पुत्र पाना उचित है न कि सैंकड़ों मूर्ख। एक चन्द्रमा रात्रि का अन्धकार दूर कर देता है। ढेरों तारे मिलकर भी वैसा नहीं कर पाते।

यह केवल उक्ति नहीं है। उदाहरणों से भी यह सिद्ध होता है कि जिन्होंने सीमित सन्तानें रखी, वे ही उन्हें श्रेष्ठ-सुसंस्कारी बना सके। संख्या वृद्धि करने वाले संस्कार देने में असफल ही हुए।

मितव्ययत्वमेवाऽथ प्रत्येकस्मिंस्तु कर्मणि ।
वर्तितव्यं महत्त्वं च द्रव्यस्याऽन्ये समेऽपि ते।। ६९।।
सदस्या अधिगच्छन्तु तथा बोध्याः पुनः पुनः ।
नाश्यं नैव धनं व्यर्थं विलासस्य प्रदर्शने ।। ७०।।
अहं त्वस्याऽपि वा माता लक्ष्मीरित्युपयुज्यताम् ।
हेयमित्यवमत्याऽसत् कार्येषु नोपयुज्यताम् ।।७१।।
श्रृंगारे नैव कर्तव्यो व्ययोऽलंकरणेऽथवा ।
सौजन्यं निहितं नूनं तत्र संस्कारिताऽपि च ।। ७२।।
स्वाभाविके तथा सौम्ये सरले जीवने द्वयम्।
सत्कर्मष्वेव वित्तानि सविवेकं नियुज्यताम् ।।७३।।

टीका- हर कार्य में मितव्ययिता बरती जाय। हर सदस्य को पैसे का महत्व समझाया जाय। विलास, अहंता प्रदर्शित करने वाले कामों में धन को बर्बाद न होने दिया जाय। लक्ष्मी को माता मानकर उसका सदुपयोग किया जाये। हेय मानकर उसका दुरुपयोग न होने दें। श्रृंगार-अलंकरण पर कुछ भी खर्च न किया जाय। सादगी में ही सज्जनता और सुसंस्काारिता सन्निहित है। सत्कर्मों में ही विवेकपूर्वक धन को नियोजित किया जाय।। ६९-७३।।

परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर अनावश्यक बोझ अपने कंधे पर लादना, जहाँ परिवार के मुखिया के लिये अनीति से अथवा किसी भी उपाय से साधन जुटाने को विवश करता है, वहीं दूसरी ओर मितव्ययिता को वृत्ति का अभाव, प्रदर्शन ठाठ-बाट में ही अपना बड़प्पन मानने की प्रवृत्ति व्यक्ति को विमुख कर देती है। मिव्ययिता एवं कृपणता दोनों नितान्त भिन्न बातें हैं। बातें हैं। हर साधन का सोच समझकर-सदुपयोग परमार्थ कार्यो में उसका सुनियोजन मितव्ययिता कहलाता है, जबकि अनावश्यक संचय से जुड़ी संकीर्ण स्वार्थपरता, कृपणता का पर्याय है।

परिवार व्यवस्था भली-भाँति चल सके, किसी भी सदस्य को अभाव न अनुभव हो, सभी उपलब्ध साधनों में ही विकास करते रह सकें, इसके लिये अपव्यय के छिद्रों को रोका जाना अत्यन्त अनिवार्य है। किसी भी परिवार-जन को स्वस्थ मनोरंजन, स्वाध्याय, सत्संग, साधना जैसे पुण्य प्रयोजनों के लिये पर्याप्त समय मिलना चाहिये।हर समय उन्हें उपार्जन, प्रयोजन के निमित्त बैल की तरह न जुतना पड़े। इसके लिये अनिवार्य है कि हर सदस्य धन का महत्व समझे। बहुधा कमाते समय, धन पाने के समय तो उसे सर्वस्व मान लिया जाता है तथा ईमान, मनुष्यता की कीमत पर भी उसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। ऐसे अवसर पर धन की सीमा का ध्यान रखा जाना उचित है।

इसके विपरीत खर्च करते समय पागलपन जैसी हरकतें की जाती हैं। समय, श्रम, योग्यता की इतनी कीमत चुकाकर प्राप्त धन को बेदर्दी से बेकार के कामों में खर्च कर दिया जाता है। धन का महत्व समझकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे महत्वपूर्ण कार्यों में खर्च करने का संस्कार डालें।

लक्ष्मी को माता मानने का अर्थ है उसकी पवित्रता का ध्यान रखा जाय। उपयोग तक उसकी पवित्रता है, उपभोग में वह समाप्त हो जाती है। माँ के उपयोग की बात सोची जाती है, उसे उपभोग का विषय नहीं बनाया जाय। विलास और अहंता के प्रदर्शन में, फैशन-श्रृंगार में धन खर्च करना लक्ष्मी माँ का उपभोग करना है। इस प्रवृत्ति को परिजनों में न होने देना आवश्यक है।

धन कितना भी एकत्रित हो जाये, उसका कोई लाभ नहीं, वह तो एक भार और हो जाता है। उसके उपयोग से उसका लाभ मिलता है। जैसा उपयोग होगा, वैसा लाभ मिलेगा। असत् कार्यों में लगने से असत् परिणाम और सत् कार्यों में लगने से सत्परिणाम सामने आते हैं। यदि उपार्जन के बाद, आवश्यक प्रयोजनों में नियोजित होने के बाद, धन शेष रह जाता है, तो उसे परमार्थ कार्यों में व्यय करना चाहिये। समाज एक वृहत् परिवार है, हम भी उस के एक अंग सरीखे हैं। इस नाते सत्प्रवृत्तियाँ फैलाने तथा वातावरण को उत्कृष्टता का पक्षधर बनाने के निमित्त जितने धन का सदुपयोग हो सकेगा, उतना ही लाभकारी होगा।

विपत्कालस्य हेतोः स उन्नतेश्च प्रयोजनात्।
वित्तस्य संग्रहः कार्यो दक्ष आये व्यये भवेत।। ७४।।
प्रदर्शनेषु चाऽयोग्यजनानां परितोषणे ।
व्यसनेषु कुरीतीनां पालने वित्तनाशनम् ।। ७५।।
नैव क्वाऽपि विधातव्यं बुद्धिमत्वमिदं स्मृतम्।
एतत्तथ्यविदः सन्ति सुखिनः संस्कृता अपि ।। ७६।।

टीका- कुसमय के लिये तथा उत्थान प्रयोजनों के लिये धन की बचत की जाय। आय-व्यय में सावधानी रखें। दुर्व्यसनों में-उद्धत प्रदर्शनों में-अनुपयुक्त लोगों की आवभगत में-कुरीतियों के परिपालन में-पैसों का दुरुपयोग न होने देना ही बुद्धिमत्ता है। जो इस तथ्य को समझते और अपनाते हैं - वे परिवार सुखी रहते, सुसंस्कृत कहलाते हैं।। ७४-७६।।

परिवार की सुख-शान्ति के मूल में एक ही बीज मंत्र काम करता है - सुव्यवस्था, आर्थिक सुनियोजन एवं उपलब्ध साधनों का बुद्धिमानीपूर्वक सदुपयोग। आड़े समय में आने वाली विवशताओं से बचने के लिये जहाँ अपव्यय रोक कर धन संग्रह जरूरी है, वहाँ उसका उचित कार्यों में उपयोग भी। अहंता-प्रदर्शन वृत्ति पर रोक-थाम लगा कर जहाँ पैसे का दुरुपयोग रोकना जरूरी है, वहाँ उसे श्रम-नीति की कमाई से एकत्र करना भी अनिवार्य है ? यह सब सुनियोजित विधि-व्यवस्था के बलबूते संभव है, जो हर गृहपति को अपनाना अभीष्ट है।

सुव्यवस्थाविधौ ध्यानं स्वच्छतायां तथैव च ।
प्रत्येकस्य सदस्यस्य भवेदेव निरन्तरम् ।। ७७।।
अस्तव्यस्तत्व भावोऽयं मालिन्यमपि नो क्वचित्।
उद्भवेदव्यवस्थायां मालिन्यं च कुरूपता ।। ७८।।
तिष्ठतो येन व्यक्तित्वं हीयते कथितं त्विदम्।
कुसंस्कारयुतो भावस्तस्मादेनं परित्यजेत् ।। ७९।।
कलाकारितया ख्याते स्वच्छता च सुसज्जता।
सुरुचेर्दर्शनं तत्र शरीरं पुरुषा यथा ।। ८०।।
स्वच्छसुन्दरमेवाऽपि कुर्वन्त्येव निरन्तरम् ।
तथोपकरणान्यत्र वस्त्रपात्रगृहानपि ।। ८१।।

टीका- स्वच्छता और सुव्यवस्था की ओर घर के हर सदस्य का ध्यान रहे। गन्दगी अस्तव्यस्तता कहीं भी पनपने न पाये। अव्यवस्था में ही गन्दगी और कुरूपता है। इसी को कुसंस्कारिता कहा गया है, इससे व्यक्तित्व घटिया बनता है। स्वच्छता और सुसज्जा को ही कलाकारिता कहते हैं। इसमें सुरुचि का दर्शन होता है। शरीर को स्वच्छ, सुन्दर रखने की तरह ही वस्त्र उपकरण, पात्र, मकान आदि सभी परिवार प्रयोग की वस्तुओं की सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाय।। ७७-८१।।

गृह की स्वच्छता और आन्तरिक व्यवस्था एक कला है। अपनी स्वयं की स्वच्छता, अपने जीवन में सादगी तथा घर की सफाई, मरम्मत, सादगीपूर्ण सज्जा और सुव्यवस्था पर ध्यान रखना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इस कर्तव्य की उपेक्षा से क्लेश ही भोगना पड़ता है, और इसे पूरा करने वाले को प्रसन्नता, प्रफुल्लता एवं प्रगति का पुरस्कार प्राप्त होता रहता है। स्वच्छता से भगवान की समीपता बतलाई गई है। जो शुचि और स्वच्छ है, वह एक प्रकार से ईश्वर के सन्निकट ही रहता है। भगवान् को शुचिता, स्वच्छता एवं पवित्रता परम प्रिय है। रोम के प्रसिद्ध महात्मा एपिक्टेरस युवकों को सदा यही उपदेश दिया करते थे कि स्वच्छतापूर्वक रहो और सुन्दर बनो। वे बाह्य वस्तुओं की सुन्दरता और स्वच्छता पर विशेष ध्यान देते थे, और कहा करते थे कि जो युवक स्वच्छ रहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है, साफ-सुथरे कपड़े पहनता है, अपने व्यवहार की वस्तुओं को शुद्ध, स्वच्छ और सुव्यवस्थित रखता है, वह अस्वच्छ एवं अस्त-व्यस्त-अव्यवस्थित रहने वाले युवकों की अपेक्षा तत्वज्ञान शीघ्र ही प्राप्त कर लेगा और दीर्घजीवी होगा।

सज्जनता की पहली निशानी है स्वच्छता तथा योग्यता एवं प्रतिभा की प्रथम शर्त है-सुव्यवस्था। परिवार को सज्जन और प्रतिभावान् बनाना चाहें, तो उनमें स्वच्छता और व्यवस्था की वृद्धि और क्षमता पैदा की जानी चाहिये।

स्वच्छान् सुसज्जितानेव कर्तुमन्यान्यपि स्वयम् ।
वस्तूनि पततां नित्यं व्यक्तित्वोदय हेतवे ।। ८२ ।।
कृमिकीटादयो नैव तिष्ठेयुरिति यत्यताम् ।
पवनस्यातपस्याऽपि प्रवेशो भवने भवेत् ।। ८३ ।।
वस्त्राणां स्वच्छताऽऽवासगृहस्याऽपि च स्वच्छता ।
सुव्यवस्था विधिर्नूनं परिवारगतान् नरान् ।। ८४ ।।
सत्प्रवृत्तिपरान् पक्वप्रकृतींश्च समानपि ।
विधत्तः सद्गुणश्चायं महत्वमहितो भुवि ।। ८५ ।।
लाभः सर्वैर्न रैरेष कर्तुं स्वर्गं गृहान् स्वकान् ।
सदस्याश्च गृहस्थास्ते देवत्वं यान्तु सत्वरम् ।। ८६ ।।

टीका- अन्य वस्तुओं को स्वच्छ और सुसज्जित रखने से व्यक्तित्व में वृद्धि होती है। कृमि-कीटकों को जमने न दिया जाय। धूप और हवा का हर जगह प्रवेश हो । वस्त्रों की सफाई, निवास, गृह की स्वच्छता, सुव्यवस्था करते रहने से परिवार के सदस्यों के स्वभाव में सत्प्रवृत्ति की परिपक्वता बनती-बढ़ती है। यह एक महत्वपूर्ण सद्गुण है। अपने घर को स्वर्ग बनाने के लिये यह गुण सभी को प्राप्त करना चाहिये, ताकि उस घर में रहने वाले सदस्य शीघ्र देवत्व को प्राप्त हो जाँय।। ८२-८६ ।।

स्वच्छता परमात्मा का सान्निध्य है तथा निर्मलता आत्मा का प्रकाश है। आन्तरिक स्वच्छता का आधार भी शारीरिक और बाह्य स्वच्छता ही है। आन्तरिक शुचिता एवं स्वच्छता का अभ्यास बाह्य पवित्रता, सुसज्जा और स्वच्छता अपनाकर ही सिद्ध किया जा सकता है, क्योंकि बाह्य स्वच्छता ही आन्तरिक स्वच्छता का हेतु है। यदि परिवार के हर सदस्य अपनी तथा अपने पास-पड़ोस की गन्दगी दूर करके उसके स्थान पर स्वच्छता एवं पवित्रता को पूरी तरह स्थापित कर लें, तो काल्पनिक स्वर्ग के स्थान पर जीवन के यथार्थ स्वर्ग को धरती पर और अपने घर पर ही देख सकते हैं। सुसज्जा, स्वच्छता एवं पवित्रता की पराकाष्ठा ही वह मनुष्यता है, जिसकी परिणति देवत्व में होना असंदिग्ध है।

देवत्व का प्रधान गुण है- स्वच्छता। मन्दिर तथा पूजन सामग्री स्वच्छ न हो, तो देवता स्वीकार नहीं करते। स्पष्ट है कि देवत्व के विकास के लिये स्वच्छता और सुव्यवस्था कितनी आवश्यक है। व्यक्तित्व के विकास का यह अमोघ साधन है।

आगामिषु दिवसेषु समाजस्य नवास्थितिः ।
प्रज्ञायुगे समाश्रित्याधारं वै पारिवारिकम् ।। ८७ ।।
भविता यत्र नीतिस्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।
स्वीकृतास्यात्तथा सर्वे ज्ञास्यन्त्यात्मानमुत्तमम् ।। ८८ ।।
सदस्यं सन्ततं विश्वपरिवारगतं स्वतः ।
सुसंस्कृते समाजे स्याद् ब्रह्मविम्बोदयास्थितिः ।। ८९ ।।
एतदर्थं नरैः सर्वैर्विधेयोऽभ्यास उत्तमः ।
महतः परिवारस्य सञ्चालनविधौ तथा ।। ९० ।।
सदस्यतां सुमान्या च गृहीतुमपि सर्वथा ।
विनाऽनेन समृद्धिर्नो भवेत् सर्वसुखावहा ।। ९१ ।।

टीका- अगले दिनों प्रज्ञायुग में समाज का अभिनव निर्माण पारिवारिकता के आधार पर ही होगा। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की नीति अपनाई जायेगी। सभी अपने को विश्व परिवार का सदस्य मानेंगे। मानो विराट् ब्रह्म की ही सुसंस्कृत समाज में झाँकी परिलक्षित होने लगेगी। इसके लिए हर किसी को विशाल परिवार का संचालन कर सकने तथा उसका सम्मानित सदस्य बनने का अभ्यास करना चाहिए। बिना इसके विश्व में वैसी समृद्धि सम्भव नहीं, जो प्रत्येक को सुख दे सके ।। ८७-९१ ।।

प्रथम दिन के समागम के समापन पर सत्राध्यक्ष एक महत्वपूर्ण घोषणा करते हुए उज्ज्वल भविष्य की सम्यक् तैयारी का सूत्र भी बतला रहे हैं। यह युग संधिकाल है, एक युग समाप्त होकर दूसरा प्रारम्भ होगा। नया युग प्रज्ञा युग कहलायेगा, जिसमें मानवीय उत्कर्ष के नये कीर्तिमान् बनेंगे।

उस महान् युग का आधार भी श्रेष्ठ पारिवारिक अनुशासन ही होगा। उसके अनुरूप जिनके मानस, जिनके अभ्यास नहीं बन पाऐंगे, वे उस प्रवाह में ठीक से खप न पाने के कारण दुःख, कठिनाई, अनुभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करेंगे। जो पहले से वैसा विकास-अभ्यास पा लेंगे वे श्रेय पायेंगे, सुखी रहेंगे ।

सामान्यरूप से लोग छोटी इकाइयों में रह लेते हैं। विशाल परिवारों में मानवीय गुणों, आत्मीयता आदि का अधिक विकसित होना आवश्यक हो जाता है। दो संगीतज्ञ एक साथ मजे में गा-बजा सकते हैं, किसी विशेष अभ्यास की जरूरत नहीं पड़ती। पर बड़े आर्केस्ट्रा में बजाने के लिए सधे हुए कलाकारों को भी पर्याप्त अभ्यास करना पड़ता है।

प्रज्ञा युग में वसुधा पर रहने वाले एक कुटुम्ब का भाव रखेंगे, यही नहीं उससे भी ऊपर समाज में विराट् ब्रह्म की झाँकी स्पष्ट होगी। इस स्तर के परिवार के योग्य विकसित पारिवारिक भावों का अभ्यास अचानक सहज ही नहीं हो जायेगा।उसके लिये लम्बा साधनात्मक अभ्यास चाहिए। महर्षि उसी अभ्यास को पहले से बना लेने का आग्रह करते हैं। पिछला इतिहास बतलाता है कि जब-जब कोई बड़ा परिवर्तन हुआ है, श्रेष्ठ जन पहले से उसके अनुरूप अभ्यास बनाकर अग्रणी रहते रहे हैं।

मत्स्यावतार के पूर्व महाराज मनु ने अपनी संवेदनाएँ उस स्तर की बना ली थीं कि उन्हें सृष्टि बीज सम्भालने की जिम्मेदारी सौंपी जा सकी।

रामावतार के पूर्व ही ऋषि तथा देवावतार वानर अपने साधना क्रम तथा अभ्यास उन परिस्थितियों के अनुरूप बनाने लगे थे।

महाभारत-विशाल भारत बनाने के लिए पाण्डवों को परस्पर सहयोग तथा तप तितीक्षामय जीवन का अभ्यास लम्बे समय तक कराया गया था। यदुवंशी उस पारिवारिक शालीनता के अनुरूप स्वभाव न ढाल सके, तो उन्हें नष्ट ही होना पड़ा।

पारिवारिक सूत्र के माध्यम से सतयुगी समाज बनाने का जो तत्वदर्शन यहाँ बतलाया गया, वह सभी के लिए अपनाये जाने योग्य है। पारिवारिकता को एवं इससे जुड़े गुण समुच्चय को अपनाए बिना न आत्म विकास सम्भव है, न विश्व कल्याण ही।

समाप्तिं समयोऽगात्स जयघोष पुरस्सरम् ।
सहैव शान्तिपाठेन तत्र नीराजनेन च ।। ९२।।
प्रथमस्य दिनस्याऽयं समाप्तिं प्रययौ ततः ।
उपदेशो जनाः सर्वेऽप्यनयाऽमृतवर्षया ।। ९३।।
आत्मनः कृतकृत्यांश्च मन्यमाना मुहुर्मुहुः ।
उत्साहिता स्ववासाश्च ययुस्ते दृढपौरुषाः ।। ९४।।

टीका- समय समापन की ओर था । शान्तिपाठ,आरती और जयघोष के साथ प्रथम दिन का प्रवचन समाप्त हुआ। विदा होते समय अमृत वर्षा से श्रवणकर्त्ता गृहस्थगण अपने को कृतकृत्य अनुभव कर रहे थे तथा अत्यन्त उत्साहित प्रतीत हो रहे थे, उनके पुरुषार्थ में दृढ़ता आ गयी थी ।। ९२-९४।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्रीघौम्यऋषिप्रतिपादिते "परिवारव्यवस्था" इति प्रकरणो नाम
।। प्रथमोऽध्यायः।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

गृहस्थ-जीवन प्रकरण

गंगाद्वारे तु कुम्भस्य पर्वणः समये शुभे ।
गंगातटे सुसम्मर्दो नृणां धर्मात्मनां महान् ।।१।।
वर्द्धते स्म तथा श्रद्धा तीर्थयात्रिनृणां शुभा ।
गंगेव गतिशीला च प्रोच्छन्तीव ददृशे ।।२।।
सम्बोध्योपस्थितान् धौम्यो महर्षिः स उवाच च ।
जगन्मंगलबोधिन्यां वाचि शान्ते तपोवने ।।३।।

टीका- गंगा तट पर हरिद्वार क्षेत्र में सम्पन्न हो रहे कुम्भ पर्व के आयोजन में धर्म प्रेमियों की भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। गंगा की तरह तीर्थ-यात्रियों की श्रद्धा भी उमँगती और प्रगतिशील दृष्टिगोचर हो रही थी। शान्त तपोवन के समान उस स्थान पर महर्षि धौम्य ने उपस्थित जनों को उद्‌बोधित करते हुए कहा, उनकी वाणी में जगत् की कल्याण कामना टपक रही थी ।। १-३।।

कुम्भ पर्व पर आयोजित इस विशेष सत्र में श्रोताओं की भीड़ का निरन्तर बढना उतने महत्व की बात नहीं, जितनी कि श्रद्धा में प्रगति होना। भीड़ तो हाट-बाजारों में बाजीगर एवं नट भी खूब इकट्‌ठी कर लेते हैं। हल्के मनोरंजन-कौतुक के नाम पर नित्य भीड़ें एकत्र होती देखी जा सकती हैं, पर इनसे लोकहित का प्रयोजन सधता नहीं। कुम्भ पर्वों के आयोजन सूत-शौनक परम्परा में होते ही इसीलिये थे कि जनमानस में श्रद्धा उभार कर सत्प्रवृत्तियों का पोषण उन्हें दिया जाय। यह सत्र तो गृहस्थों का होने के नाते और भी महत्वपूर्ण था।

विशेष बात यहाँ पर यह देखी जा सकती है कि श्रद्धा उपस्थित समुदाय में है भी एवं वह प्रगतिशील है। आदर्शों पर दृढ़ रहना भर पर्याप्त नहीं है। जब अन्तः से उद्‌भूत भावनायें काल-परिवर्तन के साथ लोकोपयोगी संशोधनों को भी सहज भाव से स्वीकार करने लगें, तो श्रद्धा को प्रगतिशील माना जा सकता है। ऐसी श्रद्धा उमँगने का माहात्म्य प्रतिपाद्य विषय की श्रेष्ठता एवं वक्ता की विद्वत्ता से भी बढ़कर है। जहाँ जनसाधारण को जनहित की कामना से किये जा रहे आयोजन का महत्व समझ में आ जाता है, वहाँ सुपात्र श्रोता स्वतः ही फूल पर मधुमक्खी की तरह रमने लगते हैं।

धौम्य उवाच-

भद्रा ! सद्‌गृहस्थास्तु भवन्तः सर्व एव हि ।
नात्मानमाश्रमाद्धीनं कस्माच्चिदपि मन्यताम् ।।४।।
लोभमोहविलासानां गृह्यन्ते दुष्प्रवृत्तयः ।
पतनस्य महागर्ते तर्हि पतो नृणां ध्रुवम् ।।५।।
ईदृशाऽवसरा नूनं गृहस्थे सम्भवन्त्यलम् ।
परं विवेकशीलास्तु रक्षन्त्यात्मानमात्मना ।।६।।
दुर्बलाया मनोभूमेः प्रवाहे प्रवहन्ति ये ।
ईदृशीमधिगच्छन्ति प्रायस्ते पुरुषा गतिम् ।।७।।
कर्त्तव्यधर्मं जानन्ति नरा ये ते गृहस्थजाम् ।
मर्यादां परिजानन्तः पालयन्ति सदा च ताम् ।।८।।
ईदृशानां नृणामेव कृते सञ्जायते ध्रुवम् ।
गृहस्थाचरणं स्वस्य विश्वस्याऽपि तथैव च ।।९।।
कल्याणकारको हेतुरुभयोरपि पूरकः ।
श्रूयतां सावधानैश्च भवद्‌भिः समुपस्थितैः।।१०।।

टीका- महर्षि धौम्य ने कहा-हे भद्रजनों ! आप लोग सद्‌गृहस्थ हैं। किसी आश्रम से अपने को हीन न समझें। लोभ, मोह, और विलास की दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने पर कोई भी निश्चित रूप से पतन के गर्त में गिर सकता है। ऐसे अवसर गृहस्थाश्रम में अपेक्षाकृत अधिक रहते हैं, लेकिन विवेकशील स्वयं को इनसे बचाये रखते हैं। दुर्बल मनोभूमि के प्रचलन-प्रवाह में बहने वाले ही प्रायः ऐसी दुर्गति प्राप्त करते देखे जाते हैं। जिन्हें कर्त्तव्यधर्म का ज्ञान है, वे गृहस्थ की मर्यादा को समझते तथा उसका पालन करते हैं। ऐसों के लिए गृहस्थ का आचरण आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण के दोनों ही प्रयोजन पूरे करने का निमित्त कारण बनता है। हे उपस्थितजनों, तुम सब सावधान होकर सुनो ।। ४-१०।।

सामान्यतया सभी आश्रमों में गृहस्थ जीवन को सर्वाधिक माया, प्रपञ्चयुक्त मानकर अन्य आश्रमों से छोटा माना जाता है। इस मान्यता को भ्रान्तिपूर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बतलाते हुए, सत्राध्यक्ष महर्षि धौम्य उपस्थित श्रोताओं को एक मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि से मुक्त होने का उद्बोधन देते दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।

दो अतिवाद इस आश्रम में देखने को मिलते हैं। अत्यधिक मोह-ममता के मायाजाल में फँसकर कइयों को और भी अधिक उलझते-पतित होते देखा जा सकता है। दूसरी ओर कुछ व्यक्ति भ्रान्तिवश अथवा कायरतावश इसे त्यागकर वैराग्य की बात करने लगते हैं, जब कि वह मार्ग इस आश्रम की कसौटी पर खरा उतरने वाले साधकों के लिए है एवं इससे भी अधिक दुष्कर है।

ऋषिश्रेष्ठ यहाँ कहते हैं कि मनुष्य के पतन का कारण, गृहस्थ जीवन नहीं, अपितु उसके निर्धारित अनुशासनों से भटक जाना है। लोभ, मोह, व्यसन आदि दुष्प्रवृत्तियाँ, चाहे गृहस्थ हों, चाहे विरक्त, किसी को नहीं छोड़तीं। इनसे जूझने के लिए तो विवेक का अवलम्बन अनिवार्य है ही। गृहस्थ को उसका निमित्त कारण मानते हुए अन्य कहीं बिना मन लगे, समय काटने की अपेक्षा तो इस आश्रम की भली प्रकार निवाहते हुए, विवेक का उपयोग कर दुष्प्रवृत्तियों से बचना चाहिये एवं आत्म परिष्कार की लक्ष्य सिद्धि की ओर बढ़ चलना चाहिए।

तथ्यानि स्पष्टयन्नग्रेऽगादीद् धौम्यो महामुनिः।
महत्वपूर्णोऽयं धर्मो गृहस्थाश्रमजो ध्रुवम् ।। ११।।
तस्मिन्नुपार्जितायास्तु क्षमताया भवत्यलम् ।
उपयोगस्य सच्छिक्षा ह्यनुभूतिश्च सा नृणाम्।। १२।।
कैशोर्ये स्वास्थ्यसंवृद्धि शिक्षार्जनमथाऽपि च ।
संयमोऽनुभवावाप्तिरनुशासनसंश्रयः ।। १३।।
ईदृशीः क्षमता बह्व्यो लभ्यन्तेऽहर्निशं नरैः।
नियोज्यश्च विकासस्य क्रमश्चाऽपि सुनिश्चितः।।१४।।
जायते परिपक्वश्च यौवनारम्भ एव तु ।
प्रायोनरोदिशांकाञ्चिद् गृह्णात्यपिनिजां स्वयम्।।१५।।
विधिना केन कर्त्तव्य उपयोगोऽस्य सन्ततम् ।
परिपक्वत्वभावस्य समावेशोऽत्र विद्यते ।। १६।।
धर्मे गृहस्थजे यत्र प्रविष्टे तु बहून्यपि ।
दायित्वानि समायान्ति सर्वेष्वेव नरेष्वलम् ।। १७।।
अभिभावकवर्गैश्च भरणादौ व्ययस्तु यः ।
कृतस्तस्मादृणान्मुक्तौ सहयोगस्तु तैः सह ।। १८।।
कर्त्तव्यः प्रथमं चैतत्कर्त्तव्यं जायते नृणाम् ।
वयस्कैः सहयोगस्तु यत्नश्चोत्थापने सदा ।। १९।।
अनुजानां विधातव्यो भव विवेकिनाम् ।
यौवने समनुप्राप्ते समेषामेव वै नृणाम् ।। २०।।

टीका- तथ्यों को और भी स्पष्ट करते हुए महामुनि धौम्य आगे बोले -गृहस्थ धर्म अपने स्थान पर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसमें उपार्जित क्षमता के सदुपयोग का प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त होता है। उठती आयु में स्वास्थ्य संवर्धन, शिक्षा अर्जन,अनुभव सम्पादन, अनुशासन, अवलम्बन, संयम जैसी अनेकों क्षमताएँ उपलब्ध की जाती हैं। विकासक्रम सुनियोजित किया जाता है। यौवन काल में प्रवेश करने तक मनुष्य बहुत कुछ परिपक्व हो जाता है तथा स्वयं किसी दिशा की ओर बढ़ना चाहता है। इस परिपक्वता का सदुपयोग किस प्रकार हो, इस विधि-व्यवस्था का गृहस्थ धर्म में समावेश है। उसमें प्रवेश करने पर कई उत्तरदायित्व कन्धे पर आते हैं। अभिभावकों द्वारा किये गये भरण-पोषण में जो ऋण चढ़ा है, उसे उनका हाथ बँटाते हुए उतारना प्रथम कर्तव्य है। समान आयु वालों का प्रयत्न-सहयोग, छोटों को ऊँचा उठाने-आगे बढ़ाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न-यह उत्तरदायित्व यौवन काल में प्रवेश करते ही हर विचारशील को निभाना ही होता है ।। ११-२०।।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व जिन सोपानों से मनुष्य को गुजरना पड़ता है, वे उसे शारीरिक दृष्टि से सुदृढ़ एवं वैचारिक दृष्टि से परिपक्व बनाते हैं। किसी भी परीक्षा को पास करने के बाद एक प्रशिक्षण अवधि होती है, जिसे पूरा किए बिना सीधे नौकरी नहीं दे दी जाती। एप्रेन्टीसशिप, इन्टर्नशिप का अभ्यास किए बिना मैकेनिक, इन्जीनियर या डाक्टर की भूमिका निभाना सम्भव नहीं। अर्जित ज्ञान सम्पदा एवं प्राप्त सामर्थ्य क्षमता का उच्चस्तरीय व्यावहारिक शिक्षण कहाँ हो ताकि मानवी व्यक्तित्व कसौटी पर कसने योग्य बन सके ? इसके लिए ऋषिगणों ने गृहस्थाश्रम का प्रावधान किया है। यह मनुष्य के भावी विकास के सुनियोजन की अवधि है।

ब्रह्मचर्य की अवधि में, उठती आयु में जब मानसिक विकास अति तीव्र होता है, अनेकों अनुभव जीवन सम्बन्धी उपलब्ध होते हैं। मनुष्य स्वयं के सम्बन्ध में, अपने परिकर के बारे में नूतन जानकारियाँ अर्जित करता है। इस ज्ञान भण्डार को गृहस्थ धर्म निबाहते समय विधिपूर्वक दिशा दी जा सकती है। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिम्मेदारियों के निर्वाह की अवधि है। जन्म से विवाह होने तक जिन माता-पिता ने सारे कष्ट उठाते हुए उत्तरदायित्वों को निवाहा और प्रगति पथ पर आगे बढ़ाया, उनके ऋण से मुक्त होने के लिए उनके सहयोगी-सहायक के रूप में स्वयं को विकसित करना पड़ता है। अर्थ प्रतिभा, शारीरिक श्रम, सद्भाव जिस भी माध्यम से बन पड़े इस पितृ ऋण को चुकाना गृहस्थ का प्रथम कर्त्तव्य है।

बचपन एवं यौवनावस्था की इस पूरी अवधि में सम आयु वाले जिन सखा-सहयोगियों का विकास क्रम में हाथ रहा है, उनकी ओर, अपनी ओर से भी हाथ बढ़ाना युवा गृहस्थ का एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। अपने से छोटी आयु के किशोरों, बालकों के प्रति भी जिम्मेदारियाँ शेष रह जाती हैं, क्योंकि मनुष्य परिवार संस्था की एक इकाई होने के नाते उसके समग्र विकास के लिए भी उत्तरदायी है। अपने अनुभवों से छोटों को भी लाभान्वित किया जाना चाहिए, ताकि वे भी अर्जित ज्ञान सम्पदा की फलश्रुतियाँ जीवन में उतार सकें।

हर दृष्टि से गृहस्थाश्रम तक पहुंचने वाला व्यक्ति अर्जित उपलब्धियों के नाते अपने से छोटों के लिए प्रेरणा का स्रोत होना चाहिए। न केवल अनुकरणीय आचरण करने वाला, अपितु अपनी उपलब्धियों से छोटों को आगे बढ़ाने, मनोबल जागृत कर उन्हें सही दिशा देने योग्य सक्षम होना चाहिए ।

प्रस्तुत प्रतिपादन में गृहस्थ जीवन की जिन तीन महती जिम्मेदारियों का विवरण प्रस्तुत हुआ है, वह बड़ा ही हृदयग्राही प्रेरक एवं वरेण्य है ।

ऋणान्यन्यानि विद्यन्ते दैवान्येव विधानि तु ।
कुटुम्बक्षेत्रवाह्यानि यान्यानृण्यवहानि च ।। २१।।
देशधर्मसमाजानां संस्कृतेर्बहुभिस्तु तैः ।
अनुदानैर्विकासस्य प्राप्तस्त्ववसरः शुभः ।। २२।।
कुटुम्बस्यैव ते लोका व्यवस्थाः समुपार्जितुम् ।
न समर्था भवन्त्यत्र सर्वतश्चिन्त्यतां यतः।। २३।।
जीविकोपार्जनं पाणिग्रहणं शिक्षणं तथा ।
अनेकानि हि कार्याणि बहूनामिह सन्नृणाम् ।। २४।।
अनुदानैस्तु जायन्त ऋणं दैवं समाजगम् ।
महत्वपूर्णं चैतद्धि नरैः प्रोक्तमृणं वरैः ।। २५।।
तस्मान्मुक्तिश्च सर्वेषां कर्त्तव्यं विद्यते नृणाम् ।
समाजस्य समृद्धिश्च विकासो भवतोऽभितः।। २६।।
यौवनारम्भकाले च नरः सर्वो हि विद्यते ।
समर्थोऽपि च सम्पन्नो वैभवं पुरुषैरिदम् ।। २७।।
उपयोक्तव्यमत्रैव दातुं सामाजिकं सदा ।
ऋणमेषु दिनेषु स्युः यानि कार्याणि तद् वरम्।। २८।।

टीका- परिवार क्षेत्र से बाहर भी चुकाने योग्य अनेकानेक देवऋण हैं। देश, धर्म, समाज, संस्कृति के अनेकानेक अनुदानों के सहारे ही मनुष्य को सुविकसित होने का अवसर मिला है। मात्र परिवार के लोग ही जीवन निर्वाह की सारी व्यवस्थाएँ नहीं जुटा देते। चारों ओर दृष्टि डालकर विचारें, चूँकि आजीविका उपार्जन और सहचर का पाणिग्रहण, शिक्षा अभिवर्धन जैसे अनेकानेक, सुयोग असंख्यों लोगों के अनुदान से ही हस्तगत होते हैं। यह सब देवऋण अर्थात् समाज-ऋण कहलाता है। श्रेष्ठ पुरुषों ने इसे महत्वपूर्ण ऋण कहा है। इस ऋण को चुकाना, समाज को-हर दृष्टि से समृद्ध-सुविकसित बनाना, हर विचारशील का आवश्यक कर्त्तव्य है। यौवन में प्रविष्ट होते समय मनुष्य समर्थता और सम्पन्नता की स्थिति में होता है। इस वैभव का उपयोग समाज ऋण चुकाने हेतु किया जाना चाहिए। इन दिनों जितने लोकोपयोगी कार्य बन सकें, उतना ही उत्तम है ।। २१-२८।।

परिवार तो समाज की एक इकाई है। मनुष्य को विकसित स्थिति तक पहुँचाने में समाज के हर घटक की भूमिका है। अपने आप तक अथवा परिवार तक ही सीमित होकर रह जाने वाले व्यक्ति संकीर्ण कहलाते हैं। मुसीबतें आने पर भी उन्हें कोई सहयोगी नहीं मिलता, क्योंकि वे स्वयं किसी के कभी काम न आए। शरीर बल संवर्धन, साधन-उपार्जन, बहिरंग शिक्षा सभ्यता के माध्यम से व्यक्तित्व संवर्धन जैसे महत्वपूर्ण अनुदान माता-पिता से लेकर समाज के विभिन्न अंगों द्वारा किए गये सहयोग के परिणाम स्वरूप हस्तगत होते हैं।

जिस समाज-राष्ट्र में हमने जन्म लिया है, उसने प्रकारान्तर से हमें संरक्षण एवं साधन देकर उपकृत किया है। उसके प्रति उऋण हुए बिना हम कृतघ्न कहे जाएँगे, चाहे हमारी व्यक्तिगत उपलब्धियाँ, श्रेय, सम्पदा कुछ भी क्यों न हो ? इसके लिए सबसे उत्तम काल वही है, जब मनुष्य स्वास्थ्य की दृष्टि से भी मनःस्थिति एवं साधनों की दृष्टि से भी, समर्थ-संतुलित होता है। पारिवारिक जीवन आरम्भ करते समय यौवन की पराकाष्ठा होती है। ऐसे में मद में चूर न होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने कर्त्तव्य में जुट जाना ही मनुष्य की श्रेष्ठता का सूचक है। जहाँ तक हो सके जन कल्याण की योजनाओं में स्वयं को नियोजित कर अपनी प्रतिभा का लाभ समाज को देना चाहिए ।

यह बात सदैव स्मरण रखी जानी चाहिए कि संसार से हमने बहुत कुछ पाया है।अधिकांश जीवनोपयोगी वस्तुएँ लोगों के परिश्रम से बनी हैं। उनके बुद्धि-कौशल का अनुग्रह-लाभ उठाकर ही हम उस स्थिति में पहुंचे हैं, जहाँ कि आज हैं। यदि किसी का सहयोग न मिला होता, तो सुसम्पन्न होना तो दूर, कदाचित हम जीवित भी न रह पाते। ऐसी दशा में आवश्यक है कि उस बगीचे को सींचें, जिसकी छाया में बैठकर हम फलों से गुजारा करते हैं। ऋणमुक्ति का सही तरीका इस विश्वसुधा को सुखी-समुन्नत बनाना ही है। ऋणग्रस्त को मोक्ष कैसे मिले ?

कामेच्छाऽपि नरान् सर्वान् विह्वलान् विदधाति सा ।
प्रकृतिप्रेरणा चैवं भावना वेगवत्यलम् ।। २९।।
पुंसोरत्रोभयोरेव समुदेति यथा वयः ।
शक्तिप्रवाहमेनं च नियम्यैव विवेकिनः ।। ३०।।
प्रयोजनेषु दिव्येषु योजयन्ते परं नहि ।
आत्मनिग्रहहीनैस्तु सामान्यैः शक्यते नृभिः ।। ३१।।
अस्मिन्नायुषि लोकास्तदद्यत्वेऽनुभवत्यलम् ।
विवाहस्याऽनिवार्यत्वं प्रवर्तन्ते च तत्र ते।। ३२।।
परं विवाहः कर्त्तव्यः शरीरे पक्वतां गते ।
उपार्जने समारब्धे दायित्वं गृह्यतामिदम् ।। ३३।।
अवयस्कैर्वृत्तिहीनैर्विवाहस्याऽस्य बन्धनम् ।
न स्वीकार्यं तथा नैव दम्पत्योर्द्वन्द्वनिश्चये ।। ३४।।
रूपमात्रं तु द्रष्टव्यं गुणं कर्म तथैव च ।
स्वभावः प्रमुखत्वेन विवेच्यः सुखमिच्छता।। ३५।।

टीका- कामेच्छा भी प्रचलन प्रवाह के कारण मनुष्य को बेचैन करती रहती है । प्रकृति-प्रेरणा से इस प्रकार की उत्तेजना नर-मादा दोनों में ही अवस्थानुसार उत्पन्न होती है। विचारशील तो इस शक्ति प्रवाह को रोककर महान् प्रयोजनों में भी लगा देते हैं, पर साधारण जनों से, आत्म निग्रह के अभाव में ऐसा कुछ बन नहीं पड़ता। इसलिए आम लोग इस आयु में विवाह की आवश्यकता अनुभव करते और उसमें प्रवृत्त भी होते हैं। विवाह शरीर के परिपक्व होने पर ही करना चाहिए । उपार्जन आरम्भ होने पर ही यह जिम्मेदारी उठानी चाहिए। न कमाने वाले और कम आयु वाले विवाह न करें। जोड़ी निश्चित करने में रूप-सौन्दर्य को नहीं, गुण, कर्म, स्वभाव को महत्व देना चाहिए ।। २९-३५ ।।

यौन उल्लास एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो गृहस्थाश्रम के प्रारम्भ में प्रकृति की सहज अभिव्यक्ति के रूप में-उमंगों के रूप में-उठने लगती है। इसका सुनियोजन महत्वपूर्ण है, अस्वाभाविक रूप से नियन्त्रण लगाने से तो अनेकों विकृतियाँ जन्म ले सकती हैं। कुछ विरले व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो इस उल्लास को सृजनात्मक प्रयोजनों से जोड़कर आजीवन अविवाहित बने रहते हैं। सारा समाज उनका कार्य क्षेत्र होता है, परिवार होता है, अतः उन्हें कोई अभाव भी अनुभव नहीं होता।

बहुसंख्य व्यक्ति उपरोक्त श्रेणी में नहीं आते। कामेच्छा एक सहज प्रवृत्ति के रूप में उन्हें व्यग्र बनाती एवं विवाह-बन्धन में बन्धने की दिशा देती है। कामोल्लास के सुनियोजन हेतु जरूरी है कि व्यक्ति मर्यादा से बन्धकर रहे। खेत में मेड़ न बाँधी जाय, तो सारा पानी बहकर निकल जाता है, फसल को कोई लाभ नहीं मिल पाता। आत्म संयम का एक रूप यह भी है कि व्यक्ति अपने को एक जीवन साथी के साथ जोड़कर अपना कर्त्तव्यपालन करता रहे। मानसिक चिन्तन कामवासना से भरा हो एवं व्यक्ति अविवाहित हो, तो इसे किसी प्रकार का त्याग या अध्यात्म मार्ग का सोपान नहीं कहा जा सकता। इसी कारण ऋषियों ने विवाह-बंधन का प्रावधान किया है, ताकि व्यक्ति वर्जनाओं में बँधा रहे।

विवाह कच्ची आयु में न हो, न ही आयु बीत जाने पर। शरीर एवं मन की दृष्टि से जब व्यक्ति परिपक्व है, अपने पैरों पर खड़ा है, अपनी एवं अपने परिवार की जिम्मेदारियाँ उठा सकने में समर्थ है, तो वही विवाह की सही उम्र है। परावलम्बी-कच्ची मनःस्थिति के असंयमी व्यक्ति तो ऐसा करके अपने पैरों कुल्हाड़ी मारते हैं, जीवन साथी के साथ भी विश्वासघात करते हैं।

विवाह करते समय दोनों ही पक्षों के चिन्तन एवं चरित्र को महत्ता मिलनी चाहिए। वही मूल सम्पदा है, जो जीवन रूपी नैया पार लगाती है। रूप को महत्व देने वाले ऐसे अनेकों मूर्ख समाज में देखे जा सकते हैं जो इसी कारण अनेकों सम्बन्ध ठुकरा देते व फिर स्वयं दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं। जहाँ स्वभाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिले, दोनों के आदर्श मिलें, वही सच्चा गठबंधन है, पाणिग्रहण है ।

देवानां वस्तुजातानां चाकचक्यस्य वा पुनः ।
आभूषणादिकानां च सम्मर्दस्य प्रदर्शनम् ।। ३६ ।।
पाणिग्रहणसंस्कारे यदि सम्मिलितं भवेत् ।
कालुष्यं भजते दिव्यमात्मबन्धनमादितः ।। ३७ ।।
अपव्ययानुगाश्चैते धनमुख्या भवन्ति ये ।
पाणिग्रहणसंस्कारा आसुरास्ते ह्यवाञ्छिताः ।। ३८ ।।
कारणैरेभिरेवात्र पक्षयोरुभयोरपि ।
अयथाबलमारम्भैरविवेकतयाभृशम् ।। ३९ ।।
आजीवनं भवेन्नूनं मनोमालिन्यमन्ततः ।
जीवन स्वर्गतुल्यं च गार्हस्थ्यं नरकायते ।। ४० ।।

टीका- दहेज, आभूषण, प्रदर्शन, भीड़-भाड़, धूम-धाम जैसे अपव्यय-विवाह संस्कार के साथ सम्मिलित करने पर वह परम पवित्र आत्मबन्धन प्रारम्भ में ही कलुषित हो जाता है। ऐसे धन-प्रधान विवाहों को आसुर-विवाह कहते हैं, ये अवाञ्छनीय है। इन कारणों से दोनों पक्षों के बीच आजीवन मन-मुटाव बना रहता है। चूँकि दोनों अपनी शक्ति से अधिक व्यय करते हैं, विवेक से काम नहीं लेते। इससे स्वर्गतुल्य गृहस्थ जीवन-नरक तुल्य बन जाता है ।। ३६-४० ।।

विवाह एक पवित्र बन्धन है जिसमें दो आत्माओं का उच्चस्तरीय प्रयोजनों हेतु मिलन-संयोग होता है। इस परम्परा में विकृतियों का समावेश मनुष्य की कुटिल बुद्धि की उपज है। कन्यादान के साथ धन सम्पदा, विलास के साधनों का आदान-प्रदान एक शर्त के रूप में जोड़ देना, स्वार्थ बुद्धि की पराकाष्ठा तो है ही, मनुष्य की शोषक क्रूर प्रवृत्ति का परिचायक भी है।

दुर्भाग्यवश इस पवित्र मिलन के साथ मध्यकाल के अन्धकारयुग में ऐसे कुप्रचलनों का समावेश हो गया, जिन्होंने न केवल विवाह संस्था को कलुषित किया, अपितु अनेकों निरपराध मासूम कन्याओं को दहेज की बलिवेदी पर चढ़ने को विवश कर दिया। जहाँ गुण, कर्म, स्वभाव का परस्पर मिलकर परिष्कार होना चाहिए था, वहाँ इसके विपरीत व्यावसायिक वणिक वृत्ति ने पारस्परिक सम्बन्धों के मध्य एक गहरी दरार पैदा कर दी है। इससे आपस में दो व्यक्तियों के मिलकर एक होने की बात तो दूर, सन्देह-घृणा-अपमान एवं अशिष्ट कृत्यों ने नारकीय परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं।

अपव्यय से युक्त विवाहों के लिए दोनों ही पक्ष दोषी हैं। धूमधाम का प्रदर्शन जिस अहंता की वृत्ति के कारण किया जाता है, उसे त्यागा जाना चाहिए। खर्चीले विवाह निश्चित ही व्यक्ति को दरिद्र एवं बेईमान बनाते हैं। गरीबों या सामान्य व्यक्तियों द्वारा अमीरों का स्वाँग बनाया जाना, एक बुरी किस्म का फूहड़पन है। दहेज का रिवाज जब भी कभी था तब वह विशुद्ध स्त्रीधन के रूप में स्वेच्छा से दिया जाता था। पिता,भाई,कुटुम्बी, सम्बन्धी अपनी सामर्थ्यानुसार कुछ धन लड़की को देते थे, ताकि वह संकट के समय काम आ सके। अब जब वरपक्ष कन्या के साथ जबर्दस्ती दहेज की रकम भी दिए जाने की शर्त ठहराता है तो यह विवाह पुण्य कृत्य न होकर आसुरी कृत्य हो जाता है। दहेज कम मिलने पर वधू को जलाकर मार देने या गला घोंट देने जैसे पैशाचिक कृत्य, नित्य इन दिनों प्रकाश में आ रहे हैं। राज्य-दण्ड तो इन्हें मिलना ही चाहिए, ऐसे कृत्य करने वालों को सामाजिक दण्ड भी मिलना चाहिए, ताकि उन्हें व अन्यों को सीख मिले ।

पतिःपत्नी च प्राणैस्तु गच्छेतामेकतां सदा ।
शरीरेण द्वयं स्यातां स्नेहसम्मानमेव च ।। ४१ ।।
सहयोगं सदापूर्णं विश्वासं च परस्परम् ।
अर्षयेतामुभौ नैव गूहेतां किमपि क्वचित् ।। ४२ ।।
त्रुटीः शोद्दयाश्च विस्मर्याः प्रतिशोधस्य भावना ।
न ग्राह्या मतभेदाश्च विचारैस्ते परस्परम् ।। ४३ ।।
समाधेयाः स्वपक्षे च हठं नैव समाश्रयेत् ।
कोऽपि तत्र विपक्षं चभावयन् स्वं,विचारयेत् ।। ४४ ।।
काठिन्यं विवशं भावमन्यपक्षगतं सदा ।
आक्रोशं नाधिगच्छेच्च भग्ने स्वीये मनोरथे ।। ४५ ।।

टीका- पति-पत्नी एक प्राण दो देह बन कर रहें। एक दूसरे को परिपूर्ण स्नेह-सम्मान-सहयोग एवं विश्वास प्रदान करें। परस्पर दुराव न रखें। भूलों को सुधारते और भुलाते रहें, प्रतिशोध की भावना न रखें। मतभेदों को विचार-विनिमय से सुलझा लिया करें। कोई पक्ष आग्रहशील-हठवादी न बने। अपने को दूसरे की स्थिति में कठिनाई और लाचारी पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें। अपनी मर्जी पूरी न होने पर आक्रोश से न भरें ।। ४१-४५ ।।

सुखी, सफल दाम्पत्य जीवन तभी सम्भव है, जब नर व नारी दोनों एक दूसरे के पूरक हो कर जियें। पति-पत्नी में आपस में कोई दुराव-छिपाव न हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गल्तियाँ दोनों में से किन्ही की भी हो सकती हैं। उन्हें विनम्रता से इंगित कर उनका समाधान निकाला जा सकता है। सौजन्य एवं सहकार पर ही परिवार रूपी रथ की धुरी टिकी हुई है । इसमें दुराग्रह, पूर्वाग्रह या प्रतिशोध की भावना पनपने का अर्थ है, विग्रह का जन्म लेना, ऐसे सन्देहों का जन्म होना जो घुन की तरह धीरे-धीरे उस शहतीर को नष्ट कर डालते हैं जिस पर भवन टिका हुआ है ।

सहिष्णुतां समाश्रित्य मैत्री निर्वाह्यते सदा ।
संसारे द्वौ नरौ नैव प्रकृत्या साम्यतां गतौ ।। ४६ ।।
स्वेच्छया न बलात्तत्र बाध्यं कर्तुं कमप्यहो ।
शक्यते संकटोऽभ्येति महाँस्तत्र बलाद्यदि ।। ४७ ।।
कार्यते कार्यमेषोऽत्र संकटश्च तथाविधः ।
उदेत्युग्रो व्यथादायी कार्यानुत्पत्तितोऽपि यः ।। ४८ ।।
अवसरो नैव दातव्यो मतभेदोदयाय च ।
आगतायां स्थितावेवं सहमानैर्विधीयताम् ।। ४९ ।।
कार्यं नारीव्रतं तत्र पातिव्रत्यं नरोऽपि च ।
कुर्यात्पत्नी व्रतं दिव्यं निष्ठातो जीवनं निजम् ।। ५० ।।

टीका- सहिष्णुता के सहारे ही मैत्री का निर्वाह होता है। संसार में कोई भी दो मनुष्य एक जैसी प्रकृति के नहीं होते, फिर भी बलपूर्वक किसी को अपनी मर्जी पर चलने के लिए बाधित भी तो नहीं किया जा सकता। इस तरह काम करा लेने पर काम न होने से भी अधिक व्यथित करने वाला बड़ा संकट उत्पन्न होता है। अस्तु, मतभेदों का पनपने का अवसर ही न दिया जाय। यदि ऐसी स्थिति आए भी, तो उन्हें सहन करते हुए काम चलाया जाय। नारी पतिव्रत धर्म का एवं नर पत्नीव्रत धर्म का निष्ठापूर्वक निर्वाह करें-यही दैवी जीवन है।। ४६-५०।।

पारस्परिक सौजन्य के सहारे ही दो साथियों की मैत्री निभती है। जिन्हें जीवन भर के लिए एक गठबन्धन में बाँध दिया गया है, उन्हें तो सहनशीलता का अभ्यास और भी अच्छी तरह करना चाहिए। स्वभाव दो व्यक्तियों के एक जैसे होते तो नहीं, पर समझा-बुझाकर, तालमेल बिठाकर ऐसी रीति-नीति बनायी जा सकती है, जिससे दो व्यक्तियों के आपस में टकराने की स्थिति न आए। पारस्परिक मतभेद पनपने पर कोई एक पक्ष भी यदि सामयिक रूप से उन्हें अधिक न बढ़ने देने के लिए संकल्पित हो, तो कालान्तर में वे स्वयमेव तिरोहित हो जाते हैं। जब वस्तुस्थिति का पता चलता है तब लगता है, उस समय की मनःस्थिति एवं तद्जन्य आवेश कितना निरर्थक एवं तिल को ताड़ रूप में बनाया गया था।

एक दूसरे के प्रति एकनिष्ठ भाव से समर्पित होकर जीना यदि संभव हो सके, तो गृहस्थ जीवन स्वर्ग से भी बढ़कर है। मात्र पत्नी के लिए पति परायण होना ही नहीं, पति के लिये पत्नी के प्रति उतनी ही कर्त्तव्यनिष्ठा चिन्तन एवं व्यवहार में होना जरूरी है, तभी दोनों का गठबन्धन सार्थक है ।

देवतुल्यं विधातुं तद् विवाहात्पूर्वजं तथा ।
व्यतिरेकश्च विस्मर्यः कार्यं न संशयादिकम् ।। ५१ ।।
विवाहस्य दिनादेव प्रारब्धा व्रतशीलता ।
जायते भाव्यमेतैश्च नियमैरुभयोः कृते ।। ५२ ।।
समानैर्विधवानां ते विधुराणामुताऽपि च ।
कारणेऽपरिहार्ये च बन्धनान्मुक्तिरिष्यते ।। ५३ ।।
नियमं मन्यतां नैतदपवादं तु केवलम् ।
प्रसंगाश्चेदृशा न्यूना एवायान्तु कदाचन ।। ५४ ।।
अर्धांगिनी न त्यक्तव्या नरेणाऽनीतिपूर्वकम् ।
दृष्टिं दद्याज्जागरूकां तस्यां देहे निजे यथा ।। ५५ ।।

टीका- विवाह से पूर्व के व्यतिरेकों को भुला दिया जाय। इस कारण कोई किसी पर अविश्वास या सन्देह न करें। व्रतशीलता तो विवाह के दिन से आरम्भ होती है। विधवा और विधुर दोनों के लिए एक जैसे अनुशासन होने चाहिए। बन्धन-मुक्त होने का प्रयत्न अनिवार्य कारण होने पर ही किया जाय। उसे नियम नहीं अपवाद माना जाय। ऐसे प्रसंग कम ही आये। कोई पति अपनी पत्नी को अनीतिपूर्वक परित्याग न करे। इस पर अपने शरीर की देखभाल की तरह ही कड़ी दृष्टि रहनी चाहिए ।। ५१-५५ ।।

पाणिग्रहण संस्कार व्रतों को निभाने हेतु दृढ़-निश्चयी दो व्यक्तियों का संयुक्तीकरण है। ऐसे पुण्य-प्रयोजन में निरत साथियों को आपसी सम्बन्धों में आड़े न आने देना चाहिए। यदि पूर्व के कोई ऐसे प्रसंग हों, जिनसे अविश्वास को पोषण मिलता हो, तो उनसे विमुख होकर उनमें न उलझना ही श्रेयस्कर है। इसी में पारिवारिक गठबन्धन की मर्यादा निभती है।

यदि किसी कारणवश दोनों को अलग होना पड़े तो ऐसे अवसर कम से कम आने दें। इन दिनों छोटी-छोटी बातों पर आवेशग्रस्त होकर सम्बन्ध टूटते देखे जाते हैं। तलाक के प्रसंग आम हो गए हैं। पाश्चात्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभ्यता देव संस्कृति पर हावी होती जा रही है एवं आधुनिकता की दौड़ में मदहोश व्यक्ति विवेक खोकर गृहस्थ-जीवन रूपी हाथ आये सुयोग को गवाँ बैठता है। इसमें एक बात विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य यहाँ बताई गयी है कि कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी को, जो उसकी अर्धांगिनी है, अनीतिपूर्वक न छोड़े। यह एक ऐसा अपवित्र कृत्य है, जो मनुष्यता के नाम पर कलंक है।

यौवने पुरुषैः सर्वैरर्थोपार्जनमिष्यते ।
उचितं चेदमाभाति तथैवाऽऽवश्यकं नृणाम् ।। ५६ ।।
श्रमस्याऽऽजीविका ग्राह्यासर्वैरेव नरैरिह ।
ग्राह्या पवित्रता चैव तत्रोपार्जनकर्मणि ।। ५७ ।।
नेदृशं व्यवसायं च कश्चिदेव समाश्रयेत् ।
पतनस्य पराभूतेर्गर्ते येन पतेत्स्वयम् ।। ५८ ।।
अनावश्यके च श्रृंगारे सज्जायामपि वा पुनः ।
अपव्यययुतं नैव प्रदर्शनमथाऽऽचरेत् ।। ५९ ।।
व्यसनेषु प्रपञ्चेषु गौरवं नैव मन्यताम् ।
नैव तस्मिन् व्ययः कार्यःपणकस्याऽपि कुत्रचित् ।। ६० ।।
सरलैव च पद्धत्या जीवनस्य तया सह ।
उत्कृष्टं जीवनं बद्धमहंकारि नरास्तु ये ।। ६१ ।।
प्रदर्शनरतास्ते तु सदैवाऽत्राघमर्णताम् ।
घृणास्पदस्थितिं चैव प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् ।। ६२ ।।

टीका- युवावस्था में सभी को अर्थोपार्जन करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य के लिए यह उचित भी है और आवश्यक भी। सभी को श्रम की आजीविका उपार्जित करनी चाहिए। उपार्जन में ईमानदारी बरती जाय। कोई ऐसा व्यवसाय नहीं करें, जिससे किसी को पतन-पराभव के गर्त में गिरना पड़ता हो। अनावश्यक श्रृंगार-सज्जा, अपव्यय भरा प्रदर्शन, आडम्बर एवं दुर्व्यसनों में न तो बड़प्पन मानना चाहिए और न उनमें एक पैसा खर्च करना चाहिए। सादगी के साथ ही उत्कृष्ट जीवन जुड़ा हुआ है। प्रदर्शन प्रिय अंहकारी आर्थिक तंगी भुगतते, ऋणी रहते और घृणास्पद बनते हैं ।। ५६-६२ ।।

कुरीत्याक्रमणं प्रायो गृहस्थे जीवनेऽधिकम् ।
जायते पुरुषा सन्ति तत्र येऽपक्वबुद्धयः ।। ६३ ।।
मन्यन्ते ते च सर्वस्वं यत्तत्प्रचलनोद्भवम् ।
त्यक्तुं तन्न समर्थास्ते मन्यन्ते स्वकुबुद्धयः ।। ६४ ।।
दृष्ट्वाऽन्योऽन्यं प्रथास्ताश्च गृह्णन्त्येव निरन्तरम् ।
सर्वथाऽनुपयोगित्वं वर्तमाने गतास्तु याः ।। ६५ ।।

टीका- कुरीतियों का आक्रमण प्रायः गृहस्थ-जीवन के दिनों में ही होता है। अविकसित मस्तिष्क प्रचलनों को ही सब कुछ मानते हैं तथा दुराग्रह बुद्धि के कारण वे उन्हें छोड़ नहीं पाते हैं और देखा-देखी उन प्रथाओं को भी अपनाते हैं जो वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा अनुपयुक्त हो गयी है ।। ६३-६५ ।।

विवाहेषूपजातीनां सीमाबन्धनमद्य तु ।
समाप्यं यत आसंस्ते वर्णाश्चत्वार एव तु ।। ६६ ।।
उपजातिवितानं तु मध्यकालस्य विद्यते ।
अन्धकारयुगस्येयमुत्पत्तिर्भेदवाहिनी ।। ६७ ।।
प्रदर्शनपराणां तु विवाहप्रीतिभोजयोः ।
अद्यत्वेऽपव्ययानां हि नैवोचित्यं तु वर्तते ।। ६८ ।।
त्यक्तव्याः सर्व एवैते श्रद्धाहीनास्तथैव च ।
प्रदर्शनपरा भोजव्यवस्था मृतकोद्भवा ।। ६९ ।।
भिक्षाया व्यवसायः स जातिमान्या च मान्यता ।
अवगुण्ठनादिकाः सर्वा रीतयो हानिदा अलम् ।। ७० ।।

टीका- विवाहों में उपजातियों का सीमा-बन्धन समाप्त होना चाहिए। पुरातन काल में चार वर्ण ही थे, उपजातियों का जंजाल तो मध्यकाल के अन्धकारयुग की भेद-प्रभेदमय देन है। अपव्यय, धूम-धाम भरे प्रीतिभोजों, विवाहों का वर्तमान परिस्थितियों में तुक नहीं। इन्हें बन्द किया ही जाना चाहिये। इसी प्रकार श्रद्धाविहीन बड़े मृतक भोज, भिक्षा-व्यवसाय,जाति-पाँति के आधार पर बरती जाने वाली ऊँच-नीच की मान्यता, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों में असीम हानि ही है ।। ६६-७० ।।

गृहस्थाश्रम के जहाँ अनेकों लाभ हैं, वहाँ एक हानि यह भी है कि प्रगतिशीलता के अभाव में, चिरपुरातन समय से चली आ रही परम्परायें-प्रचलन, पारिवारिक सदस्यों के दैनिक जीवन का एक नियमित अंग बन जाती हैं। बड़े-बूढ़े कह गये हैं, इसलिए कुछ करना एवं उसे तर्क की कसौटी पर न कसना, सौजन्य एवं मर्यादापालन नहीं कहलाता। आने वाली पीढ़ियाँ व अन्य पारिवारिक सदस्य भी, इन मूढ़-मान्यताओं को जो समय के प्रवाह के साथ-साथ अब उपयुक्त नहीं रहीं, शाश्वत मानकर चलते एवं उनका परिपालन करते हैं। इससे अन्ततः समाज की प्रगति में अवरोध ही आते हैं।

विवाहों से जुड़ी कुरीतियों में उपजातियों का बन्धन अहंता के प्रदर्शन से भरे खर्चीले विवाह आदि आते हैं। अब समय आ गया है कि देव-संस्कृति के पुरातन स्वरूप को उसके शाश्वत प्रखर रूप में प्रस्तुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जाय एवं हर वर्ण में बने उपजाति के बन्धन तोड़े जाँय। वर्णों का विभाजन कर्मों के आधार पर माना जाय, न कि जन्म के आधार पर। ऐसे में श्रेष्ठ आचरण वाले उपयुक्त वर-वधू समाज में से चयन कर श्रेष्ठ नागरिक समाज को दिए जा सकते हैं। धूम-धड़ाके से भरी शादियाँ व्यक्तियों को अनीति की कमाई की ओर तो प्रवृत्त करती ही हैं, अन्य अनेकों के मन में ईर्ष्या-डाह भर देती हैं। ऐसे अवसर पर आयोजित प्रीतिभोज संक्षिप्त, सादगी से भरे एवं वास्तविक अर्थों में सौजन्य बढ़ाने वाले सम्मलेन के रूप में होना चाहिए।

बड़ों की मृत्यु के बाद भोज देने की परम्परा अभी भी समाज में विद्यमान है। इसके स्थान पर श्राद्ध रूप में परमार्थ कार्य को लेना चाहिए । इससे पितरों के प्रति सही अर्थों में श्रद्धा व्यक्त होती है। ऊँच-नीच, भिक्षा-व्यवसाय, नारी को पर्दे में बांध रखने की प्रवृत्तियाँ भी ऐसी ही हैं, जो गृहस्थाश्रम में रहकर कार्य करने वालों के मार्ग में बाधक बनती हैं। इनसे जूझने-इनके विरुद्ध माहौल बनाने का सही समय यही है। आज की परिस्थितियों में वह अभीष्ट है, वही क्रिया की जानी चाहिए।

हितं नैव तु कस्यापि सिद्ध्येदेभिः क्वचिन्मनाक् ।
असंख्या हानयो मात्रं भवन्त्येव निरन्तरम् ।।७१।।
अन्धविश्वासबाहुल्यं दिवसेष्वेषु विद्यते ।
यदाश्रित्य च धूर्तास्तु जनान्लुण्ठन्ति नित्यशः।।७२।।
आत्मानं हि भ्रमादस्माद्रक्षेदन्यानपि स्वकान् ।
भाग्यवादे किंवदन्ती श्रितेष्वेतेषु वा पुनः ।।७३।।
देवेषु पुरुषेष्वेवं भविष्यद् वक्तृषु क्वचित् ।
मूहूर्त्तस्यातिवादे न भ्रान्तैर्भाव्यं विवेकिभिः।।७४।।

टीका- अन्धविश्वासों की इन दिनों भरमार है। उनकी आड़ में धूर्त लोग भोले-भावुकों को ठगते रहते हैं। इस भ्रम-जंजाल से स्वयं बचना और दूसरों को बचाना चाहिए। भाग्यवाद चित्र-विचित्र किंवदन्ती, आश्रित देवी-देवताओं का प्रचलन, भविष्य कथन, मुहूर्तवाद जैसी भ्रान्तियों में विज्ञजनों को नहीं ही फँसना चाहिए ।। ७१-७४।।

परिवार में रहते हुए मूढ़ मान्यताओं, अन्ध विश्वासों के कुचक्र से बचना हर गृहस्थ के लिये अनिवार्य है। जनमानस इतना लचीला होता है कि वह जिधर मोड़ा जाय, उधर ही मुड़ जाता है। विवेक से काम लेने वाले कम ही देखे जाते हैं। धर्म के नाम पर अनेकों विकृतियाँ समाज में फैली हैं। धर्म का वस्तुतः सही स्वरूप ही जन साधारण को नहीं मालूम है।

गृहस्थजीवने चाऽत्र सम्बद्धातिथि सत्कृतिः ।
वर्तितव्यो नातिवादस्तथाप्यत्र कदाचन ।।७५।।
सख्यव्याजेन येष्वत्र गृहेषु मित्रमण्डली ।
संतिष्ठते सदा सत्वहीनता तेषु जृम्भते ।।७६।।
समयो नश्यति द्रव्यं नश्यत्येतेन सन्ततम् ।
विकृतीनां प्रवेशश्च कुटुम्बे जायतेऽञ्जसा ।।७७।।
आवश्यकेन कार्येण विना नैव कदाचन ।
आतिथ्यमाचरेदत्र निष्क्रियाणां नृणां बुधः ।।७८।।
गृहेषु नैव चाऽन्येषां गच्छेद् व्यर्थं निरन्तरम् ।
समयस्य विनाशस्तु मित्रैः सह न युज्यते ।।७९।।
हानयो विपुलाः सन्ति दिनेष्वेतेषु सर्वथा ।
जीविका कष्टयुक्तेषु विधिनाऽनेन निश्चितम् ।। ८०।।
सन्मित्राणामभावस्तु प्रायोऽद्यत्वे विलोक्यते ।
भावुकाश्च दिशाहीना वर्धन्ते चाऽन्यसंगताः ।।८१।।

टीका- गृहस्थ जीवन के साथ अतिथि सत्कार जुड़ा हुआ है, पर उसमें अतिवाद नहीं बरता जाना चाहिए। जिन घरों में दोस्ती के नाम पर निरर्थक व्यक्तियों की मण्डली जमी रहती है, उनका दिवाला निकल जाता है, समय नष्ट होता है, पैसों की बर्बादी होती है। इस अवांछनीय घुसपैठ से परिवार में अनेकों विकृतियाँ अनायास घुस पड़ती हैं। इसलिए बिना आवश्यक काम के निठल्ले लोगों का आतिथ्य नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों के घरों में बिना कारण बार-बार जाना चाहिए। मित्रों के साथ अनावश्यक समय बर्बाद करना किसी भी प्रकार उचित नहीं। इन दिनों तो उससे हानि ही हानि है। भले मित्रों का अब एक प्रकार से अभाव ही हो गया है। दिशाहीन भावुक पुरुषों की संख्या बढ़ रही है, जो औरों को भी बहा ले जाते हैं ।। ७५-८१।।

अतिथि धर्म का निर्वाह हर व्यक्ति के लिये अनिवार्य माना जाता है। पर यहाँ ऋषि इस दिशा में अतिवाद बरते जाने से संभावित परिणामों का संकेत करते हुये कहते हैं कि जहाँ मित्रता के नाम पर अनावश्यक लोगों का जमघट रहता है, वहाँ सत्प्रवृत्तियाँ पनपने, परस्पर मैत्री बढ़ने के स्थान पर विकृतियाँ जन्म लेने लगती हैं। मित्रता जरूरी है, उसके बिना जीवन व्यापार में प्रगति संभव नहीं, पर उस दिशा में विवेक बरता जाना जरूरी है। सच्चे मित्र बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। लोक प्रचलन के प्रवाह में तो धूर्तों अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अतिभावुकों की ही भीड़ है, जो किसी काम में सहायक तो बनते नहीं, हानिकारक और सिद्ध होते हैं।

संयुक्तस्य कुटुम्बस्य रीतिर्योग्यैव सर्वथा ।
कर्त्तव्यानि विभक्तानि दायित्वानि नृणां सदा ।। ८२ ।।
भवेयुः स्वस्वदायित्वं मर्यादाऽपि च स्वतः ।
निर्वहेयुः समे नो चेन्मनोमालिन्यमत्र तत् ।। ८३ ।।
पृथग्भावोऽपि सद्यस्तु समुदेति भवेत्ततः ।
कलहापेक्षया चाल्यकुटुम्बस्थिति बाध्यता ।। ८४ ।।

टीका- संयुक्त परिवार-प्रथा हर दृष्टि से उपयोगी है, पर उसमें कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व बँटे रहना चाहिए और हर सदस्य को अपनी-अपनी जिम्मेदारियों तथा मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। इसके बिना मनोमालिन्य और बिखराव पैदा होता है। ऐसी स्थिति में निरन्तर के कलह की अपेक्षा छोटे-छोटे अलग परिवार बसाने की विवशता अपनानी पड़ती है ।। ८२-८४ ।।

संयुक्तस्य कुटुम्बस्य लाभश्चात्र तदैव तु ।
प्राप्यते यदि कर्त्तव्यमर्यादानां विनिर्मिता ।। ८५ ।।
आचारसंहिता सा स्यात्पाल्येताऽपि जनैः स्वयम् ।
वयोऽधिकाश्च मान्याः स्युः परिवारे सदैव ते ।। ८६ ।।
सौविध्यस्य सहायस्य चिन्ता तेषां विशेषतः ।
कर्तव्या लाभ आप्तव्यस्तेषामनुभवेः सदा ।। ८७ ।।
परामर्शं निदेशं तमौचित्यनिकषे स्वयम् ।
पालयेत्संपरीक्ष्यैव यतो वृद्धजनेष्वपि ।। ८८ ।।
बहूनां मान्यता इच्छा स्वभावश्च समान्यपि ।
विवेकनिकषोत्तीर्णान्यत्र नैव भवन्ति तु ।। ८९ ।।
ईदृश्यां च दशायां तु निदेशान् कलहं विना ।
शक्यते चाऽञ्जसा कर्तुमश्रुतान् वाप्युपेक्षितान् ।। ९० ।।
सम्मानं च सुरक्षा च सेवा भावोऽन्यदेव तु ।
विद्यते चाऽविचार्यैव निदेशपरिपालनम् ।। ९१ ।।
भिन्न एव महत्वं च विवेकौचित्ययोस्तु तत् ।
श्रेष्ठमेव परामर्शाद् वृद्धानामतिरिच्यते ।। ९२ ।।

टीका- संयुक्त-परिवारों का लाभ तभी मिलता है, जब कर्त्तव्यों एवं मर्यादाओं की आचार संहिता बने और उसका विधिवत् पालन हो सके। परिवार संस्था में वयोवृद्धों को समुचित सम्मान मिलना चाहिए। उनकी सुविधा और सहायता का भी ध्यान रखना चाहिए। उनके अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए, किन्तु परामर्श या निर्देश को औचित्य की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही पालन करना चाहिए, वृद्धों में से कितनों की ही मान्यताएँ, आदतें, इच्छाएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें विवेक की कसौटी पर कसने पर खरा नहीं पाया जाता। ऐसी दशा में निर्देशों को बिना विग्रह खड़ा किये हुए, उन्हें अनसुना या उपेक्षित भी किया जा सकता है। सम्मान रक्षा, सुरक्षा, सेवा-एक बात है और आँखें मूँद कर निर्देश मानने के लिए बाधित होना सर्वथा दूसरी। विवेक एवं औचित्य का महत्व सर्वोपरि है। उसका स्थान वृद्धजनों के परामर्श से भी अधिक है ।। ८५-९२ ।।

आज परिस्थितियाँ बदली हुई हैं। पुरातन विश्व की तुलना में आज परिवार संस्था का रूप बदला हुआ-सा है। पहले बड़े परिवारों में सभी एक साथ रहते थे, एक साथ उपार्जन कर उसका मिल-बाँट कर उपभोग करते थे। तब समाज छोटे-छोटे हिस्सों में बँटा था, शहर अधिक नहीं थे एवं कृषि तथा ग्राम्य प्रधान संस्कृति होने के कारण संयुक्त परिवार का प्रचलन अधिक था। उसके अपने लाभ भी थे। सहकारिता, औदार्य, एक-दूसरे के प्रति सौजन्य, बड़ों को सम्मान, ये सभी उस परम्परा की ही देन हैं।

आज स्थिति अलग है। उपार्जन के स्थान सुदूर क्षेत्रों में होने के कारण, परिवार बँटते चले जा रहे हैं। यदि यह संरचनात्मक विघटन ही होता , तो एक बात थी, किन्तु जब उत्तरदायित्वों को भुलाकर भावनात्मक विघटन भी हो जाता है, तो आधुनिकता की इस देन को, बुद्धिमान लोग हेय ही ठहराते हैं। दूसरा पक्ष यह भी है कि पीढ़ियों के अन्तर व मानसिकता में भिन्नता होने के कारण परस्पर कलह बना रहता हो एवं यही संयुक्त परिवार के विघटन का कारण बनता हो, तो ऐसे में बड़ों के प्रति दायित्व निभाते हुए यदि अलग छोटे परिवार बनाने पड़ें, तो इसे आज की आवश्यकता मानकर चलना चाहिए ।

यदि सौभाग्यवश संयुक्त परिवार में रहने का अवसर मिल सके, तो निर्वाह तभी हो पाता है, जब सभी परिवारीजन अपने उत्तरदायित्वों को निबाहें। बड़ों ने कष्ट उठाकर परिवार संस्था को समुन्नत किया है। वे सम्मान के योग्य हैं। किन्तु यदि उनके परामर्श सामयिक न हों एवं तर्क, तथ्य की कसौटी पर अनुचित ठहरें, तो ऐसे में उन्हें अनसुना करना अकर्त्तव्य नहीं है। ऋषि कहते हैं कि आँख बन्द करके, बड़े कह रहे हैं, मात्र इसीलिए मान लेना समझदारी की बात नहीं है। जो तथ्य कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं पर लागू होते हैं, वे ही उन सुझावों-परामर्शों पर भी समान रूप से लागू

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हैं, जो समय के प्रवाह से विपरीत हैं अथवा अनुचित हैं।

गृहस्थजीवनस्यातो महिमा स मतः स्वतः ।
आश्रमाणामिव श्लाघ्यः शोभनः सुप्रशंसितः ।। ९३ ।।
उच्चादर्शं तु गृह्णन्ति लोकसेवा विधेस्तु ये ।
जनास्तेषां कृते नैवानिवार्यं विद्यते परम् ।। ९४ ।।
सर्वसाधारणानां तु कृतेऽस्त्येव जनैर्यतः ।
विकासश्च कुटुम्बस्थः सर्वेषामेव जायते ।। ९५ ।।
गृहस्थेन ततः सर्वे सम्बद्धाः सन्ति निश्चितम् ।
अतस्तत्सूत्रसम्बद्धकर्त्तव्यपरिपालनम् ।। ९६ ।।

टीका- गृहस्थ जीवन की महिमा भी अन्य आश्रमों की तरह ही सुन्दर, प्रशंसनीय एवं श्लाघ्य मानी गयी है। लोकसेवा का उच्च आदर्श अपनाने वालों के लिए वह अनिवार्य नहीं, तो भी सर्वसाधारण के लिए वही उपयुक्त है। हर किसी का जन्म और विकास तो परिवार के अन्तर्गत ही होता है, इसलिए उसके साथ हर कोई जुड़ता है। अतएव उस सम्बन्ध सूत्र के साथ जुड़े हुए कर्त्तव्यों का परिपालन ही श्रेष्ठ माना जाता है।। ९३-९६ ।।

गृहस्थ जीवन प्रकरण का समापन करते हुए, ऋषिश्रेष्ठ सर्वसाधारण के लिए परिवार-बन्धन में जुड़ने का माहात्म्य बताते हुए कहते हैं कि चूँकि मनुष्य परिवार की, समाज की, एक इकाई है, उसे अपवादों को छोड़कर यथा सम्भव अपने दायित्व परिवार संस्था से जुड़कर ही निभाना चाहिए। माता-पिता,भाई-बहिन, पत्नी-पुत्र, मित्रगण, इन सभी के प्रति उसके कर्त्तव्य हैं। उन्हें गृहस्थ धर्म में रहकर ही पूरा किया जा सकता है। मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग यही है, कि वह स्वयं को इस बन्धन से जोड़कर सबको साथ लेकर चले एवं अपने धरती पर अवतरण को सफल बनाये ।

उद्बोधनं प्रियं जातं श्रोतृणामद्य यच्छ्रुतम् ।
शान्तिपाठनमस्कारजयशब्दैरथाऽपि च ।। ९७ ।।
नीराजनेन सार्धं च समाप्तं सत्रमुत्तमम् ।
यथाकालं परं गन्तुमुत्थातुं चाऽपि नो मनः ।। ९८ ।।
कस्याऽपि कुरुते तत्र साहसं नित्यकर्मणः ।
व्यवस्था च व्यघात् सर्वान्विवशान् गन्तुमत्रच ।। ९९ ।।

टीका- आज का उद्बोधन उपस्थित जनों को और भी प्रिय लगा । शान्तिपाठ, आरती, जयकार, अभिवन्दन के उपरान्त नियत समय पर सत्र समाप्त हुआ, पर उठने व जाने के लिए किसी का मन नहीं कर रहा था । नित्य-नियम की व्यवस्था ने ही उन्हें विदा होने के लिए विवश किया ।। ९७-९९ ।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्रीधौम्यऋषिप्रतिपादिते "गृहस्थजीवन" इति प्रकरणो नाम
।। द्वितीयोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

नारी-माहात्म्य प्रकरण

सत्र प्रवचने तत्र तृतीयस्य दिनस्य तु ।
अभूदुपस्थितिः सा च श्रोतृणां महती नृणाम् ।।१।।
संख्या प्रतिदिनं विज्ञजनानां वर्द्धते यतः ।
अन्वभूवन्निदं सर्वे प्रथमं यद् गृहस्थजः ।।२।।
धर्मोऽपि समतुल्यः स योगसाधनया ध्रुवम् ।
निर्वहिण च तस्यैव सीमितानामिह स्वयम् ।।३।।
मर्यादानामुदाराणामनुरूपतया नरः ।
पुण्यस्य परमार्थस्य योग्यतामेति सत्वरम् ।।४।।
स हैवावधिकालेऽस्मिन्नभ्यसंश्च पराक्रमम् ।
प्रतिभोपार्जनेनैव परार्थं प्रचुरं सह ।।५।।
कर्तुं क्षमो भवेदत्र श्रोतुं च वचनामृतम् ।
औत्सुक्यं सन्नृणां वीक्ष्य धौम्यः सन्तोषमागतः।।६।।
यच्छ्रुतं सावधानैस्तु नरैर्मे प्रतिपादनम् ।
सार्थक्यं स्व प्रयासस्य अन्वभूत्स प्रहर्षितः ।।७।।

टीका- तीसरे दिन के सत्र प्रवचन में श्रोताओं की और भी अधिक उपस्थिति थी । विज्ञजनों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। लोगों ने प्रथम बार यह अनुभव किया कि गृहस्थ धर्म भी योग-साधन के समतुल्य है और उसका निर्वाह निर्धारित उदार मर्यादाओं के अनुरूप करने से मनुष्य पुण्य-परमार्थ का भागी बन सकता है। साथ ही इस अवधि में पराक्रम का अभ्यास करते हुए प्रतिभा अर्जन के साथ-साथ प्रचुर परमार्थ भी कर सकता है। अमृतवचन सुनने के लिए आतुर जन समुदाय की उत्सुकता देखकर महर्षि धौम्य को सन्तोष हो रहा था, कि उनका कथन-प्रतिपादन ध्यानपूर्वक सुना गया। वे अपने प्रयास की सार्थकता अनुभव कर रहे थे ।।१-७।।

गृहस्थ धर्म को सामान्यतया उपभोग प्रधान माना जाता है एवं यह समझा जाता है कि अध्यात्म की लक्ष्य-सिद्धि इसमें सम्भव नहीं । किन्तु प्रस्तुत-सत्र में जो विशेष रूप से गृहस्थ जीवन को लक्ष्य करके ही आयोजित किया गया, सत्राध्यक्ष द्वारा स्थान-स्थान पर इसे एक योग साधन, जीवन देवता की साधना-आराधना की उपमा देते हुए, उसके माहात्म्य पक्ष पर ही जोर दिया जाता रहा है। विभूतियों को अर्जित करने के लिए परिवार संस्था विशुद्धतः एक प्रयोगशाला-पाठशाला है, जहाँ मानवी पराक्रम की परीक्षा होती है, तदनुसार उसे उपलब्धियाँ मिलती हैं। कौन उन्हें कितना, किस प्रकार पुण्य प्रयोजन के निमित्त खर्च करता है यह उसके आन्तरिक स्तर एवं सुसंस्कारिता पर निर्भर है। ऐसे हृदयग्राही प्रतिपादनों को सुनकर श्रोताओं को, स्वयं को धन्य अनुभव करना सहज ही सम्भाव्य है।

धौम्य उवाच-

भद्रजनाः ! गृहिण्याश्च महत्वं वर्णितं परम् ।
वस्तुतस्तु, यतो धुर्या गृहिणी परिवारगा ।।८।।
उत्कृष्टत्वे निकृष्टत्वे तस्या एव गृहस्थजम् ।
उत्थानं पतनं नूनमाश्रितं नात्र संशयः ।।९।।
तस्याः सहायकस्त्वेष पुरुषः केवलं सदा ।
साधनान्यर्जयन्नस्या साहाय्यं विदधाति तु ।।१०।।
शय्या त्यागात्समारभ्य यावद्रात्रौ समेऽपि च ।
शेरते तावदेवेयं गृहेऽभिरमतेऽभितः ।।११।।
तथा निरन्तरं तस्य परिवारस्य मध्यगा ।
छायेव बद्धमूला सा प्रशस्तैवाऽधिका हि सा ।।१२।।
गृहिणी विद्यते तेन गृहलक्ष्मीरसंशयान् ।
मन्दिरस्थेव देवी सा गेहे मान्या समैरपि ।।१३।।
सम्मानमनुदानं च तथैवास्यै विधीयताम् ।
प्रत्येकस्य गृहस्थस्य कर्त्तव्यं प्रथमं त्विदम् ।।१४।।
मातुः पत्न्या भगिन्या वा कन्याया वाऽपि संस्थिता ।
रूपे नारी यदा यत्र तत्र तां स्वावलम्बिनीम् ।।१५।।
स्वस्थां प्रसन्नां संस्कारयुतां च प्रतिभामयीम् ।
शिक्षितां मानवः कर्तुं न्यूनतां न समाश्रयेत् ।।१६।।
प्रयासाः सर्वदा कार्या नरैरेवं विधास्तथा ।
ग्राह्या चाल्पाऽपि नोपेक्षा तेषु हानेर्भयादिह ।।१७।।

टीका- महर्षि धौम्य ने कहा- हे भद्रजनों ! शास्त्रों में नारी की बड़ी महत्ता वर्णित की गई है। नारी परिवार की धुरी है, उसी की उत्कृष्टता-निकृष्टता पर गृहस्थ का उत्थान-पतन निर्भर रहता है-इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। पुरुष तो उसका सहायक मात्र है। वह साधन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जुटाता और सहयोग देता है। प्रातःशय्या त्याग से लेकर जब तक रात्रि; घर के सदस्य सोते हैं। तब तक होने वाले घर के प्रत्येक कार्य में प्रतिक्षण व्यस्तता -इसी में देखी जाती है। निरन्तर उस परिवार पर छाई रहने के कारण उसी की प्रशंसा अधिक है। नारी गृहलक्ष्मी है। उसे घर के देवालय में अवस्थित प्रत्यक्ष देवी माना जाना चाहिये। वैसा ही सम्मान एवं अनुदान भी उसे प्रस्तुत किया जाना चाहिये। प्रत्येक सद्गृहस्थ का प्रथम कर्त्तव्य हैं कि माता, भगिनी, पत्नी और कन्या के जिस भी रूप में नारी रहे, उसे स्वस्थ, प्रसन्न, शिक्षित, स्वावलम्बी एवं सुसंस्कृत प्रतिभावान् बनाने में कुछ भी कमी न रखें। इस प्रकार के प्रयत्न निरन्तर जारी रहें। उन प्रयासों की तनिक भी उपेक्षा न करें। अन्यथा महान् हानि का भय बना रहेगा।। ८-१७।।

शास्त्रों में नारी की महत्ता और उसकी गरिमा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि नारी ब्रह्मविद्या है, श्रद्धा है, शक्ति है, पवित्रता है, कला है, और वह सब कुछ है जो इस संसार में सर्वश्रेष्ठ के रूप में दृष्टिगोचर होता है। नारी मूर्तिमान्, कामधेनु है, अन्नपूर्णा है, सिद्धी है, ऋद्धि है, और वह सब कुछ है, जो मानव प्राणी के समस्त अभावों, कष्टों और संकटों के निवारण करने में समर्थ है। यदि उसे श्रद्धासिक्त सद्भावना से सींचा जाय तो यह सोमलता विश्व के कण-कण को स्वर्गीय परिस्थितियों से ओत-प्रोत कर सकती है।

नारी को परिवार का हृदय और प्राण कहा गया है। परिवार का सम्पूर्ण अस्तित्व तथा वातावरण नारी पर-सुगृहिणी पर-निर्भर करता है। नारी अपनी कोमलता, सुशीलता, संवेदना, करुणा, स्नेह और ममता आदि हार्दिक विशेषताओं के कारण परिवार के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इन विशेषताओं के कारण ही घर-परिवार के सदस्यों के अधिक निकट रहती और उन्हें प्रभावित करती है। वृहत्संहिता में कहा गया है-

"पुरुषाणां सहस्रं च सती नारी समुद्धरेत्।"

अर्थात् सती स्त्री अपने पति का ही नहीं, अपने उत्कृष्ट आचरण की प्रत्यक्ष प्रेरक्षा से सहस्रों पुरुषों का उद्धार यानी श्रेष्ठता की दिशा में मार्गदर्शन करती है।

नारी स्वभावतः गृहलक्ष्मी है। घर की अन्दरूनी व्यवस्था से लेकर परिवार में सुख-शान्ति और सौमनस्यता के वातावरण का दायित्व प्रायः नारी को ही निभाना पड़ता है। उसमें परिवार को स्वर्ग बनाने की प्रकृति प्रदत्त क्षमता विद्यमान है। इसीलिये उसे गृहिणी, सुगृहिणी, गृहलक्ष्मी जैसे सम्मानजनक विशेषणों से सम्बोधित किया जाता है और जीवन संगिनी के रूप में जन्म-जन्मान्तरों का साथी समझा जाता है।

मनुस्मृति में कहा गया है-

"पूजा हि गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च लोकेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।।"(९-२६)

गृहस्वामिनी स्त्री पूजा के योग्य है। इसमें और लक्ष्मी में कुछ भी भेद नहीं है।

गृहिणी समुन्नतैवाऽत्र परिवारं तु स्वर्गिणम्।
विधातुं हि समर्थास्ति ततोऽस्याः क्षमतोदये ।।१८।।
यः श्रमो यो मनोयोगो धनं तु विनियोगताम्।
आश्रयन्ति समायाति तदिहाऽसंख्यातां गतम्।।१९।।
श्रेयो मानं च ये मर्त्या गृहिण्यै ददति स्वयम्।
अपेक्षयाऽनुदानस्याऽसंख्यं प्रतिफलं तु ते।।२०।।
प्राप्नुवन्ति कुटुम्बं तद् यतः प्रतिफलं द्वयोः।
नार्या नरस्य संयुक्ताऽनुदानानां हि निश्चितम।।२१।।
गृहिण्या भूमिका श्रेष्ठा कनिष्ठा च नरस्य तु।
खनिर्नारी नराः सर्वे खनिजा इति मन्यताम्।।२२।।
जायन्ते धातवः सर्वे खनितुल्याः खनेर्ध्रुवम्।
कृष्णाङ्गराश्च लौहाश्च ताम्रं चन्द्रो हिरण्मयम्।।२३
खनेः स्वस्वानुकूलाया उद्भवन्ति यथा तथा।
श्रेष्ठा नार्यःसुतान्श्रेष्ठाञ्जनयन्ति गुणान्वितान्।।२४।।
कर्मशीलान् सुशीलाश्च प्रतिविम्बानिव स्वकान्।
मलयाचलभूमिः सा यत्रस्था गन्धिनः समे ।।२५।।

टीका- समुन्नत नारी ही परिवार को स्वर्ग बना पाती है। उसकी क्षमता विकसित करने में लगाया गया श्रम, मनोयोग एवं धन असंख्यों गुना होकर लौटता है। नारी को श्रेय-सम्मान देने वाले अपने अनुदान की तुलना में असंख्य गुना प्रतिफल प्राप्त करते हैं। परिवार नर और नारी के संयुक्त अनुदानों का प्रतिफल है। इसमें नारी की भूमिका वरिष्ठ और नर की कनिष्ठ है। नारी खदान है, नर उसमें से निकलने वाला खनिज। खदान जैसी होती है, धातुएँ उसी स्तर की उसमें से निकलती हैं। कोयला, लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना आदि अपने-अपने ढंग की खदानों में से ही निकलते हैं। श्रेष्ठ स्तर की नारियाँ अपने जैसे गुण-कर्म-स्वभाव की सन्तानें जनती हैं। वे (चन्दन वृक्ष) मलयाचल भूमि की तरह है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनके सान्निध्य में बड़े-छोटे उसी प्रकार की सुगन्ध से महकने लगते हैं।। १८-२५।।

समुन्नत-सुसंस्कृत नारी अपने पारिवारिक राज्य में स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में पूरी तरह समर्थ है। घर के सामान की सुव्यवस्था रखकर उस छोटे से घरौंदे को सुरुचि, शोभा, सौन्दर्य से भरा-पूरा बना देना सुगृहणी के बायें हाथ का खेल है। नीरस और ओछे स्तर के लोगों को भी अपनी परिष्कृत प्रवृत्ति में जकड़कर शालीनता के ढाँचे में ढलने-बदलने के लिये विवश कर देना, भाव सम्पत्ति की धनी नारी के लिये अतीव सरल है। नारी का अन्त:करण कुछ विशेष तत्वों के बाहुल्य से भरा-पूरा बनाया गया है। उसमें आत्मीयता और उदारता की, करुणा और कोमलता की मात्रा पुरुषों की तुलना में अधिक होती है। अपनी इस विशेषता के कारण वह रूखी और कर्कश प्रकृति के लोगों को नरम बना सकती है, उनमें सरस-सहृदयता का संचार कर सकती है। यदि घर के लोगों में सामान्य शालीनता मौजूद हो तब तो कहना ही क्या। सुसंस्कृत नारी की भूमिका उस स्थिति में सोना और सुगन्ध की कहावत चरितार्थ करती है।

बच्चे आसमान से नहीं उतरते। वे माता के शरीर के ही एक अंग हैं। उनमें विद्यमान चेतना का सिंचन, परिपोषण, संस्कारों का अभिवर्धन माता के द्वारा ही होता है। नर रत्नों का उत्पादन किसी भी समाज-राष्ट्र में तभी बढ़ सकता है जब नारी की सुसंस्कारिता पर समुचित ध्यान दिया जाय। बौद्धिक ज्ञान तो पाठशालाओं में भी दिया जा सकता है। किन्तु व्यक्तित्व को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालने का पुनीत कार्य परिवार की प्रयोगशाला में ही संभव हो पाता है। इसमें नर से भी बड़ी नारी की भूमिका है।

ऊसर, बंजर, रेतीली, नमकवाली, कंकड़-पत्थर वाली जमीन में फसल उगाना सम्भव नहीं हो पाता। अच्छी फसल पानी है तो खाद-पानी के अतिरिक्त उर्वर भूमि भी चाहिये। श्रेष्ठ स्तर की धातुएँ उसी स्तर की खदानों से उपलब्ध होती हैं। नारी को नर रत्नों को जन्म देने वाली खदान माना गया है। अगली प्रखर पीढ़ी के निर्माण की भूमिका सुविकसित नारी के माध्यम से ही सम्भव हो सकती है। इसलिये नारी को नर से अधिक महत्व दिया जाता है। वही परिवार को श्रेष्ठता से अभिपूरित, धरती का स्वर्ग बनाती है। नारी को जितने अनुदान दिये जाते हैं, चाहे वे स्नेह, सुसंस्कारिता, समर्थता, स्वावलम्बन के रूप में हो अथवा सहयोग, सम्मान, संरक्षण एवं क्षमता के सुनियोजन रूप में, वे खाली नहीं जाते। इसका परिणाम पूरे परिवार, समाज, राष्ट्र को मिलता है। अत: श्रेष्ठता के पक्षधर हर व्यक्ति का यह प्रयास होना चाहिये कि वह नारी को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने हेतु किये जा रहे पुण्य पुरुषार्थ को हर संभव सहयोग दें।

नारी का सबसे बड़ा महत्व उसके जननी पद में निहित है। यदि जननी न होती, तो कहाँ से सृष्टि का सम्पादन होता और कहाँ समाज तथा राष्ट्रों की रचना होती। यदि माँ न हो तो कौन सी शक्ति होती, जो संसार से अनीति एवं अत्याचार मिटाने के लिए शूरमाओं को धरती पर उतारती। यदि माता न होती, यह बड़े-बड़े वैज्ञानिक, प्रकाण्ड पंडित, कलाकार, अप्रतिम साहित्यकार, दार्शनिक, मनीषी, महात्मा एवं महापुरुष किसकी गोद में खेल-खेलकर धरती पर पदार्पण करते। नारी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की जननी ही नहीं, वह जगजननी है। मानवता के नाते, सहधर्मिणी होने के नाते, राष्ट्र व समाज की उन्नति के नाते, उसे उसका उचित सम्मान और स्थान दिया ही जाना चाहिये।

स्नेहसौजन्ययोर्नार्या बाहुल्यं प्राकृतं स्वत: ।
व्यक्तिनिर्माणसामर्थ्यं द्वयमेतान्निगद्यते ।। २६।।
यन्त्ररेखाश्रिता नूनं भूषणादिविनिर्मिति: ।
कुम्भकारो यथा चक्रं स्वांगुली कौशलेन स: ।। २७।।
अर्हति पात्रतां नेतुं मृदं क्लिन्नां शनै: शनै: ।
तथा कुटुम्बगान् नारी सर्वान् संस्कर्तुमर्हति ।। २८।।
देव्या सोपमिता नारी प्राधान्याद् यत एव ते ।
देवाअनुचरास्तस्या देव्याअत्राऽपि सा स्थिति: ।। २९।।
महत्वपूर्णकर्मैतत् यो नार्या प्रतिभोदय: ।
कल्याणं निहितं सृष्टे समाया: कर्मणीह तु ।। ३०।।
अभ्यर्थना च देवीनामाख्याता या मतं बहु ।
तस्या माहात्म्यमत्रैषु शास्त्रेषु वस्तुबोधकम् ।। ३१।।
तुष्यति शीघ्रं ता: सर्वा वरदानं ददत्यलम् ।
प्रत्यक्षं देवता नार्यो द्रष्टुमेतच्च सम्भवम् ।। ३२।।

टीका- नारी में स्नेह सौजन्य की प्रकृति प्रदत्त बहुलता है। इसे व्यक्तियों के निर्माण की प्रमुख क्षमता कहा गया है। जैसा साँचा होता है, वैसे ही उपकरण आभूषण ढलते हैं। कुम्हार अपने चाक पर उँगलियों के कौशल से गीली मिट्टी को किसी प्रकार भी के बर्तन में बदल

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है; उसी प्रकार नारी अपने पिता और परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों को इच्छानुरूप ढालने-बदलने में समर्थ है। उसे देवी की उपमा और प्रधानता दी गई है। देवता उनके अनुचर होते हैं, वही स्थिति यहाँ भी समझनी चाहिये। नारी की प्रतिभा को निखारना, बहुत बड़ा काम है। इसमें समस्त सृष्टि का कल्याण सन्निहित है। देवियों की अभ्यर्थना का शास्त्र में बहुत माहात्म्य बताया गया है, जो वस्तुत: यथार्थ है। वे शीघ्र सन्तुष्ट होती और अधिक वरदान देती हैं। प्रत्यक्ष देवियों के रूप में नारी समुदाय को देखा जा सकता है।। २६-३२।।

नारी को शक्ति कहा गया है। शक्ति अर्थात् देवताओं को जन्म देने वाली, देवत्व का संस्कार प्रदान करने वाली स्रष्टा की विशेष कृति। वह अपनी कतिपय सहज ही विद्यमान विशेषताओं के कारण जहाँ भी रहती है, वहाँ के वातावरण को देवत्व से अभिपूरित कर देती है। नारी चाहे माँ के रूप में हो, भगिनी अथवा भार्या के रूप में, ममत्व की दृष्टि से सम्पन्न है। सहनशीलता, शिष्टाचार, करुणा एवं सौजन्य उसकी अमूल्य निधियाँ हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण वह स्वयं अपने आचरण में भी सुसंस्कारिता का समावेश करती व परिवार के अन्य सदस्यों को भी उन विभूतियों से कृतार्थ करती है।

न केवल बच्चों को नारी कुम्हार की तरह, मूर्तिकार की तरह अपने अभिभावक, सहचर, पति, अन्य पारिवारिक सदस्यों को भी श्रेष्ठता के साँचे में ढालने-गढ़ने, आमूल-चूल बदलने में समर्थ है। सम्भवत: यही कारण है कि नारी को देवी की उपमा देकर अध्यात्म दर्शन में उसकी उपासना का प्रावधान किया गया है, ताकि उसके अनुदानों से सभी का कल्याण हो सके। ऐसी देवी स्वरूपा नारी को पददलित करना, परावलम्बी बनाना निकृष्टतम कार्य है। सन्तान के निर्माण में ही नहीं, परिवार के समूचे निर्माण में भी पुरुष की अपेक्षा नारी की भूमिका हजार गुनी अधिक महत्वपूर्ण और अधिक प्रभावशाली है। अत: समाज को ऊँचा उठाना है तो नारी को देवी का दर्जा देते हुए, उसके प्रति सम्मान की भावना सबके मन में जगाई जानी चाहिए ।

मणयोऽपि च पंके चेन्मग्नास्तर्हि तिरस्क्रियाम्।
उपेक्षां च लभन्तेऽत्र तथा तासु सतीष्वपि ।। ३३।।
विशेषतासु नार्यश्चेत्कृता: स्युर्नहि संस्कृता: ।
प्रतीयन्ते ह्ययोग्यास्ता अविकासस्थिता:सदा।। ३४।।
मलीनोऽसंस्कृतो हीर: काच एव हि दृश्यते ।
टंकनादेव सौन्दर्यं भ्राजते मूल्यमाव्रजेत् ।। ३५।।
सम्मुखे दर्पणस्यैष यथारागस्तथैव तु ।
छाया सा दृश्यते तस्मिंस्तथास्थितिगता सदा।। ३६।।
उत्तमा मध्यमा हेया नारी सा दृश्यते क्रमात्।
मौलिकं तु स्वरूपं तत्तस्या: स्वच्छं न संशय:।। ३७।।
बुधै: प्रोक्ताविवार्यैव नारीह भावनामयी ।
बाधिता स्यान्न तस्यास्तु भावनैषा कदाचन ।। ३८।।
स्नेहं सम्मानमुत्साहदानं प्रशिक्षणं तथा ।
सहयोगं च नारी चेत्प्राप्नुयात्तर्हि निश्चितम्।। ३९।।
उच्चतां स्तर आगच्छेत्तस्या सोऽप्यजसैव तु।
कल्पवृक्षोऽस्ति नारी तु तां यो यत्नेन सिंचति।। ४०।।
पुष्पाणि तस्याश्छायायां स्थित: स्वान्स मनोरथान्।
इच्छितान् वरदाने वै प्राप्नोत्येव सुखावहान्।। ४१।।

टीका- मणि भी कीचड़ में फँसी रहने पर उपेक्षित और तिरस्कृत रहती है। मौलिक विशेषताएँ होते हुये भी यदि नारी को निखारा-उभारा न जाय, तो वह भी पिछड़ी स्थिति में पड़ी रहती है व अयोग्य प्रतीत होती है। मैला और अनगढ़ हीरा भी काँच जैसा प्रतीत होता है। खरादने पर ही उसका सौन्दर्य चमकता और मूल्यांकन होता है। दर्पण के सम्मुख जैसा भी रंग होता है, वही उसमें छाया दीखती है। परिस्थितियों के अनुरूप ही नारी उत्कृष्ट, मध्यम और हेय स्तर जैसी दीखती है। उसका स्वरूप स्फटिकमणि की तरह स्वच्छ है। यह एक सुविचारित तथ्य है कि नारी भावना प्रधान है। उसकी भावना को चोट न लगने पाये। उसे समुचित स्नेह, सम्मान, प्रोत्साहन, प्रशिक्षण और सहयोग दिया जाय, तो उसका स्तर ऊँचा उठाना तनिक भी कठिन नहीं। नारी कल्पवृक्ष है, जो उसे लगनपूर्वक सींचता-पालता है, वह उसकी छाया में बैठकर मनोरथ पूरा करता और इच्छित प्रतिफल वरदान रूप में प्राप्त करता है।। ३३ - ४१।।

नारी को देवमानवों-नर-रत्नों को जन्म देने वाली खदान की उपमा ऋषि ने दी है, किन्तु इस स्थिति को भी स्पष्ट कर दिया है कि पिछड़ेपन का कारण समाज का उपेक्षा भरा रूप है। वह उस हीरे के समान है जिसे खराद पर चढ़ाया व तराशा नहीं गया है। उसका मूलभूत रूप अत्यन्त उज्ज्वल, स्वच्छ एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रेष्ठता से युक्त है। अंगारे पर चढ़ी राख की परत उसके ज्वलनशील, ताप प्रदान करने वाले गुण को उजागर नहीं होने देती। नारी भी एक प्रकार से ऐसे ही उपेक्षित पड़े अंगारे, कोयले के ढेर में पड़े हीरे की तरह अनगढ़ स्थिति में होती है। जहाँ समाज जागृत होता है, वहाँ या तो स्वयं नारी की ओर से अथवा प्रगतिशील नागरिकों द्वारा ऐसे प्रयास होते हैं, जिससे कठिनाइयों के बीच से उसका रूप और भी अधिक निखर कर आता है। वह प्रखरता की मूर्ति के रूप में उभर कर आती है और समाज को नवीन चेतना प्रदान करती है, नई दिशा धारा दे जाती है।

मूलत: नारी की मानसिक बनावट भावनात्मक है वह तर्कों से नहीं, भाव, संवेदनाओं से अभिप्रेरित होकर अपनी जीवन दिशा बनाती है। भावुक हृदय होने के कारण अनन्त वत्सला नारी को उसकी करुणा सहज ही उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर विराट् विश्व का एक अभिन्न अंग बना देती है। इसीलिये कवि रस्किन ने कहा है-"माता का हृदय एक स्नेहपूर्ण निर्झर है, जो सृष्टि के आदि से अनवरत झरता हुआ मानवता का सिंचन कर रहा है।"नारी की भाव-संवेदनाओं को यदि समुचित पोषण मिलता रहे, तो उसका अभ्युदय सम्भव है, सुलभ है। यह भी अनिवार्य है कि उसकी भावुक मानसिकता का दोहन न हो, ऐसी स्थिति में वह अन्दर से टूट जाती है।

नारी को परिवार तथा समाज के *अन्यान्य* सदस्यों का स्नेह श्रद्धा और सम्मान भरा सहयोग भी चाहिये। उसके बहुमुखी स्तर को ऊँचा उठाने के लिये समुचित प्रशिक्षण-प्रोत्साहन की व्यवस्था अनिवार्य रूप से की जानी चाहिये। शास्त्रकारों ने नारी के साथ कदम- कदम पर सहयोग और सम्मान करने का निर्देश दिया है तथा उसी आधार पर परिवार में सुख-शान्ति व सुव्यवस्था की स्थापना को सम्भव बताया है-

यदि कुलोन्नयने सरसं मनो,
यदि विलासकलासु कूतूहलम्।
यदि निजत्वमभीप्सितनेकदा,
कुरु सत्तां श्रुतशीलवती तदा।।

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे कुल की उन्नति हो, यदि तुम अपना और अपनी सन्तान का कल्याण करना चाहते हो, तो अपनी कन्या को विद्या, धर्म और शील सें युक्त करो।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता: पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभि: ।।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।
यत्रतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रिया: ।।
(मनु० ३। ५५-५६)

पिता, भाई, पति और देवर जो भी कोई परिवार में हों, यदि वे अपना कल्याण चाहते हैं, तो उन्हें चाहिये कि वे स्त्रियों का सम्मान करें और उन्हें प्रसन्न रखें। जहाँ स्त्रियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं, और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता, वहाँ सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। नारी की उपमा ऋषि ने उस कल्पवृक्ष के रूप में दी है जिसके सान्निध्य से सब कुछ पाया जा सकता है। यदि उसे समुचित सम्मान मिलता रहे, उसे ऊँचा उठाने के प्रयास चलते रहें, तो प्रत्युत्तर में वह अनुदानों की वर्षा कर सारे समाज को उपकृत करती, धन्य बनाती है। वह मानव के समस्त मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है।

विवेकिनां हि दायित्वमिदं यन्न्यूनता नहि।
नारीशिक्षाविधौ स्याच्च दायित्वं प्रतिबोधिता।।४२।।
निर्वाहाय तथैषां च मार्गदर्शनमिष्यते ।
सहयोगश्च दातव्य: शिक्षा योग्याऽप्यपेक्षते।।४३।।
नार्या: शिक्षणमेतस्या बौद्धिकं व्यवहारगम्।
भवेदीदृशमेवान्न यदाश्रित्य परिस्थिती: ।।४४।।
प्रतिकर्तुं समर्था सा भवेदिह तथा निजम् ।
परिवारं विधातुं च प्रोन्नतं प्रभवेदपि ।।४५।।
शिक्षां निरर्थकां दत्त्वा भाररूपां नहि श्रमम्।
समयं चाऽपि तस्यास्तु नाशितुं युज्यते:क्वचित्।।४६।।
भवेन्नारी स्वावलम्बं श्रिता शीलयुता भवेत्।
न संकोचं गता चैवं भवेद् यच्छोचितुं तथा।।४७।।
वक्तुं न क्षमता तिष्ठेद्दासीभावं व्रजेन्न च ।
गृहलक्ष्म्या: स्वरूपे सा स्वतोविकसिता भवेत्।।४८।।
कौशलं चेद्दशं तस्या भवेद् यद् यद्यपेक्ष्यते ।
अर्थोपार्जनमेषा तत्कर्तुं च प्रभवेदपि ।।४९।।
नराश्रयं विनैवैषा स्वयं दद्यादपि स्वकान् ।
आश्रयं सहयोगं च सर्वानन्यानपि क्वचित ।।५०।।

टीका- विचारशीलों का यह दायित्व है कि नारी-शिक्षा में कमी न रहने दी जाय। उसे अपने महान् उत्तरदायित्वों का ज्ञान कराया जाय। उसके निर्वाह के लिये मार्ग दिखाया जाय और सहयोग दिया जाय। उसके अनुरूप प्रशिक्षण व्यवस्था की नितान्त आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी का बौद्धिक एवं व्यावहारिक शिक्षण ऐसा हो, जिसके आधार पर उसे प्रस्तुत परिस्थितियों का सामना करते हुऐ, अपने सम्पर्क-परिकर को समुन्नत कर सकना सम्भव हो सके। निरर्थक शिक्षा का भार लाद कर, उसका श्रम बर्बाद न किया जाये नारी को स्वावलम्बी बनने दिया जाय। वह शीलवती बनी रहे, किन्तु इतनी संकोची भी न बने जिससे सोचने, बोलने और करने की क्षमता ही चली जाय। उसे दासी न बनाया जाय। गृहलक्ष्मी के रूप में विकसित किया जाय। उसका कौशल ऐसा रहना चाहिए कि आवश्यतानुसार उर्पाजन भी कर सके। पराश्रित न रहकर वह समयानुसार दूसरों को आश्रय एवं सहयोग भी प्रदान कर सके।। ४२-५०।।

नारी जो राष्ट्र की जननी और निर्मात्री है, वह अविकसित स्थिति में अन्धेरे में भटक रही है। यदि समाज की प्रगति हमें अभीष्ट है, तो नारी को परावलम्बन के गर्त से निकाल कर, उसे स्वावलम्बी, सुसंस्कारी बनाना होगा। यह कार्य सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक शिक्षण द्वारा ही सम्भव है एवं इस दिशा में सभी अनिवार्य कदम उत्साहपूर्वक उठाये जाने चाहिये। यह ध्यान रखा जाना, चाहिये कि जहाँ भी, जिस भी समुदाय में स्वाभिमानी, सुसंस्कृत, श्रमशील नारी विद्यमान होती है, वह समाज निश्चित ही प्रगति करता है। ऐसे ही परिकर में देवत्व का अभिवर्धन सम्भव हो पाता है। यह सामूहिक दायित्व हम सबका है कि नारी का शील सुरक्षित बनाये रख उसे स्वावलम्बी बनायें, ताकि वह अपनी विभूतियों का लाभ समाज को दे सके।

नारी के शिक्षण हेतु स्तर के अनुरूप भिन्न-भिन्न उपाय अपनाने पड़ सकते हैं। इसका निर्धारण समाज की परिस्थिति एवं नारी की मन:स्थिति को देखकर ही किया जा सकता है।

परिवारस्य कार्येषु नरः कुर्यात् सदैव च ।
सहयोगं गृहिण्याः सा समयं येन चाप्नुयात् ।।५१।।
व्यवस्था स्वच्छता हेतोः सज्जा हेतोश्च सद्मनः।
वार्तालापे कलानां च कौशलेऽथापि सास्वयम् ।।५२।।
समस्यानां समाधाने भूमिका निर्वहेत्स्वकाम् ।
अतिव्यस्तस्थितौ स्यान्न किमप्याचरितुं क्षमा ।।५३।।
कुटुम्बदिनचर्याऽथ व्यवस्थाया विधिश्च सः ।
परम्परा तथैव स्याद् येन पाकविधावुत ।।५४।।
स्वच्छतायां न नष्टः स्यात्सर्वोऽस्याः समयो महान्।
ईदृशी सुविधा यत्र तत्रत्या गृहिणी नहि ।।५५।।
अनुभवत्यथ काठिन्यं विकासं योग्यतामपि ।
सुसंस्कारानवाप्तुं यत् कुटुम्बाय महत्वगम् ।।५६।।
नार्याः श्रमस्य कर्तव्य उपयोगो विशेषतः ।
युगं नवं ततो नारीप्रधानं भविता शुभम् ।। ५७।।
सृजनस्य नवस्याऽस्यां क्षमता भावनात्मिका ।
बाहुल्येनास्ति चागामिदिवसेषु भविष्यति ।।५८।।
समाजो भावना मुख्यः स्तरस्याऽस्य विनिर्मितेः।
क्षमता मुख्यतो दत्ता स्रष्टा नार्यां न संशयः।।५९।।
निर्माणाय युगस्यापि नेतृत्वायस्त्रियस्ततः ।
नः प्रमादो विलम्बो वा कार्यो वर्चः परिष्कृतौ।।६०।।

टीका- घर परिवार के कार्यो में पुरुष नारी का हाथ बँटाये। उन्हें इतना अवकाश दें कि परिवार की व्यवस्था, स्वच्छता, सज्जा ठीक प्रकार रख सके। वार्तालाप कला-कौशल एवं समस्याओं के समाधान में अपनी भूमिका निभा सके। घोर व्यस्तता की स्थिति में तो वे कुछ भी न कर सकेगी। पारिवारिक दिनचर्या, विधि-व्यवस्था और परम्परा ऐसी रहे, जिसमें उसे पाकशाला-स्वच्छता में ही सारा समय न खपाना पड़े। ऐसी सुविधा जहाँ होती है, वहाँ नारी को सुविकसित, सुसंस्कृत एवं सुयोग्य बनने में विशेष कठिनाई नहीं रह जाती। यह पारिवारिक हित में बहुत महत्वपूर्ण है नारी-श्रम का अधिक महत्वपूर्ण उपयोग करने की आवश्यकता है। हे सज्जनो ! नवयुग नारी प्रधान होगा। नव सृजन की भावनात्मक क्षमता की उसी में बहुलता है। अगले दिनों भावना प्रधान समाज बनेगा। उस स्तर के निर्माण की क्षमता नारी में ही स्रष्टा ने प्रमुखतापूर्वक प्रदान की है, इसमें सन्देह नहीं। युग का निर्माण और नेतृत्व करनेके लिए उसका वर्चस्व करने में न विलम्ब किया जाय, न प्रमाद बरता जाय।। ५१-६०।।

आज समाज में चलन यही है कि पत्नी को चहारदीवारी में बन्द रहकर घर की सुव्यवस्था बनानी चाहियें, एवं जहाँ तक सम्भव हो पुरुष, बालकों व अन्य पारिवारिक सदस्यों के विकास हेतु खपना चाहिये सदियों से वह यही करती आई है। पर्दाप्रथा जैसी कुरीतियों ने ऐसी त्रासदी और बढ़ाई है।

यह मानव समुदाय के हित में ही है कि पुरुष व स्त्री दोनों मिलजुलकर परिवार रूपी रथ की गाड़ी खींचें। नारी को इतना समय मिलना चाहिये कि वह परिवार की सुसंस्कारिता, सुव्यवस्था बनाये रखने के अतिरिक्त स्वयं की सर्वांगीण पूर्ण प्रगति के लिये समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकाल सके। यह कदम पुरुष समुदाय की ओर से ही उठना चाहिये, क्योंकि इसमें नारी के साथ-साथ उनका हित-साधन भी होता है विश्व सन्तुलन नारी के पक्ष में जा रहा है। अब कहीं-कहीं नारी जागृति के स्वर मुखरित होने लगे हैं। जहाँ अवसर मिला है, नारी स्वयं आगे आई है व परावलम्बन की जंजीरें तोड़कर उसने प्रगतिशील भूमिका निभाई है।

यहाँ ऋषि कहते हैं कि आने वाला समय मूलत: भाव प्रधान होगा एवं इसका सुसंचालन नारी शक्ति करेगी। ऐसी स्थिति में यह न केवल स्रष्टा की इच्छा के विपरीत है, अपितु एक तरह से मनुष्य की तुच्छता ही है कि वह नारी को विकास हेतु आगे बढ़ने देने का अवसर न दे। नया समाज लाने-नव-निर्माण करने एवं मानव में देवत्व, धरती पर स्वर्ग जैसी परिस्थितियों को उतारने के लिये नारी की शक्ति को निखारना; उसे प्रखर बनाना समय की एक महती आवश्यकता है। अगले दिनों नारी द्वारा विश्व का नेतृत्व किये जाने की सम्भावना इसलिये अधिक है कि पददलित वर्ग को अगले दिनों अनीति मूलक प्रतिबन्धों से छुटकारा पाने का अवसर मिलने ही वाला है। ऐसी दशा में वे अपने को सुविकसित एवं सुयोग्य बनाने का प्रयत्न करेंगी, फलस्वरूप प्रकृति का पूर्ण सहयोग भी उन्हें मिलेगा और विश्व के नव निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करेंगी।

योग्यदायित्वनिर्वहि स्वस्थस्य वपुषस्तथा ।
तुलिताया मनोभूमेरनुभूतेस्तथैव च ।। ६१।।
अपेक्षा कौशलस्यास्ते तेन चावसरस्त्वयम् ।
नार्या लभ्येत यत्नोऽत्र नूनं कर्तव्य इष्यते ।। ६२।।
सुविधाश्च समा एता संयुक्ता: स्युस्तदैव तु ।
नारीं पुराणकालस्य स्तरं प्रापयितुं भवेत्।। ६३।।
वातावृतिं समानेतुं कृतस्येव युगस्य तु ।
उचितां भूमिकां वोढुं गृहिणी तून्नतस्तरा ।। ६४।।
विधेया यत्नतो नारी नरेणैव गतेषु तु ।
दिनेष्वनीतियुक्तैश्च प्रतिबन्धै: सुपीडिता ।। ६५।।
नीता दुर्गतिमद्याऽपि न सा तस्मादुदेत्यहो ।
अर्धांगिनीदशाहेतो: संकटैर्नर आवृत: ।। ६६।।
प्रायश्चित्तमिदं तस्योत्साहेन द्विगुणेन हि ।
तस्या उत्थानकर्मैतद् विधेयं यत्नतो नरै: ।। ६७।।

टीका- महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निर्वाह में स्वस्थ शरीर, सन्तुलित मनोबल, अनुभव एवं कौशल अपेक्षित है। नारी को इस योग्य बनने का अवसर मिलना आवश्यक है। ये सभी सुविधायें जुटाने से ही नारी को प्राचीनकाल की तरह समुन्नत स्तर तक पहुँचाया जा सकेगा। सतयुग का वातावरण वापस लाने के लिये नारी को उपयुक्त भूमिका निभा सकने योग्य स्तर का बनाया जाना चाहिये। पिछले दिनों नारी को अनीति भरे प्रतिबन्धों में जकड़कर नर ने ही उसे दुर्गतिग्रस्त किया है। इसी से आज भी वह उठ नहीं पा रही हैं तथा अर्धांगिनी की दुर्दशा से नर भी संकटों से घिरा है। उसका प्रायश्चित्त यही है कि दूने उत्साह से उसके उत्थान की व्यवस्था बनाई जाय।। ६१-६७।।

नारी में समुचित आत्मबल है। फिर भी समाज रूपी रणक्षेत्र में ऊँचा उठने के लिये उसे कौशल अर्जन, स्वास्थ्य सम्वर्धन एवं पुरुष के सहयोग की आवश्यकता है। अभी तक तो उसे पराधीनता के पाश में ही जकड़ा जाता रहा है। *फलश्रुतियाँ* सामने हैं। मध्यकाल के अनीति व दमन से भरे समय में पुरुष समुदाय ने नारी-शक्ति का दोहन भी किया व उसे पददलित भी। उसे दण्ड स्वरूप अवगति के गर्त में जाना पड़ा है। नारी की दुर्दशा का अर्थ है, नर का संकटों से घिरना। अब यदि सत्प्रवृत्तियों से भरा नया समाज बनाना है, सतयुग लाना है, तो नारी के प्रसुप्त मनोबल को उभारना एवं उसे परिपूर्ण सहयोग देना ही पुरुषों का प्रायश्चित हो सकता है। नारी में शक्ति का अजस्र स्रोत छिपा है, उसे उजागर करने भर की आवश्यकता है। जब-जब भी अवसर आये उसने आगे बढ़कर मोर्चा अपने हाथ में लेकर, अपनी साहसिकता का परिचय दिया है।

अबलात्वाच्च नार्योऽत्र नात्याचारस्तु कश्चन्।
कोमलांग्या भवेदित्थमेतदर्थं च निश्चितम् ।।६८।।
समस्तस्य समाजस्य भाव उद्बुद्ध इष्यते ।
अनीत्याश्रयिणो नैव नरा: स्युर्दण्डवञ्चिता: ।।६९।।
व्यवस्था चेदृशीकार्या मूर्धन्यै: पुरुषै: सदा ।
सामाजिकं च दायित्वं तैरुह्यं स्वयमेव च ।। ७०।।

टीका- नारी की सहज दुर्बलता के कारण उस पर कहीं कोई अत्याचार न होने पाय, इसके लिये समस्त समाज की जागरूकता आवश्यक है। अनीति करने वाले दण्ड से बचने न पायें, ऐसी व्यवस्था, मूर्धन्यों को साहस पूर्वक बनानी चाहिये, व्यवस्था सम्बन्धी सामाजिक दायित्व स्वयं ही उन्हें स्वीकार करने चाहिये।। ६८-७०।।

नारी मनस्वी भी है, तेजस्वी भी, पर उसकी विशेषतायें दबी रह जाती हैं। शरीर बल के नाते पुरुष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाति का उस पर आधिपत्य ही रहा। उसे अन्य वैभव सम्पत्ति की भाँति ही, एक आभूषण मानकर अधिकार जताने की विडम्बना भर होती रही है। समाज के हर सदस्य को जागरूक विवेकशील बनकर अनीति के प्रतिकार का साहस जुटाना चाहिये। कहीं भी ऐसे अत्याचार होते दीखें, तो उनका विरोध बलपूर्वक कर, समाज की सुव्यवस्था बिठाने का दायित्व मूर्धन्य नागरिकों का ही है। इसमें पुरुषों की तो प्रायश्चित कर्ता होने के नाते महत्वपूर्ण भूमिका है ही, जागृत नारी को भी अपना दायित्व निभाना चाहिये। जो अनीति करे, उन्हें किसी न किसी रूप में उसका प्रतीक रूप में दण्ड अवश्य मिले, ताकि आगे वे कभी ऐसा दुस्साहस न कर सकें।

संख्यार्द्धं दलितायां तु स्थितौ सम्प्रेष्यमानवान्।
सर्वानेव पराभूतेः पतनस्य स्थितौ स्थितान् ।। ७१।।
कृत्वाऽनर्थः कृतो यस्तु तमग्रे नाचरेदिह ।
अर्धनारीश्वरा जातिर्मानवानां दलोपमा ।। ७२।।
अधिकाराः समानास्ते दायित्वानि समानि च ।
उभयोः शकटस्येव चक्रयोः सहगामिता ।। ७३।।
अपेक्ष्यते न कश्चिच्च बाधेतान्यं कदाचन ।
कृताभिस्त्रुटिभिः शिक्षामधिगत्य झटित्यलम् ।।७४।।
अनाचारस्य नाशस्तु भवितव्य इहाधुना ।
प्रतिभा परिचयं दातुं लभेताऽवसरं च सा ।। ७५।।
सन्दर्भेऽस्मिन्नरस्याऽस्ति दायित्वमधिकं स्वयम्।
हानिः प्राप नरः स्वाभ्यस्त्रु टिभ्यो विपुलामपि ।।७६।।
परिष्कारे त्रुटीनां च कुर्यात्तत्परतां ततः ।
नर एव लभेताऽपि लाभं सोऽधिकमप्यतः ।। ७७।।

टीका- आधी जनसंख्या को पददलित स्थिति में धकेल कर समूचे मानव-समुदाय को पतन-पराभव की स्थिति में रखने का अनर्थ अब आगे और न किया जाय। नर और नारी दोनों ही बीज के दो दलों के समान मनुष्य जाति के अविच्छिन्न अंग हैं। दोनों के अधिकार और उत्तरदायित्व समान हैं। दोनों के मध्य गाड़ी के पहियों का सा सहयोग होना चाहिए। कोई किसी पर हावी होने का प्रयत्न न करें। पिछली भूलों से शिक्षा लेकर इस सन्दर्भ में चलते रहे अनाचार का अब अन्त होना चाहिये। उसे अपनी प्रतिभा का परिचय देने के लिये कार्यक्षेत्र में उतरने का अवसर मिलना चाहिये। इस सन्दर्भ में नर का उत्तरदायित्व विशेष है। की गई भूलों से हानि भी उसी को उठानी पड़ी है। सुधारने में पुरुष को ही अधिक तत्परता बरतनी चाहिये। लाभ भी अपेक्षाकृत उसी को अधिक मिलेगा।। ७१-७७।।

संसार के सभी क्षेत्रों में नारी पीड़ित और पददलित रही है। इसका प्रमुख कारण नारी सम्बन्धी अतिवाद का एक सिरा यह है कि कामिनी, रमणी, वेश्या आदि बना कर उसे आकर्षण का केन्द्र बनाया गया। अतिवाद का दूसरा सिरा है, उसे पर्दे-घूँघट की कठोर जंजीरों में जकड़कर अपंग सदृश बना दिया गया। उस पर इतने प्रतिबन्ध लगायें गये, जितने बन्दी और पशु भी सहन नहीं कर सकते। जेल के कैदियों को थोड़ा घूमने-फिरने की, हँसने-बोलने की आजादी रहती है। पर घर की छोटी-सी कोठरी में कैद नववधू के लिये परिवार के छोटी आयु वालों के सामने ही बोलने की छूट है। बड़ी आयु वालों से तो उसे पर्दा ही करना होता है। न उनके सामने मुँह खोला जा सकता है और न उनसे बात की जा सकती है। पर्दा सो पर्दा-प्रथा सो प्रथा-प्रतिबंध सो प्रतिबंध इसमें न्याय, औचित्य और विवेक के लिये क्यों गुंजाइश छोड़ी जाय? पशु को मुँह पर नकाब लगाकर नहीं रहना पड़ता। वे दूसरों के चेहरे देख सकते हैं। और अपने दिखा सकते हैं। जब मर्जी हो, चाहे जिसके सामने अपनी टूटी-फूटी वाणी बोल सकते हैं। पर नारी को इतने अधिकार से भी वंचित कर दिया गया। इस अमानवीय प्रतिबंध की प्रतिक्रिया बुरी हुई। नारी शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत पिछड़ गई। भारत में नर की अपेक्षा नारी की मृत्यु दर बहुत अधिक है। मानसिक दृष्टि से वह आत्महीनता की ग्रन्थियों में जकड़ी पड़ी है। सहमी, झिझकी, डरी, घबराई, दीन-हीन अपराधिन की तरह वह यहाँ-वहाँ लुकती-छिपती देखी जा सकती हैं। अन्याय-अत्याचार और अपमान पग-पग पर सहते-सहते, क्रमशः अपनी सभी मौलिक विशेषताएँ खोती चली गई। आज औसत नारी उस नीबू की तरह है, जिसका रस निचोड़ कर उसे कूड़े में फेंक दिया जाता है।

पुरुष-स्त्री वस्तुतः समान हैं, एक ही रथ के दो पहिये हैं। न कोई बड़ा है, न छोटा। जब तक यह मान्यता गृहस्थाश्रम एवं समाज व्यवस्था में विकसित परिपक्व नहीं होगी, नारी पददलित ही बनी रहेगी।

सर्वसाधारण को इस तथ्य से परिचित कराया जाना चाहिये कि नर-नारी का सघन सहयोग यदि पवित्र पृष्ठभूमि पर विकसित किया जाय, तो उससे किसी को कुछ भी हानि नहीं है, वरन् सबका सब प्रकार लाभ ही होगा। नारी कोई बिजली या आग नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, जिसे छूते ही या देखते ही कोई अनर्थ हो जाय। उसे अलग-अलग रखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार तथाकथित सन्त-महात्माओं को कहा जाना चाहिए कि वे अपने मन की संकीर्णता, क्षुद्रता और कलुषता से डरें। उसे ही भवबन्धन मानें। नरक की खान वही है। नारी को उस लांछना से लांछित कर उस मानव जाति की भर्त्सना न करें, जिसके पेट से वे स्वयं पैदा हुये हैं, और जिसका दूध पीकर इतने बड़े हुए हैं। अच्छा हो हमारी जीभ पुत्री को न कोसे-भगिनी को लांछित न करे-नारी नरक की खान हो सकती है, यह कुकल्पना अध्यात्म के किसी आदर्श या सिद्धान्त से तालमेल नहीं खाती। यदि बात ऐसी ही होती, तो अपने इष्टदेव राम, कृष्ण, शिव आदि नारी को पास न आने देते। ऋषि आश्रमों में ऋषिकायें न रहतीं। सरस्वती, काली, लक्ष्मी आदि देवियों का मुख देखने से पाप लग गया होता। निरर्थक की डीगें न हाँकें, तो अच्छा ही है। अन्तरात्मा, प्रज्ञा, भक्ति, साधना, मुक्ति, सिद्धि यह सभी स्त्रीलिंग हैं। यदि नारी नरक की खान है, तो इन स्त्रीलिंग शब्दों के साथ जुड़ी हुई विभूतियों को भी बहिष्कृत किया जाना चाहिए। अच्छा हो अध्यात्मवाद के नाम पर भोंडा-भ्रम-जंजाल अपने और दूसरों को दिग्भ्रान्त करने की अपेक्षा, उसे समेट कर अजायबघर की कोठरी में बन्द कर दिया जाय।

न्याय, औचित्य और स्वतंत्रता का समर्थन करने वाले, मानवी आदर्श को मान्यता देने वाले, उदात्त मनस्वी लोगों को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि नारी घर के उत्तरदायित्व तो सम्भाले, पर उतने ही क्षेत्र में कैद न रहे। उसके ऊपर लगा पर्दा प्रतिबन्ध शिथिल होना चाहिए और विश्वसनीय माना जाना चाहिए। शिक्षित होने,अनुभव बढ़ाने, समाज का स्वरूप समझने, लोकमंगल के प्रयोजनों में भाग लेने का पूर्ण अवसर नारी को दिया जाना चाहिए। इससे मानव जाति की आधी शक्ति, मूर्छित आत्मा को जगाने का पथ-प्रशस्त होगा और समूची मानव जाति को इस प्रगतिशील कदम का लाभ मिलेगा।

उपदेशेन चाऽनेन तत्रस्थानामभूत्स्वतः ।
नारीणां स्वगरिम्णस्तु बोधो विस्मयकारकः ।।७८।।
संकल्पश्च नवस्तेन तासां प्रादुर्भुद् हृदि ।
कर्तुं नव्यं च निर्माणं स्वस्तरस्य तथैव च ।।७९।।
कर्तुत्वस्योत्थितेश्चापि सोत्साहं सहसाऽद्भुतम् ।
उपेक्षकाश्च नारीणामन्वभूवस्त्रुटीर्निजाः ।।८०।।
व्यवहारं निजं तेऽपि भविष्येत्समये समे ।
निरचिन्वन् विधातुं तु परिवर्तितमाशु च ।।८१।।

टीका- इस प्रवचन से उपस्थित नारियों को अपनी गरिमा का विस्मयकारी बोध हुआ। अपने स्तर, उत्थान एवं कर्तृत्व का अभिनव निर्माण करने के लिये मन में नया संकल्प उभरा। जो नारी के प्रति उपेक्षा बरतते थे, उन्हें अपनी भूल का अनुभव हुआ। भविष्य में उनने भी अपना व्यवहार बदलने का निश्चय किया।। ७८-८१।।

अपनी विस्मृत गरिमा का बोध होना भी एक विलक्षण योग है। उपस्थित नर-नारी समुदाय ने अपनी-अपनी कमजोरियों को भी जाना एवं अन्दर छिपी महानता को भी पहचाना। कथोपदेश सुनकर ही अन्दर से स्वयं को बदलने की इच्छा उमगती है। नारी समुदाय में आत्मोत्थान के प्रति सजा मानसिकता का उदय निश्चित ही एक शुभ लक्षण है।

सत्रमद्यतनं दिव्यं समाप्तं च यथाविधि ।
दृष्ट्वा सूर्यास्तवेलां च नित्यकर्मविधित्सया ।।८२।।
ययुः सर्वे निवासान् स्वान् प्रस्फुरदिव्यचिन्तनाः ।
अर्धनारीश्वरं रूपं विजानन्तो शिवस्य तत् ।।८३।।
सत्यं यच्च शिवं नृणां सुन्दरं स्वर्गदं भुवि ।
प्रज्ञायुगस्य दृश्यं तत् क्षणं बुद्धौ विदिद्युते ।।८४।।

टीका- आज का सत्र भी यथाविधि सम्पन्न हुआ। सूर्यास्त की वेला देखकर सभी अपने निवास-स्थलों पर नित्यकर्म के लिये चले गये। उनके चिन्तन में दिव्यस्फुरण हो रहा था। शिवजी का अर्धनारीश्वर रूप मानव विज्ञान के रूप में उन्हें दीखा, जो सत्यं-शिवं-सुन्दरम् का प्रतिबिम्ब था। भावी प्रज्ञायुग की एक झलक-सी उनके मस्तिष्क में कौंध गयी।। ८२-८४।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्री धौम्य ऋषि प्रतिपादिते "नारी माहात्म्य", इति प्रकरणो नाम
।। तृतीयोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

शिशु-निर्माण प्रकरण

दिवसोऽद्य चतुर्थस्तु धर्मसत्रस्य तस्य च ।
अभूद् गृहस्थजस्याशु यत्र धर्मात्मसु शुभा ।।१।।
नृषु कुम्भागतेष्वेषा चर्चा प्रचलिताऽभितः ।
ऋषिर्धौम्यः करोत्यत्र सत्संगमुपयोगिनम् ।।२।।
श्रुतं येनैव सोत्साहः स नरोभूद् विहाय च ।
कर्माण्यन्यानि सत्संगे समयात्पूर्वमाययौ ।।३।।
आगन्तृणां तमुत्साहं दृष्ट्वा चैव प्रतीयते ।
विस्मृतं ते गृहस्थस्य ज्ञातुं गौरवमुत्तमम् ।।४।।
अभूवन् सफलता येन दायित्वानां स्वकर्मणाम् ।
नवीनमिव संज्ञानं तेषां तत्रोदगान्नृणाम् ।।५।।
श्रवणानन्तरं तत्र सन्दर्भे ते परिष्कृतिम् ।
परिवर्तनमानेतुमदृश्यन्तसमुत्सुकाः ।।६।।
तेषामाकृतिगण्याश्च भावा एवं समुद्गताः ।
अभूत्प्रवचनस्याद्य विषयः शिशुनिर्मितिः ।।७।।

टीका- आज गृहस्थ सत्र का चौथा दिन था । कुम्भ पर्व में आये धर्मप्रेमियों में यह चर्चा फैली कि ऐसा उपयोगी सत्संग धौम्य ऋषि चला रहे हैं। जिसने सुना उसी का उत्साह उभरा और सब काम छोड़कर उस पुण्य प्रयोजन में सम्मिलित होने के लिये समय से पूर्व ही जा पहुँचे। आगन्तुकों के उत्साह को देखते हुए प्रतीत होता था कि वे भूली हुई गृहस्थ-गरिमा को समझने में बहुत हद तक सफल हुये हैं। उन्हें अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का नये सिरे से भान हुआ है। सुनने के उपरान्त वे उस सन्दर्भ में सुधार, परिवर्तन के लिये उत्सुक दृष्टिगोचर होते थे। यह विचार-भाव उनके चेहरे से टपके पड़ रहे थे। आज के प्रवचन का विषय था - "शिशु-निर्माण"।। १-७।।

धौम्य उवाच-

महर्षिर्धौम्य आहाग्रे प्रसंगं स्वं विवर्द्धयन् ।
तत्र सम्बोत्र्यतान् सर्वान् सद्गृहस्थास्तु पूर्ववत्।।८।।
बालो योऽद्यतनः सः वै भविता राष्ट्रनायकः ।
समाजग्रामणीर्वृक्षा भवन्त्येव यथाक्षुपाः ।।९।।
कुशला अतएवात्र मालाकारा विशेषतः ।
क्षुपाणां रक्षणे ध्यानं ददत्यावश्यके विधौ ।।१०।।
गोमयादेर्जलस्याऽपि न्यूनता न भवेदपि ।
वन्यः पशवा एतान् न नाशयेयुरितीव ते ।।११।।
सावधाना भवन्त्येव कस्मिन् क्षेत्रे च सम्भवा।
क्षुपाणां क्रियतां वृद्धिं संकुलत्वं न तन्वते ।।१२।।
गृहस्थैश्चेतनैर्भाव्यं मालाकारैरिव स्वयम् ।
गृहोद्यानस्य रम्यास्ते क्षुपा बोध्याश्च बालकाः।।१३।।

टीका- महर्षि धौम्य ने अपने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुये उपस्थित सद्गृहस्थों को सम्बोधित करते हुये कहा- आज का बालक कल समाज संचालक और राष्ट्रनायक बनता है। छोटे पौधे ही विशाल वृक्ष बनते हैं। अतएव कुशल माली छोटे पौधों की आवश्यकता एवं सुरक्षा पर पूरा-पूरा ध्यान देते हैं। उन्हें खाद-पानी की कमी नहीं पड़ने देते। वन्य पशु उन्हें नष्ट न कर डालें, इसका समुचित ध्यान रखते हैं। किस खेत में कितने पौधों के बढ़ने की गुंजायश है-इस बात का ध्यान रखते हुये पिच-पिच नहीं होने देते। गृहस्थों को जागरूक माली की तरह होना चाहिये तथा गृह-उद्यान के सुरम्य पौधे बालकों को समझना चाहिये।। ८-१३।।

परिवार एक फुलवारी के समान है, जिसमें बालकों के रूप में पुष्प विकसित होते एवं अपनी सुरभि से सारे वातावरण को आह्लादयुक्त बना देते हैं। जैसा कि पूर्व प्रकरणों में चर्चा की जा चुकी है, परिवार समाज की एक छोटी इकाई है। राष्ट्र के भावी नागरिक, परिवार रूपी खदान से ही निकलते हैं एवं अपनी प्रतिभा द्वारा सारे समुदाय के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बच्चे छोटी पौध के समान हैं, एवं माता-पिता की भूमिका एक माली की होती है। पौधे को वृक्ष का रूप लेने से पूर्व काफी उपचारों से गुजरना पड़ता है। यह कार्य कुशल माली द्वारा ही संभव हो पाता है। निराई-गुड़ाई, काट-छाँट, वर्षा-पानी, एवं सघनता से बचाव इत्यादि के माध्यम से ही नर्सरी की पौध एक वृक्ष का रूप लेती है। परिवार रूपी पौध में माता-पिता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को ही सारा ध्यान रखना होता है कि बालकों के *समुचित* विकास में उनका योगदान हो पा रहा है या नहीं। थोड़ी सी भी असावधानी अनेकानेक समस्याओं को जन्म दे सकती है। बालक की अपरिपक्व स्थिति से 'परिपक्व स्थिति' में विकास होते समय यदि कोई त्रुटि रह जाती है, तो उसका सारा दोष परिवार रूपी धुरी के दो महत्वपूर्ण अंग माता-पिता पर ही जाता है। *इसीलिए* बालकों को जन्म देने से भी अधिक जागरूक बने रह कर उनके विकास को समुचित महत्व देने वाले अभिभावकों की महत्ता बताई जाती रही है एवं ऐसे आदर्श माता-पिता के नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते रहे हैं।

भारतीय माताएँ सुसन्तानों के निर्माण में तथा देश को अमूल्य नररत्न प्रदान करने में हमेशा बेजोड़ रही हैं।

कुशरीरमृतो ये तु मनोरोगाभिबाधिताः ।
दुःस्वभावा दुराचारा वर्द्धयेयुर्न सन्ततिम् ।।१४।।
भारायिताः समाजाय तेषां सन्ततिरन्ततः ।
सन्ततौ हि सुयोग्यायां पितृसद्गतिरिष्यते ।।१५।।
हीना चेत्सन्ततिस्तस्या जन्मदातॄनृणां ततः ।
इहलोके परत्राऽपि दुर्गतिर्निश्चिताऽभितः ।।१६।।

टीका- शारीरिक,मानसिक और स्वभाव-चरित्र की दृष्टि से, जो लोग पिछड़ी स्थिति में हों, वे बच्चे उत्पन्न न करें। समाज का भार न बढ़ायें - यही उपयुक्त है। सन्तान के सुयोग्य होने पर पितर सद्गति प्राप्त करते हैं, किन्तु हेय स्तर के होने पर जन्मदाताओं को इस लोक में तथा परलोक में दुर्गति का भाजन भी बनना पड़ता है ।। १४-१६ ।।

स्रष्टा ने विवाह की व्यवस्था इन्द्रिय लिप्सा की पूर्ति और भोग विलास के लिए नहीं वरन सृष्टिसंचालन के सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन राष्ट्र की सम्पत्ति, श्रेष्ठ नागरिकों को जन्म देने के लिए, नियमित जीवन जीने के लिए की है। विवाह एक संकल्प है, जो राष्ट्र के भावी बल, सत्ता और सम्मान को जागृत रखने के लिए किया जाता है ।

शास्त्रकार का कथन है-

तावेहि विवहावहै सह रेती दधावहै ।
प्रजां प्रजनतावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून् ।।

अर्थात्- "विवाह का उद्देश्य परस्पर प्रीति युक्त रहकर राष्ट्र को सुसन्तति देना है ।"

शारीरिक, मानसिक और स्वभाव-चरित्र की दृष्टि से स्वस्थ, समुन्नत और सुयोग्य व्यक्ति को ही विवाह करना चाहिए न कि दुष्ट, पतित, दुराचारी और पिछड़ी शारीरिक मानसिक स्थिति के व्यक्ति को ।

ऋग्वेद का स्पष्ट आदेश है-

"तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः ।
स शुक्रेभिःशिकनमीरेवदस्मे
दादायानिध्मोवृत निर्णिगप्सु ।।
(ऋग्वेद २। ३५।४)

अर्थात् जिनके हृदय शुद्ध, निर्मल और पवित्र हों, तथा जिनकी आयु इस हेतु पूर्ण हो चुकी हो, वे युवक और युवती परस्पर पाणिग्रहण करें। वे शक्ति सम्पन्न जन विवाह करके परिवार को सतेज बनाएँ ।

समाज को सुयोग्य नागरिक देने के लिए ही प्रजनन किया जाय, न कि कीड़े-मकोड़ों की तरह अयोग्य और *प्रतिभा*हीन बच्चों को जन्म दिया जाय। वंश वृद्धि का अर्थ है-समाज को-राष्ट्र को-सुयोग्य नागरिक प्रदान करना।

मरणोत्तर जीवन एवं पितरयोनि का अस्तित्व जितना सत्य एवं महत्वपूर्ण है, उतना ही सत्य यह भी है कि योग्य सन्तान के श्रेष्ठ कर्मों से ही पितरों-अभिभावकों को वांछित योनि एवं सुख मिलता है।

कर्मभिः सद्भिरेवैतत्कुलं संशोभते नृणाम् ।
सन्ततेः संस्कृताया हि हस्तदत्तैः प्रियैरलम् ।।१७।।
पिण्डैः पितर आयान्ति सुखं सन्तोषमेव च ।
कुपात्राणां ध्रुवं यान्ति नरकं पितरः सदा ।।१८।।
उत्पाद्या तावती मर्त्यैः सन्ततिः सम्भवेदपि ।
स्नेहरक्षा विकासादि यावत्याः सुव्यवस्थितम् ।।१९।।
विना विचारं दायित्वं सन्ततीनां च गृह्यते ।
यदि दुःखं तदा यान्ति सन्ततिं दुःखयन्ति च।। २०।।

टीका- वंश सत्कर्मों से चलता है। सुसंस्कारी सन्तान के हाथ का दिया पिण्डदान ही पितरों को सुख देता है। कुपात्रों के पितर तो नरक में गिरते हैं। सन्तान उतनी उत्पन्न करें, जितनों को दुलार, संरक्षण एवं विकास-पोषण का समुचित प्रबन्ध सम्भव हो। बिना विचारे सन्तानों का उत्तरदायित्व लाद लेने वाले दुःख पाते और सन्तान को दुःखी करते हैं ।। १७-२० ।।

जन-सामान्य में एक रूढ़िवादी मान्यता यह है कि वंश परम्परा का निर्वाह सन्तान के माध्यम से ही संभव है। जब कि यह नितान्त भ्रान्त चिन्तन है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तान यदि गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से निकृष्ट हुई, तो वंश को डुबाती, घर-परिवार को दुर्गति के गर्त में डालती भी है ।

शास्त्रों में यह नहीं कहा गया है कि वंशवृद्धि से ही सद्गति मिलती है, निस्सन्तान व्यक्ति को सद्गति मिलती है, सद्गति तो मिलती है,व्यक्ति को अपने सत्कर्मो से। मनुस्मृति का यह श्लोक द्रष्टव्य है-

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम् ।
दिवंगतानि विप्राणाम् कृत्वा कुलसंततिम् ।।

(अ० २५ श्लोक १५९)

अर्थात्-कइयों हजार कुमार, ब्रह्मचारी ब्राह्मणों ने बिना सन्तान उत्पन्न किये ही अपने उच्च विचारों, सत्कार्यों और सेवा व्रतों द्वारा स्वर्ग लोक को प्राप्त किया है।

सन्तान न होते हुए भी कितने ही लोगों का यश उज्ज्वल और धवल है। कृष्ण को सभी जानते हैं, पर उनकी सन्तानों के नाम भी शायद ही किसी को मालूम हों। राम के बाद लव-कुश को छोड़ कर उनकी अगली पीढ़ी के नाम शायद किसी को ज्ञात हों। महावीर तो वीतराग और गृहत्यागी तपस्वी थे, उनका यश आज भी बढ़ रहा है । बुद्ध को राहुल से अधिक लोग जानते हैं। ईसा, शंकराचार्य, रामानन्द, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीर, ज्ञानेश्वर, रैदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महर्षि रमण, रामतीर्थ, अरविन्द, राजा महेन्द्र प्रताप आदि कितने ही महात्मा-महापुरुष थे, जो या तो अविवाहित रहे अथवा गृहस्थ भी रहे, तो उनकी कीर्ति सन्तान से नहीं उनके अपने सत्कार्यों से ही अमर हुई। अतः व्यक्ति का नाम और यश सन्तान से नहीं, उसके सद्गुणों और सत्कर्मों से बढ़ता और अमर होता है। सन्तान यदि निकृष्ट स्तर की हो तो जन्म देने वाले माता-पिता एवं पूर्वज सभी इसका फल भोगते एवं मरणोत्तर जीवन में त्रास पाते हैं ।

महर्षि धौम्य उपस्थित जन समुदाय को समझाते हैं कि माता-पिता सन्तान उतनी ही उत्पन्न करें, जितनों के प्रति समुचित जिम्मेदारी का निर्वाह कर सकें, अन्यथा सन्तानों की संख्या ज्यादा बढ़ा लेने और उचित उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर पाने के कारण संतान ऐसी निकलेगी, जो कुल को कलंकित करेगी और समाज पर अनावश्यक भार बनेगी।

ऋग्वेद में स्पष्टतः कहा गया है-

बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश ।।

(ऋग्वेद १।६४।३२)

अर्थात्-'अधिक सन्तानें सदा कष्ट का कारण बनती हैं। इतना ही नहीं अवांछनीय प्रजनन कितने संकट उत्पन्न करता है, इसे गम्भीरता से समझने का प्रयत्न करने पर लगता है 'मरणं विन्दुपातेन ....' की उक्ति अक्षरशः सही है। विशेष प्रकार की बिच्छू मादा और एक खास किस्म की मकड़ी प्रजनन के साथ ही मृत्यु के मुख में चली जाती हैं। मनुष्य को वैसा तो नहीं करना पड़ता, पर त्रास लगभग उतना ही मिलता है ।

क्लिन्नमृत्स्नेव बालास्तु भवन्त्येव च तान् समान् ।
परिष्कृतान् कुटुम्बस्य वृतौ कर्तुमिहेष्यते ।। २१।।
एतेषां स्नेहिनामत्र समाह्वाच्च नरः स्वयम् ।
पूर्वमेवोपयुक्ताश्च स्थितिरुप्तादयेच्छुभाः ।। २२।।
पित्रोः शारीरिकं स्वास्थ्यं विकासो मानसस्तथा ।
अर्थप्रबन्ध एतादृग् भवेद् येन नवागतः ।। २३।।
उपयुक्तां स्थितिं नित्यं लभते यदि कश्चन ।
पित्रो रोगी भवेत्तर्हि सन्ततिः साऽपि जन्मनः।। २४।।
अनुन्नतोऽसंस्कृतश्च जन्मदातृस्तरो यदि ।
बालास्तथैव मूढाश्च दुश्चरित्रा भवन्त्यपि ।। २५।।
अर्थस्थितावयोग्यायामभावग्रस्ततां समे ।
बालका यान्ति तिष्ठन्ति तेऽविकासस्थितौ समे।। २६।

टीका- बालक गीली मिट्टी के समान है। उन्हें परिवार के वातावरण में ढाला जाता है। इन सम्मानित अभ्यागतों को बुलाने से पूर्व उनके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेनी चाहिए। माता-पिता का शारीरिक-स्वास्थ्य, मानसिक विकास, अर्थ-प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए, जिससे नवागत को आरम्भ से ही उपयुक्तता उपलब्ध हो सके। माता-पिता में से कोई भी रोगी होने पर सन्तान जन्मजात रूप से रोगी उत्पन्न होती है। जन्म दाताओं का बौद्धिक स्तर गया गुजरा हो, स्वभाव अनगढ़ हो तो बच्चे भी वैसे ही मूढमति उत्पन्न होंगे और आगे चल कर दुश्चरित्र बनेंगे। अर्थ व्यवस्था ठीक न होने की स्थिति में बालकों को अभावग्रस्त रहना पड़ता है और वे अविकसित स्तर के रह जाते हैं ।। २१-२६।।

पारिवारिक वातावरण की शिशुओं के निर्माण में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जिस प्रकार कुम्हार चाक के समीप बैठकर मिट्टी को जैसी इच्छा हो वैसा रूप दे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देता है, ठीक उसी प्रकार माता एवं पिता अभ्यागत सन्तान को गुण, कर्म, स्वभाव रूपी सम्पदा के माध्यम से संस्कार देने में सक्षम हैं। यह उन पर निर्भर करता है कि वे इस कार्य में कितने सजग एवं समर्थ हैं। शास्त्रों में इसीलिए विवाह एवं प्रजनन संबंधी आयु मर्यादा के साथ-साथ पति-पत्नी की मन:स्थिति, परिवार रूपी परिस्थिति को अनुकूल बनाने के प्रसंग सुप्रजनन के संदर्भ में आते हैं ।

पहले माता-पिता का स्तर ऊँचा होना, चिन्तन परिष्कृत होना एवं शरीर का स्वस्थ होना जरूरी है। ऐसा न होने पर जैसे अनगढ़, चरित्रहीन अभिभावक होंगे, वैसा ही सन्तति जन्मेगी। स्वावलम्बन द्वारा आजीविका उपार्जन की जब तक व्यवस्था न हो, तब तक सन्तान को निमंत्रण न दिया जाय। निर्धनता कोई अभिशाप नहीं, पर अर्थव्यवस्था ऐसी तो हो कि आगन्तुक अतिथि का भार वहन किया जा सके ।

गृहस्थजीवनैर्मर्त्यैरुपस्थाप्या निजा: शुभा: ।
आदर्शा अथ सौजन्ये संस्कार्यं च कुटुम्बकम् ।। २७ ।।
अभ्यास: सत्प्रवृत्तीनां कर्तव्य: सततं तथा ।
स्नेहो देयश्च कर्त्तव्य: हार्दिकी ममताऽपि च ।। २८ ।।
अवाञ्छनीयतोत्पत्ते: सतर्कै: स्थेयमप्यलम् ।
भ्रष्टं चिन्तनमप्येतद्दुराचरणमप्यथ ।। २९ ।।
उच्छृङ्खला व्यवहृति: सद्गुणानां तु तस्करा: ।
विचार्येदं निरोद्ध्या: स्वक्षेत्रे प्रहरिणेव च ।। ३० ।।
प्रांगणे विषवृक्षश्चाऽनौचित्यस्य कदाचन ।
नैवोद्भवेदिदं सर्वैर्गौरवं चाऽभिमन्यताम् ।। ३१ ।।
सद्गृहस्थाश्च धन्यास्ते सर्वतो गौरवान्विता: ।
परिवारं निजं ते तु सुखिनं च समुन्नतम् ।। ३२ ।।
संसुस्कृतं विनिर्मान्ति श्रेयो लाभं प्रयान्ति च ।
भविष्यदुज्ज्वलं तेषां सन्ततेरपि स्वस्य च ।। ३३ ।।

टीका- गृहस्थ जीवन जीने वालों को अपना आदर्श उपस्थित करके समूचे परिकर को सज्जनता के ढाँचे में ढालना चाहिए और सत्प्रवृत्तियों का सतत् अभ्यास करना चाहिए। स्नेह दिया जाय और दुलार किया जाय किन्तु साथ ही अवांछनीयताओं से सतर्क भी रहा जाय। भ्रष्ट-चिन्तन,दुष्ट-आचरण और उच्छृंखल व्यवहार को चोर-तस्कर मानकर सावधान प्रहरी की तरह, उन्हें अपने क्षेत्र में प्रवेश करने से रोकना चाहिए। अनौचित्य का विष-वृक्ष अपने आँगन में न उगने देने में ही गौरव है। ऐसे गौरवशाली सद्गृहस्थ हर दृष्टि से धन्य बनते हैं। अपने परिवार को सुखी, समुन्नत और सुसंस्कृत बनाकर श्रेय लाभ प्राप्त करते हैं, उनकी सन्तति का भविष्य तथा अपना भविष्य भी उज्ज्वल बन जाता है ।। २७-३३ ।।

परिवार में जैसा वातावरण होता है, जैसी प्रवृत्तियाँ पनपती हैं, बच्चे सहज ही उनका अनुकरण करते हैं। यह मानवी स्वभाव की एक जन्मजात विशेषता है कि बड़े जैसा करते हैं, छोटे उनके अनुरूप ही बनते चले जाते हैं। समाज रूपी विराट् परिवार में भी जैसा प्रचलन होता है, जनमानस सहज ही उसके अनुरूप ढलता जाता है। जब परिवार में बड़े अपनाते, जीवन में उतारते हैं, तो बालकों में वे विशेषतायें सहज ही विकसित होने लगती हैं। मनुष्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी गरिमा के अनुकूल आचरण कर अपने आदर्शों से दूसरों को शिक्षण दे । अभिभावकों को अपनी निज की बड़ी जिम्मेदारियों से भरी भूमिका गृहस्थ-जीवन में होती है। यह उन्हीं का कर्तव्य है कि वे छोटे बच्चों के मानस में दुष्प्रवृत्तियों के प्रवेश को रोकने हेतु सतत् सतर्क रहें, एक पहरेदार की भूमिका निबाहें। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों को प्यार भरा शिक्षण देंगे, उन्हें स्नेह का अभाव अनुभव नहीं होने देंगे, किन्तु साथ ही इतना अनुशासित भी रखेंगे कि वे इस दुलार का दुरूपयोग न करने लगें अथवा इसकी आड़ में अपना भविष्य नष्ट करने वाली निकृष्ट आदतें न अपनाने लगें। स्वयं अपना जीवन सुसंस्कृत, सुव्यवस्थित बना लेना ही काफी नहीं होता । अपनी सन्तानों, परिवारीजनों में संस्कारों का पोषण देने हेतु कितना पुरुषार्थ किया गया, इससे ही जीवन की सार्थकता आँकी जाती है। ऐसे गृहस्थों की ही गरिमा श्लाघ्य है, इन्हीं का जीवन धन्य है।

समत्वेन च मान्यास्तु कन्या: पुत्राश्च मानवै: ।
तयोर्भेदो न कर्त्तव्यो मान्या श्रेष्ठा च कन्यका ।। ३४ ।।
सा हि श्रेयस्करी नृणामुभयोर्वंशयोर्यत: ।
जानक्या जनक: ख्यात: कुपुत्रैर्नहि रावण: ।। ३५ ।।
अनुभवन्ति स्वतो डिम्भा गर्भेमातुरलं समै: ।
गर्भिण्या मानसं स्वास्थ्यं शारीरं शोभनस्थितौ ।। ३६ ।।
यथा स्याच्च तथा कार्यं विहराऽऽहारयोरपि ।
सात्विकत्वं भवेद् बालवृद्धिबाधा न सम्भवेत् ।। ३७ ।।
वातावृति: कुटुम्बस्य सदा स्यादीदृशी शुभा ।
कुसंस्कारा न बालेषु भवेयुरुदिता क्वचित् ।। ३८ ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिभावकसंज्ञेभ्यो भिन्नैरपि जनैर्नहि ।
व्यवहार्यं तथा येन दूषिता स्याच्छिशुस्थितिः ।। ३९ ।।
चिन्तनं ते चरित्रं च यथा पश्यन्ति सद्मनि ।
कुटुम्बे वा तथा तेषां स्वभावो भवति स्वतः ।। ४० ।।
भविष्यच्चिन्तया ताँश्च शोभनायां निवासयेत् ।
वातावृतौ शिशूं स्तेषां व्यक्तित्वस्यपरिष्कृतिः ।। ४१ ।।
प्रारम्भिकेषु वर्षेषु दशस्वेव मता शुभा ।
अस्मिन् काले कुटुम्बं च सतर्कं सततं भवेत् ।। ४२ ।।
उपयुक्ताः निजाः सर्वैः परिवारगतैर्नरैः ।
उपस्थाप्याः शुभादर्शास्तेषामग्रे निरन्तरम् ।। ४३ ।।

टीका- कन्या और पुत्र को समान माना जाय। उनके बीच भेद-भाव न किया जाय। पुत्र से भी अधिक कन्या को श्रेष्ठ और श्रेयस्कर माना जाना चाहिए, चूँकि वह पिता और श्वसुर दो वंशों के कल्याण से सम्बद्ध है। जनक ने कन्या से ही श्रेय पाया और रावण के अनेक पुत्र उसके लिए अपयश का कारण बने। बच्चे गर्भ में रहकर माता से बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए गर्भिणी के शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को सही रखा जाय, उसके आहार-विहार में ऐसी सात्विकता रखी जाय जो शिशु के विकास में व्यवधान उत्पन्न न करे। परिवार का वातावरण ऐसा रहे, जिसका बालकों पर कुसंस्कारी प्रभाव न पड़े। अभिभावकों के अतिरिक्त घर के अन्य सदस्य भी बालक के सम्मुख ऐसा व्यवहार प्रस्तुत करें, जिससे कोमल मन पर बुरी छाप न पड़े। चिन्तन और चरित्र-जैसा भी घर-परिवार में वे देखते हैं, वैसे ही ढलने लगते हैं। बच्चों के भविष्य का ध्यान रखते हुए उन्हें सुसंस्कारी वातावरण में ही पाला जाय। व्यक्तित्व के परिष्कार की ठीक अवधि आरम्भ के दस वर्षों में मानी गयी है। इस अवधि में समूचे परिवार को सतर्कता बरतनी चाहिए और अपने उपयुक्त उदाहरण सदा उसके सम्मुख प्रस्तुत करने चाहिए ।। ३४-४३ ।।

जैसी भ्रान्ति जन सामान्य में सन्तान से वंश चलने की है, लगभग वैसी ही कन्या व पुत्र में अन्तर मानने की भी है। सामान्यतया हर अभिभावक को पुत्र की ही आकांक्षा होती है, जबकि नर व नारी दोनों में कोई भेद नहीं है। इसके विपरीत नारी को तो संस्कारों की खदान बताया गया है, शक्तिरूपा माना गया है। वह सृजन की देवी है। किन्तु सामाजिक प्रचलन, मूढ़तायें, जन्म होने के बाद से ही विवाह में धन व्यय होने की चिन्ता सदैव पुत्र के जन्म होने की मनौती ही मनवाती रहती है। अनेकों ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ पुत्रों ने अपने दुष्कर्मों से वंश को डुबोया एवं पुत्रियाँ अपने श्रेष्ठकार्यों से अभिभावकों एवं समुदाय के लिए श्रेयाधिकारी बनीं। पुत्र व पुत्री में कन्या की महत्ता कितनी है। इस सम्बन्ध में एक आप्त वचन है- "दसपुत्रसमा कन्या, या स्यात् शीलवती सुता।" जिस समाज में कन्या को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, वह निश्चित ही ऊँचा उठता है। वह अपने पिता का ही नहीं, जिस घर में विवाहित होकर जाती है, उसका भी कल्याण करती है।

महर्षि दयानन्द ने कहा है-"भारतवर्ष का धर्म, उसके पुत्रों से नहीं, सुपुत्रियों के प्रताप से ही स्थिर है। भारतीय देवियों ने यदि अपना धर्म छोड़ दिया होता, तो देश कब का नष्ट हो गया होता।" कन्या को पुत्र के तुल्य ही समझने का आदेश महाराज मनु ने भी दिया है- "जैसे आत्मा पुत्र रूप में जन्म लेती है, वैसे ही पुत्री के रूप में भी जन्म लेती है।" (मनुस्मृति ९:१३०)।

नारी नौ माह तक भ्रूण को अपनी काया में रख, पोषण ही नहीं देती, संस्कार भी देती है। यदि गर्भावस्था में माँ का चिन्तन परिष्कृत, सात्विक है, उस पर भावनात्मक दबाव न पड़ता हो, वह सदैव महापुरुषों के आदर्श कर्त्तव्यों का चिन्तन-मनन करती हो तो सन्तान भी वैसी ही उत्कृष्ट जन्मेगी। जन्म के बाद भी वैसा ही संस्कारमय वातावरण घर-परिवार में बना रहना अनिवार्य है। जीवन के प्रारम्भ के दस वर्ष शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने गये हैं। इस अवधि में उनको सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टि से अनौपचारिक शिक्षण दिया जाना चाहिए, ताकि वे श्रेष्ठ नागरिक के रूप में विकसित हो सकें।

बाल बोध्या विनेयाश्च प्रापः स्नेहेन साध्विदम् ।
उच्यते शिशवः स्नेह लभन्तां शिक्षणोन्मुखम् ।। ४४ ।।
स्नेहातिरेकतो बाला विकृतिं यान्ति सन्ततम् ।
नाऽयोग्यं दण्डयेद् बालान् भयभीतान्नकारयेत्। ।४५ ।।
अयोग्याचरणोत्पन्न हानिर्ज्ञाप्याऽपवार्य च ।
लोकशिक्षेतिहासेन देयाऽन्या शिक्षणादपि ।। ४६ ।।
ज्ञानवृद्धयै पुस्तकानां ज्ञानमेव न चेष्यते ।
भ्रमणार्थं च नेयास्ते क्षेत्रे सामीप्यवर्तिनि ।। ४७ ।।
मार्गप्राप्तैर्विधेया च ज्ञानवृद्धिस्तु वस्तुभिः ।
जिज्ञासायाः स्वभावाश्च तेषां निर्मातुमिष्यते ।। ४८ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवृत्तिरेषा प्रोत्साह्या विकासस्य मनःस्थितौ ।
विधि शोभन एवैष यस्तु प्रश्नोत्तरानुगः ।।४९।।
कीडेयुर्न कुसंगे च बाला इत्यभिदृश्यताम् ।
संस्कृतैः सखिभिर्योगो यत्ने नैषां विधीयताम्।।५०।।
सखिभ्योऽपि विजानन्ति शिशवो बहुसन्ततम् ।
यथा संरक्षकेभ्योऽतः सावधानैश्च भूयताम् ।।५१।।

टीका- बालकों को स्नेह से समझाने-बदलने का प्रयास किया जाय। एक आँख दुलार की-दूसरी सुधार की रखने की उक्ति में बहुत सार है। अतिशय दुलार में कुछ भी करने देने से बालक बिगड़ते हैं। उन्हें पीटना-डराना तो नहीं चाहिए, पर अवांछनीय आचरण की हानि अवश्य बतानी चाहिए और रोकना भी चाहिए। स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त बच्चों को लोकाचार सिखाने का उपयुक्त तरीका सारगर्भित कथा कहानियाँ सुनाना है। ज्ञानवृद्धि के लिए पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त नहीं, उन्हें समीपवर्ती क्षेत्र में भ्रमण के लिए भी ले जाना चाहिए और रास्ते में मिलने वाली वस्तुओं के सहारे उनकी ज्ञानवृद्धि करनी चाहिए। जिज्ञासाएँ करने की-प्रश्न पूछने की आदत डालनी चाहिए। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित भी करना चाहिए। मानसिक विकास का अच्छा तरीका प्रश्नोत्तर ही है। कुसंग में बच्चों को खेलने न दें । ऐसे साथियों का सुयोग बिठायें, जो अच्छे स्वभाव के हों। अभिभावकों की तरह साथियों से भी बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं-इस ओर सावधान रहना चाहिए ।। ४४-५१।।

बालकों के संतुलित विकास से सम्बन्धित तीन महत्वपूर्ण सूत्र ऋषि श्रेष्ठ धौम्य यहाँ बताते हैं। (१) दुलार एवं सुधार की समन्वित नीति अपनाते हुए उन्हें स्नेह से वंचित भी न रखना एवं आवश्यकता पड़ने पर कड़ाई बरतकर अनौचित्य से उन्हें विरत करना (२) पाठ्यक्रम से जुड़ी शिक्षा के अलावा भी व्यावहारिक जीवन की शिक्षा उन्हें कथा कहानियों के माध्यम से एवं प्राकृतिक जीवन के साहचर्य के माध्यम से देना, उनकी जिज्ञासु बुद्धि को प्रखर करना एवं स्वाध्यायशीलता के प्रति रुचि जगाना (३) बालक किनकी संगति में दिन भर रहते हैं, इसका सतत् ध्यान रखना। गुण, कर्म एवं स्वभाव के परिष्कार हेतु उत्कृष्टता को सम्मान देने वाले नम्र स्वभाव के साथियों को ही संगी-साथी बनाने को प्रोत्साहन देना।

उपरोक्त तीनों ही पक्ष बालकों के किशोर रूप में विकसित होने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिस परिवार संस्था में इन पर समुचित ध्यान दिया जाता है, उसमें निश्चित ही श्रेष्ठ नागरिक विकसित होते एवं समुदाय को गौरवान्वित करते हैं।

प्रवेशिकास्तरायाश्च शिक्षायाः पूर्वमेव तु ।
निश्चेयं बालकायैष भविता केन वै पथा ।।५२।।
जीविकोपार्जनं केन माध्यमेन करिष्यति ।
आनुरूप्येण चास्यैव निर्णयस्याग्रिमा ततः ।।५३।।
निर्धार्या तस्य कक्षा च शिक्षा नैवदृशी शिशोः ।
कर्त्तव्या जीवने तस्य व्यवहारं न याऽव्रजेत्।।५४।।
बुद्धौ भार इवाऽऽयाति व्यर्थं चाऽनेन कर्मणा ।
शिक्षणेनाऽनिवार्येण वञ्चितो जायते शिशुः ।।५५।।
व्यर्थतामेति सर्वं च श्रमः कालो धनं तथा ।
अनिश्चयेन चाऽनेन पश्चात्तापस्ततो भवेत् ।।५६।।
शिक्षोद्देश्यगतिश्चिन्त्या भोजनस्येव निश्चितम्।
क्रीडार्थं समयो देयः कलाकौशलवेदिता ।।५७।।
लोकाचारसदाचारभिज्ञता तस्य संभवेत् ।
नीत्यभ्यस्तो भवेद् बालः प्रबन्धश्चेदृशो भवेत्।।५८।।
अस्मै प्रयोजनायैतद् भ्रमणं युज्यते ध्रुवम् ।
लाभदं ज्ञानवृद्ध्या चेद् भ्रमणं तद्व्यवस्थितम्।।५९।।
नोचेत्कौतुकमात्राय भ्रमणेन भवन्त्यपि ।
हानयो वैपरीत्येन भ्रमणं हि हितैर्हितम् ।।६०।।

टीका- प्रवेशिका स्तर की सामान्य शिक्षा पूरी करने से पूर्व ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि बच्चों को क्या बनाना है ? उसे उपार्जन का क्या माध्यम अपनाना है। इस निर्णय के अनुरूप ही उसकी अगली शिक्षा का निर्धारण कर लिया जाय। ऐसी अनावश्यक शिक्षा न दी जाय, जो उसके व्यावहारिक जीवन में काम न आये। इससे मस्तिष्क पर अनावश्यक दबाव पड़ता है और जो सीखना आवश्यक था, उससे वंचित रहना होता है। किया गया श्रम और समय-खर्चा गया धन, इस अनिश्चय के कारण व्यर्थ ही चला जाता है। इसके लिए पीछे सदा पश्चात्ताप रहता है। भोजन की तरह शिक्षा के उद्देश्य का ध्यान रखना भी आवश्यक है। खेलने-कूदने का अवसर दिया जाय। कला-कौशल से भी उन्हें अभ्यस्त होने दिया जाय। लोक-व्यवहार और नीति-सदाचार का उपयुक्त ज्ञान लाभ होता रहे। ऐसा प्रबन्ध किया जाय। परिभ्रमण इस प्रयोजन के लिए आवश्यक है। परिभ्रमण के साथ ज्ञान-संवर्धन की व्यवस्था पूरी तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जुड़ी रहे, तभी उसका लाभ है। अन्यथा कौतूहल भर के लिए इधर-उधर घूमने में कई बार तो उलटी हानि भी होती है। उपयुक्त समाधान करते रहने वालों के साथ घूमना ही हितकर है ।। ५२-६०।।

शिक्षा बच्चों को क्या दी जानी है? इसका निर्धारण अभिभावकों को उनकी मन:स्थिति एवं देश-काल की परिस्थितियों को देखकर ही करना चाहिए। जो विषय अप्रांसगिक है, जिनका जीवन से दूर-दूर तक ताल्लुक नहीं, शिशुओं के कंधे पर लाद देना, वस्तुत: उनके विकास को रोकने के समान है। सामान्य ज्ञान, आहार- विहार, खेल-कूद, सामान्य शिष्टाचार, नैतिक गुणों के व्यावहारिक क्रियान्वयन का शिक्षण पाठ्यक्रम में जुड़ा रहे, तो ही शिक्षा फलदायी होती है। ऐसी अनौपचारिक शिक्षण प्रक्रिया पाठ्य पुस्तकों की डिग्री दिलाने वाली शिक्षा से लाख गुना उत्तम है, एवं अपनायी ही जानी चाहिए। पर्यटन-परिभ्रमण भी आस-पास की परिस्थितियों, प्राकृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में दृष्टिकोण को निखारता एवं व्यक्तित्व को सर्वांगपूर्ण बनाता है। आत्मरक्षा का अभ्यास सभी शिशुओं को साथ में कराया जाना चाहिए, ताकि वे साहसी स्वावलम्बी बन सकें ।

कुसंगाद् बालका रक्ष्या: सेवकेषु सखिष्वपि ।
अध्यापकेषु चान्येषु परिचितेषु जनेष्वपि ।। ६१।।
योग्या: के सन्त्ययोग्या: के ध्येयमत्राभिभावकै: ।
सतर्कत्वप्रसंगेऽस्मिन्ननिवार्यं हि मन्यताम् ।। ६२।।
दुष्प्रभावान् कुसंगस्य बालानां प्रकृतिस्तथा ।
भविष्यच्चाऽपि संयातो विकृतिं दु:खदायिनीम्।। ६३।।
गृहकार्येषु बालानां रुचिं सम्पादयेन्नर: ।
सहयोगस्य भावं च तेषां संवर्द्धयेदपि ।। ६४।।
स्नेहात्किमपि कर्तुं च स्वातन्त्र्यं नैव दीयताम् ।
मृदुताकारणात्तेषु केवलं जायते नहि ।। ६५।।
शीतोष्णयो: प्रभाव: स परं सदसतोरपि ।
प्रभावस्तेषु क्षिप्रं स प्रभवत्यञ्जसैव तु ।। ६६।।

टीका- कुसंग से बच्चों को बचाया जाय। सेवक, साथी, अध्यापक, परिचितों में कौन उपयुक्त, कौन अनुपयुक्त है? इसका ध्यान रखना अभिभावकों का काम है। इस सन्दर्भ में बहुत सतर्कता की आवश्यकता है। कुसंग के दुष्प्रभाव से कई बार बालकों का स्वभाव एवं भविष्य ही बिगड़ जाता है, जो पीछे बड़ा दु:खदायी होता है। बच्चों को घर-परिवारके कामों में रस लेने, ध्यान देने और हाथ-बँटाने की आदत आरम्भ से ही डालनी चाहिए। दुलार में कुछ भी करते रहने की छूट नहीं देना चाहिए। कोमलता के कारण बालकों पर सर्दी-गर्मी का ही अधिक अवसर नहीं होता, वरन् भले-बुरे प्रभाव से भी वे जल्दी प्रभावित होते हैं ।। ६१-६६।।

बालकों, किशोरों के कोमल मन पर सभी समीपवर्ती व्यक्तियों की मन: स्थिति का प्रभाव पड़ता है। चाहे वे घर में कार्यरत सेवक हों, उनके साथी सहचर हों, आने वाले परिचित अतिथिगण हों अथवा शिक्षण देने वाले गुरुजन। इनमें से कौन का साथ हितकर है, यह चुनाव है तो कठिन; पर अभिभावकों को यह भी करना ही चाहिए। मौसम के थोड़े से अनूकूल-प्रतिकूल परिवर्तन स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं, उसी प्रकार सम्पर्क सम्बन्धी थोड़े से भी प्रभाव का उन पर दूरगामी असर पड़ता है। अच्छा-बुरा चुनने की बुद्धि किशोरावस्था तक विकसित नहीं हो पाती, किन्तु उनका प्रभाव ढलाई की प्रक्रिया से गुजर रहे मस्तिष्क पर तुरन्त पड़ता है। अच्छा हो, वातावरण ऐसा बने कि हर श्रेष्ठ कार्य में बच्चों की रुचि जागे एवं दैनन्दिन घर-गृहस्थी के कार्यों में भी रस लेकर स्वावलम्बी बनाएँ, इस प्रयोगशाला से कुछ सीखें।

पाणिग्रहणसंस्कारस्तदैवैषां च युज्यते ।
यदेमे संस्कृता बाला सन्त्वपि स्वावलम्बिन:।। ६७।।
तथा योग्याश्च सन्त्वेता बालिका भारमञ्जसा ।
क्षमा वोढुं गृहस्थस्य येन स्यु: समयेऽपि च ।। ६८।।
स्वावलम्बनदृष्ट्या ता प्रतीयेरन्नपि क्षमा: ।
नो पाणिग्रहणं युक्तमविपक्वायुषां क्वचित् ।। ६९।।
विकासेऽनेन तेषां हि बाधाऽभ्येति समन्तत: ।
सुविधा साधनानां हि ज्ञानवृद्धेरपीह च ।। ७०।।
व्यवस्थेव सदा ध्येयं बाला: संस्कारिणो यथा ।
भवन्त्वपि सदा सर्वे गुणकर्मस्वभावत: ।। ७१।।
चरित्रे चिन्तने तेषा व्यवहारेऽपि सन्ततम् ।
शालीनता समावेशो यथायोग्यं भवत्वपि ।। ७२।।

टीका- विवाह तब करें, जब बच्चे स्वयं सुसंस्कृत व स्वावलम्बी बनने की स्थिति तक पहुँचें। लड़कियों को इस योग्य होना चाहिए कि वे नये गृहस्थ का भार उठा सकें और समय पड़ने पर आर्थिक स्वावलम्बन की दृष्टि से भी समर्थ सिद्ध हो सकें। परिपक्व आयु होने से पूर्व बालकों या किशोरों का विवाह नहीं करना चाहिए। इससे उनके विकास क्रम में भारी बाधा पड़ती है। ज्ञान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्धि तथा सुविधा-साधनों की व्यवस्था करने की तरह ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से सुसंस्कारी बनें। उनके चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में शालीनता का समुचित समावेश होता रहे ।। ६७-७२।।

न केवल शारीरिक संरचना की दृष्टि से स्वस्थ, अपितु मानसिक परिपक्वता, भावनात्मक विकास की स्थिति में पहुँचने पर ही युवकों को विवाह-बन्धन में बांधा जाय। आयु का बन्धन तो हो ही, गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से परिष्कार हो पाया है अथवा नहीं, इसे भी विवाह का आधार बनाया जाय। बाल्यकाल से कैशोर्यावस्था की अवधि अनुभवों के अर्जन, ज्ञान-सम्पदा के संचय एवं व्यावहारिक शिक्षण की है। जीवन जीने की कला से जो अनभिज्ञ हैं, उन्हें समय से पूर्व विवाह-बन्धन में बाँधना उनके साथ अत्याचार करना है।

वातावृतौ च योग्यायां वसितुं समयं च ते ।
लभन्तां तान् सुयोग्यांश्च नागरान् संस्कृतानपि ।। ७३ ।।
निर्मातुं यत्नशीलैश्च भाव्यमेवाऽभिभावकैः ।
उन्नतस्तरव्यक्तित्वे भविष्यत्संश्रितं शिशोः ।। ७४ ।।
सत्प्रयोजनभाजस्ते सेवाभाजो भवन्त्वपि ।
अवसरा ईदृशा देयास्तेभ्यः प्रोत्साहनं तथा ।। ७५ ।।

टीका- यह भी आवश्यक है कि उन्हें (बच्चों को) उपयुक्त वातावरण में रहने का अवसर मिले। सुयोग्य-सुसंस्कारी नागरिक बनाने के लिए भी अभिभावक प्रयत्नशील रहें, क्योंकि व्यक्तित्व के समुन्नतस्तर पर ही बच्चों का उज्ज्वल भविष्य निर्भर रहता है। उन्हें सेवाभावी-सत्प्रयोजनों में भाग लेते रहने का अवसर भी देना चाहिए और प्रोत्साहन भी ।।७३-७५ ।।

बालकों को सुसंस्कारी बनाना जितना अनिवार्य है, उतना ही यह भी कि उन्हें सेवा-धर्म के माध्यम से इन गुणों को व्यवहार में उतारने का अभ्यास करने का अवसर भी मिले। परिवार, विद्यालय, मित्र, परिकर एवं समस्त समाज एक कार्यशाला है, जिसमें सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास किया जा सकता है। कोरे सिद्धान्त तो चिन्तन तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। उनका व्यवहार में उतरना अत्यन्त अनिवार्य है। इस दिशा में सभी अग्रजों द्वारा समुचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

संख्यावृद्धौरता ये तु सन्ततेरुचितं नहि ।
दायित्वं च विकासस्य तेषां ज्ञातुं क्षमा नराः ।। ७६ ।।
श्रुत्वा तेऽद्यतनं सारगर्भितं मंगलोदयम् ।
परामर्शं गता लज्जां पश्यन्तो दोषमात्मनः ।। ७७ ।।
मर्यादितां महत्तां तेऽविदुः प्रजनस्य ते ।
बालकान् प्रोन्नतान् कर्तुं निरचिन्वंश्च यत्नतः ।। ७८ ।।
वयस्केषु च बालेषु श्रुत्वा प्रवचनं त्विदम् ।
शुभमद्यतनं तत्र शुभाशासोदगान्न वा ।। ७९ ।।
महिलाश्चाऽपि बालानामुज्ज्वलस्य भविष्यतः ।
सुयोगमिव चाऽऽयातमन्वभूवन् समा अपि ।। ८० ।।
भाराधिक्याच्च जीर्णत्वविपदो रक्षणादपि ।
सन्तोषः सुमहांस्तासामभूदानन्दितात्मनाम् ।। ८१ ।।
धौम्यप्रवचनं ताश्च वरदानमिव स्त्रियः ।
दैवमेवाऽन्वभूवंश्च दिव्यं प्रज्ञायुगोद्भवम् ।। ८२ ।।
समापनस्य काले च विसर्जनरताः समे ।
प्रसन्ना बहुसन्तुष्टा निधिं प्राप्येव चाक्षयम् ।। ८३ ।।

टीका- बालकों की संख्या बढ़ाने में उत्साही किन्तु उनके समुचित विकास का उत्तरदायित्व न समझने वाले आज के सारगर्भित-मगंलमय परामर्श को सुनकर लज्जित हो रहे थे और अपनी भूल मान रहे थे। उनने मर्यादित प्रजनन की महत्ता समझी एवं घर के बालकों को समुन्नत बनाने में अधिक ध्यान देने और प्रयास करने का निश्चय किया। आज के प्रवचन से समझदार बच्चों में आशा की किरणें जगीं। महिलाओं ने भी अपने बालकों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के सुयोग का आगमन अनुभव किया। अधिक भार लदने से जीर्ण-शीर्ण होने की विपत्ति से बचने का भी उन्हें बड़ा सुख एवं सन्तोष मिल रहा था। उन्हे धौम्य का प्रवचन देव-वरदान जैसा लगा । इसे उन्होंने प्रज्ञायुग की दिव्य देन समझा। आज के समापन समय पर विजर्सन कृत्य करते हुए-विदा लेते हुए-सभी लोग और भी अधिक प्रसन्न-सन्तुष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे, मानो कोई अक्षयनिधि हाथ लग गयी हो ।। ७६-८३।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्री धौम्य ऋषि प्रतिपादिते "शिशुनिर्माण" इति प्रकरणो नाम
।। चतुर्थोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

वृद्धजन-माहात्म्य प्रकरण

धर्मकृत्येषु वृद्धानां रुचिः स्वाभाविकी मता ।
कुम्भपर्वसमेष्वेते समायान्त्यधिका अपि ।। १।।
प्रयान्त्यपि च सत्रेषु ते विचार्यातिखिन्नताम् ।
अधिगच्छन्ति किं कार्यमस्माभिरिह संगतैः ।। २।।
जराजीर्णतया नैव केचनाऽपि तु हस्तगाः ।
अधिकाराः कुटुम्बस्य वयस्काधिगतास्तु ते ।। ३।।
उपेक्षितातिथेस्तत्र स्थितिं प्राप्ता इवाद्य तु ।
निर्वाहसुविधामात्रं कथञ्चित्प्राप्नुवन्निह ।। ४।।
यापयन्ति च शून्यास्ते स्थिताः कालं निरन्तरम् ।
इति स्थितौ गृहस्थस्य भूमिकां कां वहन्तु ते ।। ५।।
नेदं तेषां मतौ सम्यक् स्थिरतां श्रयति स्म तु ।
अनुभवन्ति समे यत्र निराशां ते निरन्तरम् ।। ६।।

टीका- धर्मकृत्यों में वृद्धजनों की स्वाभाविक अभिरुचि रहती है। वे कुम्भ पर्व जैसे आयोजन में परलोक साधना की दृष्टि से पहुँचते भी अधिक संख्या में हैं। वे इन सत्रों में पहुँचते तो थे,पर यह सोचकर खिन्न होते थे कि वे करें क्या?जराजीर्ण होने के कारण उनके हाथ में घर-परिवार के कुछ अधिकार भी नहीं रहे, उसे वयस्कों ने संभाल लिए। वे तो एक उपेक्षित अतिथि के रूप में उस परिकर में रह कर किसी प्रकार निर्वाह की सुविधा भर प्राप्त करते हैं। बैठे-ठाले समय गुजारते हैं। ऐसी दशा में वे गृहस्थ-धर्म-पालन करने की दृष्टि से क्या भूमिका सम्पन्न कर सकते हैं, यह उनकी समझ में नहीं आरहा था और निराशा जैसी अनुभव कर रहे थे ।। १-६ ।।

वार्धक्य, जीवन की एक ऐसी स्थिति है, जब व्यक्ति सारा जीवन परिश्रम करने के बाद, सहसा अपने आप को एकाकी, दूसरों पर अवलम्बित एवं शरीर बल से क्षीण होने के कारण असमर्थ पाने लगता है। वस्तुस्थिति ऐसी है नहीं। यह तो जीवन का सबसे महत्वूपर्ण पड़ाव है। इस आयु में धार्मिक अभिरुचि होना स्वाभाविक है। व्यक्ति अपना परलोक सुधारने की बात सोचता है। विभिन्न प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्डों में स्वयं को व्यस्त रखने का प्रयास करता है। किन्तु प्रगतिशील दिशा न मिलने के कारण ऐसे प्रयास बाह्योपचार तक सीमित होकर रह जाते हैं। एक सही मार्ग मिलने की आशा उनमें नये प्राण फूँक देती है। गृहस्थ जीवन- सम्बन्धी प्रस्तुत प्रकरण में इन वृद्धजनों का अपनी भूमिका तलाशना एवं उपेक्षा की स्थिति से निकल कर सम्मानास्पद कार्य कर सकने की सम्भावनाओं के प्रति जिज्ञासा का होना स्वाभाविक ही है।

हृद्गतज्ञः समेषां स महर्षिर्धौम्य उद्गतान् ।
वर्गस्यास्य जनानां तु मनोभावान् समध्यगात् ।। ७।।
निश्चिचाय ततस्तेषां कर्तुं स मार्गदर्शनम् ।
धौम्य उवाच-
गृहस्थे वृद्धव्यक्तीनामपि स्थानं महत्वगम् ।। ८।।
वर्तते सञ्चितैस्तेऽपि स्वीयैरनुभवैरलम् ।
लाभं बहुभ्यो दातुं तु शक्ता अल्प बला अपि ।। ९।।
परिष्कृताऽथ पक्वा च स्थितिस्तेषां तु मानसी ।
अपेक्षया परेषां हि गृहस्थानां नृणामिह ।। १०।।
लाभमस्य कुटुम्बं तत्प्राप्नुयान्नैव केवलम् ।
क्षेत्रं सम्पूर्णमेवाऽपि संसारश्चाप्नुयात्समः ।। ११।।
वाञ्छेयुर्यदि ते तर्हि नवेन विधिना नवम् ।
जीवनं प्राप्तुमर्हन्ति तथा कार्यक्रमं नवम् ।। १२।।
स्वीकृत्यान्न नवेक्षेत्रे प्रवेष्टुं शक्नुवन्त्यपि ।
इत्थं च समयस्तेषां सञ्चितोऽनुभवस्तथा ।। १३।।
यूनामपेक्षया नूनमधिकं सेत्स्यतो ध्रुवम् ।
लोकोपयोगिनौ भद्रा अत्र नास्त्येव संशयः ।। १४।।
आत्मलाभदृष्ट्या च समयोऽयं तु विद्यते ।
भाग्योदयस्य कर्तेव सुयोग्यो योग उच्यताम् ।। १५।।

टीका- सबके मन की बात जानने वाले महर्षि धौम्य ने इस वर्ग के लोगों के मनोभाव जाना और उनका मार्गदर्शन करने का निश्चय किया।

महर्षि धौम्य बोले- गृहस्थ में वयोवृद्धों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वे अपने संचित अनुभवों से बहुतों को लाभ दे सकते हैं। शारीरिक क्षमता घट जाने पर भी, उनकी मानसिक स्थिति अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत-परिपक्व होती है। इसका लाभ उस परिवार को ही नहीं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समस्त क्षेत्र एवं संसार को मिलना चाहिए। वे चाहें, तो नये सिरे से नया जीवन जी सकते हैं, नया कार्यक्रम अपना सकते हैं, नये क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। हे भद्रजनो ! इस प्रकार उनका बचने वाला समय और संचित अनुभव तरुणों की अपेक्षा और भी अधिक लोकोपयोगी सिद्ध हो सकता है। आत्मलाभ की दृष्टि से वह समय उनके लिए भाग्योदय जैसा सुयोग्य है-ऐसा कहा जा सकता है ।। ७-१५ ।।

कथा प्रसंग में उपस्थित वृद्धवर्ग की मन:स्थिति के अनुरूप ही प्रतिपादन आरम्भ करते हुए, महर्षि धौम्य गृहस्थ जीवन में उनकी गरिमा एवं महत्ता को-जन सामान्य को समझाने हेतु आतुर प्रतीत होते हैं। वृद्धावस्था में कृशकाय-असमर्थ होने के कारण परावलम्बी एवं निरुपयोगी होने की, हीन भावना को मन से निकाल बाहर फेंकने एवं क्रियाशील बने रहने-चलते रहते और आत्म-कल्याण की विकास-यात्रा में आगे बढ़ते रहने के लिए ऋषिवर उन्हें प्रोत्साहित करते तथा उनकी प्रसुप्त क्षमताओं का उन्हें बोध कराते हैं। वृद्धावस्था आ घेरने का अर्थ यह नहीं होता कि मनुष्य निरुत्साहित होकर हाथ पर हाथ रखे, मृत्यु का इन्तजार करे। जीवन एक महान यात्रा है, जिसकी सुघड़ता सदैव चलते रहने में हैं। जब तक हम चलते रहते है, तब तक हमारी शक्तियों का उपयोग होता रहता है। जहाँ रुके, वहीं मौत है, वहीं जड़ता है। चलना, उन्नत होना और आगे बढ़ना जीवन्त होने का प्रतीक है। वेद भगवान कहते हैं-

"आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतौऽनम् ।"

अर्थात्--जीवन के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि उसे रुकना नहीं चाहिए। उन्नत होना और आगे बढ़ना जीवन का स्वाभाविक धर्म है।

चलते रहना, क्रियाशील बने रहना, सृष्टि का सनातन नियम है। समस्त प्राणिवर्ग एवं प्रकृति के घटक में यह स्पन्दन मुखरित हो रहा है। नदियाँ अपने अल्प और सीमित स्वरूप से उस अनन्त-विराट् सागर की ओर दौड़ी जा रही हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ अपनी उत्तुंग चोटियों को फैलाये उस सर्वव्यापी सत्ता की ओर देख रहे हैं, मानो उन्हें अपना स्वरूप अल्प-सीमित जान पड़ रहा है। जान पड़ता है वे भी उतने ही विराट् ,अनन्त महान् बनने की चिर प्रतीक्षा में खड़े हैं। बीज अपने क्षुद्र और साधारण स्वरूप से सन्तुष्ट नहीं होता और वह अपने आवरण को तोड़,फूट निकलता है। महत् की ओर। उसकी यात्रा जारी रहती है और वह विशाल वृक्ष बन जाता है। फिर भी उसकी विपुल महत् बनने की साध रुकती नहीं और वह सुन्दर फूलों से खिल उठता है, मधुर फलों में परिणत होता हुआ, अपनी सत्ता को असंख्यों बीजों में परिणत कर देता है। उधर देखिए, उस पक्षी शावक को, उसे नीड़ या संकीर्ण आवरण तुच्छ जान पड़ता है। वह अपने पंखों में फुरफुरी भर रहा है। नीड़ के दरवाजे से अखिल विश्व भुवन की ओर देख रहा है, जिसकी अनन्त गोद में वह किलोल करना चाहता है और देखो, निकल पड़ा, वह सीमित अल्प आवरण को त्यागकर अनन्त महत् की ओर।

अल्प से महत् की ओर अग्रसर होने की यह क्रिया सर्वत्र हो रही है। फिर चेतन और ईश्वर का वरिष्ठ राजकुमार कहलाने वाला मनुष्य ही बार्धक्यता को जीवन यात्रा में बाधक मानकर अपनी प्रगति यात्रा क्यों बन्द कर दे ? नहीं, उसे जीवन को एक संग्राम मानकर मोर्चे पर खड़े एक कर्त्तव्यनिष्ठ और कर्मठ सिपाही की भाँति संघर्ष करना और बढ़ते ही जाना है। इसीलिए ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है-

"नाऽनाश्रान्ताय श्रीरस्ति.....पापो नृषद्वरो
जन इन्द्र इच्चरतः सखा । चरैवेति चरैवेति ।

अर्थात्-जो चलता है उसकी जंघायें पुष्ट बनी रहती हैं। फल प्राप्ति तक उद्योग करने वाला व्यक्ति पुरुषार्थी होता है। प्रयत्नशील पुरुष के पाप-ताप, भव-बन्धन मार्ग में ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

वृद्धावस्था में व्यक्ति के पास जीवन भर के अनुभवों की थाती जो अपने पास होती है। अनेकों प्रसंगों के माध्यम से उन्होंने जीवन रूपी प्रयोगशाला में इतना कुछ सीखा-समझा होता है, कि उस मार्गदर्शन से वे सारे समुदाय को लाभ दे सकते हैं। एक बार सक्रिय उपार्जन प्रधान जीवन समाप्त होने पर आयुष्य के इस मोड़ पर वे अपने जीवन को एक नयी दिशा देकर, लोक सेवी का व्रत अपनाकर सारे परिकर को-समाज को-प्रभावित कर सकने की क्षमता रखते हैं ।

पक्वं फलं सदा शाखां विहायान्यस्य प्राणिनः ।
उपयोगाय संयाति तथैवाऽत्रापि चायुषि ।। १६ ।।
युक्तं परिणते एव वानप्रस्थग्रहो नृणाम् ।
विद्यते शाश्वतीयं च भारतीया परम्परा ।। १७ ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुण्यार्जनस्य कालोऽयं परस्मै जन्मने तथा ।
ऋणं सामाजिकं दातुं गृह्णातुं श्रेय आत्मनः ।।१८।।
लोगमंगलजं नूनं महत्वानुगतो ध्रुवम् ।
धौम्यः सम्बोधयामास नरान् परिणतायुषः ।।१९।।
निष्क्रियत्वात्तथा तान् स सक्रियत्वस्य चाप्तये।
बोधयामास भूयश्च कथयामास यत्समे ।।२०।।
निराशां परिणतां कुर्युरुत्साहे कर्म यत्कृतम्।
नाद्यावधि प्रकुर्वन्तु सोत्साहं विश्वमंगलम् ।।२१।।
आधारेण च तेऽनेन मुक्ता भृत्योर्भयात्समे ।
जीवन्मुक्तं मुदं यान्तु दृष्टिकोणं च दिव्यकम् ।।२२।।

टीका- पका हुआ फल डाली छोड़कर अन्यों के काम आने के लिये चला जाता है। इसी प्रकार ढलती आयु में वानप्रस्थ धर्म अपनाना ही उचित है। यही भारतीय शाश्वत परम्परा भी है। यह समय अगले जन्म के लिये पुण्यफल संचय करने, वर्तमान में समाज का ऋण चुकाने एवं लोकमंगल का श्रेय लेने की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है। महर्षि धौम्य ने आज अधेड़ आयु वालों को विशेष रूप से सम्बोधित किया। उन्हें निरर्थकता में सार्थकता उत्पन्न करने का परामर्श दिया और कहा कि वे निराशा को उमंगों में बदलें और विश्वमंगलमय वह काम करें जो अब तक कर नहीं पाये। इस आधार पर वे मृत्यु भय से छूटेंगे और स्वर्गीय दृष्टिकोण तथा जीवन्मुक्त स्तर का आनन्द हाथों-हाथ उपलब्ध करेंगे।। १६-२२।।

देव संस्कृति की विशेषता है-जीवनावधि का चार आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में विभाजन। इनमें से दो व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिये और दो सामाजिक विकास के लिये निर्धारित हैं। सारी उम्र मनुष्य अपने लिए, परिवार के लिये मरता-खपता है, उपार्जन-उपभोग में ही उसका अधिकांश समय निकल जाता है। समाज के जिन अवयव-घटकों के सहारे उसने यह सुविधा भरा जीवन जिया, उनके लिये भी उसके कुछ कर्तव्य हैं। ढलती आयु में वानप्रस्थ धारण किया जाय और घर परिवार को आवश्यक मार्गदर्शन सहयोग देते हुये अधिकांश समय समाज सेवा में लगाया जाय। यही प्रेरणा सद्गृहस्थों- वृद्धजनो को महर्षि धौम्य देते हैं।

जीवन का आधा भाग-उत्तरार्द्ध विशुद्ध रूप से लोकमंगल में नियोजित रखे जाने की शास्त्रीय मर्यादा है। इस परम्परा के निर्वाह से अनेकों प्रयोजन पूरे होते हैं। मोह-बन्धन का परिवार वाला घेरा टूटता है एवं व्यक्ति विराट् ब्रह्म का एक अंग बनकर लोकोपयोगी कार्यों में स्वयं को नियोजित करता है। इससे शेष बचा जीवन तो धन्य होता ही है, अगले जन्मों के लिये पुण्य की सम्पदा एकत्र हो जाती है। लोक सेवा में लगा व्यक्ति जीते जी मुक्ति का आनन्द इसी जीवन में उठा लेता है। उसके हृदय में विस्तृत विराट् के प्रति प्रेम, वाणी में माधुर्य, व्यवहार में सरलता, नारी मात्र में मातृत्व की भावना, कर्म में कला और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति, सभी के प्रति उदारता और सेवा भावना, गुरु जनों का सम्मान, स्वाध्याय-सत्संग-साधना में रुचि, शुचिता-श्रमशीलता जैसे सद्गुण अभ्यास द्वारा स्वभाव के अंग बन जाते हैं।

प्रौढ़ा अनुभवन्त्वत्र समये चिन्तयन्त्वपि ।
अनुशासनमेतस्या दिव्याया देवसंस्कृतेः ।।२३।।
पालयिष्याम एनं च धर्मं त्वाश्रमजं सदा ।
आयुषोऽप्युत्तरार्धं च निश्चिन्वन्तु परार्थकम् ।।२४।।
सुविभाजनरेखेयमात्मकल्याणतस्तथा ।
विश्वकल्याणतोऽप्यस्ति श्रेयःसम्पादिका ध्रुवम् ।।२५।।
विभाजनेऽस्मिन् स्वार्थस्य परार्थस्यापि विद्यते।
समावेशो हि सम्यक् सिद्ध्यन्त्येतेन पूर्णतः ।।२६।।
प्रयोजनानि संस्कारव्यवहारगतान्यथ ।
परात्मनः प्रसादाय चात्मनः काल आप्यते ।।२७।।
पुरातनस्य कालस्य दिव्या वातावृतिस्तु सा ।
अस्याः परम्परायां हि उपहार इव स्मृतः ।।२८।।
सा च प्रचलिता यावत् तावद् भूमिरियं स्मृता।
जगन्मंगलमूलेव स्वर्गादपि गरीयसी ।।२९।।
निवासिनोऽपि चात्रत्या त्रयस्त्रिंशत्तु कोटिकाः।
अभूवद् परितः देवास्ते हि सम्मानिता अपि ।।३०।।

टीका- प्रौढ़ों में से प्रत्येक को समय रहते यह अनुभव करना है कि वे देवसंस्कृति के अनुशासन को ध्यान में रखेंगे। आश्रम धर्म का पालन करेंगे और आयु का उत्तरार्द्ध परमार्थ प्रयोजन के लिये निर्धारित रखेंगे। यह विभाजन रेखा आत्मकल्याण और विश्वकल्याण दोनों ही दृष्टि से परमश्रेयस्कर है। इस विभाजन में स्वार्थ और परमार्थ का सन्तुलित समावेश है। इससे सांसारिक प्रयोजन भी पूरे होते हैं और आत्मा-परमात्मा को प्रसन्न करने का भी अवसर मिलता है। पुरातनकाल का सतयुगी वातावरण इसी परम्परा की देन था, जब तक वह प्रचलित रही, तब तक जगत् के कल्याण की भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' बनी रही और यहाँ के निवासी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वत्र तैंतीस कोटि देवता माने जाते तथा सम्मानित होते रहे।।२३-३०।।

आयुष्य के आश्रम विभाजन के मूल में गहरा तत्व दर्शन है। व्यक्ति का स्वयं का तो इसमें हित है ही, समष्टिगत कल्याण भी इससे सधता है। व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर निठल्ला नहीं बनता, वरन् और भी बड़े समुदाय के लिये उत्तरदायी हो जाता है। गृहस्थ जीवन का दायित्व पूरा होते ही समाज क्षेत्र में आराधना के निमित्त निकल पड़ना, देव संस्कृति की पुनीत परम्परा रही है। सत्युग में यह प्रथा जीवित थी, अतः कहीं कोई विग्रह नजर नहीं आता था, न लोक सेवियों की कमी ही पड़ती थी । आज भी उसी परम्परा के पुनर्जागरण की आवश्यकता है।

एतदर्थं मतं चैतत्परमावश्यकं नृणाम् ।
शिशवो ह्यल्पसंख्यायामुत्पन्नाः स्युर्गृहे गृहे ।। ३१।।
विवाहस्याल्पकालाच्च पश्चात्प्रजननं स्वतः ।
अवरोधव्यमर्घे तु व्यतीते चायुषो यतः ।। ३२।।
शिशुदायित्वमुक्तिः स्यात् प्रत्येकस्य शिशोर्हृदि।
स्थापनीयमिदं देयं तेनर्णं पैतृकं महत् ।। ३३।।
इदं तैरिह कर्त्तव्यमृणमुक्त्यै निरन्तरम् ।
अनुजानां सुनिर्वाहः शिक्षाऽथ स्वावलम्बनम् ।। ३४ ।।
पितुरुत्तरदायित्वेष्वत्र जेष्ठैः सुतैः सदा ।
सहयोगो विधातव्योऽनृणैर्भाव्यमिहोत्तमैः ।। ३५।।
ऋणं तिष्ठेन्न पित्रोस्तद् वयस्कानां कृते त्विदम्।
शास्त्राणां विद्यते ह्याज्ञा धार्मिकी चपरम्परा।। ३६।।
यथोत्तराधिकारस्तु पितुः पुत्रैरवाप्यते ।
तथैवोत्तरादायित्वं ते वहन्तु च पैतृकम् ।। ३७।।
अनुजानां तथाऽशक्तजनानां पोषणादिकम् ।
तथा कार्यं यथा पित्रा कृतं ज्येष्ठसुतस्य तत् ।।३८।।

टीका- इस तैयारी के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक घर में बच्चे कम संख्या में हों। विवाह के कुछ समय उपरान्त ही प्रजजन बन्द कर दिया जाय, ताकि आधी आयु होने तक बच्चों के उत्तरदायित्व से निपटा जा सके। हर बालक के मन में आरम्भ से ही यह बिठाया जाय कि उन्हें महान् पितृ ऋण चुकाना है। यह ऋण चुकाने का कार्य अपने छोटे भाई-बहिनों के निर्वाह एवं शिक्षा-स्वावलम्बन के रूप में करना होता है। पिता के उत्तरदायित्वों में हाथ बँटाना, बड़े बच्चों का कर्तव्य है। ऋणी किसी का भी नहीं रहना चाहिये। माता-पिता का भी नहीं-यह वयस्क बालकों के लिये शास्त्रों का अभिवचन है। यही धर्म परम्परा भी है। पिता का उत्तराधिकार जहाँ बच्चों को मिलता है, वहाँ उनके शेष उत्तरदायित्वों का भी परिवहन करें। छोटे भाई-बहिनों, घर के वृद्ध या अशक्तजनों का भरण-पोषण उसी प्रकार करना चाहिये, जैसे कि पिता ने ज्येष्ठ पुत्र का किया है।। ३१-३८।।

मानव जीवन किन्हीं उद्देश्य विशेषों के लिये मिला है। पशुओं की तरह स्वच्छंद जीवन बिताकर निरन्तर यौनाचार में निरत रहना मानवी गरिमा के प्रतिकूल है। वानप्रस्थ आश्रम में उपयुक्त समय पर प्रवेश कर स्वयं को लोक सेवा में प्रवृत्त किया जा सके, इसके लिये अनिवार्य है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते ही भावी जीवन की योजना बनाली जाय। यदि प्रजजन जल्दी बन्द कर दिया जाय तो लौकिक जीवन से निवृत्त लेने की अवधि के पूर्व ही उन दायित्वों से मुक्त हुआ जा सकता है, जो सन्तानों से जुड़ी है। मात्र अपनी जिम्मेदारी पूरी करना ही काफी नहीं, बच्चों के मनों में प्रारम्भ से ही संस्कार डाला जाना चाहिये कि आगे चलकर उन्हें पिता के दायित्वों को सँभालना, अपनों से छोटों का भरण-पोषण कर उन्हें स्वावलम्बी बनाना है। इतना किए बिना वे उस ऋण से मुक्त नहीं हो सकते, जो उन पर पिता के उपकारों के कारण चढ़ा रहता है। उत्तराधिकार मात्र धन-सम्पदा का ही नहीं होता उन जिम्मेदारियों का भी होता है, जो कभी पिता ने पूरी की व अब सन्तानों को पूरा करना चाहिये।

ज्येष्ठा तु सन्ततिर्यर्हि गृहकार्यं विभर्त्यलम् ।
व्यतीतार्धायुषा कार्यं पुरुषेण ततः स्वयम् ।। ३९।।
स्वकर्तव्यधिया शेषसदस्यानां सुरक्षया ।
भरणेन सहैवात्र परार्थं कर्म चाधिकम् ।। ४०।।
प्रयोजनेषु देयं च ध्यानमध्यात्मकेष्वपि ।
पत्नी कुर्याच्च कार्याणि गृहस्थस्य समान्यपि।। ४१।।
इच्छुका सा सुयोग्या च यदि तत्साऽपि सादरम्।
प्रयोजनेषु नेयैव परार्थेषु सहैव तु ।। ४२।।
परम्परेयं प्रोक्ता च वानप्रस्थाभिधानतः ।
इमं च निर्वहेद् धर्मं गृहस्थमिव सर्वदा ।। ४३।।

टीका- बड़ी सन्तान जब गृह-कार्य सँभालने लगे, तो अधेड़ का कर्तव्य हो जाता है कि परिवार के शेष सदस्यों की देखभाल करने के साथ-साथ अपने समय का अधिकांश भाग परमार्थ प्रयोजनों के लिये निकालने लगे। अध्यात्म-प्रयोजनों की ओर अधिक ध्यान दे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि वह इच्छुक और सुयोग्य हो, तो उसे भी परमार्थ प्रयोजनों में साथ रखे। इसी का नाम वानप्रस्थ है। इसका निर्वाह गृहस्थ-धर्म के निर्वाह की तरह ही आवश्यक है।। ३९-४३।।

गृहस्थान्निवृत्तेर्वानप्रस्थे प्रवृत्तिकस्य च ।
मध्ये कर्तुं स्वभावे तु परिवर्तनमप्यथ ।। ४४।।
भावि जीवनजं नव्यं स्वरूपं ज्ञातुमुत्तमम् ।
आरण्यके तु कस्मिंश्चित् साधनायां रतैर्नरैः।। ४५।।
भाव्यं कार्यं च पापानां प्रायश्चित्तं तु कर्मणाम्।
साधनां च प्रकुर्वन्ति स्वभावं परिवर्तितुम् ।। ४६।।
प्रयोजनानां योग्यानां लोकमङ्गलकारिणाम् ।
प्रशिक्षणानि सर्वैश्च प्राप्तव्यानि नरैरिह ।। ४७।।
परिवर्तितुमेनं च जीवनस्य क्रमं त्विमम् ।
आवश्यकं मतं वातावृतेश्च परिवर्तनम् ।। ४८।।
आरण्यकाश्रमाणां च वातावरणमुत्तमम् ।
एतदर्थं भवत्येव लोकमंगलयोजितम् ।। ४९।।
आरण्यकानां मध्ये च वानप्रस्थसुसाधनाम् ।
कृत्वैव लोककल्याणपुण्यकार्यं विधीयताम् ।।५०।।
प्रत्येकस्मिन्नवीने च क्षेत्रे प्रविशता सदा ।
प्राप्तव्यमनुकूलं च प्रशिक्षणमिह स्वयम् ।। ५१।।

टीका- गृहस्थ से निवृत्ति और वानप्रस्थ में प्रवृत्ति के मध्यान्तर में स्वभाव परिवर्तन और भावी जीवन का नया स्वरूप समझने के लिये किसी आरण्यक में जाकर साधनारत होना चाहिये। गृहस्थ में बन पड़े पाप कर्मों का प्रायश्चित करें। स्वभाव परिवर्तन के लिये साधना करें। लोकमंगल के विविध प्रयोजनों के उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त करें। जीवन क्रम बदलने के लिये वातावरण बदलना आवश्यक है। इसके लिये आरण्यक-आश्रमों का प्रेरणाप्रद वातावरण उपयुक्त पड़ता है। चूँकि उसका संयोजन ही लोकमंगल की दृष्टि से किया हुआ होता है। आरण्यकों की मध्यान्तर, वानप्रस्थ साधना के उपरान्त लोक-मंगल के पुण्य प्रयोजनों में संलग्न होने की विद्या अपनायें। हर नये क्षेत्र में प्रवेश करने वाले को तदनुरूप प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है।।४४-५१।।

विगत में व्यतीत किया गृहस्थ जीवन अपनी लम्बी अवधि के संस्कार मन-मास्तिष्क पर, स्वभाव-व्यवहार पर छोड़ देता है। अब जब नया जीवनक्रम आरम्भ करना है, तो हर प्रौढ़ को अपने आपको नयी परिस्थिति के अनुरूप ढालने हेतु तपाना, गलाना पड़ता है। जो गलत कार्य बन पड़े, उनका प्रायश्चित किये बिना, क्षतिपूर्ति किये बिना, नये आश्रम में प्रवेश सम्भव नहीं। यदि वानप्रस्थ ले भी लिया, तो लाभ नहीं, क्योंकि मस्तिष्क पर सदैव पुराना चिन्तन हावी होता रहेगा। इसके लिये ऋषिगणों ने आदिकाल से आरण्यक व्यवस्था का प्रावधान किया है। इन आरण्यकों में निवृत्त गृहस्थों के लिये साधना हेतु उपयुक्त वातावरण रहना अनिवार्य है। जब परिमार्जन पूरा हो, तो नये सिरे से प्रशिक्षण द्वारा अपने को लोकसेवी के रूप में विकसित करें। इतनी प्रक्रिया पूरी होने पर ही वानप्रस्थ जीवन की सार्थकता है, तभी तो लोकसेवा में दत्तचित्त होकर लगा जा सकेगा।

प्रवज्यायां हि योग्यत्वं सुविधाऽपि च विद्यते ।
येषां ते तीर्थयात्रार्थं यान्तु धर्मोपदिष्टये ।। ५२।।
प्रत्येकेन जनेनात्र साध्यः सम्पर्क उत्तमः ।
अनुन्नतेषु गन्तव्यं क्षेत्रेष्वेवं क्रमान्नरैः ।। ५३।।
रात्रौ यत्र विरामः स्यात्तत्र कुर्यात्कथामपि ।
कीर्तनं चोपदेशं सत्संग यत्नेन पुण्यदम् ।। ५४।।
तीर्थयात्रा तु सैवास्ति योजनाबद्धरूपतः ।
वातावृतिर्भवेद् यत्र निर्मिता धार्मिकी तथा ।। ५५।।
सदाशयस्य यत्र स्यात्पक्षगं लोकमानसम् ।
पोषणं सत्प्रवृत्तीनां भवेद् यत्र निरन्तरम् ।। ५६।।
तीर्थयात्रा सुरूपे च प्रव्रज्याराता त्वियम् ।
वर्तते वानप्रस्थस्य श्रेयोदा साधना शुभा ।।५७।।

टीका- जिनकी योग्यता एवं सुविधा प्रव्रज्या के उपयुक्त हो, वे धर्म प्रचार की तीर्थयात्रा पर निकलें। जन-जन से सम्पर्क साधें। पिछड़े क्षेत्रों में परिभ्रमण करें। जहाँ रात्रि विराम हो, वहाँ कथा-कीर्तन, प्रवचन-सत्संग का आयोजन करें। धर्म-धारणा का वातावरण उभारते- लोकमानस को सदाशयता का पक्षधर बनाते- सत्प्रवृत्तियों का परिपोषण करते-योजनाबद्ध यात्रा पर निकलने को तीर्थयात्रा कहते हैं। तीर्थयात्रा के रूप में प्रव्रज्यारत रहना वानप्रस्थ की परम श्रेयस्कर साधना है।। ५२-५७।।

गृहस्थ धर्म से निवृत्ति के बाद वातावरण परिवर्तन का माहात्म्य ऋषि ने अभी-अभी समझाया है। अब वे कहते हैं कि वानप्रस्थों को धर्मधारणा का जन-जन तक विस्तार करने के लिये तीर्थयात्रा पर निकलना चाहिये। यह मात्र पर्यटन-कौतुक के लिये न हो, अपितु सोद्देश्य हो। एक बार आरण्यक में शिक्षण प्राप्त कर लेने के बाद व्यावहारिक सेवा धर्म की साधना समाज क्षेत्र में करने हेतु सभी को उद्यत रहना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चाहिये। तीर्थयात्रा क्रमबद्ध हो, पहले से ही उसके गन्तव्यों, कार्यक्रमों एवं उद्देश्यों का योजनाबद्ध निर्धारण कर लिया गया हो। जन-जन में श्रेष्ठता की भावनाएँ भरने के समकक्ष और कोई बड़ी सेवा-साधना नहीं है। एक और बात जो विशेष रूप से यहाँ बताई जा रही है, वह यह कि जहाँ तक सम्भव हो ऐसी सेवा-साधना पिछड़े क्षेत्रों में सम्पन्न की जाय। जहाँ ज्ञान का प्रकाश नहीं पहुँचा, दुष्प्रवृत्तियाँ एवं अभाव ही जहाँ संव्याप्त है, वहाँ अपनी सेवाएँ देना सार्थक है।

देहात अभी भी नवयुग के प्रकाश से वंचित है। वहाँ तक पहुँचने में सेवाभावी वानप्रस्थ तीर्थयात्रियों की धर्म प्रचार टोलियाँ ही समर्थ हो सकती हैं।

कस्मादपि च हेतोस्तु येषां वासोऽधिकं नहि ।
बहिः सम्भव एतेऽपि निवासं स्वं तु सद्मनि।।५८।।
स्वीकुर्वन्तु कुटुम्बस्य सामान्यं हि निरीक्षणम्।
दायित्वस्य धिया चात्र परिवारव्यवस्थितिम्।।५९।।
कार्यं स्वं प्रमुखं ते च लोकमंगलमेव तु ।
मन्यन्तां तेषु कार्येषु रुचिं गृह्णन्तु चाऽधिकाम्।।६०।।
अधिकं समयं तत्र समीपतरवर्तिषु ।
क्षेत्रेषु वाहयन्त्येवं सदैवैभिर्निमित्तकैः ।।६१।।
कार्यक्रमेषु तत्रैवं विधेष्वेव तथाऽऽयुषः ।
उत्तरार्धं जीवनस्य व्ययी कर्त्तव्यमुत्तमैः ।।६२।।

टीका- जिनका कारणवश बाहर रह सकना सम्भव न हो, वे निवास तो घर पर ही रखें, पर उत्तरदायित्व, परिवार की देखभाल और व्यवस्था भर को सँभालें। अपना प्रमुख कार्य तो लोकमंगल को समझें। इन कार्यों में विशेष रुचि लें और समय का बड़ा अंश इस निमित्त समीपवर्ती क्षेत्रों में ही लगाते रहें। ऐसे ही कार्यक्रमों में संलग्न रहकर उत्तम पुरुषों को अपने जीवन का उत्तरार्द्ध बिताना चाहिये।। ५८-६२।।

अपनी जिम्मेदारियों के पूरा होने के बाद अनिवार्य नहीं कि सभी घर छोड़कर चल दें एवं तीर्थाटन कर जन-जन तक विचारधारा का प्रसार करें। जिनसे यह सम्भव हो, अवश्य करें। पर जन-कल्याण के कार्य घर रहकर भी सम्भव हैं। सारा जीवन उपार्जन में बिता दिया। अब शेष बचे समय को नष्ट होने से बचाना चाहिये एवं जहाँ तक सम्भव हो, स्वयं को उस पुण्य-परमार्थ में नियोजित कर देना चाहिये, जिससे अपने आस-पास का परिकर ही लाभान्वित होता रहे।

विगतार्धायुषा पुसां वर्गेणैवं न वंशजाः ।
कुटुम्बत्वेन विज्ञेयाः केवलं परमत्र तैः ।।६३।।
आत्मीयताऽपि वृद्धिः सा कर्तव्या क्रमशश्च ते।
प्रतिवेशिन एवं च सर्वान् परिचिताँस्तथा ।।६४।।
अज्ञातानपि मन्येरन् परिवारगतानिव ।
अल्पेभ्यो वंशजेभ्यो न जीवनं यापयन्तु ते।।६५।।
समयस्य बृहद्भागं जनान् सर्वान् कुटुम्बिनः।
विशालक्षेत्रगान् मत्वा तेषां तत्र समाहितौ ।।६६।।
समस्यानां तथा तेषामभ्युत्थानविधावपि ।
व्ययं कुर्युर्निषिद्धात्र पश्चिमायुषि सन्ततिः।।६७।।
विचारपरिवारे तु वंशवृद्धिः सुसम्भवा ।
मता वसन् कुटुम्बे च तत्र संरक्षको भवेत् ।।६८।।
आधिपत्यं स्थापयेन्न सन्मार्गं शिक्षयेदपि ।
खिन्नतां न व्रजेत्तत्रोपेक्षिते शासने निजे ।।६९।।
यथाऽन्येषु जनेष्वत्र मन्यतेऽप्यनुशासनम् ।
बहवो नाऽपि चाऽन्ये तु तत्र नो खेदसंस्थितिः।।७०।।
जायते तद्वदेवात्र मान्यता हि कुटुम्बजे ।
सम्बन्धे पुरुषैः सर्वैर्ज्ञातव्या सुखदायिनी ।।७१।।

टीका- अधेड़ व्यक्ति मात्र अपने वंशधरों को ही कुटुम्बी न समझें, वरन् आत्मीयता के क्षेत्र का विस्तार करें। पड़ोसी, सम्बन्धी एवं परिचितों-अपरिचितों को भी कुटुम्बवत् मानें। थोड़े से कुटुम्बियों के लिये ही न मरते-खपते रहें। समय का एक बड़ा भाग विशाल क्षेत्र में फैले हुये जन-समुदाय को अपना कुटुम्ब मानते हुये, उनके समाधान एवं अभ्युत्थान के लिये लगाते रहें। जीवन के उत्तरार्द्ध में सन्तानोत्पादन वर्जित है। विचार परिवार के रूप में वंशवृद्धि करते रहने की छूट है। परिवार में रहते हुये भी अपनी स्थिति उस परिकर के संरक्षक जैसी रखें। आधिपत्य न जमायें। सन्मार्ग की शिक्षा तो देते रहें, पर न मानने पर मन को खिन्न न करें। जिस प्रकार अन्य लोगों में बहुत से परामर्श को मानते हैं, बहुत से नहीं मानते, तो भी खेद नहीं होता। यही सुखदायी मान्यता घर-परिवार के सम्बन्ध में भी रखें।। ६३-७१।।

मात्र अपने परिवार के, जाति-वंश के व्यक्तियों को अपना समीपवर्ती मानना, इन्हीं के प्रति अपनी निष्ठा सद्भावना होना, व्यक्ति का सीमित परिधि में समाया हुआ, मोहभाव भर है। वस्तुतः हम निखिल विश्व के, विराट् परिवार के एक अंग हैं। हम सभी के उत्थान आत्मिक प्रगति के लिये उत्तरदायी हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" की शास्त्र उक्ति पर चलते हुये, हमें अपने विचार परिकर का निरन्तर विस्तार करते रहना चाहिये। जैसे-जैसे हृदय में उदार आत्मीयता का विस्तार होगा, आयु के ढलते जाने पर भी, अपने परिवार के सदस्यों के अपने-अपने दायित्वों के कारण सुदूर स्थानों पर होते रहने पर भी परिवार छोटा नहीं लगेगा। स्वार्थ-परमार्थ में परिणत होगा एवं सारा विश्व, सारा समुदाय अपना परिवार एवं कार्य क्षेत्र प्रतीत होने लगेगा।

एक बात वृद्धजनों के लिये और भी ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि स्वयं को परिवार के ट्रस्टी के रूप में एक संरक्षक, उत्तरदायी सदस्य मानना, न कि उसका मालिक स्वयं को समझ बैठना। सत्परामर्श देते रहना उनका पुनीत कर्तव्य है, किन्तु कोई उस पर न चले, तो इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह मान्यता विकसित होने पर ही एक लोकसेवी के रूप में विकास-अभ्युदय सम्भव है।

वंशजा अर्थदृष्ट्या चेत् स्वावलम्बं गतास्तदा।
सद्मः प्रयोजनेभ्यस्तु सम्पदा दीयतां स्वयम्।।७२।।
अर्जितं यत्समं तच्च प्राप्नुवन्तु कुटुम्बगाः ।
आवश्यकं न चैतत्तु परं ये स्वाश्रिता नहि ।।७३।।
अधिकारिण एते हि स्वाभिभावकसम्पदः ।
विराड्ब्रह्मस्वरूपाय समाजाय यथा नृणाम्।।७४।।
कृतं जीवनदानं तत् कालदानं भवेदिह ।
तथा कुटुम्बदायित्वाऽवशिष्टं लोकभूतये ।।७५।।
परम्परेयमेवास्ति धार्मिकानां विवेकिनाम् ।
पुण्यदा येन भूरेषा देवभूमिर्निगद्यते ।।७६।।

टीका- वंशजीवी यदि आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो गये हैं, तो अपनी सम्पदा सत्प्रयोजनों में लगा दें। जो कमाया जाय, वह सब घर वालों को ही मिले, आवश्यक नहीं। जो स्वावलम्बी नहीं; मात्र वेही अभिभावकों के उपार्जन को उपलब्ध करने के अधिकारी हो सकते हैं। जिस प्रकार विराट् ब्रह्म जन-समाज को-समय-दान, जीवन-दान दिया गया है, वैसेही पारिवारिक उत्तरदायित्व निर्वाह के उपरान्त बचा हुआ धन भी लोक मंगल के लिये समर्पित होना चाहिये। यही विचारशील धर्म परायणों की पुण्य परम्परा है, जिससे यह भूमि सदा देवभूमि कही गयी है। ।। ७२-७६ ।।

घर वालों तक ही अपने कुटुम्ब की सीमा मानने वाले अपना स्नेह-दुलार ही नहीं, धन-सम्पदा का अधिकार भी उन्हीं तक सीमित मानते हैं। अपनी सन्तानों को स्वावलम्बन का शिक्षण दिया जाय, वे उत्तराधिकार में मिलने वाली पूँजी पर निर्भर न रहें। उन्हें यह संस्कार दिये जायें कि जो धन समाज के एक-एक घटक के सहयोग से जुटाया गया है, उसका सुनियोजन यथा सम्भव समाज सेवा में ही हो। विवेक यही कहता है कि जो भी कुछ धन ढलती आयु वाले पुरुषों-स्त्रियों के पास शेष बचे, उसे वे अपने विराट् परिवार विश्ववसुधा को ऊँचा उठाने में लगा दें।

परिवर्तनशीलास्तु रीतयः सर्वदैव ताः ।
नवे युगे नवेनैव विधिना निर्वहेज्जनः ।।७७।।
जीवनं स्वं समैरत्र देया स्वीकृतिरञ्जसा ।
अनीतिगानां कार्याणां विरोधः कार्य एव च ।।७८।।
बाह्यानि तानि कार्याणि गृहस्थान्यपि वा पुनः।
प्रेम्णैव व्यवहर्तव्यं सेव्याः सर्वे यथोचितम्।।७९।।
मोहोऽनावश्यकः कार्यः परेषु स्वेषु वाऽपि न ।
आहारस्य चमात्रां तां वार्द्धक्येऽल्पां समाश्रयेत्।।८०।।
सुपाच्यानि च वस्तूनि सात्विकानि सदैव हि ।
ग्राह्याणि हृदयं नित्यं प्रसन्नं तुलितं भवेत् ।।८१।।
क्षोभं नैव व्रजेत्तत्र येषु केषु विधिष्वपि ।
न्यूनत्वमधिकारे तु कर्तव्ये विस्तरो भवेत् ।।८२।।
सन्मार्गे गन्तुमेवात्र प्रेरणां सन्ततं शुभाम् ।
सर्वेभ्यस्तु जनेभ्योऽत्र निर्विशेषं प्रदीयताम् ।।८३।।
भेदं स्वस्य परस्यात्र न कुर्युः स्युश्च साधना ।
स्वाध्यायः संयमः सेवा वानप्रस्थेऽच्छमद्भुतम् ।।८४।।

टीका- प्रथाएँ परिवर्तनशील हैं। नई पीढ़ी को अपने ढंग से गुजर करने की छूट देनी चाहिये। असहयोग और विरोध, अनैतिक कार्यों का करना ही चाहिये, भले ही कोई बाहर का हो या घर का। प्रेम सबसे करें। सेवा यथोचित रीति से सभी की करें, पर अनावश्यक मोह अपने-पराये किसी के प्रति भी नहीं होना चाहिये। वृद्धावस्था में आहार की मात्रा घटा दें। सुपाच्य सात्विक वस्तुएँ ही ग्रहण करें। मन को प्रसन्न एवं सन्तुलित रखें। जिस-तिस बात पर खीजें नहीं। कर्तव्य क्षेत्र का विस्तार करें और अधिकार को समेटें। सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा सभी को समान रूप से देते रहें। इसमें अपने-पराये का अन्तर न करें। साधना, स्वाध्याय संयम, और सेवा का कार्य वानप्रस्थ मनःस्थिति में ही भली प्रकार बन पड़ते हैं।। ७७-८४ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्धों को पुरानी लीक से नहीं बँधें रहना चाहिये। समय के साथ चलना सीखना चाहिये। दो पीढ़ियों में जो आयु का अन्तर है, वह विचारों-मान्यताओं का अन्तर न बन जाय, इसका सदा ध्यान रहे। यदि युवक अपनी राह चलना चाहते हैं, तो उन्हें सही दिशा-तो देनी चाहिये, किन्तु उनके मार्ग में अपनी दुराग्रही मान्यताओं के रोड़े नहीं अटकाने चाहिये। उनकी भावनाओं का सम्मान हो। घर वालों के प्रति स्नेह स्वाभाविक है, पर यह एक सीमा तक ही उचित है। अतिशय मोह तो पुत्रेषणा-वित्तेषणा का रूप लेकर नारकीय गर्त्त में ले जाता है। सभी अपने हैं, यह मानकर सबको सत्परामर्श दें। मन सदैव शान्त हो। किसी के कहे पर अनावश्यक मन मुटाव बढ़ाना ठीक नहीं। गरिमा इसी में है कि अपना बड़प्पन बनाये रखा जाय। श्रेष्ठ कार्य करने को तो सारा जीवन है। किन्तु वानप्रस्थाश्रम हर दृष्टि से साधना के लिये उचित समय है।

आत्मानं चाऽधिकं सेवाभाविनं संयमान्वितम्।
उपकाररतं चैवमुदारं कुर्वतो भवेत् ।।८५।।
परलोकोऽपि शान्तः स सुखयुक्तश्च सर्वदा ।
हितं स्वस्य जनानां च स्वानामपि भवेद्ध्रुवम् ।।८६।।
व्यतीतार्धवयोभिस्तु वृद्धैरपि जनैरिह ।
अनुभूतमिवाद्याशु प्रकाशो नव्य उत्तमः ।।८७।।
यौवनं नवमेवैतद् भविष्यन्नवमेव च ।
नवः कार्यक्रमश्चैव यथा तैराप्यतेऽद्य तु ।।८८।।
वार्ता प्रचलनाऽभावे नैवाप्ता या स्वयं तु तैः।
हितैरपि न कैश्चित्तु बोधिताऽधिगता तु सा ।।८९।।
अन्वभूवन समे पर्वस्नानस्यात्र तथैव च ।
फलं तीर्थस्य यात्रायाश्चाऽपि प्रत्यक्षमुत्तमम् ।।९०।।
परामर्शमिमं सर्वे कर्तुं कार्यान्वितं च ते ।
निश्चयं चक्रुरत्रैके बहवो गन्तुमुत्सुकाः ।।९१।।
वानप्रस्थे व्रतं दिव्यं कर्तुं संस्कारकालजम् ।
पुण्यस्थाने मुहूर्ते च चेच्छां व्यक्तां व्यधुर्नराः ।।९२।।
तेषां कृते द्वितीयेऽह्नि प्रातः संस्कारकं विधिम्।
वानप्रस्थस्य कर्तुं सा व्यवस्था सूचिताऽपि च ।।९३।।

टीका- अपने को अधिकाधिक संयमी, सेवाभावी और उदार-परोपकारी बनाते चलने से पर लोक सुख-शान्तिमय बनता है। अपना तथा सम्बन्धियों का भी हित होता है। अधेड़ों और वयोवृद्धों ने आज के प्रवचन में ऐसा अनुभव किया, मानों उन्हें नया प्रकाश-नया यौवन-नया भविष्य और नया कार्यक्रम मिला हो। प्रचलन के अभाव में जो बात उन्हें अपने आप नहीं सूझी, किसी हितैषी ने भी नहीं सुझाई, वह इन्हें आज के प्रवचन द्वारा उपलब्ध हुई। उनने अनुभव किया कि पर्व स्नान का-तीर्थ-यात्रा का-पुण्य फल उन्हें प्रत्यक्ष मिल गया। उनने इस परामर्श को तत्काल कार्यान्वित करने का निश्चय किया। कितने ही वानप्रस्थ में प्रवेश करने का व्रतसंस्कार करने के लिये, इस पुण्यस्थान में-इसी मुहूर्त में करने की इच्छा प्रकट करने लगे। उनके लिये दूसरे दिन प्रातः काल वानप्रस्थसंस्कार विधिवत् कराने की व्यवस्था सुना दी गई।। ८५-९३।।

आत्म संयम की साधना जब लोक सेवा के साथ-साथ चलती है, तो अपना हित साधन तो होता ही है, यह जीवन भी श्लाघ्य बन जाता है, आगे वाले जन्मों के लिये संस्कारों की निधि एकत्र कर ली जाती है। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। जो लोग यह सोचते हैं कि परमार्थ से मात्र दूसरों का ही कल्याण होता है, स्वयं को मरना-खपना अलग पड़ता है, उनके लिए

यहाँ एक क्रान्तिकारी विचार देते हुये ऋषि कहते हैं कि परमार्थ में ही स्वार्थ निहित है। निश्चित ही सुग्राह्य प्रतिपादनों के साथ प्रस्तुत इस मान्यता ने वृद्धों के चिन्तन को गहराई से प्रभावित किया।

उपदेशेन चाऽनेन जनैर्जीवनसाधने ।
नवः प्रकाश आप्तोऽतो जीवनं तरुणायितम् ।।९४।।
युवानश्चाऽपि तत्रत्या उत्तरार्धस्य शोचितुम्।
विषये सज्जिता जाता वर्तमानविनिर्मितेः ।।९५।।
शुभमुत्तरमायाति तेषां बुद्धिरभूत्तदा ।
आनन्दस्यातिरेकेण ह्योता प्रोता इवात्र ते ।।९६।।
श्रोतारः सर्व एवैते सत्रे यातेऽवसानताम् ।
विसर्जिता ययुर्वासान् गताः संयमिनामिव ।
ऋषीणां तुल्यतां सर्वं ऋषिरक्तधरायतः।।९७।।

टीका- प्रवचन से सभी ने जीवन-साधना के सन्दर्भ में नया प्रकाश प्राप्त किया, जिससे उन्हें जीवन में तारुण्य का सा अनुभव हुआ। तरुण भी उत्तरार्ध की तैयारी की बात सोचने लगे। वर्तमान के निर्माण में-संयम में-सुखद उभरेगा, यह उन्होंने भली-भाँति विचार लिया। आनन्द से ओत-प्रोत मनःस्थिति में सभी श्रोतागण सत्र समाप्त होने पर विसर्जित हो गये। आज वह संयमी ऋषियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुल्य प्रतीत हो रहे थे. ऐसा क्यों न होता, जब उनकी धमनियों में ऋषियों का ही रक्त प्रवाहमान था।।९४-९७।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः,
श्री धौम्य ऋषि प्रतिपादिते "वृद्धजन माहात्म्य" इति प्रकरणो नाम
।। पञ्चमोऽध्यायः।।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

सुसंस्कारिता-संवर्धन प्रकरण

भावनानां विचाराणामाकांक्षाणामथाऽपि च ।
गतिविधेरपिचौत्कृष्ट्यान्मानवोऽभ्येतिप्रोन्नतिम्।।१।।
अग्रेचरित्रदृष्टया च वर्द्धते सोऽन्यथा त्विह ।
पूर्वजन्मकुसंस्कारा जीवने प्रभवन्त्यलम् ।।२।।
उदरपूर्तितया वंशवृद्धिहेतोश्च केवलम् ।
पशुचेष्टाभिलग्नत्वाद् व्यर्थतामेति जीवनम्।।३।।
हेतुनाऽनेन सर्वेषां वर्तमानमथाऽपि च ।
भविष्यज्जायते नूनमन्धकारमयं नृणाम् ।।४।।
ऋषेर्धौम्यस्य बुद्धौ च प्रसंगोऽद्यायमुत्थितः ।
चिन्तयामास सोऽजस्रं निवृता ये कुटुम्बतः।।५।।
तेभ्यो विचारा देयास्तु लग्नैर्भाव्यं कथं च तैः ।
चतुर्षु पुरुषार्थेषु सेवासत्संगयोरथ ।।६।।
स्वाध्याये साधनायां च धौम्यस्यैतत्तु चिन्तनम्।
गतिशीलमभूद् द्वारं प्रगतेरवि सुन्दरम् ।।७।।

टीका- भावना, विचारणा, आकांक्षा और गतिविधियों की उत्कृष्टता का समावेश करके ही मनुष्य ऊँचा उठता है और आगे बढ़ता है, अन्यथा विगत योनियों के कुसंस्कार ही मनुष्य जीवन पर छाये रहते हैं। पेट-प्रजनन की पशु-प्रवृत्तियों में संलग्न रह कर मनुष्य जीवन निरर्थक जाता है। इस कारण वर्तमान और भविष्य भी अन्धकारमय बनता है। धौम्य ऋषि के मस्तिष्क में आज यही प्रसंग छाया हुआ था। वे सोचते रहे कि परिवार से निवृत्त हुए अथवा परिवार की जिम्मेदारी से युक्त जनों को साधना, स्वाध्याय, सत्संग और सेवा के चार महापुरुषार्थों में किस प्रकार संलग्न होना चाहिए, इसका परामर्श दिया जाय। महर्षि का चिन्तन गतिशील था, वह प्रगति के भव्य द्वार की तरह प्रतीत होता था।। १-७।।

आत्मिक्याः प्रगतेर्हेतोर्नितान्तं सम्मतानि तु ।
प्रयोजनानि चत्वारि गदितुं तु समागतान् ।।८।।
महर्षिर्निश्चिचायाथ प्रतिपाद्यमिदं जगौ ।
सम्बोध्य जनतां धौम्य आह चैवं सपूर्ववत्।।९।।

टीका- आत्मिक प्रगति के लिये नितान्त आवश्यक इन चार प्रयोजनों को उपस्थित लोगों के गले उतारने का महर्षि ने निश्चय किया। यही आज के प्रवचन का विषय भी बनाया। जन समुदाय को सम्बोधित करते हुये, उन्होंने अपना वक्तव्य जारी रखा।। ८-९।।

जीवन की भावी दिशाधारा क्या हो, कैसे गृहस्थ जीवन में रहते हुए अथवा निवृत्ति के उपरान्त स्वयं को आत्मिक प्रगति की दिशा में प्रवृत्त किया जा सके ? यह ऊहापोह जनसाधारण के मन में होना स्वाभाविक है। आध्यात्मिक सिद्धान्तों को सुग्राह्य बनाने एवं जीवन में उतारने की सही दिशा देने हेतु ही विद्वज्जन कथा-सत्संग का आश्रय लेते हैं। महर्षि धौम्य सुसंस्कारिता के जीवन में समावेश हेतु अनिवार्य चतुर्विध सोपानों- जीवन साधना, स्वाध्याय-परायणता, सत्संग एवं सेवा-आराधना की व्याख्या प्रस्तुत प्रसंग में कर रहे हैं।

असंस्कृता नराश्चात्र समाजे बहवः सदा ।
भवन्त्येव सुयोग्यानां दृश्यते न्यूनता तथा ।।१०।।
कर्तृणानि तु सर्वत्र प्राय एवोद्भवन्त्यलम् ।
दुर्लभौषधयो गुण्याः क्वचनैव शुभे स्थले ।।११।।
भृशमन्वेषणादेव लभ्यन्ते कुत्रचिज्जनैः ।
बहुसंख्यकवर्गेण सह सम्पर्ककारणात् ।।१२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अविकासं गतास्वासु व्यक्तिषु प्रतिकूलगः ।
प्रभावोऽवाञ्छनीयोऽयं पतत्येव निरन्तरम् ।। १३ ।।
प्रवाहे वहनं नृणां सरलं भवतीत्यतः ।
कुटुम्बगेषु मर्त्येषु समीपतरवर्तिनः ।। १४ ।।
वातावरणकस्यै वा वाञ्छितः प्रपतत्यलम् ।
प्रभावोऽस्मात्सुरक्ष्यं च संकटाद्धि कुटुम्बकम् ।। १५ ।।
अन्यथा तु विजादर्शप्रयासेषूत्तमेष्वपि ।
व्याप्ता वातावृतिः स्वेषु गृहेषु प्रभविष्यति ।। १६ ।।
तत्रत्यांश्च सदस्यान् सा पतनस्य तथैव च ।
पराभूतेर्महागर्ते नेष्येतेव न संशयः ।। १७ ।।

टीका- समाज में अनगढ़ लोग बहुत रहते हैं। सुयोग्यों की कमी पायी जाती है। घास-पात सर्वत्र उगते हैं, किन्तु गुणकारी दुर्लभ ओषधियाँ कहीं-कहीं ही उगती हैं और बहुत ढूँढने पर कठिनाई से ही कहीं मिलती हैं। इस बहुमत के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रहने से अविकसित व्यक्तियों पर प्रतिकूल अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। प्रवाह में बहना सरल पड़ता है। इसलिए परिवार के लोगों में समीपवर्ती वातावरण की अवांछनीयतायें घुस पड़ती हैं और बुरा प्रभाव डालती हैं। इस संकट से बचना आवश्यक है, अन्यथा निजी आदर्श और प्रयास उत्तम होने पर भी संव्याप्त वातावरण अपने घर को भी प्रभावित करेगा और उन्हें पतन के गर्त में घसीट लेगा, इसमें संदेह नहीं।। १०-१७ ।।

जन-समुदाय श्रेष्ठ, निकृष्ट सभी स्तर के व्यक्तियों का समुच्चय है। यहाँ बाहुल्य सामान्यतया ऐसे ही व्यक्तियों का है, जो शिश्नोदर परायण होते हैं। जिनकी चिन्तन-परिधि सीमित होती है। इसके अतिरिक्त कमजोर मनःस्थिति वालों पर उनके अधोगामी चिन्तन का प्रभाव भी सतत् पड़ता रहता है। प्रचलन में सामान्यतया निकृष्टता संव्याप्त है। पतन का मार्ग आकर्षक होने के कारण सबको सरल दिखाई भी पड़ता है। स्वयं के विवेक का प्रयोग न कर पाने की स्थिति में प्रवाह में बहने लगना स्वाभाविक है। परिवार संस्था पर यह तथ्य विशेष रूप से लागू होता है। दुष्प्रवृत्तियों के प्रभाव से परिवार के सदस्य अपने सुसंस्कारों को भुलाकर गलत दिशा में न चल पड़ें, इसके लिये अनिवार्य है कि परिवार के प्रमुख एवं अन्य सभी वरिष्ठजन उत्कृष्टता का वातावरण बनाये रखने का प्रयास करते हैं। इस ओर उपेक्षा बरतने से स्वयं के सही होने पर भी परिवार के अन्य सदस्यों को अप्रभावित नहीं रहने दिया जा सकता। अतः स्वयं को सुधारने, ऊँचा उठाने के साथ-साथ ऐसा वातावरण बनाया जाना भी जरूरी है, जहाँ सत्प्रवृत्तियाँ स्वयं पनपें, जिनके कारण अधोगामी प्रवृत्तियाँ अपना असर किसी की मनःस्थिति पर डाल न पायें। परिवार में धार्मिकता-आस्तिकता का वह वातावरण बनाया जाना चाहिये जिसमें परिवार के सदस्यों को सुसंस्कारिता का पोषण मिल सके। इसके लिये परिवार में कुछ सत्प्रवृत्तियों को विकसित और प्रचलित करने के लिये प्रयास किया जाना चाहिये। इस तरह की सत्प्रवृत्तियों में पाँच प्रमुख हैं, जिन्हें पंचशील कहा गया है।

वातावृतिस्तथाऽऽस्तिक्यभावनाया भवेदपि ।
परिवारेषु सर्वेषु तथैवाऽऽराधना प्रभोः ।। १८ ।।
उपासना च संयुक्ता भवेच्च नित्यकर्मणि ।
निश्चेतव्योऽपि कालश्च कथाकीर्तनयोः कृते ।। १९ ।।
बाधा वक्तुंनिजाः सर्वा अन्येषां च परिस्थितीः ।
ज्ञातुं च समयः सर्वैः लभ्येतेति विचिन्त्यताम् ।। २० ।।
आदानं च प्रदानं च विचाराणां हि दैनिकम् ।
यत्र स्यान्न भवेत्तत्र मनोमालिन्यमण्वपि ।। २१ ।।
प्रायस्ते कलहा भ्रान्तेः कारणादुद्भवन्त्यतः ।
अनिष्टमेतदुत्पन्नमात्रं सर्वैर्निवार्यताम् ।। २२ ।।
न वर्द्धन्ते ततस्ते च गोष्ठ्यस्तस्मान्नरैः समैः ।
प्रतिसप्ताहमेवात्र कर्त्तव्या हितकारिणी ।। २३ ।।
स्वाध्यायार्थं गृहस्यैव पुस्तकालय एव तु ।
भवेद् येन सुसाहित्यं जीवनस्योपयोगि तत् ।। २४ ।।
प्रत्येकेन सदस्येन लब्धुं शक्येत वाऽञ्जसा ।
उपासना गृहास्तत्र पुस्तकालय एव च ।। २५ ।।
प्रत्येकस्य गृहस्थस्य कृते त्वावश्यकं मतम् ।
गृहेषु येषु नैतानि दुर्भाग्येन युतास्तु ते ।। २६ ।।

टीका- हर परिवार में आस्तिकता का वातावरण रहे। उपासना-आराधना को नित्यकर्म में सम्मिलित रखा जाय। कथा-कीर्तन, पारिवारिक-गोष्ठियों के लिये कोई नियत समय रहे। सभी को अपनी अड़चनें कहने और दूसरों की परिस्थितियों को समझने का अवसर मिले। जहाँ विचार-विनिमय चलता रहता है, वहाँ मनोमालिन्य नहीं पनपता। भ्रान्तियों के कारण ही अधिकांश कलह-विग्रह खड़े होते हैं। ऐसी अवांछनीयताओं को पनपते ही रोका-टोका जाय, तो वे बढ़ने नहीं पातीं। इस प्रयोजन के लिये सप्ताह में एक बार विचार गोष्ठियों का क्रम चलता रहे। स्वाध्याय के लिये घरेलू पुस्तकालय रहें,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिससे जीवनोपयोगी साहित्य हर सदस्य को पढ़ने या सुनने के लिये उपलब्ध हो सके। उपासना गृह और पुस्तक मन्दिर प्रत्येक सद्गृहस्थ की महती आवश्यकताएँ हैं। जिस घर में ये न हों, उसे दुर्भाग्यग्रस्त ही कहा जायेगा।। १८-२६ ।।

सत्प्रवृत्तियों को स्थान मिले, इसके लिये अनिवार्य है कि ऐसा वातावरण पारिवारिक परिसर में बनाया जाय कि अधोगामी प्रवृत्तियाँ अपने पैर ही न जमा सकें। देव संस्कृति की कुछ अभूतपूर्व देन अपने देश भारत वर्ष को मिली है, जिन्हें अमूल्य थाती समझा जा सकता है। कथा-सत्संग, उपासना एवं जीवन साधना, स्वाध्याय शीलता एवं पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा अपनी गुत्थियों एवं भ्रान्तियों का निवारण-ये कुछ ऐसे अवलम्बन हैं, जिनकी आवश्यकता किसी न किसी रूप में हर परिवार को, परिवार के हर सदस्य को है। सुसंस्कारिता उपार्जन हेतु इन्हें वरीयता दी जानी चाहिये। आज के आधुनिकता प्रधान युग में तो इनकी महत्ता और भी अधिक बढ़ गई है।

परिवार संस्था में विभिन्न आयु एवं चिन्तन के सदस्य होते हैं। उनके सोचने की शैली अलग-अलग हो सकती है, किन्तु इससे अनावश्यक वाद-विवाद अथवा विग्रह न खड़ा हो, इसके लिये पारिवारिक गोष्ठियों का, सप्ताह में किसी दिन, किसी समय, सुविधानुसार आयोजन होता रहे; ताकि सबको खुलकर कहने का अवसर मिल सके। इससे एक-दूसरे के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना को विकसित होने जैसे विषवृक्ष पनपने नहीं पाएगा।

स्वाध्याय में प्रमाद न बरता जाय, यह शास्त्र वचन है। नित्य प्रति के कुसंस्कार, जो प्रभाव हमारे चिन्तन पर डालते हैं उन्हें श्रेष्ठ पुस्तकों, विचारों के साहचर्य से मिटाकर सोचने की शैली परिमार्जित की जा सकती है। साथ ही इसमें ज्ञानवृद्धि का सुयोग तो है ही। कषाय-कल्मषों के परिशोधन हेतु ऐसी ही उपयोगिता उपासना गृह की भी है। चाहे व्यक्ति किसी भी धर्म-सम्प्रदाय का हो, साकार अथवा निराकार उपासना को मानने वाला हो, वह पारिवारिक जनों में आस्तिकता के बीजांकुर रोपने हेतु उपासना स्थलों की सहायता लेता रह सकता है।

यथा शरीरवस्त्रोपकरणानामथाऽपि च ।
पात्राणां भवनादेश्च स्वच्छता दैनिकी मता ।। २७ ।।
सदस्यानां कुटुम्बस्य हृदयेषु चराण्यपि ।
मालिन्यादीनि नित्यं हि विनाश्यानि शुभेक्षणे ।। २८ ।।
तेषां स्थाने सुसंस्कारान् स्थापयेदीदृशांस्तु ये ।
व्यवहारेषु प्रत्यक्षं दृश्यन्ते क्वचिदेव तु ।। २९ ।।
कर्हिचित्तु परं पृष्ठेष्वितिहासस्य वा पुनः ।
पुराणस्य च विद्यन्ते गाथाः स्वर्णाक्षरांकिताः ।। ३० ।।

टीका- जिस प्रकार शरीर, वस्त्र, बर्तन, उपकरण, मकान, फर्श आदि की नित्य सफाई की जाती है, उसी प्रकार परिवार के सदस्यों के मनों पर जमने वाले नित्य के छाये गुबार की दैनिक सफाई ठीक समय पर होनी चाहिये। उसके स्थान पर ऐसे सुसंस्कार बोये जाने चाहिये, जो प्रचलन में प्रत्यक्ष तो कभी-कभी कहीं-कहीं ही दीखते हैं, किन्तु इतिहास-पुराणों के पृष्ठ उनकी कथा-गाथाओं के स्वर्णाक्षरों से भरे पड़े हैं।। २७-३० ।।

अंतःकरण की निर्मलता ही व्यक्ति को ऊँचा उठाती है। बाहर से कोई कैसा भी दीखे इससे क्या, मन साफ होना चाहिये। वातावरण के प्रभाव से कुसंस्कार अपनी प्रतिक्रिया निश्चित ही दिखाते हैं। इनकी नित्य प्रतिदिन सफाई होनी चाहिये एवं पवित्र-श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण हो, इसके लिये परोक्ष रूप से प्रेरणाप्रद उदाहरणों को सामने रख उनसे शिक्षा ली जानी चाहिये। इसके लिये स्वयं को *परिष्कृत* करना पड़ता है। गलने के लिये सतत् तत्पर रहना होता है।

आदर्शानां प्रतिष्ठा तु गृहेष्वावश्यकी मता ।
उपायः सरलश्चात्रादर्शवादि नृणां समे ।। ३१ ।।
श्रावयन्तु जनान् स्वांस्तु चरितानि महान्ति हि ।
यान्नराननुकर्तुं च नीतिरस्माभिरिष्यते ।। ३२ ।।
एतदर्थं च सर्वेषु पूजास्थाने गृहेषु तु ।
भवेदेवाप्यलंकारमञ्जुषेव गृहस्य सः ।। ३३ ।।
पुस्तकालय एकस्तु यमाश्रित्य च शिक्षिताः ।
आप्तवाक्यानि जानन्तु श्रावयन्त्वप्यशिक्षितान् ।। ३४ ।।
वस्त्राणां खाद्यवस्तूनां दैनिकी साऽनिवार्यता ।
भवत्यपेक्षितैवं हि ज्ञानस्याऽस्मिन् हि मन्दिरे ।। ३५ ।।
नित्यं सम्मिलितं तत्स्यात् साहित्यमुत्तमं मता ।
जीवनस्य विकासाय स्वाध्यायस्यानिवार्यता ।। ३६ ।।
अस्याः पूर्त्यै स्थापना स्याद् गृहेष्वत्र समेष्वपि ।
ज्ञानमन्दिरसंज्ञानां पुस्तकालयरूपिणाम् ।। ३७ ।।

टीका- घर में आदर्शों की प्रतिष्ठापना आवश्यक समझी जानी चाहिए और इसके लिए सरल उपाय यही है कि उन आदर्शवादी महामानवों की चरित्र-गाथाएँ परिजनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के सामने प्रस्तुत की जा सकें, जिनके अनुकरण करने की बात सोची और रीति-नीति अपनायी जा सके। इस हेतु हर घर में पूजा-स्थान, आभूषण रखने की पिटारी की भाँति ही एक घरेलू पुस्तकालय होना चाहिए, जिसके सहारे घर के शिक्षितों को, आप्तजनों के परामर्श से पढ़ने तथा अशिक्षितों को सुनाने के लिए मिलते रहें। जिस प्रकार वस्त्रों की, खाद्य-पदार्थों की आवश्यकता आये दिन पड़ती है, इसी प्रकार के ज्ञान-मन्दिर कक्ष में भी नित्य सत्साहित्य सम्मिलित किया जाना चाहिए। स्वाध्याय जीवन विकास की महती आवश्यकता है। इसकी पूर्ति में घरेलू ज्ञान-मन्दिरों की स्थापना होनी चाहिए ।। ३१-३७ ।।

यहाँ पुरुषों की जीवन गाथाएँ आदर्शों के व्यावहारिक शिक्षण के लिए सर्वोत्तम हैं। उन्होंने जीवन में किस तरह कठिनाइयों के बीच से निकलते हुए विभिन्न परिस्थितियों का साहस से मुकाबला किया, किस तरह से प्रखरता अर्जित करते हुए वे वर्तमान स्थिति तक पहुँच पाए, इतिहास में यश-कीर्ति पा सके ? यह घटनाओं के माध्यम से भली-भाँति हृदयंगम किया जा सकता है। हमारे दैनन्दिन जीवन में जिस तरह शरीर को जीवित बनाए रखने के लिये खाद्य की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार मानसिक आहार के रूप में सत्साहित्य की व्यवस्था यदि होती चले, तो समग्र विकास सम्भव है। श्रेष्ठ विचारों की आवश्यकता को आत्मिक प्रगति के लिए भली-भाँति समझते हुए हर घर-परिवार में ऐसे शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है, हर परिजन में सत्साहित्य के प्रति रुचि जगाई जा सकती है।

कौटुम्बिकाय नित्यं च सत्संगाय भवेदपि ।
शुभः कथा प्रसंगस्तु शुभसंस्कारदायकः ।। ३८ ।।
कथा श्रोतुं समाना वै रुचिः पुसां भवत्यलम् ।
बालानामथवृद्धानां नारीणामथवा नृणाम् ।। ३९ ।।
व्यवस्थायाञ्च जातायामस्यामत्र भवत्यलम् ।
मनोरञ्जनमस्त्येव कुटुम्बस्य प्रशिक्षणम् ।। ४० ।।
दुश्चिन्तन परित्यागसद्विचारग्रहस्य च ।
शिक्षा प्रत्यक्षतो नैव लोके रुचिकरा नृणाम् ।। ४१ ।।
अत्र तेऽनुभवन्त्येव स्वापमानमिवाथ च ।
अहंत्वात्सत्परामर्शं श्रोतुंस्वस्मिंश्चतुच्छताम् ।। ४२ ।।
अनुभवन्ति न सज्जन्ते तच्छ्रोतुं बोद्धुमेव वा ।
लाभदाऽतः परोक्षेण शिक्षा साऽऽदर्शवादिनी ।। ४३ ।।

***टीका-** पारिवारिक सत्संग के लिए घर में नित्य का शुभ संस्कारदायी कथा-प्रसंग चलना चाहिए। कथा-कहने-सुनने में बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी को समान रूप से अभिरुचि होती है। इसकी व्यवस्था चल पड़ने पर उपयोगी मनोरंजन भी होता है और प्रशिक्षण का सुयोग भी बनता है। दुश्चिन्ता न छोड़ने और सद्विचार अपनाने की प्रत्यक्ष शिक्षा लोगों को सामान्यतया रुचती नहीं। इसमें वे अपना अपमान अनुभव करते हैं। अहंकारवश वे सत्परामर्श सुनने में अपनी हेठी मानते हैं, उन्हें सुनने-समझने तक को तैयार नहीं होते। इसलिए आदर्शवादी शिक्षा को कथा-प्रसंगों के माध्यम से परोक्ष रूप से देने में ही लाभ है ।।३८-४३ ।।*

सत्संग-ज्ञान गोष्ठी का सबसे अच्छा स्वरूप है-कथानकों-दृष्टान्तों के माध्यम से सुसंस्कारों का शिक्षण। इसके दो लाभ हैं। सुरुचिपूर्ण एवं सुग्राह्य होने के कारण वे नीरसता न पैदाकर स्वस्थ मनोरंजन भी करते हैं, साथ ही परोक्ष रूप से शुभ प्रेरणाएँ भी देते हैं। किसी को सुधारने के लिए सीधे कोई नैतिक शिक्षा न देकर, उसके अहं को चोट पहुँचाये बिना, उसी बात को कथा-प्रसंगों के माध्यम से कह दिया जाय। यह शैली शिष्टाचार की दृष्टि से भी उचित है एवं देव संस्कृति की परम्परा का एक अंग होने के कारण सबको अनुकूल पड़ती है। सत्संग भी महापुरुषों का ही होना चाहिए अथवा उसकी पूर्ति सत्साहित्य के माध्यम से की जानी चाहिए, अन्यथा तथाकथित नाम वेशधारी बाबाओं, कुचालियों और वाक्-जंजाल में उलझाने वाले व्यक्तियों का सत्संग तो उलझन और भ्रम ही पैदा करते हैं। ज्ञानार्जन के लिए-सत्प्रवृत्ति संवर्धन के लिए-कथा-प्रसंगों का स्वाध्याय, श्रवण-मनन सबके लिए सर्वसुलभ पड़ता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए वर्ग एवं आयु का कोई निर्धारण नहीं, वह सबके लिए समान है।

गोलिकाऽप्यञ्जसा कट्वी निगीर्या शर्करावृता ।
भवत्येव कथास्वत्र मनोरञ्जनमप्यलम् ।। ४४ ।।
प्रशिक्षणं परोक्षेण भवत्यपि सुयोजितम् ।
अनुभवाच्छिक्षितंलौकेर्व्यक्तित्वोत्कृष्टताविधेः ।। ४५ ।।
कृते नैवास्ति कोऽप्यत्र सरलो विधिरुत्तमः ।
प्रभावयुक्तो वा नूनमृते योग्य कथाविधिम् ।। ४६ ।।
कारणं चेदमेवास्ति सूत-शौनकयोर्मुखात् ।
अष्टादशपुराणानि ख्यातान्युपपुराणकैः ।। ४७ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यथा ताश्च भवन्त्येवं जनास्ता: प्रभवन्त्यपि।
अज्ञातायां दिशायां न वहन्त्यत्र बलादिव ।। ४८।।

टीका- कड़ुवी गोली को चीनी में लपेट कर देने से, उसे आसानी से गले उतार लिया जाता है। कथाओं में रोचक मनोरंजन भी होता है और परोक्ष प्रशिक्षण भी। इसलिए अनुभव ने यह सिखाया है कि व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का समावेश करने के लिए उपयुक्त कथा-प्रसंगों से बढ़कर और कोई सरल एवं प्रभावी तरीका नहीं है। यही कारण है कि सूत-शौनक के मुख से अठारह पुराण और अठारह उपपुराण कहलाये गये। वे कथायें जैसी भी भली-बुरी होती हैं, दर्शकों पर वैसा प्रभाव भी निश्चित रूप से डालती हैं और व्यक्ति अज्ञात दिशा की ओर अनचाहे भी जबरदस्ती बहने लगता है ।। ४४-४८।।

सुसंस्कारों का उर्पाजन, अभिवर्धन एक समय-साध्य कष्टकर प्रक्रिया है । ढर्रे को तोड़कर सत्प्रवृत्तियाँ अपनाना कोई सरल काम नहीं। इसी कारण आर्ष साहित्य के माध्यम से ऋषिगणों ने कथा-प्रसंगों पर अत्यधिक जोर दिया। इससे जटिल आध्यात्मिक प्रतिपादन भी जनसाधारण के गले उतरते चले गए। १८ पुराण, १८ उपपुराण, पंचतंत्र की कथायें, ईसप की कथायें इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। पुरातन काल में ज्ञान संगम के रूप में विचार गोष्ठियाँ कथानकों के माध्यम से ही चलती थीं। इनका प्रभाव परोक्ष रूप से सुनने अथवा पढ़ने वालों पर अवश्य पड़ता है, इसलिए विचार परिवर्तन हेतु कथानकों का आश्रय लिया ही जाना चाहिये।

प्रज्ञापुराणमस्माच्च कथाग्रन्थानुरूपग: ।
कालिकीनां स्थितीनां हि मार्गदर्शक उत्तम: ।। ४९।।
अस्य चाख्यायिकास्तस्मादैतिह्यादिकमप्यलम् ।
गृहेषु वक्तुं युज्यन्ते यथा मातमही कथा: ।। ५०।।
वयोवृद्धास्तु शृण्वन्ति श्रीमद्भागवतं तथा ।
रामायणादिकं यच्च युवभ्योऽपि हि रोचते ।। ५१ ।।
व्यस्ता अपि च तच्छ्रोतुं पठितुं चोत्सुकाश्च ते ।
परिवारस्तरं कर्तुमुच्चगं तस्य तेषु च ।। ५२।।
सदस्येषु विधातुं च शालीन्योदयमुत्तमम् ।
क्रम: कथाप्रसंगानामत्र स नियमोभवेत् ।। ५३।।
प्रभवेद्दैनिकोऽभ्यासो जीवनं कर्तुमुन्नतम् ।
दैनिकक्रममस्माच्च न कदाचित्परित्यजेत् ।। ५४।।

टीका- प्रज्ञापुराण सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप मार्ग दर्शन करने के हेतु अत्यन्त उपयोगी कथाग्रन्थ है। इसकी कहानियाँ, इसमें दिया गया इतिहास आदि घरों में उसी प्रकार कहा जाना चाहिए, जैसा कि छोटे बच्चों को नानी की कहानियाँ सुनायी जाती हैं। वयोवृद्ध रामायण, भागवत आदि की पुराणकथा पढ़ते-सुनते रहते हैं । युवा वर्ग को भी वे कम पसन्द हों-ऐसी बात नहीं, व्यस्त रहते हुए भी वे उन्हें पढ़ने-सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। परिवार का स्तर ऊँचा उठाने के लिए, उसके सदस्यों में अधिक शालीनता का समावेश करने के लिए नियमित कथा-प्रसंगों का प्रवचन होना चाहिए। दैनिक अभ्यास ही जीवन को उन्नत बना सकता है, इसीलिए दैनिक कार्यक्रमों को कभी छोड़ना नहीं चाहिए ।। ४९-५४।।

परिवार संस्था में अच्छे संस्कारों का समावेश हो, नैतिक स्तर बने, इसके लिए अनिवार्य है कि कथा प्रसंगों को, जिनमें सामान्यतया सभी रुचि लेते हैं, नियमित रूप से परिवार में कहा जाता रहे। इससे बहिरंग जीवन की समस्याओं के हल निकालने एवं मन: स्थिति के परिमार्जन करने का पथ सतत् प्रशस्त होता चलेगा ।

बालकेभ्योऽभिरोचन्ते पशुपक्षिकथास्तथा ।
परलोकाप्सरश्चर्चा उत्सुकास्ते कुतूहलम् ।। ५५।।
श्रोतुं मनोविकासाय युवभ्य: प्राय एव च ।
ससाहसा: समाधात्र्य: कथारोचन्त उन्नता: ।। ५६।।
वृद्धेभ्य ऋषि सम्बद्धा देवताचरितानुगा: ।
धर्मप्रयोजना नूनं रोचन्ते च प्रसंगका: ।। ५७।।
कथाश्चेमा परोक्षेण रोचन्ते त्रिभ्य एव च ।
श्रवणेऽस्मिंश्च पुण्यं तन्मनोरञ्जनमप्यलम् ।। ५८।।
चिन्तनस्य चरित्रस्य व्यवहारस्याऽपि तत् ।
प्रशिक्षणं परिष्कारकारकं यदवाप्यते ।। ५९।।
अस्मिन्ननुभवेन्नैव कोऽपि स्वस्मिन् कदाचन ।
कटाक्षादिकमेतस्या बाधा नास्त्यपमानजा ।। ६०।।
बोधोऽप्ययं भवत्येव परिस्थितिषु च कासु च।
किं कार्यं पुरुषैश्च विपद्भ्यो रक्षितुं स्वयम् ।। ६१।।
कथं भाव्यं सतर्कैश्चाऽवाञ्छितेभ्य: कथं तथा।
दूरैर्भाव्यं तथात्मा च रक्षणीय: सदा नरै: ।। ६२।।

टीका- बच्चों को पशु-पक्षियों की-परीलोक की-कथाएँ अधिक रुचिकर होती हैं। उनका मानसिक विकास कौतूहल सुनने के लिए उत्सुक रहता है। युवकों और प्रौढ़ों को अनुभव-साहस प्रदान करने वाली, समस्याएँ सुलझाने और ऊँचा उठाने वाली कथाएँ अधिक सुहाती हैं। वृद्धों को ऋषियों, देवताओं, धर्मप्रयोजनों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्धित प्रसंग रुचते हैं। ये कथा-प्रसंग परोक्ष रूप से उपरोक्त तीनों ही वर्गों को सुहाते हैं। इस श्रवण में पुण्य भी माना जाता है, मनोरंजन भी होता है और सबसे बड़ा लाभ परोक्ष रूप से चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को परिष्कृत करने वाला प्रशिक्षण मिलते रहने के रूप में हस्तगत होता रहता है। इसमें किसी को अपने ऊपर कटाक्ष-व्यंग्य होने तथा अपमान होने जैसी अड़चन भी नहीं पड़ती और यह भी बोध होता रहता है कि किन परिस्थितियों में क्या करना चाहिए, विपत्तियों से बचने के लिए किस प्रकार सतर्क रहना चाहिए, किन अवांछनीयताओं से किस प्रकार दूर रहना और कैसे पीछा छुड़ाना चाहिए ? ।। ५५-६२।।

कथा साहित्य किस वय के लिये कैसा हो, यह बहुत कुछ मानवी मनोविज्ञान पर निर्भर है। लक्ष्य सभी वर्गों की दृष्टि से एक ही रहता है, अप्रत्यक्ष रूप से उनके गुण,कर्म,स्वभाव को बदलने योग्य मन: स्थिति बनाना। व्यक्ति के अचेतन को स्पर्श कर, वे उसे उद्वेलित कर हर परिस्थिति के लिए समाधान निकालने की समझ विकसित करते हैं। यह संसार विभिन्न प्रकार के प्रपञ्चों-प्रतिकूलताओं से भरा है । जीवन जीने की सही दिशा मिल सके,कथानकों में यही मूल उद्देश्य सन्निहित होता है। बालकों को उनकी जिज्ञासा का समाधान करने वाली-अन्तर्बुद्धि को विकसित करने वाली, मध्य वर्ग की वय वालों को जोश दिलाने वाली-सत्साहस की प्रेरणा देने वाली, व्यावहारिक जीवन की दैनन्दिन समस्याओं का समाधान बताने वाली तथा ढलती आयु वाले वृद्धजनों को धर्म-दर्शन,जीवनके मूल उद्देश्य, समाज, आराधना जैसे विषयों पर प्रकाश डालने वाली कथाएँ सुनाई जानी चाहिए। यह चयन न केवल आयु विभाजन की दृष्टि से, अपितु उनके मानसिक विकास एवं अभिरुचि को देखते हुए उपयुक्त है।

बच्चों के लिए वे ही कथानक चुने जाँय, जो उनका मनोरंजन तो करें ही, उन्हें सद्गुण अपनाने हेतु प्रेरणा भी दें। यह घटनाक्रमों के माध्यम से भी समझाया जा सकता है एवं जीव-जन्तुओं, प्रकृति के अन्यान्य घटकों को माध्यम बनाकर भी ।

कथानकेषु चैतेषु नरोन्नतिकराणि च ।
श्रेष्ठानामिह नृणां च तान्युदाहरणानि तु ।। ६३।।
इत्थं बुद्धौ तु चेष्टन्ते प्रत्यक्षं सम्मुखे समे ।
तिष्ठन्त इव कृत्यं स्वमुपदेशं दिशन्ति न: ।। ६४।।
परिवाराय चाऽस्माभिर्यथा स क्रियते व्यय: ।
दीयते समयोऽथापि क्रियते स्म उत्तम: ।। ६५।।
तथैवेयं व्यवस्थाऽपि भवेदेव मिलेदबम् ।
सत्संगावसरो नूनं परिजनस्य कृते सदा ।। ६६।।
ज्ञानमन्दिररूपाच्च स्वाध्याय: पुस्तकालयात् ।
कथाप्रसंगात्सत्संगो लाभरूपेण सम्मतौ ।। ६७।।
याववाप्य कुटुम्बस्य स्तर उन्नतिमाव्रजेत् ।
आशास्यते समैर्योग्यकर्मैतत्कार्यमेव तु ।। ६८।।

टीका- इन कथानकों में ऊँचा उठने वाले, आगे बढ़ने वाले श्रेष्ठ व्यक्तियों के उदाहरण इस प्रकार मस्तिष्क में घूमने लगते हैं, मानो वे सामने ही बैठे और अपना क्रिया-कृत्य अनुभव एवं उपदेश हमें प्रस्तुत कर रहे हों। परिवार के लिए जिस प्रकार बहुत खर्च किया जाता है, समय दिया और श्रम किया जाता है; उसी प्रकार यह व्यवस्था भी होनी चाहिए कि परिजनों को स्वाध्याय एवं सत्संग का अवसर मिलता रहे। ज्ञान-मन्दिर पुस्तकालय से स्वाध्याय का और कथा-प्रसंग से सत्संग का लाभ मिलते रहने पर परिवार का स्तर हर दृष्टि से समुन्नत होने की आशा बँधती है। इसलिए यह कदम उठाये ही जाने योग्य हैं ।। ६३-६८।।

कथानकों का, जीवन चरित्र प्रसंगों का, सबसे बड़ा लाभ यह है कि जिन महापुरुषों के हमें अब दर्शन नहीं हो सकते, जिनके सत्संग का लाभ हम नहीं उठा सकते, उनसे स्वाध्याय के माध्यम से प्रत्यक्ष भेंट का प्रयोजन सध जाता है। यह एक प्रकार से परोक्ष सत्संग है। उनके विचार सत्साहित्य के पढ़ने-सुनने से ही हमें मिलते हैं, जो प्रगति की दिशा में बढ़ने की दिशा-धारा देते हैं। परिवार के सदस्यों का जीवन स्तर ऊँचा उठाने प्रगति-पथ पर द्रुतगति से आगे बढ़ाने के लिए महापुरुषों का प्रत्यक्ष या परोक्ष मार्गदर्शन आवश्यक है। परोक्ष मार्गदर्शन घरेलू ज्ञान-मन्दिर पुस्तकालय से सहज सुलभ हो सकता है। इसके लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को स्वाध्याय के प्रति रुचि जाग्रत करनी चाहिए।

सत्साहित्य का स्वाध्याय मात्र बौद्धिक विकास के लिए ही नहीं, आत्मिक विकास के लिए भी आवश्यक है। योग साधना में भी स्वाध्याय साधना को एक अभिन्न अंग माना गया है। वह शौच, सन्तोष, तप एवं ईश्वराधना इन चार के समान महत्वपूर्ण पाँचवाँ नियम है। आस्थाओं के अभिवर्धन एवं दृढ़ीकरण तथा चरित्र निर्माण के लिए स्वाध्याय अनिवार्य है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धौम्य उवाच-

सुसंस्कृतं कुटुम्बं यद् भवितुं वाञ्छति स्वयम् ।
स्वाध्यायस्य प्रकर्तव्या सत्संगस्य व्यवस्थितिः ।। ६९ ।।
तेन तस्मिन् कुटुम्बे च भोजनस्येव सम्मतम् ।
नित्यकर्मैव चेदं तु नृणामावश्यकं परम् ।। ७० ।।
अस्मान्न्यूने कुसंस्कारनिवृत्तिर्नैव सम्भवा ।
साधनाऽऽत्मन आहारस्तं बिना महता नहि ।। ७१ ।।

टीका- धौम्य पुनःबोले-सुसंस्कृत बनने के इच्छुक प्रत्येक परिवार में स्वाध्याय और सत्संग की नियमित व्यवस्था होनी चाहिए। उन्हें भोजन-शयन की तरह आवश्यक नित्यकर्म माना जाना चाहिए। इससे कम में कुसंस्कारों से निवृत्ति किसी को भी नहीं मिल सकती। साधना आत्मा का आहार है। उसके बिना क्षुद्र को महान् के साथ जुड़ने का सुयोग ही नहीं बनता।। ६९-७१।।

महर्षि धौम्य यहाँ सुसंस्कारिता उपार्जन का महत्व समझाते हुए, पुनः ज्ञानार्जन को-सत्साहित्य के पठन-मनन एवं सत्पुरुषों-श्रेष्ठ वातावरण के सत्संग पर जोर देते हैं। ये दोनों ही ऐसे नहीं हैं कि इन्हें ऐच्छिक मानकर जीवन में जब अवकाश मिले, तब के लिए छोड़ दिया जाय। यह तो नित्य-प्रति के जीवन में समावेश की जाने वाली गुण-सम्पदायें हैं, जो व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती, पारस के स्पर्श से लोहे को स्वर्ण बनाने के समान उसे श्रेष्ठता की पराकाष्ठा पर ले जाती हैं। वास्तविक ज्ञान पाकर ही अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, अशान्ति से शान्ति की ओर और स्वार्थ से परमार्थ की ओर उन्मुख होता है।

इसी प्रकार अज्ञान के निवारण-आत्म-सत्ता को समष्टि में संव्याप्त परमात्मसत्ता से एकाकार करने हेतु साधना को भी जीवन में अति महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। अनगढ़ को सुगढ़ बनाने हेतु साधना का अवलम्बन अत्यन्त अनिवार्य है। वह अज्ञान मिटाये बिना सम्भव नहीं। स्वाध्याय,सत्संग एवं चिन्तन-मनन की त्रिपदा साधना ही उस ज्ञान की सिद्धि का सहज उपाय है।

साधनाभिः कुटुम्बे च भवेद् वातावृतिः शुभा ।
आस्तिक्यभावसम्पन्ना धर्मश्रद्धास्थितेः समा ।। ७२ ।।
भावना मान्यता नृणामाकांक्षा गतयश्च ताः ।
अधोगा नैव जायन्ते तस्मादत्र गृहे गृहे ।। ७३ ।।
युगशक्तेराद्यशक्ते प्रतिमा स्थापिता भवेत् ।
महाप्रज्ञाभिधायास्तु गायत्र्याश्छविरेव वा ।। ७४ ।।
भोजनात्पूर्वमेवात्र सदस्याश्च समेऽपि चेत् ।
नमनं वन्दनं कुर्युर्जपं ध्यानमथाऽपि च ।। ७५ ।।
स्वल्पेऽपि समये सा वै साधनाऽप्यल्परूपिणी।
भावनात्मकशुद्धयर्थं सिद्धत्येव सहायिका ।। ७६ ।।

टीका- साधना द्वारा परिवार में आस्तिकता का वातावरण बनना चाहिए। धर्म श्रद्धा बनी रहने से व्यक्ति की भावनाएँ, मान्यतायें, आकांक्षाएँ एवं गतिविधियां अधोगामी नहीं बनने पातीं। इस हेतु हर घर में आद्यशक्ति, युगशक्ति, महाप्रज्ञा गायत्री की प्रतिमा अथवा छवि की स्थापना रहनी चाहिए। भोजन से पूर्व सभी उसका नमन-वन्दन तथा जप-ध्यान थोड़े समय भी कर लिया करें, तो वह स्वल्प साधना भी भावनात्मक पवित्रता बनाये रहने में बहुत सहायक सिद्ध होती है ।।७२-७६ ।।

संस्कारयुक्त वातावरण हर परिवार में बना रहे, इसके लिए उनकी आस्तिकता को जीवन्त बनाये रखने के लिए उपयुक्त पोषण और मार्गदर्शन मिलता रहना चाहिए।

आस्तिकता-ईश्वर विश्वास मनुष्य पर एक ऐसा अंकुश है, जिसमें उसे दुष्कर्मों का प्रतिफल देर-सबेर से मिलने का भय बना रहता है। साथ ही यह भी निश्चय रहता है कि नियामक सत्ता आज नहीं तो कल-परसों सत्कर्मों का परिणाम प्रदान करेगी । भले-बुरे कर्मों का तत्काल फल न मिलते देखकर लोगों का मन कर्मफल के बारे में अनिश्चित हो जाता है, फलतः न तो दुष्कर्मों से डरते हैं और न सत्कर्मों के सम्बन्ध में उत्साहित होते हैं। ईश्वर के अस्तित्व और उसके कर्मफल विधान की निश्चितता पर विश्वास दिलाना आस्तिकता का प्रथम उद्देश्य है। सच्चे आस्तिक की चरित्रनिष्ठा डगमँगाने नहीं पाती ।

उपासना का लक्ष्य है-ईश्वर की महानता के समीप पहुँचना, घनिष्ठ बनना। अर्थात् अपने चिन्तन और चरित्र में ईश्वरीय विशेषताओं को भरते-बढ़ाते चले जाना। ईश्वर विराट् है। उसकी उपस्थिति प्राणिमात्र में, कण-कण में अनुभव करते हुए चेतना के प्रति सद्भाव रखना, सद्व्यवहार करना साथ ही पदार्थ सम्पदा को ईश्वर की अमानत मानकर उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करना-यही हैं वे प्रतिक्रियाएँ, जो उपासक के अन्तःक्षेत्र में स्वाभाविक रूप से उभरनी चाहिए। आस्तिकता के दो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रतिफल हैं, चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा। सच्चे ईश्वरविश्वासी को उदात्त और सदय बनना ही चाहिए। आत्मा के स्तर को परमात्मा जैसा ऊँचा उठा, क्षुद्रता को महानता में परिवर्तित करना, उपासना की भाव-भरी प्रेरणा है। जिसे यह लाभ मिलेगा, वह पुरुष से पुरुषोत्तम बनकर रहेगा। सच्ची आस्तिकता के अभाव में लोग पूजा के फलस्वरूप मनोकामना पूरी कराने की आस लगाये रहते हैं और छुटपुट क्रियाकृत्यों के बदले पाप दण्ड से बच निकलने एवं सस्ते मोल में ईश्वर की अनुकम्पा के चमत्कारी लाभ पाने की कल्पना करते रहते हैं ।

भावनात्मक पवित्रता बनाये रहने के लिए आत्मोत्कर्ष की दिशा में अग्रसर होने के लिए, उपासना का क्रियाकृत्य करने के लिए परिवार के हर सदस्य को प्रेरित किया जाना चाहिए। भले ही वह न्यूनतम ही क्यों न हो ? इस सन्दर्भ में 'नमन-वन्दन' सबसे छोटा और सरल कार्यक्रम है। गायत्री युग शक्ति है, उसी का प्रज्ञावतरण सामयिक समस्याओं का समाधान और उज्ज्वल भविष्य का सूत्र-संचालन करेगा। गायत्री की ऋतम्भरा प्रज्ञा सार्वभौम और सार्वजनीन है। सद्विचारणा और सद्भावना की अधिष्ठात्री गायत्री माता की अभ्यर्थना ही युग साधना है। इसके लिए समस्त परिवारों को अपने घर के सभी परिजनों को अभ्यस्त करना चाहिए। जो अधिक समय गायत्री उपासना कर सकें वे वैसा करें, अन्यथा इतना तो किया ही जाना चाहिए कि नित्यकर्म के उपरान्त घर का हर सदस्य प्रतिष्ठापित गायत्री माता के चित्र के सम्मुख हाथ जोड़कर आँख बन्द करके मानसिक जप और आत्म संस्थान में प्रकाश के अवतरण का ध्यान करे। इसके बाद ही भोजन एवं अन्य कर्म किये जायें ।

प्रतिमा स्थापित की जाय, पर उससे व्यर्थ की अपेक्षा न की जाय। नहीं तो वह एक अन्धविश्वास बन जाता है, जो व्यक्ति को श्रम से विमुख कर भाग्यवादी बना देता है ।

परिवर्तनवेलायां युगस्यात्र नवाय च ।
सृजनाय गृहस्थस्य योगदानं समस्य तु ।। ७७ ।।
अंशदानमपीहस्यान्नियमितं सुनियोजितम् ।
नरैर्ज्ञानघटः स्थाप्यः स्त्रीभिर्धर्मघटः पृथक् ।। ७८ ।।
सत्प्रयोजनहेतोश्च कर्तव्यस्य धिया तु यत् ।
नित्यं नियमरूपेण विहितं महदेव तु ।। ७९ ।।
अल्पमप्युच्यते पुण्यदायकं महदेव तु ।
सुखशान्तिप्रदा चास्य परिणतिः सोभयत्र तु ।। ८० ।।

टीका- युगपरिवर्तन की इस पुनीत वेला में नव सृजन के लिए हर सद्गृहस्थ का योगदान, अंशदान नियमित रूप से नियोजित होते रहना चाहिए। इसके लिए पुरुष ज्ञान घट की और नारियाँ धर्मघट की स्थापना करें। कर्त्तव्य भाव से सत्प्रयोजन के लिए नित्य-नियमपूर्वक दिया गया थोड़ा सा अनुदान भी महान् पुण्यफलदायक होता और उसके परिणाम इस लोक और परलोक में सुख-शान्ति प्रदान करने वाले होते हैं ।। ७७-८० ।।

साधना, स्वाध्याय और सत्संग हेतु प्रेरणा उभारने के बाद महर्षि हर सद्गृहस्थ को निर्देश देते हैं कि उन्हें अपनी उदार परमार्थ-परायणता को विकसित कर योगदान-श्रम, समय, प्रभाव, ज्ञान एवं उपार्जन का एक अंश समाज के उत्थान के लिए सेवा रूप में नियोजित करना चाहिए, क्योंकि समाज के अनुदानों से ही मनुष्य आगे बढ़ पाता है-सुख-सुविधायें पाता है। यदि लोग समाज के कोष से लेते ही रहें-कुछ दें नहीं-ऋण चुकायें नहीं तो भण्डार खाली हो जायगा। सभ्य-सुसंस्कृत लोग पिछड़ों को सुशिक्षित करने-सभ्य बनाने -ऊँचा उठाने-आगे बढ़ाने का प्रयत्न न करें, तो वह परिवार-समाज और राष्ट्र रसातल की ओर खिसकने लगेगा। अतः आत्मकल्याण एवं लोकमंगल के लिए सेवा साधना का क्रम अपनाना नितान्त आवश्यक है।

पुण्य-परमार्थ, लोक-मंगल, जन-कल्याण, समाजहित आदि सेवा-साधना के ही पर्यायवाची नाम हैं और इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता है। जिन व्यक्तियों ने भी इस पद्धति से-जीवन सार्थकता की साधना की, मनुष्य और समाज का स्तर ऊँचा उठाने के लिए योगदान दिया, सामाजिक सुख-शान्ति में बाधक तत्वों का उन्मूलन करने के लिए प्रयत्न किये, समाज ने उन्हें सर-आँखों पर उठा लिया। महापुरुषों के रूप में आज हम उन्हीं नर-रत्नों का स्मरण और वन्दन करते हैं।

महर्षि व्यास ने महाभारत में कहा है- **"जीवनः सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा"** अर्थात्-उसी का जीवन सफल है, जो सेवा में-परोपकार में-सदैव प्रवृत रहता है। **"परोपकारः पुण्याय"**-परोपकार ही पुण्य का जनक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना ही नहीं गोस्वामी तुलसी दास जी ने तो यहाँ तक कह दिया है-

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई ।"
परहित बस जिनके मन माँहीं ।
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।

सेवा के अनेकों मार्ग हैं। इनमें श्रमदान, अंशदान, समयदान और ज्ञानदान प्रमुख हैं। श्रेष्ठ सत्कर्मों के लिए सामान्यजनों का श्रमदान, नवनिर्माण के प्रयोजनों-पीड़ा निवारण के सत्प्रयोजनों के लिए वरिष्ठों और समर्थों का अंशदान-साधनदान और समयदान तथा मनुष्यों की पतनोन्मुखी-अधोगामी प्रवृत्तियों को परिष्कृत करके उन्हें उत्कृष्टवादी बनाने के लिए विभूतिवानों-प्रतिभावानों का ज्ञानदान-जिसके पास जो विभूति हो, वह उसे ही उसके लिए नियोजित करते रहने का नियमित क्रम बना लें-भले ही वह न्यूनतम एवं आंशिक ही क्यों न हो, तो इतना बड़ा कार्य हो सकता है कि इतिहास में उसे स्वर्णाक्षरों से लिखा जा सके ।

उपदेशं तु धौम्यस्य श्रुत्वाऽद्यतनमद्भुतम् ।
अन्वभूवन् समे तत्र महत्तां पुरुषाः स्वयम् ।। ८१।।
क्रीणन्तीह श्रमेणाऽथ लग्नभावतयाऽपि च ।
निर्मूल्यं नैव चायाति सोपहार इव स्वयम् ।। ८२।।
सुसंस्कृतं विधातुं च कुटुम्बं क्रियते यदि ।
धनांशकालयोर्दानं मनोयोगस्य संस्थितिः ।। ८३।।
पण्यता हानिदानेयं चिन्त्यमेतन्मुहुर्मुहुः ।
स्वीकर्तव्यमिदं सर्वं स्वर्गमानेतुमत्र हि ।। ८४।।
स्वाध्यायस्यांशदानस्य साधनाया अथापि च ।
सत्संगस्यानुदानं च सततं कर्तुमेव तैः ।। ८५।।
निश्चितं परिवारस्य कर्तुं चाऽपि परम्पराम् ।
संकल्पपूर्वकं श्रद्धापूर्वकं भावनामयैः ।। ८६।।
समापनं च कुर्वन्तः सर्वे कार्यक्रमं ततः ।
प्रसन्नाः प्रययुर्वासानभिनन्दनपूर्वकम् ।। ८७।।

टीका- आज का उपदेश सुनकर सभी ने अनुभव किया कि महानता श्रम व लगन से खरीदी जाती है। किसी को भी बिना मूल्य उपहार की तरह नहीं मिलती। परिवार को सुसंस्कृत बनाने के लिए यदि थोड़ा समयदान, मनोयोग और अंशदान लगाना पड़ता है, तो यह किसी भी प्रकार घाटे का सौदा नहीं है। यह बार-बार सोचना चाहिए, तभी स्वर्ग पृथ्वी पर लाया जा सकता है। साधना, स्वाध्याय, सत्संग और अंशदान के नियमित अनुदान प्रस्तुत करने और उसे परिवार की परम्परा बनाने के लिए सभी ने संकल्पपूर्वक-श्रद्धापूर्वक-भावनामय होकर निश्चय किया। समापन कार्यक्रम पूरा करते हुए अभिनन्दनपूर्वक सभी लोग प्रसन्नचित्त से विदा हो गये ।। ८१-८७।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः, श्री धौम्य ऋषि प्रतिपादिते "सुसंस्कारिता सम्वर्धन", इति प्रकरणो नाम ।। षष्ठोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

विश्व-परिवार प्रकरण

धौम्यश्चिन्तनलग्नोऽभूत्कुटुम्बस्य मयाऽत्र तु ।
बोधितायां महत्तायामियत्यां कर्हिचित्समे ।।१।।
श्रोतारो मागमन् भ्रान्तिं गृहप्राचीरगानि नः ।
कर्तव्यानि तथैतानि दायित्वानि तु सन्ति वै ।।२।।
सीम्नि तस्यां जनैरल्पैः सहादानप्रदानयोः ।
व्यवस्थायां च लिप्तेऽस्मिन् मनुष्ये भवबन्धनम् ।।३।।
सीमाबन्धनमेतत्स्यान्मानवस्य स्थितिस्तु तम ।
कूपमण्डूकतामेषा नेष्यतीह न संशयः ।।४।।
तदा देशस्य धर्मस्य समानायाश्च संस्कृतेः ।
विषये नहि कोऽप्यत्र चिन्तयिष्यति मानवः ।।५।।
भ्रमोऽयं च समुत्पन्नो यदि चित्ते तु कस्यचित् ।
तं भ्रमं निराकर्तुं समायाताऽनिवार्यता ।।६।।

टीका- महर्षि धौम्य सोचने लगे, परिवार की इतनी महत्ता बताने के कारण कहीं श्रवणकर्त्ताओं को यह मतिभ्रम न होने लगे कि घर की चाहरदीवारी तक ही उनके कर्तव्य-उत्तरदायित्व सीमित हैं। उतनी ही परिधि में थोड़े से लोगों के साथ आदान-प्रदान करते रहने भर में यह मनुष्य लिप्त हो गया, तो फिर वह सीमा-बन्धन का काम करेगा-मनुष्य की स्थिति कूप-मण्डूक जैसी बना देगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। तब कोई देश, धर्म, समाज, संस्कृति की बात सोचेगा ही नहीं। यह भ्रम यदि मेरे प्रतिपादनों से किसी को हुआ हो, तो उसका निराकरण समय रहते करने की आवश्यकता है ।। १-६ ।।

गृहान् स्वान् परिवारं च मन्येतात्र नरः सदा ।
विद्यालयमिवाऽथापि व्यायामभवनं पुनः ।।७।।
क्षेत्रेऽस्मिंश्च लघावाप्ता उपलब्धीर्नियोजयेत् ।
हिते लोकस्य चात्रैव विद्यते नरजन्मनः ।।८।।
सार्थक्यं परमेशस्य निहिताऽत्र प्रसन्नता ।
प्रसन्ने परमेशे च न किमप्यस्ति दुर्लभम् ।।९।।
संसार एव ब्रह्मास्ति विराट्क्षेत्रेऽत्र मानवाः ।
स्वशक्तेः पुण्यबीजानि मुक्तहस्तं वपन्तु ते ।।१०।।
विश्वसेदपि चैतत्स्यात् सहस्रं परिवर्द्धितम् ।
श्रेयसां परिणामे च यन्नरैरिष्यते सदा ।।११।।
धौम्योऽथ निश्चिचायैतद्दातुं प्रोत्साहनं तथा ।
परामर्शं तु तान् सर्वान सदस्यान् भवितुंस्वतः ।।१२।।
विश्वस्य परिवारस्य व्यवस्था विषयेऽस्य च ।
योगदानं विधातुं स्यादपूर्णं यद्विना त्विदम् ।।१३।।
तेन चाऽपूर्णभावेन भ्रान्त्युत्पत्तेरथाऽपि च ।
प्रगतेरवरोधस्य भयं तत्रोदितं महत् ।।१४।।
उपस्थिताँश्च जिज्ञासून् प्रतिगम्भीरमुद्रया ।
धौम्यः स्वकथनञ्चैवं प्रारब्धं स कथाच्छुभम् ।।१५।।

टीका- घर-परिवार को व्यायामशाला-पाठशाला के समान माना जाना चाहिये। उस छोटे क्षेत्र में उपार्जित उपलब्धियों को लोकहित में नियोजित करना चाहिये। इसी में मनुष्य जन्म की सार्थकता और ईश्वर की प्रसन्नता सन्निहित है। परमेश्वर के प्रसन्न होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह संसार ही विराट् ब्रह्म-साकार परमेश्वर है। इसके खेत में अपनी क्षमताओं को जी खोलकर बोना चाहिए और बदले में हजार गुने श्रेय-सत्परिणामों का विश्वास रखना चाहिए और मानव-मात्र का अभीष्ट भी यही है। आज धौम्य ने विश्व-परिवार का नागरिक रहने-विश्व-व्यवस्था को सँभालने में भाव भरे योगदान देने के लिए परामर्श-प्रोत्साहन देने का निश्चय किया। इसके बिना सत्र का शिक्षण अधूरा ही रह जाता। उस अधूरेपन के कारण भ्रान्ति उत्पन्न होने, प्रगति उत्पन्न होने और रुक जाने का भी भय था। धौम्य ने उपस्थित जिज्ञासुओं की ओर उन्मुख होकर गम्भीर मुद्रा में अपना मंगलमय कथन आरम्भ किया ।। ७-१५ ।।

चिन्तन की परिधि यदि अपने पारिवारिक परिजनों तक ही सीमित रहे, तो व्यक्ति-समुदाय का एक अंग होते हुए भी अपने दायित्वों का अहसास न होने के कारण उपार्जन-उपभोग में ही जीवन किसी तरह काटकर अपने कर्तव्यों की इति श्री समझ लेता है। वस्तुस्थिति यह है कि समाज के एक-एक घटक ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार संस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एकाकी कोई नहीं जी सकता, न ही पनप सकता है। ऐसे में इक्कड़, स्वार्थप्रधान जीवन जीने वाले व्यक्ति संस्कृति, समुदाय, विश्ववसुधा के लिए कलंक ही सिद्ध होते हैं।

गृहस्थ जीवन, नारी, शिशु एवं वृद्धजन प्रकरणों को अपने तर्क सम्मत विवेचन द्वारा प्रस्तुत करने वाले महर्षि धौम्य का यह अनुमान सत्य ही है कि जानकारी के अभाव में कहीं भ्रान्तियाँ न पनपने लगें। इसी कारण वे विचारते हैं कि परिवार के सदस्यों को बताया जाना चाहिए कि उनका कार्यक्षेत्र कितना विशाल है। जिन गुणों का अभ्यास गृहस्थाश्रम में करने हेतु उन्हें प्रेरित किया गया, उन्हें समष्टि में संव्याप्त विराट् ब्रह्म रूपी विश्व परिवार में भी लागू किया जाना चाहिए, यह समझे बिना सारा प्रतिपादन अधूरा है। किसान अपने खेत में थोड़े से गेहूँ के दाने बोकर पूरे खेत में लहलहाती फसल काटता है। यही बोने व काटने की प्रक्रिया हर व्यक्ति को सत्प्रवृत्ति विस्तार के माध्यम से समग्र समाज पर लागू करनी चाहिए। आराधना की यह प्रक्रिया प्रकारान्तर से उसकी विश्व-ब्रह्माण्ड के सभी घटकों के प्रति उऋण होने के रूप में सम्पन्न होनी चाहिए। इसी में उसका गौरव और बड़प्पन है।

धौम्य उवाच-

पारिवारिकभावं तु जानीयात्संगमं शुभम् ।
समन्वयकृतं यत्र धार्मिकत्वमथाऽपि च ।। १६।।
आध्यात्मिकत्वमास्तिक्यं तत्वत्रयमपि स्थितम् ।
साधनोपासनाऽऽराधनानां सिद्धिर्यतो भवेत् ।।१७।।
एनमाश्रित्य व्यक्तेश्च चरित्रं चिन्तनं तथा ।
व्यवहारस्तरोऽभ्येति नित्यमेवोन्नतिं स्थिराम् ।।१८।।
परिवारस्तु प्रत्यक्षं शोधशालेव वर्तते ।
तत्र सम्मिलितैः सर्वैः सदस्यैराप्यतेऽनिशम् ।।१९।।
कालः कौटुम्बिकान् सर्वानादर्शज्ञातुमप्यथ ।
व्यवहर्तुं यदाश्रित्य पद्मायन्ते कुटुम्बगाः ।। २०।।
सञ्चालयन्ति ये तस्य सूत्रं तेषां गुणेऽथ च ।
स्वभावे कर्मणीहास्ति विशेषा हि परिष्कृतिः ।। २१।।
उन्नतस्तरमेतच्च परिवर्तनमद्भुतम् ।
प्रवृत्तिमेनां स्वीकृत्य मानवो बुद्धिमत्तमः ।। २२।।
समर्थः प्रोन्नतश्चात्राऽपेक्षया ह्यन्यप्राणिनाम् ।
जातः कारणमस्त्वाऽस्ति पारिवारिकपद्धतिः ।। २३।।
नाऽभविष्यदिदं तस्मिन् वैशिष्ट्यं तर्हि सोऽपि तु ।
जीर्णप्राणिस्थितौ प्राणानकरिष्यद्धि यापितान् ।।२४।।

टीका- धौम्य ने कहा-पारिवारिकता को एक ऐसा समन्वय-संगम समझना चाहिए; जिसमें आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के तीनों ही तत्वों का समावेश है। इसे सही रूप से अपनाने पर उपासना, साधना और आराधना के तीनों ही प्रयोजन पूर्ण होते हैं। इसके सहारे व्यक्ति का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार का स्तर ऊँचा उठता है। परिवार एक प्रत्यक्ष प्रयोगशाला है, उसमें सम्मिलित रहने वाले सदस्यों को पारिवारिकता के आदर्शों को व्यवहार रूप में समझने-अपनाने का अवसर मिलता है। यही वह आदर्श है, जिसे अपनाने पर परिवार के सदस्य कमल पुष्प बन, विकसित होते हैं। जो उसका सूत्र संचालन करते हैं, उनके गुण-कर्म-स्वभाव में उच्चस्तरीय परिवर्तन-परिष्कार सम्भव होता है। इस प्रवृत्ति को अपनाकर ही मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक समर्थ, बुद्धिमान एवं प्रगतिशील बन सका, इसका प्रमुख कारण उसकी पारिवारिकता अपनाने वाली प्रवृत्ति ही है। यदि यह विशेषता न रही होती, तो उसे भी अन्य दुर्बलकाय प्राणियों की तरह गई-गुजरी स्थिति में जीवन व्यतीत करना पड़ता ।। १६-२४।।

परिवार संस्था एक ऐसा संगठन है, जिसमें मनुष्य अध्यात्मदर्शन एवं व्यावहारिक जीवन-साधनाके महत्वपूर्ण सोपानों को सीखता, जीवन में उतारता एवं उन्हें समाज-परिवार में क्रियान्वित कर अपना मनुष्य जीवन सार्थक करता है। आस्तिकता अर्थात् निराकार परमसत्ता को विश्व ब्रह्माण्ड रूप में समाएँ होने की मान्यता को स्वीकार करना, आध्यात्मिकता अर्थात् 'स्व' के संबन्ध में अपनी परमात्मा के वरिष्ठ पुत्र होने की स्थापना को परिपक्व बनाना एवं धार्मिकता अर्थात् विश्व उद्यान को श्रेष्ठ-समुन्नत बनाने हेतु अपने सत्कर्मों को नियोजित कर देना। ये तीनों ही उपादान परिवार में रहकर भली-भाँति सम्पन्न होते रह सकते हैं। प्रकारान्तर से ये ही उपासना, साधना, आराधना के क्रमशःपर्यायवाची हैं। इन्हीं से व्यक्ति महान् अथवा दुर्बल बनता है। पारिवारिकता एक दर्शन है, जिसे अपनाकर व्यक्ति स्वयं अपने चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार को परिष्कृत करता एवं अपने माध्यम से अन्य-अनेकों को ऊँचा उठाता, प्रगति पथ पर बढ़ाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुटुम्बं स्वं गृहस्थस्य सीमितं परिधौ सदा ।
तिष्ठतीह तदाधारं कुलं तच्च कुटुम्बकम् ।। २५ ।।
विद्यन्ते तस्य नूनं च महत्ताऽथोपयोगिता ।
आवश्यकत्वमत्रैवं दायित्वं मौलिकं शुभम् ।। २६ ।।
परं ज्ञातव्यमेतन्न पारिवारिक एष च ।
आदर्शः सीमितः क्षेत्रे लघावियति केवलम् ।। २७ ।।
व्यापकः स च धर्मस्य दर्शनस्येव विद्यते ।
परिधौ मीयते तस्य जगदेतच्चराचरम् ।। २८ ।।
समाजरचनाऽप्येषा जाता सिद्धान्ततो भुवि ।
परिवारस्थितिः वीक्ष्य राष्ट्राणां घटनं तथा ।। २९ ।।
सिद्धान्तोऽयं धरायां च सम्यग्रूपेण संस्थितः ।
यावत्तावद् भुवि स्वर्गतुल्या वातावृत्तिः स्थिता ।। ३० ।।
ये मनुष्याः सदादर्शमिमं जानन्त एव च ।
व्यवहारे यथाऽगृह्णन् महत्वं ते तथाऽऽप्नुवन् ।।३१ ।।
विभूतीरधिजग्मुस्त उत्तमोत्तमतां गताः ।
साधु विप्रस्तरा वानप्रस्थस्तरगताः समे ।। ३२ ।।
ओतप्रोता नरा आविर्भावनाभिर्निरन्तरम् ।
सर्वान् स्वान् मन्वते ते च पश्यन्तीह स्वयादृशा ।। ३३ ।।
निरीक्षन्ते च यत्राऽपि दृश्यन्ते स्वे समेऽपि च ।
आत्मभावोऽयमेवात्र कुटुम्बत्वस्य लक्षणम् ।। ३४ ।।

टीका- निजी परिवार घर-गृहस्थी की परिधि में सीमित रहता है। उसका आधार वंश-कुटुम्ब है। उसकी भी अपनी महत्ता, उपयोगिता, आवश्यकता एवं जिम्मेदारी है; पर यह न समझना चाहिए कि पारिवारिकता का आदर्श इतने छोटे क्षेत्र में ही सीमित होकर रह जाता है। वह धर्म और दर्शन की तरह अत्यन्त व्यापक है। उसकी परिधि में यह सारा चराचर संसार समा जाता है। समाज की सरंचना परिवार सिद्धान्त पर हुई है। राष्ट्रों का गठन भी इसी आधार पर हुआ है। यह सिद्धान्त जब तक सही रूप में अपनाया जाता रहा, तब तक इस धरातल पर स्वर्गोपम सतयुगी वातावरण बना रहा। जिन मनुष्यों ने इस आदर्श को जितना समझा और व्यवहार में उतारा, वे उसी अनुपात में महान् बनते चले गये। उन्हें एक से एक बढ़कर महान् विभूतियाँ उपलब्ध होती रहीं। साधु-ब्राह्मण-वानप्रस्थ स्तर के परमार्थ परायण व्यक्ति इसी भावना से ओत-प्रोत होते हैं। वे सब को अपना मानते हैं। आत्मीयता की दृष्टि से देखते हैं। जिधर भी आँख पसारते हैं-सभी अपने दीखते हैं। यह आत्मभाव ही पारिवारिकता का प्रधान लक्षण है ।। २५-३४ ।।

जो पारिवारिकता के दर्शन को अपने दैनन्दिन जीवन-व्यवहार में उतारते हैं, वे बदले में उतना ही प्रेम, श्रेय, सम्मान पाते हैं। "सब अपने हैं, हम सबके हैं। दूसरों का दुःख कष्ट ही हमारा दुःख है।" यदि ये भावनायें जीवन्त रहें तो सारी वसुधा ही अपना परिवार लगती है। अपना कार्यक्षेत्र सारा समाज, राष्ट्र एवं विश्व वसुधा हो जाता है। परिवार के परिजनों, विशेषकर वानप्रस्थों के लिए तो यह आदर्श जीवन साधना का एक अनिवार्य अंग है।

व्यक्ति जिस वंश-परिवार में जन्म लेता है, उसी तक उसके दायित्व हैं, यह मान्यता त्रुटिपूर्ण है। इस सम्बन्ध में संव्याप्त भ्रान्तियों को मिटाया जाना चाहिए, ताकि लोगों की उदार परमार्थ-परायणता विकसित हो एवं वे अपनी कार्य परिधि का विस्तार करें ।

गतिशीलसमाजानां रचना घटनं तथा ।
परिवारे विशाले च भवतोऽत्रानुशासनम् ।। ३५ ।।
नियमाश्च विधीयन्ते तदाश्रित्य नरैः सदा ।
वितरणस्य रक्षायाः क्रमोऽनेन चलत्यलम् ।। ३६ ।।
सिद्धान्तमिमाश्रित्य तथा राष्ट्रमपीदृशः ।
व्यवस्था प्रमुखो नूनं समाजो विद्यते स्वतः ।। ३७ ।।
दत्त्वा विश्वकुटुम्बस्य मान्यतामग्रिमेषु च ।
दिनेषु नियमाः सर्वे तथा निर्धारणानि च ।। ३८ ।।
निर्मेयानि समानश्च सोऽधिकारो नृणामिह ।
वसुमत्यां तथाऽस्याश्च खनिजेषु समेष्वपि ।। ३९ ।।
क्षेत्रजासु च सीमासु संकोचमधिगत्य यः ।
क्रमो विश्वविभूतेस्तु केषांचिद्धि नृणां कृते ।। ४० ।।
बाहुल्यत्वेन केषांचित् स्वल्पत्वेन च साम्प्रतम् ।
चलत्येष भवेन्नायमागामिदिवसेषु तु ।। ४१ ।।
संयुक्ता सम्पदाऽत्राऽस्ति कुटुम्ब उपयुज्यते ।
यां समेप्यनिवार्याणां व्ययानां च प्रसंगतः ।। ४२ ।।
नहि कश्चिद् विशेषं स्वमधिकारं वदत्यथ ।
वञ्चितो नहि कश्चिच्च जायतेचाऽधिकारतः ।। ४३ ।।

टीका- प्रगतिशील समाजों की संरचना और संगठन विशाल परिवार के रूप में होता है। उसी आधार पर नियम-अनुशासन बनते हैं। वितरण और संरक्षण का क्रम भी इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुये चलता है। राष्ट्र भी व्यवस्था प्रधान समाज ही है। विश्व परिवार की मान्यता अपनाकर ही अगले दिनों नवयुग के समस्त नियम-निर्धारण बनेंगे। धरातल और उसकी खनिज सम्पदा पर मानव समाज के समस्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदस्यों का समान अधिकार होगा। क्षेत्रीय सीमाओं में बँधकर विश्व सम्पदा को किन्हीं के लिये बहुत और किन्हीं के लिये नगण्य होने का जो क्रम इन दिनों चल रहा है, वह अगले दिनों न रहेगा। परिवार में संयुक्त सम्पदा होती है और उसका उपयोग सभी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप कर सकते हैं। न कोई विशेष अधिकार जताता है और न किसी को वंचित रहना पड़ता है।। ३५-४३।।

यहाँ आध्यात्मिक साम्यवाद की रूप रेखा स्पष्ट करते हुये ऋषि कहते हैं कि सभी का हित इसमें है कि सब मिल-जुलकर एक विशाल कुटुम्ब के परिजन के रूप में विकसित हों। परिवार राष्ट्र की एक छोटी इकाई है। ऋषि सत्ता का यह संकल्प है कि पारस्परिक मत-भेद विग्रह मिटें एवं सारे विश्व में एक कौटुम्बिक भावना का विकास हो। जो भी कुछ उपार्जन है, सबका मिलकर है, वह किसी एक की सम्पदा नहीं, यह स्पष्ट जान लेना चाहिये। विश्व परिवार में उपभोग हेतु सभी स्वतंत्र हैं। जैसे कि किसी परिवार में सभी सदस्य अपनी-अपनी सीमा-मर्यादा में रहकर जिम्मेदारी भी निभाते हैं एवं उपार्जन का आनन्द भी लेते हैं, उसी प्रकार बृहत्तर परिवार के रूप में, कम्यून के रूप में संस्थाएँ विकसित होनी चाहिये। इसी में विश्व मानवता का कल्याण है। इसके लिये अन्तः की सदाशयता तो विकसित करनी ही होगी परस्पर एक दूसरे के चिन्तन से संगति बिठाते हुये अपने व्यवहार को भी लचीला बनाना होगा। सारे पूर्वाग्रह, दुराग्रह मिटाकर अपने चिन्तन के दायरे को विस्तृत करना होगा, ताकि विश्व परिवार की परिकल्पना साकार रूप ले सके।

इस समन्वयवाद का मूल वेदों में स्पष्ट रूप से मिलता है। ईशोपनिषद् के प्रथम मंत्र में ही मानव-जीवन की सफलता, सार्थकता का जो मार्ग बतलाया गया है, उसमें समन्वय का सार आ गया है। ऋषि कहते हैं-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।

अर्थात्- "इस विश्व में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है, इसलिये उसका उपयोग त्यागपूर्वक करो, धन किसी एक का नहीं हो सकता।"

शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि यह समस्त संसार भगवान् का है, किसी एक व्यक्ति का नहीं; अतः इसकी वस्तुओं पर अनुचित रीति से अधिकार न जमाकर उसे समाज हित में सदुपयोग किया जाय। समाज के हित में ही अपना हित समझा जाना चाहिये। सामूहिकता की भावना को विकसित करके ही समष्टि में-विश्व विराट् में विस्तार पाना सुनिश्चित है।

परिवारे समर्थाश्चाऽसमर्थाः सर्व एव हि ।
यथाशक्ति श्रमं कृत्वा लाभंयान्ति तथेप्सितम् ।। ४४।।
भवत्येष कुटुम्बस्य स्तरश्च समतां गतः ।
भेदः सम्पन्नतायाःसदारिद्र्यस्याऽपि नास्तिच।।४५।।
संयुक्ताऽस्ति समेषां च सम्पत्तिः समये तथा।
विशेषे पूर्यते वाञ्छाऽनिवार्या तत एव च ।। ४६।।
निर्वाहः स च सामान्यः सर्वेषां भवतीह च ।
आगामिषु दिनेष्वेतत् भवेत् प्रचलनं सदा ।। ४७।।
सम्पदा स्यात्समाजस्य समैर्नागरिकैः स्तरः ।
समान एव स्वीकार्यो निर्वाहस्य भविष्यति ।। ४८।।
न कश्चिद् धनवान्नैव निर्धनो वा भविष्यति।
धरित्र्याश्च सुताः सर्वे महतो मनुजन्मनाम् ।। ४९।।
कुटुम्बस्य सदस्यत्वगताः प्राप्स्यन्ति निश्चितम्।
साधनानि समानानि सम्मानं सममेव च ।। ५०।।

टीका- परिवार में सभी समर्थ-असमर्थ अपनी क्षमता के अनुरूप श्रम करते और आवश्यकता के अनुरूप लाभ लेते हैं। पूरे परिवार का स्तर एक जैसा होता है। इनमें किसी में भी दरिद्र या सम्पन्न होने जैसा भेद-भाव नहीं देखा जाता। सम्पत्ति सब की संयुक्त होती है। विशेष अवसरों पर उसी संचय में से सबकी विशेष आवश्यकताएँ भी पूरी होती रहती हैं। सामान्य निर्वाह तो सबका एक जैसा होता है। अगले दिनों यही प्रयत्न चलेगा। सम्पदा समाज की होगी। सभी को औसत नागरिक स्तर का निर्वाह अपनाना पड़ेगा। न कोई धनी बन सकेगा और न निर्धन रहेगा। धरती माता के सभी पुत्र एक विशाल मानव परिवार के सदस्य बन कर एक समान सम्मान-एक समान साधन उपलब्ध करेंगे।। ४४-५०।।

वृहत् परिवार में असमानता नहीं होनी चाहिये। किसी को, अधिक सुविधा मिले, किसी को कम, यह नीति हर दृष्टि से असंतोष-विग्रह पैदा करती है इसलिये परिवार संस्था में सभी को आवश्यकतानुसार समान रूप से साधन उपलब्ध रहते हैं। विशेष रूप से यह तैयारी मानसिक धरातल पर एवं अन्तः करण के स्तर पर अभी से ही हो जाना चाहिये। हर व्यक्ति एक दूसरे के प्रति अधिक से अधिक उदार हो, अपने प्रति कठोर हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एवं सादगी अपनाता हो, तो वह परिवार संस्था आदर्श रूप में विकसित होती है। आने वाले समय को दृष्टि में रखते हुये यह प्रचलन अभ्यास रूप में अभी से लाया जाना अनिवार्य हो गया है। इसी में सबकी भलाई है।

लघूनां परिवाराणां भाषा संस्कृतिरेव च ।
भवत्येकैव विश्वे च भाषाऽऽगामि दिनेषु तु ।।५१।।
प्रयुक्तास्यादि हैकस्या मानव्याः संस्कृतेरथ ।
अनुरूपं चिन्तनं स्याद् भवेच्च चरितं तथा ।।५२।।
एक एव च धर्मः स्याद् विश्वे च सकलेऽपि ते।
नियमास्तु समानाः स्युर्मानवेषु समेष्वपि ।।५३।।
निर्विशेषं च ये तत्र प्रभविष्यन्ति पूर्णतः ।
अनुशासनमप्येवं निर्विशेषं भविष्यति ।।५४।।
अवसरस्तत्र भेदानां कृते नैव भविष्यति ।
यमाश्रित्य समर्थानां हस्तगाः सुविधाः समाः।।५५।।
भवेयुस्तेऽसमर्थाश्च दुर्भाग्याय तथाऽऽत्मनः ।
द्रुह्यन्तु रोगशोकार्ति पीड़िताः सन्तु जीवने ।।५६।।
क्षेत्राणां च निजानां वा वर्गाणां च कृतेऽधुना ।
सन्ति प्रचलनान्यत्र निर्मीयन्तेऽपि यानि च ।।५७।।
संसारपरिवारे च निर्मिते स्युर्न ते क्वचित् ।
व्यवस्था वाऽथ मर्यादा स्यातामत्र विनिर्मितिः।।५८।।
उभे भुवः क्वचित्कोणे वसत्सु नृषु पूर्णतः ।
वंशजात्यादि भेदाच्च रहिते प्रभविष्यति ।।५९।।
तत्र वर्गविशेषस्य हितानां च भविष्यति ।
ध्यानं विश्वव्यवस्थायाः सौविध्यस्यैव केवलम्।।६०।।

टीका- छोटे परिवार की भाषा एवं संस्कृति एक होती है। अगले दिनों विश्व भर में एक भाषा बोली जायेगी। एक मानव संस्कृति के अनुरूप सभी का चिन्तन और चरित्र ढलेगा। एक धर्म पलेगा। समस्त संसार पर-मनुष्य मात्र पर-लागू होने वाले एक जैसे नियम-अनुशासन बनेंगे। ऐसे भेद-भावों की कोई गुंजाइश न रहेगी, जिनकी आड़ में समर्थों के हाथ में विपुल सुविधा रहे और असमर्थ दुर्भाग्य को कोसते रहें तथा जीवन भर रोग-शोक दुःख से पीड़ित रहें। अपने-अपने क्षेत्रों और वर्गों की सुविधा के लिये इन दिनों जो प्रचलन बनते और चलते हैं, वे विश्व परिवार बनने पर कहीं भी दृष्टिगोचर न होंगे। जो भी व्यवस्था या मर्यादा बनेगी वह धरती के किसी भी कोने में रहने वाले किसी भी जाति-वंश एवं लिंग के व्यक्ति के ऊपर समान रूप से लागू होगी। उसमें विशेष वर्गों के विशेष हितों का नहीं, विश्व-व्यवस्था और सर्वजनीन सुविधा का ध्यान रहेगा।। ५१-६०।।

"हम अमुक समाज के-राष्ट्र के निवासी हैं। हमारे दायित्व देश की सीमा तक ही सीमित हैं। नीति-अनीति जैसी भी बने देश के हित के लिये किया जाना चाहिये।" राष्ट्रों की इस संकीर्ण-स्वार्थपरतायुक्त नीति के कारण ही परस्पर विग्रह खड़े होते हैं और तनाव बढ़ते हैं। स्वस्थ राष्ट्रीय भावना देश के विकास के लिये उपयोगी भी है और आवश्यक भी। किन्तु यह भावना जब इसी परिधि तक सीमित हो जाती है तो विश्व शान्ति को आघात पहुँचता है, एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" की स्थिति नहीं आने पाती।

प्रज्ञा युग में जो आने वाले समय की एक सुनिश्चित संभावना है, सभी लोग विश्व को अपने एक विशाल घर के रूप में देखते हुए विश्वव्यवस्था में अपना भाव भरा योगदान देंगे। प्रचलनों के प्रति दुराग्रह मिटेंगे एवं सब ओर सभी में एकता, समानता और बन्धुत्व की भावना जागृत होकर विश्वव्यापी बनेगी। और समाज-शिल्पी ऋषियों की वह अमृतमय वाणी स्थान-स्थान पर जन-जन के मन में गुंजित, मुखरित, प्रतिध्वनित और कार्यान्वित होती देखी जायेगी जिसमें उन्होने हमें आदेश देते हुये कहा है-

"संगच्छध्वम् सम्वदध्वम्" तुम्हारी गति और वाणी में एकता हो। **"समानो प्रजा सहवोऽन्नभागः"** तुम्हारी खाने पीने के स्थान व भाग एक जैसे हों। **"समानो मंत्रः समितिः समानी"** तुम्हारी सभी समितियाँ एक समान हों और तुम्हारे विचारों के **सामंजस्य** में एक रूपता हो। **"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।"** तुम्हारे हृदय के संकल्प व भावनायें एक सी हों।

"अज्येष्ठासोऽकनिष्ठासः सं भ्रातरो वावृधु सौभगाय" हम सब प्रभु की सन्तान एक दूसरे के भाई-भाई हैं। हममें न कोई छोटा न कोई बड़ा। हम सब एक हैं, यह उत्कृष्ट भावना ही मनुष्य को विश्व विराट में समाकित करने वाली और अविजेय बनाने वाली है। भेदभावों का मिटना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

सेनया विश्वराष्ट्रस्य कार्यं सेत्स्यति चैकया ।
मतभेदा निरस्ताः स्युः पञ्चायतननिर्णयात् ।।६१।।
युद्धानि विश्वसेना च रोत्स्यति सर्वतः स्वयम्।
तत्तत्स्थानव्यवस्था तु कृता स्याद्राजपूरुषैः ।।६२।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईदृष्यां च स्थितावत्र सैन्यसाधनसम्भवः ।
व्ययोऽनपेक्षितः स्यात्सहितमेतन्महन्नृणाम् ।।६३।।
प्रयोजनेषु चैतेषु राशिर्यो विपुलोऽधुना ।
व्यवमेत्यवशिष्टं तं शिक्षायां स्वच्छताविधौ ।।६४।।
स्वास्थ्य उद्योग एवं च कृषिसिञ्चनकेऽथवा ।
उत्पादनेष्वनेकेषु चोपयोक्ष्यन्ति पूर्णतः ।।६५।।
ईदृश्यां च दशायां हि संकटाभावविग्रहाः ।
दृग्गोचरा भविष्यन्ति नैव कुत्राऽपि कर्हिचित् ।।६६।।
दरिद्राः पतिता रुग्णा उद्विग्ना मानवा नहि ।
द्रष्टुं शक्या धरायां तु कुत्रचित्केनचिद्ध्रुवम् ।।६७।।
पारिवारिक भावे च याते व्यापकतां तथा ।
सर्वत्र स्वीकृते सत्ययुगः स आगमिष्यति ।।६८।।
प्रत्येकस्मिन् मनुष्ये च द्रक्ष्यते दैवमुत्तमम् ।
औत्कृष्ट्य विपदो जाता समस्याभीतयस्तथा ।।६९।।
व्यग्रभावादतश्चात्र कुटुम्बादर्शस्वीकृतौ ।
अवाञ्छितेभ्य एतेभ्यौ रिक्तं स्थानं न सम्भवेत् ।।७०।।

टीका- विश्वराष्ट्र की एक सेना रहने से काम चल जायेगा। मतभेदों को पंचायतों के माध्यम से सुलझाया जायेगा। युद्धों को विश्व-सेना रोकेगी। स्थानीय व्यवस्था भर के लिये क्षेत्रीय पुलिस से काम चल जाया करेगा। ऐसी दशा में सैन्य साधनों पर होने वाले खर्च की तनिक भी आवश्यकता न रहेगी और यह मनुष्यों का बहुत बड़ा हित होगा। उस प्रयोजन के लिये इन दिनों जो विपुल राशि खर्च होती है, उसे बचाकर शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सिंचाई, उद्योग, विविध उत्पादन आदि में लगाया जा सकेगा। ऐसी दशा में न कहीं अभाव, संकट और विग्रह दृष्टिगोचर होंगे और न मनुष्यों को दरिद्र, पतित, रुग्ण, स्थिति में देखा जा सकेगा। पारिवारिकता की विधा व्यापक बनने और सर्वत्र अपनाई जाने पर फिर सतयुग की वापसी सम्भव हो सकेगी। हर मनुष्य में देवताओं जैसी उत्कृष्टता के दर्शन होंगे। विपत्तियाँ, समस्यायें और विभीषिकायें तो आपा-धापी के कारण उत्पन्न हुई हैं। पारिवारिकता का आदर्श अपनाने पर इस अवांछनीयता के लिये कहीं कोई स्थान रह नहीं जायेगा।। ६१-७०।।

ऋषि श्रेष्ठ यहाँ सतयुग की, प्रज्ञायुग की एक झाँकी दिखाते हुये व्यक्त करते हैं कि वर्तमान विपत्तियों से भरी परिस्थितियाँ तभी मिटेंगी, जब विश्व में एकत्व एवं ममत्व के आधार पर,पारिवारिकता की पृष्ठभूमि बनने लगेगी। जब हर व्यक्ति एक दूसरे में स्वयं को ही प्रतिबिम्बित देखेगा, दूसरों का दुःख दर्द अपना लेगा, तो विग्रह एवं अभावजन्य विभीषिकाओं के घटाटोप स्वयं ही दूर हो जायेंगे। मनुष्य का देवत्व जगेगा एवं धरती पर स्वर्गोपम परिस्थितियाँ विनिर्मित होंगी।

सहृदयता की अन्तःस्थिति व्यापक बनने पर उद्धत महत्वाकांक्षाओं के कारण होने वाले, क्षेत्रीय परिधि के विस्तार को लेकर लड़े जाने वाले युद्ध स्वतः रुक जाते हैं एवं करुणाशक्ति प्रज्ञा उसका स्थान ले लेती है।

विनाशसंकटाश्चात्र महाप्रलयसदृशाः ।
दृश्यन्ते वर्द्धमानास्तु गर्जन्तः सर्वतो भुवि ।।७१।।
पारिवारिकतावायौ चलतीह न कुत्रचित् ।
सत्ताज्ञानं भवेदेषा प्रातर्जातेऽरुणोदये ।।७२।।
तिरोहितं तयो नृणां पश्यतां जायते यथा ।
तथा विश्वकुटुम्बस्य भावनायाः शुभोदये ।।७३।।
जातेऽथापि व्यवस्थायां निर्मितायां भवेन्नहि ।
त्रासउद्विग्नको येन दैन्यगाः स्युर्नरा बलात् ।।७४।।

टीका- महाप्रलय जैसे विनाश संकट इन दिनों पृथ्वी में सर्वत्र घुमड़ते-गरजते दीखते हैं। उनमें से एक का भी पारिवारिकता का पवन चलते ही कहीं पता न चलेगा। प्रातःकाल का अरुणोदय होते ही अन्धकार देखते-देखते ही तिरोहित हो जाता है। उसी प्रकार विश्व-परिवार की भावना जगने और व्यवस्था बनने पर वैसा कोई त्रास रहेगा नहीं, जो मनुष्य को खिन्न-उद्विग्न करे और उसे गई गुजरी स्थिति में रहने के लिये विवश करे।। ७१-७४।।

यहाँ ऋषि प्रवर जन सामान्य को आश्वासन देते हैं कि इन दिनों पृथ्वी पर सर्वत्र संव्याप्त विभीषिका-महाप्रलय जैसे विनाश संकट जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वह मानवीय सद्बुद्धि-विवेक के जागृत होते ही तिरोहित हो जायेंगे। 'विश्व परिवार'-'विश्व-बन्धुत्व'की भावना जागृत होने और तदनुरूप व्यवस्था बनाने पर सभी एक दूसरे की प्रगति-उत्थान के लिये ही कार्य करते देखे जायेंगे। गायत्री मंत्र के अन्तिम चरण में अपनी निज की ही नहीं, समस्त समाज की-प्राणी मात्र की यथार्थ प्रगति की कामना की गई है और परम सत्ता से प्रार्थना की गई है कि सर्वतोमुखी प्रगति की आधार शिला सद्बुद्धि विवेक को हम सबके अन्तःकरण में प्रतिष्ठापित करें। ऋतुम्भरा प्रज्ञा की शरण में हमारी अन्तःचेतना को नियोजित कर दें। सन्निकट एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनिश्चितसम्भावी प्रज्ञायुग में उसी को प्राप्त करने के लिये जन-जन के मन में उत्कट-उत्कृष्ट आकाँक्षा, आतुरता एवं तत्परता की भावना दिखाई देगी और लोग 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओत-प्रोत होकर कार्य करेंगे, तब समस्त समाज में अमन-चैन एवं सुख- शान्ति का वातावरण बनेगा।

केवलं न मनुष्या हि विश्वस्य परिवारगाः ।
पशवः पक्षिणश्चात्र संगताः सन्ति पूर्णतः ।। ७५ ।।
निर्दयत्वस्य चाऽनीतेरन्तः स्याच्च तदैव तु ।
तेषामपि ययोरत्र व्यवहारस्तु तैः सह ।। ७६ ।।
क्रियते मनुजैः क्रूरैर्यदास्युर्भावनाः शुभाः ।
कौटुम्बिकस्य सर्वत्र विस्तृतास्तु गृहे गृहे ।। ७७ ।।
विश्वकल्याणमेतच्च सम्बद्धं ज्ञायतां ध्रुवम् ।
अविच्छिन्नतयामर्त्यकल्याणस्यातिशायिनः ।। ७८ ।।
पारिवारिकतां भावैः प्रक्रियां व्यापकां ततः ।
विधातुं यतनीयं च मर्त्यविश्वकुटुम्बजाम् ।। ७९ ।।
भविष्यदुज्ज्वलं चैतत्सम्बद्धं च यया सह ।
अजस्रं सुख शान्त्योश्च यत्रावतरणं तथा ।। ८० ।।

टीका- विश्व परिवार में मात्र मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी सम्मिलित होते हैं। उनके साथ बरती जाने वाली अनीति, निर्दयता का अन्त भी पारिवारिकता की भावनाओं का विस्तार होने पर ही बन पड़ेगा। विश्व-कल्याण अति व्यापक मानव कल्याण की पारिवारिकता की भावना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ समझा जाना चाहिये। विश्व-परिवार की-मानव परिवारकी-उस प्रक्रिया को व्यापक बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये, जिसके साथ उज्ज्वल भविष्य और अजस्र सुख-शान्ति का अवतरण अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।। ७५-८०।।

विश्व-परिवार की परिधि बहुत विशाल एवं व्यापक है। उसमें समस्त प्राणिजगत आ जाता है। मनुष्यों, जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों, वृक्ष-वनस्पतियों आदि का समुच्चय मिलकर एक विशाल परिवार का स्वरूप बनता है। अब नियन्ता की व्यवस्थानुसार चराचर में कौटुम्बिक भावना का विस्तार होगा, तब न कहीं कलह रहेगी न विग्रह। सब एक दूसरे को प्यार करेंगे, सम्मान देंगे, एवं परस्पर प्रतिद्वन्द्विता छोड़कर एक दूसरे को ऊँचा उठाने-आगे बढ़ाने का प्रयास करेंगे। बदली हुई मनःस्थिति से वर्तमान में संव्याप्त विभीषिकाओं का घटाटोप निरस्त होता चला जायगा और पारिवारिकता की-विश्व-वसुधा के हर जीवधारी को अपना मानने की भावना विकसित-विस्तृत होगी, तब सतयुग की-प्रज्ञायुग की सम्भावनायें निश्चित ही साकार होने लगेंगी। चारों ओर सुख-समृद्धि के साथ शान्तिमय वातावरण दृष्टिगोचर होगा और समस्त दिशाओं में शास्त्रोक्त वाणी-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ।।

की शुभकामना जन-जन के अन्तःकरण से प्रस्फुटित, प्रतिध्वनित और कार्यान्वित होती सुस्पष्ट देखी जा सकेगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि लोग तदनुरूप मनःस्थिति बनाकर नियन्ता के-सृष्टि संचालक के विश्व-वसुधा को समुन्नत बनाने में अपना भावभरा योगदान प्रस्तुत करें।

सत्रं साप्ताहिकं यस्मिन् परिवारप्रशिक्षणम् ।
कृतं धौम्येन तत्त्वद्य समाप्तं विधिपूर्वकम् ।। ८१ ।।
कुम्भस्नानार्थिनां नृणां कार्यकालोऽपि निश्चितः ।
पूर्णं आरण्यकं गन्तुं महर्षेरपि चेप्सितम् ।। ८२ ।।
विसर्जनं ततश्चास्य ज्ञानयज्ञस्य निश्चितम् ।
कर्तुं विवशता जाता महर्षेः करुणात्मनः ।। ८३ ।।
श्रोतारः स्वेषु चेतः सु सत्रसंयोजकस्य ते ।
भावपूर्णं व्यधुः सर्वेऽप्यभिनन्दमद्य तु ।। ८४ ।।
आत्मानं कृतकृत्यं चाप्यनयाऽमृतवर्षया ।
मेनिरे चित्तमेषां च श्रद्धा भावभृतं ह्यभूत् ।। ८५ ।।
श्रुतं ज्ञातं च यत्ततु करिष्यामः क्रियान्वितम् ।
प्रयोजनस्य सिद्धिः सा क्रियाधीनैव वर्तते ।। ८६ ।।
उपदेशः परामर्शः केवलं मार्गदर्शनम् ।
उत्साहस्याथ सञ्चारे समर्थास्तु भवस्ततः ।। ८७ ।।
कथनाच्छ्रवणान्नैव कार्यं सिद्ध्यति कस्यचित् ।
संकल्पानन्तरं कार्यं कुर्यादेव क्रियान्वितम् ।। ८८ ।।

टीका- महर्षि धौम्य का एक सप्ताह का परिवार शिक्षण सत्र आज विधिपूर्वक समाप्त हुआ। कुम्भ स्नान के लिए आये हुए लोगों का निर्धारित कार्यकाल भी पूरा हो गया। महर्षि को भी अपने आरण्यक आश्रम में जाना था। अस्तु, परमकारूणिक ऋषि को उस ज्ञान यज्ञ को समापन करने की विवशता थी। श्रोताओं ने मन ही मन सत्र संयोजक ऋषि का भाव-भरा अभिवन्दन किया और अपने को इस अमृत वर्षा से कृतकृत्य हुआ माना। सभी का मन इस भाव श्रद्धा से भरा हुआ था कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो सुना समझा है, उसे कार्यान्वित भी करेंगे। प्रयोजन की सिद्धि तो करने से होती है। उपदेश परामर्श तो मात्र मार्गदर्शन करते और उत्साह भरने तक के काम आते हैं। कथन-श्रवण भर से कुछ काम नहीं चलता। कार्य को, संकल्प के बाद क्रियान्वित करना अनिवार्य है ।।८१-८८।।

भविष्यति च कुत्रस्यात्सत्रमेवं विधं कदा ।
पुलकिता गमनोत्कास्ते पप्रच्छु: सादरं तत: ।। ८९ ।।
उदतारीदृषि: सर्वे भवन्त: पर्वजेषु हि ।
आयोजनेषु सर्वत्र संगता: स्यु: सदैव तु ।। ९० ।।
ईदृशी लोकशिक्षाया व्यवस्था तत्र प्रायश: ।
भवतीति समैस्तत्र लाभ: प्राप्तव्य उत्तम: ।। ९१ ।।
समापनं समारोहे सर्वैरेव विशेषत: ।
उत्साहो दर्शितस्तत्र महर्षेर्दिव्य चक्षुष: ।। ९२ ।।
प्रयोजनाय दिव्याय चानुदानानि तैर्नरै: ।
प्रस्तुतानि निजान्यत्र भावपूर्णानि विह्वलै: ।। ९३ ।।
अभिवादनकार्यस्य क्रमस्तत्राशिषामपि ।
चचालाभूत्समाप्तश्च जयघोषपुरस्सरम् ।। ९४ ।।

ज्ञानयज्ञ: समेषां च विश्वमेतच्चराचरम् ।
परिवारगतं साक्षाद् बुद्धावुद्बुद्धतां गतम् ।। ९५ ।।
प्रस्थितानां गृहास्तेषां जाता वृक्षा क्षुपा अपि ।
परिवारिकतां याता गोप्तारो जीवनस्य च ।। ९६ ।।

टीका- *भविष्य में ऐसा सत्र कब और कहाँ होगा ? यह प्रश्न पुलकित मन से विदा लेने वाले आदर सहित पूछने लगे। ऋषि ने कहा-आप लोग पर्व आयोजनों में सम्मिलित हुआ करें। वहाँ प्राय: ऐसे ही लोक शिक्षण की व्यवस्था रहती है। अत: सभी को वहाँ उत्तम लाभ प्राप्त करना चाहिये। सभी ने समापन समारोह में विशेष उत्साह दिखाया। ऋषि प्रयोजन के लिए अपने भाव भरे अनुदान भी विह्वल होकर प्रस्तुत किये। अभिवादन और आशीर्वाद का क्रम चला। जयघोष के साथ उस ज्ञानयज्ञ का समापन हो गया। सभी को समस्त चराचर विश्व अपनी बुद्धि में एक परिवार के रूप में उद्बुद्ध सा होने लगा। घर लौटते हुए सभी को पेड़-पौधे तक अपने जीवन रक्षक पारिवारिक सदस्यों के समान दृष्टिगोचर होने लगे ।। ८९-९६।।*

इतिश्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो:, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयो:,
श्रीधौम्य ऋषि प्रतिपादिते "विश्वपरिवार", इति प्रकरणो नाम
।। सप्तमोऽध्याय: ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चतुर्थ मण्डल
।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

देवसंस्कृति-जिज्ञासा प्रकरण

गुरुकुलेषु तदाऽन्येषु छात्रा आसंस्तु ये समे ।
गुरुजनैः सह ते सर्वेऽप्यायाता द्रष्टुमुत्सुकाः ।।१।।
ऋषे कात्यायनस्येमां व्यवस्थामुत्तमामपि ।
तस्याऽध्यापनशैलीं तां चर्यां च ब्रह्मचारिणाम् ।।२।।
तैः श्रुतं यन्महर्षेर्यद् विद्यते गुरुकुलं शुभम् ।
छात्रनिर्माण शालेव यत्रत्याः स्नातकास्तु ते ।।३।।
समुन्नता भवन्त्येवं मन्यन्ते संस्कृता अपि ।
सफला लौकिके सन्ति समर्था अपि जीवने ।।४।।
सम्पन्ना अपि चारित्र्य संयुक्ता व्यक्तिरूपतः ।
उदात्तास्ते तथैवोच्चस्तरा गण्यन्त उत्तमैः ।।५।।

टीका- एकबार अन्यान्य गुरुकुलों के छात्र अपने-अपने गुरुजनों समेत महर्षि कात्यायन के आश्रम की व्यवस्था और अध्ययन शैली व दिनचर्या का पर्यवेक्षण करने आये। उनने सुना था कि कात्यायन का गुरुकुल टकसाल है, जिसमें पढ़कर निकलने वाले स्नातक न केवल समुन्नत होते हैं, वरन् सुसंस्कृत भी माने जाते हैं। वे लौकिक जीवन में समर्थ, सफल और सम्पन्न रहते हैं तथा व्यक्तिगत जीवन में चरित्रवान्, उदात्त एवं मूर्धन्य स्तर के गिने जाते हैं ।। १-५ ।।

वैशिष्ट्यं चेदृशं छात्राः केनाधारेण यान्ति ते ।
इदं द्रष्टुं च विज्ञातुं छात्रास्ते गुरुभिः सह ।।६।।
विभिन्नेभ्यः समायाताः क्षेत्रेभ्य उत्सुका भृशम् ।
तदागमनवृत्तं च सदस्यैर्ज्ञातमेव तत् ।।७।।

टीका- ऐसी विशेषताएँ किस आधार पर छात्रगण प्राप्त करते हैं ? यह जानने-देखने की अभिलाषा लेकर वे छात्र-मण्डल अध्यापकों समेत विभिन्न क्षेत्रों, देशों से आये थे। उनके आगमन और उद्देश्य की पूर्व सूचना कात्यायन गुरुकुल के सभी छोटे-बड़े सदस्यों को विदित हो गई थी ।। ६-७ ।।

ध्यानेनागन्तुकाः सर्वे दिनचर्यां व्यवस्थितिम् ।
कात्यायनाश्रमस्याऽस्य स्वच्छतां व्यस्ततामपि ।।८।।
अनुशासनसम्मानं तत्रत्ये पाठ्यसंविधौ ।
सुसंस्कारित्वभावं तं व्यवहारेऽवतारितुम ।।९।।
पालितुं च सदाचारमध्यापनमिवानिशम् ।
कर्तव्यं निजदायित्वं पालितुं चानुशासनम् ।।१०।।
ध्यानं तत्र विशेषं हि दिनचर्यागतं ह्यभूत् ।
वैशिष्ट्यं मौलिकं चाभूदेतदेवास्य सुदृढम् ।।११।।

टीका- आगन्तुकों ने कात्यायन आश्रम की दिनचर्या, व्यवस्था, स्वच्छता, व्यस्तता और अनुशासनप्रियता को ध्यानपूर्वक देखा। पाठ्य पुस्तकों के अध्ययन-अध्यापन की भाँति ही सुसंस्कारिता को व्यवहार में उतारने तथा शिष्टाचार पालने, कर्तव्य-उत्तरदायित्व समझने और उन्हें पालने के लिए अनुशासन बरतने पर समुचित ध्यान दिया जाता था-यही इस आश्रम की सुदृढ़ मौलिकता थी ।। ८-११ ।।

नैवाध्ययनमेवात्र पर्याप्तं भवति त्वयि ।
नेतुं तान् प्रगतिं छात्रान् महामानवतामपि ।।१२।।
व्यवहारे समावेशोऽभ्यासश्चाऽपि विशेषतः ।
सदाशयसमुद्भूतो मतस्त्वावश्यकः सदा ।।१३।।

टीका- व्यक्तित्वों को उभारने और सामान्य मनुष्यों को महामानव बनाने में मात्र अध्ययन ही पर्याप्त नहीं होता, व्यवहार में सदाशयता का समावेश-अभ्यास इसके लिए नितान्त आवश्यक है। इस सिद्धान्त को उस आश्रम में भली प्रकार चरितार्थ होते हुए सभी आगन्तुकों ने पाया ।। १२-१३ ।।

गुरुकुलों की महामानवों को ढालने वाली टकसाल के रूप में मान्यता देवसंस्कृति की अनेकानेक विशेषताओं का एक अंग रही है। ऐसे शिक्षालयों से तप कर निकलने वाले विद्यार्थी एकांगी प्रवीणता मात्र नहीं प्राप्त करते थे, अपितु अपने आपको संस्कारों की निधि से सम्पन्न बनाकर व्यावहारिक दृष्टि से बहिरंग जीवन में भी कुशल एवं सूझ-बूझ के धनी बनकर निकलते थे। ऐसे आरण्यकों के प्रति ऋषि समुदाय एवं अन्यान्य छात्रों की जिज्ञासा होना स्वाभाविक है।

विद्यालय का परिकर अपने एक-एक अंग से अपना परिचय देता है। बाह्य सुसज्जा, विद्यार्थियों का ठाट-वाट से रहना, बैठने-पढ़ने की सुव्यवस्था होना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भर पर्याप्त नहीं। यह बाह्याडम्बर तो आज हर कहीं रास्ता चलते देखा जा सकता है। अध्ययन-अध्यापन की श्रेष्ठ व्यवस्था होना भी समुचित नहीं। संस्कारों के अभिवर्धन के लिये, व्यक्ति को महामानव रूप में ढालने के लिये; आत्मानुशासन को जीवन का अंग बनाने के लिए, उदारता-परमार्थ-परायणता को व्यवहार में समावेश करने हेतु क्या प्रयास-पुरुषार्थ अध्ययन-अध्यापन के साथ किया गया, वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसी में "विद्यालय" के "विद्या का घर" कहे जाने की सार्थकता है।

आश्रमस्थैस्तथा तत्र समायातैश्च निश्चितम् ।
अवरुद्धय तु सप्ताहं शिक्षा तांलौकिकीं भवेत् ।।१४।।
विद्याया विषये चर्चा याऽमृतत्वाय कल्पते ।
स्वभावे विनयं शीलं समाविष्टं करोति या ।।१५।।
अपेक्ष्य लौकिकीं शिक्षां विद्यायात्वात्मवादिनी ।
तुलनायां महत्वं तु तस्या एवाधिकं मतम् ।।१६।।
उपस्थिता जना: सर्वे ज्ञातुमेतच्च विस्तरात् ।
ऐच्छन्येन समे तथ्यं कुर्युस्तेऽवगतं स्वत: ।।१७।।

टीका- आगन्तुकों और आश्रमवासियों ने मिलकर निश्चय किया कि एक सप्ताह तक लौकिक जानकारियाँ देने वाला शिक्षा क्रम बन्द रखा जाय और विद्या पर अधिक प्रकाश डाला जाय, जो अमृत कहलाती है और स्वभाव में विनयशील शालीनता का समावेश करती है। लौकिक शिक्षा की तुलना में आत्मवादी विद्या का कितना अधिक महत्व है-इसे सभी उपस्थित जन और भी अधिक विस्तार से जानना चाहते थे। या इस तथ्य से किसी न किसी रूप में अवगत तो सभी थे ।। १४-१७।।

साप्ताहिकं समारब्धं संस्कृते: सत्रमुत्तमम् ।
आगत: समुदायश्च यथास्थानमुपाविशत् ।।१८।।
उद्बोधको महर्षि: सोऽगादीत्कात्यायनस्तदा ।
प्रगते: सार्वभौमाया नृणामाधारगानि तु ।।१९।।
तथ्यानि यानि संप्राप्य स्फुलिंग इव शक्तिमान् ।
विकासं पूर्णमासाद्य जीवो ब्रह्म भवेद् ध्रुवम् ।।२०।।

टीका- एक सप्ताह का संस्कृति सत्र आरम्भ हुआ। उपस्थित समुदाय अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर पंक्तिबद्ध होकर आसीन हुआ। उद्बोधनकर्त्ता महर्षि कात्यायन ने जिज्ञासुओं की आकांक्षा के अनुरूप मनुष्य की सर्वतोन्मुखी प्रगति के आधारभूत तथ्यों पर प्रकाश डालना आरम्भ किया, जिन तथ्यों को प्राप्त कर शक्तिशाली चिनगारी के रूप में विद्यमान जीव, पूर्ण विकास को प्राप्त कर ब्रह्म रूप बन जाता है।। १८-२०।।

कात्यायन उवाच-

भद्रा ! जन्मना मर्त्य: पशुवृत्तियुतो भवेत् !
सञ्चितो व्यवहारो यो योनिषु स हि निम्नग:।।२१।।
भ्राम्यताऽशीतिसंख्यासु चतुरत्तरकासु तु ।
गरिम्णो मर्त्यभावस्य त्याज्यो विस्मर्य एव स:।।२२।।
देवयोनिगरिम्णश्च योग्यानां गुणकर्मणाम् ।
प्रकृतेरपि चाऽभ्यास कर्तव्यो मर्त्यजन्मनि ।। २३।।
त्यागस्वीकारयोरेवानयोर्या प्रक्रिया मता ।
देव संस्कृतिरुक्ताऽतो देवत्वं नर आश्रयेत् ।। २४।।

टीका- कात्यायन बोले-हे भद्रजनो ! मनुष्य जन्मत: पशु-प्रवृत्ति का होता है। चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करते समय, जो व्यवहार संचित किया गया है, वह मनुष्य जीवन की गरिमा को देखते हुए ओछा पड़ता है। इसलिए उसे भुलाना-छोड़ना पडता है। इस देव योनि की गरिमा के उपयुक्त गुण, कर्म, स्वभाव का अभ्यास करना पड़ता है। इसी छोड़ने-ग्रहण करने की उभय पक्षीय प्रक्रिया को देव संस्कृति भी कहते हैं, जिससे मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है ।। २१-२४।।

शिक्षा और विद्या में अन्तर समझना अत्यन्त अनिवार्य है। बहुसंख्य व्यक्ति दोनों को एक ही मानते एवं स्वयं तथा अपनी सन्तानों के लिए बहिरंग की जानकारी देने वाली शिक्षा को ही समुचित मान बैठते हैं।

शिक्षा का अर्थ है, जानकारी को व्यापक बनाना, बुद्धि विस्तार करना, ताकि वह दैनन्दिन जीवन में काम आ सकें। विद्या वह है, जो जीवन को सुसंस्कारी बनाती एवं आत्मिक प्रगति में सहायक भूमिका निभाती है। दोनों ही समग्र मानवी विकास के लिए जरूरी हैं। जहाँ एक, व्यक्ति के बहुमुखी लौकिक विकास के लिए उत्तरदायी है, वहाँ दूसरी, व्यक्ति के अन्त:क्षेत्र के परिशोधन, परिष्कार एवं उन्नयन की भूमिका सम्पादित करते हैं। अत: शिक्षा मनुष्य के बहिरंग जीवन को सुविकसित करती है और विद्या अन्तरंग को। शिक्षा सांसारिक योग्यता, प्रतिभा बढ़ाती है और विद्या मनुष्य को सुसंस्कारी,उदार, उदात्त बनाती है-व्यक्तित्व को श्रेष्ठता एव शालीनता से सुसम्पन्न करती है। एक को सभ्यता के विकास का साधन तथा दूसरे को सांस्कृतिक उन्नति का माध्यम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समझा जा सकता है। प्रगतिशील जीवन दोनों के समन्वय एवं सुविकसित होने पर बनता है।

ऋषि श्रेष्ठ कात्यायन यहाँ बड़े स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि कुसंस्कारों का बोझ अपने सिर पर लिये नर-पशु के रूप में जन्मे अनगढ़ मनुष्य के लिए सुर दुर्लभ मानव योनि में जो बहुमूल्य अवसर स्वयं के उत्थान हेतु मिला है, उसे गँवाया नहीं जाना चाहिये। पशु स्तर त्याग कर मानवी गरिमा में प्रवेश करना ही प्रकारान्तर से "देव-संस्कृति" है। शब्दार्थ एवं भावार्थ दोनों ही रूप में इसका आशय है-ऐसी विद्या, जो पेट-प्रजनन तक सीमाबद्ध रखने वाली पशु-प्रवृत्तियों का परित्याग एवं देवत्व को अन्तराल में उतारने, उत्कृष्ट आदर्शवादिता को जीवन में समाविष्ट करने का सर्वांगपूर्ण शिक्षण दे। कायाकल्प करने के कारण ही इसे अमृत कहा गया है।

नाञ्जसाऽभ्येति चैषा तु शिक्षया यत्नेन मानवैः।
शिक्षणीया भवत्येषा विद्या प्रोक्ता मनीषिभिः ।।२५।।
सम्बद्धा सुविधाभिस्तु साफल्येन च या तु सा ।
क्षेत्रस्य भौतिकस्यात्र शिक्षा प्रोक्ता मनीषिभिः।।२६।।
शिक्षाऽप्यस्ति च सा नूनमनिवार्या तथाऽपि तु ।
अपूर्णैव तथैकांगं विना विद्या समन्वयात् ।। २७।।

टीका- यह अनायास नहीं, अति प्रयत्न पूर्वक सीखनी और सिखानी पड़ती है। यही विद्या है। शिक्षा उसे कहते हैं, जो भौतिक क्षेत्र की सुविधा-सफलता से सम्बन्धित है। शिक्षा भी आवश्यक तो है पर विद्या का समन्वय हुए बिना वह अपूर्ण एवं एकांगी ही रहती है ।। २५-२७।।

विद्या एवं शिक्षा का युग्म है। शिक्षा बाहर से थोपी जा सकती है एवं वह लौकिक प्रगति में सहायक होती है। किन्तु विद्या को बाहर से आरोपित नहीं किया जा सकता। बिना अन्तः की सुसंस्कारिता के अनगढ़ व्यक्ति को दी गयी शिक्षा तो बन्दर के हाथ तलवार की तरह सिद्ध होती है। विद्या के लिये मनुष्य को स्वयं प्रयास करना पड़ता है, प्रेरणा स्रोत कोई भी बन सकता है-वातावरण, शिक्षक, अभिभावक, मित्र अथवा हितैषीगण। विद्या अर्जन एक प्रकार की साधना है, अन्तः क्षेत्र का प्रचण्ड पुरुषार्थ है, जिसे सम्पादित किए बिना मानव जीवन की हर उपलब्धि व्यर्थ है।

ज्ञानविज्ञानयोर्योगः पन्थानं प्रगतेः सदा ।
सार्वत्रिक्याः प्रशस्तं स विदधाति न संशयः ।। २८।।
शरीरयात्रासौविध्य संग्रहः क्रियते यथा ।
तथैवात्मिकप्राखर्यप्राप्तये यततामपि ।। २९।।
विना तेन नरस्तिष्ठेन्नरवानररूपकः ।
नरपामररूपो वा हेयप्रकृतिकारणात् ।। ३०।।
अविकासस्थितिष्ठेदसन्तुष्टस्तिरस्कृतः ।
स्वास्थ्यविशक्षासाधनानां दृष्ट्यात्रासंसहश्च सः।। ३१।।

टीका- ज्ञान और विज्ञान का समन्वय ही सर्वतोन्मुखी प्रगति का पथ-प्रशस्त करता है। इसलिए शरीर यात्रा की सुविधाएँ जुटाने की तरह ही आत्मिक प्रखरता के लिए भी प्रयत्न होना चाहिए। उसके बिना मनुष्य को नर-वानर या नर-पामर बनकर रहना पड़ता है, हेय आदतों के कारण पिछड़ेपन की स्थिति में पड़ा रहता है और असन्तोष-तिरस्कार के अतिरिक्त स्वास्थ्य तथा साधनों की दृष्टि से भी त्रास सहता है ।। २८-३१।।

सार्थकं जन्ममानुष्यं कर्तुमावश्यकं मतम् ।
सुसंस्कारत्वमत्रैतद् व्यर्थं जन्माऽन्यथानृणाम् ।। ३२।।
तस्योपलब्धेरेषैव विद्यापद्धतिरुत्तमा ।
निश्चिताऽप्यनुभूता च शिक्षाविद्यासुसंगमः ।। ३३।।
महत्वपूर्णो मन्तव्यो नरैः सर्वत्र सर्वदा ।
नोचेन्न स सदाचारं व्यवहर्तुं क्षमो भवेत् ।। ३४।।

टीका- मनुष्य जन्म को सार्थक करने के लिए सुसंस्कारिता का सम्पादन नितान्त आवश्यक माना गया है। विद्या उसी को उपलब्ध कराने की, सुनिश्चित एवं अनुभूत पद्धति है। अस्तु, शिक्षा के साथ विद्या के समावेश का महत्व सर्वत्र समझा जाना चाहिए, नहीं तो, वह दैनिक जीवन में सदाचार का व्यवहार नहीं कर पायेगा ।। ३२-३४।।

मनुष्यों व पशुओं में आकृति भेद होते हुए भी अनेकों में प्रकृति एक-सी पाई जाती है। वनमानुष देखे तो नहीं जाते; किन्तु उस मनोभूमि वाले नर-वानरों की कोई कमी नहीं। ऐसे भी अनेकों हैं, जो निरुद्देश्य जीवन जीते या मर्यादा को तब तक ही मानते हैं, जब तक कि उन पर अंकुश रहे। मनुष्य को जन्म मिलने के साथ-साथ विधाता ने मानव आकृति भी दी है। किन्तु प्रकृति उसे अपने पुरुषार्थ से स्वयं अर्जित करनी होती है। खदान से निकला लोहा मिट्टी मिला होता है। उसे भट्टी में गलाना पड़ता है। जब मिला हुआ अंश जलकर नष्ट हो जाता है, तो वही अनगढ़ लोहा शुद्ध लोहे के रूप में सामने आता है। तपाने पर एवं साँचे में ढलाई करने पर भिन्न-भिन्न पात्रों-उपकरणों के रूप में सामने आता है। लगभग यही तथ्य मनुष्य पर भी लागू होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन निर्वाह के लिये साधन जुटाना है पर यह पर्याप्त नहीं है। अन्तरंग के विकास के बिना जीवन यात्रा अधूरी है। यदि उसने बहिरंग जीवन में काम आने वाले साधन जुटा भी लिये, तो वे आत्मिक प्रगति के अभाव में निरुद्देश्य ही पड़े रहेंगे, साधनों का अम्बार होते हुये भी व्यक्ति अनगढ़ ही बना रहेगा, कोई लाभ उसका उठा नहीं पायेगा।

यहाँ ऋषि ज्ञान व विज्ञान के समन्वय की जीवन में महत्ता प्रतिपादित करते हुए व्यक्ति के सांस्कृतिक विकास के लिए इसे अनिवार्य बताते हैं। ज्ञान वह जो अन्तः की समृद्धि बढ़ाए-गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार करें। विज्ञान वह जो बहिर्मुखी व्यावहारिक जानकारी मनुष्य को दे। दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। ज्ञान संस्कृति का जन्मदाता है, तो विज्ञान सभ्यता का। संस्कृति व सभ्यता एक दूसरे के साथ चलने पर ही मनुष्य को सर्वांगपूर्ण विकास के पथ पर बढ़ाते हैं। अतः विद्या एवं शिक्षा दोनों को, ऊपर बतायी गयी दो आवश्यकताओं को दृष्टिगत रख समन्वित रूप में प्रारम्भ से ही दिये जाने की व्यवस्था बनाई जानी चाहिए। मनुष्य स्वेच्छाचारिता न बरतकर अनुशासित रहे, सदाचारी बने, इसके लिए यह समन्वय अत्यन्त अनिवार्य है।

आगतेषु गुरूष्वत्र महर्षिः स ऋतम्भरः ।
उत्थाय कृतवान् व्यक्तां जिज्ञासां नम्रभावतः।। ३५ ।।

टीका- आगन्तुक अध्यापकों में से महामनीषी महर्षि ऋतम्भर ने उठकर विनम्रतापूर्वक जिज्ञासा व्यक्त की।। ३५ ।।

ऋतम्भर उवाच-

संस्कारिणीमिमां विद्यां विधातुं मर्त्यजीवने ।
समाविष्टां विधिर्वाच्यो बोधबोधनयोः प्रभो ।। ३६ ।।

टीका- ऋतुम्भर ने कहा-भगवन् ! सुसंस्कारी विद्या को मनुष्य जीवन में समाविष्ट करने की विधि-व्यवस्था समझायें। उसे किस प्रकार सीखा और सिखाया जाना चाहिये।। ३६ ।।

कात्यायन उवाच-

भद्र एष शुभारम्भः पितृभ्यां मर्त्यजीवने ।
निजे कृत्वा परिष्कारं विधातव्यो यथा च तत् ।।३७।।
बीजं भवति चोत्पत्तिः क्षुपाणां तादृशां भवेत्।
दायित्वं पितरौ बुद्ध्वा सच्चारित्र्यं च चिन्तनम् ।।३८।।
उच्चस्तरं तु गृहणीयुर्भूत्वा कामातुरास्तु ते ।
अनीप्सितां न चोत्पन्नां कुर्युःसन्ततिमात्मनः।। ३९ ।।

टीका- कात्यायन बोले-भद्रजनो ! यह शुभारम्भ माता-पिता को अपनी जीवनचर्या में सुधार-परिष्कार करके आरम्भ करना चाहिये। जैसा बीज होता है, वैसी ही पौध उगती है। इसलिये जनक-जननी अपने महान् उत्तरदायित्व को समझें और सुयोग्य सन्तान के लिये उच्चस्तरीय चिन्तन और चरित्र अपनाएँ। कामातुर होकर अवांछनीय सन्तान उत्पन्न न करें।। ३७-३९ ।।

काँटेदार बबूल का बीज बोकर आम का वृक्ष पनपने की आशा नहीं की जाती। खाद, पानी, निराई, गुड़ाई जितनी महत्वपूर्ण है, उससे भी अधिक यह कि बीज श्रेष्ठ है या नहीं। किसान इसलिये अपनी फसल बोने से पहले श्रेष्ठ बीज ढूँढते हैं, तदुपरान्त अन्य व्यवस्थाएँ करते हैं। माता-पिता की, शिशु-निर्माण में किसान जैसी ही भूमिका है। जितना श्रेष्ठ चिन्तन व चरित्र का स्तर माता-पिता का होगा, उतनी ही उच्चस्तरीय सुसंतति होगी। एक नया जीवन संसार में प्रवेश ले, उसके पूर्व माता-पिता स्वयं अपनी मनोभूमि बनाएँ, संस्कारों को पोषण दें, तो ही ऐसी श्रेष्ठ सन्तान की अपेक्षा की जा सकती है। जो विद्यार्जन हेतु सक्षम आत्मबल जुटा सके।

अबोधाः शिशवो मातुरुदरावधितः स्वयं ।
अभ्यास्ते कुटुम्बस्य ज्ञेयं वातावृतौ बहु ।। ४०।।
शिशूनां सप्तवर्षाणां प्रायो व्यक्तित्वनिर्मितः ।
पूर्णैव जायते चास्यामवधौ पारिवारिकी ।। ४१।।
वातावृतिः शिशून् कृत्वा पूर्णतस्तु प्रभावितान्।
सुनिश्चिते क्रमे चैतान् परिवर्तयति स्वयम् ।। ४२।।

टीका- अबोध शिशु माता के उदर से लेकर परिवार के वातावरण में बहुत कुछ सीख लेते हैं। सात वर्ष की आयु तक बच्चों का व्यक्तित्व बहुत बड़ी मात्रा में विनिर्मित हो चुका होता है। इस अवधि में पारिवारिक वातावरण का ही भला-बुरा प्रभाव बालकों को सुनिश्चित ढाँचे में ढालता है।। ४०-४२।।

विद्या वह उच्चस्तरीय संस्कारयुक्त मार्गदर्शन है, जिसका शुभारम्भ गर्भावस्था से ही हो जाता है। माता की गर्भकाल की अवधि में जैसी मनःस्थिति होती है, जैसा चिन्तन प्रवाह चलता है, बालक वैसा ही ढलता है। जन्म के तुरन्त बाद से ही वह शिक्षण प्रत्यक्ष रूप से चल पड़ता है। आनुवाँशिकता से गुण-सम्पदा के सन्तान में समाविष्ट होने की बात जितनी सही है, उतनी ही यह भी कि वातावरण में, स्वयं के जीवन क्रम में उन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संस्कारों का समावेश किया गया अथवा नहीं, जो माता-पिता अपनी सन्तानों में चाहते हैं। एक दार्शनिक का वह कथन शत-प्रतिशत सही है, जिसमें उन्होने ५ वर्ष की अवधि के बाद शिक्षण हेतु अपने बच्चे को लेकर आने वाली एक माता को कहा था कि बच्चे को विद्या देने की बहुमूल्य अवधि ५ वर्ष तो वह गँवा चुकी। वस्तुतः सुसंतति के निर्धारण हेतु माता-पिता का स्थान भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि जन्मोपरान्त निर्धारित अवधि में गुरुकुल पहुँचने पर शिक्षक का।

अतः पश्चाद् विनिर्मान्ति व्यक्तित्वं गुरवश्च ते।
नोपदेशेन पाठ्यैर्वा विषयैः सम्भवेदिदम् ।। ४३।।
गुरुकुलेषु निवासस्याऽध्यापनस्याऽपि च द्वयोः ।
कार्यं सहैव सम्पन्नं जायते तेन तत्र च ।। ४४।।
ग्रन्थाऽध्यापनमात्रं न जायतेऽपितु विद्यते ।
प्रबन्धस्तत्र शिक्षाया व्यवहारस्य शोभनः ।। ४५।।
सुयोग्य विरवारस्य भूमिकां निर्वहन्ति ये ।
यत्र वातावृतिः स्फूर्तिदाऽस्ति विद्यालयास्तु ते।।४६।।

टीका- इसके उपरान्त गुरुजन बालकों का व्यक्तित्व बनाते हैं। यह कार्य मात्र उपदेश या पाठ्यक्रम के सहारे सम्पन्न नहीं होता। गुरुकुलों में निवास और अध्ययन के दोनों ही कार्य साथ-साथ चलते हैं। इसलिये वहाँ पुस्तक पढ़ाने का ही नहीं, व्यवहार सिखाने का भी प्रबन्ध किया जाता है। सुयोग्य परिवार की भूमिका जो निभा सकते हैं,जहाँ प्रेरणाप्रद वातावरण होता है, वस्तुतः वे ही विद्यालय कहलाने के अधिकारी हैं।। ४३-४६।।

कुसंस्कारयुते वातावरणे याति विकृतिम् ।
व्यक्तित्वं बालाकानां सा शिक्षा व्यर्थत्वमेति च ।।४७।।
भौतिकी वर्तते चाल्पं महत्वं ज्ञानजं परम् ।
प्रतिभाया महत्त्वेन युतायास्त्वधिकं मतम् ।। ४८।।

टीका- कुसंस्कारी वातावरण में बालकों के व्यक्तित्व उलटे बिगड़ते हैं। शिक्षा के रूप में जो भौतिक जानकारी प्राप्त हुई थी, वह भी निरर्थक चली जाती है। जानकारी का क्रम और संस्कारवान् प्रतिभा का महत्व अधिक है।। ४७-४८।।

माता-पिता बाल्या काल के प्रारम्भिक वर्षों मे बालक के विकास हेतु उत्तरदायी हैं, तो गुरु-शिक्षक उनके उत्तरकाल के लिये। यही वह अवधि है, जिनमें मस्तिष्क की पकड़ अत्यन्त पैनी होती है। बालक गीली मिट्टी के समान होते हैं। इस समय उन्हें जैसे साँचे में ढाला जायेगा, वैसे ही वे बनेंगे। उनका व्यावहारिक शिक्षण मानसिक पोषण जैसा होगा, वैसा ही उनका विकास होगा। वस्तुतः गुरुकुल भी एक परिवार-संस्था ही है, गुरुजन अभिभावक है एवं अन्य साथी भाई-बहिन के समान। जो मर्यादाएँ परिवार-संस्था पर लागू होती हैं, उन्हीं का परिपालन गुरुकुलों में भी होना चाहिये। पारिवारिक स्नेह,यथोचित सुधार हेतु अंकुश, संरक्षण मार्ग-दर्शन पाकर व्यक्तित्व समग्र रूप में निखर कर आता एवं श्रेष्ठ नागरिक को जन्म देता है। यदि गुरुकुल मात्र लौकिक जानकारी तक ही सीमित रहें, वातावरण निर्माण की ओर वहाँ ध्यान न दिया जा रहा हो, तो बालकों में संस्कार नहीं विकसित हो पाते।

वातावृतिः करोत्येतत्कार्यं सम्पन्नमञ्जसा ।
मात्रमध्यापकस्त्वेतन्न कर्तुं प्रभवेदिह ।। ४९।।
शिक्षणेन महत्कार्यं परमध्यापको भवेत् ।
स्वभावेन चरित्रेण व्यवहारेण चोच्चगः ।। ५०।।
काले सोऽध्यापनस्यात्र पाठयत्येव नो परम् ।
अभिभावकदायित्वं तदा निवर्हति स्वयम् ।। ५१।।
दायित्वमेतद् यो यावन्निर्वहेद् वस्तुतस्तु सः।
अधिकारी गुरुत्वस्य वर्तते धन्यजीवनः ।। ५२।।

टीका- यह कार्य विद्यालय का वातावरण ही सरलता से सम्पन्न करता है। अकेला अध्यापक मात्र प्रशिक्षण के सहारे इतना महान् कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता। अध्यापक को अपना स्वभाव, चरित्र और व्यवहार भी उच्चस्तरीय रखना चाहिये, क्योंकि अध्यापन-काल में वह मात्र पढ़ाता ही नहीं, अभिभावकों और परिवार वालों की भी जिम्मेदारी निभाता है इसी जिम्मेदारी को जो, जितनी अच्छी तरह निभा सके, वही सच्चे अर्थों में गुरुजन कहलाने का अधिकारी है तथा उसका जीवन धन्य है।। ४९-५२।।

वर्त्तमान मान्यता विद्यालयों की मात्र इतनी है कि पुस्तकों से लदकर वहाँ तक जाया जाये, समय क्षेप करके बच्चों के शाम को वापस लौटते ही अध्यापक एवं अभिभावक अपने कर्त्तव्यों की इति श्री समझ लें। दोनों के ही रुचि न लेने एवं अभीष्ट वातावरण न बनने के कारण ही शिक्षा का स्तर नित्य गिरता जाता है। लौकिक शिक्षा की पदवी-प्राप्त छात्रों की संख्या नित्य बढ़ती जा रही है। कहीं श्रेष्ठ विद्यार्थी नाम भर को दिखाई देते हैं। जो हैं, वे स्वयं के पुरुषार्थ से अथवा अपनी जन्मजात विलक्षण प्रतिभा के बलबूते ऊँचे उठे होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ ऋषि श्रेष्ठ कात्यायन संकेत करते हैं कि छात्र निर्माण हेतु जितनी बड़ी जिम्मेदारी अभिभावकों की, एवं श्रेष्ठ वातावरण की है, उच्चस्तरीय शिक्षण की है, उससे भी अधिक स्वयं शिक्षक की है। उन्हें व्यक्तिगत जीवन में श्रेष्ठ चरित्र वाला एवं मातृ हृदय सम्पन्न होना चाहिये। पढ़ाना, विद्या को छात्र के अन्दर तक उतार देना जितना जरूरी है, उतना ही अपने चरित्र से शिक्षण देना भी। शिक्षक का यह नैतिक दायित्व है कि वे पहले स्वयं वैसा बनें, जैसा वह छात्रों से अपेक्षा रखते हैं,

ज्ञानात्पुस्तकसम्बद्धादतिरिक्तं च कौशलम् ।
व्यवहारसमुद्भूतं स्वभाव: श्रेष्ठतां गत: ।। ५३।।
तयोर्निर्मितये भाव्यं वातावृत्याऽनुकूलया ।
निर्देशेन तथाऽनेकै: साधनैरपि सन्ततम् ।। ५४।।
विशेषताभिरेताभिर्युता शिक्षणपद्धति: ।
यत्राऽऽस्तु तत्र ये बाला पुष्टिं यान्ति पठन्त्यपि।।५५।।
प्रगतिं सार्वभौमां ते सन्ततं यान्ति च क्रमात।
जीवने चाऽन्यमर्त्यानां कृते प्रामाणिकाश्च ते।।५६।।
परिवाराद् भूमिका सा प्रारब्धा सन्ततं चलेत्।
विद्यालयस्य कैशोर्यं यावदत्येति बालक: ।। ५७।।
प्रौढतां परिपक्वत्वं गृह्णात्येव च नो यदा ।
तदैव ज्ञेयं बालस्य जाता निर्मितिरुत्तमा ।।५८।।

टीका- पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त व्यवहार, कौशल और श्रेष्ठता-सम्पन्न स्वभाव बनाने के लिये तदनुरूप वातावरण , मार्गदर्शन एवं साधन भी होने चाहिये। ऐसी विशेषताओं से युक्त शिक्षण-पद्धति जहाँ है, वहाँ पढ़ने, पलने और बढ़ने वाले बालक सर्वतोन्मुखी प्रगति करते हैं तथा जीवन में अन्य लोगों के लिये प्रमाण बनते हैं। अस्तु, घर-परिवार से विद्यालय की भूमिका आरम्भ, होकर तब तक चलती रहनी चाहिये, जब तक कच्ची आयु पार करके प्रौढ़ता-परिपक्वता की भूमिका न निभाने लगे। जब ऐसा हो जाये, तब समझना चाहिये कि बालक का निर्माण हो गया।। ५३-५८।।

जीवन बहुरंगी है। यहाँ तरह-तरह की परिस्थितियों से, भिन्न-भिन्न मन:स्थिति के व्यक्तियों से निरन्तर पाला पड़ता रहता है। जीवनसंग्राम में सफल होने के लिये व्यक्ति को व्यवहार कुशल होना अत्यन्त अनिवार्य है। इस विधा का शिक्षण किसी विद्यालय में अलग से नहीं दिया जाता, अपितु समग्र शिक्षण पद्धति ही ऐसी होती है, जिससे उससे जुड़ने वाले छात्र सर्वांगपूर्ण विकास कर सकें। शिक्षण तभी समग्र माना जा सकता है, जब बच्चे को परिवार संस्था से लेकर गुरुकुल तक निरन्तर इसी प्रकार मार्गदर्शन मिलता रहे। एक बार मन:स्थिति के साँचे में ढलने पर वह जीवन का एक अंग बन जाती है। तब यह प्रयास पुरुषार्थ सफल हुआ माना जा सकता है।

भद्रा ! नरेषु संस्कारभावनायास्तु जागृते: ।
दायित्वं बालकेष्वत्र जातेष्वपि युवस्वपि ।। ५९।।
समाप्तिं याति नो देवसंस्कृति: प्राक् तु जन्मन:।
पश्चादपि च मृत्योस्तां कर्तुं संस्कारसंयुताम् ।। ६०।।
मानवीं चेतनां दिव्यमकार्षीत्क्रममुत्तमम् ।
नोद्गच्छेत्पशुता मर्त्येऽनिवार्य चाङ्गमत्र तु ।। ६१।।
इदन्तु सभ्यता स्थूलनियमाश्रितमप्यलम् ।
सिद्ध यतीह ततोऽग्रे च मनुष्ये बलिदानिनाम् ।।६२।।
सतां समाजसंस्कारकर्तृणां चित्तभूमिकाम् ।
कर्तुं विकसितां तं च निर्मातुमृषिमुत्तमम् ।। ६३।।
मनीषिणां महामर्त्य देवदूतं समिष्यते ।
संस्कृतेरिदमेवास्ति कार्य मंगलदं नृणाम् ।। ६४।।

टीका- हे भद्रजनो ! मनुष्य में सुसंस्कारिता जगाने का उत्तरदायित्व बालकों के युवा हो जाने पर ही समाप्त हो जाता है। देवसंस्कृति ने जन्म के पूर्व से मृत्यु के पश्चात् तक मानव चेतना को संस्कारित करने का क्रम बनाया है। मनुष्य में पशुता के कुसंस्कार न उभरने देना उसका एक अनिवार्य पक्ष है। यह तो सभ्यता के स्थूल नियमों के माध्यम से भी किसी सीमा तक सध जाता है; किन्तु इसे आगे मनुष्य में संत, सुधारक, शहीद की मनोभूमि विकसित करना; उसे मनीषी, ऋषि, महामानव, देवदूत स्तर तक विकसित करना भी अभीष्ट है। यह कार्य संस्कृति का है।।५९-६४।।

मात्र विद्यार्जन कर विद्वान बना देना, पदवी दिलाकर वैभव सम्पन्न बना देना ही शिक्षा का लक्ष्य नहीं होता। देव संस्कृति के इस महत्वपूर्ण प्रसंग की परिधि अत्यन्त विशाल है। बालक में जगाये गये संस्कारों की परिणति आगे चलकर और भी महान् हो, यह उद्देश्य ऋषिगणों का, शिक्षण प्रक्रिया के मूल में रहा है। गर्भावस्था से ही संस्कारों के पोषण की प्रक्रिया आरम्भ होती एवं मृत्योपरान्त तक चलती रहती है। यह देव संस्कृति के विभिन्न उपक्रमों के माध्यम से सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है। व्यक्ति न बिगड़े, अपनी पूर्व योनियों के चिर संचित संस्कारों की ओर पुनः उन्मुख न हो यह ठीक है, किन्तु यह भी जरूरी है, कि वह और भी श्रेष्ठ बने।

विज्ञानं भौतिकं लोके पदार्थस्य तदोजसः ।
उपयोगं प्रशास्त्येव नियन्त्रणमथापि च ।। ६५ ।।
आश्रित्याध्यात्मविज्ञानमन्तश्चैतन्यगं तथा ।
महाचैतन्यगं नूनं लभ्यतेऽत्रानुशासनम् ।। ६६ ।।
नियन्त्रिता पदार्थाः स्युरन्तश्चेतनया तथा ।
जीवान्तश्चेतना स्याच्च परचैतन्य संयुता ।। ६७ ।।
विकासस्य सुखस्याथ शान्तेः श्रेष्ठः क्रमस्त्वयम् ।
देवसंस्कृतिरेनं च सिद्धान्तं सुप्रतिष्ठितम् ।। ६८ ।।
नरस्य चिन्तने कर्तु चरित्रे सफला ह्यभूत् ।
लोककल्याणमत्यर्थमस्मादेवह्यभूत्ततः ।। ६९ ।।
अतो विश्वस्तरेणेयं श्रेष्ठां याता च मान्यताम् ।
निर्माति मानवं यातु देवं वै देवसंस्कृतिः ।। ७० ।।

टीका- भौतिक विज्ञान पदार्थ एवं पदार्थगत ऊर्जा के नियन्त्रण और उपयोग का मार्ग प्रशस्त करता है। अध्यात्म विज्ञान के सहारे अन्तः चेतना तथा महत् चेतना के अनुशासन हस्तगत होते हैं। पदार्थ पर अन्तःचेतना का नियन्त्रण रहे, अन्तःचेतना महत् चेतना से युक्त रहे। विकास और सुख-शान्ति का श्रेष्ठ क्रम यही है। यह महान सिद्धान्त, देव संस्कृति ने जन-जन के चिन्तन और चरित्र में उतार देने में सफलता पाई है। इसी से महान् लोक-कल्याण हुआ है। इसीलिये इसे विश्वस्तर पर श्रेष्ठ संस्कृति के रूप में मान्यता मिली है। यह मानव को देवता बनाती है, अतः देव संस्कृति कहलाती है।। ६५-७०।।

भारतीय संस्कृति-देव-संस्कृति ने चिर पुरातनकाल से मानवता को अनेकानेक अनुदान दिये हैं। अपने स्वरूप श्रेष्ठ उद्देश्यों, सार्वभौम रूप के कारण इसे विश्व संस्कृति का पर्याय माना जा सकता है। सभ्यता इसी के गर्भ से पनपी जिससे ज्ञान-विज्ञान की अनेकानेक विधाओं ने जन्म लिया एवं सारे विश्व को उन उपलब्धियों से लाभान्वित किया। किसी देश, जाति, धर्म-सम्प्रदाय वर्ग, समाज विशेष तक सीमित न रहकर यह सम्पूर्ण मानव जाति के विकास एवं कल्याण का पथ प्रशस्त करती रही है। इसका मूल आधार है यहाँ की ऋषि परम्परा। ऋषियों की आध्यात्मिक एवं वैचारिक सम्पदा अब भी परोक्ष रूप से वातावरण में गुंजित पाई जा सकती है।

भौतिकी और आत्मिकी की परस्पर अन्योन्याश्रयता का प्रतिपादन देव संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। पदार्थ विज्ञान, भौतिकी स्थूल उपादानों से सम्बन्धित है, जबकि चेतना विज्ञान, आत्मिकी, परोक्ष चेतन हलचलों से सम्बन्धित है। पदार्थ में गति है तो चेतन में गति है। गति के पीछे कोई उद्देश्य न हो, वह गति से (प्रज्ञा-विवेक *अन्तर्दृष्टि*) समन्वित न हो तो एक निरर्थक परिभ्रमण की खिलवाड़ ही चारों ओर नजर आयेगी। साधनों के बिना गति, अन्तश्चेतना भी अधूरी है। भौतिकी का अनुदान 'सुविधा' है तो आत्मिकी का वरदान है प्रतिभा। दोनों की अपनी-अपनी उपयोगिता है, किन्तु इन्हें समन्वित रूप से प्रस्तुत करना संस्कृति का उत्तरदायित्व है। देव संस्कृति ने इन्हीं सूत्रों को जन सुलभ बनाकर जन-जन के मनों तक पहुँचाया है। इसी कारण इसके अनुयायी बाह्य सुख साधनों के उपभोग तक ही सीमित नहीं रहे, अपितु अन्तः के पुरुषार्थ में सतत् संलग्न रहें। धर्म संस्कृति की प्राण चेतना का जीवन्त रहना ही इसके अनुयाइयो की चरित्र निष्ठा के मूल में रही है।

विकसन्ति महात्मानः संस्कृतिश्चापि कुत्रचित् ।
क्षेत्रे विशेष एवात्र परं बद्धा न सीम्नि ते ।। ७१ ।।
विकासं भारते याता देवसंस्कृतिरित्यहो ।
सत्यं परन्तु सा विश्वसंस्कृतौ चिन्तिता बुधैः ।। ७२ ।।
गौरवं चेदमेवेयं गता काले महत्तरे ।
तदा विश्वं सुखं शान्तिमन्वभूवच्च निरन्तरम् ।। ७३ ।।

टीका- संत और संस्कृति किसी क्षेत्र में विकसित तो होते हैं, परन्तु उन्हें किसी सीमा -बन्धन में बाँधा नहीं जा सकता। देव-संस्कृति भारतभूमि में विकसित हुई, यह सत्य है, किन्तु वह वस्तुतः विश्वसंस्कृति के रूप में मनीषियों द्वारा गढ़ी गई थी और यही गौरव उसे दीर्घकाल तक प्राप्त भी रहा। उस समय विश्व ने महान सुख-शान्ति अनुभव की।। ७१-७३।।

यह सही है कि कोई भी विभूति अथवा विशिष्ठता स्थान विशेष से जुड़ी होने के कारण वही नाम ले लेती है; पर वह उस सीमा में आबद्ध संकीर्ण बनी नहीं कही जा सकती। संत सार्वभौम होते हैं, सारी मानव जाति का कल्याण उनका मूल उद्देश्य होता है। भारत को सनातन काल से विश्व गुरु कहलाने का, वसुधा का मुकुटमणि कहे जाने का श्रेय इसलिये मिला कि यहाँ के ऋषियों-चिन्तकों ने सदैव समग्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वसुधा के उत्कर्ष को ध्यान में रखते हुये अपनी गतिविधियाँ चलायीं। उनके प्रतिपादन सार्वभौम हैं। वे विश्व एकता के लिये सारी वसुधा पर भ्रमण करते रहे हैं। उन्होने स्नेह के बन्धन में सारी मानव जाति को सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया एवं इसमें वे सफल रहे। व्यास, वाल्मीकि, बुद्ध-महावीर, शंकराचार्य-रामानुज, कुमारजीव-विवेकानन्द, ज्ञानेश्वर-तुकाराम, नानक-कबीर, एवं महात्मा गाँधी-अरविन्द जैसी विभूतियों ने संस्कृति की इस प्रगति यात्रा को आगे बढ़ाया है। भारतीय संस्कृति उपयोगिता की दृष्टि से विश्वधर्म , विश्वसंस्कृति के रूप में ही आरम्भ से गठित की गई, इसलिये इतनी अधिक विविधताओं का समावेश इसमें मिलता है।

आसुरीषु सदा शक्तिष्वलमाकर्षणं जनैः ।
अन्वभावि भवत्येवानिष्टकारी समं तु तत् ।।७४।।
बाह्याकर्षणमेतासु देवशक्तिषु तादृशम् ।
जायते न परन्त्वन्तः सौन्दर्यं क्षमता च सा ।।७५।।
कल्याणकारिणी नूनमद्वितीयैव विद्यते ।
देवसंस्कृतिरित्यर्थं मानवं तत्प्रपञ्चतः ।।७६।।
संरक्ष्य च सुरौपम्य विकासप्रेरणां तथा ।
विधिं देवोपमं लोके यच्छतीह निरन्तरम् ।।७७।।

टीका- आसुरी शक्तियों में आकर्षण विशेष होता है; परन्तु वे अनिष्टकारी होती हैं। देवशक्तियों में बाह्याकर्षण उतना नहीं होता; परन्तु आन्तरिक सुन्दरता और कल्याणकारी क्षमता अद्वितीय होती है। देवसंस्कृति मानवमात्र को आसुरी प्रपञ्च से बचाकर, देवोपम विकास की प्रेरणा और विधि-व्यवस्था प्रदान करती है।।७४-७७।।

आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता भोग प्रधान है। अधिक उपार्जन एवं उसका उपभोग, सुख-सुविधाएँ इत्यादि ही उनका लक्ष्य बनकर रह गया है। इससे समृद्धि तो बढ़ी है किन्तु सबसे बड़ी हानि यह हुई है कि उससे सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। नैतिकता के प्रति पदार्थ परक दृष्टकोण होने से न केवल दुराचरण बढ़ा है अपितु पारस्परिक सम्बन्धों में रूक्षता संकीर्ण स्वार्थपरता एवं स्वच्छन्द उपभोगवाद ने मनश्चेतना पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। आदर्शवादिता कहने-सुनने की चीज रह गयी है। यह संस्कृति की अवमानना की ही परिणति है। देवशक्तियों को पोषण देने वाली संस्कृति ही उस महाविनाश को बचा सकती है, जो आधुनिकता का भविष्यत् कहा जा सकता है।

देवसंस्कृति का इतिहास बताता है कि अन्तः के विकास एवं मानवी गरिमा की स्थापना हेतु इसकी अवधारणाओं ने अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

देव देने वाले को-और दैत्य-लेने वाले को कहते हैं। जिसने संसार में लिया कम और दिया अधिक है वह देव है। जो लेता अधिक और देता कम है उसकी गणना दैत्यों में की जायेगी। संक्षेप में स्वार्थी को दैत्य और परमार्थी को देव कहते हैं। देवों को मान दिया जाता है और दैत्यों के लिये सहज ही घृणा उठती है। यह नितान्त स्वाभाविक है। स्थिति को देखते हुये लोक मानस में इस प्रकार की प्रतिक्रिया उठाना उचित ही है। व्यक्ति का चिन्तन और कार्य जिस स्तर का है उसी के अनुरूप तो उसे श्रेय दिया या हेय समझा जा सकता है।

तत्व दर्शन में मानव के लिये महानात्मा, देवात्मा, और परमात्मा बनने की दिशा को ही परम लक्ष्य माना गया है। इसी से इस जन्म की सार्थकता है। स्वर्ग-मुक्ति, सिद्धि, आत्म साक्षात्कार, प्रभु प्राप्ति जैसे दिव्य लाभ मात्र परमार्थ पथ पर चलते हुये-देव संस्कृति को अपनाते हुये ही प्राप्त किये जा सकते हैं। सांसारिक यश, गौरव, सम्मान, सहयोग जैसे उच्च स्तरीय लाभ इसी मार्ग पर चलने से मिलते हैं।

श्रेष्ठ मान्यताओं पर आधारित देव संस्कृति के सारे सिद्धान्त अपने आप में इतने सही एवं युगानुकुल हैं, कि आज भी उन्हें परीक्षित कर ऊँचा उठ सकना देवमानव की स्थिति में जा खड़ा होना सम्भव है। इसका एक मात्र कारण यह है कि ऋषियों ने जो अध्यात्म सिद्धान्त निर्धारित किये उन्हें अपनी बहुमूल्य मानवी काया रूपी प्रयोगशाला में सत्यापित भी किया। आत्मा-परमात्मा, कर्मफल, मरणोत्तर जीवन सम्बन्धी आप्तमान्यताओं का भारतीय दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का इसलिये युगों-युगों से सम्मान किया जाता रहा है। उनके आधार पर जीवन दर्शन बना है व भारत निवासी उन पर चल कर प्रगति पथ पर आगे बढ़े हैं। जब भी इन मान्यताओं को झुठलाया गया, उस समुदाय को प्रतिकूलताओं ने घेरा है एवं उसे अंधकार भरे समय से गुजरना पड़ा है।

सन्देशवाहकाश्चास्याः स्व सदाचारतो जनान् ।
प्रशिक्षितात् प्रकुर्वन्तः प्रेरितान् व्याचरन्भुवि ।।७८।।
केवलं न मनुष्यास्ते प्राणिमात्रं तु सर्वदा ।
अन्वभूवन् स्वतुल्यं च तेषामेषा मनःस्थितिः ।।७९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रचण्डात्मीयताधारमाश्रित्याभूत्फलान्वितः ।
उद्घोषो विश्वमाकर्तुं कुटुम्बमिव वर्द्धितम् ।।८०।।

टीका- देवसंस्कृति के महान् सन्देशवाहक अपने-अपने आचरण से जन-जन को प्रेरणा-प्रशिक्षण देते सारे भूमण्डल पर विचरते रहे हैं। वे मनुष्यों को ही नहीं, प्राणिमात्र को ही आत्मवत् अनुभव करते रहे हैं, क्योंकि उनकी मनः स्थिति ही ऐसी थी। इस प्रचण्ड आत्मीयभाव के आधार पर ही सारे विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में विकसित करने का उनका उद्घोष सफल होता रहा है।। ७८-८०।।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से प्रेरित होकर 'बहुजन हिताय' की दृष्टि से यहाँ के निवासी समय-समय पर देश की सीमाओं को लाँघते हुये अपने ज्ञान-विज्ञान की सम्पत्ति को उन्मुक्त हाथों से बाँटने के लिये दूसरे देशों में भी पहुँचते रहे हैं। तब आज जैसे यातायात के सुविकसित साधन भी न थे। दुर्गम पहाड़ों, नदियों, रेगिस्तान, बीहड़ों की कष्टसाध्य यात्रायें उनको पावन मनोरथ से डिगा नहीं पाती थी। वृहत्तर भारत की नींव उनके इन दुस्साहसी प्रयत्नों से ही पड़ी। कुमारजीव, कश्यप, मतंग, बुद्धयश तथा गुणवर्मन आदि बौद्ध भिक्षुओं ने प्राणों को हथेली पर रख कर पैदल चीन की यात्रायें कीं। उनके भाषणों, उपदेशों से वहाँ के मनीषी इतने अधिक प्रभावित हुये कि उस भूमि की चरणरज मस्तक पर लगाने चल पड़े जिसने अमृत तुल्य तत्वज्ञान को जन्म दिया। फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग आदि चीनी विद्वान भारत आये तथा वर्षों तक अपनी ज्ञान पिपासा शान्त करते रहे जो अपने देशवासियों में बाँटने वापिस लौटे। मंगोलिया, साईबेरिया, कोरिया आदि में भी भारतीय विद्वानों के पहुँचने तथा संस्कृति के प्रचार का उल्लेख मिलता है।

कलिंग युद्ध के बाद अशोक का हृदय परिवर्तन हुआ। प्रायश्चित के लिये बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर धर्म के लिये न केवल स्वयं कार्य करना आरम्भ किया; वरन् अपने पुत्र-पुत्री को भी वैसे ही अनुकरण के लिये प्रेरित किया। श्रीलंका में उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को प्रचारार्थ भेजा। गया से बोधिवृक्ष की एक शाखा लेकर उन्होंने लंका में आरोपित की। बौद्धधर्म के धार्मिक चिन्ह, ग्रन्थों एवं प्रासादों के रूप में, जो लंका में दिखाई पड़ते हैं, वे महेन्द्र-संघमित्रा के प्रयासों के ही पुण्य प्रतिफल हैं। बर्मा का पुरातन नाम ब्रह्मदेश है, जिस पर भारतीय प्रभाव की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। बौद्ध भिक्षु यहाँ भी पहुँचे।

कम्बोडिया, तीसरी से सातवीं शताब्दी तक हिन्दू गणराज्य रहा। वहाँ के निवासियों का विश्वास है कि इस देश का नाम भारत के ही एक ब्राह्मण ऋषि कौण्डिन्य के नाम पर पड़ा, जिसने यहाँ नाग कन्या से विवाह किया और अपना राज्य स्थापित किया। उनके बाद जयवर्मन, यशोवर्मन, सूर्यवर्मन आदि राजा हुये। यहाँ के प्रख्यात मन्दिर हैं-अंगकोर के। जिनकी दीवारों के पत्थरों पर रामायण के दृश्य खुदे हुये हैं। लाओस के कुछ मन्दिरों में भी रामकथा के दृश्य देखे जा सकते हैं।

इण्डोनेशिया यों तो वर्तमान मुस्लिम देश है, किन्तु भारतीय संस्कृति की अमिट छाप इस पर आज भी है। इण्डोनेशिया यूनानी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है-भारतद्वीप। जावा, सुमात्रा, बोर्निया आदि इसके द्वीप हैं। प्राचीनकाल में वे सभी भारत के अंग रहे थे। रक्त एवं संस्कृति दोनों ही दृष्टियों से वहाँ के निवासी भारतीयों से अविच्छिन्न रूप से जुड़े हैं। जावा के लोगों में विश्वास है कि भारत के पाराशर तथा व्यास ऋषि वहाँ गये थे तथा बस्तियाँ बसाई थीं। सैलेन्ड राजवंश द्वारा बरोबुदुर जैसे मन्दिर वहाँ बनवाये गये, जिसमें बुद्ध की ४३२ मूर्तियाँ हैं। उन मूर्तियों पर गुप्तकला की भी स्पष्ट छाप है। मन्दिर का बौद्ध स्तूप कलाकृति एवं सौन्दर्य की दृष्टि से संसार भर में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। जावा के जोग, जकार्ता की रामलीला एवं नाटक संसार भर में प्रसिद्ध हैं। वे मूलतः राम कथानक पर आधारित होते हैं। मन्दिरकी प्रस्तर भित्तियों पर सम्पूर्ण रामकथा का चित्रण किया गया है। सुमात्रा में हिन्दू राज्य की स्थापना तथा भारतीय संस्कृति का विस्तार चौथी शताब्दी में हुआ। प्लेमबंग नामक स्थान कभी सुमात्रा की राजधानी था जहाँ भारतीय धर्म संस्कृति एवं अध्यात्म विषयों का शिक्षण होता था। पाली एवं संस्कृत भाषा यहाँ पढ़ाई जाती थी। इण्डोनेशिया के वाली द्वीप के विषय में चीनी कहते हैं कि चौथी शताब्दी में कौण्डिन्यवंशी भारतीय राजा ने हिन्दू राज्य की स्थापना की थी, जो दसवीं शताब्दी तक कायम रहा। बाद में वह हालैण्ड के आधीन आ गया।

बोर्निया द्वीप सबसे बड़ा है। यहाँ हिन्दू राज्य की स्थापना पहली सदी में हो गई थी। शिव, अगस्त्य, गणेश, ब्रह्मा, स्कन्द आदि ऋषियों एवं देवताओं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूर्तियाँ यहाँ प्राप्त हुईं तथा कितने ही पुरातन हिन्दू मन्दिर आज भी मौजूद है, जो यह बताते हैं कि यह द्वीप भारतीय संस्कृति का गढ़ रह चुका है।

इतिहासकारों का मत है कि थाईलैण्ड का पुराना नाम स्याम देश था। तीसरी शताब्दी में वह भारत का उपनिवेश बना तथा बारहवीं शताब्दी तक भारत के आधीन रहा। स्याम की सभ्यता भारतीय संस्कृति से पूरी तरह अनुप्राणित है। उसकी लिपि का उद्गम पाली भाषा में हुआ हैं, जो भारत की देन है। उनके रीति-रिवाजों में भारतीय जैसा साम्य दिखाई पड़ता है। दशहरा जैसे पर्व धूमधाम से मनाये जाते हैं। थाई जीवन में राम एवं रामायण के कथानक की गहराई तक जड़ें जगी हुई हैं। अष्टमी, पूर्णिमा, अमावस्या आदि पर्वों पर भारत की तरह वहाँ भी छुट्टियाँ रहती हैं। थाई रामायण का नाम 'रामकियेन' है, जिसका अर्थ होता है-रामकीर्ति। थाईलैण्ड में अयोध्या और लोषपुरी जैसी नगरियाँ हैं।

तिब्बती साहित्य पर बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव है। वहाँ के राजा सांगचन गम्पो ने भारतीय लिपि के आधार पर तिब्बत की वर्णमाला का आविष्कार किया, नालन्दा के आचार्य शान्तरक्षित ने सन् ७४७ में तिब्बत पहुँच कर समये नामक पहला बिहार बनवाया। तत्पश्चात् काश्मीर के भिक्षुक पद्मसम्भव के प्रयत्नों से वहाँ महायान की तान्त्रिक शाखा का प्रचार हुआ। लामावाद की उत्पत्ति उसी से हुई।

ऐसे अगणित प्रमाण संसार के विभिन्न देशों में बिखरे पड़े हैं, जो यह बताते है कि भारत समय-समय पर अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान सागर से इस वसुधा को अभिसिंचित करता रहा है।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे देवसंस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः, श्री कात्यायन ऋषि प्रतिपादिते "देवसंस्कृतिजिज्ञासा" इति प्रकरणो नाम ।। प्रथमोऽध्यायः ।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

वर्णाश्रम-धर्म प्रकरण

द्वितीये दिवसे चाद्य सत्रस्यास्यास्तु संस्कृतेः ।
उत्साहःसंगतानां स सन्तोषः श्लाघ्यतां गतौ ।।१।।
द्वितीयस्य दिनस्याथ सत्रं शिक्षणदं शुभम् ।
प्रारब्धं बोधयन् सर्वान् विदुषोऽध्यक्ष आलपत् ।।२।।

टीका- आज संस्कृति-सत्र का दूसरा दिन सम्मिलित होने वालों का उत्साह और सन्तोष देखते बनता था। दूसरे दिन का सत्र-शिक्षण आरम्भ हुआ। सभी विद्वानों को सम्बोधित करते हुये सभाध्यक्ष कात्यायन बोले।। १-२।।

कात्यायन उवाच-

धर्मलग्नाः साधका हे भारतोत्पन्नसंस्कृतेः ।
विद्यते मेरुदण्डस्तु धर्मो वर्णाश्रमानुगः ।।३।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चेति चतुर्विधः ।
वर्णोऽस्ति सन्ति चत्वार आश्रमाः क्रमशस्त्विमे ।।४।।
ब्रह्मचर्यं गृहस्थो स वानप्रस्थोऽथ शोभनः ।
संन्यासश्चेति सर्वेऽपि परस्परगता इव ।।५।।
विभाजनमिदं देवसंस्कृतेरनुयायिभिः ।
स्वीकार्यं स महत्वं च विचार्यमपि सन्ततम् ।।६।।
अस्योपयोगितायां तु सगाम्भीर्यं च गौरवे ।
अद्य मुख्यश्च जिज्ञासुरभूदारण्यको मुनिः ।।७।।
विशेषेण तमेवाथ सम्बोध्याध्यक्ष उक्तवान् ।
कात्यायनो महर्षिस्तु ज्वलन् स ब्रह्मतेजसा ।।८।।
गुणकर्मस्वभावानामाधारेण विभाजनम् ।
वर्णानां भवति प्रायो जन्मना न महत्वगम् ।।९।।
कर्मकौशलगं चैतन्मन्तव्यः जन्मनैव चेत् ।
मन्यते कर्म नैवं चेद् वन्ध्यवृक्ष इव स्मृतः ।।१०।।
महत्वेनाभियोज्याश्च सर्वे चत्वार एव तु ।
कर्तुं नियोजितामत्र व्यवस्थां तु समाजगम् ।।११।।
श्रेयः सम्मानमप्येते लभन्तां वर्णसंगताः ।
पुरूषा अत्र नो ग्राह्यो भावोऽयमुच्चनीचयोः ।।१२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

टीका- कात्यायन बोले-हे धर्म परायण सद्ज्ञान साधको! भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड वर्णाश्रम धर्म है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र-यह चार वर्ण हैं और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास यह चार आश्रम, जो परस्पर क्रमबद्ध हैं। देवसंस्कृति के अनुयायियों को, इस विभाजन को समुचित महत्व देना चाहिये और उनकी उपयोगिता-आवश्यकता एवं गरिमा पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। आज के प्रमुख जिज्ञासु मुनिवर आरण्यक थे, उन्हीं को विशेष रूप से सम्बोधित कर ब्रह्मतेज से दुर्धर्ष सत्राध्यक्ष कात्यायन ने कहा-वर्णों का विभाजन गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर होता है। यह वर्गीकरण जन्मजात रूप में महत्वपूर्ण नहीं है। इन्हें कर्म-कौशल के अनुरूप समझा जाना चाहिये। यदि जन्म से किसी वर्ण में है; पर कर्म तदनुकूल नहीं है, तो वह बाँझ-वृक्ष के समान है। समाज-व्यवस्था को सुनियोजित रखने के लिये इन चारों को ही महत्व मिलना चाहिये। इन सभी वर्णों के लोगों को समान-श्रेय सम्मान मिलना चाहिये। इनमें छोटे-बड़े या ऊँच-नीच जैसे भेद-भाव नहीं बरतने चाहिये।। ३-१२।।

देवसंस्कृति को अनायास ही सर्वश्रेष्ठ होने का सुयोग नहीं मिला। इसके अन्तर्गत हुये समाजपरक सभी निर्धारण ब्रह्मवर्चस् सम्पन्न दूरद्रष्टा ऋषियों की अन्वेषण बुद्धि के परिणाम हैं। ऋषिगणों ने वर्ण एवं आश्रम के रूप में समुदाय एवं वैयक्तिक जीवन का चार वर्गों में विभाजन किया है, वह सर्वकालीन, सार्वभौम एवं हर परिस्थितियों में सत्य की कसौटी पर उतरने वाला है। सुव्यवस्थित समाज, जिसमें सभी के लिये उनके कर्मों के अनुरूप उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया गया हो, सांस्कृतिक सुदृढ़ता एवं एकता के लिये उत्तरदायी है। यह पूर्व निर्धारित सुनियोजन देवसंस्कृति की ही विशेषता है। एवं इसी कारण यह मानवी गरिमा की ज्ञान-गंगा आदि काल से प्रवाहित होती आई है।

भारतीय धर्म को वर्णाश्रम धर्म कहा गया है। चार वर्णों से तात्पर्य है-क्रिया-कलापों में उच्चस्तरीय प्रयोजनों के लिये निर्धारण। चार आश्रमों से तात्पर्य है-आयुष्य का भौतिक एवं आत्मिक उद्देश्यों के लिये सुनियोजन। यह विभाजन बड़ा ही वैज्ञानिक, प्रगतिशील और उपयोगी रहा है। चार वर्णों में विभाजित ऋषि कालीन समुदाय एक आर्य जाति के सूत्र में आबद्ध था। सब आर्य थे और सबको समान अधिकार मिले हुये थे। यदि यह विभाजन ऊँच-नीच अथवा छोटे-बड़े के आधार पर हुआ होता, तो सम्भवतः समाज का कोई भी सदस्य इसे मानने को तैयार न होता। यदि जोर-जबरदस्ती के आधार पर किया गया होता, तो सम्भवतः विद्रोह पनप उठता एवं भयानक गृहयुद्ध होता। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये महर्षि कात्यायन यहाँ समझाते हैं कि ऋषियों द्वारा स्थापित इस विज्ञान सम्मत वर्ण व्यवस्था का निर्धारण बड़ा सोच-समझकर सर्वसम्मति से हुआ था। इस सर्वसम्मत विधान को सारा समाज शिरोधार्य करता हुआ अपना कर्तव्य करता चला आया। वस्तुतः संस्कृति की यह सर्वश्रेष्ठ अवधारणा "वर्ण-व्यवस्था" सामाजिक विघटन का कारण नहीं है। इसका कारण तो वे विकृतियाँ हैं, जो वे कालान्तर में उपद्रवों, आक्रमणों एवं सामाजिक अस्त-व्यस्तता के कारण उत्पन्न हो गयी एवं मध्यकाल में निवारण हेतु जिनके लिये नहीं के बराबर प्रयास हुये।

आदिकालीन भारतवर्ष में आर्यों की अपेक्षा अनार्यों की संख्या अधिक रही है जहाँ आर्य सृजनात्मक विचार-धारा के अनुरूप कर्म करते हुये सभ्य, सुसंस्कृत विकासोन्मुख व उन्नत समाज का निर्माण करते हुये एक स्थायित्व लाने का प्रयास करते थे, वहाँ लूटमार करके अपनी आजीविका चलाने वाले अनार्य आये दिन उन पर आक्रमण कर दिया करते थे। उनका सामना करने हेतु सारे आर्य समुदाय को निर्माण कार्य छोड़कर युद्ध में लग जाना पड़ता था और इस प्रकार सभी बनी-बनाई व्यवस्था बिगड़ जाती थी। फिर नये सिरे से काम शुरू करना पड़ता था। खेत उजड़ जाते थे, शिल्प नष्ट हो जाते थे और योजनायें बिगड़ जाती थीं। साथ ही सैकड़ों महान् मस्तिष्क कट कर रणभूमि में गिर जाते थे, जिससे इनमें चल रही विकास की विचारधारायें जहाँ की तहाँ समाप्त हो जाती थीं। इस प्रकार आये दिन बड़ी-बड़ी हानियाँ होती रहती थीं। जितना आगे बढ़ पाते थे, उतना ही पीछे हट जाना पड़ता था।

निदान अनार्यों की इस बर्बरता से परेशान होकर समाज के मनीषी-महात्माओं ने गहराई से विचार कर इस समस्या का कोई स्थायी हल निकालने का निश्चय किया।

अस्तु, उन्होंने विचार किया और समाज को चार वर्णों के नाम से चार वर्गों में विभक्त कर दिया। एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्ग में उन्होंने वे व्यक्ति रखे, जो चिन्तनशील स्वभाव के थे और अध्ययन एवं अध्यापन, समाज-सेवा एवं लोक नेतृत्व में जिनकी रुचि सर्वोपरि थी। इस वर्ग को उन्होंने "ब्राह्मण" कहा। दूसरे वर्ग में वे लोग लिये गये, जो स्वभाव से दुर्धर्ष और साहसी थे। शरीर से अपेक्षाकृत हृष्ट-पुष्ट और संग्राम कार्य में जिनकी रुचि सर्वोपरि थी। इनको "क्षत्रिय" कहा गया। तीसरे वर्ग में वे शामिल किये गये, जो स्वभाव से उत्पादक, संगठनकर्ता, मितव्ययी, शान्त और सहिष्णु थे। कृषि एवं वाणिज्य-व्यवसाय में जिनकी रुचि सर्वोपरि थी। इन तीसरे वर्ग के लोगों को "वैश्य" बताया गया। चौथे वर्ग में उन सब लोगों को रखा गया, जो अविशेष स्वभाव, साधारण रुचि और सामान्य शिल्प के थे और जो उपर्युक्त तीनो में से किसी में भी समस्थ न हो सकते थे, इनको "शूद्र" की संज्ञा दी गई।

यह समग्र विभाजन गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप हुआ। जन्म से तो सभी शूद्र अर्थात् अनगढ़ होते हैं। बड़े होने पर उनकी भावना एवं निर्धारण के अनुरूप वर्ण एवं आश्रम का निर्धारण होता है। जन्म से किसी भी वर्ण में हो; पर यदि कर्म उस निर्धारण के प्रतिकूल है, तो उस व्यक्ति का कार्य के अनुरूप ही मूल्यांकन होगा। संस्कार ही वर्ण निर्धारण करते हैं।

विडम्बना यह है कि आज मात्र वैश्य वर्ण और गृहस्थाश्रम की प्रमुखता है। शेष वर्ण और आश्रम तो विस्मृति के गर्त्त में चले गये। आवरण धारण कर लिये जाते हैं; पर उनके साथ जुड़े कर्तव्यों की ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। वर्ण के तो वंश साथ जुड़ गये एवं आश्रम धर्म लुप्त हो गया।

जैसा स्पष्ट है , लोक शिक्षण में संलग्न समुदाय को"ब्राह्मण" कुकर्मों के कुप्रचलनों के विरुद्ध जूझने वालों को "क्षत्रिय", उपार्जन का दायित्व सँभालने एवं समाज को भौतिक दृष्टि से सुसम्पन्न बनाने वालों को "वैश्य" और श्रमिक समुदाय को "शूद्र" कहा गया है। इन चारों का ही समान महत्व और समान गौरव-सम्मान है।

जब सौ वर्ष की आयु थी, तब २५ वर्ष ब्रह्मचर्य और २५ वर्ष गृहस्थ में लगते थे। यह पूर्वार्ध निजी जीवन था। उत्तरार्द्ध में २५ वर्ष वानप्रस्थ-परिव्राजक बनकर और २५ वर्ष स्थान विशेष पर आश्रम संचालन में लगते थे। यह "संन्यास" था। जो इनकी मर्यादाओं का पालन करे, उसी का वर्णाश्रम धर्म पालन सच्चा है। वंश के आधार पर , वर्ण और वेष के आधार पर आश्रम की कल्पना सर्वथा अवास्तविक है।

वाल्मीकि नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी महान् ऋषि कहलाये और रावण-कुम्भकरण आदि ब्राह्मण परिवार में जन्मने पर भी नीच कहलाये व तिरस्कृत हुये। इन दिनों जन्म से वर्ण बनाने का और विशेषतया एक दूसरे को नीच-ऊँच मानने का प्रचलन सर्वथा अनुपयुक्त है। यह मध्यकालीन सामन्तवादी अन्धकार युग के प्रचलन हैं, जिसमें समर्थों को सम्मानित और असमर्थों को अपमानित किया जाने लगा ही। स्त्री और शूद्र, प्रतिशोध लेने की क्षमता न होने से नीच माने गये। यह प्रचलन समाज के नाम पर कलंक है एवं संस्कृति के स्वरूप को मलीन करने वाला। समय की माँग है, कि इसे उल्टा जाय एवं पुनः उस शाश्वत-जाज्वल्यमान स्वरूप को सामने लाया जाय।

आश्रमोऽस्ति विभागः स जीवनक्रमगो ध्रुवम्।
अस्यस्वीकरणाद्व्यक्तिःसुखंयातिसमुन्नतिम्।।१३।।
समाजश्चापि नो रुद्धो जायते प्रगतिक्रमः ।
सदा सन्तुलनं चात्र तिष्ठत्येव निरन्तरम् ।।१४।।
आत्मिक्याः प्रगतेस्तत्र भौतिक्याश्चाप्यपावृतम्।
द्वारं तिष्ठति सम्भक्ता चतुर्धा जीवनावधिः ।।१५।।
एते चत्वार आख्याता आश्रमा यत्र च क्रमात्।
शक्तिविद्यासु संस्कारोपार्जनं प्रथमं भवेत् ।।१६।।
ब्रह्मचर्य इति ख्यातः संयमो यत्र पूर्णतः ।
मात्रं कामपरित्यागं ब्रह्मचर्यं वदन्ति न ।।१७।।

टीका- आश्रम-जीवन क्रम का विभाजन है। इसे अपनाने से व्यक्ति सुखी और समाज समुन्नत रहता है। प्रगति क्रम रुकने नहीं पाता। सन्तुलन बना रहता है। भौतिक और आत्मिक प्रगति के दोनों ही द्वार खुले रहते हैं। जीवन अवधि को, चार भागों में विभाजित किया है। यही चार आश्रम हैं। प्रथम चरण में-बलिष्ठता, विद्या और सुसंस्कारिता का उपार्जन होना चाहिये-यही ब्रह्मचर्य है, मात्र काम-सेवन न करने को ही ब्रह्मचर्य नहीं कहते।। १३-१७ ।।

दूरदर्शी ऋषियों ने चार आश्रमों में जीवन को पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध में बाँटा है। आयुष्य के पूर्वार्द्ध में समर्थता एवं समृद्धि को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ, इन दो आश्रमों का प्रावधान है। उत्तरार्द्ध में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वानप्रस्थ एवं संन्यास ये दो आश्रम आते हैं। इसमें भावना क्षेत्र को अधिक उत्कृष्ट बनाने तथा समय और श्रम को लोक मंगल में नियोजित रखने के लिये परम्परा बनाई गई है। जीवन को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिये देव संस्कृति के ये निर्धारण बड़े महत्वपूर्ण मानने चाहिये। लौकिक प्रगति एवं आत्मिक उत्कर्ष दोनों ही प्रयोजन इस विभाजन से पूरे होते हैं। यह विशेषता हमें कहीं देखने को नहीं मिलती।

गृहस्थश्चापरो पादो मात्रमुद्वाह एवन ।
गृहस्थ: प्रोच्यतेऽप्यत्र संस्था तु परिवारगा ।। १८।।
समर्था सफला चाऽपि क्रियते चेत्तदैव तु।
गृहस्थ: प्रोच्यते यत्र वर्गे निर्वाह आदृत: ।। १९।।
स एव परिवारश्च सदस्यास्तत्र दुर्बला: ।
पोष्यास्तु सबला ये च विधातव्यास्तु ते स्वयम्।।२०।।
स्वावलम्बिन एवं च संस्कारपरिसंस्कृता: ।
सहकारगताश्चाऽपि, विद्यालय इहोच्यते ।। २१।।
परिवारस्य संस्थाया अस्योद्देश्यतया मता ।
समुन्नतिस्तथा चैषा भावना विकसिता भवेत्।।२२।।
वसुधैव कुटुम्बस्य भावनायां निरन्तरम् ।
समाजरचनायाश्च साऽऽधारत्वेन सम्मता ।। २३।।
पारिवारिकतैवैषा या विकास्या च सर्वत: ।
प्रत्येकं मनुजस्तिष्ठेत्सदस्यत्वेन सम्मत: ।। २४।।
विश्वव्यापिकुटुम्बस्य स्व च मन्येत स स्वत: ।
सम्पूर्णस्य समाजस्याविच्छिन्नं चांगमुत्तमम् ।। २५।।

टीका- दूसरा चरण गृहस्थ है। गृहस्थ धर्म के पालन का अर्थ केवल विवाह करना नहीं, परिवार संस्था को समर्थ और सफल बनाना है। जिस समुदाय के बीच निर्वाह चलता है, वह परिवार है। परिवार के असमर्थ सदस्यों का भरण-पोषण और समर्थ सदस्यों को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी एवं सहकारी बनाने की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। परिवार को सुसंस्कारिता की पाठशाला माना गया है। उसका उद्देश्य परिवार संस्था को समुन्नत बनाना है। यह पारिवारिकता 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में विकसित होनी चाहिये। समाज संरचना का आधारभूत उद्देश्य पारिवारिकता ही है। इसे हर क्षेत्र में विकसित होना चाहिये। हर व्यक्ति विश्व-परिवार बन कर रहे। अपने को पूरे समाज का एक अविच्छिन्न अंग माने।। १८-२५।।

ऋषियों द्वारा निर्धारित विद्या एवं बल सम्पादन हेतु नियोजित ब्रह्मचर्य की अवधि के पश्चात् व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। यह मात्र दो कायाओं का गठबन्धन ही नहीं, सुसंस्कारिता उपार्जन की प्रयोगशाला भी है, जिसमें सभी पारिवारिक जनों के साथ रहते हुये सहकारिता, अध्यवसाय एवं आत्मावलम्बन का प्रशिक्षण लिया जाता है। वस्तुत: परिवार समस्त मानव समुदाय के रूप में फैले स्रष्टा के वृहत परिवार की एक छोटी इकाई है। हर मनुष्य मात्र अपने परिवार तक ही सीमित न रह कर चिन्तन को वृहत् विस्तार दे एवं विराट्विश्व को अपना कार्यक्षेत्र माने, पारिवारिक भावना का विस्तार कर इस उद्यान को समुन्नत बनाए, ऐसी ऋषिगणों की इच्छा रही है। गुरुकुल से लेकर संयुक्त कुटुम्ब तक में इसी भावना के विकास का प्रावधान है। इसी कारण परिवार संस्था को सम्मानित किया गया है।

गृहस्थ-धर्म अन्य सभी धर्मो सें अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। महर्षि व्यास के शब्दों में **"गृहस्थ्येव हि धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते"** गृहस्थाश्रम ही सर्व धर्मो का आधार है। **"धन्यो गृहस्थाश्रम:"** चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम धन्य है। जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते है, उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं।

श्रीराम को गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता बताते हुये चित्रकूट में भरत जी कहते हैं-

धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन् क्लेशमाप्नुहि ।
चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमाश्रमम्।।

धर्मानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णो के पालन करने का कष्ट आप स्वीकार कीजिये, क्योंकि हे धर्मज्ञ ! चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम ही धर्मज्ञशील लोग सर्वोत्तम बतलाते हैं।

यौवने योजनास्याच्च भौतिकोत्पादनस्य सा ।
प्रगतेश्चाऽपिस्वस्थाऽस्तिस्वावलम्बनसंस्थिते:।।२६।।
सार्वभौमसमृद्धेश्च समय: शुभ एष तु ।
उपयोगिश्रमासक्तै: समृद्ध्यै भाव्यमेव च ।। २७।।
प्रयासोऽयं गृहस्थस्य धर्मस्यैवांगतां गत: ।
जीवनस्यार्धमस्त्येतद् भौतिकेभ्यस्तु निश्चितम्।।२८।।
प्रयोजनेभ्य एवाऽपि स्वार्थपारार्थ्यहेतवे ।
ब्रह्मचर्ये गृहस्थे च परेषामात्मनस्तथा ।। २९।।
शारीरिक्यास्तथा तस्या मानसिक्या अपि त्विह।
सामाजिक्यास्तथाऽऽर्थिक्या:समृद्धि:क्रियतेऽभित:।।३०।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निश्चितं शेषमर्धं च परमार्थस्य वृद्धये ।
भावनायाश्चरित्रस्य सत्प्रवृत्तेश्च वृद्धये ।। ३१ ।।

टीका- युवावस्था में भौतिक उत्पादन और प्रगति की योजना सामने रहनी चाहिये। अपने स्वावलम्बन और सार्वजनिक समृद्धि के संवर्धन का ठीक यही समय है। उपयोगी श्रम में संलग्न रहकर व्यापक समृद्धि के लिये प्रयत्नरत होना चाहिये। यह प्रयास गृहस्थ धर्म का ही अंग है। आधा जीवन भौतिक प्रयोजनों के लिये और स्वार्थ-परमार्थ प्रयोजनों के लिये निर्धारित है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ में अपनों तथा अन्यायन्यों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक समृद्धि का सर्वतोन्मुखी संवर्धन किया जाता है। शेष आधे जीवन को पारमार्थिक, भावनात्मक, चारित्रिक एवं सत्प्रवृत्ति संवर्धन के लिये नियोजित रखा जाता है।। २६-३१।।

जहाँ गृहस्थाश्रम में व्यक्ति युवा व बल सम्पन्न होने के कारण स्वयं परिवार एवं समस्त समुदाय की समृद्धि बढ़ाने का प्रयास करता है, वहाँ अन्तिम दो आश्रमों, वानप्रस्थ व संन्यास में सारी क्षमतायें दूसरों को ऊँचा उठाने, उनका भावनात्मक उत्कर्ष करने हेतु नियोजित कर दी जाती है। आयुष्य के पूर्वार्द्ध को मूलतः बहिरंग के विकास हेतु, बल-सामर्थ्य, वैभव उपार्जन की पाठशाला माना जा सकता है, तो उत्तरार्द्ध को समुदाय के गुण, कर्म स्वभाव की परिष्कृत हेतु-समाज में सत्प्रवृत्तियों के विस्तार हेतु नियोजित एक कर्मशाला कहा जा सकता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य-गृहस्थ एवं वानप्रस्थ-संन्यास का सुविभाजित कार्यक्षेत्र है। कहीं किसी भी प्रकार व्यक्ति के समग्र-विकास जीवन-व्यवस्था की उपेक्षा-अवहेलना इससे नहीं होती और न सुव्यवस्थित निर्धारण के कारण कर्तव्य-सम्पादन में कोई कठिनाई ही आती।

वस्तुतः-आश्रम व्यवस्था समाज सेवा का उत्कृष्ट आदर्श है। ब्रह्मचर्य द्वारा शारीरिक शक्तियों का जागरण करना और उसे समाज को समर्पित कर देना । गृहस्थ में परिवार का पालन-पोषण भी उसी का एक रूप है। वानप्रस्थ उस क्षेत्र से भी आगे बढ़कर विश्व परिवार में आत्माहुति है। यह त्याग शनैः शनैः बढ़ता हुआ आत्म-कल्याण की अन्तिम भूमिका संन्यास तक पहुँचता है।

देवसंस्कृतिरेतस्मै वानप्रस्थाश्रमस्य च ।
संन्यासस्य व्यधात्पूर्णा व्यवस्था सुदृढ़ामिह ।। ३२ ।।
जनसम्पर्कमार्कर्तुमन्यान् वा रचनात्मकान् ।
कार्यक्रमांश्च जागृत्यै सामर्थ्ये तु शरीरगे ।। ३३ ।।
वानप्रस्थक्रमः सोऽयं निर्वोढुं शक्यते जनैः ।
क्षीणायां वपुलः शक्तौ संन्यासी तु कुटीचर ।। ३४ ।।
एकदेशस्थितो दद्यात् साधनाया अथापि च ।
प्रेरणा शिक्षणस्यात्र पुण्यां हितहितां सदा ।। ३५ ।।

टीका- देव संस्कृति ने इसके लिये वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों की सुदृढ़, अपने में पूर्ण व्यवस्था बनाई है। जन-जागरण के लिये जन सम्पर्क एवं रचनात्मक कार्यक्रम संचालन योग्य शारीरिक सामर्थ्य रहते वानप्रस्थ क्रम निभाया जाना चाहिये । शारीरिक शक्ति क्षीण होने पर कुटीचर संन्यासी के रूप में एक स्थान पर रहकर पुण्यदायी, लोकहितैणी साधना, शिक्षण एवं प्रेरणा संचार का काम सँभालना चाहिये।। ३२-३५ ।।

गृहस्थस्य विरक्तस्य वानप्रस्थस्य मध्यगः ।
वानप्रस्थसुसंस्कारान् स्वीकुर्वन्निवसेत्वन्वचित् ।। ३६ ।।
आरण्यके यथाकालं कर्तव्यानि निजानि च ।
निर्वोढुमनुगन्त्री च शिक्षामासादयेन्नरः ।। ३७ ।।
साऽधुनाऽपि तथा कार्या कार्यं यच्च महत्वगम् ।
कर्तु हस्तगतं तच्च पूर्वमावश्यकं ततः ।। ३८ ।।
अनुभवं शुभमभ्यासं कुर्यादिदमुच्यते ।
वानप्रस्थस्य दीक्षायाः शुभारम्भस्वरूपकम् ।। ३९ ।।
वानप्रस्थाश्च स्वस्यास्य क्षेत्रस्य परिधेर्बहिः ।
दूरक्षेत्रेषु गत्वा ते सेवन्तै जनता सदा ।। ४० ।।

टीका- गृहस्थ और विरक्त-वानप्रस्थ के मध्यान्तर में वानप्रस्थ संस्कार सम्पन्न करते हुए कुछ समय किसी उपयुक्त आरण्यक में रहकर अपने नये कर्तव्य-उत्तरदायित्व के निर्वाह में सहायक हो सकने वाली शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए तथा साधना करनी चाहिए। हर महत्वपूर्ण कार्य को हाथ में लेने से पूर्व उसके लिए आवश्यक अनुभव एवं अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। यही वानप्रस्थ की दीक्षा का शुभारम्भ स्वरूप है। वानप्रस्थ अपने परिचित क्षेत्र की परिधि से बाहर निकलकर दूर क्षेत्रों में सेवारत रहते हैं ।। ३६-४०।।

परमार्थ प्रयोजन के निमित्त, जनमानस का भावनात्मक परिष्कार करने के लिए देव संस्कृति की बड़ी ही सुन्दर वानप्रस्थ एवं सन्यास के रूप में आश्रम व्यवस्था है, जो आयुष्य के उत्तर काल में सम्पन्न होती है। पूर्वार्द्ध में अर्जित विद्या, संचित अनुभवों की सम्पदा से विभूषित व्यक्ति का यथाशक्ति, सर्वश्रेष्ठ लाभ समाज को मिले, इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था के मूल में यही तत्व दर्शन है। जब तक शरीर साथ दे, तब तक निरन्तर समाज *परिकर* में भ्रमण करते हुए जनजागृति का अलख जगाया जाय, श्रेष्ठता का पक्षधर वातावरण बनाया जाय। जब शरीर बल क्षीण हो जाता है, वार्धक्य के कारण शक्ति उतनी नहीं रहती, तब संन्यास आश्रम ग्रहण कर किसी स्थान विशेष, आरण्यक, संस्कारित तीर्थ पर स्थिर हो आत्म परिष्कार, उन्नयन की साधना, जनमानस के परिष्कार हेतु लोक शिक्षण एवं धर्म धारणा के प्रसार-विस्तार का पुण्य कार्य सम्पन्न किया जाय। यही ऋषिगणों द्वारा निर्धारित व्यवस्था है, जो आदि काल से चली आ रही है।

वानप्रस्थ हेतु ऋषि आदेश देते हैं कि गृहस्थाश्रम के दायित्वों से निवृत्ति के तुरन्त बाद स्वयं को इस पुण्य-प्रयोजन हेतु दीक्षित करना चाहिए। यह कार्य तीर्थ क्षेत्र, श्रेष्ठ सन्तों अथवा आरण्यकों में रहकर उनके मार्ग दर्शन में सम्पन्न हो सकता है। हर कार्य के लिए समुचित शिक्षण अनिवार्य है। बिना शिक्षण के न तो कोई चिकित्सक बन सकता है, न ही अध्यापक। जब समाज रूपी विराट् तन्त्र का लोक शिक्षण करना हो, तो इस विधा में प्रशिक्षित होना जरूरी है । तदुपरान्त कार्य क्षेत्र में निकला जाय, यह अपने परिचित सम्पर्क के क्षेत्र से अलग हो। इससे नयों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है, झिझक खुलती है एवं पुराना परिकर न होने के कारण किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं रहता।

आध्यात्मिक और पारमार्थिक गतिविधियाँ अपनाकर जीवन के उत्तरार्ध को इतना मृदुल और सरस बनाया जा सकता है, मानो नवीन जन्म ग्रहण किया गया है। जिस प्रयोजन के लिए यह शरीर मिला है-मानव जन्म का जो परम लक्ष्य है, वह पूर्वार्ध में यत्किञ्चित् ही पूरा हो पाता है। अधिक उत्तम सुअवसर तो उत्तरार्ध में ही मिलता है। मानसिक उभार उतर जाने और परिवार का भार हलका हो जाने से मन भी अच्छी तरह लगता है और चित्त के डाँवाडोल होने की-लुढ़कने-फिसलने की आशंका भी कम रहती है। मरण का दिन समीप आता देखकर परमार्थ की पुण्य पूँजी संग्रह करने के लिए-अगले जन्म में ऊँची स्थिति पाने के लिए-उत्कण्ठा जाग्रत होती है और अधिक गम्भीरतापूर्वक दिव्य जीवन की उन गतिविधियों को अपनाया जा सकता है, जो चढ़ती उम्र में प्राय: अरुचिकर और कठिन लगती थीं।

ब्रह्मविद्या की तत्व-दर्शन ज्ञान-साधना-योगाभ्यास की तप-साधना-लोकमंगल की सेवा-साधना, यह तीनों अमृतमयी देवसरितायें मिलकर गंगा-यमुना-सरस्वती के मिलन, संगम का प्रयोजन पूरा करती है और तीर्थराज प्रयाग जैसी त्रिवेणी इस जीवन में प्रादुर्भूत होती है। यह अभिनव आनन्द अपने ढंग का अनोखा है और ऐसा है, जिससे बालकपन, किशोरावस्था और यौवन में जो अर्जित किया गया था, उससे कम नहीं, वरन् अधिक ही आनन्दमयी विभूतियाँ उपलब्ध हो सकती हैं-होती हैं। सम्पदाओं से विभूतियों का स्तर हलका नहीं, भारी ही है। इसलिए पूर्वार्ध में जो उपार्जित किया गया था, उसकी तुलना में उत्तरार्ध की कमाई का मूल्य भी अधिक ही आता है। ऐसी दशा में परमार्थ परायण उत्तरार्ध में प्रवेश करने वाले को बाल्यकाल और यौवन के चले जाने का पश्चाताप नहीं करना पड़ता, वरन् यही अनुभव होता है कि वह अल्हडपन चला गया सो, अच्छा ही हुआ, यह ढलती आयु ऐसे अनुदान-वरदान लेकर आई है, जिनका इस गधा पच्चीसी के दिनों मिल ही सकना कठिन है। ऐसे चिन्तन के रहते किसी को पूर्वार्ध के बीत जाने से दु:खी होने, पछताने की जरुरत नहीं पड़ती, वरन् यह अधिक महत्वपूर्ण अवसर हाथ लगने का सन्तोष ही होता है।

जीवन उतना ही सार्थक है, जितना कि सदुद्देश्यों के लिये जिया जाता है।

कुर्वते वानप्रस्थास्ते समाजे सर्वदैव तु ।
सद्भावस्यज्ञानस्य वृद्धिमत्र निरन्तरम् ।। ४१।।
रचनात्मक वृत्तीनामपि लोकहितात्मनाम् ।
मूढानां मान्यतानां च वारणं तु कुरीतिभि: ।। ४२।।
विद्यते युगधर्मोऽयं शाश्वती च परम्परा ।
प्रत्येकस्मिन् युगे ग्राह्या जनैरेषा परम्परा ।। ४३।।

टीका- वानप्रस्थ समाज में निरन्तर सद्ज्ञान, सद्भाव एवं लोकोपकारी रचनात्मक सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने तथा कुप्रचलनों, मूढ़मान्यताओं आदि के निवारण का कार्य करते हैं। यह शाश्वत परम्परा भी है और युग धर्म भी। अत: प्रत्येक युग में इस परम्परा का अनुसरण व्यक्तियों को करना चाहिए ।। ४१-४३।।

आश्रमेषु चतुर्ष्वेव वानप्रस्थो महत्त्वग: ।
लोकमंगलसिद्धिश्च जायते तत्र संभवा ।। ४४।।
अस्मादेवाश्रमाद् योग्यसमर्थानां चमूरिव ।
लोकसेविनृणांवर्ग उदेत्यनुभवाऽधिक: ।। ४५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर्वेषां विदितं चैतल्लोकमंगलकार्मुकः ।
उदारहृदयो यश्च मनुजोऽनुभवी भवेत् ।।४६।।
आत्मकल्याणवद् विश्वकल्याणं कर्तुमुत्सहेत् ।
स एव निश्चितं नात्र विचिकित्सा मनागपि।।४७।।
धनव्ययो न येषु स्याद् योग्यता भावना धिया ।
मूर्धन्या ये विनिर्मन्ति ते नरा लोकसेविनः ।।४८।।
देशं समाजमप्यत्र सम्पन्नं शक्तिसंयुतम् ।
तेषां यदा भवेदत्र न्यूनता तर्हि वर्धते ।।४९।।
अविकासस्थितिर्नूनं सर्वत्रैव महीतले ।
विश्वव्यवस्थितौ येषां दायित्वं विद्यते नृणाम्।।५०।।
पुरोधसां न शालीन्यन्यूनता स्याद् भुवीति तत् ।
वानप्रस्थे समुत्पन्नं परिपक्वं च जायते ।।५१।।

टीका- चारों आश्रमों में वानप्रस्थ सबसे महत्वपूर्ण है। उसी से लोकमंगल की साधना बन पड़ती है। लोकसेवियों की सुयोग्य और समर्थ सेना इसी आश्रम के भाण्डागार से निकलती है। सर्वविदित है कि अनुभवी उदारचेता और लोकमंगल की भावनाओं से ओत-प्रोत व्यक्ति ही आत्मकल्याण और विश्व-कल्याण का उभयपक्षीय प्रयोजन पूराकर पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । जिन पर धन न खर्च करना पड़े, जो योग्यता और भावना की दृष्टि से मूर्धन्य हों, ऐसे लोक-सेवी ही किसी देश या समाज को समर्थ-सम्पन्न बना पाते हैं। उनकी कमी पड़ने से सर्वत्र पिछड़ापन बढ़ता है। विश्वव्यवस्था में शालीनता की मात्रा कम न होने देने की जिम्मेदारी जिस पुरोहित वर्ग की है, वह वानप्रस्थ आश्रम में ही प्रकट और परिपक्व होता है ।। ४४-५१।।

देवसंस्कृति द्वारा निर्धारित आश्रम व्यवस्था में वानप्रस्थों के लिए, चाहे वह किसी भी आयु में लिया गया हो, प्रमुख दायित्व है-जन मानस के परिष्कार का। उसे धर्मतन्त्र के माध्यम से लोक शिक्षण करना होता है। यह कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि वानप्रस्थ को संस्कृति का मेरुदण्ड कहा गया है। समाज में अनगढ़ व्यक्तियों का बाहुल्य है। परम्पराएँ,कुप्रचलन, अंधविश्वास समाज की प्रगति के मार्ग में अवरोध बन गए हैं। जिस प्रकार समय-समय पर हर स्थान आमूलचूल सफाई की अपेक्षा रखता है, उसी प्रकार समाज रूपी परिकर के परिशोधन हेतु, दुष्प्रवृत्तियों के निवारण एवं सत्प्रवृत्तियों के सवंर्धन हेतु, लोकमंगल हेतु समर्पित व्यक्तित्वों की आवश्यकता निरन्तर पड़ती रहती है।

वानप्रस्थ उस भावनाशील लोकसेवी की भूमिका निभाते हैं, जो स्वेच्छा से समर्पित हों, समाज निर्माण को, नैतिक-बौद्धिक क्रान्ति को-अपना कर्त्तव्य मानकर चलते हैं, थोपी गयी जिम्मेदारी नहीं। इसके लिए वे समाज पर भी भार नहीं बनते,वेद में कहा गया है-**"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः"**। यहाँ 'पुरोहित' शब्द से आशय वानप्रस्थ के रूप में कार्यरत पूर्ण समर्पित लोकसेवी से है। "हम पुरोहित राष्ट्र को जाग्रत और जीवन्त बनाए रखेंगे" जैसी उद्घोषणा करने वाला देव संस्कृति का यह प्रतिनिधि घर-घर अलख जगाने-धर्म चेतना के व्यापक विस्तार के अपने संकल्प को बारम्बार दुहराता है।

आज के युग में जहाँ अनास्था का बाहुल्य हैं एवं चारों ओर दुष्प्रवृत्तियाँ ही संव्याप्त नजर आती हैं, वानप्रस्थों के ऊपर महती जिम्मेदारी आती है। अनीति, अभाव व अज्ञान के असुरों से जूझने हेतु समर्पित व्यक्तित्व चाहिए, जो गृहस्थ की जिम्मेदारी से मुक्त हों एवं श्रम, समय, मनोयोग लगाकर लोककल्याण हेतु तत्पर हो सकें।

इस आश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में शास्त्रकारों के स्पष्ट निर्देश हैं-

शास्त्र सम्मति एवं वनाश्रमेतिष्ठन्
पातयश्चैव किल्विषम् ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्
संन्यासविधिना द्विजः ।।
(हारीत स्मृति ६।२)

गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिए। इससे समस्त मनोविकार दूर होते हैं और वह निर्मलता आती है, जो संन्यास के लिए आवश्यक है।

महर्षिपितृदेवानां गत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थ्यमास्थितः ।।
(मनु ४।२५७)

ढलती आयु में पुत्र को गृहस्थी का उत्तरदायित्व सौंप दें। वानप्रस्थ ग्रहण करें और देव, पितर तथा ऋषियों का ऋण चुकावें।

उपासना च सर्वत्राऽनिवार्या सा श्रमेषु तु ।
आश्रमेषु चतुर्ष्वेव स्थानं तस्याः कृते ध्रुवम् ।।५२।।
महत्वपूर्णं स्यादेव युगेऽस्मिन् सुलभा तथा ।
उपयुक्ताऽस्ति च प्रज्ञायोगस्यैषा तु साधना ।।५३।।
केवलेन न कार्यं तूपासनाविधिना भवेत् ।
स्वाध्यायसाधनासेवासंयमानां चतुर्विधा ।।५४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यपद्धतिरूक्ताया तदा विश्वस्य चात्मनः ।
कल्याणरूपं यल्लक्ष्यं द्विष्ठं तत्पूर्णतां व्रजेत् ।।५५।।

टीका- उपासना हर क्षेत्र में आवश्यक है। उसे चारों आश्रमों में समान स्थान और महत्व मिलना चाहिये। इसके लिए वर्तमान युग में प्रज्ञा योग की साधना सर्वसुलभ और सभी आश्रमों के लिए उपयुक्त है। उपासना अकेली से काम नहीं चलता। साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा की चतुर्विध कार्यपद्धति अपनाने से ही आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण का उभयपक्षीय जीवन लक्ष्य पूरा होता है ।। ५२-५५।।

उपासना अन्तःकरण की चिकित्सा है । नित्य प्रतिदिन छाये रहने वाले कुसंस्कार-कषाय-कल्मषों की महाव्याधि से छुटकारा पाने हेतु यह एक अमोघ ओषधि है। हर स्थिति में, चाहे व्यक्ति किसी भी आश्रम में हो उपासना का अवलम्बन उसके लिये अनिवार्य है। इससे श्रेष्ठता के प्रति उच्चस्तरीय श्रद्धा का जागरण होता है, जो कि हर वरिष्ठ देवमानव के लिए, जो सत्यवृत्ति विस्तार का भागीरथी पुरुषार्थ करने को उद्यत है, अनिवार्य है ।

उपासना अकेली ही पर्याप्त नहीं। आत्म पर्यवेक्षण एवं सुधार द्वारा अन्तःकरण के परिमार्जन की साधना, चिन्तन-चरित्र एवं व्यवहार में श्रेष्ठता के समावेश हेतु महामानवों की चरित्र-गाथाओं का स्वाध्याय, समय-विचार-वाणी एवं इन्द्रिय निग्रह की संयम प्रक्रिया एवं समाज परिकर में फैले विराट ब्रह्म की आराधना-सेवा-साधना के रूप में चार गतिविधियों का समावेश भी साधना में होना चाहिये। यह मात्र व्यक्ति की आत्मिक प्रगति का प्रयोजन ही पूरा नहीं करते, अपितु इससे समष्टिगत परमार्थ का वह हित भी सधता है, जिसके लिये मनुष्य ने जन्म लिया है।

लकड़ी और अग्नि की समीपता का प्रतिफल प्रत्यक्ष है। गीली लकड़ी आग के समीप पहुँचते-पहुँचते अपनी नमी गँवाती और उस ऊर्जा से अनुप्राणित होती चली जाती है। जब वह अति निकट पहुँचती है, तो फिर आग और लकड़ी एक स्वरूप जैसे हो जाते हैं। साधक को भी ऐसा ही भाव समर्पण करके ईश्वरीय अनुशासन के साथ अपने आपको एक रूप बनाना पड़ता है। चन्दन के समीप वाली झाड़ियों का सुगन्धित हो जाना, स्वाति बूँद के संयोग से सीप में मोती पैदा होना-पारस छूकर लोहे का स्वर्ण बनना-नाले का गंगा में मिलकर गंगाजल बनना-पानी का दूध में मिलकर उसी भाव बिकना, बूँद का समुद्र में मिलकर सुविस्तृत हो जाना, जैसे अगणित उदाहरण हैं, जिनके आधार पर यह जाना जा सकता है कि भक्त और भगवान् की एकता-उपासना का स्तर क्या होना चाहिए। सृष्टि के आदि से अद्यावधि सच्चे भक्तों में से प्रत्येक को ईश्वर का शरणागत होना पड़ा है। आत्म-समर्पण का साहस जुटाना पड़ा है। इसका व्यावहारिक स्वरूप है, ईश्वरीय अनुशासन को, उत्कृष्ट-चिन्तन एवं आदर्श-कर्तृत्व को अपनी विचारणा एवं कार्यपद्धति से अनुप्राणित करना। जो इस तत्वदर्शन को जानते-मानते और व्यवहार में उतारते रहे हैं, उन सच्चे ईश्वर भक्तों को सुनिश्चित रूप से लाभ मिलते हैं, जिन्हें उपासना की फलश्रुतियों के रूप में कहा जाता रहा है ।

'उपासना' का शब्दार्थ है-'समीप बैठना'। ईश्वर और जीव के बीच रहने वाली दूरी को समाप्त करके जिस प्रक्रिया से निकटता बनती हो, उसे 'उपासना' कहा जा सकता है। समीपता से विशेषताओं का आदान-प्रदान होता है। एक के गुण दूसरे को प्राप्त होते हैं। सत्संग के लाभ और कुसंग के दुष्परिणाम सर्वविदित हैं। अधिक प्रभावशाली तत्व कम सामर्थ्यवानों को अपने प्रभाव से प्रभावित करते हुए सर्वत्र देखे जाते हैं। आग के निकट आने वाले पदार्थ गर्म होते हैं और जलने लगते हैं। बर्फ के स्पर्श में जो भी ठंडक होती है, स्पर्शकर्त्ता को भी अपनी शीतलता प्रदान करती है। उपासना में भी ऐसा ही होता है। ईश्वर महान् है। उसकी समीपता महानता की वृद्धि करती है। ईश्वर अनेकों श्रेष्ठताओं का पुञ्ज है, पास बैठने में वे श्रेष्ठतायें प्रवेश करती हैं। ईश्वर विभूतवान् है, साधक में विभूतियों की अभिवृद्धि होती है। राजा के अर्दली का भी मान बढ़ जाता है, उसके पास बैठने वाले दरबारियों का रुतवा बढ़ता है। फिर कोई कारण नहीं कि ईश्वर की समीपता यदि वास्तविक हो, तो उसका प्रभाव उपासनारत व्यक्ति पर न पड़े। ईश्वर से तात्पर्य है-सद्गुणों का, श्रेष्ठता का समुच्चय। श्रेष्ठता से असीम प्यार, उसे आत्मसात करने की ललक ही सच्ची उपासना है।

उपासना अपने आप में एक समग्र शब्द है। उसे भाव रूप में समझना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति उसके लिए वांछित कर्मकाण्ड पूरे करता है; पर भावना वैसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है, तो वह चिन्ह-पूजा भर है। यदि भावना उच्चस्तरीय है, तो जो भी कृत्य बन पड़े, वही उपासना है।

आश्रमा इव वर्णास्ते चत्वारः सन्ति शोभनाः।
क्षत्रियाश्च विशः शूद्रा समाजे कुर्वते क्रमात् ।।५६।।
सुरक्षायाः समृद्धेश्च श्रमस्यापूर्तिमुत्तमाम् ।
ब्राह्मणस्य च दायित्वमध्यात्मप्रमुखस्मृतम् ।।५७।।
समाजोत्कर्षकार्ये च चतुर्ण्णामपि वर्त्तते ।
महत्वपूर्णमेतेषां योगदानं च वस्तुतः ।।५८।।
उच्चोनीचश्च नैवात्र वर्तते कोऽपि मानवः ।
समाजावयवाः सर्वे वर्णाः स्वस्था अपेक्षिताः।।५९।।
जन्मना जायते शूद्रो मान्यता देवसंस्कृतिः ।
इयमेवास्ति संस्कारैर्द्विजाः पश्चाद् भवन्ति ते।। ६०।।
सामान्यतस्तु वर्णास्ते कर्त्तव्यानि स्वकानि च।
निर्वहन्ति परं कश्चित् समाजस्य परिस्थितेः।।६१।।
पूर्णं सन्तुलनं कर्तुं विवेकेन युतं स्वतः ।
क्षमतां वर्द्धयित्वाऽन्यदायित्वं वोढुमर्हति ।।६२।।
चतुर्ष्वपि यदाप्येको पतनैर्हि तदैव तु ।
समाजस्य स्थितिर्याति विकृतिं हि शनैः शनैः।।६३।।
सावधानैः सदाभाव्यं ब्राह्मणैर्विषयेऽत्र तु ।
पतिते तु यतस्तस्मिन् पतन्त्यन्येऽपि वर्गगाः।।६४।।

टीका- आश्रमों की तरह वर्ण भी चार हैं। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समाज में क्रमशः सुरक्षा, समृद्धि और श्रम की महत्वपूर्ण भौतिक आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। ब्राह्मण का उत्तरदायित्व अध्यात्म प्रधान है। वस्तुतः समाजोत्कर्ष में चारों का योगदान महत्वपूर्ण है। किसी को छोटा-बड़ा या ऊँचा-नीचा नहीं कहा जा सकता। समाज रूपी शरीर के सभी अंग सभी वर्ण स्वस्थ होने चाहिए । देवसंस्कृति की मान्यता है कि जन्म से सभी शूद्र हैं; संस्कारों के द्वारा द्विज बनते हैं। सामान्य रूप से सभी वर्ण अपने निर्धारित कर्तव्य सँभालते हैं। किन्तु समाज तथा परिस्थितियों के विवेकपूर्ण सन्तुलन के लिए कोई भी व्यक्ति वर्ण विशेष की क्षमताएँ अपने अन्दर विकसित करके उनके उत्तरदायित्वों को सँभाल सकता है। चारों में से किसी एक वर्ग का पतन होने से समाज का संतुलन बिगड़ने लगता है। ब्राह्मण वर्ग को इस दिशा में सबसे अधिक सतर्क रहना होता है। उसका पतन होने से अन्य वर्गों का भी पतन होने लगता है ।।५६-६४।।

तुलना ब्राह्मणस्यातो मुखेनोक्ता धियाऽपि च।
चिन्तनं स ददात्येवं शिक्षाया वहते धुरम ।।६५।।
प्रवचनस्य चोद्घोषस्याऽपि दान्तो महात्मनाः ।
जीवनं ब्राह्मणस्य स्यादपरिग्रहिसात्विकम् ।।६६।।
सौम्यं विगततृष्णं च सद्गुणैरभिशोभितम् ।
सेवापरायणं चाऽपि सदाचारयुतं सदा ।।६७।।

टीका- ब्राह्मण की तुलना मस्तिष्क एवं मुख से की गई है, वह उदारहृदय चिन्तन प्रदान करता है और उद्घोष-प्रवचन-प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व भी स्वयं अनुशासित बन सँभालता है। ब्राह्मण का निजी जीवन अपरिग्रही एषणाओं से रहित, सौम्य, सात्विक, सद्गुणी, सेवापरायण एवं सदाचारयुक्त होना चाहिए ।। ६५-६७।।

प्रस्तुत प्रकरण प्रारम्भ करते हुए ही सत्राध्यक्ष श्री कात्यायन जी ने गुण, कर्म, स्वभाव के आधार-पर समाज के चार वर्णों में विभाजित होने की चर्चा की थी। उसी प्रसंग को यहाँ विशद रूप में समझाते हुए वे प्रत्येक के कार्य विभाजन एवं उत्तरदायित्वों की व्याख्या कर रहे हैं। चारों वे स्तम्भ हैं, जिन पर समाज रूपी भवन टिका हुआ है। इनमें से किसी के भी दुर्बल पड़ने से समाज का सारा ढाँचा चरमरा सकता है। वैश्य, क्षत्रिय एवं शूद्र मूलतः भौतिकी प्रधान उद्देश्यों से जुड़े हैं, तो ब्राह्मण आत्मिकी से सम्बन्धित होने के कारण समुदाय की आत्मिक प्रगति के लिए उत्तरदायी हैं।

कोई ब्राह्मण जन्म से नहीं होता। अपितु व्यक्ति अपनी सुसंस्कारिता द्वारा इसी मनुज काया में द्वितीय जन्म प्राप्त कर (द्विज) इस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है। चूँकि आत्मिक उत्कर्ष पर ही किसी वर्ग, समुदाय की प्रगति निर्भर है, ब्राह्मण वर्ग पर विशेष दायित्व हैं, उन्हें अपना स्तर बनाए रखकर औरों के मार्गदर्शन का दुष्कर किन्तु पुण्य कार्य निवाहना होता है। ब्राह्मणों के स्तर पर ही समाज की प्रगति, राष्ट्र का उत्कर्ष निर्भर है।

व्यक्तिगत जीवन में स्वयं के प्रति कठोर, औरों के प्रति उदार, अनुशासित जीवन क्रम, कथनी ही नहीं, करनी से शिक्षण ही ब्राह्मण की विशेषता है। ऋषि कहते हैं-**'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'**-ब्राह्मण समाज का मस्तिष्क है, मुख है। अर्थात् संचालन तंत्र है। इतना श्रेष्ठ व उच्चस्तरीय दायित्व होने के नाते निश्चित ही ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि हो जाता है। उसके अपने कर्त्तव्य औरों के उत्थान-पतन के कारण बन जाते हैं।

कस्मिन्नपि कुले जन्मग्रहणादेव नैव तु ।
कश्चिद् भवति विप्रोऽत्रलोकोद्धारक उत्तमः।।६८।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तदर्थं च सदाचारसिद्धतोक्ता भवन्त्यपि ।
वानप्रास्थादिगा विप्रा ब्रह्मकर्मयुता यदि ।। ६९ ।।

टीका- मनुष्य किसी कुल विशेष में जन्म लेने मात्र से ही ब्राह्मण नहीं बनता। उसके लिए आचरण सिद्ध भी होना पड़ता है। ब्रह्मकर्मरत वानप्रस्थ एवं संन्यासी भी ब्राह्मण संज्ञा में आते हैं ।। ६८-६९ ।।

उच्च उद्देश्यों की पूर्ति एवं विशिष्ट सामाजिक उत्तरदायित्व वहन करने हेतु एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति अपनाने तथा अपने भीतर ब्राह्मणत्व के गुण पैदा करने वाले व्यक्ति ही 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण ही उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मणत्व अर्थात् 'उत्कृष्टता' किसी वंश विशेष की बपौती नहीं। मानसकार ने स्पष्ट कहा है कि "किसी वंश-जाति में जन्म लेने के कारण कोई नीच-ऊँच कैसे हो सकता है"-

उपजहिं एक संग जग माहीं ।
जलज जोंक जिमि गुन विलगाहीं ।।
सुधा सुरा सम साधु असाधू ।
जनम एक जल जलधि अगाधू ।।

ब्राह्मण वंश में वशिष्ठ, अत्रि, याज्ञवल्क्य,भारद्वाज आदि ऋषि-मुनि-तपस्वी त्यागी हुए हैं, तो रावण, कुम्भकरण, मारीच, खरदूषण जैसे दुष्ट राक्षस भी हुए हैं। अत: जाति-वंशगत उत्तराधिकार का दावा सर्वथा निरर्थक है। हर वर्ग में श्रेष्ठ व्यक्ति होते रहे हैं और अपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण ब्राह्मण पद पाते रहे हैं। अगणित ऐसे ऋषियों का उल्लेख मिलता है, जो ब्राह्मणेतर वर्णों में जन्मे, पर अपने कर्मों के अनुरूप उनने ब्रह्मर्षि तक का पद प्राप्त किया। इन प्रमाणों से भारतीय इतिहास-पुराणों का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। मध्यकाल में रैदास, कबीर, नानक, दादू, नामदेव, विवेकानन्द आदि ब्राह्मणेतर जातियों में, कितने ही तो शूद्र-वर्ण में पैदा हुए; पर उनकी गरिमा किसी ब्राह्मण से कम नहीं आँकी गई गाँधी, बुद्ध, महावीर भी तो ब्राह्मण नहीं थे। राम-कृष्ण क्षत्रिय थे। पर उनकी पूजा ब्राह्मण भी करते हैं। श्रेष्ठता को जातीयता की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता।

उदरपूर्तिनिमित्तं हि शिक्षा चार्थकरी तु या ।
विद्यार्थिनस्तदर्थं तु धावन्तो ह्यभिभावका: ।। ७० ।।
व्यवस्थां कुर्वते यात्राऽध्यापका वेतनाश्रिता: ।
प्राप्यन्ते बोधकर्तार: श्रमिका इव सर्वत: ।। ७१ ।।
अभावस्तु भवेत्तेषां प्राप्नुवन्ति स्वयं तु ये ।
गुणकर्मस्वभावनां स्वानामादर्शमुत्तमम् ।। ७२ ।।
स्याद् विवेकोदयो येन जनसाधरणस्य तु ।
शिक्षयेयुरुदात्तं च चरित्रं परमार्थताम् ।। ७३ ।।
सर्वेषां वशगं नैतत्कर्म लोके तु सम्भवेत् ।
विप्राणं प्राय एतत्तु, पौरोहित्ये च ते स्वयम् ।। ७४ ।।
जनसामान्यनेतृत्वं कुर्वते भावनात्मकम् ।
धर्मधृत्यै तथैतस्यै मात्रमुद्बोधनं नहि ।। ७५ ।।
पर्याप्तं परमभ्यासकारणाद्रचनात्मकम् ।
आन्दोलनं च संस्कारकारकं बहुपक्ष्यते ।। ७६ ।।
एकत्रीकृत्य चासंख्यास्तत्र लोकाश्च कर्मणि ।
कृत्वा परिणतं ज्ञानं विधेयं तत् स्वभावगम् ।। ७७ ।।

टीका- उदरपूर्ति के लिए आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी और अभिभावक स्वयं ही दौड़-धूप करते रहते हैं। उसके लिए जानकारी भर बढ़ाने वाले वेतनभोगी अध्यापक भी अन्यान्य श्रमिकों की तरह हर जगह मिल जाते हैं। अभाव उनका रहता है-जो अपने गुण-कर्म-स्वभाव का आदर्श प्रस्तुत करके जन-साधारण का विवेक जगा सकें, उदात्त आचरण एवं परमार्थ-परायणता सिखा सकें। यह काम कर सकना हर किसी के वश का नहीं है। प्राय: ब्राह्मण का ही है। उन्हीं को पुरोहित के रूप में जन साधारण का नेतृत्व करना पड़ता है। इस धर्म-धारणा के लिए मात्र शिक्षण-उद्बोधन ही पर्याप्त नहीं होता, वरन् अभ्यास के लिए अनेकों रचनात्मक एवं सुधारात्मक आन्दोलन खड़े करने होते हैं और उनमें असंख्यों को जुटाकर ज्ञान को कर्म में परिणत करते हुए स्वभाव-संस्कार के स्तर तक पहुँचाना होता है ।। ७०-७७ ।।

ब्राह्मण वह है, जो समाज में सुसंस्कारिता संवर्धन के बहुमुखी दायित्व सँभालते हैं। चाहे वह सुकुमार कच्ची मनोभूमि वाले बालक हों अथवा भिन्न-भिन्न मन: संरचना वाले समाज परिकर का अपार जनसागर। उन्हें स्वयं के श्रेष्ठ आचरण द्वारा शिक्षण करते हुए, वे नैतिक पुररुत्थान, बौद्धिक क्रान्ति हेतु जन-नेतृत्व का मोर्चा सँभालते हैं।

बहूनि सन्ति कर्माणि यान्याश्रित्य च युज्यते ।
शिक्षितुं लोकसेवैषा जगन्मंगलकारिणी: ।। ७८ ।।
सत्प्रवृत्तीर्विधातुं ता शुभा अथाग्रगामिनी: ।
यथा व्यायामशालास्ता पाठशाला: कला अपि ।। ७९ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकालय उद्योगाः कौशलश्रमशालिता ।
हरितक्रान्तिरत्रैषा स्वच्छता धेनुपालनम् ।। ८०।।
स्वास्थ्यवृद्धिः समारोहास्तथासंगठनादिकम् ।
कुरीतिवारणं बालकल्याणं जनजागृतिः ।। ८१।।
महिलामंगलादीनि रचनात्मकरूपतः ।
सन्ति ख्यातानि यान्यत्रोद्भाव्यान्यन्यान्यपि स्वयम् ।। ८२।।
सर्वाण्येतानि कर्तुं च गतिशीलानि सन्ततम् ।
अग्रगामीनि चायान्तु व्यवस्थापयितुं समे ।। ८३।।
लोकसेवारता येन वातावरणमुज्जवलम् ।
सोत्साहं निर्मितं च स्याल्लोको मंगलमाव्रजेत् ।। ८४।।
एष ब्राह्मणवर्गश्च स्वाध्यायोपासनास्विव ।
सत्संगेष्विव चैतासु क्रियासु स्याद्रतः सदा ।। ८५।।
सत्प्रवृत्त्यभिवृद्धिश्च सम्भवेदत्र येन च ।
प्रत्येकस्मिंस्तथा क्षेत्रे वर्धमानाश्च याः समाः ।। ८६।।

टीका- पाठशाला,पुस्तकालय, व्यायामशाला, कला-कौशल, उद्योग-गृह, सामूहिक-श्रमदान, हरीतिमा-संवर्धन, गौ-पालन, स्वच्छता-प्रयास, संगठन, समारोह, स्वास्थ्य-संवर्धन, कुरीति-निवारण, शिशु-कल्याण, महिलामंगल जैसे अनेकों छोटे-बड़े रचनात्मक कार्य ऐसे हो सकते हैं, जिसके सहारे लोग सार्वजनिक सेवा सीखें और जनमंगल की सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनायें, इन्हें गतिशील अग्रगामी बनाने एवं व्यवस्था जुटाने में लोकसेवियों को ही आगे रहना पड़ता है। ब्राह्मण-वर्ग को भावना, उपासना, स्वाध्याय, सत्संग की तरह ही एक रचनात्मक क्रिया- कलापों द्वारा सत्प्रवृत्ति संवर्धन में भी निरत होना पड़ता है।। ७८-८६ ।।

सेवा-धर्म के अनेकों रूप हैं। ब्राह्मण व्यक्ति, वंश या वेश से नहीं, अपने अन्तः की उदात्तता के कारण बनता है। चाहे व्यक्ति किसी भी आश्रम में हो, समाज में रहकर पीड़ा या पतन निवारण के माध्यम से समग्र मानव समुदाय की सेवा करता रह सकता है। साधना समग्र तब कहलाती है, जब उपासना-सत्संग जैसे धर्म-कृत्यों के साथ स्वयं को ऐसे रचनात्मक कार्यक्रमों से भी जोड़ा गया हो, सत्प्रवृत्ति का वातावरण बनाते हों। इनमें से कई की चर्चा यहाँ ऋषि श्रेष्ठ कात्यायन जी ने की है। इन सभी का लक्ष्य एक ही है, सबका कल्याण एवं जनसाधारण में सेवा-भावना के विकास द्वारा आत्मीयता का विस्तार।

भारतीय संस्कृति के दो अग्रदूत भगवान बुद्ध एवं आद्य शंकराचार्य ने अपने जीवन में सत्प्रवृत्ति-संवर्धन द्वारा ही समाज की बहुमूल्य सेवा की। भगवान् बुद्ध ने बुद्धवाद को सर्वोपरि मान्यता दी। उन्होंने अपने युग में प्रचलित भक्ति-भावुकता और तांत्रिक राजमार्ग के उभय-पक्षीय अतिवादों से धर्म-धारणा को बुरी तरह क्षत-विक्षत देखा और परम्पराओं का नये सिरे से पर्यवेक्षण करने के लिये बुद्धिवादी कसौटी जनसमुदाय के हाथ में थमाई। सेवा और संयम की तपश्चर्या अपनाई। आत्मबोध जगाया और मनुष्य से भगवान् बन गये। उनने व्यापक परिमार्जन का 'धर्मचक्र-प्रवर्तन' चलाया। बिहार खड़े किये, सेवाराम विनिर्मित किये, विश्वविद्यालय चलाये और प्रव्रज्जा धर्म अपनाने के लिये प्रभाव क्षेत्र में परिपूर्ण प्रेरणा दी। अगणित जीवनदानी नर-नारी उनके आह्वान पर आगे आये और विश्व के कोने-कोने में बौद्धिक-क्रान्ति के लिये, धर्मधारणा प्रतिष्ठित करने के लिये चल पड़े। बुद्ध का यह परम पुरुषार्थ देश की डूबती नौका को उबारने में सफल रहा।

आद्य शंकराचार्य की ऋषिकल्प गतिविधियों में तीर्थ स्थापना प्रमुख है। उनने देश के चार कोनों पर चार धाम, चार मठ बनाये। उन्होंने अटक से कटक और कन्याकुमारी से काश्मीर तक की पैदल यात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने हजारों व्याख्यान दिये। बड़े-बड़े उद्भट् विद्वानों से शास्त्रार्थ किया और धर्म के सच्चे स्वरूप को समझने-समझाने के लिये सभायें आयोजित कीं। उन्होंने धर्मप्रचार करने के लिये चिद्विलास, विष्णुगुप्त , हस्तामलक, समित्पाणि, ज्ञानवृन्द, भानुगर्भिक, बुद्धि विरंचि, त्रोटकाचार्य, पद्मनाभ, शुद्धकीर्ति , मंडन मिश्र, कृष्ण दर्शन आदि देश के उद्भट् विद्वानों को संगठित किया। वेद धर्मानुयायियों की विशाल सेना बनाई गई और सम्पूर्ण भारत में धर्म-सुधार की हलचल मचा दी। उनके इस अखण्ड प्रयत्न का फल यह हुआ कि जनता के मानस में धर्म सम्बन्धी जो भी भ्रान्तियां घर कर रही थीं, वे सब दूर होने लगीं और सारे देश में वैदिक धर्म का शंखनाद गूँजने लगा।

अवाञ्छनीयतास्ताश्च कर्तुमुन्मूलिताः स्वयम् ।
सशक्ताक्रोशसंघर्ष विरोधानामपि स्थितिम् ।। ८७।।
उत्थितां कर्तुमर्हास्ते शास्त्रमेककरे तथा ।
शस्त्रं तिष्ठति विप्राणां करे येषां द्वितीयके ।। ८८।।

टीका- हर क्षेत्र में पनपने वाली अवांछनीयताओं का उन्मूलन कर सकने वाला आक्रोश, विरोध एवं संघर्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खड़ा करना भी उन्हीं का काम है। ब्राह्मण के एक हाथ में शास्त्र और दूसरे में शस्त्र रहता है।। ८७-८८।।

जहाँ समाज में श्रेष्ठता है, वहाँ निकृष्टता भी व्यापती है। ब्राह्मण वर्ग का कर्तव्य है-अपने मन्यु को जगाना एवं अनीति के विरुद्ध संघर्ष करना। मात्र शास्त्र वचनों की दुहाई देनी ही पर्याप्त नहीं, व्यक्ति में दुष्टता के विरुद्ध असहयोग, विरोध एवं संघर्ष कर सकने का साहस भी अपेक्षित है। इसके अभाव में तो वह पुरुषत्वहीन शरीर-धारी भर है, जिसका अस्तित्व नहीं के समान है। ब्राह्मण का दायत्वि है-अपना ही नहीं, सारे समुदाय की रक्षा करना, इसके लिये जन-मानस में मनोबल भरना एवं स्वयं अपने कर्तृत्वों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना।

भ्रमन्ति नररूपेण पशवो बहवो भुवि ।
मनुष्योचितकर्तव्यादर्शयुक्ता भवन्तु ते ।। ८९।।
इत्येव वर्तते मुख्यं लक्ष्यं वै देवसंस्कृतेः ।
स्वस्थाश्रमव्यवस्थाऽथ परिष्कृतसुरालयाः ।। ९०।।
तीर्थान्यपि भवन्त्यत्र लक्ष्यस्यास्यैव पूर्तये ।
माध्यमैरेभिरेवेयं विश्वं व्याप्नोच्च संस्कृतिः ।।९१।।
इमान् परिष्कृतान् पूर्णजीवितान् कर्तुमत्र च।
सन्ततमृषिवर्गस्य कार्यमस्ति महत्तरम् ।। ९२।।
इदं ज्ञातव्यमस्माभिः पूर्णरूपेण चान्ततः ।
व्यवस्थित समाजं च कर्तुमार्गोऽयमस्ति वै ।। ९३।।

टीका- मनुष्यरूप में पशु तो बहुत फिरा करते हैं। उन्हें मनुष्योचित कर्तव्यों, आदर्शों से युक्त रखना देवसंस्कृति का प्रधान उद्देश्य है। स्वस्थ वर्णाश्रम व्यवस्था, परिष्कृत देवालय एवं तीर्थ तंत्र इसी उद्देश्य पूर्ति के लिये होते हैं। इन्हीं माध्यमों से देवसंस्कृति विश्वव्यापी बनी थी। इन्हें जागृत और परिष्कृत रखने का कार्य ऋषि तंत्र का ही है और यह हमें भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि अन्ततः समाज को व्यवस्थित करने के लिये यही मार्ग है।। ८९-९३।।

सत्र के समापन पर महर्षि आदर्शनिष्ठा एवं सत्प्रवृत्ति संवर्धन की मानवी विकास हेतु अनिवार्यता बताते हुये ऋषितंत्र की भूमिका स्पष्ट करते हैं। यही सतयुग का मूलाधार है। देवसंस्कृति के पुनर्जीवन बिना, उन मूल्यों की प्रतिष्ठापना किये बिना, यह उच्चस्तरीय लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्रं सांस्कृतिकं चैतत् द्वितीयमेव पूर्ववत् ।
सोल्लासं पूर्णतां यातं सानन्दमाश्रमे शुभे ।।९४।।
घोषणायां समाप्तेश्च श्रोतारः सर्व एव ते ।
परस्परं नमन्तश्च यथाकालं यथाऽऽगतम् ।।९५।।
नित्यकृत्यानि कर्तुं तु गता उत्साह संयुताः।
दृढसाहससंकल्पा विधि कालानुयायिनः ।।९६।।

टीका- दूसरे दिन का संस्कृति सत्र प्रथम दिन की भाँति बड़े आनन्द-उल्लास के वातावरण में समाप्त हुआ। समापन की घोषणा होने पर सभी नमन-वन्दन पूर्वक अपने नियत कृत्यों को यथासमय यथावत् करने के लिये चले गये। उनका उत्साह बढ़ा हुआ था। साहस एवं संकल्प में दृढ़ता प्रतीत होती थी। वे समय का मूल्य एवं उचित प्रतिक्रियाओं के महत्व को समझ चुके थे।। ९४-९६।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे देवसंस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः, श्रीकात्यायन ऋषि प्रतिपादिते "वर्णाश्रम धर्म" इति प्रकरणो नाम ।। द्वितीयोऽध्यायः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

संस्कारपर्व-माहात्म्य प्रकरण

प्रतिपाद्यं तृतीयस्य श्रोतुमुत्का दिनस्य ते ।
सोत्सुकं नियते काले प्राप्ताः सर्वे यथाक्रमम् ।।१।।
स्थानेषु नियतेष्वेव समासीनास्तथाऽभवन् ।
वर्षयन्निव पीयूषमृषिः कात्यायनस्तदा ।।२।।

टीका- तीसरे दिन के प्रवचन-प्रतिपादन सुनने के लिये सभी आतुर थे, सो नियत समय पर सभी जिज्ञासु उत्सुकतापूर्वक पहुँचे और अपने नियत स्थान पर यथाक्रम आसीन हो गये। ज्ञानामृत बरसाते हुये महर्षि कात्यायन बोले-।। १-२।।

कात्यायन उवाच-

जिज्ञासवो नरस्त्वेष वर्तते पशुरप्यथ ।
पिशाचोऽपि तथा देवो महामानव एव च ।।३।।
सीम्निप्रजननस्यथापिचण्डस्यापि ये नराः ।
मग्नाश्चिन्तातुराश्चापि नरास्ते पशवो मताः ।।४।।
तेषां सर्वस्यमस्त्येषा लघ्वी स्वार्थरतिः सदा ।
लोभमोहातिरिक्तं न पश्यन्त्येते किमप्यतः ।।५।।
प्रदर्शने विलासे च सुखं तेऽनुभवन्ति हि ।
नाभ्यां परं किमप्येषां लक्ष्यं भवति दूरगम् ।।६।।

टीका- कात्यायन बोले-जिज्ञासुओ ! मनुष्य पशु भी है, पिशाच भी, मान्य मानव भी और देवता भी। पेट और प्रजनन की छोटी परिधि में सोचने और करने में निमग्न रहने वाले नर-पशु हैं। उनके लिये संकीर्ण स्वार्थपरता ही सब कुछ है। लोभ और मोह के अतिरिक्त और कुछ उन्हें सूझता ही नहीं। विलास और प्रदर्शन में ही उन्हें सुख मिलता है। इसके आगे इनका कोई और दूरगामी लक्ष्य नहीं।। ३-६।।

दर्पो नरपिशाचेषु सदा छत्रा मते ततः ।
अनाचारेषु पश्यन्ति दुष्कृत्येषु तथैव च ।।७।।
आतुंकेषु च ते पूर्तिमहंकारस्य स्वस्य तु ।
अनुभवन्ति रसं दिव्यं परेषां पीडने शठाः ।।८।।
मर्यादोल्लंघने शौर्यं पश्यन्त्यपि पराक्रमम् ।
पिशाचा एव ये भ्रष्टाचिन्तनाऽऽचारवर्जिताः ।।९।।

टीका- नर-पिशाचों पर दर्प छाया रहता है। वे आंतक, अनाचार और दुष्कृत्यों में अपने अहंकार की पूर्ति देखते हैं। उत्पीड़न में उन्हें रस आता है। मर्यादा-भंग करने में उन्हें शौर्य-पराक्रम प्रतीत होता है। भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचार वालों को मनुष्य शरीर में पिशाच ही समझना चाहिये।। ७-९।।

देव संस्कृति के संस्कार-महत्ता प्रकरण का शुभारम्भ करते हुये सत्राध्यक्ष मानव की गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर विवेचना करते हुये उसका वर्गीकरण भिन्न-भिन्न वर्गों में करते हैं। नर पामर का अर्थ है पशु प्रवृत्तियों में निरत पेट-प्रजनन की सीमा में आबद्ध व्यक्ति। नर-मानव का अर्थ है-वह व्यक्ति, जिसमें पारिवारिकता और सामाजिकता के साथ जुड़े हुये अनुबन्धों के प्रति विश्वास और परिपालन का साहस है। वस्तुतः व्यक्तित्व के स्तर की उत्कृष्टता ही मानवी वरिष्ठता की कसौटी है। मानवी काया का चोला तो हरेक का एक जैसा ही होता है।

नर-पशु हर समय अधिक कमाने, संचय करने और खाने-कुतरने की ललक में लगे दिखाई दे सकते हैं। अनौचित्य की सीमा लाँघकर प्रजनन-यौन स्वेच्छाचार के क्षेत्र में वे पशुओं को भी पीछे छोड़ देते हैं। जो भी वैभव दूसरों को शोषण कर पिशाच की भूमिका निभाते हुये निर्दयतापूर्वक संचित करते बन पड़ा है, उसे वे स्वयं व परिवार जनों तक ही सीमाबद्ध मानकर उसके उपभोगवादी प्रदर्शन में निरत रहते हैं।

चरित्रनिष्ठा ही मनुष्यता है। जिसमें अवांछनीय लिप्साओं के नियमन एवं आदर्शों के कार्यान्वयन का साहस भरा पराक्रम है, वही नर मानव से देवमानव, नर-नारायण, भूसुर, ऋषि की भूमिका निभाता देखा जा सकता है।

मानव जन्म लेने के बाद संचित कषाय-कल्मषों के आवरण को हटाकर स्वयं को निर्मल बना, देव मानव बनाने की भूमिका में प्रवेश करने की प्रक्रिया संस्कारों के माध्यम से सम्पन्न होती है। इसके अभाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में तो सामान्य जनमानस पर कुसंस्कारों का कुहासा ही छाया देखा जा सकता है। नरपशु, नरपिशाच, नरपामर इसी श्रेणी के व्यक्ति कहलाते हैं। आलंकारिक रूप से असुरों का काला मुँह, मुख से बाहर निकले हुये दाँत, पैने नाखून और सिर पर सींग चित्रित किये जाते हैं। इस प्रकार की शकल-सूरत के प्राणी कहीं नहीं पाये जाते। इस आलंकारिक चित्रण में यही बताया गया है कि असुर-प्रकृति के मनुष्यों का मुख दुष्कर्मों की कलंक-कालिमा से काला होता है। वे पेटू, स्वार्थी, लोभी, कृपण और संग्रही होते हैं, उनके बड़े दाँत उचित-अनुचित सबको उदरस्थ करने के लिये मुख की मर्यादा से बाहर निकले रहते हैं। हाथों में बड़े नाखूनों का होना हिंस्र पशुओं की नीति अपना कर आक्रमणकारी, आततायी कुकृत्यों में संलग्न होने की दुष्प्रवृत्ति को प्रकट करता है। इस दुष्ट परम्परा को-असुर संस्कृति को-पशु-प्रवृत्ति को-अपनाने वाले लोगों की कमी नहीं। रामायण में इन्हीं को असन्त बताया गया है।

पालयन्ति नरा धर्म कर्तव्यं स्वं च सर्वदा ।
पोषयन्ति सदा शीलं नीतिमर्यादयोरपि ।। १०।।
अनुभवन्ति महत्वं ते सहकारं श्रयन्ति च ।
सद्भावमधिकारे ते नोत्का: कर्तव्यबुद्धय: ।। ११।।
व्यवहरन्ति तथाऽन्यैस्ते यथा स्वस्मै प्रियो भवति।
व्यवहार:, स्तरं तं ते निर्वाहस्या श्रयन्ति तु ।। १२।।
उपलब्धो यथाऽन्यैस्तु ते विदन्ति भविष्यति ।
ईर्ष्या प्रदर्शनैरत्र विलासै: संग्रहैरपि ।। १३।।
उत्पद्यन्ते विग्रहाश्च सुखशान्तिविनाशका: ।
गृध्नवो वैभवं प्राप्तुमर्पयन्ति हि जीवनम् ।। १४।।
मानवस्य गरिम्णस्तु येषां बोधोऽस्ति ते नरा:।
उत्कृष्ट चिन्तने लग्ना: कर्तृत्वेऽप्युत्तमे सदा ।। १५।।

टीका- मनुष्य अपने कर्तव्यधर्म का पालन करते हैं। शील पालते और नीति-मर्यादा का महत्व समझते हैं। सद्भाव और सहकार का आचरण करते हैं। अधिकार पर कम और कर्तव्य पर अधिक ध्यान देते हैं। दूसरों के साथ वैसा व्यवहार करते हैं, जैसा अपने लिये प्रिय है। उसी स्तर का निर्वाह अपनाते हैं, जैसा कि अधिकांश लोगों को उपलब्ध है। वे जानते हैं कि संग्रह, विलास और प्रदर्शन से ईर्ष्या उत्पन्न होती है और विग्रह पनपते हैं। लालची, वैभव सम्पादन पर ही बहुमूल्य जीवन न्योछावर कर देते हैं, पर जिन्हें मानवी गरिमा का बोध है, वे उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व में निरत रहते हैं।। १०-१५ ।।

मानवी चेतना के तीन स्तरों के रूप में पाताल लोक, भूलोक और स्वर्गलोक की आलंकारिक विवेचना की जाती है। रहते तो ये सब धरती पर हैं व काया भी सबकी मानवी होती हं, किन्तु इनकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। अहंकारी, आक्रामक, कालिमा से पुते, लोभी, लालची, उद्धत आचरण वाले, हेय स्तर का जीवन जीने वाले नर-पिशाच पाताल लोकवासी कहे जाते हैं। ये स्वयं जलते औरों को जलाते; स्वयं कुढ़ते-औरों को कुढ़ाते हैं। भूलोक पर मानवी गरिमा में विश्वास रखने वाले नर मानवों का निवास होता है। मनुष्य अर्थात् सभ्य, शिष्ट, सज्जन, शालीनता एवं सहकारिता से प्रेम करने वाला। मर्यादा में रहने व जिम्मेदारियों को समझने-निबाहने वाला। वह दूसरों का सम्मान करता व हिल-मिलकर, मिल-बाँट कर रहने, खाने की नीति में विश्वास रखता है।

विशेषताभिरेताभिर्युक्ता एव तु मानवा: ।
वक्तुं शक्या वसन्त्यत्र मर्त्यदेहे हि देवता: ।। १६।।
भगवानत्र प्राकट्यं याति देहे सदैव स: ।
मनुकार्येषु ये लग्ना अभिनन्द्येषु सन्ततम् ।। १७।।
उपक्रमेषु पुण्योपकारयो रसबोधिन: ।
आत्मनो जगतश्चाऽपि कल्याणार्थं तपो रता: ।।१८।।
कष्टानां सहने हर्षो येषां ते भूसुरा मता: ।
उदारमानसा मर्त्या: करुणामूर्तयोऽनघा: ।। १९।।
ऋषिर्मनीषी देवात्माऽवतारो वा निगद्यते ।
महामानव इत्येष समुदायो जनैरिह ।। २०।।

टीका- ऐसी विशेषता से युक्त लोगों को ही सच्चा मनुष्य कहना चाहिये। मनुष्य शरीर में ही देवता रहते हैं। इसी में भगवान् प्रकट होते हैं। जो अनुकरणीय-अभिनन्दनीय बनाने वाले उपक्रमों में निरत रहते हैं, जिन्हें पुण्य-परोपकार में रस आता है और आत्म-कल्याण एवं विश्व-कल्याण के लिये तपश्चर्यारत रहने, कष्ट सहने में प्रसन्नता होती है। ऐसे दयालु, निष्पाप, उदारमना लोगों को भूसुर-धरती का देवता कहते हैं। इसी समुदाय को महामानव ऋषि, मनीषी, देवात्मा एवं अवतार कहते हैं।। १६-२०।।

स्वर्गलोक के निवासी देवता कहलाते हैं। उत्कृष्टता का नाम ही स्वर्गलोक, ऊर्ध्वलोक है। देवता और कोई नहीं, मनुष्य शरीर में निवास करने वाली सत्प्रवृत्तियाँ

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही हैं। 'देवता' की एक शब्द में परिभाषा करनी हो, तो उसे देने की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व कहा जा सकता है। देव-प्रकृति की उमंगें अन्दर से उठने लगें अर्थात् अपनी आवश्यकताएँ हँसते-हँसते पूरी करने के साथ-साथ अन्य असंख्यों की सहायता कर सकने की आकांक्षा अन्दर से जन्म लेने लगे। अन्तःकरण का उदात्त होना अपने आप में इतना बड़ा सौभाग्य है कि उसके उपरान्त विलास, वैभव का, सुविधा-साधनों की सम्पन्नता का, होना न होना कुछ अर्थ नहीं रखता। देवता बदले में न कुछ चाहते हैं, न स्वीकारते हैं, इसलिये वे पूजे जाते हैं। मनुष्य में सदैव अन्य स्तरों की तरह देवत्व भी विद्यमान रहा है। चेतना की यह वरिष्ठ स्थिति ही मानवी सत्ता की प्रगति का मूल कारण रही है।

भवन्ति मानवाः प्रायः समाना एव यद्यपि ।
वातावृत्या च संगत्या गच्छन्त्युच्चैः पतन्त्यधः ।।२१।।

टीका- मनुष्य प्रायः सभी एक जैसे होते हैं। वातावरण एवं संगति के प्रभाव से वे ऊँचे उठते या पतित होते हैं।। २१।।

विद्यैवैषा मनुष्यस्य संस्कारित्वं स गौरवम् ।
विदधाति तदाधारात् समाजो व्यक्तिरेव च ।। २२।।
श्रेयः सौभाग्ययोगं च प्राप्नुतो मानवेप्सितम् ।
अतः श्रेष्ठं धनं विद्या सौभाग्यं चाऽपि कीर्तिता ।। २३।।

टीका- विद्या ही मनुष्य की सुसंस्कारिता को गरिमा प्रदान करती है और उसी आधार पर व्यक्ति तथा समाज को श्रेय सौभाग्य का सुयोग प्राप्त होता है, जो मानव मात्र का लक्ष्य है। अतः निश्चित रूप से विद्या एक श्रेष्ठ धन है व मानव मात्र का सौभाग्य स्वरूप है।।२२-२३।।

आकृति-प्रकृति भिन्न होते हुये भी जन्मोपरान्त सभी मनुष्य प्रतिभा, गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से एक ही स्तर के पाये जाते हैं। जैसा परिवेश होता है एवं जैसे व्यक्तियों का साथ मिलता है, वैसा ही उस व्यक्ति का विकास या अधःपतन होता है। अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जिनमें जन्मजात प्रतिभा उच्चस्तरीय होते हुये भी वैसा पोषक वातावरण परिवार संस्था एवं समाज परिकर में न मिल पाने के कारण उनका विकास समुचित नहीं हो सका। उल्टे उसके स्थान पर गलत दिशा मिलने के कारण प्रवाह उल्टी दिशा में चला गया। इसके विपरीत ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनमें सही संस्कार मिलते रहने की सतत्-व्यवस्था, सत्संगति एवं वातावरण की श्रेष्ठता ने श्रेष्ठ व्यक्तित्वों के निर्माण में मदद की, जबकि प्रतिभा व सुख-सुविधा के साधनों की दृष्टि से वे पूर्व में गई-बीती परिस्थितियों में थे।

शिक्षण के दो वर्ग हैं। एक भौतिक उपार्जन उपभोग, दूसरा व्यक्तित्व का विकास-परिष्कार। समग्र शिक्षण के लिये दोनों ही वर्ग समुचित परिस्थितियाँ चाहते हैं। शिल्प-उद्योग भर सिखाने हों, भौतिक जानकारियाँ देनी हों, तो जिसे जहाँ सुविधा हो, वहाँ शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। व्यक्तित्व निर्माण हेतु वातावरण की अनुकूलता चाहिये। अन्यथा शिक्षण के नाम पर व्यक्ति को जानकारियाँ भर मिलती रहेंगी; सुसंस्कारिता बढ़ाने वाली, मानव को उसकी गरिमा के अनुरूप श्रेय पद दिलाने वाली विद्या रूपी सम्पदा मिलने का सुयोग न बन पड़ेगा।

विज्ञा एनां विश्वस्याऽनिवार्यत्वं महत्तथा ।
आधारां प्रगतेः सार्वभौमाया देवसस्कृतेः ।। २४।।
मन्वाना जगदुर्विद्यावृध्यै प्राणपणैरपि ।
यतितव्यं महत्पुण्यमिदं वै पारमार्थिकम् ।। २५।।
धर्मकार्ये पुनीतेऽस्मिन् रतांस्तांस्तु गुरून्बुधाः ।
वदन्ति गणयन्त्यत्र धरित्र्या देवरूपिणः ।। २६।।

टीका- विज्ञजन इसे संसार की महती आवश्यकता, देव परम्परा और सर्वतोमुखी प्रगति का आधार मानते हैं। जगत् में विद्या संवर्धन के लिये प्राण-पण से लग जाना सबसे बड़ा पुण्य-परमार्थ है। इस पुनीत धर्म कार्य में निरत लोगों को गुरुजन कहा जाता है। और धरती के देवताओं में गिना जाता है।। २४-२६।।

विद्या का उपार्जन व्यक्तित्व के संवर्धन एवं विकास हेतु अभीष्ट आवश्यकता मात्र ही नहीं है, यह सारे समुदाय की सर्वांगीण प्रगति का मूल आधार है। जिस समाज में विद्या से विभूषित देव मानव जितने अधिक होते हैं, वह उतना ही धन्य बनता है। विद्या एक ऐसी अक्षय सम्पदा है, जिसका तीनों कालों में नाश नहीं होता। वह जन्मजन्मान्तरों तक मित्र की तरह मनुष्य के साथ बनी रहती है। विद्या का प्रतिफल देव संस्कृति की मान्यतानुसार आर्थिक सफलता के रूप में नहीं देखा जाना चाहिये। विद्या नर मानव को देव मानव बनाती है, उसे सुसंस्कारित बनाती है, उसकी यही सबसे बड़ी देन है, जिसे किसी भी स्थिति में कम करके नहीं आँका जाना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषि श्रेष्ठ यहाँ विद्यार्जन को जीवन का एक उपादान नहीं, अपितु सर्वश्रेष्ठ पुण्य सारी मानव जाति के प्रति परमार्थ कार्य कहते हैं। जो नर श्रेष्ठ विद्यादान का पुण्य कार्य करते हैं, उन्हें गुरुजन कहकर उनकी अभिवन्दना की गयी है, उन्हें भूसुर की उपाधि दी गई है। सामान्य शिक्षक, जो लौकिक जानकारी देते हैं एवं गुरुजन, जो अन्तः के परिष्कार में समर्थ विद्या देते हैं, में अत्यधिक अन्तर है। दोनों को भूल कर भी एक नहीं मानना चाहिये।

परमेश्वर जिन पर भी प्रसन्न होते हैं, उन्हें वे अधिक विचारशील, सद्भावना सम्पन्न और ज्ञान-परायण बनाते हैं तथा ज्ञानयोग में संलग्न होने की प्रेरणा देते हैं। संसार में सद्ज्ञान का प्रसार उनका मुख्य काम बन जाता है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक के समस्त सच्चे ईश्वर भक्त, ऋषि, मुनि आजीवन इसी कार्य में लगे रहते हैं। गुरुकुल चलाने में, सद्ग्रन्थों का प्रणयन करने में, यज्ञ आयोजनों में, कथा-प्रवचन कहने में, संस्कार और पर्वों की व्यवस्था में संलग्न रहकर वे संसार को ज्ञानवान बनाने के लिये ही प्रयत्न करते रहे है। प्रत्येक ईश्वर भक्त को सदा से यही प्रयत्न करना पड़ा है। वह चुप बैठ ही नहीं सकता। संसार में अज्ञानग्रस्त प्राणियों को देखकर उसकी अन्तरात्मा में करुणा की अजस्र धारा बहे बिना रह ही नहीं सकती। अतएव उसे अपनी परिस्थितियों के अनुसार मानव-जाति को अधिक ज्ञानवान बनाने के लिये अपनी सामर्थ्य भर प्रयत्न एवं पुरुषार्थ करना ही पड़ता है। ऐसे ही महापुरुषों को गुरुजन कहा गया है और उन्हें धरती के देवता की उपाधि दी गई है। देव-संस्कृति में गुरु-तत्व को बहुत महत्व दिया गया है। उनके प्रति निष्ठा रखने के लिये अध्यात्म-प्रेमियों को प्रेरणा दी गई है-

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरूं शंकररूपिणम्।

तुलसी दास जी के मतानुसार गुरु व्यक्ति नहीं एक शाश्वत शक्ति है, जो पात्रतानुसार व्यक्तियो में प्रतिबिम्बित होती है। शरीर नित्य नहीं है, इसलिये गुरु के सम्बोधन के पीछे किसी शरीर विशेष का आग्रह नहीं है। "शंकररूपिणम्" उसे इसलिये कहा गया, क्योंकि वह ज्ञान का कल्याणकारी उपयोग करता है। अन्तः में स्थित आत्मतत्व को अनुभव कराने एवं ईश्वर का साक्षात्कार कराने में गुरु की प्रमुख भूमिका होने से उन्हें शिव रूप उद्बोधन उचित ही दिया गया है।

विद्याधनः पुलस्त्यः स पप्रच्छ मुनिपुंगवः ।
कात्यायनं महर्षिं तं लोकमंगलकाम्यया ।। २७ ।।
पुलस्त्य उवाच-
बोध्यतां स उपायो नो देव ! विद्यालये तु यः।
अतिरिक्ततयाऽधीतेर्विद्यालाभाय युज्यते ।। २८ ।।
उच्चां शिक्षां समासाद्य केवलं नैतिकोऽपि तु ।
नरः श्रद्धास्पदं स्थानं श्रेयसामधिकारिताम् ।। २९ ।।
उपायास्ते विबोध्या नो यैः स्युः सर्वा हि व्यक्तयः।
नृपशुत्वपिशाचत्वप्राप्तेर्वै रक्षिताः स्वयम् ।। ३० ।।
नरनारायणत्वं वा नरत्वं प्रापितुं भवेत् ।
संभवं येन सिद्ध्येच्च 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' ।। ३१ ।।

टीका- लोकमंगल की कामना से विद्या के धनी ऋषिवर पुलस्त्य ने महर्षि कात्यायन से पूछा- हे देव ! वह उपाय बताइये, जिन्हें पाठशाला में अध्यापन कृत्य के अतिरिक्त भी विद्या लाभ करने के लिये प्रयोग में लाना पड़ता है। मात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करने भर से ही किसी को श्रद्धास्पद श्रेयाधिकारी बनने का अवसर नहीं मिलता, अतः कृपया उन प्रयोगों को बतायें, जिनके माध्यम से व्यक्ति को नर-पशु और नर-पिशाच बनने से रोका जा सके, नर-मानव और नर-नारायण के स्तर तक पहुँचाया जा सके, जिससे "जीव ब्रह्म है," यह सिद्धान्त व्यावहारिक रूप से सिद्ध हो जाय।। २७-३१।।

कात्यायन उवाच-
दैवे तु समुदायेऽयं मनुष्योऽनेकशस्त्विह ।
सुसंस्कारयुतो नूनं क्रियते वृद्धिकाम्यया ।। ३२ ।।
ताप्यते मानवो मध्ये प्रयोगाणां स ईदृशाम्।
अत्र षोडश वारं तु नश्येयुर्येन सञ्चिताः ।। ३३ ।।
संस्कारा दूषिता दैववैशिष्ट्यस्यांकुराश्च ते ।
उत्पद्येरन् मनुष्योऽयं देवत्वं यातु येन च ।। ३४ ।।
संस्काराणां तथा धर्मानुष्ठानानां च विद्यते ।
उपचारविधिः सर्वमान्यो लोके महत्ववान् ।। ३५ ।।

टीका- कात्यायन बोले- हे विद्वत्श्रेष्ठ ! देव समुदाय में मनुष्य को बार-बार सुसंस्कारित किया जाता है। हर व्यक्ति को सोलह बार ऐसे प्रयोगों के मध्य तपाया जाता है, जिनसे उनके संचित कुसंस्कार नष्ट हो सकें और दैवी विशेषताओं के अंकुर उग सकें, जिससे मनुष्य देवता बन सके। इसके लिये संस्कार धर्मानुष्ठानों के उपचार की महत्वपूर्ण प्रक्रिया सर्व विदित है।।३२-३५।।

देव-संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है, जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव जीवन को सार्थक बनाने हेतु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कारों द्वारा सतत् शोधन एवं आत्मसत्ता के अभिवर्धन की अभिनव व्यवस्था। यह उस विद्यारूपी विभूति की विद्या है, जो गुरुकुल शिक्षण प्रणाली का अंग रही है। संस्कृति के अन्तर्गत जीवन क्रम में इन्हें इस प्रकार समाविष्ट कर दिया गया है कि यथा समय वांछित श्रेष्ठ संस्कार व्यक्ति को स्वयमेव मिलते रहें। वेदान्त की "एकोऽहं द्वितीयो नास्ति" "अयमात्मा ब्रह्म" वाली मान्यता ऋषियों को इसी प्रतिपादन हेतु प्रेरित करती रही है कि व्यक्ति, जो अनगढ़ पशु के रूप में जन्मता हैं, सुसंस्कारों द्वारा देवमानव के रूप में पदोन्नत किया जा सकता है।

आयुर्वेदिक-रसायनें बनाने की अवधि में उन पर कितने ही संस्कार डाले जाते हैं। कई बार कई प्रकार के रसों में उन्हें खरल किया जाता है और कई बार उन्हें गजपुट द्वारा अग्नि में जलाया, तपाया जाता है, तब कहीं वह रसायन ठीक तरह तैयार होता है और साधारण सी राँगा, जस्ता, ताँबा, लोहा, अभ्रक जैसी कम महत्व की धातु चमत्कारिक शक्ति-सम्पन्न बन जाती है। ठीक इसी तरह मनुष्य को भी समय-समय पर विभिन्न आध्यात्मिक उपचारों द्वारा सुसंस्कृत बनाने की महत्वपूर्ण पद्धति भारतीय तत्ववेत्ताओं ने विकसित की थी। उसका परिपूर्ण लाभ उस देश वासियों से हजारों-लाखों वर्षों से उठाया है। यों किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिये शिक्षा, सत्संग, वातावरण परिस्थिति, सूझ-बूझ आदि अनेक बातों की आवश्यकता होती है। सामान्यत: ऐसे ही माध्यमों से लोगों की मनोभूमि विकसित होती है। इसके अतिरिक्त भारतीय तत्ववेत्ताओं ने मनुष्य की अन्त:भूमि को श्रेष्ठता की दिशा में विकसित करने के लिये कुछ ऐसे सूक्ष्म उपचारों का भी आविष्कार किया है, जिनका प्रभाव शरीर तथा मन पर ही नहीं सूक्ष्म अन्त:करण पर भी पड़ता है और उसके प्रभाव से मनुष्य को गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से समुन्नत स्तर की ओर उठने में सहायता मिलती है।

मानव जीवन को पवित्र एवं उत्कृष्ट बनाने वाले आध्यात्मिक उपचार का नाम "संस्कार" है। महर्षि पाणिनि के अनुसार इस शब्द के तीन अर्थ हैं-(१) उत्कर्ष करने वाला (उत्कर्षसाधनं संस्कार:) (२) समवाय अथवा संघात और (३) आभूषण। प्रत्येक मनुष्य जन्म के साथ कुछ गुण-अवगुण लेकर पैदा होता है। उस पर पूर्वजन्मों के विविध संस्कार छाये रहते हैं। वृद्धि के साथ उस पर नये-नये संस्कार भी पड़ते रहते हैं। अत: पुराने संस्कारों को प्रभावित करके उनमें परिवर्तन, परिवर्धन अथवा उनका उन्मूलन करना-प्रतिकूल संस्कारों को विनष्ट कर अनुकूल संस्कारों का निर्माण करने का विधान ही "संस्कार पद्धति" कहलाता है। देव संस्कृति के अनुसार संस्कार १६ प्रकार के हैं, जिन्हें 'षोडश-संस्कार' कहते हैं। माता के गर्भ में आने के दिन से लेकर मृत्यु तक की अवधि में समय-समय पर प्रत्येक देव संस्कृति के आराधक को १६ बार संस्कारित करके, उसे देव मानव स्तर तक जा पहुँचने की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभावी प्रेरणा दी जाती है। यह संस्कार पद्धति सूक्ष्म अध्यात्म विज्ञान की अतीव प्रेरणाप्रद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। ऋषियों ने अपनी आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शोधों के आधार पर इस पुण्य-प्रक्रिया का निर्माण किया है।

तत्र पुंसवनं नामकरणमन्नप्राशनम् ।
मुण्डनं चाऽपि दीक्षा च विद्याऽभ्यासस्तथैव च ।। ३६ ।।
यज्ञोपवीतसंस्कार पाणिग्रहणमेव च ।
वानप्रस्थो विवाहस्य जन्मनश्च दिनोत्सवौ ।। ३७ ।।
ससमारम्भमेते चेत्संस्कारा विहितास्तत: ।
व्यक्तिभ्य: परिवाराय समाजायाऽपि प्रेरणा ।। ३८ ।।
सुसंस्कारसमृद्ध यर्थं मिलत्येव शुभावहा ।
क्रमेणाऽनेन भाव्यं च यथावंशपरम्पराम् ।। ३९ ।।
व्यवस्था कर्मकाण्डस्य विधेर्मन्त्रविधेस्तथा ।
एवं स्याच्च यथा तत्र स्याद्धि वातावृतै शुभ: ।। ४० ।।
संचार: प्रेरणायास्तु सर्वमेतच्च मन्यते ।
तां चोपचरितुं युंक्तुं भावनाया: प्रगल्भताम् ।। ४१ ।।

टीका- पुंसवन, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, दीक्षा, उपनयन, विवाह, वानप्रस्थ, जन्मदिवसोत्सव, विवाह दिवसोत्सव आदि संस्कारों को समारोहपूर्वक करने से व्यक्ति, परिवार तथा समाज को सुसंस्कारिता संवर्धन की शिक्षा-प्रेरणा मिलती है-यह क्रम वंश परम्परा के साथ सदा चलना चाहिये। इन कृत्यों के कर्मकाण्ड की विधि-व्यवस्था एवं मंत्र-प्रक्रिया ऐसी हो, जो उपस्थित वातावरण में उपयोगी प्रेरणा का संचार करे। उन्हें भावना क्षेत्र की प्रगल्भता के लिये समर्थ उपचार माना गया है।। ३६-४१।।

हमारी प्राचीन महत्ता एवं गौरव-गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला था, उसमें एक बहुत बड़ा कारण यहाँ की संस्कार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पद्धति को भी माना जाता है। यह पद्धति सूक्ष्म अध्यात्म विज्ञान की अतीव प्रेरणाप्रद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मंत्रों के सस्वर उच्चारण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरगें, यज्ञीय ऊष्मा के साथ सम्बद्ध होकर एक अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती है। जो भी व्यक्ति इस वातावरण में होते हैं या जिनके लिये उस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है, वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेकों विशेषतायें प्रस्फुटित होती हैं। संस्कारों की प्रक्रिया एक ऐसी आध्यात्मिक उपचार-पद्धति है, जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्य जनक सहायता मिलती देखी जाती है।

संस्कारों में जो विधि-विज्ञान हैं,उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य को सन्मार्गगामी होने के उपयुक्त बनाता है। संस्कार के मंत्रों में अनेक ऐसी दिशायें भरी पड़ी हैं, जो उन परिस्थितियों के लिये प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी है। पुंसवन संस्कार के समय उच्चारण किये जाने वाले मंत्रों में गर्भवती के रहन-सहन, आहार-विहार, सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रशिक्षण मौजूद हैं। इस प्रकार विवाह में दाम्पत्य जीवन की, अन्नप्राशन में भोजन-छाजन की, वानप्रस्थ में सेवापरायण जीवन की आवश्यक शिक्षायें भरी पड़ी हैं। उन्हें यदि कोई प्रभावशाली वक्ता ठीक ढंग से समझाकर संस्कार के समय उपस्थित लोगों को बता सकें, तो जिनका संस्कार से सम्बन्ध है, उन्हीं को नहीं, वरन् दूसरे सुनने वाले लोगों को भी इस सन्देश से आवश्यक कर्त्तव्यों का ज्ञान हो सकता है और वे भी जीवन को उचित दिशा में ढालने के लिये तत्पर हो सकते हैं।

वस्तुत: हर्षोत्सव के वातावरण में देवशक्तियों की साक्षी, अग्नि देव के सान्निध्य, धर्मभावना से अनुप्राणित वातावरण स्वजनों की उपस्थिति एवं भक्ति सिक्त कर्मकाण्ड-ये सब मिल-जुलकर संस्कारों से सम्बद्ध व्यक्ति को एक विशेष मनोभूमि में पहुँचा देते हैं। उस समय ली गई प्रतिज्ञा मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती व व्यक्ति का कायाकल्प कर देती है।

व्यक्तिं कर्तुसुसंस्कारयुतां ते षोडशाऽपि च ।
दश वा विहिता विज्ञैरुपचारास्तथैव तु ।। ४२।।
भावनां तु समाजस्था समूहाश्रयिणीमपि ।
शालीनताऽनुकूलां च कर्तुं पर्वादि मन्यताम् ।। ४३ ।।
प्रशिक्षणस्य चैतेषु मिलनार्चनयोरपि ।
ईशस्य विधेरस्ति समावेशो यमाश्रयन् ।। ४४ ।।
लोकमानससंस्थास्ता: शक्या कर्तुं परम्परा: ।
बहूनि सन्ति पर्वाणि दशमुख्यानि तेषु तु ।। ४५ ।।

टीका- जिस प्रकार व्यक्ति को सुसंस्कारी बनाने के लिये षोडश अथवा दश उपचारों का विधान है, उसी प्रकार समाजगत सामूहिकता को शालीनता का पक्ष-धर-बनाने के लिये पर्व-आयोजनों का महत्व है। इनमें मिलन, पूजन, प्रशिक्षण की ऐसी विधि-व्यवस्था का समावेश है, जिनके सहारे सत्परम्पराओं को लोक-मानस में प्रतिष्ठित कराया जा सके। पर्व बहुत हैं; परन्तु उनमें दस प्रमुख हैं।। ४२-४५ ।।

व्यक्तिगत दृष्टिकोण का परिष्कार करने के लिये जिस प्रकार पूजा-उपासना-पारिवारिक रीति-नीति को उत्कृष्ट बनाये रखने के लिये जिस प्रकार संस्कार प्रक्रिया है, ठीक उसी प्रकार समाज की समुन्नत और सुविकसित बनाने के लिये सामूहिकता, ईमानदारी, कर्तव्य, निष्ठा, नागरिकता, परमार्थ-परायणता, देशभक्ति, लोकमंगल जैसी सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करनी पड़ती हैं। उन्हें सुस्थिर रखना होता है। यह भी बार-बार स्मरण दिलाते रहने वाला प्रसंग है। इसी प्रयोजन के लिये देव संस्कृति में पर्व-त्यौहार मनाये जाते हैं। इन्हें सामाजिक संस्कार प्रक्रिया ही समझना चाहियें। साधना से व्यक्तित्व, संस्कारों से परिवार और पर्वों से समाज का स्तर ऊँचा बनाने की पद्धति दूरदर्शिता पूर्ण है, इसे हजारों-लाखों वर्षों तक आजमाया जाता रहा है। प्राचीन भारत की महानता का श्रेय इन छोटी दीखने वाली; किन्तु प्रवृत्तियों में प्रखरता उत्पन्न करने वाली धर्म के नाम पर प्रचलित विधि-व्यवस्थाओं को ही है।

पर्वों की रचना इसी दृष्टि से हुई, कि प्राचीनकाल की महान घटनाओं एवं महान प्रेरणाओं का प्रकाश जनमानस में भावनात्मक एवं सामूहिक वातावरण के साथ उत्पन्न किया जाय। इसके लिये कितने ही पर्व त्यौहार प्रचलित हैं। उनमें से देश, काल, पात्र के अनुसार जब जहाँ जिसको प्रधानता देने की आवश्यकता समझी जाती है, उन्हें प्रधान और शेष को गौण मान लिया जाता है, एक ही क्षेत्र में एक ही काल में, प्रचलित सैकड़ों पर्वों का मनाया जाना सम्भव नहीं, उनमें से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थिति के अनुरूप कुछ को ही चुनना पड़ता हैं। देव संस्कृति में वस्तुत: प्रत्येक तिथि और वार को पर्व माना गया है और उसे मनाने के लिये विशेष धार्मिक विधान भी बतलाया है। इनके सिवाय देवताओं, अवतारों महापुरुषों की स्मृति अथवा जयन्ती के लिये भी त्यौहार नियत किये गये हैं। कुछ अन्य पर्व जैसे संक्रान्ति, ग्रहण कुम्भ आदि आकाश स्थित ग्रहों के योग और उनसे पृथ्वी पर पड़ने वाले शुभाशुभ प्रभाव दृष्टिगोचर रखकर मनाये जाते हैं। मुख्य रूप से इनमें से दस पर्व प्रमुख रूप में मनाये जाने योग्य हैं, जिनका वर्णन सत्राध्यक्ष ने इसी प्रसंग में आगे किया है।

ऋषिगणों ने आदिकाल में त्यौहार की स्थापना मुख्यत: निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर की थी- (१) जनता में जागृति, सद्भावना, ऐक्य, संगठन की वृद्धि करना, लोगों को सुसंस्कृत, शिष्ट और सुयोग्य नागरिक बनाना, उनमें सच्ची सामाजिकता की भावना उत्पन्न करना, (२) किसी विशेष अवसर पर बड़े यज्ञ के लिये। यद्यपि शास्त्रों के मतानुसार 'यज्ञ' शब्द का अर्थ परोपकार के कार्यों के लिये होता है, तथापि वैदिक कालीन पर्वों और उत्सवों में यज्ञ का अर्थ बड़े हवन से, सामूहिक धर्मानुष्ठान से ही लिया जाता है। (३) किसी विशेष ऋतु के परिवर्तन या फसल के तैयार होने पर सामाजिक समारोह के रूप में। (४) सर्वसाधारण के मनोरंजन और हृदयोल्लास प्रकाश के लिये। (५) किसी युग-प्रवर्तक महापुरुष, अद्वितीय कर्मवीर, शूरवीर, प्रणवीर, दानवीर, महान् विद्वान, आंदर्श प्रतापी का अथवा किसी महान राष्ट्रीय घटना की स्मृति मनाने के निमित्त।

हमारे तत्ववेत्ता, *पूज्यपाद* ऋषि-महर्षियों के, ऊपर बतलाये पाँचों उद्देश्यों के अनुकूल अनेक त्यौहार और पर्व के दिवस नियत कर दिये हैं और उन सब में लौकिक कार्यों के साथ धार्मिक तत्त्वों का ऐसा समावेश कर दिया है, ताकि उनसे हमें अपने जीवन-निर्माण में सहायता मिले और समाज भी सुमार्ग पर अग्रसर हो सके। मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरणशील प्राणी है। दूसरों को कोई शुभ काम करता देखकर उसके मन में भी वैसा ही काम करने की इच्छा स्वत: उत्पन्न होती है। यही मूल कारण था कि सामूहिक आयोजनों के रूप में पर्वोत्सवों का प्रचलन किया गया।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में पर्वों की उपयोगिता समझाते हुये महर्षि कात्यायन कहते हैं कि लोक मानस के परिष्कार हेतु, सत्प्रवृत्ति विस्तार हेतु, श्रेष्ठ परम्परा स्थापना हेतु ही पर्वों का विधान देवसंस्कृति में रखा गया है। इनसे देव शक्तियों का पूजन, जन साधारण के पारस्परिक सम्मिलन एवं लोक शिक्षण का त्रिविध प्रयोजन पूरा होता है। यह व्यवस्था इतनी सुनियोजित एवं वैज्ञानिक है कि इसकी उपादेयता से इन्कार नहीं किया जा सकता। समाज के ढाँचे को सुव्यवस्थित बनायें रखने में पर्वों ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वसन्तपंचमी दिव्या शिवरात्री च होलिका ।
सा रामनवमी पुण्या गायत्रीजयघोषिणी ।। ४६ ।।
गुरूपूर्वापौर्णमासी श्रावणी च तथैव सा ।
कृष्णजन्माष्टमी मान्या विजयादशमी तथा ।। ४७ ।।
दीपावलीति सर्वेषु दशानामेव मुख्यत: ।
महत्वं वर्तते तेन सोत्साहं पर्व मन्यताम् ।। ४८ ।।
भावनापूर्वकं यत्र मानितानि समान्यपि ।
इमानि तत्र संस्कार भावनोदेति चान्तत: ।। ४९ ।।
सत्प्रवृत्युदयश्चाऽपि जायते मानवेषु स: ।
प्रति व्यक्ति समाजं च यस्यापेक्षा मता बुधै: ।। ५० ।।

टीका - वसंतपंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, गायत्री जयन्ती, गुरुपूर्णिमा, श्रावणी, जन्माष्टमी, विजयादशमी दीपावली-इन दस का विशेष महत्व है, अत: पर्वों को सोत्साह मनाना चाहिये। इन्हें जहाँ भावनापूर्वक मनाया जाता रहता है; वहाँ सुसंस्कारिता की उमंगें उठती रहती हैं और सत्प्रवृत्तियाँ पनपती रहती हैं, जिसकी आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति व समाज के लिये अनिवार्यत: होती है।।४६-५०।।

धर्म-धारणा को हर किसी के गले मात्र उपदेशों से नहीं उतारा जा सकता। व्यक्ति को अध्यात्म का मर्म समझाने, सही शिक्षा देने और सन्मार्ग पर चलाने का ऋषि प्रणीत मार्ग है-धार्मिक-कथाओं के कथन-श्रवण द्वारा सत्संग एवं पर्व विशेषों पर सोद्देश्य मनोरंजन। त्यौहार-व्रतोत्सव यही प्रयोजन पूरा करते हैं। पर्व-त्यौहार जन-जन में नैतिकता व सच्चरित्रता के भावों को जन्म देकर सांस्कृतिक पुनरुत्थान में सहायक भूमिका निभाते हैं।

उच्चस्तरा लोकशिक्षा समारोहसुयोजनै: ।
जायते च प्रभावेण ह्येतेषा बहवस्त्विह ।। ५१ ।।
फुल्लन्ति कुसुमानीव येऽविकासस्थिता नरा: ।
कथानां च पुराणानां महत्वं घटते तत: ।। ५२ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- समारोह आयोजनों के माध्यम से उच्चस्तरीय लोकशिक्षण होता रहता है, तो उस ऊर्जा के प्रभाव से प्रभावित अनेकों अविकसित कलियों को भी पुष्पवत् खिलने का अवसर मिलता रहता है। कथा-पुराणों का उस दृष्टि से बहुत महत्व है।। ५१-५२।।

कीर्तनायोजनान्यत्र संगीतप्रमुखानि हि ।
भवन्ति तस्य लोकस्य रञ्जनेन सहैव तु ।। ५३।।
लाभः समन्वितो लोकमंगलस्यैष प्राप्यते ।
धर्मप्रचारकेष्वत्र देवेषु च महर्षिषु ।। ५४।।
अधिकैः कीर्तनस्यैषा संगीतस्यापि चाश्रिताः।
विधा प्रभाविनी लोकशिक्षणे सरला च या ।। ५५।।

टीका- कीर्तन-आयोजन संगीत प्रधान होते हैं और उनमें लोकरंजन के साथ लोकमंगल का समन्वित लाभ मिलता है। देवताओं, ऋषियों और धर्म-प्रचारकों में से अधिकांश ने संगीत कीर्तन की विधा को अपनाया और कथा-पुराण शैली का आश्रय लिया। लोक-शिक्षण की दृष्टि से यह सरल और प्रभावी माध्यम है ।।५३-५५।।

नीतिधर्मसदाचाराद्युपयोगित्वमत्र तत् ।
कथाऽऽख्यानादिभिर्नूनं जायते तु गृहे गृहे ।। ५६।।
उपायाः सर्व एवैते युज्यन्ते लोकशिक्षणे ।
सार्वभौमे ततो ज्ञेयान्येतान्यत्र समान्यपि ।। ५७।।

टीका- घरों में कथा-कहानियों के द्वारा नीति, धर्म, सदाचार की उपयोगिता हर घर-परिवार में प्रकट होती रहती है। अस्तु, उपायों को भी सार्वजनीन लोकशिक्षण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।। ५६-५७।।

दृश्य-श्रव्य साधन एवं सामूहिक मिलन-आयोजन जनमानस के परिष्कार की दिशा में एक बड़ी भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति अपने वास्तविक रूप में उत्कृष्टता का पक्षधर है। स्रष्टा की सर्वश्रेष्ठ कृति होने के नाते आदर्शवादिता, श्रेष्ठता की दिशा में अग्रसर होना ही उसकी अभिलाषा रहती है, किन्तु यह अधिकांश में प्रसुप्त स्थिति में होते हैं। स्वभावतः जनमानस अनुकरणप्रिय होता है। अनगढ़ व्यक्ति पतनोन्मुख मात्र अनुकरण के कारण होता है। यदि उसे सही दिशा दी गयी होती श्रेष्ठता का-शालीनता का-पक्षधर सुसंस्कृत वातावरण मिला होता, तो वह भी अपने कुसंस्कारों की मलीनता धोकर ऊर्ध्वगामी हो सकता था। कथाओं को सुनना-सुनाना, पर्वोत्सवों को मनाना इसी उद्देश्य से देवसंस्कृति की आचार संहिता में सम्मिलित है कि वह जन समुदाय को लोकमंगल की ओर प्रवृत्त करता है।

अन्यान्य शिक्षण की विधाओं के साथ-साथ लोकशिक्षण के निमित्त, सत्प्रवृत्ति विस्तार के निमित्त जैसा वातावरण बनाया जाना-अपेक्षित है, वह शब्द शक्ति की विद्या संगीत-संकीर्त्तन एवं कथा-आयोजनों से सरलता से सम्पन्न किया जा सकता है। धर्मतंत्र से लोकशिक्षण की महत्ता इसी कारण अत्यधिक बतायी जाती रही है।

भौतिकानां तथा राजनैतिकानां पुरा युगे ।
आर्थिकानामपि क्षेत्रे समस्तास्तास्तु या मता।। ५८।।
समाधानाय तासां च ज्ञापितुं ताः समानपि।
राजसूयादियज्ञानां व्यवस्था महतामभूत् ।। ५९।।

टीका- पुरातनकाल में भौतिक, राजनैतिक, आर्थिक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान खोजने-बताने के लिए विशाल-काय राजसूय यज्ञों के आयोजन होते थे ।। ५८-५९।।

विपन्नतास्तु धार्मिक्य सामाजिक्योऽपि ताः समाः।
अभूत्कर्तुं निरस्ताश्च वाजपेयेष्टियोजना ।। ६०।।
अतिरिक्तं चाग्निहोत्राज्ज्ञानयज्ञप्रधानता ।
अभूत्तासु नरा एकविचाराः संगता यदा ।। ६१।।
एकप्रकृतयश्चैकलक्ष्यपूर्त्यै ततो ध्रुवम् ।
तच्चिन्तनं परिप्रेक्षानिर्धृतिर्मृगयन्ति तु ।। ६२।।
विधिं मानवकल्याणकारिणं फलतो भवेत् ।
प्रगतेः सार्वभौमाया द्वारं भव्यमनावृतम् ।। ६३।।
निवृत्तेः संकटानां च प्रशस्तोऽध्वा च जायते ।
विभिन्नेषु च तीर्थेषु तथा पर्वसु चेदृशाम् ।। ६४।।
यज्ञानां करणस्येयमृषिभिस्तु परम्परा ।
दूरदर्शिभिरेतस्माद्धेतोः संचालिता शुभा ।। ६५।।
कुम्भपर्वाणि तीर्थेषु विभिन्नेषु सचेतनैः ।
सम्मेलनैः क्रियन्ते स्म तत्र चायोजितानि तु।। ६६।।

टीका- धार्मिक एवं सामाजिक विपन्नताओं को निरस्त करने के लिए वाजपेय यज्ञों का प्रचलन था। उनमें अग्निहोत्र के अतिरिक्त ज्ञानयज्ञ की प्रधानता रहती थी। एक विचार के-एक स्वभाव के-व्यक्ति जब एक लक्ष्य-उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकत्रित होते हैं, तो उनका चिन्तन, पर्यवेक्षण और निर्धारण कल्याणकारी उपाय खोजता है। फलतः सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुलता है, संकट के निवारण का मार्ग प्रशस्त होता है। विभिन्न पर्वों पर विभिन्न तीर्थों में ऐसे ज्ञान यज्ञ करते रहने की परम्परा दूरदर्शी ऋषियों ने इसी हेतु चलायी। कुम्भ पर्वों को ऐसे ही प्राणवान सम्मेलनों के रूप में आयोजित किया जाता था ।। ६०-६६।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवसंस्कृति में धर्मानुष्ठानों के रूप में सामूहिक यज्ञायोजनों की महत्ता है। यज्ञ का अर्थ दान, देवपूजन के अतिरिक्त संगतिकरण भी है। संगतिकरण अर्थात् एक उद्देश्य के लिए, एक विचार धारा वाले व्यक्तियों का सोद्देश्य मिलन। यज्ञ में प्रक्रिया भले ही अग्निहोत्र-कर्मकाण्ड के रूप में हो; पर उनके उद्देश्य के अनुरूप उनके स्वरूप में अन्तर होता है। सामूहिक संयोजन, जन साधारण का संयुक्तीकरण हमेशा श्रेष्ठ परिणतियाँ अपने साथ लेकर आता है। विधाता की भी सदैव यही इच्छा रही है कि मनुष्य मात्र मिलजुल कर श्रेष्ठ पथ पर अग्रसर हों।

मेलापकै: क्रियन्ते स्म धार्मिकैर्देवसंस्कृते: ।
उन्नतेर्हेतवेऽनेके भव्यास्तत्र पुरोगमा: ।। ६७ ।।
दिनेषु येषु चाभूवन् धार्मिकायोजनानि तु ।
स्थाने स्थाने झटित्येषु दिवसेषु तदा तु सा ।। ६८ ।।
धर्मधृते: प्रौढताऽथ प्रखरत्वमितस्तत: ।
सर्वत्र ददृशे येन सदाचारोऽभ्यवर्धते ।। ६९ ।।

टीका- धार्मिक मेले-देवसंस्कृति के उन्नयन की आवश्यकता विभिन्न मनोरंजक कार्यक्रमों द्वारा सम्पन्न करते थे। जिन दिनों ऐसे छोटे-बड़े धर्म आयोजन स्थान-स्थान पर जल्दी-जल्दी होते रहते थे, उन दिनों धर्म-धारणा की सर्वत्र प्रौढ़ता प्रखरता दृष्टिगोचर होती थी, जिससे सदाचार में वृद्धि होती रही ।। ६७-६९ ।।

अमुकेषु हि तीर्थेषु पर्वस्नानदिनेषु तु ।
गमने महत्वसंख्यानं दृष्टया चैवैतया कृतम् ।। ७० ।।
धर्मप्रेमाण एतस्मिन् समये स्युरुपस्थिता: ।
संख्यायां विपुलायां ते विचाराणां परस्परम् ।। ७१ ।।
विनिमयेन समर्थेन मार्गदर्शनकेन च ।
उद्दिश्य प्रगतिं चाऽत्र कालिकीं किञ्चिदेव च ।। ७२ ।।
उच्चस्तरं चिन्तयेयु: कुर्युर्निर्धारणं तथा ।
महत्वपूर्ण राष्ट्रं स्यादेकताबद्धमन्तत: ।। ७३ ।।

टीका- पर्व-स्नान के लिए अमुक तीर्थों में पहुँचने का माहात्म्य इसी दृष्टि से कहा गया है कि धर्म-प्रेमी इन अवसरों पर बड़ी संख्या में पहुँचा करें और परस्पर विचार-विनिमय एवं समर्थ मार्गदर्शन में सामयिक प्रगति के लिए कुछ उच्चस्तरीय सोचा और महत्वपूर्ण निर्धारण किया करें, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र एकता के सूत्र में बँधा रहे ।। ७०-७३ ।।

कार्यान्वितं विधातुं च तद्धि निर्द्धारणं तत: ।
समूहसहयोगेन योजनाबद्धरूपत: ।। ७४ ।।
व्यवस्था सम्भवेत्तत्र यत: प्राणा इव स्मृता ।
समूहशक्तिर्दैव्यास्तु संस्कृतेरुत्तमा नृणाम् ।। ७५ ।।
आधारमिममाश्रित्य दुर्गा तामवतार्य च ।
मुक्ता विपद्भ्यो देवास्ते गतं वर्चस्वमाप्नुवन् ।। ७६ ।।
सत्प्रवृत्तिमिमां कर्तुं स्थिरामुद्बोद्धुमप्यथ ।
धर्मोत्सवा महत्वेन पूर्णा: सामूहिका मता: ।। ७७ ।।

टीका- साथ ही उस निर्धारण को कार्यान्वित करने के लिए सामूहिक सहयोग से योजनाबद्ध व्यवस्था भी बन जाया करे। सामूहिकता देव-संस्कृति का प्राण है-इसी आधार पर दुर्गा का अवतरण करके देवताओं ने विपत्ति से छुटकारा पाया और अपना खोया हुआ वर्चस्व लौटाया था। इस सत्प्रवृत्ति को बनाये रहने और उभारने के लिए सामूहिक धर्मोत्सवों को अत्यधिक महत्वपूर्ण पाया गया ।। ७४-७७ ।।

सामूहिक आयोजनों के रूप में यज्ञादि के अतिरिक्त कुम्भ मेलों, विभिन्न संस्कारित सिद्धपीठों-तीर्थस्थलों पर स्नानादि के लिए एकत्र होने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण सूत्र एक ही रहा है-धर्म-धारणा का चहुँ ओर विस्तार। इसके अतिरिक्त ऋषिगणों का चिन्तन सांस्कृतिक एकता पर केन्द्रित रहा है। भिन्न-भिन्न रीति- रिवाज, प्रचलन, परिवेश एवं स्थान विशेष की विशेषता के कारण पायी जाने वाली भिन्नता के बावजूद इस राष्ट्र की एक विशेषता रही है- "विभिन्नताओं में भी एकता।" जहाँ सुदूर स्थानों से पहुँचे, अगणित व्यक्ति उच्चस्तरीय आध्यात्मिक मार्गदर्शन एक ही जगह बैठ कर प्राप्त करें, वही स्थान आरण्यक-तीर्थ कहलाता था। मात्र कर्मकाण्ड के रूप में चिन्ह-पूजा, उस कष्ट साध्य यात्रा का लक्ष्य बनाकर आज की परिस्थितियों में तो विडम्बना भर बनकर रह गयी है। उस उद्देश्य को भुला दिया गया है, जो कि परमपावन एवं दूरदर्शितापूर्ण था।

धर्मोत्सवस्य शृंखलायां नात्रशैथिल्यमापतेत् ।
उच्छिश्यैतद् व्यधुर्ज्ञानसत्रं ते सूतशौनका: ।। ७८ ।।
मुनयो मनीषिणस्तत्र सज्ज्ञान परिपुष्ट ये ।
आययुर्दूरदेशेभ्यस्तथा निश्चित्य शोभनम् ।। ७९ ।।
स्थानं विशेषमेते च विद्धांसोऽकार्षुरेव तु ।
आयोजनानि दिव्यानि चातुर्मास्यसन्ततम् ।। ८० ।।
वर्षर्तौ न्यूनताऽस्त्येव कार्याणां तेन संगता ।
तत्रत्य जनता लाभ मध्यगच्छत्तन: सदा ।। ८१ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- धर्मोत्सवों की शृंखला में शिथिलता न आने पाये इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सूत शौनक आदि मिलजुलकर विशालकाय ज्ञान सत्र चलाते रहे हैं। उनमें हजारों मुनि-मनीषी सद्ज्ञान संवर्धन के उद्देश्य से दूर-दूर से आकर सम्मिलित होते थे। विद्वान लोग स्थान विशेष का चुनाव करके वहाँ चातुर्मास आयोजन करते थे। वर्षा में काम कम रहने के कारण उन क्षेत्रों की जनता एकत्रित होकर उनका लाभ भी उठाती थी ।।७८-८१।।

जन चेतना सतत् जाग्रत रहे, सभी देश-क्षेत्रों के प्रतिनिधिगण एक स्थान पर एकत्र होकर विचार विनिमय कर सकें, इस प्रयोजन से ही छोटे क्षेत्रीय धर्मोत्सवों के आयोजनों की आवश्यकता समझी गयी थी। इस उद्देश्य के लिये नियत पर्व पर नियत तीर्थ में प्रति वर्ष आयोजन का क्रम बनाया गया, ताकि यह क्रम निरन्तर जारी रहे, धर्मधारणा शिथिल न होने पाये। यहाँ पर साधना-अनुष्ठान एवं ज्ञान यज्ञ की द्विविधि प्रक्रिया साथ-साथ चलती थी। सामयिक समस्याओं पर मूर्धन्य मनीषी गम्भीर विचार-विनिमय कर किन्हीं निर्णय-निष्कर्षों पर पहुंचा करते थे। विद्वत्जन जो निर्धारण करते थे, उसे अपने-अपने क्षेत्र में सम्पन्न करने का दायित्व सुदूर स्थानों से आए व्यक्ति अपने कन्धे पर लेकर प्रयाण करते थे ।

सूत शौनिक किन्हीं व्यक्ति विशेषों का नाम नहीं है, अपितु ज्ञानयज्ञ आयोजित करने वाले, प्रश्नोत्तरी के माध्यम से समस्त समस्याओं का हल अध्यात्म दर्शन के प्रतिपादनों की सहायता से समझाने वाले मनीषी गणों को ही यह नाम दिया गया है। शौनिक जी प्रश्न पूछते थे एवं सूत जी उत्तर देते थे। यह पदवी मनीषा सम्पन्न कोई भी व्यक्ति धारण कर सकता था अथवा ऋषिगणों द्वारा यह पद उन्हें दिया जाता था। नैमिषारण्य तीर्थ में ऐसे सम्मेलन, उज्जयिनी हरिद्वार, प्रयाग एवं नासिक में कुम्भपर्व के अवसर पर ज्ञान सत्रों, विशाल प्रज्ञा आयोजनों का क्रम सतत् चलता रहता था।

आयोजन क्रमस्यात्र देवसंस्कृति विस्तरे ।
योगदानमभूद्भूय एष विद्यालयेष्वथ ।। ८२।।
गुरुकुलेषु समेष्वेव पाठ्यमानस्य मन्यताम् ।
पाठ्यक्रमस्य तुल्योऽयमायोजनबृहत्क्रमः ।। ८३।।

टीका- देव संस्कृति के विस्तार में आयोजन प्रक्रिया का अत्यधिक योगदान रहा है। इसे विद्यालयों और गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम के समतुल्य ही समझा जाना चाहिए ।। ८२-८३।।

सेवानिवृत्त निश्चिन्ता व्यक्तयोऽर्हन्ति कर्मणः ।
सम्पादयितुमिमं पाठ्यक्रमं नियमतोऽनिशम् ।। ८४।।
आरण्यकेषु गत्वा च गुरुकुलेष्वपि सक्षमाः ।
वातावृतौ शुभायां ते वास लाभं समर्जितुम् ।। ८५।।
व्यस्तैर्न पुरुषैरेतच्छक्यं कर्तुं सदैव च ।
जन-जागृतिहेतोश्च जंगमानामभूत्ततः ।। ८६।।
ज्ञानयज्ञस्य धर्मनुष्ठानानां च परम्परा ।
परिणामः शुभश्चास्या दृष्टः सर्वैरपिस्वयम् ।। ८७।।

टीका- निवृत्त-निश्चिन्त व्यक्ति आरण्यकों एवं गुरुकुलों में प्रवेश पाकर नियमित रूप से अधिक समय तक पाठ्यक्रम सम्पन्न कर सकते हैं और श्रेष्ठ वातावरण में देर तक निवास करने का लाभ उठा सकते हैं, किन्तु व्यस्त लोगों के लिए वह सदा संभव नहीं हो पाता। इसलिए जन-जागरण के लिए चलते-फिरते समय-समय पर होने वाले ज्ञान यज्ञों-धर्मानुष्ठानों की परम्परा चली। इसका सत्परिणाम भी देखने को मिला ।।८४-८७।।

सांस्कृतिक चेतना का आलोक दिग-दिगन्त में फैले, इस उद्देश्य से देव संस्कृति के निर्धारण अद्वितीय हैं। बालकों के नव निर्माण हेतु गुरुकुलों के समकक्ष ही निवृत्त व्यक्तियों के लिये आरण्यकों का प्रावधान है, जिसमें ऐसे व्यक्ति, जो स्थायी रूप से समय दे सकने की स्थिति में हैं, पठन-पाठन की-धर्मतंत्र से लोकशिक्षण की व्यवस्था निभाते हैं। जो व्यक्ति अधिक समय नहीं दे सकते, उनके लिये आंशिक समयदान के रूप में प्रज्ञा आलोक विस्तार का प्रावधान है। ऐसे व्यक्ति जो कहीं आ जा नहीं सकते, उन बादलों की तरह संत-परिव्राजक स्वयं पहुँचकर अलख जगाते, प्रसुप्त चेतना को झंकृत करने का कार्य क्षेत्रीय आयोजनों धर्मानुष्ठानों के माध्यम से,अपनी मुखर वाणी एवं संकीर्तन यज्ञायोजनों आदि के द्वारा सम्पन्न करते थे ।

आज की परिस्थितियाँ भी ऐसी हैं, जिसमें ऐसे अग्रदूतों की आवश्यकता है, जो युग परिवर्तन प्रक्रिया के कार्यान्वयन हेतु अग्रदूत की भूमिका निभा सकें, युग की पुकार सुनते हुए स्वयं पार उतरने व अनेकों को नाव में बिठाकर पार करने का पुरुषार्थ सम्पन्न कर सकें।

विधिनोद्देश्यपूर्णेन यत्रदेष क्रमोऽचलत् ।
वातावृतौ तु देवत्वं तावच्छत्रायित ह्यभूत ।। ८८।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनानां जीवने तस्यददृशेऽप्युद्गतिः सदा ।
प्रमादात्सर्वमेवैतन्निरुद्देश्यामथाऽपि च ।। ८९।।
स्थितिं प्रहसनानां तु याति, सेव च जायते ।
परिणतिर्भारभूतानां मनोरञ्जनकर्मणाम् ।। ९०।।
पुरेव कर्तुमुद्देश्यपूर्णमेनं क्रमं-बुधाः ।
युज्यते,परिवर्त्यश्च कालेऽस्मिन् विद्यते त्वयम्।।९१।।
एतदर्थं च विज्ञास्तु गृहीत्वा दूरदर्शिताम् ।
कुर्युर्यत्रं च संस्कर्तुं येनैषा देवसंस्कृतिः ।। ९२।।
पुनः जीव्यादनेनैव जीवितुं युज्यतेऽपि च ।
कल्याणं भविता तेन मर्त्यमात्रस्य निश्चितम् ।।९३।।

टीका- जब तक यह सत्र उद्देश्य पूर्ण ढंग से चलता रहा तब तक वातावरण में देवत्व छाया रहा और जन-जीवन में उसका उभार दृष्टिगोचर होता रहा। अब प्रमादवश वह सब निरुद्देश्य और प्रहसन मात्र बनता जा रहा है। फलतः उसकी परिणति भी भारभूत मनोरंजनों जैसी होती जा रही है। इसे बदलने और पुरातनकाल की तरह उद्देश्य पूर्ण बनाने की आवश्यकता है। विज्ञजनों को इसके लिए दूरदर्शिता अपनाकर सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। देवसंस्कृति का पुनर्जीवन इसी प्रकार बन पड़ेगा। तभी मानव मात्र का कल्याण हो सकेगा ।। ८८-९३।।

पर्व, संस्कार, सामूहिक धर्मानुष्ठान, धर्म धारणा का प्रसार-विस्तार परिव्रज्या-पद यात्रा, संस्कृति के इन सभी उपादानों के मूल में जो तत्व दर्शन था, उसका उद्देश्य था सत्प्रवृत्तियों से भरा उत्कृष्ट वातावरण- मानव में देवत्व एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण। इन दिनों जो परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के प्रति अनास्था की ही परिणतियाँ हैं। उद्देश्य को भूलकर मात्र चिन्ह पूजा तक सीमित मानव समयक्षेप एवं अनावश्यक धन खर्च करता तो देखा जा सकता है, पर कलेवर में प्राण न होने के कारण उसके परिणाम हाथ लगते नहीं। फलतः निराशा हाथ लगती व नास्तिकता बढ़ती चली जाती है। समय की आवश्यकता है कि संस्कृति की अवधारणाओं को सोद्देश्य बनाकर जन-जन के गले उतारा जाय, ताकि मानव जाति आस्था संकट की विभीषिका से उबर सके।

तृतीयस्य दिनस्येदं मार्गदर्शनमुत्तमम् ।
जातं रूचिकरं तेषां सवेस्तै निश्चितं ततः ।। ९४।।
निवृत्यातो विधास्यामः कार्यक्षेत्रेषु स्वेषु तु ।
धर्मायोजन कार्यणि सोद्देश्यानि तथैव च ।।९५।।
जनजागृतिजं पुण्यलाभं प्राप्स्याम उत्तमम् ।
प्रसन्नश्चान्तरात्मा स्याज्जनता सेविता भवेत् ।।९६।।

टीका- तीसरे दिन का यह मार्ग दर्शन सभी को बहुत भाया और सभी ने निश्चय किया कि वे लौटने के उपरान्त अपने-अपने कार्य-क्षेत्रों में धर्मायोजनों का उद्देश्यपूर्ण प्रचलन-निर्धारण करेंगे और जनजागृति का पुण्य लाभ लेंगे, इससे अन्तरात्मा तृप्त होगी व जनता-जनार्दन की सेवा भी होगी ।। ९४-९६।।

सत्रे विसर्जिते सर्वे कुटीराँस्तेऽगमंस्ततः ।
अभिवादनपूर्वं च सायं सन्ध्यामुपासितुम् ।। ९७।।

टीका- सत्र का विसर्जन हुआ। लोग अभिवादनपूर्वक सायंकाल की क्रिया-प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए अपने-अपने निवास-कुटीरों में चले गए ।। ९७।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे देवसंस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः, श्रीकात्यायन ऋषि प्रतिपादिते "संस्कारपर्व-माहात्म्य" इति प्रकरणो नाम
।। तृतीयोऽध्यायः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

तीर्थ-देवालय प्रकरण

प्रारब्धं ज्ञानसत्रं तु चतुर्थस्य दिनस्य च ।
पूर्ववत्सन्निधौ तत्र प्रकृते रम्यता भृतः ।।१।।
ज्ञानगोष्ठ्यः शुभारम्भकाले चाऽध्यापकस्तु सः ।
शाण्डिल्यः करबद्धः सन्नुत्थितोऽध्यक्षमुक्तवान् ।।२।।

टीका- चौथे दिन का ज्ञान-सत्र फिर पिछले दिन की भाँति ही प्रकृति के सान्निध्य में आरम्भ हुआ। आज की ज्ञान-गोष्ठी के शुभारम्भ अवसर पर प्राध्यापक शाण्डिल्य ने खड़े होकर सत्राध्यक्ष से करबद्ध होकर पूछा।। १-२।।

शाण्डिल्य उवाच-

देवालयस्थापनाया महत्वं देवसंस्कृतौ ।
दृश्यतेऽत्यधिकं सन्ति मन्दिराणि स्थले स्थले ।।३।।
बाहुल्यस्यास्य हेतुं तु ज्ञातुं सर्वे समुत्सुकाः ।
अनेके किं च गृह्णन्ति कष्टसाध्यं जनाः समे ।।४।।
विधिं तं तीर्थयात्रायाः कालं वित्तं तथा श्रमम् ।
अर्पयन्त्ये तदर्थं च को लाभोऽनेन कीदृशः ।।५।।
कथं च तीर्थयात्रायाः शास्त्रकारैर्निरूपितम् ।
देवदर्शनसंभूतं महत्वं विपुलं तथा ।।६।।
तन्निमित्तं किमौत्सुक्यं धर्मप्रेमसु दृश्यते ।
जनेषु कृपयैतच्च रहोऽस्माक विबोध्यताम् ।।७।।

टीका- शाण्डिल्य ने पूछा-हे महाभाग ! देवसंस्कृति में देवालयों की स्थापना का महत्व देखा जाता है। स्थान-स्थान पर अनेकानेक मन्दिर बने हैं। इस बहुलता का क्या कारण है, सो जानने के लिए हम सब बहुत उत्सुक हैं। साथ ही यह भी जानना चाहते हैं कि तीर्थयात्रा की कष्ट साध्य प्रक्रिया को क्यों अनेकानेक लोग अपनाते हैं? क्यों श्रम, समय और धन इस निमित्त लगाते हैं ? इससे उन्हें किस प्रकार क्या लाभ होता है? शास्त्रकारों ने क्यों देव-दर्शन और तीर्थयात्रा का इतना महत्व बताया है कि उनके निमित्त धर्म-प्रेमियों में इतनी उत्सुकता पाई जाती है ? कृपया इस रहस्य का विस्तारपूर्वक उद्घाटन करें ।। ३-७।।

सामान्य रूप से मन्दिरों और तीर्थों का महत्व सब जानते हैं; किन्तु ऋषि उस मर्म को समझना चाहते हैं, जिस कारण शास्त्रों में और लौकिक प्रचलनों में इन्हें इतना महत्व दिया गया ।

भारतीय संस्कृति में तो इनका महत्व है ही, अन्य संस्कृतियों में, जिनमें मूर्ति प्रतीक पूजा को मान्यता नहीं दी गई, उनमें भी देवस्थलों, मस्जिदों, गिरिजाघरों, स्तूपों, विहारों के रूप में देवस्थल बनाये गये हैं। इसी प्रकार कोई ऐसा सम्प्रदाय नहीं, कोई ऐसी संस्कृति नहीं, जिसमें तीर्थों की स्थापना तथा उनकी यात्रा को महत्व न दिया गया हो।

कात्यायन उवाच-

अस्ति श्रेयस्करी विद्वन् ! जिज्ञासा भवतस्त्विदम् ।
ये श्रोष्यन्ति समाधानं त्वस्य प्रश्नस्य ते जनाः ।।८।।
लाभान्विता भविष्यन्ति लक्ष्यं प्राप्स्यन्ति जीवने ।
भवद्भिः सावधानैश्च श्रूयतां सर्वमादितः ।।९।।

टीका- कात्यायन बोले-हे मनीषी ! आपकी जिज्ञासा सब प्रकार श्रेयस्कर है। जो इसका समाधान सुनेंगें वे सभी इससे बहुत लाभान्वित होंगे व जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे। आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें ।। ८-९।।

उद्घोषकाः प्रवक्तारो बोढारो देवसंस्कृतेः ।
उच्यन्ते ब्राह्मणा येषां वर्गभेदो द्विधा मतः ।।१०।।
आश्रमस्थास्तु तत्रैकेऽपरे पर्यटकास्तथा ।
मुनयो मनीषिणस्त्वाद्याः कथ्यन्ते चाऽपरेतु ते ।।११।।
संन्यासिनो वानप्रस्था उभयोर्मिलितस्तु सः ।
समुदाय इह प्रोक्तः साधुरित्यविशेषतः ।।१२।।
अस्य वर्गस्य दिव्या सा प्रखरता देवसंस्कृतिम् ।
प्रखरां व्यापकां चक्रे तथैव च समुन्नताम् ।।१३।।

टीका- देवसंस्कृति के भारवाहक, उद्घोषक, प्रवक्ता वर्ग को ब्राह्मण कहते हैं। उनके दो वर्ग हैं-आश्रमवासी और पर्यटक। आश्रमवासियों को मुनि-मनीषी कहते हैं और परिव्राजकों को वानप्रस्थ-संन्यासी। इन दोनों का सम्मिलित समुदाय 'साधु' नाम से जाना जाता है। इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्ग की प्रखरता ने ही देवसंस्कृति को समुन्नत, प्रखर और व्यापक बनाया है ।। १०-१३ ।।

महामानवसंज्ञाश्च मानवेभ्यः सदा त्विमे ।
देवसंस्कृतिपक्षस्थ विकासाभ्यासयोः कृते ।। १४ ।।
सुविधा प्रददत्यत्र गृहस्था गुरुकुलस्य च ।
आरण्यकस्य मार्गेण विरक्तास्तीर्थयात्रया ।। १५ ।।

टीका- ये महामानव मनुष्य मात्र को देव संस्कृति के अनुरूप अभ्यास और विकास की सुविधाएँ प्रदान करते थे। इनमें से गृहस्थ गुरुकुलों एवं आरण्यकों के माध्यम से तथा विरक्त तीर्थ यात्राओं के द्वारा यह क्रम निभाते थे ।। १४-१५ ।।

ऋषियों ने-साधु-संतों ने किस आधार पर भारतभूमि के निवासियों जो 'देवता' स्तर का बनाया था। यह उनके जीवन यापन की-रहन-सहन, आचार-व्यवहार की शोध करने पर प्रतीत होता है। उनमें से अधिकांश के विशालकाय आश्रमों में से कुछ में गुरुकुल चलते थे कुछ में आरण्यक। गुरुकुल ब्राह्मण वर्ग के ऋषि चलाते थे, और आरण्यक तपस्वी स्तर के। गुरुकुलों में विद्यार्थी पढ़ते थे और आरण्यकों में वानप्रस्थी। बच्चों को गुरुकुलों में इसलिए नहीं भेजा जाता था कि वहाँ कुछ अतिरिक्त पढ़ाई होती थी वरन् वातावरण की विशेषता को ध्यान में रखकर ही विचारवान व्यक्ति अपने बालकों को वहाँ पढ़ने भेजते थे। यद्यपि सुख सुविधा की दृष्टि से वहाँ कठिनाई ही रहती थी। कठिनाई की परिस्थिति में जीवन विकास का प्रशिक्षण होना, विज्ञजनों की दृष्टि में एक सौभाग्य है। दरिद्रता में पिछड़ेपन में कष्ट सहना एक बात है और आदर्शों के परिपालन की साधना के निमित्त तितीक्षा भरा जीवन यापन करना दूसरी। दरिद्रता के साथ जुड़ी हुई हीनता व्यक्तित्व को दबोचती है। किन्तु आदर्श पालन के साथ जुड़े हुए कष्ट सहन से प्रतिभा और प्रखरता निखारने का अवसर मिलता है। प्राचीन काल में गृहस्थ ब्राह्मणों के संचालकत्व में गुरुकुल चलते थे। बौद्धिक शिक्षण ऋषि करते थे और दुलार भरा व्यवहार ऋषिकाएँ सिखाया करती थीं। ऋषि उनकी चेतना जगाते थे ऋषिकाएँ उपयुक्त व्यवस्था बनातीं। दोनों के सहयोग से ऐसे गुरुकुल चलते थे, जिनमें पढ़ने के उपरान्त जो भी छात्र अपने घरों को लौटते थे; नर रत्न होते थे। उनमें महामानवों के सारे गुण भरे रहते थे। व्यवसाय की दृष्टि से वे जो भी करें, परिष्कृत व्यक्तित्व जुड़ा रहने के कारण वे सामान्य काम भी व्यक्ति और समाज की सुख शान्ति का सर्वतोमुखी अभिवर्धन करते थे।

लक्ष्मण जी ने महर्षि विश्वामित्र से पूछा "गुरुवर! आप ऋषिगण सबके कल्याण की कामना से तप करते हैं, किसी का अहित नहीं चाहते, फिर क्यों असुर आपको सताते हैं ?"

महर्षि बोले-हे तात् ! असुर सबका कल्याण नहीं, अपनी मनमानी चलाना चाहते हैं। आश्रमों में जो श्रेष्ठ व्यक्तित्व तैयार होते हैं, उनके बीच असुरों को अपनी माया चलाने में कठिनाई होती है। इसीलिए वे देव संस्कृति के विकास स्रोतों इन आश्रमों पर प्रहार किया करते हैं।

गुरुकुल वासियों के अतिरिक्त सन्तों की कितनी मण्डलियाँ प्रायः परिभ्रमण करती रहती हैं। आश्रम बनाकर एक ही स्थान पर जमे रहने वाले आचार्य तो केवल वे ही होते थे जो शोध कार्य चलाते थे, उन्हीं के लिए स्थान विशेष पर अपना अन्वेषण केन्द्र, प्रयोग परीक्षण चलाने की सुविधा मिलती थी। शेष सभी सन्त, धर्म प्रचारक की भूमिका निभाते थे। परिव्राजक स्तर का ही उनका स्वरूप और कार्यक्रम रहता था। रामायण में लिखा है-

सनमान निरादर आदर ही सम संत सुखी विचरंत मही ।।
निर्वहन्ति क्रमं चैने तत्र देवालया इमे ।
आश्रमेषु पुरेष्वेवाभूवन् ग्रामेषु तेषु च ।। १६ ।।
एतेषामुपयोगश्च श्रद्धाया वृद्धये तथा ।
सदाचारस्य वृद्धयर्थं भवन्ति स्म निरन्तरम् ।। १७ ।।

टीका- देवालय भी ऐसे ही उद्देश्यों के लिए आश्रमों में, नगरों और ग्रामों में भी होते थे। इनका उपयोग श्रद्धा एवं सदाचार संवर्धन के लिए सदैव होता था ।।१६-१७ ।।

धर्म केन्द्र एक क्षेत्र में विनिर्मित होते और उनके द्वारा धर्म धारणा को जीवन्त रखने का उत्तरदायित्व दूर-दूर के क्षेत्र में सधता है। जिलाधीश पूरे जिले को संभालता है और तहसीलदार अपनी तहसील को। इसी प्रकार धर्म क्षेत्र की सुव्यवस्था, उपयोगिता एवं सर्वतोमुखी प्रगति साधना में छोटे-बड़े धर्म केन्द्रों को निरत रहना पड़ता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तत्वदर्शियों ने उनकी स्थापना की थी।

धर्म संस्थानों के दो रूप हैं, एक स्थानीय-क्षेत्रीय-सीमित। दूसरा व्यापक, समर्थ एवं बहुउद्देशीय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

क्षेत्रीय देवालय' कहलाते हैं और सुविस्तृतों को 'तीर्थ' कहते हैं। भगवान सर्वव्यापी होने से निराकार है। पर उनकी साकार स्थापना इसलिए करनी पड़ती है कि सूक्ष्म दर्शन में असमर्थ सामान्य बुद्धि को प्रत्यक्ष दृश्य देखकर स्मरण हो उठे, आकर्षण बढ़े और प्रेरणा-जगे। देवालयों की स्थापना इसलिये होती है, कि उन केन्द्रों से सम्पर्क रखने वालों को सम्पर्क साधते रहकर आस्तिकता; आध्यात्मिकता और धार्मिकता की त्रिवेणी का नियमित रूप से अवगाहन करने का अवसर मिलता रहे। प्रात: से लेकर सायंकाल तक देवालयों में चलने वाली गतिविधियों का उद्देश्य यही था कि उस क्षेत्र में समुदाय का लोक मानस श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा की दृष्टि से उच्चस्तरीय बना रहे। सर्वजनीन चिन्तन एवं चरित्र का उत्कृष्टता के साथ सघन सम्बन्ध बना रहे।

प्रतीकपूजामाश्रित्य चलिता पद्धतिस्त्वियम् ।
भारतीयस्य धर्मस्य शिक्षणस्य समुज्जवला ।।१८।।
धर्माऽध्यात्मरहस्त्वत्र प्रतीकप्रतिमाध्वना ।
बोधितं, देवतानां तां आकृतीनां विभिन्नता ।।१९।।
आयुधानि तथा वाहा सन्ति तेषां तु ये तथा ।
अनेकमुखहस्ताश्च सर्वेषामेव निश्चये ।।२०।।
उद्देश्यत्वेन भावोऽयं विद्यते तत्र सुदृढ़: ।
परम्पराभिराबद्धैर्देवानां नियमैस्तथा ।।२१।।
तथ्यै: सर्वाञ्जनान् बोद्धुं साधारणमतीनपि ।
उत्साहवर्धकं स्याच्च सदैवाकर्षणं महत् ।।२२।।

टीका- भारतीय धर्म की शिक्षण-पद्धति प्रतीक पूजा के रूप में प्रचलित हुई है। धर्म और अध्यात्म के रहस्यों को भारतीय धर्म में प्रतीक-प्रतिमाओं के माध्यम से समझाया गया है। देवताओं की विभिन्न आकृतियाँ, उनके आयुध, वाहन एवं अनेक मुख, हाथ निर्धारित करने के पीछे यह उद्देश्य है कि देव परम्पराओं के साथ जुड़े हुए नियमों, तथ्यों, रहस्यों से सर्वसाधारण को समझने-समझाने का उत्साहवर्धक आकर्षण बना रहे ।। १८-२२।।

बच्चों को अक्षरों की पहचान 'क' कबूतर, 'ख' खरगोश आदि प्रतीकों के माध्यम से करायी जाती है। आजकल तकनीकी शिक्षण में भी यही पद्धति उपयोगी मानी जाती है। ऋषियों ने समष्टिगत चेतना और उसके अनुशासनों का बोध प्रतीक पूजा के माध्यम से कराया था। देव प्रतिमाओं में से कुछ के स्वरूप की विवेचना से यह तथ्य स्पष्ट होता है।

वस्तुतो भगवानेक एव स वर्ततेऽस्ति नो ।
सहभागोऽपि वा कश्चित्तस्य नापि सहायक: ।।२३।।
एकाको स समस्तं तज्जत्स्थावरजंगमम् ।
सृजत्यवत्यथान्ते च संहरत्यात्मनैव च ।।२४।।
सत्ये तथ्येऽपि चैतस्मिन्नेकं सद् बहुधा तु तत् ।
विप्रा वदन्ति चैकं तुच्छु तावुक्तमनेकगम् ।।२५।।
प्रत्यर्मिसूर्यविम्बस्य स्वतंन्त्रास्तित्वमुज्वलम् ।
इवास्तीदं विजानन्ति ये न ते भेदबोधिन: ।।२६।।
परं विभिन्नताभिस्तु एताभिस्तत्वबोधजम् ।
रहस्यं विविधं ज्ञातुं सुविधा: प्राप्नुवन्त्यलम् ।।२७।।

टीका- वस्तुत: भगवान् एक है। उसका न कोई साझेदार है, न सहायक। अकेला ही सृष्टि का सृजन, पालन और संचालन करता है तथा अन्त में संहार भी करता है। इतने पर भी "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" की श्रुति में एक को अनेक रूप में प्रस्तुत किया है। वह हर लहर पर स्वतन्त्र सूर्य चमकाने की तरह है, जो इस तथ्य को जानते हैं; वे भगवान् की अनेक आकृतियों को देखकर भ्रम में नहीं पड़ते वरन्, इस विभिन्नताओं के माध्यम से तत्वज्ञान के अनेक रहस्यों को समझाने की सुविधा प्राप्त करते हैं ।। २३-२७।।

भगवान् को सर्व समर्थ एक मात्र सत्ता के रूप में व्यक्त करते हुए अनेक स्तुतियाँ की गयी हैं। जैसे-

व्यापक व्याप्त अखण्ड अनन्ता ।
अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता ।।

तथा-

एको देव: सर्वभूतेषु गूढ़: सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षसर्वभूताधिवास:,साक्षीचेता केवलोनिर्गुणश्च ।।

अर्थात् वह देव एक ही हैं, सर्वभूतों में व्याप्त है, गूढ़ है, सर्वव्यापी है, सभी जीवों का अन्तरात्मा वही है, कर्मचेतना का संचालक वही है, सभी भूत उसी में निवास करते हैं, वही सबका साक्षी रूप है, एक मानव ही सब कुछ है, और सभी गुणों से परे है।

सर्वाऽपि प्रतिमा दृश्यं पाठ्यपुस्तकमस्ति हि ।
माध्यमेन च यस्यास्तु जीवनस्यात्र दर्शनम् ।।२८।।
आत्मविज्ञानके सन्ति रहांस्येतानि यानि तु ।
बोद्धुं शक्यानि तान्याशु बालबोधइवाञ्जसा ।।२९।।
वयस्का: शिक्षिता एव पठितुं पुस्तकानि तु ।
समर्था: परमेतासां प्रतिमानां स्वरूपत: ।।३०।।
सामान्या: पुरुषाश्च स्युर्बहुज्ञातुं क्षमा स्वयम् ।
एतादृशं स्वरूपं हि प्रतिमानां तु वर्तते ।।३१।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेकत्वे चैकताया दर्शनस्येयमुत्तमा ।
पद्धतिर्विद्यतेऽपीह मनोरञ्जनकारिणी ।। ३२।।
सारगर्भा दूरदर्शिभावगा व्यवहारगा ।
मनोविज्ञानबोधस्य ध्यानं संस्थापने कृतम् ।। ३३।।

टीका- हर देव-प्रतिमा एक दृश्यमान पाठ्यपुस्तक है। जिसके माध्यम से जीवन-दर्शन और आत्मविज्ञान के गूढ़ रहस्यों को बालबोध की तरह समझा और समझाया जा सकता है। पुस्तकें तो शिक्षित वयस्क ही पढ़-समझ सकते हैं; पर प्रतिमा-प्रतीकों के दृश्य स्वरूप के सहारे सामान्यजन भी बहुत कुछ जान और सीख सकते हैं, प्रतिमाओं का स्वरूप ही ऐसा है। अनेकता के बीच एकता देखने की यह पद्धति मनोरंजक भी हैं, और सारगर्भित भी, व्यावहारिक और दूरदर्शितापूर्ण भी। इस स्थापना में मानव-मनोविज्ञान का समुचित ध्यान रखा गया है ।। २८-३३।।

लिपि की अपेक्षा प्रतीक चित्रों से शिक्षण अधिक अच्छा होता है। चित्र कथायें इसीलिए लोकप्रिय हैं। चुनावों में चुनाव-चिन्हों का क्रम भी इसीलिए है, कि पढ़े-बेपढ़े सभी उसके माध्यम से प्रत्याशी को पहचान लें। मार्गों पर मोड़-पुल आदि के लिए भी प्रतीक चिन्ह या चित्र अधिक उपयोगी माने गये हैं। इसी प्रकार भारतीय तत्वज्ञों ने गूढ़ मर्मों को देवमूर्तियों के माध्यम से समझाया है।

प्रत्येकस्य समीपस्थं सेवाक्षेत्रमपि त्विह ।
यदुच्यते मण्डलं तज्जनजागृतिकारकः ।। ३४।।
उत्तरदायित्वनिर्वाहकारणाद् धर्मधारणात् ।
मण्डलाधीश एवाथ मण्डलेश्वर एव वा ।। ३५।।
कथ्यते, विस्तृतं यस्य क्षेत्रं स कथ्यते बुधैः ।
स महामण्डलेशस्तु बहुमण्डलशासकः ।। ३६।।

टीका- हर देवालय का एक समीपवर्ती सेवाक्षेत्र भी *निर्धारित होता है। इसे मण्डल कहते हैं। मण्डल क्षेत्र में जनजागृति और धर्मधारणा का उत्तरदायित्व सँभालने वालों को मण्डलाधीश या मण्डलेश्वर कहते हैं। जिनका सेवाक्षेत्र बड़ा है, जो अनेक मण्डलों की व्यवस्था सँभालते हैं, उन्हें महामण्डलेश्वर कहते हैं ।। ३४-३६।।*

ऋषियों ने लोक चेतना जागरण के लिए एक व्यवस्थित तंत्र विकसित किया था। मन्दिर और तीर्थ उसके संचालन केन्द्र थे। जहाँ जैसे साधन तथा जिस प्रतिभा के लोकसेवी मिल जाते थे, वहाँ उसी स्तर का केन्द्र विकसित कर दिया जाता था। निस्पृह लोकसेवियों द्वारा उस क्षेत्र का इतना हित साधन होता था कि ऐसे केन्द्र स्थापित करने के लिए होड़ लग जाती थी।

दायित्वमनयोस्तत्र कर्तव्यं च द्विधैव तत् ।
विभक्तं तत्र तत्रत्य विधीनां निर्मितः सदा ।। ३७।।
प्रशिक्षणपरा कार्या कथासत्संगयोरपि ।
विद्यालयस्य धर्मानुष्ठानस्यापि विशेषतः ।। ३८।।
व्यायामभवनस्याथ चिकित्सासद्मनोऽपि च ।
प्रखरत्वविनिर्माणं पुस्तकालयसंस्थितेः ।। ३९।।
द्वितीयं स्वस्यसम्पर्कक्षेत्रे सद्वृत्तिवर्धकम् ।
पौरोहित्यस्य कर्मेतत्कर्तव्य भवति प्रियम् ।। ४०।।
एतदर्थं जनैस्तत्र सम्पर्कं साधितुं तथा ।
घनिष्ठतां विधातुं चाऽनिवार्यत्वं मतं स्वतः ।। ४१।।
यदर्थं यत्नशीलाश्च देवालयसुशासकाः ।
सदा सन्ति ददत्येते महत्वमुभयोः स्थितम् ।। ४२।।

***टीका-** इनका कर्तव्य-उत्तरदायित्व दो भागों में बँटा रहता है। एक-स्थानीय गतिविधियों को लोकशिक्षण परक बनाये रहना। वहाँ पाठशाला, व्यायामशाला, कथा-सत्संग, धर्मानुष्ठान, पुस्तकालय, चिकित्सालय आदि रचनात्मक गतिविधियों को प्रखर बनाये रहना। दूसरा-सम्पर्क क्षेत्र में सत्प्रवृत्ति-सम्वर्धन का पौरोहित्य करना। इस निमित्त उस क्षेत्र की जनता के साथ सम्पर्क साधने और घनिष्ठता रखने की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए देवालय के संचालक निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। वे स्थानीय और क्षेत्रीय व्यवस्था को समान महत्व देते हैं ।। ३७-४२।।*

मन्दिर संचालकों को स्थानीय और क्षेत्रीय दोनों गतिविधियाँ चलानी होती हैं। उसके लिए अपनी योग्यता और भावना दोनों विकसित करनी होती हैं। योग्यता के बिना कार्य नहीं सधता तथा भावना के बिना अपने अन्दर उत्साह और दूसरों पर प्रभाव नहीं उभरता। यह दोनों क्षमतायें सन्त-समाज में होनी चाहिए। न होने से उनकी उपयोगिता घट जाती है।

पूजैषा मानवस्याथ प्रभोर्धर्मस्य संस्कृतेः ।
आश्रमस्थानतो विप्रान् वदन्त्यपि च पूजकान् ।। ४३।।

***टीका-** यह भगवान्, मनुष्य और धर्म-संस्कृति की वास्तविक पूजा है। इसलिए उन आश्रमवासी ब्राह्मणों को पुजारी भी कहते हैं ।। ४३।।*

मूर्तियों के सामने पूजा-उपचार प्रतीक पूजा भर होती है। परन्तु जब विश्व विराट में फैले प्राणि समुदाय मानव समुदाय की सेवा सहायता की जाती है, पिछड़ों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को आगे बढ़ाया-गिरों को ऊँचे उठाया-अशिक्षितों को शिक्षित किया जाता है तो वही ईश्वर की-देवता की सार्थक पूजा कहलाती है। प्राचीन काल के ब्राह्मण-पुजारी इसी सेवा-साधना में संलग्न रहते थे और सच्चे सन्त की-भक्त की गौरवान्वित पदवी-मान्यता पाते थे।

जनजागरणसम्बद्धा येऽनिवार्या उपक्रमाः ।
तेषां संचालनायात्र प्रशिक्षणं गृहा अपि ।। ४४ ।।
उपासना स्थलैः सार्धमावाससहिता इमे ।
कर्तुं परम्परा दिव्या वर्तते व्यवहारिकी ।। ४५ ।।
प्रशिक्षणस्थलस्याथ पूजाकक्षस्य तस्य च ।
संचालकनिवासस्य प्रक्रियाभिः समग्रतः ।। ४६ ।।
देवालय स्थितिर्नूनं जायते केवलां तु ताम् ।
प्रतिमास्थापनामाहुरेकांगानुपयोगिनीम् ।। ४७ ।।
विना तावत्प्रबन्धेन पूर्तिर्नोद्दिश्यपूरका ।
संभवेद् येभ्य आप्तैस्तु देवालयविनिर्मितेः ।। ४८ ।।
योजनाऽऽप्ता महाशक्तेर्व्ययः कार्यान्वयाय च।
कृतो गाथाश्च गीतास्ता माहात्म्यानां सुविस्तराः ।। ४९ ।।

टीका- जन-जागरण सम्बन्धी आवश्यक गतिविधियों के संचालन के लिए देवालयों में उपासना स्थल के साथ ही प्रशिक्षण तथा आवास स्थल भी रखने की परम्परा है, जो व्यावहारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पूजाकक्ष, संचालक-निवास एवं प्रशिक्षण स्थल की त्रिविध प्रक्रियाओं का समावेश रहने से ही एक समग्र देवालय बनता है। प्रतिमा मात्र की स्थापना को एकांगी, अनुपयोगी एवं निषिद्ध ठहराया गया है। उतना प्रबन्ध न हो पाने पर उन उद्देश्यों की पूर्ति संभव नहीं, जिनके लिए आप्तजनों ने देवालयों को स्थापित करने की योजना बनाई और कार्यान्वित करने में असीम शक्ति लगाई। प्रेरणा देने वाले माहात्म्यों की गाथा गाई ।। ४४-४९ ।।

जो निर्धारण बड़े उद्देश्यों के लिये हुये हैं, उनसे सामान्य उद्देश्य भर पूरे हों तो वह एक प्रकार का घाटा है। देवालयों के उद्देश्य बहुत व्यापक और महत्वपूर्ण थे। पूजा उपचार क्षणिक संतोष देने वाले क्रमों से उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता। उन्हें बनाने में लगे श्रम और निष्ठाओं का पूरा उपयोग किया जाना आवश्यक है।

कात्यायन उवाच-

भद्रा ! देवालयस्येदं पारम्पर्यं वहन्ति ते ।
ब्राह्मणा आश्रमस्थास्तु तथैव भ्रमणादपि ।। ५० ।।
जनजागृतिकार्यस्य पुण्ये लग्ना विधौ च ये ।
परिव्राजकविप्राणां पद्धतिस्त्वात्मनोऽस्ति सा ।। ५१ ।।
वानप्रस्थाः प्रवृत्तास्ते संन्यासस्था इहैव तु ।
यथा मेघा धरां शुष्कां सिञ्चितां कर्तुमुद्यताः ।। ५२ ।।
धावन्ति च जगत्प्राणो गत्वा प्राणान् प्रयच्छति ।
मनुष्येभ्यस्तथा चैष प्रभाया ऊष्मणोऽपि च ।। ५३ ।।
दाता दिवानिशं धत्ते प्रव्रज्यामिव भास्करः ।
तमिस्रायां प्रभां शैत्यं शीतांशुः स प्रयच्छति ।। ५४ ।।
देवा इव मनुष्येषु देवानां स्तरगास्तु ये ।
जनजागृतिहेतोस्ते भ्रमन्ति हृदये नृणाम् ।। ५५ ।।
तत्र धर्मधृतिं भावयन्ति दिव्यां गृहे गृहे ।
सद्वृत्तिवर्धनस्याऽपि प्रखरं कर्म कुर्वते ।। ५६ ।।
प्रयोजनाय चैतस्मै यत्ना येऽनेकरूपिणः ।
क्रियन्ते तीर्थयात्रास्ते कथ्यन्ते सर्व एव हि ।। ५७ ।।

टीका- कात्यायन पुनः बोले-हे भद्रजनो ! जिस प्रकार देवालय परम्परा को आश्रमवासी ब्राह्मण सँभालते हैं, उसी प्रकार परिभ्रमण द्वारा जन-जागरण की पुण्य प्रक्रिया में निरत रहने वाले परिव्राजक, सन्तसमुदाय की अपनी कार्यपद्धति है। वानप्रस्थ और संन्यासी इसी में प्रवृत्त रहते हैं। बादल सूखी भूमि को सींचने के लिए दौड़ते हैं। पवन हर प्राणी को उनके पास जा-जाकर प्राण-अनुदान बाँटता है। सूर्य की अहर्निश प्रव्रज्या संसार को गर्मी तथा रोशनी बाँटने के निमित्त चलती है। चन्द्रमा सघन तमिस्रा में यथा सम्भव प्रकाश देता और शीतलता बिखेरता है। इन देवताओं की तरह मनुष्यों में जो देवस्तर के हैं, वे जन-जागरण के लिए सर्वत्र परिभ्रमण करते जन-जन के मन में धर्म-धारणा उगाते, घर-घर में सत्प्रवृत्ति-सम्वर्धन का अलख जगाते हैं। इस प्रयोजन के लिए विभिन्न रूप में किये जाने वाले प्रयत्न तीर्थयात्रा कहलाते हैं ।। ५०-५७ ।।

तीर्थयात्रा का परमार्थ पक्ष वह है जिसमें विज्ञजन मण्डली बनाकर, धर्म प्रचार का उद्देश्य आगे रखकर चलते थे। मार्ग में मिलने वालों से ऊँचा उठाने वाली, आगे बढ़ाने वाली वार्ता करते थे। रात्रि को जहाँ ठहरते, वहाँ लोकशिक्षण के निमित्त कथा-कीर्तन का आयोजन रखते थे। साथ ही व्यक्तिगत अथवा स्थानीय उलझनों के सन्दर्भ में सुझाव-समाधान भी प्रस्तुत करते थे। लोग उनकी निष्पक्षता, विद्वता एवं प्रतिभा से प्रभावित होकर बातें मानते भी थे। इस प्रकार यह तीर्थ यात्राएँ घर-घर अलख जगाने और जन-जन के मन-मन में धर्मधारणा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उभारने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। उस प्रयास की उपयोगिता और संलग्न व्यक्तियों की महानता को देखते हुए श्रद्धालु लोगों ने उनके प्रवास को सरल बनाने में पूरा-पूरा सहयोग दिया था। धर्मशालाएँ सदावर्त, उद्यान बनाने में तीर्थयात्रा के लिए सुविधा साधन जुटाना-धर्म प्रचारकों को सहयोग देना ही एकमात्र प्रयोजन था।

साधुभ्यस्तीर्थयात्रायास्तपः कर्तुं सदैव तु ।
शास्त्रीयं वर्तते दिव्यं विधानं पुण्यदायकम् ।। ५८ ।।
अयमुच्चतरो नूनं योगाभ्यासोऽस्ति वा पुनः ।
देवाराधनमेतस्माद् यत्नस्यास्य फलं नहि ।। ५९ ।।
कस्मादपि विचारास्तु न्यूनमास्ते परार्थगात् ।
मण्डले यान्ति सर्वे ते परिव्राजकसाधवः ।। ६० ।।
येन यत्राऽपि वासः स्यात्प्रचारस्तत्र संभवेत् ।
सोत्साहं मण्डले तत्र भवन्त्येव सदैव च ।। ६१ ।।

टीका- साधु समुदाय को सर्वदा तीर्थयात्रा की तपश्चर्या करते रहने की पुण्यदायी शास्त्रीय विधान है। यह उच्चस्तरीय योगाभ्यास एवं देवाराधन है। इस प्रयास का पुण्यफल किसी भी परमार्थ उपक्रम से कम नहीं माना गया है। इसके लिए परिव्राजक, मण्डली बना कर निकलते हैं, ताकि जहाँ ठहरें-वहाँ उत्साहवर्धक प्रचार-प्रक्रिया सम्पन्न कर सकें ।। ५८-६१ ।।

परमार्थ हेतु चलते रहना देव संस्कृति का उद्घोष है। "चरैवेति-चरैवेति" चलते रहो, चलते रहो- का मंत्र इसी निमित्त दिया गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है-बैठे हुए व्यक्ति का भाग्य भी बैठा रहता है, बढ़ता नहीं। उठकर चलने वाले का भाग्य उन्नति की ओर बढ़ता है। भूमि पर सोते रहने वाले का भाग्य भी सोता है। जो देश देशान्तर में अर्जन के लिए निकल पड़ता है उसका भाग्य दिन-दिन बढ़ता जाता है। "सोने वाला कलि बनता है, नींद को त्याग करने वाला द्वापर, उठने वाला त्रेता चलने वाला सतयुग बनता है।"

तीर्थयात्रास्वरूपं तु पदयात्रैव विद्यते ।
लोकैश्च बहुभिर्भूयान् सम्पर्कस्त्वेवमेव हि ।। ६२ ।।

टीका- तीर्थयात्रा का स्वरूप पदयात्रा है, क्योंकि अधिक लोगों से अधिक जनसम्पर्क साधना, इसी प्रकार सम्भव हो सकता है ।। ६२ ।।

प्राचीनकाल में धर्म-परायण व्यक्ति छोटी-बड़ी मण्डलियाँ बनाकर तीर्थयात्रा के लिए पैदल ही निकलते थे। कहाँ से चलकर, किस मार्ग से, किन-किन स्थानों पर ठहरते हुए, कब तक वापस लौटेंगे, इसकी रूप रेखा प्रत्येक मण्डली अपनी-अपनी प्रथक-प्रथक बनाती थीं। मार्ग में जो भी गाँव, झोंपड़े, नगले, पुरवे मिलते थे, उनमें रुकते, ठहरते किसी उपयुक्त स्थान पर रात्रि विश्राम करते थे। यही क्रम निरन्तर चलता था। दिन में जहाँ रुकना हो, वहाँ धर्म चर्चा करना-लोगों को कथा सुनाना और उन्हें उपयुक्त मार्गदर्शन देना, यह क्रम प्रातः से सायंकाल तक चलता था। रात्रि में जहाँ रुकते, वहाँ कथा-कीर्तन का-शंका समाधान का सत्संग क्रम बनता था। यही कार्य-पद्धति पूरी यात्रा अवधि में बनी रहती थी। काय-चिकित्सा, मानसिक-चिकित्सा, उपयोगी परामर्श, समर्थ शुभ-कामना जैसे अनेकों लाभ इस सन्त मण्डली के सम्पर्क से जन-साधारण को मिलते थे। इन मण्डलियों के स्तर एवं क्रिया-कलाप से जन-जन के मन-मन में अपार श्रद्धा उमड़ती थी। अस्तु वे उनके प्रति न केवल भाव भरा सम्मान व्यक्त करते थे, वरन् उनके लिए आवश्यक सुविधा जुटाने में पूरा-पूरा सहयोग भी करते थे।

तीर्थयात्रिपरिव्राजः स्वयात्राया उपक्रमम् ।
क्षेत्रावश्यकतारूपं कुर्वते विश्रमस्य च ।। ६३ ।।
तेषां व्यवस्थितिं तेभ्यः सुविधानां समर्जनम् ।
स्थाने-स्थाने स्थितान्येव कुर्वते मन्दिराणि तु ।। ६४ ।।

टीका- तीर्थयात्री परिव्राजक अपनी यात्रा का उपक्रम क्षेत्रों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बनाते हैं। उनके विराम के लिए सुविधा जुटाने और व्यवस्था बनाने का उत्तरदायित्व स्थान-स्थान पर विनिर्मित देवालय सँभालते हैं ।। ६३-६४ ।।

तीर्थयात्रा का उद्देश्य लोकहित होता है, इसलिए समय की आवश्यकता देखकर संत यात्रा का उद्देश्य और स्वरूप निर्धारित करते रहे हैं।

उपहारान् दक्षिणां च स्थापयेद्देवसंमुखे ।
दर्शकस्तत्र, भोगस्य प्रबन्धोऽपि भवेत्सदा ।। ६५ ।।
आश्रमार्थव्यवस्थां च कर्तुं सन्तुलितामिदम् ।
निर्धारणं वर्ततेऽत्र निश्चितं देवसद्मनम् ।। ६६ ।।

टीका- देवता के सम्मुख दर्शक भेंट-दक्षिणा रखें। उनके भोग आदि का प्रबन्ध रहे-यह निर्धारण आश्रम की अर्थ-व्यवस्था सुसन्तुलित रखने के लिए है ।। ६५-६६ ।।

देवालयों तथा तीर्थों के सामान्य खर्च के लिए उद्देश्य की पवित्रता के अनुरूप ही साधनों की पवित्रता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी रखी जानी चाहिए। व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु दान लेने को देव संस्कृति ने निषिद्ध ठहराया है। श्रद्धालु गण भगवान के सामने अपने श्रद्धा सहयोग-अंशदान इसलिए अर्पित करते हैं कि उससे आश्रम व्यवस्था सुसंतुलित रूप से चलती रहे और जिनके कंधों पर धर्म-जागरण का, जन-जागृति का उत्तरदायित्व सौंपा गया है वे निश्चिन्तता पूर्वक अपना कार्य करते रह सकें।

तीर्थवासी या तीर्थ सेवा को व्यक्तिगत दान न लेने का अनुशासन शास्त्रों में स्पष्ट करते हुए शास्त्रकार ने कहा है-

यो न क्लिष्टोऽपि भिक्षेत ब्राह्मणस्तीर्थसेवकः ।
सत्यवादी समाधिस्थः स तीर्थस्योपकारकः ।।

जो तीर्थ सेवी ब्राह्मण अत्यन्त क्लेश पाने पर भी किसी से दान नहीं लेता, सत्य बोलता और मन को वश में रखता है, वह तीर्थ की महिमा बढ़ाने वाला है।

श्रद्धा भरा सहयोग देव स्थल पर दिया जाना और उसी से सत्पात्रों की आवश्यकता पूरी होने का क्रम ही सदा उचित ठहराया गया है। इन दिनों भी कितने ही धर्म संस्थानों के पास अच्छे आजीविका *स्त्रोत* हैं। तिरुपति बालाजी, साईं बाबा, नाथद्वारा, चारों धाम के शंकराचार्य मठ आदि का उल्लेख अभी भी सम्पत्तिवान् धर्म संस्थानों के रूप में किया जाता है। अन्यान्य छोटे बड़े मठ संस्थान भी ऐसे हैं, जिनके पास लोक मंगल के लिए प्रचुर सम्पदा है। जिसका उपयोग होना चाहिए। यह परम्परा इसलिए चली थी कि वर्तमान ईसाई मिशन की तरह उनकी शक्ति अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति के अनेकानेक रचनात्मक प्रयोजनों में लगी रह सके। प्राचीन काल में बौद्ध संस्थान भी साधन सम्पन्न थे। यह राशि उन्हें लोक श्रद्धा की परमार्थ भावना के द्वारा उपलब्ध हो सकी थी।

सम्पर्कस्तीर्थयात्राया देवसद्मन एव च ।
मध्ये ह्येतादृशः सोऽस्ति यथा ते पूरका मताः ।।६७।।
साधवो ब्राह्मणाश्चैव परस्परमिमे समे ।
पणस्यैकस्य पार्श्वो द्वौ मतौ तु मिलितौ यथा ।। ६८ ।।

टीका- तीर्थ-यात्रा और देवालय व्यवस्था के बीच उसी प्रकार का तालमेल है, जैसा कि साधु और ब्राह्मणों को परस्पर पूरक माना गया है और एक ही सिक्के के दो पहलू कहा गया है।। ६७-६८।।

गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले, छोटे-बड़े देवालयों की आवश्यकता इसलिये समझी गई कि वे अपने-अपने क्षेत्र में जन-जागरण के केन्द्र बना कर रहें। यह स्थानीय देवालयों की बात हुई है। इससे बढ़कर दूसरा प्रयास है- तीर्थों का। उन्हें भावना क्षेत्र के शोध संस्थान, निवारक अस्पताल, सम्वर्धन सेनेटोरियम, विभिन्न फैकल्टियों से सुसम्पन्न महा-विद्यालयों, विश्वविद्यालयों के समतुल्य समझा जा सकता है। बच्चों के गुरुकुल गृहस्थों के समाधान-सत्र एवं अधेड़ों के आरण्यक बनकर, वे रहते थे। तत्वदर्शी ऋषि प्रकृति सान्निध्य में जलाशयों की सुविधा वाले ऐतिहासिक प्रेरणाओं से जुड़े हुये स्थान इस निमित्त चुनते थे और वहाँ ऐसी प्रवृत्तियों का सूत्र संचालन करते थे, जिनमें दूर-दूर से लोग पहुँचते रहें। घर से दूर रहकर उपयुक्त मनःस्थिति एवं प्रेरणाप्रद परिस्थिति का लाभ उठाते हुये व्यक्तियों का समग्र परिष्कार कर सकें।

शाण्डिल्य उवाच--

धर्म प्रचारका नैव जना ये सन्ति ते कथम् ।
तीर्थयात्रानिमित्तेन यान्ति तीर्थानि सन्ततम् ।।६९।।
कारणं विद्यते किं तद् भगवन् बोध्यतामिदम् ।
आकर्ण्यैतन्महर्षिः स प्राह कात्यायनस्तदा ।। ७० ।।

टीका--शाण्डिल्य बोले-हे भगवन्! जो लोग धर्म-प्रचारक नहीं हैं, वे क्यों तीर्थ यात्रा के निमित्त जाते हैं। इसका कारण बताने की कृपा करें। इस प्रश्न को सुनकर महर्षि कात्यायन बोले-।। ६९-७०।।

कात्यायन उवाच-

विद्वांसस्तीर्थयात्रायाः फलं ते प्राप्नुवन्त्यलम् ।
सामान्या अपि ते मर्त्याः प्रत्यक्षं नात्र संशयः ।। ७१ ।।
पदयात्रा स्वास्थ्यवृद्धिं विधत्तेऽनुभवं तथा ।
व्यावहारिकमेतच्च ज्ञानं वर्धयति ह्यलम् ।। ७२ ।।
सम्पर्को वर्धते नूनं स च परिचयोऽपि तु ।
लाभांस्तान् यान्ति नैकत्र स्थितायानुपयान्तिते ।।७३।।

टीका- कात्यायन बोले-हे विद्वज्जनो ! सामान्य जनों को भी तीर्थ यात्रा का पुण्यफल प्रत्यक्ष मिलता है, इसमें सन्देह नहीं। पद यात्रा से स्वास्थ्य सुधरता है, अनुभव बढ़ता है, व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि होती है, परिचय और सम्पर्क बढ़ता है। इस प्रकार वे उन लाभों को प्राप्त करते हैं, जो एक जगह पर बैठे रहने से मिल ही नहीं सकते।। ७१-७३।।

प्राचीन काल में धर्म प्रचार के उद्देश्य से मण्डलियाँ निकलती थीं। कुछ उनमें सूत-वक्ता और कुछ शौनक-साथी श्रोता गण होते थे। अनेक ऋषियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के गुरुकुल भी उसी पद्धति के आधार को अपनी व्यवस्था बनाते थे। गौ-समूह के साथ छात्रगण अपने गुरुजनों के साथ निकलते थे। मार्ग में स्काउटों के केम्प फायर की तरह पड़ाव डालते-गौएँ चराते हुये ठहरते और आगे बढ़ते थे। साथ-साथ अध्ययन-अध्यापन भी चलता रहता था। वास्तविक शिक्षा में गधे की तरह छात्र पर पुस्तकों पर अनावश्यक भार लाद देने का भोंड़ापन नहीं, सर्वतोमुखी अनुभव सम्पादन का आधार जुड़ा रहता है, छात्रों को उस परिभ्रमणकारी शिक्षा से बहुमुखी लाभ मिलते थे। उपाध्यायगण स्थानीय लोगों को भी अपने धर्मोपदेशों से लाभान्वित करते रहते थे। नये छात्रों का प्रवेश भी उस मण्डली में होता रहता था। जो लोग गुरुकुल शिक्षा पद्धति का महत्व नहीं समझते थे, उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेरणा मिलती थी और वे भी अपनी सन्तान को उसमें प्रवेश कराते थे। इसे तीर्थ यात्रा स्तर का गुरुकुलीय प्रशिक्षण कहा जाता था। लगातार ऐसा परिभ्रमण न हो सके, तो भी प्रत्येक गुरुकुल को कुछ-कुछ समय के लिये शिक्षण सत्रों की छोटी-छोटी टोलियाँ विभिन्न दिशा में भेजनी होती थीं। इसमें छात्र, अध्यापकों को ही नहीं, सम्पर्क में आने वाले क्षेत्रों तथा जन-साधारण को भी बहुमूल्य ज्ञान सम्पादन का अवसर मिलता रहता था, तीर्थयात्रा का कितना महत्वपूर्ण और कितना सार्थक स्वरूप था वह।

सामाजिक्या च दृष्ट्यापि लाभा अस्या मता यथा।
विकेन्द्रीकरणं श्रेष्ठं स्वतो वित्तस्य जायते ।।७४।।
लघुद्योगा महान्तश्च विकासं यान्ति ते क्रमात् ।
विशालत्वं प्रयात्येषा भावना वर्द्धते तथा ।।७५।।
देशभक्तिस्तथोपैति विस्तरं क्षेत्रमात्मनः ।
जना आत्मान एवातः प्रतीयन्ते समेऽपि च ।।७६।।

टीका- सामाजिक दृष्टि से भी इसके बड़े लाभ हैं। धन का वितरण-विकेन्द्रीकरण होता है, लघु एवं विशाल उद्योग पनपते हैं, विशालता की भावना बढ़ती है, देशभक्ति में प्रखरता आती है और आत्मीयता का क्षेत्र सुविस्तृत होता है। सभी मनुष्य अपने परिवार रूप में दीखते हैं।। ७४-७६।।

पर्यटन को एक अच्छा उद्योग माना गया है, कई राष्ट्रों की अर्थ नीति तो पर्यटन व्यवसाय पर ही टिकी है। विद्वान विद्वत्ता के प्रसार के लिये, कलाकार कला विस्तार के लिये तथा व्यापारी उद्योग विस्तार के लिये छोटी और लम्बी यात्राएँ किया करते थे। आजकल भी विद्यार्थियों को उद्योगकेन्द्रों, देश की विभिन्न संस्कृतियों का स्वरूप समझाने के लिये शिक्षण यात्रायें की जाती हैं, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव बढ़ाने के लिये भी शिष्ट मंडलों, युवकों, विद्यार्थियों के दल अन्य देशों की यात्रा करते हैं। इससे आत्मीय तथा सांस्कृतिक सद्भाव बढ़ता है। विशिष्ट सेमिनार, मेले आदि भी इसी उद्देश्य से किये जाते हैं।

स्थितास्तत्र च कुर्वन्ति त्वात्मशोधनसाधनाम्।
परिष्कुर्वन्ति चात्मान त्रुटीस्ता दूरयन्त्यपि ।।७७।।
प्रायश्चित्तं चरन्त्यत्र योगाभ्यासं तथैव च ।
रतास्तपसि सत्संगस्वाध्यायौ लभतेऽपि च ।।७८।।
प्राप्यते प्रतिभानां च सप्राणानां तु सन्निधेः ।
लाभो महांस्तु यो नं ते प्राप्नुवन्त्येव सन्ततम् ।।७९।।
अन्विषन्ति समाधानं ग्रन्थीनां कुर्वते तथा ।
व्यवस्थितां योजनां ते भविष्यन्निर्धृतेः शुभम् ।।८०।।
वातावृतौ प्रेरकायां वसन्तः प्राणभृत्यपि ।
तीर्थसेवनमाहुश्च कल्पसाधनमप्यतः ।।८१।।
रूपे वास्तविके तच्चेत्सम्पन्न क्रियते ततः।
स्वास्थ्यं शरीरसम्बन्धिचिन्तनं मानसं तथा ।।८२।।
परिवर्तनमायातिः सहजीवन कर्मणा ।
भविष्यन्निर्मितेर्लाभः कायाकल्प इवेष्यते ।।८३।।

टीका- तीर्थ सेवन को मानसिक उपचार माना गया है। वहाँ रहकर लोग आत्मशोधन और आत्म-परिष्कार की साधना करते हैं। भूतकाल की गलतियों को सुधारते हैं। पापों का प्रायश्चित करते हैं। योगाभ्यास और तप-साधना में निरत रहते हैं। स्वाध्याय-सत्संग का लाभ उठाते हैं। प्राणवान् प्रतिभाओं के सान्निध्य से जो असीम लाभ मिलता है, उसे उपलब्ध करते हैं। प्रस्तुत गुत्थियों का समाधान खोजते हैं। तथा भविष्य निर्धारण की सुव्यवस्थित योजना वहाँ के प्राणवान् प्रेरणाप्रद वातावरण में रहकर बनाते हैं। तीर्थ सेवन को कल्प साधन कहा गया है। उसे यदि सही रूप में सम्पन्न किया जा सके, तो शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक चिन्तन, जीवनचर्या में परिवर्तन एवं भविष्य-निर्माण की दृष्टि से कायाकल्प जैसा लाभ ही मिलता है।। ७७-८३।।

तीर्थ सेवन में केवल बाह्य उपचार पर्याप्त नहीं। साधक को तीर्थ चेतना के साथ अपने चिन्तन को मिलाना पड़ता है। नारद पुराण का मत है:-

गंगादि तीर्थेषु वसन्ति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च सन्तिः।
भावोज्झितास्ते न फलंलभन्तेतीर्थाच्चदेवायतनाच्चमुख्यात्।।
भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत् समाहितात्मा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात- गंगा आदि तीर्थों में मछलियाँ निवास करती हैं, देव मन्दिरों में पक्षीगण रहते हैं; किन्तु उनके चित्त भक्ति-भाव से रहित होने के कारण उन्हें तीर्थ सेवन और देव मन्दिर में निवास करने का कोई फल नहीं मिलता। अत: हृदय कमल में भाव का संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थ सेवन करना चाहिये।

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ।।

अर्थात्-पापी मनुष्यों के तीर्थ में जाने से उनके पाप की शान्ति होती है। जिनका अन्त:करण शुद्ध है, ऐसे मनुष्यों के लिये तीर्थ यथोक्त फल देने वाला है।

गत्वा तीर्थेषु बालानां संस्काराणां विधेस्तथा ।
पाणिग्रहणकार्यस्य पितृश्राद्धविधेरपि ।। ८४ ।।
वानप्रस्थाश्रमस्याऽपि विद्यते सा परम्परा ।
सर्वेषां हि महत्वं तद्धयेतदाश्रित्य वर्तते ।। ८५ ।।
तस्या वातावृतेर्लाभं गन्तृणामञ्जसा नृणाम ।
जीवनं सम्पदां मार्गे दैवैनां क्राम्यति स्वयम् ।। ८६ ।।

टीका- तीर्थों में जाकर बालकों के संस्कार कराने, विवाह करने, वानप्रस्थ लेने, पितरों का श्राद्ध कर्म करने की जो प्रथा-परम्परा है, उसका महत्व भी इसी आधार पर है कि उस प्रेरणाप्रद वातावरण का इन प्रयोजनों के लिये जाने वाले लोग भी अनायास लाभ लेते हैं, जिससे जीव अनायास दैवी-सम्पत्ति के मार्ग में चलने लगता है।। ८४-८६ ।।

तीर्थों में जाकर संस्कार कराने की परिपाटी सनातन है। आज भी उसको चिह्न-पूजा के रूप में निभाया जा रहा है। उस परम्परा को पुन: सुनियोजित करने की आवश्यकता है।

लोग मुण्डन और श्राद्ध आदि ही तीर्थों में कराते देखे जाते हैं, किन्तु गर्भिणी का पुंसवन, बालक का नामकरण, मुण्डन, विद्यारम्भ तथा दीक्षा-यज्ञोपवीत, सभी तीर्थों के संस्कारित वातावरण में कराये जाने चाहिये। विवाह और वानप्रस्थ संस्कार भी उपयुक्त वातावरण में ही फलते हैं।

सशक्तां प्रखरां तीर्थप्रक्रिया कर्तुमेव यत् ।
दानं प्रदीयते व्रसु सामान्येभ्य: समर्पितात् ।। ८७ ।।
प्रयोजनेभ्यो वा नृभ्यो दानान्मानितमुत्तमै: ।
अनेकगुणपुण्यानां लोके तु फलदायकम् ।। ८८ ।।
तीर्थयात्रा तथेत्थं च यत्र सा वर्तते तप: ।
परिव्राजां कृते साधुमनसामृषिरूपिणाम् ।। ८९ ।।
महत्वं वर्तते न्यूनं तस्या नृभ्यो न चाण्वपि ।
सर्वसाधारणेभ्योत ग्राह्या सा सन्ततं जनै: ।। ९० ।।
तेऽपि मर्त्या यथाशक्ति कुर्वन्तो जनजागृतिम् ।
पदयात्राऽनुबद्धानां पुण्यानां कर्मणां बहु ।। ९१ ।।
लभन्ते लाभमन्ये च सुविधा: साधनानि ये ।
अस्यै समर्पयन्त्येते सद्गतिं यान्ति धर्मिण: ।। ९२ ।।

टीका- तीर्थ प्रक्रिया को जीवन एवं प्रखर बनाने के लिये दिया गया दान, सामान्य व्यक्तियों या प्रयोजनों के लिये दिये गये दान की तुलना में अनेक गुना पुण्य फलदायक माना गया है। इस प्रकार तीर्थयात्रा जहाँ ऋषिकल्प साधुमना परिव्राजकों के लिये उच्चस्तर को तपश्चर्या मानी गई है, वहाँ सर्वसाधारण के लिये उसका महत्व कम नहीं है, अत: उसे ग्रहण किया जाना चाहिये। वे भी यथासम्भव जन-जागरण का कार्य करते हुये उस पदयात्रा के साथ जुड़े हुये पुण्य प्रयोजन का कम लाभ नहीं उठाते हैं। जो इस तीर्थ प्रक्रिया के लिये सुविधा-साधनों की व्यवस्था करते हैं, वे भी धर्मात्मा कहलाते और सद्गति पाते हैं।। ८७-९२ ।।

तीर्थों में दान-पुण्य की परम्परा आरम्भ काल से ही प्रचलित है। यों यह प्रक्रिया सदा से ही धर्मधारणा का अविच्छिन्न अंग मानी और श्रद्धापूर्वक क्रियान्वित की जाती रही है। पर उसका तीर्थ स्नान में अधिक भावना पूर्वक चरितार्थ करने और सामान्य स्थानों की तुलना में अनेक गुना पुण्यफल माने जाने का जो शास्त्र वचन है, वह अकारण नहीं, उसके पीछे कुछ तथ्य भी हैं। तीर्थ के ऋषि आश्रम प्रकारान्तर से धर्म-धारणा की ऊर्जा उभारने वाले बिजली घर जैसे थे। ये सुविस्तृत क्षेत्र में शक्ति धारा भेजते और जन-जन के अभावों की पूर्ति करते थे। उन्हें ऐसे विशालकाय जलबाँधों की भी उपमा दी जाती है, जहाँ से अनेक नहरें निकलती और व्यापक क्षेत्र को सींचती हैं।

जब छोटे से छोटे कार्य के लिये साधन चाहिये, तो इन तीर्थ संस्थाओं की भी तो आवश्यकताएँ रहेंगी ही। अध्यापन और व्यवस्था में लगे व्यक्तियों को निर्वाह चाहिये। आच्छादन, उद्यान, प्रकाश, स्वच्छता आदि के लिये खर्च चाहिये। निजी उद्योग-व्यवसाय न होने पर उसकी पूर्ति कैसे हो? उसका उत्तर एक ही केन्द्र बिन्दु पर आटिकता है कि श्रद्धालु तीर्थ यात्री अपनी परमार्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावना का परिपोषण करने के लिये तीर्थ संस्थानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखें और उनकी पूर्ति के लिये अपनी उदारता को भाव भरी उमंगों के साथ चरितार्थ होने दें।

महान्तो मानवा: स्वां तु क्षमता तीर्थनिर्मितौ।
तद्व्यवस्थानिमित्तं च व्यधुस्तत्र नियोजिताम्।।९३।।
कर्म चक्रु: परार्थं च पुण्यभाजो यशस्विन: ।
अभूवन् मार्गदृष्टार उच्यन्तेऽध्यात्मसंस्कृते: ।।९४।।

टीका- अनेक महामानवों ने अपनी क्षमता को तीर्थ स्थापना एवं व्यवस्था के लिये नियोजित किया और सच्चे अर्थों में परमार्थ कमाया, पुण्य और यश के भागीदार बने, जिन्हें अध्यात्म संस्कृति का मार्ग-द्रष्टा भी कहा जाता है।। ९३-९४।।

सही अर्थों में वास्तविक पुण्य के भागीदार वही बनते हैं, जो श्रेष्ठ कार्यों में अपनी सम्पदा-प्रतिभा और शक्ति नियोजित करते हैं। उनके योगदान से-उनके क्रिया कलाप से तीर्थ भी धन्य बन जाते हैं।

तीर्थ स्थापना का-तीर्थ परम्परा का प्रचलन किस आचार पर, किस आधार पर प्रादुर्भूत हुआ, इसका तात्विक विवेचन करने पर प्रकट होता है कि तीर्थ कहाँ बने हैं, जहाँ (१) कोई महामानव, ऋषि, तपस्वी आत्म कल्याण और लोक कल्याण के पुण्य प्रयोजन की तपश्चर्या में निरत रहे हों (२) किसी देवता ने किसी परमार्थ परायण साधक के प्रयत्नों में सहायता करने के लिये वरदान दिया हो (३) ऐसी कोई घटना घटित हुई हो, जिसमें आदर्शवादिता पनपने के लिये त्याग, बलिदान करने का इतिहास जुड़ा हो (४) कोई महत्वपूर्ण निर्धारण या शुभारम्भ हुआ हो (५) किसी महामानव का जन्म स्थान या क्रिया-कलापों का कार्य क्षेत्र रहा हो (६) उस स्थान की अपनी प्राकृतिक विशेषता रही हो, इस परिधि में प्राय: हर तीर्थ की स्थापना, परम्परा एवं गरिमा का मूल्यांकन किया जा सकता है।

सच्चे सन्त-महामानव ही तीर्थ की महिमा बढ़ाने वाले होते हैं:-

नह्यम्भयानि तीर्थानि न देवा: मृच्छिलामया:,
ते पुनंति उरूकालेन।
दर्शनाद् एव साधव: तेषाम् एव
निवासेन देशास्तीर्थी भवन्ति वै।।

-भागवत

जल से तीर्थ नहीं बनते, न देवता मिट्टी और पत्थर से बनते हैं, उनकी उपासना करने से बहुत काल में मन की शुद्धि होती है, पर सच्चे साधुओं के दर्शन और सत्संग से ही चित्त सद्य: शुद्ध हो जाता है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूता: स्वयं विभो ।
तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्त:स्थेन गदाभृता।।

-भागवत

युधिष्ठिर विदुर से कहते हैं-आप जैसे भक्त स्वयं ही तीर्थ रूप होते हैं। आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान् के द्वारा, तीर्थों को महातीर्थ बनाते हुये विचरण करते हैं।

सत्रेणाऽद्यतनेनालं सन्तोषं सर्व एव ते ।
जग्मुरूत्साह एतेषां ववृधे कर्मपद्धतौ ।।९५।।
देवसंस्कृतिसम्बद्धैर्विधिभिर्यानि सन्ति तु ।
संसक्तानि महोद्देश्यकर्माणीह च पूर्णत: ।।९६।।
तानि विज्ञाय सर्वेऽपि श्रोतारस्तत्र निर्मला:।
प्रसन्नमानसा दृष्टा पूर्णे स्वीये मनोरथे ।।९७।।
सायं सन्ध्याविधे: कालात्पूर्वमेव च शोभनम्।
सत्रमद्यतनं पूर्णं यथापूर्वं यथाविधि ।।९८।।

टीका- आज के सत्र से सबको बहुत सन्तोष मिला व कर्म के प्रति उत्साह बढ़ा। देवसंस्कृति के क्रिया-कलापों के साथ जुड़े हुये महान उद्देश्यों से भली प्रकार अवगत होकर सभी श्रोता मनोरथ पूर्ण होने से प्रसन्न दिखाई पड़ते थे। सायं काल होने से पूर्व अन्य दिनों की तरह आज का सत्र भी समाप्त हो गया।। ९५-९८।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे देवसंस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो:, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयो:, श्री कात्यायन ऋषि प्रतिपादिते "तीर्थ-देवालय" इति प्रकरणो नाम ।। चतुर्थोऽध्याय:।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

मरणोत्तरजीवन प्रकरण

पंचमस्यदिनस्यस्मिञ्ज्ञानसत्रे स्थितेष्वलम् ।
औत्सुक्यं द्रष्टुमायातं विधायाः साधकेष्वथ ।।१।।
उत्सुकास्तेऽधिकं ज्ञातुं कथं सा देवसंस्कृतिः ।
अवतारयितुंशक्ता जाता स्वर्गं क्षिताविह ।। २।।
देवोपमान् मनुष्यांश्च कृतवत्यपि कानि तु ।
अभूवन् कारणान्येवमाधाराः के च ते मताः ।। ३।।
यानाश्रित्य मनुष्याश्च तत्रासंख्याः स्वगौरवम् ।
अवधार्य कृता पारं मनोरथतरिर्नृणाम् ।। ४।।
जिज्ञासूनां परं श्रेष्ठं भृगुं मुनिवरं तथा ।
कात्यायनो जगादैवं सर्वान्सज्ज्ञानसाधकान् ।।५।।

टीका- पाँचवें दिन के ज्ञान-सत्र में उपस्थित विद्या-साधकों में और भी उत्सुकता पाई गई। वे अधिक जानने के उत्सुक थे। देव संस्कृति ने किस आधार पर धरती पर स्वर्ग उतारा और मनुष्यों को देवोपम बनाया। उसके वे कारण और आधार क्या थे, जिन्हें अपनाकर असंख्यों ने अपनी गरिमा बढ़ाई और असंख्यों की नाव पार लगाई। कात्यायन ने जिज्ञासुओं में श्रेष्ठ मुनिवर भृगु सहित सभी सद्ज्ञान साधकों को सम्बोधित करते हुये कहा-।। १-५।।

कात्यायन उवाच-

पाययन्त्यमरत्वं वै भृशं तद्देवसंस्कृतौ ।
आस्वावतः समस्तांश्च बोधयन्त्यषिते समे ।।६।।
अमरत्वसुविश्वासा स्युः सज्जा जीवितुं तथा ।
अनन्तं ते विजानीयुर्मृत्युं नान्तः तु विभ्रमम् ।।७।।
जीवितानां मृतानां च मन्यन्ते जन्मवासराः ।
परम्परेयं मृत्योश्च दिनस्यावसरेऽपि तु ।।८।।
अस्तित्वं पूर्वजानां तद् विचार्यैव विधीयते ।
श्रद्धाञ्जलिस्ततः श्राद्धकर्म चाऽपि समैरिह ।।९।।
कस्यचिन्मृतकस्याऽपि नान्तमत्र तु मन्यते ।
श्रद्धीयतेऽशरीरास्ते स शरीरा इव स्वकाम् ।।१०।।
सत्तां विधाय विद्यन्तेऽसंख्यास्ते जीवनस्य च ।
उपक्रमं प्रकारेषु विशेषस्तरमाश्रिताः ।।११।।
जीवनस्य स्तरस्त्वेको मन्यतेऽत्राऽशरीरिणाम् ।
शरीरिणां च वस्त्रस्याऽपरिधानस्य तस्य च ।।१२।।
परिधानस्य मध्यस्थास्थितिरेषा तु विद्यते ।
अमरत्वस्व चाऽभासो विश्वासश्चाप्यतोऽत्र तु ।।१३।।
बोध्यते मृत्युमेवान्तं मते या समुदेति सा ।
निराशाऽथापि नास्तिक्यं वृणयातां न कश्चन ।।१४।।

टीका- कात्यायन बोले- देवसंस्कृति में अमरत्व का पान कराया जाता है। हर आस्थावान् को समझाया जाता है कि वह अमरत्व पर विश्वास करे। अनन्त जीवन जीने की तैयारी करे। मृत्यु को विराम विश्राम समझे, अन्त नहीं। जीवित या मृतकों के जन्म दिन मनाये जाते हैं। यही परम्परा है। मृत्यु-दिन के अवसर पर भी पूर्वजों का अस्तित्व बने रहने की बात सोचकर उन्हें श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई जाती है। श्राद्ध-तर्पण सभी के द्वारा किया जाता है। अन्त किसी मृतक का भी नहीं माना जाता। समझा जाता है कि वे अशरीरी होते हुये भी शरीरधारियों की तरह सत्ता बनाये हुये हैं और जीवन के असंख्य प्रकारों में से एक विशेष स्तर का उपक्रम बनाये हुये हैं। शरीरधारी और अशरीरी जीवन का स्तर एक-सा ही माना गया है, जैसा वस्त्र पहनने और न पहनने के बीच होता है। अमरता का आभास-विश्वास इसलिये कराया जाता है कि मृत्यु के साथ अन्त मानने पर पनपने वाली निराशा और नास्तिकता किसी के सिर न चढ़े।। ६-१४।।

देवसंस्कृति की ही यह एक अद्भूत विशेषता है कि यहाँ व्यक्ति को सतत् आत्मा के अविनाशी होने, जीवन के गतिशील रहने एवं मरणोत्तर जीवन के अस्तित्व का बोध कराया जाता है। यह आस्तिकतावादी दर्शन का केन्द्र विन्दु है। यदि वर्तमान जीवन व काया रूपी चोले को ही सब कुछ मान लिया गया, तो जीवन के प्रति दृष्टि भोग प्रधान होगी। व्यक्ति दूसरों को कष्ट दे कर भी स्वयं सब कुछ पाने व जितना सम्भव हो सुखोपभोग हेतु बटोरने का प्रयास करेगा। इसीलिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति को "हर दिन नया जन्म, हर रात नयी मौत" के रूप में नित्य अपने जीवनोद्देश्य के प्रति सोचने को बाध्य किया जाता है। मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता, यह विश्वास व्यक्ति को इसलिये दिलाना जरूरी है कि आशावादी दृष्टिकोण बना रहे व व्यक्ति स्वयं को वर्तमान स्थिति से भी श्रेष्ठ स्थिति में पहुँचा सके, आत्मिक प्रगति के पुरुषार्थ हेतु सक्रिय रहे।

शास्त्रोक्त गीताकार ने कहा है–

वासांसि जीर्णानि यथा विहायनवानि
गृह्णातिनरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहायजीर्णान्यन्यानि
संयाति नवानि देही ।।

गीता २।२२

"जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग करके नया वस्त्र धारण करता है, इससे वस्त्र बदलता है, मनुष्य नहीं बदलता, इसी प्रकार देहधारी आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करता है।"

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण आगे कहते हैं–"आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निस्संदेह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है।"

गर्भोपनिषद् में बताया गया है कि गर्भावस्था में जीव के अन्तःकरण में पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ जागृत होती हैं और वह कहता है-

"हजारों बार मेरा जन्म हो चुका है, विविध प्रकार के आहार मैं खा चुका हूँ, हजारों माताओं का दूध पी चुका हूँ, बार-बार पैदा हुआ हूँ और बार-बार मरा हूँ। आत्मीयों के लिये शुभ और अशुभ कर्म किये हैं; पर वे तो आज साथ हैं नहीं। साथ हैं मेरे कर्म ही, उनका ही फल मुझे मिल रहा है।"

विश्वासोऽयं स्थिरस्तिष्ठेज्जीविष्यामो वयं ध्रुवम्।
अनन्तं संगताः कर्मफलश्रृंखलया वयम् ।।१५।।
पराङ्मुखैर्नभाव्यं तु प्रगतेः पथिगन्तृभिः ।
नाऽविश्वस्तो भवेत्कर्मफलसंभावनं प्रति ।।१६।।
मान्यते द्वे यति स्यातां स्थिरेऽन्तःकरणे ततः ।
प्रतिक्रियाऽनयोः श्रेयो दायिनी सुखदा भवेत्।।१७।।
यत्तु कर्मफलं तत्र विद्यतेऽद्यतनं न तत् ।
प्राप्यतेऽद्य ततो लोकाः सन्देहं कुर्वते भृशम्।।१८।।
विधौ दुःखफलप्राप्तौ सर्वे वै पापकर्मणाम् ।
अनन्तजीवनस्यास्यां मान्यतायां तथा तु न ।।१९।।
प्रत्येकस्याऽशुभस्याथ शुभस्याऽपि च कर्मणः ।
भविष्यद्दिवसेष्वेवं फलाप्तौ विश्वसन्त्यमी ।।२०।।

टीका- यह विश्वास बना रहे कि अनन्तकाल तक जीवित रहना है और कर्मफलश्रृंखला के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध जुड़ा रहना है। इसलिये न तो प्रगति पथ पर चलते रहने से मुख मोड़ा जाय और न कर्मफल की संभावना के प्रति अविश्वास किया जाय। यह दो मान्याताएँ अन्तः करण में सुस्थिर रहें, तो फिर उसकी प्रतिक्रिया बहुत ही सुखद और श्रेयस्कर होती है। आज का कर्मफल आज न मिलने के कारण लोग पापकर्मों का दुःखदायी फल मिलने की विधि-व्यवस्था तक में सन्देह करने लगते हैं। अनन्त जीवन की मान्यता सुदृढ़ होने पर वैसा नहीं होता और हर बुरे-भले कर्म का प्रतिफल अगले दिनों मिलने की बात पर विश्वास करते हैं।। १५-२०।।

कष्टदानस्य दण्डश्चेत्तत्कालं नोपलभ्यते ।
तत्र तेषां नृणामेव विश्वासो जायते श्लथः ।।२१।।
न विश्वसन्ति ये मर्त्या जीवने मरणोत्तरे ।
स्रष्टुर्विधौ क्रियायास्तु विद्यते वै प्रतिक्रिया ।।२२।।
पापस्य निश्चितो दण्डः प्राप्यतेऽनेकरूपतः ।
रूपे विविधदुःखानामत्र नास्त्येव संशयः ।।२३।।
नो चेत्तत्कालमेव स्यान्मरणोत्तरजीवने ।
नरकादिषु रूपेषु प्राप्तिस्तस्य तु निश्चिता ।।२४।।
कृतस्य फलमाप्तव्यं भवत्येवेति मान्यताम् ।
स्वीकर्तुमनिवार्यं च मरणोत्तरजीवनम् ।।२५।।
यतन्ते भृशमेवैते त्वनुगा देवसंस्कृतेः ।
आत्मप्रगतिमुद्दिश्य यावदामरणं सदा ।।२६।।

टीका- तत्काल दुःख-दण्ड न मिलने भर से विश्वास उन्हीं का डगमगाता है, जो मरणोत्तर जीवन पर विश्वास नहीं करते। स्रष्टा की सुनिश्चित विधि-व्यवस्था में क्रिया की प्रतिक्रिया अनिवार्य है। पाप का दण्ड अनेकानेक दुःखों के रूप में मिलना निश्चित है। यह तत्काल न सही, मरणोत्तर-जीवन में स्वर्ग-नरक के रूप में मिलता है। जो किया है, उसका फल मिलेगा ही। इस मान्यता के लिये मरण के उपरान्त भी जीवन बना रहने की मान्यता आवश्यक है। देवसंस्कृति के अनुयायी मरणकाल तक आत्मिक प्रगति का प्रयास करते हैं।। २१-२६।।

कर्मफल व्यवस्था पर-अनास्था ही नास्तिकता का प्रतीक है। आस्तिकवादी तत्वदर्शन में विश्वास रखने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वाला व्यक्ति क्रिया की प्रतिक्रिया में, कर्म के प्रतिफल में भी विश्वास रखता है। इस नाते उसकी हर क्रिया स्रष्टा के विधान के अन्तर्गत चलती व सुव्यवस्थित होती हैं। कर्मफल वस्तुत: एक ऐसी सच्चाई है, जिसे इच्छा या अनिच्छा से स्वीकार करना ही होगा। भूतकाल के आधार पर वर्तमान बनता है एवं वर्तमान के अनुरूप भविष्य। किशोरावस्था में कमाई हुई विद्या एवं स्वास्थ्य सम्पदा, जवानी में सम्पन्नता एवं बलिष्ठता के रूप में सामने आती है। कर्म का परिपाक भी वस्तुत: इसी प्रकार देर-सबेर मिलता अवश्य है। जो जीवन को अनन्त-अविरल प्रवाह मानते हैं, वे जानते हैं, कि जो शुभ-अशुभ कर्म किये गये या किये जा रहे हैं, उनके परिणाम कालान्तर में अवश्य प्राप्त होंगे।

मरणोत्तर जीवन की मान्यता की दृढ़ता मन में बिठाये रखना इसीलिये अनिवार्य माना गया है कि इस जीवन के कर्म ही स्वर्ग-नरक जैसी परिस्थितियों के, तदनुरूप पुन: जन्म मिलने या मरणोत्तर योनि में सुख-दु:ख के कारण बनते हैं।

भारतीय दर्शन में कर्मफल की सुनिश्चितता पर बहुत जोर दिया गया है। पर कई बार देखने में ऐसा भी आता है कि दुष्ट कर्म करने वाले दण्ड से बचे रहते हैं और पुण्यात्माओं को कष्ट सहने पड़ते हैं। इन उदाहरणों से नास्तिक भावना पनपती और मनुष्य उच्छृंखल बनता हैं। इस असमंजस का निवारण स्वर्ग-नरक की मान्यता एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों से ही होता है। अस्तु कर्मफल की अनिवार्यता का सिद्धान्त मनुष्य के चारित्रिक नियंत्रण की दृष्टि से आवश्यक समझा गया है। उसकी पुष्टि मरणोत्तर जीवन में, स्वर्ग-नरक एवं पुनर्जन्म में सद्गति-दुर्गति की मान्यताएँ अपनाने से ही बात बनती है।

मृत्यो: पश्चादुभौ स्वर्गनरकावत उत्तरम् ।
पुनर्जन्मेति ते व्यक्ते पूरके मान्यते त्वुभे ।। २७।।
सुखं दु:खमुभे स्वर्गे विशेषे स्त: स्वतस्तु ते।
परलोके स्थिति: सूक्ष्मास्थूला लोकेऽत्र चैवसा।। २८।।
उभयथैव फले पुण्यपापयोर्मनुजैरिह ।
प्राप्येते चलतीयं च दीर्घकालं प्रतिक्रिया ।। २९।।
चतुरशीतिकलक्षोक्तयोनिष्वेव नरास्तु ते ।
भ्रमन्ति सन्ति ये त्वत्र कुमार्गाभिरता: सदा।। ३०।।
त्रासास्तदनुरूपाश्च सहन्तेऽभावमप्यलम् ।
विपरीततया चाऽस्मात्पुण्यात्मान: परे सदा ।। ३१।।
लोके स्वर्गस्य मुक्तेश्च जायन्ते ह्यधिकारिणा:।
पुनर्जन्मनि देवात्मावतारेषु महर्षिषु ।। ३२।।
महामानवरूपेषु जायन्ते दिव्यतेजस: ।
दर्शयन्ति शुभं मार्गे सर्वेषामेव ते तत: ।। ३३।।

टीका- मरण के उपरान्त स्वर्ग-नरक में अपने ढंग के सुख-दु:ख हैं और पुनर्जन्म में अपने ढंग के। परलोक में सूक्ष्म स्थिति है और इहलोक में स्थूल। पुण्य-पाप के प्रतिफल दोनों ही प्रकार के भुगतने पड़ते हैं। यह प्रतिक्रिया लम्बी चलती है। कुमार्गगामियों को चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ता है और तदनुरूप अभाव एवं त्रास सहने पड़ते हैं। इसके विपरित पुण्यात्मा परलोक में स्वर्ग और मुक्ति के अधिकारी बनते हैं। पुनर्जन्म होने पर दिव्यतेज सम्पन्न महामानव, ऋषि, देवात्मा, अवतार के रूप में प्रकट होते हैं और सभी को कल्याणप्रद मार्ग प्रदर्शित करते हैं।। २७-३३।।

देवसंस्कृति की जीवन व मरण सम्बन्धी मान्यताएँ शास्त्र सम्मत भी हैं एवं विज्ञान सम्मत भी। मरणोत्तर जीवन एवं पुनर्जन्म सम्बन्धी अनेकों ऐसे प्रसंग हैं, जो दैनन्दिन जीवन में घटते व इस दर्शन का सत्यापन करते हैं। भले-बुरे कर्मों का प्रतिफल ही स्वर्ग और नरक के रूप में परिणत होता व सुख-दु:ख की अनुभूति कराता है। चाहे वह इस लोक में हो, अथवा मरण के बाद परलोक में। मरण के बाद सूक्ष्म शरीर होने के कारण स्थूल शरीर जैसी पीड़ा-प्रताड़ना या कष्ट तो नहीं होता; किन्तु मानसिक प्रसन्नता व खिन्नता की अनुभूतियाँ उससे भी अधिक मात्रा में अन्तश्चेतना को प्रभावित करती हैं। स्वर्ग और नरक की भली-बुरी अनुभूतियाँ मानसिक एवं भावनात्मक होती हैं; क्योंकि सूक्ष्म शरीर रहने पर उसी स्तर की अनुभूति संभव है।

नये शरीर में आने के पश्चात् अपने पूर्व अनुभवों का विवरण लिखते हुये एक जागृत आत्मा की अनुभूति का वर्णन वेद में इस प्रकार आता है-

पुनर्मन: पुनरायुर्म आगन्पुन: प्राण: पुनरात्मा
म आगन् पुनश्चक्षु: पुन: श्रोत्रं म आगन् ।
वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अग्निर्न: पातु: दुरितादवधात्।।
-यजुर्वेद ४। १५

अर्थात्-"शरीर में जो प्राण शक्ति (आग्नेय-परमाणुओं के रूप में) काम कर रही थी, मैंने जाना नहीं कि मेरे संस्कार उसमें किस प्रकार अंकित होते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहे। मृत्यु के समय मेरी पूर्व जन्म की इच्छायें, सोने के समय मन आदि सब इन्द्रियों के विलीन हो जाने की तरह मेरे प्राण में विलीन हो गई थीं, वह मेरे प्राणों का (इस दूसरे शरीर में) पुनर्जागरण होने पर ऐसे जागृत हो गये हैं, जैसे सोने के बाद जागने पर। मनुष्य सोने के पहले के संकल्प-विकल्प के आधार पर काम प्रारम्भ कर देता है। अब मैं पुन: आँख, कान आदि इन्द्रियों को प्राप्त कर जागृत हुआ हूँ और अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भुगतने को बाध्य हुआ हूँ।"

विचार और कर्म के संयोग से जो स्वभाव-अभ्यास बनता है, वस्तुत: उसी को संस्कार कहते हैं। यह संस्कार देर से जगते हैं और देर से कटते हैं। मरने के उपरान्त इन्द्रिय समुच्चय और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अन्त:करण तो स्थूल शरीर के साथ छूट जाते है; किन्तु सूक्ष्म शरीर संस्कारों से जकड़ा रहता है। वे ही स्वर्ग-नरक की अनुभूति करते हैं और नये जन्म का आधार बनाते हैं। कुकर्मी गिरते और चौरासी लाख हेय योनियों में भ्रमण करते हैं। चेतना को नये सिरे से विकसित करने के लिये उन्हें वृक्ष जैसी जड़ समझी जाने वाली योनियों में जाना पड़ता है। नये सिरे से प्रगति क्रम आरम्भ करने और उपहार-अनुदानों से वंचित करने वाली यह दण्ड व्यवस्था स्रष्टा ने कर्मफल की सुनिश्चितता को ध्यान में रखकर ही बनाई है। हर जन्म में कर्मों का तुरन्त फल नहीं मिल पाता, वे अवसर की प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं। परलोक में स्वर्ग-नरक तथा पुनर्जन्म की परिस्थितियों में इन कृत्यों की भर-पाई होती रहती है। जिनके कुसंस्कार अधिक भारी और भयानक नहीं हैं, वे प्राय: फिर मनुष्य जन्म प्राप्त कर लेते हैं। उसमें भी कर्मफल भोगने का पर्याप्त अवसर रहता है। कितने ही मनुष्य जन्मजात भली-बुरी उपलब्धियाँ साथ लाते हैं। इसे संचित कृत्यों का प्रतिफल ही कहा जा सकता है।

मनुष्य के उपरान्त देव योनियाँ हैं। उनमें न अभाव है,न असन्तोष। कामना, वासना में ग्रसित व्यक्ति जिस प्रकार जलते-जलाते रहते हैं, वे उद्विग्नताएँ भी उन योनियों में नहीं हैं। आत्मगौरव को समझने और उपलब्ध सम्पदाओं का सदुपयोग करने की ऋतम्भरा प्रज्ञा इन्हीं दिव्य योनियों में पहुँचने वालों को मिलती है। आदर्शवादी, महामानव, आत्मसंयमी ब्राह्मण, परोपकारी, सन्त, मनस्वी सुधारक, समर्पित शहीद अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करने वाले अग्रदूत अवांछनीयता के प्रवाह को उलट देने में समर्थ अवतार अपने-अपने स्तर के देवात्मा माने गये हैं। वे काया से तो मनुष्य जैसे ही होते हैं, खाते-सोते भी उसी तरह हैं; किन्तु उनकी दूरदर्शिता, उदारता एवं साहसिक सामान्य मनुष्यों की तुलना में उतनी ही ऊँची होती है, जितनी कि धरातल और स्वर्ग लोक की ।

देवता स्वावलम्बी होते हैं। वे सामान्य लोगों से प्रभावित नहीं होते, वरन् उनका मार्ग दर्शन करते हैं। एकाकी चलते हैं, उन्हें उत्कृष्टता, आत्म प्रेरणा और ईश्वर की अनुकम्पा के अतिरिक्त और किसी का सहयोग पाने की न तो इच्छा होती है, न आवश्यकता प्रतीत होती है। वे अन्तरात्मा का अनुकरण करते हुये प्रचण्ड साहस के बल पर एकाकी चलते और पूर्ण चन्द्र का उदाहरण बनते हैं। ऐसे लोगों का उदार दृष्टिकोण उन्हें हर घड़ी स्वर्ग लोक की अंनुभूतियाँ कराता है। उनके आदर्श चरित्र का चुम्बकत्व चारों ओर एक देव मण्डली समेटे रहता है और शालीनता का वातावरण उनके साथ-साथ चलता है। संकीर्ण स्वार्थपरता के दल-दल से निकल कर "वसुधैव कुटुम्बकम्" की महानता अपनाने वाले भव-बन्धनों से स्वयमेव विमुक्त हो जाते हैं।

आस्तिकत्वे चेश्वरस्तु न्यायकर्ता तथैव च ।
समदृष्टियुत: सर्वव्यापकश्च मत: समै: ।। ३४ ।।
क्रियाकृत्यानि प्रेमास्य रोषश्चाश्रयतस्सत: ।
अस्या: पुष्टिर्मान्यताया विश्वासेन भवेदिह ।। ३५ ।।
अनन्तजीवनस्यैव सोऽन्यथा मानवो भवेत् ।
उद्दण्डो नास्तिक: कर्मफलाऽप्राप्तौ निरन्तरम् ।। ३६ ।।
सर्वनाशश्च स्वस्यैव दृष्टिकोणेन सन्ततम् ।
जायतेऽनेन चाऽनीतिजन्यदु:खानि तान्यथ ।। ३७ ।।
दारिद्र्यं च समस्तेऽपि संसारे यान्ति विस्तरम् ।
अमरा:सन्ति देवास्ते देवसंस्कृतिगा अपि ।। ३८ ।।
नरा आत्माऽमरत्वं च निश्चितं मन्यते सदा ।
मरणस्य भयं दु:खं मन्यन्ते न ततश्च ते ।। ३९ ।।

टीका- आस्तिकता में ईश्वर को न्यायकारी, समदर्शी, सर्वव्यापी माना जाता है। उसका दुलार और रोष क्रिया-कृत्यों पर ही निर्भर रहता है। इस मान्यता की पुष्टि, अनन्तजीवन के विश्वास से ही होती है। अन्यथा कर्मफल में देर लगने पर मनुष्य निरन्तर कृपण, उद्दण्ड एवं नास्तिक होने लगता है, इस दृष्टिकोण के अपनाने से अपना सर्वनाश होता है और समस्त संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में अनीतिजन्य दुःख-दारिद्रय का विस्तार होता है। देवता अमर होते हैं। देवसंस्कृति पर विश्वास करने वाले, मनुष्य की आत्मिक अमरता को सुनिश्चित मानते हैं। फलतः मरण का भय और दुःख भी नहीं मानते।। ३४-३९।।

वस्तुतः इस विश्व का निर्माण-कर्ता बहुत ही दूरदर्शी और व्यवहार कुशल है। उसने इतना बड़ा सृजन किया है। जड़ में हलचल और चेतन में चिन्तन की इतनी अद्भुत क्षमता का समावेश किया है कि किसी सूक्ष्मदर्शी को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। निर्माण, व्यवस्था और परिवर्तन की जो रीति-नीति विनिर्मित की है, उसके तारतम्य को देखते हुये मनीषियों ने कला की कल्पना की और विज्ञान की धारणा को मूर्त्त रूप दिया। ऐसे सर्वसम्पन्न स्रष्टा से कर्म व्यवस्था के सम्बन्ध में चूक होना-यह सोचना अपनी ही बाल-बुद्धि का खोखलापन दर्शाना है। जिसकी दुनिया में दिन और रात की, ग्रह-नक्षत्रों के उदय अस्त की, पदार्थ की, प्रकृति और प्राणियों की, परम्परा की विधि-व्यवस्था में कहीं राई-रत्ती अन्तर नहीं पड़ता- वह कर्मफल को सन्देहास्पद बनाकर अराजकता का और आत्मघात का विग्रह खड़ा नहीं कर सकता।

आत्मिकी के सिद्धान्त व्यक्तिगत जीवन को अधिकाधिक सुसंस्कृत एवं पवित्र बनाने की भूमिका सम्पादित करते हैं। यही सिद्धान्त है, जिनके माध्यम सें सामाजिक सुव्यवस्था की आधारशिला रखी है। (१) शरीर की नश्वरता, (२) आत्मा की अमरता, (३) कर्मफल का सुनिश्चित होना, तथा (४) परलोक-पुनर्जन्म की सम्भावना-यह चार सिद्धान्त ऐसे हैं, जो किसी न किसी रूप में प्रायः अध्यात्म की सभी शाखाओं में प्रतिपादित किये गये हैं।

आत्मा की पुकार है,**"मृत्योर्माऽमृतंगमय"** हे परमेश्वर, मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चल।' मरण कितना अवांछनीय और जीवन कितना अभीष्ट है,इसका आभास इस पुकार में मिलता है। अन्तरात्मा की प्रबल कामना है, जिजीविषा। वह जीना चाहता है। शरीर नष्ट हो जाये, तो क्या? आत्म सतत् जीवित बने रहने की आकांक्षा रखती है। जब यह भाव है, तो मृत्यु से डर किस बात का एवं फिर इस जन्म में दुष्कर्म बन भी कैसे पड़े ?

जिसने जन्म लिया है, उसका मरण सुनिश्चित है। सृष्टि क्रम ही जन्म-मरण की धुरी पर घूम रहा है। जो जन्मा है, सो मरेगा ही,। जीवनेच्छा कितनी प्रबल क्यों न हो, मरण से बचा नहीं जा सकता। मृत्यु की चलती चक्की में अन्न के दानों की तरह हमें आज नहीं, तो कल पिसकर ही रहना है। इस तथ्य को न तो झुठलाया जा सकता है और न उसका सामना करने से बचा जा सकता है। मरण तो एक ध्रुव सत्य ही मानकर चलना चाहिये। अनिच्छा, भय, भीरुता अथवा कृपणता, कातरता कुछ भी मन में क्यों न हो? प्रकृति का सुनिश्चित क्रम रुकेगा नहीं, हमारा परम प्रिय लगने वाला आज का सुनिश्चित अस्तित्व कल महान शून्य में विलीन होकर रहेगा। आज की यथार्थता कल विस्तृत के गर्त में गिरकर सदा के लिये अविज्ञता के अन्तरिक्ष में बिखर जायेगी।

मरण से भयभीत होकर आतुर लोग ऐसा सोचते है कि इन्हीं क्षणों जितना अधिक आनन्द उठा लिया जाय, उतना ही उत्तम है। वे इन्द्रियलिप्सा एवं मनोविनोद के लिये अधिकाधिक साधन जुटाते हैं और उसके लिये जो भी उचित-अनुचित करना पड़े उसे करने में भी नहीं चूकते। यह उपभोग की आतुरता कई बार तो इतनी बढ़ी-चढ़ी और इतनी अदूरदर्शी होती है, कि उपभोग का आरम्भ होते-होते विपत्ति का वज्र सिर पर टूट पड़ता है। अपराधियों और कुकर्मियों की दुर्गति आये दिन देखी जाती है। कइयों को तुरन्त ही प्रतिरोध का-प्रतिशोध का-सामना नहीं करना पड़ता। सामयिक सफलता भी मिल जाती है, पर ईश्वरीय कानून तो उलटे नहीं जा सकते।

पितृणां सन्ततीनां च मध्ये सम्बन्ध एष तु।
विद्यते स्वजनैरत्र सम्पर्कोऽपि भवत्यलम् ।। ४०।।
सम्बन्धिनो दिवं यातान्प्रति द्वारमपावृतम् ।
विद्यते स्नेहसद्भावसहयोगं प्रदर्शितुम् ।। ४१।।
कृतानामुपकाराणां प्रतिकर्तुमवाप्यते ।
समयो मान्यतामेतामाश्रित्यैव नरैरिह ।। ४२।।
दिवंगतान् समुद्दिश्य श्रद्धा सद्भावना च या।
व्यज्यते तच्छुभं कर्म श्राद्धतर्पणमुच्यते ।। ४३।।
मन्यते चैनमाश्रित्य त्वाधारं स्वर्गिणामपि ।
स्वजनानां साहाय्यं श्राद्धिकं कर्तुमिष्यते ।। ४४।।
मान्यतेयं कृतज्ञत्वपोषिका वर्तते दृढम् ।
प्रतिकर्तुं ददात्येषा सर्वेभ्योवसरं सदा ।। ४५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधारमिममाश्रित्य सद्भावो जाग्रतस्तु यः ।
लोकमंगलकार्येषु चोपयुक्तं स शक्यते ।। ४६ ।।
श्राद्धे तत्राऽन्नपिण्डं तु तर्पणे चाऽमृतं तथा ।
दीयतेऽन्नं साधनानां श्रमदानस्य चाऽमृतम् ।। ४७ ।।
प्रतीकत्वमिहाऽऽयातं श्राद्धे यद्दीयते च तत् ।
तस्यापि माध्यमं नूनं तदेवाऽत्र तु विद्यते ।। ४८ ।।
दानकृत्येभ्य एवात्र निश्चितं यत्तु पूर्वतः ।
यज्ञार्थाय तथा तस्मै विपद्वारणहेतवे ।। ४९ ।।

टीका- पितरों और सन्तति के बीच सम्बन्ध बना रहता है। स्वजनों के प्रति सम्पर्क भी रहता है। अस्तु,उन दिवंगत सम्बन्धियों के प्रति स्नेह, सद्भाव, सहयोग प्रदर्शित करने का द्वार खुला रहता है। उनके किये हुये उपकारों का बदला चुकाने का भी इस मान्यता के आधार पर अवसर मिलता रहता है। दिवंगतों के प्रति श्रद्धा, सद्भावना व्यक्त करने का उपचार श्राद्ध-तर्पण है। माना गया है कि इस आधार पर स्वर्गीय स्वजनों की श्रद्धा युक्त सहायता की जा सकती है। यह मान्यता- कृतज्ञता की दृढ़ पोषक है। प्रत्युत्तर के लिये अवसर प्रदान करती है, साथ ही इस आधार पर जागृत हुई सद्भावना का उपयोग लोक मंगल के सत्प्रयोजनों में बन पड़ता है। श्राद्ध में अन्न-पिण्ड और तर्पण में जल श्रमदान का प्रतीक है। श्राद्ध में जो दिया जाता है, उसका माध्यम भी वही है, जो प्रत्येक दानकृत्यों के लिये निर्धारित है-'यज्ञार्थाय' और 'विपद्वारणाय'।। ४०-४९ ।।

भारतीय संस्कृति ने यह तथ्य घोषित किया है कि मृत्यु के साथ जीवन समाप्त नहीं होता। अनन्त जीवन श्रृंखला की एक कड़ी मृत्यु भी है। इसीलिये संस्कारों के क्रम में 'जीव' की उस स्थिति को भी बाँधा गया है, जब वह एक जन्म पूरा करके अगले जीवन की ओर उन्मुख होता है। कामना की जाती है कि सम्बन्धित जीवात्मा का अगला जीवन पिछले की अपेक्षा अधिक सुसंस्कारवान बने। इस निमित्त जो कर्मकाण्ड किये जाते हैं, उनका लाभ जीवात्मा को क्रिया-कर्म करने वालों की श्रद्धा के माध्यम से ही मिलते है। इसीलिये मरणोत्तर संस्कार को श्राद्धकर्म भी कहा जाता है।

इस दृश्य संसार में स्थूल शरीर वालों को जिस इन्द्रिय भोग, वासना, तृष्णा एवं अहंकार की पूर्ति में सुख मिलता है, उसी प्रकार पितरों का सूक्ष्म शरीर शुभ कर्मों से उत्पन्न सुगन्ध का रसास्वादन करते हुये तृप्ति अनुभव करता हैं। उसकी प्रसन्नता तथा आकांक्षा का केन्द्र बिन्दु श्रद्धा है। श्रद्धा भरे वातावरण के सान्निध्य में पितर अपनी अशान्ति खोकर आनन्द का अनुभव करते हैं। श्रद्धा ही उनकी भूख है, इसी से उन्हें तृप्ति होती है। इसलिये पितरों की प्रसन्नता के लिये श्राद्ध एवं तर्पण किये जाते हैं। पितर वे हैं, जो पिछला शरीर त्याग चुके हैं; किन्तु अगला शरीर अभी प्राप्त नहीं कर सके इस मध्यवर्ती स्थिति में रहते हुये वे अपना स्तर मनुष्यों जैसा ही अनुभव करते हैं।

मुक्त आत्माओं और पितरों के प्रति मनुष्यों को वैसा ही श्रद्धाभाव दृढ़ रखना चाहिये, जैसा देवों-प्रजापतियों तथा परमात्म-सत्ता के प्रति। मुक्तों, देवों, प्रजापतियों एवं ब्रह्म को तो मनुष्यों की किसी सहायता की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु पितरों को ऐसी आवश्यकता होती है। उन्हें ऐसी सहायता दी जा सके, इसीलिये मनीषी पूर्वजों ने पितरपूजन, श्राद्ध-कर्म की परम्परायें प्रचलित की थी। उनकी सही विधि और उनमें सन्निहित प्रेरणा को जानकर पितरों को सच्ची भाव-श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने पर वे प्रसन्न पितर बदले में प्रकाश, प्रेरणा, शक्ति और सहयोग देते हैं। पितरों को स्थूल सहायता की नहीं, सूक्ष्म भावनात्मक सहायता की ही आवश्यकता होती है। क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर में ही अवस्थित होते हैं। इस दृष्टि से मृत्यु के पश्चात् पितृपक्ष में, मृत्यु की तिथि के दिन अथवा पर्व-समारोहों पर श्राद्ध कर्म करने का विधान देवसंस्कृति में है।

श्राद्ध किस तत्व पर टिका है ? शरीर के नष्ट हो जाने पर भी जीव का अस्तित्व नहीं मिटता। वह सूक्ष्म रूप मे हमारे चारों ओर वातावरण में घूमते रहते हैं। जीव का फिर भी अपने परिवार के प्रति कुछ-न-कुछ महत्व रह जाता है। सूक्ष्म आत्मायें आसानी से सब लोकों में आकर हमारे चारों ओर चक्कर लगाया करती हैं। हमारे विचार और भावनायें इस सूक्ष्म वातावरण में फैलते हैं। इन्हें हम जिस तेजी से बाहर के वातावरण में फेंकते हैं, ये उसी गति से दूर-दूर फैल जाते हैं। अतः श्राद्ध में किये गये पूर्वजों के प्रति हमारे आत्मीयता, सद्भावना, कृतज्ञता के भाव उन आत्माओं के पास पहुँच जाते हैं। उसे उनसे सुख, शान्ति प्रसन्नता और स्वस्थता मिलती है।

श्राद्ध में हविष्यान्न पिण्डों के द्वारा श्रद्धाभिव्यक्ति की जाती है। ये पिण्ड साधन-दान के प्रतीक होते है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वर्गस्थ आत्माओं की तृप्ति के लिये तर्पण किया जाता है। जल की एक अञ्जलि भरकर कृतज्ञता के भाव से भर कर हम स्वर्गीय पितृ-देवों के चरणों में उसे अर्पित कर देते हैं। इस प्रकार श्रद्धा, प्रेम, कृतज्ञता, अभिनन्दन सभी का मिश्रित रूप श्राद्ध है।

सदुद्देश्यसुपूर्त्यर्थं दानमेतत्तु दीयते ।
सार्थक्यं सत्प्रवृत्तेस्तु वर्द्धनं तस्य चाऽऽमृतम् ।। ५०।।
याति सम्पन्नतां श्राद्धं नैव सामर्थ्यसंयुतान् ।
भोजयित्वा नरान् वंशवेषयोरेव निश्चितान् ।। ५१।।
दत्वा तेभ्यो धनं वाऽपि सन्ति ते त्वधिकारिणः ।
वस्तुतः सच्चरित्रा ये विशालहृदयया अपि ।। ५२।।
विपद्ग्रस्ताश्च ये सन्ति तथोऽशक्ताः स्वतश्च ये।
प्रतिग्रहस्य गृह्णातुं नरा तेऽधिकृता उत ।। ५३।।
समर्पितः समाजस्य सेवार्थ ये सदैव च ।
सम्पदाऽऽजीविकाचाऽपियेषांनैवात्मनः क्वचित् ।।५४।।
नरा एतादृशा एवं उच्यन्ते साधुब्राह्मणाः ।
प्राप्तुं दानमिमे मर्त्या अधिकारिण आमताः ।। ५५।।
वस्तुतो दानमेतत्तु सत्प्रयोजनहेतवे ।
प्रामाणिकाय तन्त्राय दातुमेवात्र युज्यते ।। ५६।।
अन्यथा हानिदं श्राद्धं वैपरीत्येन जायते ।
तन्निमित्तं कृतं यत्तु शुभकर्मतदेव चेत् ।। ५७।।
कुपात्रकरयातं स्यादवाञ्छितविधौ गतम् ।
पितृणां दुःखदं तेषां भवेद् येषां कृते कृतम् ।। ५८।।

टीका- दान सदुदेद्श्यों की पूर्ति के लिए दिया जाता है। उसकी सार्थकता सत्प्रवृत्ति-सम्वर्धन में मानी गई है। अस्तु, श्राद्धप्रक्रिया किसी वंश या वेष के समर्थ मनुष्यों को व्यर्थ ही भोजन कराने, पैसा देने से सम्पन्न नहीं हो सकती। वे ही व्यक्ति दान के अधिकारी हैं, जो सच्चरित्र, विशाल हृदय हों, विपत्ति में फँसे हों और अपने पैरों खड़े हो सकने में असमर्थ हों। अथवा, उनको निर्वाह लेने का अधिकार है, जो सर्वतोभांवेन समाज सेवा के लिए समर्पित है। जिनके पास अपनी कोई सम्पदा या आजीविका नहीं है, ऐसे ही लोग साधु-ब्राह्मण कहलाते हैं। मात्र ऐसों को ही व्यक्तिगत रूप से दान लेने का अधिकार है। वस्तुतः दान तो सत्प्रयोजनों के लिए प्रामाणिक तन्त्र के हाथों ही सौंपा जाना चाहिए। अन्यथा श्राद्ध पितरों के लिए उलटा हानिकारक होता है। उनके निमित्त किया हुआ शुभ कर्म यदि कुपात्र हाथों या अवांछनीय कृत्यों में नियोजित हो, तो उन पितरों को दुःख होना स्वाभाविक है, जिनके लिए वह किया गया ।। ५०-५८।।

श्राद्ध व्यवस्था में पितर-मुक्ति हेतु दान का संकल्प लिया जाता है । इसको सही परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए। जिस कार्य से असमर्थों, अशक्तों को सहायता मिले, समाज में सत्प्रवृत्तियाँ का विस्तार हो, वह सच्चे अर्थों में दान है। वंश-ब्राह्मण का हो, वंश-साधु का हो, इन शब्दों को उनके भावार्थ में समझा जाना चाहिए। हटटे-कटटे मात्र भिक्षा पर जीवित रहने वाले परावलम्बी भगवा वेषधारियों को भोजन कराकर-दान देकर पितर-मुक्ति का लक्ष्य तो पूरा होता नहीं, उल्टे दो अपयश हाथ लगते हैं। इस लोक में परावलम्बन को बढ़ावा देकर पाप अपने ऊपर ओढ़ना, दूसरे परलोक में बैठी पितर आत्माओं का शाप अपने ऊपर लगना। इस दुर्गति से बचने का श्रेष्ठ तरीका यही है कि लोकमंगल के कार्य में लगे सुपात्र व्यक्तियों या संस्थाओं को श्रेष्ठता अभिवर्धन हेतु साधन दान दिया जाय एवं संभव हो, तो समय के रूप में श्रम-सीकर बहाने का संकल्प लिया जाय। दूसरे स्थान पर वे व्यक्ति आते हैं, जो आपदाओं में फँसने या अशक्ति के कारण स्वयं अपना निर्वाह करने में असमर्थ हैं। इन्हें स्वावलम्बी बनाने के प्रयास करने से भी पितर मुक्ति होती है।

पूर्वजोपार्जितं वित्तं समर्था सन्ततिः स्वतः ।
प्रतिदद्यादलं तेषां वर्द्धितुं पुण्यसम्पदाम् ।। ५९।।
इयमेव च शालीना विद्यते च परम्परा ।
शुभा प्रत्युपकारस्य येनात्मा सम्प्रसीदति ।। ६०।।
पूर्वजैरनुदानं यद्दत्तं यश्च कृतः स्वयम् ।
सहयोगश्च देयं तत्पूर्वजेभ्यो द्वयं त्विह ।। ६१।।
वार्धक्ये च सुपात्रं या सन्ततिः सा तु सेवया ।
अभिभावकवृद्धानां सहयोगेन चेच्छति ।। ६२।।
आनृण्यमात्मनोऽतश्च स्वर्गस्थानां कृते नरः ।
दानपुण्यादिकार्यैश्च प्रस्यिच्छति सन्ततम् ।। ६३।।
आनृण्याऽवसरोऽनेन लभ्यते त्वन्यथा तु तत् ।
भविष्यज्जन्मसु स्याच्चभारवाहितयाऽर्पितुम्।। ६४।।
अनुदानं सन्ततिश्च प्रदत्तमभिभावकैः ।
गृह्णीयादसमर्थस्तु न सामर्थ्ये समागते ।। ६५।।

टीका- पूर्वजों का उपार्जित धन, समर्थ सन्तान उन्हीं की पुण्य-सम्पदा बढ़ाने के लिए लौटा दे। प्रत्युपकार की यही शालीन परम्परा है। इसी से आत्मा प्रसन्नता व

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तृप्ति प्राप्त करती है। जीवित पूर्वजों को उनके किये हुए सहयोग एवं दिये हुए अनुदान को वापिस किया जाना चाहिए। वृद्धावस्था में सुपात्र सन्तानें अपने अभिभावकों की सेवा-सहायता करके उऋण होने का प्रयास करती हैं। स्वर्गवास होने पर उसे उनके निमित्त पुण्यकार्य करके वापिस लौटाती हैं। उससे भी उऋण होने का अवसर मिलता है। न लौटाने पर वह ऋण अगले जन्मों में भार ढो-ढो कर चुकाना होता है । सन्तान को अभिभावकों के अनुदान तभी तक लेने चाहिए, जब तक समर्थ न हो ।। ५९-६५ ।।

दिवंगत आत्मा ने उत्तराधिकार में जो छोड़ा है, उसमें से उतना ही स्वीकार करना चाहिए, जो पीछे वाले बिना कमाऊ बालकों या स्त्रियों के निर्वाह के लिए अनिवार्य हो। कमाऊ सन्तान को उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। दिवंगत आत्मा के अन्य अहसान ही इतने हैं कि उन्हें अनेक जन्मों तक चुकाना पड़ेगा। फिर यह नया ऋण भारी ब्याज समेत चुकाने के लिए क्यों और भी सिर पर लादा जाय। असमर्थ स्थिति में अभिभावकों की सेवा स्वीकार करना उचित था; पर जब वयस्क और कमाऊ हो गये, तो फिर उसे लेकर 'हराम खाऊ' मुफ्तखोरों में अपनी गणना क्यों कराई जाय।

पूर्वजों के छोड़े हुए धन में कुछ अपनी ओर से श्रद्धाञ्जलि मिलाकर उनकी आत्मा के कल्याण के लिए दान कर देना चाहिए। यही सच्चा श्राद्ध है। पानी का तर्पण और आटे की गोली का पिण्डदान पर्याप्त नहीं, वह किया कृत्य तो मात्र प्रतीक है। श्रद्धा की वास्तविक परीक्षा उस श्राद्ध में है, जो पूर्वजों की कमाई को उन्हीं की सद्गति के लिए सत्कर्मों के लिए-दान रूप में समाज को वापिस कर दिया जाय। अपनी कमाई का जो सदुपयोग मोह या लोभवश स्वर्गीय आत्मा नहीं कर सकी थी, उस कमी की पूर्ति उसके उत्तराधिकारियों को कर देनी चाहिए।

जीवित स्थिति में भी युवा सन्तानों का यह दायित्व है कि उनके ऊपर उनको जन्म देकर बड़ा करने-स्वावलम्बी समर्थ बनाने वाले अभिभावक-वृद्ध माता-पिता की परिपूर्ण सेवा की जाय। सेवा इस उद्देश्य से न की जाय कि उनकी छोड़ी सम्पत्ति हमें उत्तराधिकार में मिलेगी, अपितु पुत्र धर्म के नाते की जाय। आयुष्य की उत्तरार्धावस्था में दिया गया अभिभावकों को कष्ट उनकी आह के रूप में जब सिर पर लदता है तो इस जन्म में व परलोक में त्रास-ही-त्रास देता है।

इयमेव तु श्राद्धस्य विद्यते तु परम्परा ।
व्यक्तानि साधनान्यत्र प्रतिदीयन्त एव तु ।। ६६ ।।
यत्प्राप्तं दीयते तच्च श्रद्धासद्भावकारणात् ।
अतोऽतिरिक्तमप्यत्र संभवं यद् भवेदपि ।। ६७ ।।
लोकमंगलकृत्यं तत्कर्त्तव्यमित्थमेव च ।
श्रमदानं साधनानां दानैः सहनियुज्यताम् ।। ६८ ।।
तर्पणं श्रमदानं च स्वेदविन्दुप्रतीकताम् ।
धत्तः शिक्षाभिवृद्धौ सुव्यवस्थायां तथैव च ।। ६९ ।।
वृक्षारोपणकार्ये च स्वच्छतायामपीदृशम् ।
विविधेषु हि कृत्येषु श्रमो योक्तव्य एव च ।। ७० ।।
तर्पणं चेदमेवास्ति लोकचित्तपरिष्कृतौ ।
धनार्पणं भवेच्छ्राद्धमिदमेव च सन्ततेः ।। ७१ ।।
पितृनुदिश्य कर्तव्यं यदस्ति तत्स्मृतिः शुभा ।
श्राद्धतर्पणकार्येण कार्यते लोक उच्यते ।। ७२ ।।

टीका- यही श्राद्ध परम्परा है। इसमें छोड़े हुए साधन लौटाये जाते हैं। जो लिया था, वह वापिस किया जाता है। इसके अतिरिक्त भी अपनी श्रद्धा-सद्भावना की पहल करने के निमित्त जो बन पड़े, लोकमंगल के शुभ-कृत्य करते रहना चाहिए। इस हेतु न केवल साधनों का दान हो, वरन् श्रमदान भी नियोजित रखा जाय। तर्पण-श्रमदान-स्वेदविन्दुओं का प्रतीक है। वृक्षारोपण, शिक्षा-सम्वर्धन, स्वच्छता, सुव्यवस्था जैसे कृत्यों में श्रम किया जाय-यह तर्पण हुआ। लोक-मानस के परिष्कार में धन लगाया जाय-यह श्राद्ध कहलाया। सन्तान का पितरों के प्रति जो कर्तव्य है, उसका स्मरण श्राद्धतर्पण की प्रतीक, परिचर्या द्वारा कराया जाता है ।। ६६-७२ ।।

पितरों के प्रति सच्चा श्राद्ध वही है, जिसमें उनके छोड़े हुए उत्तरदायित्वों को पूरा किया जाय। श्राद्ध का अर्थ है, "श्रद्धा युक्त आचरण" धन को जब सदुद्देश्यों के निमित्त नियोजित किया जाता है, तो वह श्राद्ध कहलाता है। जो भी कुछ व्यक्ति समाज से लेता है, उसके बदले उपार्जन कर सम्पत्ति जुटाता है, उसे समाज हित के कार्यों में जीवन काल में ही लगा दे, यह मर्यादा है। यदि योगवश वह ऐसा न कर पाये, तो उसके उत्तराधिकारी, कुटुम्बी मरणोपरान्त उस कार्य को श्रद्धा के साथ पूरा करें, यह देवसंस्कृति की व्यवस्था है। श्राद्ध द्वारा मृतात्मा की शान्ति-सद्गति मिलने की मान्यता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पीछे यही तथ्य है। तर्पण मात्र जल को अंजुलि में भरकर छोड़ना भर नहीं है। शरीर का पसीना भी लोकहित हेतु बहे। शुभ कार्य पारिश्रमिक देकर नौकरों से नहीं कराये जा सकते। समाज में सत्प्रवृत्ति फैलाने वाले मंगलकारी कृत्यों हेतु स्वयं के श्रम-सीकर बहने चाहिए, तो ही यह कर्मकाण्ड पूरा होता है, नहीं तो बस निमित्त मात्र चिन्ह-पूजा भर बन कर रह जाता है।

श्रद्धाभिव्यक्तितृप्तास्ते पितरोऽपि परोक्षतः।
उच्यते कुर्वते नृणां कुलस्थानां सहायताम् ।।७३।।
निराशा ये समुद्विग्नाः खिन्ना रुष्टास्तथैव च ।
असन्तुष्टाः कुलस्यैवाऽहितं तेन भवत्यलम् ।।७४।।
दृष्ट्याऽनिवार्यैषा श्राद्धस्यात्रोपयोगिता ।
सत्कर्मनिरता या च सन्ततिस्तस्य कर्मणाम् ।।७५।।
एकोंऽश प्राप्यते तस्य पूर्वजैरपि निश्चितम् ।
संतुष्टाः सुखिनस्ते च निवसन्ति ददत्यपि ।।७६।।
अंशदानं पिण्डदानं प्राप्य चाशिषमुत्तमम् ।
कुकर्मणा च पापेन जायते पितृ दुर्गतिः ।।७७।।
पुण्याणामिव पापानां भागिनस्ते भवन्त्यपि ।
दायित्वं सृजनस्यात्र प्रत्येकं भजते नरः ।।७८।।

टीका- कहा जाता है कि श्रद्धाभिव्यक्ति से तृप्त हुए पितर अपने वंशधरों की परोक्ष सहायतायें करते रहते हैं और जो निराश-उद्विग्न हैं, वे खिन्न, रुष्ट एवं असन्तुष्ट रहते हैं। उनका वह असन्तोष परिवार का अहित करता है। इस दृष्टि से भी श्राद्ध की उपयोगिता-आवश्यकता मानी गई है। सत्कर्मरत सन्तति के शुभकर्मों का एक भाग पूर्वजों को मिलता है। इसीलिए वे संतुष्ट-सुखी रहते हैं और पिण्डदान-अंशदान पाकर मनभावन आशीर्वाद देते हैं। इसी प्रकार कुकर्मी सन्तान के पाप-कर्मों से उनके उत्पादनकर्त्ता पूर्वजों की दुर्गति भी होती है। वे पुण्य की तरह पाप के भी भागीदार बनते हैं। सृजन कृत्यों का उत्तरदायित्व हर किसी को ओढ़ना पड़ता है ।। ७३-७८।।

यहाँ ऋषिवर कहते हैं कि पितरों को सच्ची श्रद्धा दी जायेगी, उन्हें तृप्त रखा जायेगा, तो वे निश्चय ही शक्ति, प्रकाश, मार्ग-दर्शन, प्रेरणा, सहयोग एवं भावात्मक अनुदान देंगे।

मरण समय में विक्षुब्ध मनः स्थिति लेकर मरने वाले अक्सर भूत-प्रेत की योनि भुगतते हैं। स्वार्थी अपनी अतृप्त कामनाओं की पूर्ति के लिए उस प्रकार के घटनाक्रमों के इर्द-गिर्द मँडराते रहते हैं और शरीर न होने पर भी वे इच्छित स्वभाव के अनुरूप जहाँ वातावरण दीखता है, वहाँ पहुँचते हैं। जिनसे अपनी मित्रता या शत्रुता रही है, उन्हें लाभ-हानि पहुँचाने का भी जो कुछ प्रयास बन पड़ता है, उसे करते रहते हैं। इन्हें प्रेत स्तर का कहा जाता है। परमार्थ परायण आत्मायें कष्ट पीड़ितों की सहायता करने जा पहुँचती हैं और "अदृश्य सहायकों" की भूमिका निभाती हैं। किन्हीं को प्रेरणा देकर उनके शरीरों से वह काम करा लेती हैं, जिसे करने के लिए उनकी परमार्थ भावना उमड़ती है । इन अशरीरी दिव्य योनियों के चार वर्ग हैं। (१) पितर (२) मुक्त (३) देव और (४) प्रजापति। वे सद्भाव सम्पन्न दिव्य आत्मायें अपनी सीमा-मर्यादा के अनुरूप अपनी सामर्थ्य का उपयुक्त अवसर पर प्रयोग भी करते हैं और सृष्टि संतुलन बनाए रखने में भूमिका का निर्वाह भी करते हैं। ये आत्मायें शान्ति और सुरक्षा के सदुदेद्श्य से लेकर जीवन भर सम्बन्धित व्यक्तियों की सहायता देती-परिस्थितियों को सँभालतीं तथा प्रिय वस्तुओं की सुरक्षा के लिए अस्तित्व का परिचय देती रहती हैं। पितृवत् स्नेह, दुलार और सहयोग देना भर उनका कार्य होता है।

पितर ऐसी उच्च आत्मायें होती हैं, जो मरण और जन्म के बीच की अवधि को प्रेत बनकर गुजारती हैं और अपने उच्च स्वभाव के संस्कार के कारण दूसरों की यथा सम्भव सहायता करती रहती हैं। इनमें मनुष्यों की अपेक्षा शक्ति अधिक होती है। सूक्ष्म जगत् से सम्बन्ध होने के कारण उनकी जानकारियाँ भी अधिक होती हैं। उनका जिनसे सम्बन्ध हो जाता है, उन्हें कई प्रकार की सहायतायें पहुँचाती हैं। भविष्य ज्ञान होने से वे सम्बद्ध लोगों को सतर्क भी करती हैं तथा कई प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने एवं सफलताओं के लिए सहायता करने का भी प्रयत्न करती हैं। ऐसी दिव्य प्रेतात्मायें अर्थात् पितर सदाशायी-सद्भाव सम्पन्न और सहानुभूति पूर्ण होती हैं। वे कुमार्गगामिता से असंतुष्ट होती तथा सन्मार्ग पर चलने वालों पर प्रसन्न रहती हैं। पितरों के भी अनेक स्तर हैं और उसी के अनुरूप वे सहायता करते हैं।

शास्त्र मत योग वाशिष्ठ में बताया गया है कि मृत्यु के उपरान्त प्रेत योनि मरे हुए जीव अपने बन्धु-बान्धवों के पिण्डदान योगवाशिष्ठ के अनुसार मरने के समय प्रत्येक जीव मूर्छा का अनुभव करता है। वह मूर्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाप्रलय की रात्रि के समान होती है। उसके उपरान्त प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही अपने स्वप्न और संकल्प के अनुसार अपने परलोक की सृष्टि करता है, यही बात इन श्लोकों में कही गयी है-

मरणादिमयी मूर्छा प्रत्येके नानुभूयते ।
यैका तां विद्धि समते महाप्रलययामिनीम् ।।
तदन्ते तनुते सर्ग सर्व एव पृथक-पृथक ।
सहज स्वप्नसंकल्पान्संभ्रमाचल नृत्यवत् ।।

योगवाशिष्ठ ३।४०।३१ व ३२

इसी सन्दर्भ में आगे बताया गया है कि-

स्ववासनानुसारेण प्रेता एतां व्यववस्थितम् ।
मूर्च्छान्तेऽनुभवन्त्यन्तः क्रमेणैवाक्रमेण च ।

अर्थात्- प्रेत अपनी-अपनी वासना के अनुसार ही भावनात्मक उतार-चढावों का अनुभव करते हैं। मरे हुए व्यक्ति की प्रेतावस्था में जिन लोगों से आसक्ति जुड़ी रहती है, उनकी भावसंवेदनायें और उनकी परिस्थितियाँ-मनः-स्थितियाँ प्रेतों को तीव्रता से प्रभावित करती हैं। पिण्डदान और श्राद्ध कर्म का महत्व यही है कि उन क्रियाओं के साथ-साथ जो भावनायें जुड़ी होती हैं, वे प्रेतों-पितरों को स्पर्श करती हैं। इसी प्रकार पितरों के संस्कारों के अनुपम अपने प्रियपात्रों की स्थितियाँ उन्हें आन्दोलित करती हैं।

योग वाशिष्ठ में बताया गया है कि मृत्यु के उपरान्त प्रेत यानी मरे हुए जीव अपने बन्धु-बान्धवों के पिण्डदान द्वारा ही अपना शरीर बना हुआ अनुभव करते हैं-

आदौ मृता वयमिति बुध्यन्ते तदनुक्रमात् ।
बंधु पिण्डादिदानेन प्रोत्पन्ना इव वेदिनः ।।

योगवाशिष्ठ ३।५२।२७

अर्थात्- प्रेत अपनी स्थिति को इस प्रकार अनुभव करते हैं कि हम मर गये हैं और अब बन्धुओं के पिण्डदान से हमारा नया शरीर बना है।

स्पष्ट है कि यह अनुभूति भावात्मक ही होती है। अतः पिण्डदान का वास्तविक महत्व उससे जुड़ी भावनाओं के ही कारण होता है। जिसके प्रति आत्मीयता होती है, उसके भावात्मक अनुदान से प्रेत प्रभावित होता है। क्योंकि मरणोत्तर जीवन की अनुभूतियाँ वासना और संस्कारों के प्रभाव की ही प्रतिच्छाया होती है। इसलिए जिससे आत्मीयता का संस्कार अंकित हो, उसकी भावनायें परलोकस्थ जीव को प्रभावित करती है।

गीता के ८ वें अध्याय में कहा गया है-"हे अर्जुन! जो अन्त समय में जिन भावों का स्मरण करता हुआ देह छोड़ता है, उन्हीं भावों से अनुप्राणित होकर वैसा ही नया शरीर, नया व्यक्तित्व प्राप्त करता है।"

संन्यासी से इसीलिए संन्यास लेते समय उसके श्राद्ध-संस्कार भी उसी के द्वारा करा दिए जाते हैं, कि उसकी कोई भी आकांक्षा-आसक्ति सूक्ष्म रूप में भी शेष न रहे।

पूर्णतश्च समानौ स्तः पुत्रः पुत्री च निश्चितम् ।
कर्त्तव्यान्यधिकाराश्च समत्वेन मता इह ।।७९।।
श्राद्धतर्पणकर्तव्यविधौ तत्र द्वयोरपि ।
उत्साहेन समानेन भवितव्यं सदैव च ।।८०।।
पित्रोः पितामहस्याथ तत्र मातामहस्य च ।
केवलानां न तच्छ्राद्धं भवत्यपि तु स्वर्गिणाम् ।।८१।।
सर्वेषां स्वजनानां तद् भवितुं युज्यते ध्रुवम् ।
सम्बन्धे केऽपि ते वास्युर्नात्रकश्चिद् व्यतिक्रमः।।८२।।
कनिष्ठाः कुर्वते तत्र ज्येष्ठानां च यथैव तु ।
श्राद्धं तथा कनिष्ठानां कर्तुं ज्येष्ठा अपि क्षमाः।।८३।।
क्षेत्रे त्वात्मन आहुर्न बुधास्त्वन्तर यत्र ते ।
तत्र ज्येष्ठकनिष्ठत्वे शरीरस्थमिदं यतः ।।८४।।
ऋषीणां देवतानां च गुरुणामुपकारिणाम् ।
महामानवनाम्नां च प्राप्तुमानृण्यमुत्तमम् ।।८५।।
श्राद्धकर्मविधातव्यं कनिष्ठानामपि स्वयम् ।
स्नेहसद्भाववात्सल्यं तत्र बोधयितुं महत् ।।८६।।
यथा जन्मोत्सवस्तत्र विवाहोत्सव एव वा ।
तथा वार्षिकश्राद्धं तत्कर्तुमत्रं च युज्यते ।।८७।।
आत्मनोऽमरतायाश्च सिद्धान्तोऽनेन पुष्यते ।
परलोकस्य लोकस्य मध्ये च सघनस्तु सः ।।८८।।
सम्बन्धः सततं तिष्ठन् परिवारविशालताम् ।
कुरुतेऽक्षुण्णरूपां तां ब्रह्माण्डपरिशायिनीम् ।।८९।।

टीका- कन्या और पुत्र समान हैं। दोनों के ही समान कर्त्तव्य और समान अधिकार हैं। इसलिए श्राद्धतर्पण करने में दोनों का ही समान उत्साह होना चाहिए। श्राद्ध मात्र अपने माता-पिता बाबा-नाना आदि का ही नहीं होता, उन सभी स्वजनों का हो सकता है, जो दिवंगत हो गये। रिश्ते में वे कुछ भी क्यों न हों, इससे कुछ अन्तर नहीं आता। छोटे-बड़ों का श्राद्ध जिस प्रकार करते हैं, उसी प्रकार बड़े छोटों का भी कर सक्ते हैं। आत्मा के क्षेत्र में छोटे-बड़े का अन्तर नहीं रहता। वह तो शरीर के साथ जुड़ा हुआ है। गुरुजनों,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महामानवों, ऋषि, देवताओं अथवा अन्य उपकारी जनों से ऋणमुक्त होने के लिए उनका श्राद्ध करना चाहिए। छोटों का उनके प्रति स्नेह, सद्भाव, वात्सल्य प्रकट करने के लिए जन्मोत्सवों, विवाहोत्सवों की तरह वार्षिक श्राद्ध भी हो सकता है। इससे आत्मा की अमरता को बल मिलता है और लोक-परलोक के बीच सघन सम्बन्ध बना रहने से परिवार की विशालता अक्षुण्ण बनी रहती है तथा समस्त ब्रह्माण्ड एक परिवार बन जाता है ।। ७९-८९ ।।

जहाँ तक पूर्वजों, पितरों, महामानवों के प्रतिश्रद्धा श्राद्ध-तर्पण के रूप में अभिव्यक्त करने का प्रश्न है, पुत्र-पुत्री, नर-नारी में किसी प्रकार का भेद नहीं है। आत्मसत्ता द्वारा परलोक में बैठी सूक्ष्म आत्माओं को दी जा रही श्रद्धांजलि लिंग से बाधित नहीं है। आत्मा न नर है, न नारी, यह चिरन्तन सत्य है। इसलिये यह मानना कि पुत्र होगा वही पिण्डदान करेगा, नितान्त भ्रान्तिपूर्ण मान्यता है। यही बात आयु की दृष्टि से छोटे-बड़े व्यक्तियों पर भी लागू होती है। छोटे बच्चों के असामयिक निधन पर भी उनकी आत्मा की शान्ति के लिए बड़ों द्वारा श्राद्ध किया जाना चाहिए।

श्राद्ध क्रिया मात्र पूर्वजों-आत्मीयजनों तक ही सीमित नहीं है। इस परिधि में सारा विश्व परिवार आ जाता है। जिन देवपुरुषों, महामानवों ने इस जगती के कल्याण हेतु विश्वसुधा के निमित्त अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया, उन सभी के प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त करना मानव मात्र का धर्म है।

आत्मनोऽमरतां तत्र मरणोत्तरजीवने ।
विद्यमानं विधिं चाऽपि स्वजनोत्तरदायिताम् ।।९०।।
विस्तृतं तत्समाकर्ण्य समे संस्कृतिवाहिनि ।
संगता मुदिताः सर्वे भृशं जिज्ञासवस्ततः ।। ९१ ।।
प्रतिपादनमेतच्च श्रोतृभिः संगतैः समैः ।
तत्र चाद्यतनं दिव्यं महत्वान्वितमामतम् ।।९२।।
उपलब्धौ च सन्तोषं हर्षमुत्तममेव ते ।
उद्गिरन्तोऽगमन् सर्वे श्रुत्वा घोषंसमाप्तिकम् ।।९३।।

टीका- आत्मा की अमरता और मरणोत्तर जीवन की विधि-व्यवस्था तथा स्वजन-सम्बन्धियों की जिम्मेदारी के सम्बन्ध में सुविस्तृत विवेचन सुनकर संस्कृति-सत्र में सम्मिलित हुए सभी जिज्ञासुजन बहुत प्रसन्न हुए। आज के प्रतिपादन को भी श्रवणकर्त्ताओं ने गत दिवसों जैसा ही महत्वपूर्ण माना और इस उपलब्धि पर हर्ष, सन्तोष प्रकट करते हुए, समापन घोष होने पर शान्तिपूर्वक विदा हो गये ।। ९०-९३ ।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे देवसंस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयोः, श्रीकात्यायन ऋषि प्रतिपादिते "मरणोत्तरजीवन" इति प्रकरणो नाम ।। पञ्चमोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

आस्था-संकट प्रकरण

अभूत् सत्रस्य षष्ठं च दिनमद्य श्रुतं जनैः ।
जिज्ञासुभिः कथं देवसंस्कृतिर्भारतोदिता ।। १।।
समस्तेऽपि तु संसारे ज्ञानालोकं व्यधात् तथा।
प्रकाशयति सम्पूर्णं विश्वं दिनकरो यथा ।। २।।
मर्त्ये देवत्वभाविन्या धरित्र्यां स्वर्गसंस्थितेः ।
कारिण्या गौरवं लोकैर्विभूतेर्ज्ञातमुत्तमम् ।। ३।।
तथ्यमेतच्च विज्ञातुं सन्देहो नैव कस्यचित् ।
अवशिष्टो यदन्येषां प्राणिनां तुलनाविधौ ।। ४।।
अनेकदृष्टिभिर्हीनो मुनष्यः कथमेष तु ।
सृष्टेर्मुकुटरत्नत्वं सहसैव गतो महान् ।। ५।।

टीका- आज सत्र का छठा दिन था। देवसंस्कृति ने भारत भूमि में उदित होकर समस्त संसार में किस प्रकार दिनकर जैसा प्रकाश फैलाया-यह विवरण सभी जिज्ञासुओं ने ध्यानपूर्वक सुना। मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण करने वाली इस विभूति की गरिमा को उन्होंने गम्भीरतापूर्वक समझा। किसी को इस तथ्य को समझने में सन्देह न रहा कि अन्य प्राणियों की तुलना में अनेक दृष्टियों से गये-गुजरे मनुष्य को किस कारण सृष्टि का मुकुटमणि बनने का अवसर मिला ।। १-५ ।।

मनुष्य अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण ही श्रेष्ठ बना है, अन्यथा इन्द्रिय क्षमता, उदारता,बफादारी तथा संवेदना में वह पशुओं से मात खा सकता है।

बुद्धिवैशिष्ट्यहेतोर्वा शरीररचनाविधेः ।
कारणान्नैव स त्वत्र सर्वायाः प्रगतेरयम् ।। ६।।
सुयोगस्त्वस्य चायात आदर्शचरितग्रहात् ।
उत्कृष्टचिन्तनाच्चैव मेधावित्वविधेरलम् ।। ७।।
मनुष्याणां गरिम्णस्ता अनुरूपाश्च भावनाः ।
मान्यता निःसृता देवसंस्कृतेरेव शोभनाः ।। ८।।
अतः सा हि मनुष्याणां कृते भगवतो ध्रुवम् ।
मन्यतामनुदानं तदिद्व्यं मानवमंगलम् ।। ९।।
विभिन्नेषु हि देशेषु जातिष्वपि च दृश्यते ।
यदौत्कृष्ट्यं स्वरूपाच्च भिन्नस्यास्तिहिमालयः।।१०।।
उद्गमस्थमेषोऽत्र धर्मो यत्र स उद्गतः ।
भारतीयस्तथा नद्यो निर्गता वारिपूरिताः ।। ११।।

टीका- मात्र मस्तिष्क सम्बन्धी विशेषता एवं शरीर-संरचना के कारण नहीं, मनुष्य को समग्र प्रगति का सुयोग उत्कृष्ट चिन्तन, मेधाविता और आदर्श चरित्र अपनाने के कारण मिला है। मानवी गरिमा के अनुरूप मान्यताएँ और भावनाएँ देवसंस्कृति से ही निःसृत हुई हैं। इसलिए उसे समस्त मनुष्य जाति के लिए भगवान का कल्याणकारी दिव्य अनुदान ही माना जा सकता है। विभिन्न देशों और जातियों में जो उत्कृष्टता दृष्टिगोचर होती है, उसका स्वरूप भिन्न दीखते हुए भी उनका मूल उद्गम भारतीय धर्म का हिमालय ही है। न सूखने वाली सरिताएँ उसी से निकलीं और विभिन्न दिशाओं में गतिमान हुई हैं ।। ६-११ ।।

मानव का विकास सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर हुआ है। देवसंस्कृति इस विद्या में सर्वोपरि रही है और उसके अनुदान विश्व की अनेक संस्कृतियों को मिले हैं। उनके प्रमाण आज भी मिलते हैं।

तथ्यमेतद् विदित्वाऽस्य चित्ते शंकोदिता नवा ।
कणादस्य महर्षेः सा जिज्ञासोर्मगंलोन्मुखा ।।१२।।
यद्येवं तर्हि जायन्ते विग्रहा धर्मकारणात् ।
कथं संस्कृतयो भिन्ना युद्धयन्ते च परस्परम् ।।१३।।
धर्ममाश्रित्य जायन्ते पाखण्डेन सहैव च ।
अनाचाराः कथं भूमौ तीव्रा लज्जाकरा नृणाम् ।।१४।।
मनसः स्वस्य सन्देहो बद्धहस्तेन तेन च ।
उक्तो महर्षिणा तत्र सोऽग्रे कात्यायनस्य तु ।।१५।।
शंका समाहितां कर्तुमनुरोधं व्यधादपि ।
सत्रसञ्चालकस्यास्य मुनेः कात्यायनस्य सः ।।१६।।

टीका- इस तथ्य को समझने के उपरान्त जिज्ञासु ऋषिवर कणाद के मन में मंगलोन्मुख एक शंका उत्पन्न हुई कि यदि ऐसा ही है, तो फिर इन दिनों धर्म के नाम पर इतने विग्रह क्यों दृष्टिगोचर होते हैं? संस्कृतियाँ आपस में टकराती क्यों हैं? धर्म के नाम पर मानव मात्र के लिए लज्जास्पद पाखण्ड और अनाचार क्यों होते हैं? अपने मन का सन्देह उन्होंने करबद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होकर महामुनि कात्यायन के सम्मुख व्यक्त किया और शंका के समाधान का अनुरोध सत्र-संचालक ऋषि कात्यायन से किया ।। १२-१६ ।।

मनीषियों ने सांस्कृतिक चेतना की महत्ता समझी। देवसंस्कृति के आधारों में वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कारों, पर्वों तथा देवालय-तीर्थों के माध्यम से महामानव बनाने का ऋषि तंत्र कर्मफल और मरणोत्तर जीवन के आधार पर आदर्श निष्ठा के सूत्र समझे। इतने श्रेष्ठ सूत्र तथा इतनी सटीक व्यवस्था के होते हुए भी विग्रह क्यों? संस्कृति सहयोग और विकास के लिए है, उसमें टकराव और विग्रह-पतन क्यों? यह स्वाभाविक जिज्ञासा जो जन-मन में उभरी, उसको ऋषि कणाद ने व्यक्त किया। यह एक कटु सत्य का सर्वेक्षण है।

कात्यायन उवाच-

सौम्य कालान्तरे नूनमुत्तमान्यपि चान्ततः ।
वस्तूनि विकृतेर्हेतोर्जराजीर्णतया पुनः ।। १७ ।।
गच्छन्त्यनुपयोगित्वं प्राणिवृक्षगृहा इव ।
अखाद्यतां यथा यांति द्वितीयेऽह्नि तु भोजनम् ।। १८ ।।
क्रमस्य नियतेरेष उपचारस्तु विद्यते ।
अस्य सन्ततमेव स्याज्जीर्णोद्धारस्तु कालिकः ।। १९ ।।
शरीरस्याथ वस्त्राणां नित्यं प्रक्षालनं मतम् ।
कक्षाणां शोधनं चात्र पात्रसंमार्जनं तथा ।। २० ।।
शस्त्रेषु धारा निर्मेया भवत्येव निरन्तरम् ।
एवं रीतिषु जायन्ते क्रमाद् विकृतयश्च ताः ।। २१ ।।

टीका- महर्षि कात्यायन ने कहा-सौम्य ! कालान्तर में उत्तम वस्तुएँ भी विकृतियों के कारण जराजीर्ण होकर अनुपयोगी बन जाती हैं। प्राणी, भवन, वृक्ष सभी पर वृद्धता आती है। भोजन अगले दिन अखाद्य बन जाता है। इस नियति-क्रम का उपचार, समय-समय पर जीर्णोद्धार करते रहना है। शरीर, वस्त्र आदि को नित्य धोना पड़ता है। कमरे को बुहारना और बर्तन को माँजना पड़ता है। शस्त्रों पर धार रखनी पड़ती है। इसी प्रकार प्रथा-प्रचलनों में भी विकृतियाँ घुस पड़ती हैं ।। १७-२१ ।।

कालानुरूपं सर्वत्र व्यवस्था शोध्यते तथा ।
परिवर्तयितुं चापि बाध्यता भवति स्वतः ।। २२ ।।
कारणं चेदमेवास्ति परिवर्तनतामिह ।
संविधानानि गच्छन्ति कालिकानि सदैव तु ।। २३ ।।
ऋषयोऽपि स्थितीर्दृष्ट्वा स्मृतीः स्वा व्यधुरुत्तमाः ।
अतएव तु भेदोऽपि स्मृतिष्वत्र विलोक्यते ।। २४ ।।
पूर्वेषां ग्रन्थकर्तृणां नापमानमिदं स्मृतम् ।
भूषणानां च वस्त्राणां जीर्णानां नवतात्विदम् ।। २५ ।।

टीका- समय के साथ व्यवस्था भी बदलनी और सुधारनी पड़ती है। यही कारण है कि समय के अनुरूप विधान बदलते रहे हैं। ऋषियों ने बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप स्मृतियाँ बदलीं हैं, इसी से स्मृतियों में कहीं-कहीं अन्तर दृष्टिगोचर होता है। यह पूर्व निर्धारण-कर्त्ताओं को अपमान नहीं, वरन् पुराने वस्त्र-आभूषण के स्थान पर नया श्रृंगार करने जैसा उपयोगी है ।। २२-२५ ।।

परिवर्तनमायाते समये जीर्णतोदिता ।
यदि विकृतयस्तीव्रा वर्द्धितास्तर्हि तद्ग्रहः ।। २६ ।।
सर्वथाऽनुचितो मर्त्याः सन्ति ये तु दुराग्रहाः ।
पुराणं साधु नव्यं च दूषितं सर्वमित्यहो ।। २७ ।।
दुराग्रहिण एते च पारम्पर्यानुधाविनः ।
तद्गृहणन्ति मृतान् पुत्रान यथा वानर्यआतुराः ।।२८ ।।

टीका- समय बदल जाने और जीर्णता जन्य विकृतियाँ बढ़ जाने पर भी उन्हें अपनाए रहने का आग्रह अनुचित है। दुराग्रही लोग 'जो पुराना सो अच्छा, जो नया सो बुरा' की दुराग्रही दृष्टि अपना लेते हैं और जो कुछ चल रहा है, उसे परम्परा कहकर अनुपयोगी को भी, मरे-बच्चे को छाती से लगाये फिरने वाली बन्दरी का उदाहरण बनते हैं ।। २६-२८ ।।

दुग्धेऽत्र मक्षिकापातो भवेच्चेत्तदपेयताम् ।
गच्छति प्राय एवं हि-विकृतेर्विकृता इमे ।। २९ ।।
धार्मिकाः संप्रदायास्तु युद्ध्यन्तेऽत्र परस्परम् ।
विकृतीरपि चेदत्र वदन्त्येव परम्पराः ।। ३० ।।
दुराग्रहा गृहीतास्ता यान्त्यत्राधमतां प्रथाः ।
उत्थापयति मर्त्यं तन्मूलं धर्मस्य संस्कृतेः ।। ३१ ।।
अग्रगं तं करोत्येवं सार्वभौमदृशा तथा ।
उन्नतं सुखिनं कर्तुं सहयोगं करोत्यलम् ।। ३२ ।।

टीका- दूध में मक्खी पड़ जाने पर वह अखाद्य बन जाता है। इसी प्रकार इन दिनों प्रचलित धर्म-सम्प्रदाय भी परस्पर लड़ते-टकराते देखे जाते हैं। उनमें घुसी हुई विकृतियाँ जब परम्परा कही और दुराग्रहपूर्वक अपनायी जाती हैं, तो उत्तम भी अधम बन जाता है। अन्यथा धर्म और संस्कृति का मूल स्वरूप मनुष्य को ऊँचा ही उठाता है तथा उसे आगे बढ़ाता और हर दृष्टि से सुखी-समुन्नत बनाने में सहायता करता है ।। २९-३२ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देव-संस्कृति के सूत्र दूध की तरह निर्मल हैं; परन्तु मानवीय दुश्चिन्तन उन्हें दूषित बना देता है। अनेक श्रेष्ठ परम्परायें आज भी उपयोगी हैं, आवश्यक हैं, परन्तु विकारों की मिलावट के कारण उन्हें अपनाया जाना हानिकारक लगता है। विकारों की मिलावट रोकी जा सके, तो वे सौभाग्यकारी हो जायें।

संस्कृतेर्नैव दोषोऽस्ति, पाखण्डस्य तथैव च ।
अनौचित्यस्य दोषोऽयं यस्तां दूषयति स्वतः ।। ३३ ।।
परिमार्जनमेतस्य भवेदेव निरन्तरम् ।
परिशोधनमप्यस्याऽवाञ्छनीयस्य कर्मणः ।। ३४ ।।
कालावश्यकतां वीक्ष्य निर्धारणविधिश्चलेत् ।
अन्यथा धर्मतामेति पाखण्डस्य परम्परा ।। ३५ ।।
दुराचारिण एतेऽत्र तदाश्रित्य च कुर्वते ।
भ्रान्तान्साधारणान्मर्त्यान्स्वार्थसंसाधयन्त्यपि।।३६।।

टीका- यह दोष संस्कृति का नहीं उसमें किसी कारण घुस पड़ने वाले पाखण्ड अनौचित्य का है, जो उसे दूषित कर देते हैं। इसका परिमार्जन निरन्तर होते रहना चाहिए। प्रचलित अवांछनीयता का परिशोधन और सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिए । अन्यथा पाखण्ड ही धर्म कहलाने लगेगा और उसकी आड़ में दुराचारियों को भ्रम फैलाने, अनुचित स्वार्थ साधने का अवसर मिलता रहेगा ।। ३३-३६ ।।

पिछले उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रेष्ठ प्रवाह में भी विकार पैदा हो जाते हैं। उन विकारों की हानियों का दोष मूल आदर्शों पर नहीं लगाना चाहिये । किन्तु उसके लिये आवश्यक है कि आदर्शों और विकारों को अलग-अलग करके देखा जाय। जिन कारणों से विकार पैदा हुये, उनका निवारण किया जाय, शुद्ध आदर्शों को गति-शील संदर्भों में प्रयुक्त किया जाय। यदि वह श्रम न किया गया, तो दोषों के साथ आदर्शों की आड़ में दोषों और दुराचारियों को प्रश्रय मिलता रहेगा।

इमा विकृतयो नैव केवलं धर्मसंस्कृतौ ।
प्रविशन्ति परं सर्वा नैतिके बौद्धिकेऽथ च ।। ३७ ।।
क्षेत्रे सामाजिकेऽप्यत्र प्रविशन्ति पुनः पुनः ।
आहारेऽथ विहारे च व्यवहारे तथैव च ।। ३८ ।।
धनस्योपार्जने भोगे व्यवसाये जना इह ।
अवाञ्छनीयतां यान्ति विलासाकर्षणोदिताम् ।। ३९ ।।
मदसेवनजादीनि व्यसनान्युद्भवन्त्यपि ।
अस्मादेव हि हेतोश्च स्वस्मिन् देशेऽपि सन्त्यहो।।४०।।
भिक्षाया व्यवसायोऽयं जात्याहंकारजोच्चता।
अवगुण्ठनता सेयं विवाहेऽपव्ययो महान् ।। ४१ ।।
पशूनां बलिदानं च मृतभोजो बृहत्तरः ।
बहुविधा रीतयो लोके चलिता एवमेव तु ।। ४२ ।।
बहुप्रजननस्यात्रा पश्यन्तः फलमत्यगम् ।
मिथ्या प्रदर्शनेष्वेते व्ययं च कुर्वते भृशम् ।। ४३ ।।

टीका- यह विकृतियाँ न केवल धर्म-संस्कृति में घुसती रहती हैं, वरन् नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक क्षेत्रों में भी उनका प्रवेश होता रहता है। लोग आहार-विहार, व्यवहार-व्यवसाय, उपार्जन-उपयोग जैसे दैनिक प्रयोजनों में भी विलास-आकर्षण के नाम पर अवांछनीयता की आदत डाल लेते हैं। नशेबाजी जैसे अनेक दुर्व्यसन इसी कारण पनपे हैं। अपने देश में भिक्षा-व्यवसाय, जातिगत ऊँच-नीच, पर्दा-प्रथा, विवाहों में अपव्यय, पशुबलि, बड़े-बड़े मृतक भोज जैसे अनेक अनाचारों का प्रचलन चल पड़ा है। बहु प्रजनन के दुष्परिणामों की ओर से आँखें बन्द किए रहते हैं। फैशन और ठाट-बाट के निमित्त ढेरों पैसा खर्च करते हैं ।। ३७-४३ ।।

धर्म-संस्कृति ही मनुष्य को सदाचार, सद्भाव की मर्यादा में रख सकती है। उसमें विकार आ जाने से धार्मिक क्रियाकलापों में दोष पैदा होते ही हैं, जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी उलटा चक्र चल पड़ता है। चिन्तन और आचरण की मर्यादाहीनता अगणित दोष पैदा करती है और मनुष्य न चाहते हुए भी उनके शिकंजे में कसता चला जाता है। ऊपर जीवन के जिन-जिन क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है, उन सब में न चाहते हुए भी मनुष्य पिस रहा है, यह हर जगह देखा जा सकता है।

ऐतेषु दिवसेष्वत्र समायात्यनिशं भृशम् ।
व्यक्तौ तथा समाजेऽपि दारिद्र्यस्य तथैव च।।४४।।
अस्वास्थ्यस्याऽसुरक्षाया विपत्तिर्येन वर्द्धते ।
मनोमालिन्यपूर्णः स कलहस्तु गृहे गृहे ।। ४५ ।।
जने जने च वर्द्धन्ते इहा सन्तोष आशु सः।
अविश्वासस्तथा चैषोऽसहयोगविधिः स्वतः।।४६।।

टीका- इन दिनों व्यक्ति और समाज पर अस्वस्थता, असुरक्षा,दरिद्रता की विपत्ति लदती जा रही है। घर-परिवारों में कलह, मनोमालिन्य बढ़ रहा है। जन समुदाय के मध्य असहयोग, असन्तोष, अविश्वास असाधारण रूप से बढ़ रहा है ।। ४४-४६ ।।

चाहे व्यक्तिगत अस्वस्थता-असुरक्षा हो, चाहे पारिवारिक मनोमालिन्य और चाहे सामाजिक असहयोग अविश्वास। इन सबका जनक मनुष्य स्वयं ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकीर्णस्वार्थबुद्ध्या च विलासस्याथवा पुनः।
प्रमादस्य प्रवृत्या वा मदसेवनतोऽथवा ।। ४७।।
सारहीनमभूत्सर्वं जनजीवनमुत्तमम् ।
कारणं केवलं चैता दुष्प्रवृत्तय एव तु ।। ४८।।
अपराधिप्रवृत्तीनां प्रवृद्धानां तु कारणात् ।
प्रत्येकः पुरुषो नूनमातंकित इह स्वयम् ।। ४९।।
विनाशसंकटश्चात्र समाजे समुपस्थितः ।
निर्मीयते स्वतोऽज्ञातं वातावरणमीदृशम् ।। ५०।।
केवलं सभ्यताया न संचिताया: परं महान् ।
संकटो मानवास्तित्वे दृश्यते समुपस्थितः।। ५१।।

टीका- संकीर्ण स्वार्थपरता, विलासिता, नशा, प्रमाद की दुष्प्रवृत्तियों के कारण जन-जीवन खोखला हुआ जा रहा है। बढ़ती हुई अपराधी प्रवृत्ति के कारण हर व्यक्ति आतंकित जैसा दीखता है। समूचे स्थान पर विनाश के संकट छाये हुए हैं। वातावरण ऐसा बन रहा है, मानो संचित सभ्यता का ही नहीं, मानवों अस्तित्व के लिए भी संकट खड़ा हो गया है ।। ४७-५१।।

उत्तमोदेद्श्यहेतोर्याः कदाचिद्रीतयः शुभाः ।
प्रारब्धा भ्रान्तिभिर्जाता अयोग्या विकृतिं गताः।।५२।।
दुराग्रहोऽथ मोहश्च नोचितोऽत्र मनागपि ।
हिमाद्रिनिर्गता गंगा क्षारतां याति सिन्धुगा।।५३।।
ततः सूर्येण वाष्पत्वं प्रापिता जलदायिता ।
हिमतामधिगत्यैव शुद्धत्वं भजते स्थिरम् ।।५४।।
संस्कृतेरपि सम्बन्धे वार्तेषैव तु विद्यते ।
सूक्ष्मद्रष्टार एतेऽत्र मुनयश्च मनीषिणः ।।५५।।
जागरूकास्तु तिष्ठन्ति त्यक्तुं सर्वदुराग्रहम् ।
विवेकं जागृतं नृणां कुर्वन्तो मान्यतासु च ।।५६।।
परिवर्तनकं वातावरणं कुर्वते तथा ।
अभियानं बृहन्मूलं दृढं सञ्चालयन्त्यपि ।।५७।।

टीका- जो प्रथाएँ कभी उत्तम उद्देश्यों को लेकर विनिर्मित हुई थीं, वे ही भ्रान्तियों और विकृतियों के मिलते चलने पर समयानुसार अनुपयुक्त बन जाती हैं। तब उनके प्रति दुराग्रही मोह अपनाना अनुचित है। हिमालय से निकलने वाली गंगा की धारा भी समुद्र तक पहुँचते-पहुँचते खारी हो जाती है। तब उसे सूर्य भाप बनाकर बादल बनाता है। हिमालय में पहुँच कर वही बादल बर्फ बन जाते हैं और उस परिवर्तन के कारण ही गंगा का शुद्ध स्वरूप स्थिर रहता है। संस्कृति के सम्बन्ध में भी यही बात है। सूक्ष्मदर्शी मुनि-मनीषी इस पर्यवेक्षण के प्रति जागरूक रहते हैं। वे दुराग्रह के स्थान पर विवेक जगाते और जो उचित है, उसे अपनाने के लिए मान्यताओं में हेरफेर करने वाला दृढ़ एवं गहरी पकड़ वाले अभियान चलाते, वातावरण बनाते हैं ।। ५२-५७।।

अनौचित्यमिदानीं यद् व्याजाद् धर्मस्य संस्कृतेः ।
जृम्भते कारणं तस्य केवलं यन्मनीषिभिः ।।५८।।
संशोधनानि नैवात्र कालजानि कृतानि तु ।
परिवर्तनजो रूद्धः प्रवाहो यदि जायते ।।५९।।
वार्षिकं सलिलं गर्तमध्यस्थमिव विकृतिम् ।
धर्मक्षेत्रे प्रयान्त्यन्धविश्वासैश्च दुराग्रहैः ।।६०।।

टीका- इन दिनों जो धर्म-संस्कृति के नाम पर अनौचित्य का बोल-बाला है उसका कारण एक ही है कि मनीषियों ने सामयिक संशोधन का ध्यान नहीं रखा। सुधार-परिवर्तन का प्रवाह रुक जाने से, वर्षा का शुद्ध जल किसी गड्ढे में अवरुद्ध पड़ा रहने पर सड़ने लगता है। ऐसी दुर्गति धर्म क्षेत्र में अन्धविश्वास एवं दुराग्रह घुस पड़ने से भी होती है ।। ५८-६०।।

उपयुक्त संशोधन जब न किए जा सके, तभी देवसंस्कृति के नाम को बट्टा लगा, जब उन्हें समय पर कर लिया गया, तब बिगड़ती परिस्थितियाँ तुरन्त सुधर गयीं।

वैशिष्ट्यमिदमेवाभूत् सर्वदा देवसंस्कृतेः ।
विवेकबुद्धये श्रद्धाभावनायै परिष्कृतम् ।।६१।।
सुदृढं च ददौ दिव्यमाधारमुभयोः कृते ।
मानवी यत्र श्रद्धेयं विवेकेन सहैव च ।।६२।।
तिष्ठेदाधारमाहुस्तमास्थाविन्दुमथापि च ।
महामानवतां याति देवत्वं चास्यया नरः ।।६३।।
आस्थाया विरहे तस्मिन् पशुता समुदेति हि।
अकाट्यं सत्यमेवैतद् वर्तते च महत्तमम् ।।६४।।

टीका- देवसंस्कृति की सदा यह विशेषता रही है कि उसने विवेक-बुद्धि तथा श्रद्धा-भावना, दोनों पक्षों के लिए परिष्कृत और सुदृढ़ आधार दिये हैं। जिन पर मानवी श्रद्धा एवं विवेक दोनों टिक सकें, उन्हें आस्था के बिन्दु या आधार कहते हैं। आस्था के सहारे ही मनुष्य मानव महामानव और देवमानव बनता है। आस्था के अभाव में उसमें पाशविकता उभरने लगती है, यह एक अकाट्य महान् सत्य है ।। ६१-६४।।

भारतीय संस्कृति विवेक और भावना दोनों के संयोग की अपनी विशेषता से ही विश्वमान्य बनी। सारे विश्व में विभिन्न समयों में हुए विचारक जिज्ञासु मनीषियों ने इसे इसी आधार पर सराहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाराशिकोह (औरगंजेब के बड़े भाई) उपनिषदों का अध्ययन करते थे। एक दिन वे मस्ती में झूम रहे थे। उनकी भतीजी ने पूछा-चचा जान, आप नशा तो करते नहीं, फिर ऐसे मस्त कैसे हो रहे हैं? दारा बोले-"बेटी, यह मस्ती नशे की नहीं दिव्य ज्ञान की है। उपनिषदों को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि ज्ञान की मस्ती कितनी गहरी होती है।"

मैक्समूलर ने वेदों का सांगोपांग अध्ययन किया। वे कहते थे, भारत की सांस्कृतिक विरासत इतनी महान् है कि इसके लिए एक क्या दस जन्म भी लगा सकूँ, तो सार्थक समझूँगा।

पादरी लैडविटर (थियोसाफिकल सोसाइटी के मान्य संत) कहते थे- "भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने से पूर्व आंतरिक संतोष नहीं मिला था। ईसाई और इस्लाम मत में श्रद्धा तो दिखी, विवेक की तुष्टि नहीं हुई। पाश्चात्य दर्शन में विवेक मिला; पर संवेदनाओं की प्यास न बुझी। भारतीय दर्शन में दोनों का योग है, यह वास्तव में योगी है ।

विज्ञानेन सहैवात्र बुद्धिवादोऽभिवर्द्धते ।
जर्जरा विकृताया स्यु सन्ति लोके परम्पराः ।। ६५ ।।
अस्वीकृता विवेकेन ता न चाऽन्याः समुत्थिताः ।
श्रद्धा तिष्ठन्ति नान्येषु सांस्कृतीं चेतनां विना ।।६६।।
आस्थायाश्च नवान् विन्दून प्राप्याऽयमभून्नरः ।
आस्थाहीनस्ततो वृद्धि तदसंतुलनं गतम् ।। ६७ ।।

टीका- विज्ञान के साथ बुद्धिवाद बढ़ा है। जर्जर-विकृत परम्पराओं को विवेक ने अस्वीकार कर दिया है। नये आधार बने नहीं, कुछ बने, तो उनमें सांस्कृतिक चेतना की झलक न मिलने से श्रद्धा उन पर टिकती नहीं। आस्था के नये आयाम न मिल सकने से मनुष्य आस्थाहीन हो गया। उसी के कारण सारा असन्तुलन बढ़ रहा है ।। ६५-६७।।

बढ़ती बौद्धिकता ने उन सब आधारों को मानने से इन्कार कर दिया, जिनमें विकार पैदा हो गये थे। यह ठीक भी था । परन्तु विकार तो सभी में पैदा हो गये थे, सब कुछ हटा देने पर मान्यता कहाँ टिके, ये समस्या आ गयी।

ईश्वर-मनुष्य को पूजा चढ़ाने के बदले मनचाही वस्तु देने वाला कोई भला आदमी भी नहीं हो सकता, ऐसे व्यक्ति को ईश्वर कैसे मान लें?

धर्म-धर्म ने वर्ग-भेद बढ़ाया, पक्षपात की आदत डाल दी, द्वेष भड़काया, ऐसे धर्म को अस्वीकार कर देने में किसी को संकोच क्यों हो?

परलोक-पुनर्जन्म किसी ने नहीं देखा है। कर्मफल तत्काल मिलते दीखते नहीं। प्रयोगशाला में तुरन्त परिणाम देखने की अभ्यस्त बुद्धि ने इन सबको भी झुठला दिया।

इसी प्रकार पुरानी मान्यतायें टूटती गयीं। नयी मान्यताओं के आधार बने नहीं। मानवी बुद्धि चकरा गयी, किस आधार पर अपने लिए मर्यादायें बनायें ? इस भ्रम ने सभी तरफ असन्तुलन बढ़ा दिया है। सभी इससे चिन्तित हैं। जब भी कभी ऐसी स्थिति आती है, मनुष्य को हानि उठानी पड़ती है।

आस्थाहीनसमाजस्य सद्गतिर्नैव संभवा ।
ईश्वरे परलोके च धर्मे कर्मफलेऽपि वा ।। ६८।।
आत्मन्यपि न चैवास्था नैतिके कर्मणीह चेत् ।
अस्यां स्थितावकर्तव्यं कर्तव्यं नैव विद्यते ।। ६९।।
स्वार्थे पशुत्व एवाऽपि नियन्ता नास्ति कश्चन ।
आत्मीयत्वं सदाचारं नीतिं प्रोत्साहयेच्च कः ।। ७०।।
अनास्था वर्द्धते यस्मात्क्रमांत्तस्माद्धि निश्चितम् ।
आदर्शवादिता पूर्ण भ्रष्टतां याति सर्वतः ।। ७१।।

टीका- आस्थाहीन समाज की सद्गति सम्भव नहीं। ईश्वर, धर्म, कर्मफल, परलोक आत्मा, नैतिकता किसी पर आस्था नहीं, ऐसे में न कुछ कर्तव्य है और न अकर्तव्य। स्वार्थ-पशुता पर अंकुश लगाने वाला कोई नहीं। आत्मीयता, नीति-सदाचार को प्रोत्साहन कहाँ से मिले? जैसे-जैसे अनास्था बढ़ती है, आदर्शवादिता तहस-नहस होती जाती है ।। ६८-७१।।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह ऐसे कार्य में ही रुचि लेता है, जिस की हानि से उसकी रक्षा हो सके अथवा निश्चित लाभ का विश्वास हो सके। ईश्वर, धर्म,कर्मफल, आत्मा, परमात्मा के प्रति आस्था होने पर मनुष्य को नैतिक-आदर्शनिष्ठ जीवन में लाभ और उच्छृंखल जीवन में हानि दीखने लगती है। वे सारे आधार छूट जाने से उसे नैतिक मर्यादा में हानि तथा उच्छृंखलता में लाभ दीखने लगता है। यह भारी भ्रम है। किन्तु इस भ्रम का निवारण आस्था के सुदृढ़ आधार बनाये बिना हो भी तो नहीं सकता। इतिहास साक्षी है कि आदर्शवादिता के बिना समाज की गति नहीं तथा आस्था के बिना आदर्शवादिता का निर्वाह सम्भव नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आदर्शहीन सिद्धान्तहीनं यद्यच्च जीवनम् ।
प्रवृत्तय: सापराधा: सविलासा: क्षणादिव ।।७२।।
झञ्झावात इव प्रायो दृश्यन्तें वृद्धिमागता: ।
अनास्था विद्यते नूनं लोके भीमतरोऽसुर: ।।७३।।
रूपं किमपि नैवास्य स्थानं नैवाऽपि निश्चितम् ।
प्रत्येकस्य जनस्यायं प्रविष्टश्चिन्तनेऽभित: ।।७४।।

टीका- आदर्शहीन-सिद्धान्तहीन जीवन, विलासी और अपराधी प्रवृत्तियों को प्राय: आँधी-तूफान की तरह बढ़ते देखा जा सकता है। अनास्था भीषणतम असुर है। इसका कोई रूप नहीं, कोई निश्चित स्थान नहीं। वह जन-जन के चिन्तन में घुसा बैठा है ।। ७२-७४ ।।

अपराध पहले भी होते थे। उनके कारण होते थे, आवश्यकताएँ अथवा प्रतिष्ठा के प्रश्न। पर इन दिनों अपराधों की बाढ़ आ गयी है। अपराधों में अधिकांश विलासिता के लिए अथवा किन्हीं निकृष्ट उद्देश्यों के लिए मनमानी करने के लिए होते पाये गये हैं। मोटे सर्वेक्षण इस प्रकार हैं :-

आतंक फैलाने के लिए बिलकुल बेगुनाहों को मार डालने के प्रकरण भारत में ही नहीं विश्व स्तर पर चिन्ता के विषय बन गये हैं। हृदयहीनता की यह सीमा कल्पना के बाहर है। विगत कुछ वर्षों में बलात्कारों के आँकड़े दहलाने वाले हैं। सामूहिक बलात्कार तो अपराधों के इतिहास में नयी सनसनी है। निर्लज्जता इस सीमा तक भी जा सकती है, किसी ने सोचा भी न होगा।

चिकित्सा विभाग तथा सुरक्षा विभाग के व्यक्तियों का अपराधियों में शामिल होना ऐसी घटना है, जिसके आधार पर असुरक्षा का भय चरम सीमा को छूने लगा है।

खाद्य वस्तुओं में मिलावट पहले निरर्थक, हानिहीन पदार्थों की ही होती थी। अब आकर्षक रूप देने के लिए हानिकारक और जहरीले पदार्थ मिलाने में भी झिझक नहीं रह गयी है। ओषधियों में भी जानलेवा पदार्थों की मिलावट के प्रकरण देख कर लगता है, मनुष्य पर कौन सा पिशाच हावी है ?

यह सब अपराध अनास्थाजनित ही है। यही इस युग का असुर है, जो ढेरों असुरों के समान विप्लवकारी सिद्ध हो रहा है।

विद्यमानेऽसुरे चास्मिन् नहि सन्तुलनस्य तु ।
प्रयासा: सफला: क्वापि संभवन्ति कदाचन ।।७५।।
प्रयासास्ते च जायन्ते सिकताभीतिदुर्बला: ।
स्थूलैर्यत्नैर्न नष्ट: स्याज्जनचैतन्यगोऽसुर: ।।७६।।
प्रखरादर्शनिष्ठश्च प्रवाहो जनचिन्तने ।
तदर्थं कार्यं आधारो देयो नव्य: क्षमश्च य: ।।७७।।
एतदर्थं च विज्ञानं भौतिकं नोपचारताम् ।
याति केवलमध्यात्मप्रयोगस्तु परिष्कृत: ।।७८।।
महतं चेद्दशानां तु विद्यते देवसंस्कृतौ ।
उपचारप्रयोगानां क्षमता अतुला इह ।।७९।।

टीका- इसके रहते सन्तुलन लाने के प्रयास सफल नहीं हो सकते। वे बालू की दीवाल की तरह नाकाम होते रहते हैं। जन चेतना में घुस बैठे इस महा असुर को स्थूल प्रयासों से नष्ट नहीं किया जा सकता। उसके लिए जन चिन्तन में प्रखर आदर्श-निष्ठ प्रवाह पैदा करना होगा। आस्था के नये सशक्त आधार देने होंगे। इस उद्देश्य के लिए भौतिक विज्ञान नहीं, अध्यात्म विज्ञान का परिमार्जित प्रयोग ही एक मात्र उपचार है। देवसंस्कृति में ऐसे महान् उपचार प्रयोग करने की अद्वितीय क्षमता रही है ।। ७५-७९ ।।

आजकल समस्याओं के समाधान के लिए पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास भी भारी मात्रा में हो रहे हैं। परन्तु वे सब प्रयास फलित नहीं हो रहे हैं। एक तरफ बात सम्हलती है, तो चार जगह बिगड़ने लगती है। जाति,भाषा, प्रांत और राष्ट्रीय सद्भावना बढ़ाने के प्रयास न जाने किस गर्त में विलीन हो जाते हैं? अणु-आयुधों की दौड़ के समझौते केवल मखौल बनकर रह जाते हैं। नशा, दहेज, भिक्षा-व्यवसाय आदि रोकने के प्रयास शेखचिल्ली के सपने देखकर रह जाते हैं। कारण एक ही है, समस्या के मूल स्रोत तक प्रहार नहीं होने पा रहा है।

मुनयो नूनमद्यैतत्स्वरूपं देवसंस्कृते: ।
अस्तव्यस्तमिव प्रायो जातं तत्पुरातनम् ।।८०।।
तत्राधुना जनै: सर्वैर्दृश्यते नैकरूपता ।
यथाऽन्धा हस्तिन: किञ्चिदंगं प्राप्य तथैवकम् ।।८१।।
निश्चिन्वन्ति तथा धर्मो जीर्णतयाश्च विकृते: ।
विभाजितत्वहेतोश्चाऽनास्थया स उपेक्षित: ।।८२।।
विवेकिनो नरास्तेनाऽसन्तोषाऽक्रोशपूरिता: ।
दृश्यन्तेऽत्र तथाप्यत्र किञ्चिच्चिन्त्यंन मन्यताम् ।।८३।।
दुर्गतिं वर्तमानां तु वारयिष्यति चान्तत: ।
महाकाल: समग्रं च परिशोधितुमेव स: ।।८४।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञाभियानमत्युग्रं चालयिष्यति ता: स्थिती:।
विधास्यति स्वतो नूनं विपरीता बुधा ऋजू: ।।८५।।

टीका- महर्षि कात्यायन पुन: बोले - हे मननशील मुनिजनो ! इन दिनों देवसंस्कृति का पुरातन स्वरूप अस्त-व्यस्त हो गया है। उसकी एकरूपता नहीं रही। अन्धे जिस प्रकार हाथी का जो अंग हाथ की पकड़ में आता है, उसी आकार का उसे मान बैठते हैं। इन दिनों विभाजित, विकृत एवं जराजीर्ण स्थिति बन जाने के कारण ही धर्म के प्रति उपेक्षा-अनास्था बढ़ रही है और विचारशीलों में असंतोष-आक्रोश उभर रहा है। इतने पर भी चिन्ता जैसी कोई बात नही है। महाकाल वर्तमान दुर्गति का निवारण करेंगे। इस समग्र-परिशोधन के लिए प्रज्ञा-अभियान का तूफानी दौर आरम्भ करेंगे। ऐसे प्रचण्ड परिवर्तन उलटी परिस्थितियों को उलट कर सीधी करते रहे हैं ।। ८०-८५।।

देवसंस्कृति हाथी जैसी ही विशाल है। दृष्टिहीन व्यक्ति टटोल कर उसका सही स्वरूप नहीं समझ पाते हैं। कोई उसे केवल भक्ति से, कोई केवल कर्म से, कोई केवल ज्ञान से सिद्ध करना चाहता है। कोई केवल उपासना से, कोई केवल शास्त्र चर्चा से, कोई केवल प्रार्थना से उसकी शक्ति जागृत करने की सोचते हैं। यह सब भ्रम हटाने होंगे। प्रज्ञा दृष्टि का जागरण करके संस्कृति का समग्र रूप समझना-समझाना होगा, तभी बात बनेगी।

सत्रे स्थितै: समैरेव ज्ञाता जिज्ञासुभि: स्वत:।
धर्मव्याजेन जातास्ते परिणामा अधर्मजा: ।।८६।।
सहैवात्र नियन्तुश्च व्यवस्था शोधनोन्मुखी ।
ज्ञाता सोपक्रमा नैषा चिरं स्थास्यति दुर्गति: ।।८७।।
विश्वस्तं तैरिदं भूय: परिवर्तनमन्तत: ।
भविष्यति तथा भूयो वातावरणमुत्तमम् ।।८८।।
आगन्ता निकटे काले यथा सत्ययुगे पुरा ।
विभीषिकास्तदा नैव द्रक्ष्यन्ते भुवि कुत्रचित् ।।८९।।

टीका- सत्र में उपस्थित जिज्ञासुओं ने धर्म के नाम पर प्रचलित अधर्म-आच्छादान के दुष्परिणामों को समझा। साथ ही नियन्ता की सुधार-व्यवस्था का उपक्रम भी समझा। उन्हें विश्वास हो गया कि वर्तमान दुर्गति अधिक समय न रहेगी। परिवर्तन होगा और पुरातन काल जैसा सतयुगी वातावरण निकट भविष्य में फिर वापिस लौटेगा । तब पृथ्वी में कहीं भी ये विभीषिकाएँ नहीं दीखेंगीं ।। ८६-८९।।

भविष्यत्युज्जवलं नृणामनया च शुभाशया ।
मुखपद्मानि सर्वेषां विकासमगमंस्तत: ।।९०।।
निराशा खिन्नता चैव गते दूरं क्षणात्तत:।
आश्वासनेन पूज्यस्य सत्राध्यक्षस्य सर्वत: ।।९१।।
सत्रं चाद्यतनं यातं समाप्तिं पूर्ववत्तत: ।
वातावृतो शुभायां च शान्तिपाठेन तत्र तत्।।९२।।
कृत्वा परस्परं सर्वे श्रोतारश्चाभिवन्दनम् ।
कुटीरान् स्वान् गता दिव्यसन्देशानन्दितो अथ।।९३।।

टीका- उज्ज्वल भविष्य की आशा से सभी के चेहरे कमल पुष्प जैसे खिलने लगे। खिन्नता और निराशा को सत्राध्यक्ष के आश्वासन ने दूर कर दिया। आज का सत्र गत दिवस की भाँति प्रसन्नता के वातावरण में समाप्त हुआ। शान्ति पाठ, अभिवन्दन के उपरान्त सभी अपने-अपने निवास-कुटीरों में चले गये। दिव्यसन्देश से सभी आनन्द अनुभव कर रहे थे।। ९०-९३।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे देवसंस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो:, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयो:, श्रीकात्यायन ऋषि प्रतिपादिते "आस्था संकट" इति प्रकरणो नाम ।। षष्ठोऽध्याय:।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

प्रज्ञावतार प्रकरण

सत्रस्यान्त्यभूदद्य दिनं जिज्ञासवः समे ।
सन्तुष्टा मुनयो लब्धैर्विचारैस्ते मनीषिणः ।। १।।
लब्धुं ततोऽधिकं चाद्य महत्त्वमहिता भृशम् ।
विचारसम्पदाकाले नियते ते समागताः ।। २।।
प्रश्नकर्त्ता मुनिश्रेष्ठोऽगस्त्यः पप्रच्छ सादरम् ।
लोककल्याणभावेन करुणः स महामनाः ।। ३।।

टीका- आज सत्र का अन्तिम दिन था। जिज्ञासु मुनि-मनीषियों को अब तक की उपलब्धियों पर बड़ा सन्तोष था। वे आज और भी अधिक महत्वपूर्ण विचार-सम्पदा उपलब्ध करने की आशा लेकर नियत समय पर उपस्थित हुये। प्रश्न कर्त्ता दयालु उदारात्मा ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य ने लोककल्याण भावना से पूछा।। १-३।।

अगस्त्य उवाच-

देव ! विकृतियो यास्तु सामान्याच्च विपन्नताः।
भवत्येव समाधानं तासां साधुजनोद्भवम् ।। ४।।
परं विभीषिका अत्र विषमास्ता अनेकशः ।
समायान्ति तथा यासां समाधानं न दृश्यते ।। ५।।
जायन्ते निष्फलाः सर्वे यत्नाः साधुजनैः कृताः।
विनाशो दृश्यते चाग्रे सर्वग्रासकरो महान् ।। ६।।
परिस्थितीर्विलोक्याद्य तेन देव प्रतीयते ।
खण्डप्रलयकालः किं समायातो भंयकरः ।। ७।।

टीका- अगस्त्य ने कहा- देव ! सामान्य विकृतियों और विपन्नताओं का निराकरण तो सुधारक महामानवों के प्रयत्नों से होते रहते हैं, परन्तु कई बार ऐसी विषम विभीषिकाएँ आ उपस्थित होती हैं, जिनमें कोई समाधान नहीं दीखता । सुधारकों के प्रयत्न विफल होने लगते हैं और सर्वनाशी विनाश सामने खड़ा दीखता है। देव ! इन दिनों की परिस्थितियाँ देखकर लगता है, खण्डप्रलय का भंयकर समय आ गया है।। ४-७।।

अनाचारैश्य मर्त्यानां रुष्टायाः प्रकृतेरिह ।
कोपो वर्षति भिन्नेषु रुपेष्वेव निरन्तरम् ।। ८।।
प्रातिकूलस्य चाऽस्यायं क्षुद्रस्तु पुरुषः कथम् ।
प्रतिकर्तुं समर्थः स्यादल्पज्ञश्चाल्पशक्तिकः ।। ९।।
विज्ञानवरदानं स्वदुष्प्रवृत्तेस्तु कारणात् ।
अभिशापं व्यधादेव सृष्टिनाशकरं परम् ।। १०।।
व्यक्तीनां च समाजस्य स्थितिष्वेतासु निश्चितम्।
विश्वस्याभूद् भविष्यत्तदन्धकारमयं ध्रुवम् ।। ११।।
देवसंकट एषोऽत्र निर्मिमिष्यति वा न वा ।
महाप्रलयकालो वा समायातोऽस्त्यकालिकः ।।१२।।
सत्राध्यक्षस्त्रिकालज्ञश्चिन्ता परतयाऽथ सः ।
कात्यायन उवाचैवं हितं वाक्यं महामुनिः ।।१३।।

टीका- मानवी अनाचार से रुष्ट प्रकृति के अनेकानेक प्रकोप बरसने लगे हैं। इस प्रतिकूलता का सामना अल्पज्ञ और अल्पशक्तिवाला क्षुद्र मनुष्य किस प्रकार कर सकेगा। उसने तो विज्ञान के वरदान तक को अपनी दुष्प्रवृत्तियों के कारण सृष्टि विनाशक अभिशाप जैसा बनाकर रख दिया है। इन परिस्थितियों में व्यक्तियों का-समाज का-विश्व का भविष्य अन्धकारमय ही दीख पड़ता है। हे देव ! बतायें कि यह संकट टलेगा भी या नहीं ? कहीं महाप्रलय का समय समीप तो नहीं आ गया। त्रिकालदर्शी सत्राध्यक्ष महामुनि कात्यायन भविष्य की चिन्ता से बोले-।। ८-१३।।

कात्यायन उवाच-

चित्रितात्वधुनैवात्र पूर्वतो या परिस्थितिः ।
महाभाग ! न सन्देहस्तस्यगंभीरता विधौ ।। १४।।
तथाप्यस्माभिरेषोऽत्र कार्यो विश्वास उत्तमः।
स्रष्टेमां तु धरित्रीं स्वां व्यधात्सर्वोत्तमां कृतिः।। १५।।
मनुष्यरचना सेयं विहिता ब्रह्मणेदृशी ।
दृश्यमानं स्वरूपं स स्रष्टुरित्येव मन्यताम् ।। १६।।
नियन्ता सहते नैव विनाशं कुत्रचित्प्रभुः ।
ईदृश्याः शोभनायाः स सृष्टे सृष्टिकरः स्वयम् ।। १७।।

टीका- कात्यायन ने कहा- हे महाभाग ! अभी परिस्थितियों का जो चित्रण किया गया है, उनकी गम्भीरता में तनिक भी सन्देह नहीं है, फिर भी हम सबको यह विश्वास करना चाहिये कि स्रष्टा ने इस धरती को अपनी सर्वोत्तम कलाकृति के रूप में रचा है। मनुष्य की संरचना ही ईस प्रकार की गई है, मानो वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्रष्टा का दृश्यमान स्वरूप ही हो। ऐसे सृजन को सृष्टि का कर्ता व नियन्ता प्रभु नष्ट नहीं होने दे सकते ।। १४-१७।।

ऋषि इस तथ्य से सहमत हैं कि स्थिति बहुत खराब है। मनुष्य उन्हें नियन्त्रित कर सकेगा ऐसा नहीं लगता। यह दृष्टि निराशा पैदा करती है। परन्तु एक दूसरी दृष्टि भी है। वह यह कि यदि यही परिस्थितियाँ रहीं तो मानवी सभ्यता नष्ट हो जायेगी। उसे भगवान नष्ट नहीं होने देंगे, ऐसा उनका आश्वासन है। अस्तु किसी दिव्य प्रवाह के प्रभाव से यह विषम परिस्थितियाँ ही समाप्त हो जायेंगी, यह सुनिश्चित है। एक शासन हटता दूसरा आता है तो उस मध्यकाल में कई प्रकार की उलट-पुलट होती देखी गई है। गर्भस्थ बालक जब छोटी उदरदरी से बाहर निकल कर सुविस्तृत विश्व में प्रवेश करता है तो माता को प्रसव सहनी पड़ती है और बच्चा जीवन मरण से जूझने वाला पुरुषार्थ करता है। प्रभात काल से पूर्व की घड़ियों में तमिस्रा चरम सीमा तक पहुँचती है। दीपक के बुझते समय बाती का उछलना, फुदकना देखते ही बनता है। मरणासन्न की साँसे इतनी तेजी से चलती हैं, मानो वह निरोग और बलिष्ठ बनने जा रहा हो। चींटी के जब अन्तिम दिन आते हैं तब उसके पर उगते हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि परिवर्तन की घड़ियाँ असाधारण उलट-पुलट की होती हैं। उन दिनों अव्यवस्था फैलती असुविधा होती और कई बार संकट विग्रह की घटा भी घुमड़ती है। युग परिवर्तन की इस सन्धि बेला में भी ऐसा ही हो रहा है।

अवशाश्च मनुष्यस्य जायन्ते स्थितयो यदा ।
व्यवस्था सूत्रधारत्वं स्रष्टागृहणाति तु स्वयम् ।। १८।।
व्यवस्थापयतीत्थं स येनालोकोदयो भवेत् ।
अन्धकारेऽवतारस्य प्रक्रियेयं तु विद्यते ।। १९।।
जना आश्वासिताः सर्वे दृढं भगवता स्वयम् ।
धर्मग्लानावधर्मस्याभ्युत्थानेऽत्रावतराम्यहम् ।। २०।।
अनौचित्यमधर्मं च निराकर्तुं स्वयं प्रभुः ।
देवोऽत्रावतरत्येव काले विषमतां गते ।। २१।।
कार्यं यन्नभवेत् पूर्ण सामान्यैस्तु जनैरिह ।
समापयति सत्सर्वं स्वयं निर्धारणैः स्वकैः ।। २२।।
पुरातने च काले स भगवान् विश्वभावनः ।
अवातरत् स्थितावत्र विषमास्वामनेकशः ।। २३।।

टीका- मनुष्य के हाथ से जब परिस्थितियाँ बाहर चली जाती हैं, तो प्रवाह की बागडोर स्रष्टा स्वयं सँभालते हैं और ऐसी व्यवस्था बनाते हैं, जिससे अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न हो सके। यह अवतार की प्रक्रिया है। भगवान् ने इन लोकवासियों को आश्वासन दिया है कि धर्म की ग्लानि व अधर्म का उत्थान होने पर मैं पृथ्वी पर अवतार लेता हूँ। अधर्म का-अनौचित्य का निवारण करने के लिये विषम वेला में वे स्वयं प्रकट होते हैं और जो काम सामान्य जनों से सम्पन्न नहीं हो पाता, उसे अपने निर्धारणों द्वारा स्वयं पूर्ण करते हैं। पुरातन काल में ऐसी ही विषम परिस्थितियों में भगवान ने अनेकों बार अवतार लिये हैं।। १८-२३।।

व्यक्ति कितना ही समर्थ क्यों न हो वह शरीर तक सीमित रहने के कारण समीपवर्ती क्षेत्र में ही यथा शक्ति पुरुषार्थ कर सकता है। वातावरण बदलने, व्यापक परिस्थितियाँ सुधारने जैसे बड़े कामों के लिये सृष्टा को स्वयं लगाम सँभालनी पड़ती है। असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने की उसने प्रतिज्ञा भी की हुई है। जब धर्म से अधर्म का अनुपात बढ़ जाता है और सँभालना मानवी क्षमता से बाहर चला जाता है, तो उसे सँभालने की जिम्मेदारी स्रष्टा को ही सँभालनी पड़ती है।

अगस्त्य उवाच-

आदितो देव ! सृष्टेर्ये जाता अद्यावधि प्रभोः ।
अवतारा: समे वर्ण्या जिज्ञासा श्रोतुमस्ति नः ।।२४।।

सत्राध्यक्ष उवाच-

अवतारा: प्रभोर्दिव्यदर्शिर्भिदश वर्णिताः ।
लीलोद्देश्य स्वरूपाणि पुराणादिषु दृश्यताम् ।। २५।।

टीका- अगस्त्य ने कहा- हे देव ! सृष्टि के आदि से लेकर अब तक हुये भगवान के अवतारों का वर्णन करें, सुनने की जिज्ञासा हो रही है। सत्राध्यक्ष बोले- भगवान् के दश अवतारों का दिव्यदर्शियों ने वर्णन किया है। शास्त्रों-पुराणों में उनके स्वरूप, उद्देश्य और लीला-सन्दोहों का वर्णन है।। २४-२५।।

पुराणों में कहीं दस अवतार का वर्णन है, कहीं चौबीस का। जहाँ चौबीस का उल्लेख है, वहाँ उसे गायत्री के चौबीस अक्षरों की ओर, चौबीस शक्तियों की ओर किया गया संकेत समझा जाना चाहिये। दत्तात्रेय के चौबीस गुरु दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में यही है। चौबीस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ऋषि-चौबीस देवता-ज्योतिर्लिंग-चौबीस शक्ति पीठें, इसी चौबीस अवतार प्रकरण के साथ जुडती हैं। उद्देश्य सबका एक ही है। अधर्म का नाश और धर्म का संस्थापन। प्रकारान्तर से यही कार्य सभी अवतारों ने अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुरूप अपने-अपने ढंग से किया है।

अवतारों को व्यक्ति नहीं, प्रवाह समझा जाना चाहिये। जो अदृश्य प्रेरणाओं और योजनाओं को लेकर धरती पर आते हैं और तत्कालीन आत्माओं को अपनी सहयोगी सहचर बनाने में समर्थ होते हैं।

पुराणों में दस अवतारों को प्रधान माना गया है। मनुष्य बिगाड़ तो कर लेता है; पर परिस्थिति काबू से बाहर हो जाने पर संभालना उसके वश की बात नहीं रहती। अग्निकाण्ड तो माचिस की एक तीली भी खड़ा कर देती है; पर उसे बुझाने के लिये फायर बिग्रेड बुलाने पड़ते हैं। किसी किले को विस्मार करने के लिये डायनामाइट का एक कारतूस भी पर्याप्त है, पर उसे नये सिरे से बनाने के लिये कुशल इन्जीनियर, अगणित श्रमिकों और प्रचुर साधन जुटाने में कोई वरिष्ठ ही समर्थ होते हैं। वनों की रगड़ से दावानल उत्पन्न हो जाता है, पर बुझाने के लिये वर्षा के बादल ही काम आते हैं। शासन की छोटी इकाइयाँ जब अपने काम ठीक तरह नहीं कर पातीं, तो उन्हें बरखास्त करके राष्ट्रपति शासन लगता है और सत्ता अपने हाथ में लेकर असंतुलन को संतुलन में बदला जाता है। विषम परिस्थितियों पर काबू पाने में जब मनुष्य की सामर्थ्य काम नहीं आती है, तो फिर उसे भगवान् के प्रेरित प्रवाह-अवतार ही काबू में लाते हैं। पागल हाथी की जैसी परिस्थितियों को काबू में लाने के लिये प्रेक्षित हण्टर मारकर ही उसे वशवर्ती करते हैं। अवतार को ऐसा ही कुछ समझा जा सकता है।

आद्यो मत्स्यावतारस्तु प्रास्तौषीद् बीजतस्तरोः।
निर्मितेरिव प्रामाण्यं बोधिताः सकला जनाः।। २६।।
साधनानि लघून्यत्रोद्देश्यैरूच्चगतैर्यदि ।
युज्यन्ते तानि गच्छन्ति स्वयमेवोच्चतामिह।। २७।।
सत्यव्रतस्य राजर्षेः कमण्डलुगतः स्वयम् ।
मत्स्यो वृद्धिं गतो जातः समुद्र इव विस्तृतः।। २८।।

टीका- प्रथम मत्स्यावतार हुआ, जिसने बीज से वृक्ष बनने जैसा उदाहरण प्रस्तुत किया और बताया कि छोटे साधन भी उच्च उद्देश्यों के साथ जुड़ने पर महान् हो जाते हैं। राजर्षि सत्यव्रत के कमण्डलु में रखी मछली, समुद्र जितनी सुविस्तृत हो गई थी।। २६-२८।।

अवतारो द्वितीयश्च कच्छपोऽभूत्स उत्तमः ।
श्रमसहयोगजं सर्वान् बोधयामास स्वं मतम् ।। २९।।
प्रेरयामास देवान् स दैत्यानपि पयोनिधिम्।
मथितुं तेभ्य एवायं श्रेयोऽयात्सकलं ततः ।। ३०।।
स्वयं चाऽप्रकटोभारं मन्दरस्यातुलं प्रभुः ।
उवाह पृष्ठे श्रेष्ठानां कर्मोक्तं भृतसहृदम् ।। ३१।।

टीका- द्वितीय कच्छप अवतार हुआ। उसने सहयोग और श्रम से सम्पदा होने का सिद्धान्त समझाया। देवता और असुरों को मिलजुल कर समुद्र-मन्थन के लिये उकसाया। श्रेय उन्हें दिया, स्वयं अप्रकट रह कर मन्दराचल का सारा भार अपनी पीठ पर उठाते रहे। प्राणिमात्र के प्रति हितैषी दृष्टि रखना श्रेष्ठों का कर्तव्य है।। २९-३१।।

अवतारस्तृतीयोऽभूद् वराहो युयुधे स्वयम् ।
हिरण्याक्षस्य दुर्धर्षप्रवृत्तया सञ्चयस्य यः ।। ३२।।
चकार शमनं पूर्णमाधिपत्यस्य तस्य सः ।
सुलभां सम्पदां चक्रे सर्वेभ्यः करुणापरः ।। ३३।।

टीका- तृतीय था वाराहावतार, जिसने हिरण्याक्ष की दुर्धर्ष संचय प्रवृत्ति से सीधा मल्लयुद्ध किया। आधिपत्य का शमन किया और धरती की सम्पदा सर्वसाधारण के लिये दयालु प्रभु ने सुलभ करायी।। ३२-३३।।

नरसिंहावतारश्च चतुर्थोऽभूत्पुपोष यः ।
सौहार्द्रं दुर्बले जाते तस्मिन् कालप्रभावतः ।। ३४।।
नीतिमत्ता प्रतीकं च प्रह्लादं संररक्ष यः ।
अन्ते महाबलं दैत्यं हिरण्यकशिपुं प्रभुः ।। ३५।।
हत्वा सत्पात्रमेनं च प्रह्लादं जनता प्रियम् ।
स्थाने निवेशयामास सत्पात्रं तस्य सन्ततिम् ।। ३६।।

टीका- चतुर्थ नृसिंह अवतार थे। जिनने काल के प्रभाव से सदाशयता के दुर्बल पड़ने पर उसका पुष्ट-पोषण किया। बार-बार नीति-मत्ता के प्रतीक पक्षधर प्रह्लाद को बचाया और अन्ततः महाबली हिरण्यकश्यपु का दमन करके उसके स्थान पर सत्पात्र प्रह्लाद को बिठाया।। ३४-३६।।

वामनः पञ्चमः प्रोक्तां सद्भावं जागृतं व्यधात्।
योऽसुराणां धनं लोकहिते दातुं शशाक च ।। ३७।।
केवलं दमनं नैव विधिः शासनसम्मतः ।
परिवर्तनमप्यस्ति चेतसो विधिरुत्तमः ।। ३८।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- पञ्चम अवतार वामन हैं। उन्होंने असुरों की प्रसुप्त सद्भावना जगाई और वैभव को जनहित में विसर्जन करने में सफलता पाई। बताया कि दमन ही नहीं हृदय परिवर्तन भी एक महत्वपूर्ण उपाय है।। ३७-३८।।

षष्ठ: परशुरामश्च विद्यते स्वीचकार य: ।
दुष्टतानाशसंकल्पं यतो नैव कदाचन ।। ३९।।
पिशाचतां गतालोका: पशवो नैव शिक्षया ।
क्षमयाऽहि विनेतुं च शक्यास्तेन हता: समे ।। ४०।।
वधेनैव तदा तादृग् युग: संस्कृर्तुमिष्यते ।
परशुना प्रचण्डेन चकारेदमनेकश: ।। ४१।।

टीका- छठा अवतार परशुराम है। उन्होंने दुष्टता के दमन का संकल्प लिया था। पशु और पिशाच वर्ग के लोगों को न विनय से सुधारा जा सकता है, न शिक्षा क्षमा से, इसी से उनका वध किया। प्रताड़ना व वध ही ऐसे युग को सुधार पाते हैं। यही भगवान् परशुराम ने अपने प्रचण्ड परशु का अनेक बार प्रयोग करके कर दिखाया।। ३९-४१।।

सप्तमो राम उक्तश्चावतारो लोक उच्यते ।
जनै: श्रद्धायुतै: सर्वैर्मर्यादापुरुषोत्तम: ।। ४२।।
कष्टानि सहमानोऽपि व्यतिचक्राम नो मनाक्।
मर्यादानिरतोऽभूच्च धर्मस्य प्रतिपादने ।। ४३।।
मूर्तिमान् धर्म एवायमुच्यते पुरुषो जनै: ।
एकपत्नीव्रती सर्वभूतात्मा वेदशासित: ।। ४४।।

टीका- सातवाँ अवतार राम है, जिन्हें श्रद्धालु जनों द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। उन्होंने स्वयं कष्ट सहे; किन्तु मर्यादाओं का व्यतिक्रम नहीं किया। धर्मधारणा के प्रतिपादन में निरत रहे। उन्हें सजीव धर्म पुरुष कहा जाता है। वह वेदनाकूल चरित्रवाले, प्राणी-मात्र के हितैषी एक पत्नीव्रती थे।। ४२-४४।।

कृष्ण एवाष्टम: पूर्णोऽवतारो विद्यते स्वयम्।
दूरीकर्तुमनीतीर्यश्चातुर्यस्य तथैव च ।। ४५।।
सर्वप्रकारकस्योक्त: कौशलस्यायमुत्तम: ।
नीतिनिर्धारको लक्ष्ये पवित्रे स्थितिरूपत: ।। ४६।।
परिवर्तनमप्येष स्वीचकारोच्यते जनै: ।
नीतिज्ञो यो व्यधान्नीतिं लक्ष्यगां न क्रियागताम् ।। ४७।।

टीका- आठवाँ अवतार कृष्ण का है, जिन्हें अनीति को निरस्त करने के लिये चातुर्य और सर्वविध कौशल का नीति-निर्धारक कहा जाता है। लक्ष्य पवित्र होने पर वे परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार बदलने पर विश्वास करते थे। उन्होंने नीति को क्रिया के साथ नहीं, लक्ष्य के साथ जोड़ा । वे नीति-पुरुष कहलाये।।४५-४७।।

बुद्धवतारो नवमो बुद्धिं धर्ममथापि च ।
संघं प्रधानरूपेण स्वीचक्रे जनमंगलम् ।। ४८।।
तप: पौरुषशक्त्या स संघमुच्चात्मनां नृणाम्।
व्यधाद् भूयश्च तान् सर्वान् प्रेषयामासभूतले।। ४९।।
जनान् प्रशिक्षितान् कर्तुमालोकं दातुमुत्तमम्।
काले तस्मिंस्तदैवाभूद् वसुधा मंगलोदिता।। ५०।।
काले व्यक्तिषु तत्रैवं बहुप्रचलनेष्वपि ।
परिवर्तनमाधातुं साफल्यं प्राप सोऽद्भुतम्।। ५१।।
अतएवोच्यते बुद्धे र्देवता बुद्ध उत्तमै: ।
रोगशोकजराजीर्ण जगद्वीक्ष्याद्रवच्च य: ।।५२।।

टीका- नवें बुद्धावतार थे। उन्होंने जनहित में बुद्धि, धर्म और संघ को प्रधानता दी। तप और पुरुषार्थ किया। उच्च आत्माओं का समुदाय समेटा उसे प्रशिक्षित करने और आलोक वितरण के लिये विश्व के कोने-कोने में भेजा। इसी से उस समय पृथ्वी मंगलमयी बन पाई। समय को, व्यक्तियों को और प्रचलनों को बदलने में भारी सफलता पाई। इसीलिये श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा उन्हें बुद्धि का देवता कहा जाता है, रोग-शोक व वृद्धता से जर्जर विश्व को देखकर जिनका हृदय करुणा से द्रवित हो गया था।। ४८-५२।।

प्रज्ञावतारो कल्किश्च निष्कलंकोऽपि वा पुन:।
दशमोऽयं च लोकेऽस्मिन्नवतारस्तु विद्यते ।।५३।।
अस्यावतरणस्याद्य भूमिका काल आगत: ।
आगते युगसन्धेश्च प्रभाते शुभपर्वणि ।। ५४।।
महाप्रज्ञेति रूपे च साद्यशक्तिरनुत्तमा ।
गायत्री केवलं लोके युगशक्तिर्भविष्यति ।। ५५।।

टीका- दशवाँ अवतार प्रज्ञावतार है, जिन्हें निष्कलंक (कल्कि) भी कहा गया है। इसके अवतरण की भूमिका का ठीक यही समय है। युग सन्धि के इस प्रभात पर्व पर, महाप्रज्ञा के रूप में आद्य शक्ति गायत्री ही अब युग शक्ति बनने जा रही है।। ५३-५५।।

"अब दसवाँ निष्कलंक अवतार इन दिनों हो रहा है अथवा यों कहना चाहिये कि हो चुका है। यह एक ऐसा भावना-प्रवाह है जिसका उद्देश्य हजारों वर्षों की कलंक कालिमा को धोकर मानवता का मुख उज्ज्वल करना है। अवतार तो एक शक्ति, एक चेतना और एक प्रवाह है, जिसका प्रभाव सारे वातावरण को झकझोरता और झिंझोड़ता है। लोक-मानस भी उससे अप्रभावित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहीं रह जाता। उस प्रभाव के परिणाम स्वरूप अवांछनीयता की जड़ें खोखली होने लगतीं और औचित्य की स्थिति दिनों दिन सुदृढ़ होती चली जाती है। पौराणिक भाषा में उनका नाम है निष्कलंक क्योंकि वह हमारी पिछली तथा वर्तमान दुष्प्रवृत्तियों, कलंकों को धोने आ रहा है, उसके द्वारा ऐसा भावनात्मक-प्रवाह उत्पन्न किया जा रहा है, जिससे लोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समस्याओं में उलझे रहने की बजाय खुशी से लोकमंगल सम्बन्धी कार्यों के लिये कटिबद्ध होगें। इसके लिये बढ़-चढ़ कर तप-त्याग करने में भी संकोच न करेंगे। कल्कि अवतार का यह प्रयत्न प्रेरणा- प्रवाह हम अपने चारों ओर प्रवाहित होते हुये इस समय भी आसानी से देख और अनुभव कर सकते हैं।

अपने युग का प्रधान संकट आस्था संकट है। आस्थाएँ चेतना से सम्बन्धित हैं। अत: अवतार का प्रधान कार्य क्षेत्र भी चेतना का ही होगा। उसी से विचार धाराएँ, मान्यताएँ और आकांक्षाएँ उखाड़ी तथा जमाई जायेंगीं। इसके स्वरूप-प्रारूप का निर्धारण हो चुका है। गायत्री महामन्त्र में उन सभी तथ्यों का समावेश है, जो सद्भाव सम्पन्न आस्थाओं के निर्धारण एवं अभिवर्धन का प्रयोजन पूरा कर सकें। व्यक्ति का चरित्र, चिन्तन और समाज का विधान प्रचलन क्या होना चाहिये? इसका ऐसा सुनिश्चित निर्धारण इस महामन्त्र में विद्यमान हैं, जिसे सार्वभौम और सर्वजनीन ही कहना चाहिये। अत: तदनुरूप अपने समय का दशवाँ अवतार युग शक्ति गायत्री का है। गायत्री में प्रज्ञा और प्रखरता के दोनों तत्व भरे होने से उसमें सृजनात्मक शक्ति और ध्वशांत्मक शक्ति दोनों का समावेश है। गायत्री मन्त्र में सब कुछ *विद्यमान* है। उसके २४ अक्षरों में बीज रूप से मान्यताओं, संवेदनाओं और प्रेरणाओं का सुनियोजित तारतम्य विद्यमान है। युग परिवर्तन के लिये लोकमानस को उच्चस्तरीय बनाने के लिये इस अवलम्बन के अतिरिक्त ऐसा कोई कारगर उपाय नहीं खोजा जा सकता जो मनुष्य में देवोपम आस्थाएँ जगाने, प्रेरणाएँ उगाने और सक्रियता अपनाने के लिये अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचा सके।

युग शक्ति गायत्री की अवतरण परम्परा में सर्वप्रथम वेदमाता स्वरूप ब्रह्माजी के माध्यम से प्रकट हुआ। भगवती के सात अवतार, सात व्याहृतियों के रूप में प्रकट हुये जो सात ऋषियों के रूप में प्रख्यात हुये। युग परिवर्तन का नवम् अवतार अब से पिछली बार विश्वामित्र के रूप में हुआ। प्रस्तुत गायत्री मंत्र के विनियोग उद्घोष में गायत्री छन्द-सविता देवता-विश्वामित्र ऋषि का उल्लेख होता है। अस्तु अब तक के युग में विश्वामित्र ही नवम् अवतार हैं। ब्रह्माजी के माध्यम से वेदमाता का-सप्त ऋषियों के माध्यम से देवमाता का-विश्वामित्र के माध्यम से विश्वमाता का अवतरण हो चुका। नौ अवतरण पूरे हुये। दशवाँ अपने समय का अवतार युग आद्य शक्ति गायत्री का है। अन्धकार युग के निराकरण और उज्ज्वल भविष्य का शुभारम्भ इसी दिव्य अवतरण के साथ प्रादुर्भूत होते हुये हम सब अपने इन्हीं चर्म चक्षुओं से प्रत्यक्ष देख रहे हैं, युग समस्याओं के समाधान में यही प्रज्ञावतार महती और सफल भूमिका सम्पन्न कर सकेगा। यह इतना निश्चित है कि इसमें राई-रत्ती भर भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

अवतारस्तु ये पूर्वं जातास्तेषां युगे त्विह ।
समस्या: स्थानगाजाता उत व्यक्तिगता अपि ।। ५६ ।।
इदानीं व्यापकास्ताश्च जनमानससंगता: ।
क्षेत्रं प्रज्ञावतारस्य व्यापकं विद्यते तत: ।। ५७ ।।
प्रज्ञावतार एषोऽत्र स्वरूपाद् व्यापको मत: ।
सूक्ष्मं युगान्तरायाश्च चेतनाया: स्वरूपत: ।। ५८ ।।
तस्यानुकूलमेवात्र चिन्तनं स्याद् विनिर्मितम् ।
नाकृतिस्तस्यकाऽपिस्यात्परं तस्योत्तमोत्तमा: ।। ५९ ।।
प्रेरणा: संवहन्तस्तेऽसंख्या: प्रज्ञासुता: स्वत: ।
कार्यक्षेत्रे गमिष्यन्ति तेनागन्ता सुचेतना ।। ६० ।।
कले: पूर्वार्ध एवायमुत्तरार्धश्च मन्यताम् ।
बुद्धस्य रूद्धकार्यस्यावतारो बौद्धिको महान् ।। ६१ ।।
प्रज्ञापरिजनानां स विशालो देवसंघक: ।
कालोदेश्यात्समस्यास्ता समाधास्यन्ति सत्वरम् ।। ६२ ।।

टीका- पिछले अवतारों के समय समस्याएँ स्थानीय और व्यक्ति प्रधान थीं। अब की बार ये व्यापक और जन-मानस में संव्याप्त हैं। इसीलिये प्रज्ञावतार का कार्य क्षेत्र अधिक व्यापक है। प्रज्ञावतार का स्वरूप व्यापक होने के कारण युगान्तरीय चेतना के रूप में सूक्ष्म होगा और तदनुसार ही चिन्तन विनिर्मित होगा। उसकी अपनी कोई आकृति न होगी, पर उसकी उत्तमोत्तम प्रेरणाओं का परिवहन करते हुये असंख्य प्रज्ञापुत्र कार्यक्षेत्र में उतरेगे, जिससे नयी चेतना जगेगी। प्रज्ञावतार कल्कि का पूर्वार्ध, व अधूरे छूटे बुद्ध

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के कार्यों का पूरक है। अत: बुद्ध का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है। यह विचारों की क्रान्ति का महान बौद्धिक अवतार है। प्रज्ञा-परिजनों का विशालकाय देव समुदाय महाकाल का वह उद्देश्य पूरा करेगा, जिससे युग समस्याओं का समाधान हो सके।। ५६-६२।।

यथा प्राभातिके जाते ऋषयोऽत्रारुणोदये ।
अन्धकारोऽथ संव्याप्तोऽपैति दूरं तथैव तु ।। ६३।।
समस्यास्ता: विकाराश्च विपदो वा विभीषिका:।
समाहिता: स्वत: स्युस्ता: प्रज्ञावतरणे भुवि ।। ६४।।
चिन्ता नैव विधातव्या निराशा नोचिता मता।
नाशयिष्यतिनोपृथ्वीं स्रष्टास्वां कृतिमुत्तमाम्।।६५।।
विपद्विभीषिकाभिस्तु समस्याभिश्च पूरिते ।
समये भूमिकां कां स भगवान् संविधास्यति ।। ६६।।
ज्ञात्वेदं मोदमायाता जना: सत्रगता: समे ।
प्रज्ञावतारसम्बन्धे ज्ञातुं जाता: समुत्सुका:।। ६७।।

टीका- हे ऋषिगण ! जिस प्रकार प्रभात का अरुणोदय होते ही संव्याप्त अन्धकार का निराकरण सहज हो जाता है, उसी प्रकार प्रस्तुत समस्याओं, विपत्तियों, विकृतियों एवं विभीषिकाओं का समाधान प्रज्ञावतार के अवतरण से सहज ही सम्भव हो सकेगा। हमें निराश होने की या चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जिस स्रष्टा ने इस भूलोक की अनुपम कलाकृति विनिर्मित की है, वह उसे नष्ट न होने देगा। समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं से भी वर्तमान विषम वेला में भगवान के अवतार की क्या भूमिका होगी-यह जानकर सत्र में उपस्थित जनों में सभी को बहुत प्रसन्नता हुई। वे प्रज्ञावतार के सम्बन्ध में अधिक कुछ जानने को उत्सुक हो उठे।। ६३-६७।।

विभीषिकायें देखकर लगता है कि न जाने क्या होगा; परन्तु यह विभीषिकायें भटकते मानव को गलत मार्ग से विरत करने के लिये रचे गये दण्ड हैं। बच्चे जब बहुत शरारत करते हैं, साधारण समझाने बुझाने से नहीं मानते, तो अध्यापकों को उन्हें दूसरी तरह सबक सिखाना पड़ता है। माता-पिता भी ऐसे अवसरों पर बच्चों के साथ कड़ाई से पेश आते हैं और कई बार वह कड़ाई ऐसी कठोर होती है, जो बहुत समय तक याद रहती है कि वैसी शरारत फिर न करें।

कात्यायन उवाच-

आद्या ये त्ववतारा: षट् सामान्यासु तथैव च।
सीमितासु स्थितिष्वेव बभूवुस्ते समेऽपि तु ।। ६८।।
रामावतारो: य प्रोक्त: सप्तमो योऽष्टमश्च स:।
कृष्णावतार: कालेऽस्मिन् द्वयोरेव तयोरलम् ।। ६९।।
लोकशिक्षणलीलाया सन्दोहो भविता भुवि ।
कार्यान्वितो जगत् स्याच्च येन सन्मंगलं पुन: ।।७०।।
समस्यानां समाधाने प्रसंगेषु बहुष्विह ।
नीतीनामुपयोगोऽथ रीतीनां च भविष्यति।। ७१।।
बुद्धावतार आख्यातो नवमो य: पुरा मया ।
पूर्वार्द्धस्तस्य सम्पन्न: शेषोऽयमिति मन्यताम् ।।७२।।
अपूर्णं कार्यमेकस्य द्वितीय: पूरयिष्यति ।
द्वयोर्निधारणोष्वत्र समता च क्रियास्वपि ।। ७३।।
उत्तरार्धोऽयमेवास्य कलेर्दोषान् विधास्यति ।
जीर्णाच्छनै: शनैर्येन मर्त्य: स्याद् देवतोपम: ।। ७४।।
कालखण्डोऽयमत्रैवं भूमिकां संविधास्यति ।
कृतस्यास्य युगस्यालं देवप्रेरणया स्वत: ।। ७५।।

टीका- महर्षि कात्यायन ने कहा-प्रथम छ: अवतार सामान्य एवं सीमित परिस्थितियों में उत्पन्न हुये थे। सातवाँ राम का और आठवाँ कृष्ण का अवतार ऐसा है, जिसका लोक शिक्षण, लीलासन्दोह प्रज्ञावतार काल में, बहुत अंश में कार्यान्वित होगा, जिससे एक बार फिर सारा जगत् मंगलमय बन जायेगा। समस्याओं के समाधान में उन रीति-नीतियों का अनेक प्रसंगों में उपयोग किया जायेगा। नवम् बुद्धावतार को पूर्वार्ध और दशम प्रज्ञावतार को उत्तरार्द्ध समझा जा सकता है। एक का अधूरा कार्य दूसरे के द्वारा सम्पन्न होगा। दोनों के निर्धारणों एवं क्रिया-कलापों में बहुत कुछ समता रहेगी। यह उत्तरार्द्ध ही कलियुग के कारण उत्पन्न दोषों को जर्जर करता जायेगा; परिणामस्वरूप मानवमात्र देवोपम बनेगा। इस प्रकार यह काल-खण्ड भगवान् की प्रेरणा से स्वयं सतयुगी की भूमिका पूरी करेगा।। ६८-७५।।

महाभारत के अवतार प्रकरण के अन्त में भगवान कल्कि का परिचय देते हुये महाभारतकार ने कहा है-

कल्कि विष्णुयशसा नाम भूयश्चोत्पस्स्यते हरि:।
कलेर्युगान्ते सम्प्राप्ते धर्मे शिथिलतां गते ।।
पाखण्डिनां गणानां हि वधार्थं भरतर्षभ: ।
धर्मस्य विवृद्धयर्थं विप्राणां हितकाम्यया ।।

"कलियुग के अन्त में जब धर्म में अधिक शिथिलता आने लगेगी तो उस समय भगवान श्रीहरि पाखण्डियों को निर्मूल करने, धर्म की वृद्धि और सच्चे ब्राह्मणों की हित-कामना से पुन: अवतार लेंगे। उनके उस अवतार को 'कल्कि विष्णु यशा' कहा जायेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्विजाति पूर्वका लोक: क्रमेण प्रभविष्यति ।
दैव: कालान्तरेऽन्यस्मिन्पुनर्लोक विवृद्धये ।।

--महाभारत

अर्थात्-युग परिवर्तन के इस सन्धिकाल में द्विजत्व संस्कार सम्पन्न आदर्शवादी व्यक्तियों का उत्थान होगा, और भगवान फिर से संसार को सुख समुन्नति की ओर अग्रसर करेंगे।

तत्वदर्शी भविष्यवक्ताओं का भी ऐसा ही मत है:-

उद्देश्यत्रयमेवाह भगवान बुद्ध आत्मन: ।
बुद्धंशरणमायामि धर्म संघं तथैव च ।। ७६।।
निर्धारणानि त्रीण्येव कर्ताकर्मान्वितानि तु ।
बौद्धिके नैतिके क्रान्तिविधौ सामाजिकेऽपिच।।७७।।
संघारामास्तु बुद्धस्य धर्मचक्रप्रवर्तने ।
नालन्दाद्यास्तथा तक्षशिलाद्या: स्थापिता इह।।७८।।
प्रेषिताश्च ततो देशे तथा देशान्तरेष्वपि ।
लक्षाधिका: परिव्राज: सुसंस्कारा: प्रशिक्षिता:।।७९।।
उपक्रम: स एवात्र प्रज्ञापीठैस्तथैव च ।
प्रज्ञापुत्रै: सुसम्पन्न इदानीं संविधास्यते ।। ८०।।
यदपूर्ण तदाकार्यं तदेवाद्य विधास्यते ।
पूर्ण प्रज्ञावतारेण निष्कलंकेन सत्वरम् ।। ८१ ।।

टीका- भगवान् बुद्ध के तीन उद्देश्य थे-(१) बुद्धं शरणं गच्छामि (२) धर्मं शरणं गच्छामि (३) संघं शरणं गच्छामि। यही तीनों निर्धारण प्रज्ञावतार द्वारा बौद्धिक नैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति के रूप में कार्यान्वित किये जाने हैं। बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन में नालन्दा, तक्षशीला जैसे अनेकों संघाराम, विहार स्थापित किय गये और उनसे लाखों सुसंस्कृत परिव्राजक प्रशिक्षित करके देश-देशान्तरों में भेजे गये। प्राय: वही उपक्रम प्रज्ञापीठों और प्रज्ञा पुत्रों द्वारा अब सम्पन्न किया जायेगा। जो कार्य उन दिनों अधूरा रह गया था, वह निष्कलंक प्रज्ञावतार द्वारा पूर्ण होगा।। ७६-८१।।

व्यापकत्वान्निराकारो भविष्यत्येष शोभन: ।
प्रज्ञावतारो मर्त्यानां बुद्धे: सत्कर्मसु स्पृहा ।। ८२।।
यज्ञदानतप: स्वत्र: पावनेषु तु कर्मसु ।
बुद्धे: प्रवृत्तिरेवायमवतारो मतोऽतनु ।। ८३।।
प्रेरणां प्रतिनिध्यं स गायत्री यज्ञसंभवा ।
अग्ने: शिखेव तस्येयं शिखारक्ता करिष्यति।। ८४।।
कम्पमानै: सदा वृक्षपल्लवैर्ज्ञायते नरै: ।
झञ्झावातो यथादित्यकिरणा: पर्वतस्य तु ।। ८५।।
शिखरेष्वेव पूर्वं तु भ्राजमाना पतन्ति ते ।
तथा प्रज्ञावतारस्य झञ्झावातोपमस्य च ।। ८६।।
प्रवाहस्य तु संज्ञानं वायुपुत्रसमैरलम् ।
गुडाकेशोपमै: प्रज्ञापुत्रै: कार्यैर्विधास्यते ।। ८७।।
एतेषां च समेषां तु गतीनामादिमाश्रया: ।
प्रज्ञापीठा भविष्यन्ति तुलिता उदयाचलै:।। ८८।।
ज्ञानालोकं ये दिव्यं विधास्यन्ति जगत्यलम्।
येन भूयो नवा दिव्या चेतना प्रसरिष्यति ।। ८९।।

टीका- प्रज्ञावतार व्यापक होने से निराकार होगा। मनुष्यों की बुद्धि सत्कर्म में लगना यज्ञ-दान-तप जैसे पावन कर्मों में बुद्धि की प्रकृति हो जाना ही अशरीरी प्रज्ञावतार है। उसकी प्रेरणा-उसका प्रतिनिधित्व गायत्री यज्ञ की अग्नि शिखा का प्रतिरूप लाल मशाल करेगा। तूफान का परिचय हिलते वृक्ष पल्लवों से मिलता है। उदीयमान सूर्य की किरणें सर्वप्रथम पर्वत शिखरों पर चमकती हैं। उसी प्रकार प्रज्ञावतार के तूफानी प्रवाह का प्रमाण परिचय हनुमान, अर्जुन जैसे वरिष्ठ प्रज्ञा पुत्रों की गतिविधियों से मिलेगा। इनकी हलचल के केन्द्र प्रज्ञा-पीठ होंगे, जो उदयाचल के समान ज्ञानालोक का वितरण समस्त संसार में करेंगे, जिससे नई चेतना जागेगी।। ८२-८९।।

अवतारप्रसंगोऽयं ध्यानपूर्वकमेव तै: ।
उपस्थितैर्जनै: सर्वै: श्रुतं जिज्ञासुभिस्तदा ।। ९०।।
निरचिन्वन् समे पुण्यवेलायां पूर्णश्रद्धया ।
युगावतारजायां स्वान् विधास्याम: समर्पितान् ।।९१।।

टीका- अवतार प्रसंग को बहुत ध्यानपूर्वक सभी उपस्थित जिज्ञासुओं ने सुना। उनने निश्चय किया कि युग अवतार की इसी पुण्य वेला में वे पूरी श्रद्धा और निष्ठा के साथ अपने को समर्पित करेंगे।। ९०-९१।।

अन्त्य: सत्संग एषोऽत्र समाप्तश्च यथाविधि।
सप्तमस्य दिनस्यैवं सुखं याताश्च येन ते ।। ९२।।
भविष्यत्समये भूयो निकटे कुत्रचिद् वयम् ।
सुयोगमीदृशं नूनं प्राप्स्याम इति चेत्सुका: ।। ९३।।
साभिलाषा: समस्तास्ते मनुयोऽथ मनीषिण: ।
प्रतियाता: स्वत: स्वेषु कार्यक्षेत्रेषु हर्षिता: ।। ९४।।

टीका- सप्तम् दिन का अन्तिम सत्संग समाप्त हो गया, जिससे सभी सुख का अनुभव कर रहे थे। फिर कभी निकट भविष्य में ऐसा ही सुयोग मिलने की अभिलाषा लेकर सभी मुनि-मनीषी प्रसन्न होकर अपने-अपने कार्यक्षेत्र को वापस चले गये।। ९२-९४।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे देवसंस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो:, युगदर्शनयुगसाधनाप्रकटीकरणयो:,
श्रीकात्यायन ऋषि प्रतिपादिते "प्रज्ञावतार" इति प्रकरणो नाम
।। सप्तमोऽध्याय: ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंचम मण्डल

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

कर्म-व्यवस्था प्रकरण

सुमेरौ पर्वते प्राय ऋषीणां दिव्य चक्षुषाम् ।
मुनीनां समुदायः स भवत्येकत्रितः सदा ।। १।।
लोक कल्याण सद्भावभरितात्मन उत्तमाः ।
दिव्यवातावृतौ तत्र समस्यानां समाहितिम् ।। २।।
कालिकीनामन्विषन्ति विनिर्मान्ति भविष्यति ।
विश्वव्यवस्थितेश्चास्याः सुव्यवस्थादियोजनाः ।। ३।।
सतां समागमस्यास्य क्रमे तत्र स एकदा ।
वैशम्पायन आसक्तस्तत्वचर्चा विधविदम् ।। ४।।
रहस्यं श्रुतवान् दिव्यं कारणं यदभूत्स्वयम् ।
युगान्तरस्य चैतन्य रूपे सक्रियता विधेः ।। ५।।
अनन्तरं स सन्तोषमृषिः प्रकटयन् परम् ।
विनयपूर्वकमाहैनं मार्कण्डेयं महामुनिम् ।। ६।।

टीका- सुमेरु पर्वत पर प्रायः दिव्य ज्ञान सम्पन्न ऋषि- मुनियों का समुदाय सत्संग प्रयोजन हेतु एकत्रित होता रहता है। लोक कल्याण-भावना से अभिपूरित श्रेष्ठ ऋषि आत्माएँ दिव्य वातावरण में सामयिक समस्याओं के समाधान खोजतीं और भविष्य में विश्व व्यवस्था के सुसंचालन की योजनाएँ बनातीं । संत समागम के इस क्रम में एक बार तत्व चर्चा में संलग्न वैशम्पायन जी ने देवर्षि नारद का वह रहस्य सुना जो युगान्तरीय चेतना के रूप में सक्रिय होने के कारण था। अनन्तर उन्होंने सन्तोष व्यक्त करते हुये मार्कण्डेय जी से विनयपूर्वक पूछा।। १-६ ।।

वैशम्पायन उवाच-

ऋषिवर्य ! अनास्थाजाः सन्ति यास्तु विभीषिकाः ।
योजनानां तु दैवीनां तासां मध्ये क्रियान्विताः ।। ७।।
तत्प्रयासेतु सर्वेषां प्राप्ता वैचारिका भ्रमाः ।
व्यवहारे च काठिन्यमिति निश्चीयते मया ।। ८।।
किं कृतं तत्समाधातुं भवता करुणात्मना ।
अनुग्रह्यो जनोऽप्येष तस्य संकीर्तनेन तु ।। ९।।

टीका- वैशम्पायन बोले-हे ऋषिवर ! अनास्थाजन्य विभीषिकाओं के बीच दैवी योजना को क्रियान्वित करने के प्रयास में जन-जन के सामने अनेक प्रकार के वैचारिक भ्रम और व्यावहारिक कठिनाइयों का उभार आया होगा, ऐसा मेरा विचार है। उनके समाधान हेतु क्या किया गया ? हे दयालु ! कृपया उसका वर्णन कर मुझे अनुगृहित करें।। ७-९ ।।

प्रज्ञापुराण में ऋषिगणों के ज्ञान समागम की अनादि शृंखला समाहित है। उपरोक्त प्रसंग सर्वप्रथम इस श्रंखला के प्रथम खण्ड में नारद जी द्वारा आस्था संकट के संदर्भ में प्रस्तुत की गई उनकी जिज्ञासा के संदर्भ में आया है जब देवर्षि धरती पर युगान्तरीय चेतना की ज्ञानगंगा प्रवाहित करने का अनुरोध लेकर भगवान् विष्णु के पास पहुँचे थे। वैशम्पायन-मार्कण्डेय संवाद आस्था संकट अध्यात्मदर्शन की ज्ञान धारा के प्रवाह में व्यावहारिक अध्यात्म का दिशा निर्देशन करते हुये उन प्रसंगों पर प्रकाश डालता है, जिनके विवेचन से लाभान्वित हो जन सामान्य आत्मिक प्रगति की दिशा में आगे बढ़ सके, परस्पर विग्रह मिटाकर समष्टि की सेवा-साधना में स्वयं को नियोजित कर सके।

मार्कण्डेय उवाच-

भवतो लोक कल्याणे रुचिर्या गहनामुने ।
तयोपयोगि सूत्रं तत्प्राप्तं श्रृणु समाहितिम् ।। १०।।
स्थितयस्त्वागता एवमन्यमन्वन्तरेष्वपि ।
ऋषयस्तत्समाधातुं ज्ञानसत्रमयूयुजन् ।। ११।।
सूत्रं महत्वपूर्णं तच्छृणु यस्मिंस्तु चिन्तिताः ।
अध्यात्म ज्ञान संबद्धाः समस्या बहवो मृशम् ।। १२।।

टीका- महर्षि मार्कण्डेय ने कहा-हे महाभाग ! आपकी लोक कल्याण में जो गहरी अभिरुचि है, उसने बड़ा उपयोगी सूत्र खोजा है। इसका समाधान सुनें। ऐसी परिस्थितियाँ अन्य मन्वन्तरों में भी आ चुकी हैं। उनके समाधान के लिये ऋषियों द्वारा ज्ञान-सत्र आयोजित किये जाते रहे हैं। इस संदर्भ में एक अति महत्वपूर्ण सत्र, जिसमें अध्यात्म-विज्ञान के अनेकानेक पहलुओं पर चिन्तन हुआ था-आपको सुनाता हूँ।। १०-१२ ।।

महर्षिर्याज्ञवल्क्यस्य नेतृत्वे त्वेकदाऽभवत् ।
ज्ञानसत्रं महर्षीणां त्रिपुरारण्यके महत् ।। १३।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहस्राणि समायातान्यत्र सत्रे मनीषिणाम् ।
तत्वदर्शिनृणां ब्रह्मज्ञानां प्रज्ञानृणां तथा ।। १४ ।।
भद्रावत्यास्तु नद्यास्ते तरुणां वनशोभिनाम् ।
छायायां सघनायां तु निर्मिते रम्यकुञ्जके ।। १५ ।।
महर्षिणस्तु ते सर्वेऽगृह्णंस्तत्रासनानि तु ।
स्वस्तिवाचनमाचख्युः समूहे मंगलानि च ।। १६ ।।
भगवत्स्मरणान्ते च प्रसंगे निश्चिते तथा ।
क्रमश्चचाल तत्रान्ते प्रश्नोत्तरविधौ पुनः ।। १७ ।।
भरद्वाज ऋषिः पूर्वं जिज्ञासां प्रस्तुवन् स्वकाम् ।
सूत्रं सञ्चालकं याज्ञवल्क्यं पप्रच्छ सादरम् ।। १८ ।।

टीका- एक बार महर्षि याज्ञवल्क्य के नेतृत्व में ऋषि-मनीषियों का एक बड़ा ज्ञान-सत्र त्रिपुरारण्यक में सम्पन्न हुआ। उसमें हजारों प्रज्ञापुरुष, ब्रह्मचारी, तत्वदर्शी, ब्रह्मज्ञानी और महामनीषी एकत्रित हुये। भद्रावती नदी के तट पर वृक्षों की सघन छाया में बने सहस्र विशालकाय निकुंज में सभी मनीषियों ने अपने-अपने आसन ग्रहण किये। सामूहिक रूप से मंगलाचरण स्वस्तिवाचन का पाठ किया और भगवत् स्मरण के उपरान्त निर्धारित प्रसंग पर प्रश्नोत्तर चल पड़ा। ऋषि भारद्वाज ने प्रथम जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुये सत्र के सूत्र संचालक याज्ञवल्क्य जी से नम्रतापूर्वक पूछा-।। १३-१८ ।।

भरद्वाज उवाच-

भगवन् समदर्शी स परमात्मा तु प्राणिनः ।
क्षमताः सुविधाश्चावश्यकतारूपतो ददौ ।। १९ ।।
स्वभावात्तैरीश्वरस्य विधेश्चापि विरुद्धगाः ।
त्रुटयस्तुविधीयन्ते काले प्रतिक्रिया अपि ।। २० ।।
दृश्यते चेदमेवात्र श्रेष्ठेऽपेक्षतया नरैः ।
त्रुटि चाप्यधिकाः कुर्वन महापरिणतीः भवेत ।। २१ ।।
अल्पज्ञैस्तै कनिष्ठैश्च क्रियन्ते त्रुटयस्तु याः ।
ताः सम्भाव्या हि मन्यन्ते प्रमादाज्ञानसंभवा ।। २२ ।।
तस्या समर्थसत्तयाः तस्याः सहयोगिन एष तु ।
नरस्य व्यवहारो न मान्यो ब्रूहि रहोऽत्र किम् ।। २३ ।।

टीका- ऋषि भारद्वाज बोले-भगवन् ! समदर्शी परमात्मा ने प्राणिमात्र को उनकी आवश्यकता के अनुरूप क्षमताएँ व सुविधाएँ प्रदान की हैं। स्वभावतः उनसे ईश्वरीय अनुशासन के प्रतिकूल यदा-कदा भूलें भी होती रहती हैं। एवं उन कर्मों की प्रतिक्रियाएं भी होती रहती हैं। देखा यह जाता है कि मनुष्य जैसा वरिष्ठ प्राणी अपेक्षाकृत भूलें भी अधिक करता है एवं उसके परिणाम बड़े व्यापक होते हैं। अल्पज्ञ कनिष्ठों से त्रुटियाँ हों, तो यह समझ में भी आता है, चूँकि अज्ञान-प्रमाद उनसे सम्भव है; पर समर्थ सत्ता के सहयोगी मनुष्य का यह व्यवहार समझ में नहीं आता। कृपया इस रहस्य का उद्घाटन करें।। १९-२३ ।।

अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुये ऋषि ने यहाँ सृष्टि व्यापार संबंधी दो सत्यों का रहस्योद्घाटन किया है, साथ ही उनके आधार पर अपनी तथ्यान्वेषी बुद्धि से कुछ प्रश्न भी उठाये हैं।

वे कहते हैं कि (१)समदर्शी परमात्मा ने सभी प्राणियों को उनकी आवश्यकतानुसार सुविधाएँ प्रदान की हैं। जीव-जन्तु, कीट-पक्षी आदि उन विभूतियों के आधार पर अपना निर्धारित क्रम पूरा करते रहते हैं। मनुष्य सृष्टि का सिरमौर, सिरजनहार का राजकुमार,सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। चूँकि वह श्रेष्ठ है, उसे सुविधाएँ भी उसी अनुपात में मिली हैं एवं तदनुसार स्पष्टतः उसके उत्तरदायित्व भी बड़े हैं।(२) साथ ही साथ ऋषि यह भी स्पष्ट करते हैं कि जिसे अधिक जिम्मेदार माना गया है, उसके द्वारा भूलें होनेपर उनकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही घातक होती है। मनुष्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यथासंभव सावधानी से उत्तरदायित्व भरा जीवन जीते हुये अपनी भूमिका को सम्पन्न करता चले। पर मनुष्य वरिष्ठ प्राणी होते हुये भी जीवन व्यवहार में सतत् त्रुटियाँ होती चलें, पर ब्रह्म के अनुशासन की अवहेलना होती रहे तो मन में असमंजस उठना *स्वाभाविक* ही है।

ईश्वर समदर्शी और निष्पक्ष न्यायकारी है, उसे न किसी से राग है, न द्वेष; उसने सृष्टि के सभी प्राणियों को उनकी आवश्यकता के अनुरूप क्षमताएँ एवं सुविधाएँ प्रदान की हैं। एक कोशिकीय निम्न श्रेणी के प्राणियों से लेकर पशु पक्षी तक सभी प्राणी प्रकृति प्रदत्त प्रेरणा से आवश्यकतानुरूप अपने लिए साधन सामिग्री जुटाते, जीवन रक्षा करते और वंश-चक्र चलाते रहते है। इन जीवधारियों को जो काय कलेवर मिला है उससे प्रकृति की इच्छा ही पूरी होती है। इनकी क्षमता मात्र इतनी ही है कि निर्धारित आयुष्य पूरा करने के लिये अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति भर करते रह सकें। विचार क्षमता एवं बौद्धिक विकास के अभाव में इनसे भूलें होना भी स्वाभाविक ही है। किन्तु मनुष्य जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन सामान्य प्राणियों की तुलना में कहीं अधिक असामान्य है।

इस विश्व ब्रह्माण्ड की अजस्र शक्ति और सम्पदाओं में से जीवात्मा के हिस्से में जो सर्वोपरि उपहार आता है उस वैभव को मनुष्य जीवन कहा जा सकता है। दृष्टि पसार कर देखने पर प्राणी के लिये इससे बड़ी उपलब्धि और कुछ तो हो ही नहीं सकती। इससे श्रेष्ठ एवं बहुमूल्य सम्पदा ईश्वर के विभूति भण्डार में और कोई है नहीं। शरीर संरचना एवं मन:संस्थान की दृष्टि से मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत आगे है। उसे प्रकृति रहस्यों को खोज निकालने और उनके आधार पर पदार्थ वैभव का मनचाहा उपयोग करने की अद्‌भुत क्षमता मिली है। ज्ञान और विज्ञान के दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से उसकी सत्ता सुसज्जित है। क्रियाशीलता विचारणा तथा भावना के तन्त्रों में इतनी उत्कृष्टता भरी पड़ी है कि उनके सहारे भौतिक एवं आत्मिक सम्पदाओं का प्रचुर परिमाण में उपार्जन कर सकना उसके बायें हाथ का खेल है। गृहस्थ आनन्द, आजीविका के सुनिश्चित आधार अन्य किसी प्राणी को उपलब्ध नहीं। ऐसा क्रिया कौशल और किसी के भाग्य में बदा नहीं है। उपलब्धियों को देखते हुये उसे सृष्टि का मुकुटमणि कहा जाना सर्वथा सार्थक है।

असमंजस इस बात का है कि इतना समर्थ, इतना विशिष्ट होते हुये भी जीवन सम्पदा को वासना, तृष्णा, अहंता जैसे छुद्र प्रयोजनों में खर्च करते हुये मनुष्य को इन दिनों ऐसी दुर्गति का सामना करना पड़ रहा है जिसमें शारीरिक दुर्बलता, रुग्णता से ग्रसित होकर आमतौर से अकाल मृत्यु का वरण करता है। मानसिक तनाव, असन्तोष, खीज, भय, आशंका, चिन्ता, आक्रोश, आक्रमण जैसी उद्विग्नताओं के कढ़ाव में उबलता रहता है। कहाँ तो मनुष्य की विशिष्टता, वरिष्ठता और कहाँ पशु-पक्षियों से भी गई बीती हेय-हीनता। आखिर यह आकाश-पाताल जैसा अन्तर बना कैसे ? आया कहाँ से? लद पड़ा क्यों कर ? इन अनबूझ पहेलियों का समाधान पूछते हुये ऋषि श्रेष्ठ जनसाधारण के कल्याण हेतु अपनी जिज्ञासा सामने रख रहे हैं।

याज्ञवल्क्य उवाच-

भवतोद्‌बोधिते प्रश्ने प्राणिभ्य ईश्वरार्पिता: ।
सुविधा: क्षमतायास्ता लभन्ते गौरवं महत् ।। २४ ।।
जीवनं वंशचक्रं च धर्तुं योग्यास्तु प्राणिनाम् ।
सर्वेषां क्षमता: सन्ति सुविधाश्चापि ता मुने ।। २५ ।।
करुणायास्तु प्रत्यक्षं प्रमाणं करुणानिधे: ।
वर्तते परमीशस्य शब्दस्यार्थस्तु शासनम् ।। २६ ।।
अत: शासन सत्ताया कारणात्सहयोगिने ।
मनुष्यायातिरिक्तास्ता: क्षमता: सुविधा ददौ ।। २७ ।।
मात्रमत्रादृशाऽपेक्षा सृष्टिं कर्तुं समुन्नताम् ।
शोभनां च मया कुर्याज्ज्येष्ठपुत्रस्य भूमिकाम् ।। २८ ।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-हे तात् ! आपके द्वारा उभारे गये प्रश्न में प्राणियों को ईश्वर द्वारा आवश्यकता के अनुरूप सुविधाएँ एवं क्षमताएँ देने की बात बहुत महत्व रखती है। जीवन-निर्वाह और वंश चक्र को चलाते रहने जितनी क्षमता-सुविधा तो सभी को प्राप्त है। वह उस करुणाकर की करुणा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। परन्तु 'ईशन्' शब्द शासन करने हेतु प्रयुक्त है। अत: शासन करने वाली सत्ता के नाते ईश्वर ने अपने सहयोगी मनुष्य को कुछ अतिरिक्त क्षमताएँ और सुविधाएँ दीं, मात्र इस अपेक्षा के साथ कि सृष्टि को सुन्दर, समुन्नत बनाने में ज्येष्ठ पुत्र की भूमिका निभाते हुए वह हाथ बँटायेगा ।। २४-२८ ।।

अन्य प्राणियों को प्रकृति प्रदत्त जो काय कलेवर मिला है उससे आत्मा या परमात्मा को कोई प्रसन्नता की या सम्भावना की आशा नहीं रहती। शारीरिक हलचलों के लिए आहार जुटाना और वंश-रक्षा के लिए परिवार बढ़ाना-यही हैं दो प्रयोजन, जिनमें हर वर्ग और स्तर के प्राणी निरत पाये जाते हैं। इन्हीं दो उपक्रमों में उनकी जीवनचर्या घड़ी के पेण्डुलम की तरह झूले-झूलती रहती है। इन दोनों के लिए हर प्राणी में सामर्थ्य एवं कुशलता है। न इससे कम, न अधिक ।

परन्तु मनुष्य के संबंध में ऐसा नहीं हैं। उसका सृजन ईश्वर ने अपने वरिष्ठतम् राजकुमार के रूप में किया है। शासनाध्यक्ष अपना सुविस्तृत कार्य अकेले नहीं संभाल पाते हैं, इसके लिए सुयोग्य पार्षदों एवं अफसरों के सहयोग की-सहायता की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य की गणना ऐसे ही राजकुमारों से की गई है। सहयोग वही दे सकता है जो क्षमता सम्पन्न हो, जिसे उपयुक्त सुविधाएँ उपलब्ध हों। इसी हेतु स्रष्टा ने मनुष्य को विभूतियों से सम्पन्न बनाया है और प्राणी जगत में सबसे अधिक सज्जन और जिम्मेदार माना एवं विश्वास किया है कि उसे जिस प्रयोजन के लिए विशिष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रतिभा, क्षमता एवं अतिरिक्त साधन मिले हैं, वह ईमानदारी पूर्वक उनका भरपूर सदुपयोग इस विश्व उद्यान को अधिकाधिक समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने में करेगा और उसका हाथ बँटायेगा।

किसी महामानव ने ठीक ही कहा है कि -

पेट भर लेना ही मनुष्य का उद्देश्य नहीं है, कुटुम्ब का भरण-पोषण करना ही मनुष्य-जीवन का परम लक्ष्य नही है। अपना जीवन-निर्वाह तो कुत्ता भी कर लेता है, मनुष्य को उससे उठकर सत्य व अमृत की शोध करनी चाहिए ।

वरिष्ठा राज्यसत्तायाः पदासीनास्तु ये नराः ।
साधनान्यधिकाराश्च तेभ्यो दीयन्त एव हि ।। २९ ।।
उपयोगं तु तेषां ते विधास्यन्ति स्वतोमुने ।
शासनस्य व्यवस्थार्थं लोक सौविध्य हेतवे ।। ३० ।।
निजरूपे तु तैर्मात्रं वेतनं प्राप्यते नरैः ।
अतिरिक्तं यदास्ते तत्परार्थं न्यास मात्रकम् ।। ३१ ।।
व्यामोहे च विलासे च तथोद्धतविधौ नरैः ।
अपव्ययस्य मार्गेषु नोपयुक्तं तदाहततम् ।। ३२ ।।
तथ्यमेतत्सदाध्येयमुपलब्धिसुशक्ति कैः ।
मानवैर्यत एतद्धि कर्त्तव्यं चास्ति संमतम् ।। ३३ ।।

टीका- राज्य सत्ता के वरिष्ठ पदासीनों को विशेष *साधन तथा अधिकार इसलिए दिये जाते हैं कि उनका उपयोग शासन-व्यवस्था और लोक-सुविधा के लिए करेंगे। निजी रूप से तो उन्हें निर्वाह वेतन भर मिलता है। मनुष्य को जो अतिरिक्त मिला है, वह परमार्थ प्रयोजनों के लिए दी गई धरोहर मात्र है। इसे विलास, व्यामोह, अपव्यय एवं उद्धत उपयोग में नहीं ही लगाना चाहिए। इस तथ्य को भली प्रकार ध्यान में रखना उपलब्ध-शक्तियों से युक्त मानव का कर्त्तव्य है।। २९-३३।।*

बड़े पद या गौरव जिन्हें प्रदान किये जाते हैं, उन्हें बड़ी जिम्मेदारियों से भी लाद दिया जाता है। खजाँन्ची के पास ढेरों सरकारी रुपया रहता है, शस्त्र भाण्डागार का स्टोरकीपर सेना के हथियार और गोला, बारूद अपने ताले में रखता है, सेनाध्यक्षों और मंत्रियों को अनेकों सुविधा-साधन एवं अधिकार मिले होते हैं। यह विशुद्ध रूप से अमानतें हैं। इन्हें निजी लाभ के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। सौपी गई जिम्मेदारियों को ठीक तरह से परिपालन कर सकने एवं निजी रूप से जीवन निर्वाह के लिए वेतन भर मिलता है। यदि अधिकारी अपने अधिकार की वस्तुओं को निजी उपयोग में खर्च करने लगें तो यह उनका अपराध माना जायेगा और दण्ड मिलेगा। ठीक इसी प्रकार मनुष्य को अधिक विश्वस्त, अधिक प्रामाणिक और समझदार स्रष्टा का बड़ा पुत्र माना गया है और उसके हाथ में वे अतिरिक्त साधन धरोहर रूप में सौपे गये हैं, जिनके सहारे ईश्वर की बनाई इस सृष्टि को और अधिक समुन्नत, सुन्दर बना सके।

नर एव मतः सिद्धपुरुषो मार्गदर्शकः ।
मनीषी देवदूतश्च महर्षिः क्रमशो जनैः ।। ३४ ।।
पदान्येतानि लब्धुं च समयं प्राप्नुयुर्यथा ।
सत्पात्राण्यत्रस्वीचक्रे परीक्षा पद्धतिं प्रभुः ।। ३५ ।।
स्वतन्त्रं चिन्तनं प्रादात्कर्त्तृत्वं च तथैव सः ।
आधारमिममाश्रित्य पात्रता सा परीक्ष्यते ।। ३६ ।।
प्रशस्तमुपयोगं ये साधनानां प्रकुर्वते ।
उत्तीर्णा तु परीक्षा तैःपदान्युच्चानि यान्ति ते।।३७।।
पार्षदास्ते प्रभोर्नूनं जायन्ते पुण्यकीर्तयः ।
उन्नतेर्वञ्चिता दण्ड्या ये ते दुरुपयोगिनः ।। ३८ ।।

टीका- मनुष्य जन्म के उपरान्त महामानव, सिद्ध पुरुष, मनीषी, मार्गदर्शक, सुधारक, ऋषि, देवदूत जैसे अन्य अनेकों स्तर एवं पद हैं। उन्हें उपलब्ध करने का अवसर सत्पात्रों को मिले-इस उद्देश्य से ईश्वर ने परीक्षा पद्धति अपनाई है। हर मनुष्य को स्वतंत्र चिंतन और स्वतंत्र कर्त्तव्य अपनाने का अवसर प्रदान किया है। इसी आधार पर पात्रता की जाँच पड़ताल होती है। जो साधनों के सदुपयोग की परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं, वे ऊँचे पद पाते ईश्वर के पार्षद बनते हैं। जो दुरुपयोग करते हैं, वे दण्ड पाते और भावी प्रगति से वंचित कर दिये जाते हैं ।। ३४-३८।।

पात्रता के अनुरूप अनुदान मिलने की सुव्यवस्था अनादि काल से चली आ रही है। इसी परीक्षा में खरा उतरने पर लोग एक से एक बढ़कर उपहार प्राप्त करते रहे हैं। उच्च पद के इच्छुक व्यक्तियों को शारीरिक-मानसिक परीक्षण एवं लिखित और मौखिक-साक्षात्कार की परीक्षाओं में से गुजरना पड़ता है। इसमें उत्तीर्ण होने वाले व्यक्तियों को ही उपयुक्त पद सौंपे जाते हैं। ईश्वर भी उन्हीं व्यक्तियों का चयन करता और उनके साथ जुड़ता-सघनता स्थापित करता है एवं अपने अनुदान वर्षा से उन्हें धन्य बनाता है, जो उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। चयन की स्वतंत्रता, औचित्य-अनौचित्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का वरण, यह कार्य ईश्वर ने मनुष्य के जिम्मे छोड़ा है। जीवन सम्पदा और उपलब्ध विभूतियों-साधनों का सदुपयोग करने वाले ही उसकी अनुकंपा का लाभ उठाते और महामानव ऋषि, मनीषी, देवपुरुष, सिद्ध पुरुष बनते हैं। पात्रता के अभाव में उत्तराधिकार आदि में मिली प्रचुर सम्पदा का बहुधा दुरुपयोग ही होता है क्योंकि वह पुरुषार्थ से अर्जित नहीं होती। ऐसी सम्पत्ति तात्कालिक रूप से भले ही किसी को आकर्षित-प्रभावित करे, अन्ततः दूरगामी परिणाम उसके अहितकर ही होते हैं। सृष्टा की शाश्वत व्यवस्था है कि क्रिया की प्रतिक्रिया रूप में कर्मफल हर कर्म का मिल कर ही रहता है। ईश्वर प्रदत्त सम्पदा-विभूतियों का जो भी दुरुपयोग करता है, उसे अनुशासन-अवेहलना का दण्ड मिलकर ही रहता है।

किसी संत ने ठीक ही कहा है कि-

"मनुष्य के व्यक्तित्व को परखने के लिए दो देवदूत आते हैं-एक का नाम है संकट दूसरे का वैभव। संकट हमारे धैर्य, पुरुषार्थ, और साहस को जाँचता है। वैभव उदारता, नम्रता और संयम को खोजता है। जो दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गया वह महामानव बनकर रहेगा।"

महार्हेणानुदानेन प्रत्येकेन समस्तरम् ।
दायित्वं बद्धमास्ते तन्महद् भूतिमतास्त्विदम् ।। ३९ ।।
क्षन्तव्या एव दोषास्तु सामान्यानां नृणां सदा।
महान्तस्तु प्रमादस्य ताडनाः प्राप्नुवन्त्यलम् ।। ४० ।।
विभूतीनां प्रशस्तेऽत उपयोगे नरैः सदा ।
स्वर्गो मुक्तिश्च प्राप्येते श्रेयस्यौ भाग्यसम्पदे ।। ४१ ।।
तथा दुरुपयोगे तु कठोरो दण्ड आश्रितः ।
कर्मणस्तुः व्यवस्थायां अन्तरेव महामुने ।। ४२ ।।

टीका- हे ऋषि श्रेष्ठ ! हर बहुमूल्य अनुदान के साथ उसी स्तर का उत्तरदायित्व भी जुड़ा होता है। मनुष्य विभूतिवान है, तो उसका उत्तरदायित्व भी महान् है। छोटों की छोटी भूलें दरगुजर की जाती हैं, किन्तु बड़ों को प्रमाद की बड़ी प्रताड़ना भुगतनी पड़ती है। विभूतियों का सदुपयोग होने पर मनुष्य को जहाँ स्वर्ग-मुक्ति जैसे श्रेय-सौभाग्य मिलते हैं, वहीं दुरुपयोग होने पर कर्म-व्यवस्था के अन्तर्गत कठोर दण्ड विधान भी निर्धारित हैं ।। ३९-४२ ।।

ऋषि तीन सूत्र स्पष्ट कर रहे हैं।

(१) बड़प्पन के साथ जुड़े बड़े अधिकार

(२) उनके साथ जुड़ी बड़ी जिम्मेदारियाँ

(३) जिम्मेदारी निभाने पर बड़े लाभ-न निभा पाने पर बड़े दण्ड।

सफाई कर्मचारी के अधिकार सीमित हैं, जिम्मेदारी भी सीमित है। चूक होने पर सामान्य डाट फटकार पर्याप्त मानी जाती है। सेनानायक के अधिकार बड़े हैं तो जिम्मेदारियाँ भी असीम हैं, तथा चूक होने पर कोर्टमार्शल से कम में छुटटी नहीं होती।

सामान्य नाविक के अधिकार भी कम हैं। जिम्मेदारी भी कम है। नाव उलट जाने पर पैसे मारे जाने, पिटाई होने तक ही दण्ड सीमित। जहाज के कैप्टेन के अधिकार बड़े हैं, पर जिम्मेदारी भी बहुत बड़ी है। जहाज डूबे तो उसे साथ ही डूबना पड़ता है।

मनुष्य भूलें न करें, उसकी सामर्थ्य का अनर्थकारी उपयोग न हो, इसके लिए परमात्मा द्वारा निर्मित व्यवस्था को ऋषि समझा रहे हैं। मनुष्य को अपना विकास गौरव अच्छा लगता है और दण्डों से, क्लेश से, वह बचना चाहता है। विश्व व्यवस्था के लिए मनुष्य को विशेष क्षमताएँ उसने दी हैं, पर बीजरूप में ही दी हैं। जो उचित दिशा में चलते हैं, परमात्मा चेतना का अनुशासन पालते हैं, उनके अंदर बीजरूप क्षमताएं विकसित होकर, गौरव एवं सुख संतोष का कारण बन जाती हैं। इस उपलब्धि के लिए मनुष्य आत्म नियंत्रित रहने के लिए जागरूक रहता है। इस धारा का अनुसरण न कर पाने पर दण्ड व्यवस्था लागू हो जाती है।

ऋषि कहते हैं कि कर्म और फल का स्वचालित चक्र है। ईश्वर ने विधान रच दिया है, दण्ड और पारितोषिक उसी विधान से स्वतः मिलते हैं। ईश्वर केवल व्यवस्था का विधायक है।

मनुष्यस्य तु व्यक्तित्वं महत्संनिहितं तु तत् ।
वैभवं बीजरूपेऽस्मिन् सुविधा शक्त्यपेक्षया ।। ४३ ।।
वैभवं वर्तते यत्तु व्यापके परमात्मनि ।
आत्मारामाः प्रसुप्तं तु बोधयन्त्येनमन्ततः ।। ४४ ।।
अनायासं प्राप्नुवन्ति सामर्थ्यान्युच्चगानि च।
वैपरीत्ये चित्रगुप्तश्चरितं तु कुकर्मिणाम् ।। ४५ ।।
लिखन् दण्ड व्यवस्थां च तत्कालं प्रकरोतिताम् ।
स्वचालिता मता कर्मफलजा तु व्यवस्थिति ।। ४६ ।।
मनुष्यस्य तु सर्वांगपूर्ण संगठने मुने ।
अन्तश्चेतोंऽश आदत्ते चित्रगुप्तः स्वयं सदा ।। ४७ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एतदर्थं पृथक् बाह्या व्यवस्था परमात्मना ।
विधीयते न कापीदं निश्चितं विद्धि मे मतम् ।।४८।।

टीका- मनुष्य का व्यक्तित्व महान् है। प्रत्यक्ष सामर्थ्यों सुविधाओं की तुलना में उसके अन्तराल में बीच रूप में वह समूचा वैभव सन्निहित है, जो सर्वव्यापी परमात्मा में पाया जाता है। इस प्रसुप्त को आत्म परायण जगाते हैं और अनायास ही उच्चस्तरीय सामर्थ्ये हस्तगत करते जाते हैं। इसके विपरीत कुकर्मियों का चित्रगुप्त न केवल सब कुछ अंकित करते जाते हैं वरन् उसकी दण्ड-व्यवस्था भी हाथों हाथ बनाता चलता है। हे तात् मनुष्य के सर्वांगपूर्ण गठन में यह कर्मफल व्यवस्था पूर्णरूपेण स्वसंचालित है, जिसे चित्रगुप्त रूपी अन्तः चेतना का एक अंश बिना किसी की सहायता के स्वयमेव सम्पन्न कर लेता है। इसके लिए परमात्मा को अलग से कोई बाहरी व्यवस्था नहीं करनी पड़ती-यह मेरा निश्चित मत है ।। ४३-४८।।

और मियन्ता मात्र है। सृष्टि की क्रमवद्धता और समस्वरता को बनाये रखने भर का ध्यान रखता है। मनुष्य को जहाँ भले बुरे कर्म करने की उसने स्वतंत्रता प्रदान की है वहाँ उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न करने और परिणाम प्रस्तुत करने की स्वसंचालित प्रक्रिया भी साथ जोड़ दी है। पुराणों में कहा गया है कि मनुष्य के कर्मों का लेखा जोखा चित्रगुप्त रखता है और तदनुरूप कर्म फल के दण्ड पुरस्कार की व्यवस्था करता है। वस्तुतः यह चित्रगुप्त और कोई नहीं, मनुष्य का अपना अचेतन मन ही है जिसकी अत्यन्त संवेदनशील कोशाओं के ऊपर उसके भले बुरे कर्म टैपरिकार्डर के फीते अथवा फोटोग्राफी की प्लेट की तरह अंकित होते रहते हैं। चेतना के इस सूक्ष्म परतों में ऐसी व्यवस्था फिट है कि वह कुविचारों, कुकर्मों का प्रतिफल स्वसंचालित पद्धति से अपने आप ही प्रस्तुत करती रहती है। यहाँ ऋषि याज्ञवल्क्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कर्मफल को झुठलाना या उससे बच निकलना किसी के लिए भी संभव नहीं है। बाहर के न्यायाधीश को भ्रम में डाला जा सकता है, पर अन्तस्त में बैठे दृष्टा की निष्पक्ष न्यायशीलता कभी भी विचलित नहीं हो सकती। स्वयं के पुण्य ही उत्कर्ष-उल्लास के तथा स्वयं के पाप ही शोक-संताप के नये-नये अवसर सामने लाते रहते हैं।

अन्य महापुरुषों का भी ऐसा ही मत हैं -

महात्मा ईशू ने भी कहा, "एज यू सो, सो यू रीप" जैसा बोओगे वैसा काटोगे।

कुरान शरीफ में भी लिखा है, अपने किए का हिसाब सबको देना होता है ।

शुभानामशुभाना च नेह नाशोस्ति कर्मणाम् ।
प्राप्यप्राप्यानुपच्यन्ते क्षेत्रं क्षेत्रं यथा तथा ।
क्षेत्रं कर्मजमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।।

-म० आश्वमे०प०अ० १८ ।५

इस संसार में शुभ और अशुभ कर्मों का नाश नहीं होता, यथा खेत-खेत को प्राप्त कर पकता जाता है, फल लाता जाता है। इसी प्रकार कर्मों के पाक या फल का भी क्रम चलता रहता है। तदनुसार ही शुभ एवम् अशुभ को मनुष्य कर्मानुसार प्राप्त किया करता है ।

कुसंस्कारैर्व्यक्तिभिश्च सम्बद्धाभिर्महामुने ।
परिस्थितिवशादेते वातावरण कारणात् ।। ४९।।
सामान्या ये नरास्ते तु प्रवाहमनुयान्त्यपि ।
गर्तेषु प्रपतन्त्येते मेषा अन्धा इस क्रमात् ।।५०।।
विवेकी दूरदर्शी यो नीरं क्षीरं परामृशन ।
राजहंस इवादत्ते योग्यं परमहंसकः ।।५१।।
स्वकीयया प्रतिभया नैवान्धाननुयान्ति ते ।
आभास्ति ध्येयमेकं यत्प्रायो विस्मर्यते नरैः ।।५२।।

टीका- हे ऋषिवर! संचित कुसंस्कारों, सम्बद्ध व्यक्तियों, वातावरण-परिस्थितियों से घिरे होने के कारण हेय स्तर के मनुष्य प्रवाह में बहते और अन्धी भेड़ों की तरह एक के पीछे एक खड्ड में गिरते चले जाते हैं। विवेकवान् दूरदर्शी व्यक्ति उचित-अनुचित का नीर-क्षीर विवेक करते हैं और राजहंस परमहंसों की तरह उसी को ग्रहण करते हैं, जो योग्य है। अन्धानुकरण करने से बच सकने योग्य उनमें निजी प्रतिभा होती है। हे तात् ! यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है जिसे प्रायः मनुष्य भूल जाता है ।। ४९-५२।।

(जो अगले श्लोक में स्पष्ट की गयी है)

ऋषि यह समझा रहे हैं कि मनुष्य भटक कैसे जाता है। मनुष्य में स्वतंत्र विवेक भी है और अनुकरण वृत्ति भी। कुसंस्कार आसपास के व्यक्ति-संगति और वातावरण के साथ वह अनुकरण वृत्ति के कारण चल पड़ता है। ऐसे लोगों को अंधी भेड़ों की संज्ञा दी गयी है।

भेड़ों के आँखें होती हैं पर वे अनुकरण वृत्ति के कारण उनका उपयोग नहीं कर पातीं। आगे वाली भेड़ खड्ड में गिरे तो पीछे वाली भी उसी में जायेगी। मनुष्य

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी विवेक से उचित अनुचित का निर्णय कर सकता है, परन्तु उसका उपयोग न करके कुसंस्कारों, कुसंग तथा कुभोग के पीछे अन्धानुकरण वृत्ति से चल पड़ता है। दूरदर्शी विवेक राजहंस वृत्ति का उपयोग विकास करें तो इस विडम्बना से बच सकते हैं।

जिन्हें मानव गरिमा का बोध होता है वे आत्मा और परमात्मा का परामर्श मानते हैं। स्वतंत्र चिन्तन और साहसिक निर्धारण के धनी ऐसे व्यक्ति आदर्शवादी उत्कृष्टता का अवलम्बन लेते हैं और सामान्य स्थिति में रहते हुए भी निजी प्रतिभा के बलबूते महामानव बनते तथा असाधारण उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं।

ईश्वरो मानवं चक्रे सहयोगिन मात्मनः ।
स्वतन्त्रःशासकोनास्ति सृष्टेःसइति चिन्त्यताम् ।।५३।।
अर्धाधिकारमादातुं प्रभवत्येष मानवः ।
स्वतन्त्रश्चेतुमस्त्येष मानवो विहितो ध्रुवम् ।।५४।।
परं कर्मफलं देवः स्वाधीनं निरधारयत् ।
अद्यश्वो वा फलं नूनं भोक्तव्यं तस्य मानवै ।।५५।।
लब्धुं प्रतिफलं कश्चिद् विलम्बो भवतीव सः।
बीजानां परिपाकाय कालः कश्चिदपेक्ष्यते ।।५६।।
अज्ञा विलम्बमालम्ब्य ब्रजन्त्येते त्वधीरताम् ।
कर्मणां विधिपाकेषु संश्रिता दूरदर्शिनः ।।५७।।
जायमानाः यथाकालं क्रियाणां याः प्रतिक्रियाः।
तस्या विधि व्यवस्थाया न तेविचलिताःक्वचित ।।५८।।

टीका- ईश्वर ने मनुष्य को अपना सहयोगी बनाया है, न कि इस सृष्टि का स्वतंत्र शासक। सहयोगी के नाते उसे आधे का अधिकार है। चयन की स्वतंत्रता ईश्वर ने मनुष्य को दी है, तो कर्मफल निर्धारण का तंत्र अपने हाथ में रखा है। आज नहीं तो कल-सभी को कर्मफल भुगतना पड़ता है। फसल पकने की तरह प्रतिफल पाने में विलम्ब तो लगता ही है। अनाड़ी इसी विलम्ब को देखकर अधीर हो उठते हैं, किन्तु दूरदर्शी कर्म विधान की सुनिश्चितता पर पूर्ण विश्वास रखते हैं और क्रिया की प्रतिक्रिया समयानुकूल उत्पन्न होने की विधि-व्यवस्था से विचलित नहीं होते ।। ५३-५८।।

स्रष्टा ने मनुष्य को जितना स्वावलम्बी बनाया है उतना ही परावलम्बी भी। एक स्वसंचालित यंत्र की तरह कर्म करने में स्वतंत्र होते हुए भी मनुष्य परिणाम भोगने की श्रृंखला में मजबूती के साथ जकड़ा हुआ है। हर किसी को ईश्वर ने यह पूरी आजादी दी है कि जो चाहे जिस तरह सोचे या करे। साथ ही विवेक का अनुदान देकर यह भी स्पष्ट कर दिया है कि चिन्तन का कर्तृत्व का स्तर ही उसके सामने दण्ड-पुरस्कार के रूप में सामने आयेगा। कर्म करने का अपनी इच्छा-फल देने की ईश्वरीय सत्ता की इच्छा। दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। कर्म करके उसके फल से बचे रहें यह नहीं हो सकता ।

यहं संसार कर्मफल की सुनिश्चित विधि-व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। जो जैसा बोता है वैसा काटता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होना एक सुनिश्चित तथ्य है। कर्म कभी बंध्य-नपुंसक नहीं होते, उनके प्रतिफल निश्चित रूप से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है, इसमें संशय नहीं है। समय लग सकता है, आज का फल आज न मिलने से व्यक्ति भ्रम में पड़ सकता है और यह सोच सकता है कि बुरे कर्म दण्ड से बच गये या भला कर्मफल निष्फल चला गया, पर वस्तुतः ऐसा होता कभी नहीं। माली का बगीचा, किसान का खेत, विद्यार्थी का अध्ययन, परिपुष्टि आकांक्षा का व्यायाम, उद्योगी का व्यापार आरम्भ से ही फल नहीं देने लगते हैं। उसमें समय लग जाता हैं तुरन्त या कालान्तर में इसका रहस्य अविज्ञात होने के कारण प्रत्यक्षवादी, बालबुद्धि, उतावले लोग अनास्थावान हो उठते हैं। पर दूरदर्शी इसे सृष्टि का विधान समझ कर धैर्य रखते और उपयुक्त समय आने की प्रतीक्षा करते हैं।

ऋषिः पप्रच्छ जिज्ञासुर्भरद्वाजो विवेचनाम् ।
इमां श्रुत्वा सपद्येष लोककल्याण संयुता ।।५९।।

भारद्वाज उवाच-

भगवन्नीश्वरस्यास्यां सृष्टौ सर्वो व्यवस्थितः ।
क्रमो यतश्च सुस्पष्टः कारणं किं वरो नरः ।।६०।।
विचारक्षमतायुक्तः क्रमं बोद्धं भ्रमं ब्रजेत् ।
विस्मृतिं व्यवहारे स आचरत्यपि सर्वदा ।।६१।।
विडम्बनाया हेतुः को दूरीकर्त्तुं च तं पुनः ।
रहस्यं किं विचार्यैतद्दयालो दयया वद ।।६२।।

टीका- जिज्ञासु ऋषि भारद्वाज ने लोक कल्याण युक्त इस विवेचना को सुन कर तत्काल प्रश्न उठाया। भारद्वाज बोले-भगवन् ! जब ईश्वर की इस सृष्टि में हर क्रम सुव्यवस्थित एवं सुस्पष्ट है, फिर क्या कारण है कि मनुष्य जैसा विचार क्षमता सम्पन्न प्राणी उस क्रम को समझने में भ्रमित होता और व्यवहार में भूल करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इस विडम्बना का कारण और उसके निवारण का मर्म विचार कर कृपया स्पष्ट करें।। ५९-६२।।

परमात्मा ने संसार को एक निश्चित उद्देश्य रखकर बनाया है और प्रत्येक जीवधारी को उसकी पूर्ति के लिये किसी न किसी प्रकार का सहायक नियुक्त किया है। विश्व ब्रह्माण्ड के सभी घटक-विशाल अंतरिक्ष के समस्त ग्रह-नक्षत्र, सूर्य, चंद्र, तारे, आकाश गंगायें सभी सुव्यवस्थित विधि व्यवस्था के अंतर्गत परिभ्रमण करते हुये एक सुनिश्चित लक्ष्य की ओर गतिमान हैं। सारा प्रकृति चक्र, सम्पूर्ण संसार एक निश्चित व्यवस्था पर ठीक ठिकाने चल रहा है। अनियमितता, अस्तव्यस्तता, अव्यवस्था और अपने लक्ष्य से भटकाव इनमें कहीं भी नजर नहीं आता। भोगयोनि के माने जाने वाले मनुष्येत्तर प्राणियों को भी सृष्टि व्यवस्था का व्यतिक्रम करते नहीं देखा जाता। वे प्रकृति प्रेरणावश अपना जीवन चक्र पूरा करते, वंश बढ़ाते, मरते मिटते और उपजते रहते हैं।

मनुष्य कर्मयोनि का प्राणी है। भोगयोनि के प्राणी तो अपने पूर्वकृत कर्मों का ही परिणाम या दण्ड भोगते हैं, परन्तु स्रष्टा ने अपने अंशधर मनुष्य को अपने जीवन में कर्मों की स्वतंत्रता प्रदान की है। उसे बुद्धि, विद्या, बल और विवेक की अनेकानेक उच्चस्तरीय क्षमतायें दी हैं। मनुष्य जीवन का भी अपना एक सुनिश्चित लक्ष्य है। मनुष्य शरीर नहीं आत्मा है। आत्मा अनेक योनियों में भ्रमण करती हुई मनुष्य जीवन में आती है। आत्मोत्कर्ष और लोकमंगल जैसे कुछ विशिष्ट उत्तरदायित्व सौंप कर उन्हें पूरा करने के लिये निश्चित अवधि का समय देकर उसे जीवन यात्रा पर भेजा जाता है। किन्तु मनुष्य है यह सब जानते हुये भी भ्रमित होता है और महत्वहीन तथा निर्मूल्य सुख-साधनों के प्राप्त होते ही अपने आपको भूल बैठता है एवं अपनी विशिष्ठताओं, क्षमताओं तथा दायित्वों की स्मृति खो बैठता है।

ऋषि भारद्वाज यहाँ जिज्ञासा प्रकट करते हुये याज्ञवल्क्य जी से उन विसंगतियों-विडम्बनाओं का कारण पूछते हैं जिनमें उलझकर मनुष्य मात्र लौकिक कामनाओं तथा इन्द्रिय भोगों तक ही सीमित रह जाता है, आत्मोत्थान की बात सोचता तक नहीं। इनका निवारण कैसे हो ?

याज्ञवल्क्य उवाच-

ऋषिवर्य ! जगत्सर्वं प्रकाशं तमसोरिदम् ।
विप्रतिषिद्धयोरेव तत्त्वयोर्निर्मितं मतम् ।। ६३।।
उभयो: स्वं स्वमस्त्येव सामर्थ्यं तेन प्राणिन:।
अनुकर्षत इत्थं च दूरदर्शी नरा: सदा ।। ६४।।
उचितानुचिते वीक्ष्योचितं केवलमर्जयेत् ।
नियन्तो हेतुनानेन मानवे क्षमता अदात् ।। ६५।।
स्वं भाग्यं च भविष्यच्च निश्चेतुं परिवर्तितुम्।
उत्थानं देवशक्ति: सा पतनं दानवी तथा ।।६६।।
दानवस्य प्रलोभैर्यो मुच्यते देवसन्निधिम् ।
याति स विन्दते श्रेय: सौभाग्यं चापि मानव: ।।६७।।

टीका- याज्ञवल्क्य जी बोले-हे ऋषिश्रेष्ठ ! यह संसार प्रकाश और अंधकार जैसे दो परस्पर विरोधी तत्वों से मिलकर बना है। दोनों की अपनी-अपनी सामर्थ्य है। प्रत्येक अपनी ओर खींचता है। मनुष्य की दूरदर्शिता इसी में है कि वह उचित और अनुचित से भरे-पूरे इस बाजार में से मात्र उचित को ही खोजें-खरीदें। इसी उद्देश्य से नियन्ता ने मनुष्य को अपने भाग्य और भविष्य को निर्धारित परिवर्तित करने की क्षमता प्रदान की है। उत्थान की शक्तियों को देव और पतन की शक्तियों को दानव कहते हैं। दानव के प्रलोभनों से जो बच सकता है वही देव का सान्निध्य सहयोग पाता है और श्रेय सौभाग्य का अधिकारी बनता है।।६३-६७।।

ऋषि याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि इस सृष्टि की संरचना दो परस्पर विरोधी तत्वों से हुई है। सत् और तम् के-जड़ और चेतन के समन्वय से ही यह संसार बना है। रजोगुण तो इन दोनों का वैसा ही समन्वय है, जैसे रात्रि और दिन के समन्वय से बना संध्याकाल। यहाँ हर चीज के दो रूप हैं- बाहर कुछ भीतर कुछ। इसे ही भवसागर कहा गया है।इसमें सत् अर्थात देवत्व की अभ्युदय कारक दिव्य शक्तियाँ तथा जड़ अर्थात असुरता की पतनकारक-दोनों ही शक्तियाँ विद्यमान हैं। यहाँ प्रकाश और अंधकार, श्रेय और प्रेय, स्वार्थ और परमार्थ के दो मार्ग हैं जो विपरीत दिशाओं में चलते हैं। इन्हें ही पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, प्रशंसा-निन्दा, शन्ति-अशान्ति, बन्धन और मोक्ष आदि नामों से जाना जाता है। दोनों की शक्ति प्रचण्ड है। प्रतिकूल प्रकृति के होने से दोनों परस्पर लड़ते भी रहते हैं। असुरत्व और देवत्व में निरन्तर संघर्ष इसलिये होता रहता है कि जीवन सम्पदा पर अधिकार जमाने के लिये दोनों की ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रबल चेष्टा रहती है। देव पक्ष मनुष्य को अपनी तरह दिव्य जीवन जीने, ऊँचा उठने और अनुकरणीय आचरण अपनाने की सतत् प्रकाश प्रेरणा देता रहता है; तो असुरता की पाशविक प्रवृत्तियाँ अपनी ओर आकृष्ट किये रहती हैं। असुरता तात्कालिक वासना और तृष्णा की तृप्ति चाहती है। इन्द्रिय उपभोग की वासना लिप्सा में सतत् उलझाये रखकर जीवन रस निचोड़ती रहती है और अन्ततः पतन के गर्त में धकेल देती है।

आसुरी और दैवी शक्तियों के संघर्ष में हमें किसका पक्षधर बनना है, इसका निर्णय स्वयं ही करना पड़ता है। विवेकवान, दूरदर्शी, उज्ज्वल भविष्य को देखते हैं और असुरता के आकर्षक प्रलोभन से बचते हैं। आत्मा की पुकार 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का अनुसरण करते हुये श्रेय मार्ग का अवलम्बन लेते हैं। निश्चय ही वे बड़भागी सत्पुरुष महामानव, ऋषि, देवदूत बनकर पूर्णता के चरम लक्ष्य तक पहुँचते हैं।

मनुष्यान्तः स्थिता यास्ता आसुर्यः शक्तयो नरम्।
कुमार्गगामिनं कुर्वन्त्यादायैनं तथा स्थितौ ।।६८।।
कारयन्त्यो दुराचारं पतने च पराभवे।
अन्ते नरकयोः कष्टपूर्णयोः प्रक्षिपन्ति च ।।६९।।
अस्माच्च विपरीतं या दैवी प्रोक्ता तु प्रेरणा।
उत्कृष्टतां समादातुं सा तु योजयते नरम् ।।७०।।
सद्विचारान् गृहीतुं च सन्मार्गे चलितुं तथा।
प्रेरयत्यथ ये गृहणन्त्येतान्येते स साधना ।।७१।।
देवत्वमधिगच्छन्तस्तेषां स्वर्गं प्रयान्ति च।
जीवन्मुक्ताश्च जीवन्ति दीव्यं श्रेयोऽन्विताः सदा ।।७२।।
कतरो मानवैर्देवासुरयोरनुगम्यताम् ।
स्वकीयं मानवस्येदं चयनं यत्र जीवति ।।७३।।
एतच्चयनमेवान्त उत्थानं पतनं तथा ।
परिस्थितिवशात् कर्तुं प्रभवत्यञ्जसा ध्रुवम् ।।७४।।

टीका- मनुष्य की अन्तः स्थिति आसुरी शक्तियाँ उसे कुमार्ग पर चलने के लिये ललचाती हैं और वैसे ही वातावरण तक ले पहुँचती हैं, कुकर्म कराते हुये अन्ततः पतन-पराभव के कष्टदायी नरक में धकेल देती है। इसके विपरीत देवों की प्रेरणा उत्कृष्टता अपनाने और सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। जो उसे अपनाते हैं, उन्हें वे तदनुरूप साधन सहयोग की भी कमी नहीं रहने देते। देवत्व अपनाने वाले उन्हीं के स्वर्ग लोक में जा पहुँचते हैं और जीवनमुक्त की तरह दिव्य जीवन जीते हैं और श्रेय-सौभाग्य पाते हैं। देव और असुर दोनों में से किसका अनुसरण किया जाय, यह मनुष्य का अपना चुनाव है, जिसमें उसको जीना हैं। यह चुनाव ही अन्ततः उत्थान-पतन की परिस्थितियों का सरंजाम खड़ा कर देता है।। ६८-७४।।

मनुष्य की अन्तरात्मा में देव और दैत्य दोनों पक्षों का निवास है। इन्हें दैवी एवं आसुरी प्रकृति भी कहते हैं। मनुष्य की वे सारी क्रियाएँ और प्रक्रियायें जो उसे अंधकार, ध्वंस अथवा पतन की ओर ले जाती हैं, आसुरी वृत्तियाँ कहलाती हैं और जो क्रियायें-प्रक्रियायें प्रकाश , सृजन और उत्थान की ओर प्रेरित करती हैं, वे दैवी वृत्तियाँ मानी गई हैं। दैवी शक्तियाँ मनुष्य को परिश्रम, पुरुषार्थ, त्याग, प्रसन्नता, उदारता, आस्था, आशा, उत्साह तथा मर्यादा आदि सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने, उन्हें गुण कर्म स्वभाव का अंग बनाने, देवत्व की गरिमा को धारण करने को प्रेरित करती हैं। जबकि असुरता का पक्ष मनुष्य को आलस्य, प्रमाद, स्वार्थ, लिप्सा, निरुत्साह, निराशा, आवेश, उत्तेजना अथवा अदक्षता जैसे दोषों में लाद देता है और पतन-पराभव की ओर ले जाता है। असुर मायावी होते हैं। इन्द्रिय सुखों का लालच देकर वह अपना जाल फेंकता है और अपने मायापाश में जीव को बाँध लेता है। उसके पास काम, क्रोध, लोभ, मोह,मद,मत्सरता के-वासना, तृष्णा, अहंता के और कितने ही सम्मोहक अस्त्र हैं, जिनसे वह मूर्छित करके मनुष्य को उस पाश में बाँध लेता है जिससे निकलने की इच्छा भी नहीं होती। उसी में पड़े रहने को जी चाहता है। संसार के अधि संख्य प्राणी इसी स्थिति में पड़े-पड़े बिलबिलाते और बिलखते रहते हैं तथा नाना प्रकार के नारकीय त्रास भुगतते रहने को बाध्य होते हैं।

मनुष्य दैवी और आसुरी-दोनों शक्तियों का समन्वित रूप है। वह बन्धन और मुक्ति, स्वर्ग और नरक की ओर जाने वाले दोनों दिशाओं के मिलन विन्दु पर खड़ा है। साधन और सहयोग उपलब्ध कराने वाले देवता और दैत्य भी मिलन मार्ग पर आमने-सामने मौजूद हैं। मनुष्य इस बात के लिये सर्वथा स्वंतत्र है कि वह जिसे प्रिय समझे अपनी रुचि के अनुसार उसी की गोद में जा बैठे। दोनों में से किसी का भी चुनाव करलें। वह चाहते तो श्रेय मार्ग पर चलते हुये मानवता की महानताओं को अपना कर देवत्व की उच्च श्रेणी तक पहुँचकर स्वर्गीय परिस्थितियों का रसास्वादन करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रह सकता है। इसके विपरीत अपनी इच्छानुसार प्रेय मार्ग पर चढ़ कर अपने पद से च्युत हो सकता है। पशुता का वरण करते हुये अन्ततः असुरता की स्थिति में पहुँचकर नरक जैसी अशान्त एवं क्षुब्ध मनोदशा के उद्वेगों में झुलसता रह सकता है।

दोषाणां दुर्गुणानां च वारणं सत्प्रवृत्तिजाः ।
धर्तुं च सम्पदा दैवीः पौरुषं पात्रतोदयः ।।७५।।
अध्यात्मसाधनारूपे चलिता बहवस्तु ये ।
विधयः कर्मकाण्डाधास्तत्त्वं तत्रेदमस्फुटम् ।।७६।।
सिद्धान्ताः प्रगतेरेते भौतिकस्य भवन्ति च।
साफल्य हेतवो येन आत्मोत्कर्षोऽधिगम्यते ।।७७।।
रहस्यमेतद यैर्ज्ञातं सत्यं जानन्ति ते नराः ।
सत्यमार्गस्थिताः सन्ति गजसाहस्रशक्तिकाः ।।७८।।
लुठन्ति सिद्धयस्तेषां चरणेषु भवन्ति ते ।
वर्चस्ववैभवाधीशा अनुकार्या नृणां, स्तुताः ।।७९।।
सहयोगिन ईशस्य भूमिकां कुर्वतां ते नराः ।
स्वयं तरन्ति तेऽन्याँश्च तारयन्त्यपिनिश्चितम् ।।८०।।

टीका- दोष-दुर्गुणों का निवारण और सत्प्रवृत्तियों की दैवी सम्पदा को धारण करने की पात्रता का अभिवर्धन ही परम पुरुषार्थ है। अध्यात्म साधना के रूप में प्रचलित अनेकानेक कर्मकाण्डों और विधि-विधानों के पीछे छिपा हुआ उद्देश्य एवं सार तत्व यही है। प्रगति के यही सिद्धान्त भौतिक जीवन की सफलता के कारण बनते हैं और इन्हीं को अपनाने से आत्मोत्कर्ष का परम लक्ष्य प्राप्त होता है। जो इस रहस्य को समझते हैं, वे ही सत्य को जानते हैं। सही मार्ग को अपनाते और सत्य में रहने वाले हजार हाथियों के बल से सुसम्पन्न बनते हैं। सिद्धियाँ उनके चरणों में लोटती हैं। इसी जीवन में वैभव और वर्चस्व के अधिष्ठाता बनकर अपना अनुकरणीय उदाहरण सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत करते हैं। ईश्वर के सहयोगी की भूमिका सम्पन्न करते हुये वे स्वयं तरते और दूसरों को तारते हैं।। ७५-८०।।

ऋषि यहाँ कहते हैं कि जन्म-जन्मान्तरों से संग्रहीत पशु प्रवृत्तियों के सघन कुसंस्कारों, छुद्र वासनाओं को निरस्त करना, कुत्साओं और कुन्ठाओं के नरक से निकाल कर चिन्तन चेतना को उत्कृष्ट और कर्तृत्व को आदर्श बनाने के लिये परिष्कृत दृष्टिकोण एवं विवेक सम्मत कार्य पद्धति का निर्धारण करना-यही मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है। ईश्वर स्मरण, पूजा, पाठ, जप, ध्यान, सत्संग, सेवा, तीर्थ सेवन आदि उपासनात्मक क्रिया-कृत्यों के माध्यम से मनःस्थिति को दिव्य बनाया और उस आधार पर देव संस्कारों की स्थापना की जाती है। उच्चस्तरीय आस्थाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं की अन्तः करण में सघन स्थापना करने और निरन्तर सत्चिंतन एवं श्रेष्ठ कर्मो के साथ अपने को बाँधे रहने वाले ही सुसंस्कारों की सम्पदा अर्जित कर पाते हैं। मानव जीवन की आधारशिला सत्य की नींव पर रखी गई है, उसका लक्ष्य सत्य की खोज करना है। इस यथार्थता को जानने वाले अपने जीवन में मन, वचन और कर्म में एकता रखते हैं तथा इसी जीवन में सत्यनारायण भगवान् की समीपता पाते एवं स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि और समृद्धि के अधिकारी बनते हैं।

जिज्ञासवोऽत्र सन्दर्भे सारं चिन्तनजं त्विदम् ।
स्वयमेवास्ति भाग्यस्य विधाता स्वस्य मानवः ।।८१।।
यज्जीवाय प्रभुस्तस्य पातोत्थान द्वयोरपि ।
स्वातन्त्र्यं प्रददौ ज्ञानं कौशलं च परीक्षितम् ।।८२।।
उत्तीर्णास्तु परीक्षायां ये तेऽभ्युदयमार्गगाः ।
भवन्ति तैश्च प्राप्यन्ते दिव्योपहृति भूतयः ।।८३।।
व्यतिकुर्वन्ति दैवं ये त्वनुशासनमेव हि ।
पतनस्य महागर्ते ते पतन्ति नरा ध्रुवम् ।।८४।।

टीका- हे जिज्ञासुओ ! इस सन्दर्भ में चिन्तन का सार-निष्कर्ष यही है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। जीव को अपने उत्थान और पतन की पूर्ण स्वतन्त्रता देकर ईश्वर ने उसके विवेक और कौशल को परखा है। जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं, वे अभ्युदय के मार्ग पर अग्रसर होते हैं और दिव्य उपहारों की विभूतियाँ प्राप्त करते हैं। जो दैवी अनुशासन का व्यतिरेक करते हैं, वे पतन के गर्त में निश्चित रूप से गिरते हैं।। ८१-८४।।

यहाँ ऋषि प्रथम दिन के ज्ञान सत्र का सार-निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुये स्पष्ट करते हैं कि मानव जीवन पुरुषार्थवाद एवं कर्मवाद पर आधारित है। स्रष्टा किसी का भाग्य नहीं लिखता, क्योंकि वह समदर्शी और निष्पक्ष न्यायकारी है। अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं। जिस प्रकार कल का जमाया हुआ दूध आज दही बन जाता है, उसी प्रकार कल का पुरुषार्थ आज भाग्य बनकर प्रस्तुत होता है। भाग्य और कुछ नहीं पुरुषार्थ की छाया मात्र है। आत्मा का सुनिश्चित विश्वास पुरुषार्थ के ऊपर है और वह उसी की प्रेरणा निरन्तर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रस्तुत करती रहती है। उसके भीतर अनन्त शक्तियों का समुद्र लहरा रहा है। अपनी शक्तियों का सदुपयोग करने एवं आंतरिक तथा बाह्य जीवन में अनुशासन का परिपालन करने वाला हर मनुष्य सभी प्रकार की उन्नति, सफलता, विकास और प्रगति को प्राप्त कर सकता है, जीवनोन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है। पुरुषार्थ में परिस्थितियों को बदल डालने की पूरी-पूरी सामर्थ्य विद्यमान है। जिस प्रकार हिमालय का वक्ष चीर कर निकलने वाली गंगा अपने प्रियतम् समुद्र से मिलने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये तीर की तरह बहती सनसनाती बढ़ती चली जाती है और उसका मार्ग रोकने वाले चट्टान चूर-चूर होते चले जाते हैं, उसी प्रकार पुरुषार्थी मनुष्य अपने लक्ष्य को अपनी तत्परता एव प्रखरता के आधार पर प्राप्त कर सकता है। हर अवरोध को उसका रास्ता छोड़ कर हटना पड़ता है।

भाग्य का दूसरा नाम 'कर्म' भी है। जैसा कर्म किया जाता है वैसा ही फल मिलता है। जैसा बोते हैं उसी तरह फसल काटने को मिलती है। वस्तुतः इस जगत का आधार ही 'कर्म' पर अवलम्बित है। गंभीरता पूर्वक अपनी कार्य पद्धति एवं विचारधारा में रहने वाली त्रुटियों को ढूँढने और सुधारने के लिये तत्परता पूर्वक कटिबद्ध होने वालों का भाग्योदय होकर रहता है। वे भाग्यवान बन कर रहेंगे, यह एक सुनिश्चित विधान है। इसके विपरीत पुरुषार्थ रहित भाग्य भरोसे बैठे रहने वाले अकर्मण्य व्यक्ति अपने परलोक और पुनर्जन्म को अंधकारमय बना कर आत्मा को असंतुष्ट और परमात्मा को अप्रसन्न रखते हैं तथा नारकीय जीवन जीने को विवश होते हैं।

प्रथमस्य दिनस्यास्या जिज्ञासाया: समाहितिम् ।
महत्वमहिताया: स ऋषिवर्यो यथाऽऽददे ।। ८५ ।।
मनीषिणस्तदाकर्ण्य सर्वेसन्तोषमागता: ।
सन्देहानिर्गता ज्ञानदृष्टिरुन्मेषमभ्यगात् ।। ८६ ।।
इत्यत्पि प्रसंगेऽस्मिन् बोद्धुं तेषां महात्मनां ।
जिज्ञासात्ववशिष्य स परं मौनमुपगता: ।। ८७ ।।

टीका- प्रथम दिन की अत्यन्त महत्वपूर्ण जिज्ञासा का समाधान महर्षि याज्ञवल्क्य ने जिस प्रकार किया, उसे सुनकर सभी मनीषियों को बहुत सन्तोष हुआ। भ्रम-सन्देह दूर हुये और ज्ञान-कपाट खुले। इतने पर भी इस प्रसंग में अधिक जानने की जिज्ञासा बनी रही, तथापि मौन रहे।। ८५-८७ ।।

सायंकाले समायाते यथा नियमभेव च ।
प्रथमस्य दिनस्येदं समाप्तं सत्रमुज्जवलम् ।। ८८ ।।
जिज्ञासवस्तु ते कर्म सान्ध्यं कर्तुं च नैत्यिकम् ।
परस्परं नमन्तोऽयु: कुटीरान् ब्रह्मचिन्तना: ।। ८९ ।।

टीका- सायंकाल निकट आने पर नियमानुसार प्रथम दिन का महत्वपूर्ण ज्ञान सत्र समाप्त हुआ। सभी जिज्ञासुगण सायंकाल का नित्य नियम सम्पन्न करने के लिये परस्पर वन्दन-अभिवादन करके ब्रह्मचिन्तन करते हुये अपने-अपने आश्रम-कुटीरों की ओर चले गये।। ८८-८९ ।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो: युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयो:,
महर्षि याज्ञवल्क्य प्रतिपादिते "कर्म व्यवस्था" इति प्रकरणो नाम
।। प्रथमोऽध्याय: ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

आत्मपरिष्कार लोक साधना प्रकरण

द्वितीये दिवसे तत्र नियते समये समे ।
आगता नियत स्थाने मुनयस्ते मनीषिणः ।। १।।
समवेत स्वरे मन्त्रोच्चारे प्रारब्धमुत्तमम् ।
ज्ञानसत्रं प्रश्नकर्ता कश्यपोऽभून्महामतिः ।। २।।
स्वकीयां प्रश्न जिज्ञासां समुपस्थापयँश्च सः ।
याज्ञवल्क्यं ज्ञानसत्राधिष्ठातारं पप्रच्छ च ।। ३।।

टीका- नियत समय पर नियत स्थान पर लोक मंगल की कामना से परिपूरित सभी मुनि मनीषी एकत्रित हुये। सामूहिक मन्त्रोच्चार के उपरान्त ज्ञान सत्र प्रारम्भ हुआ। आज के प्रश्नकर्ता महामनीषी कश्यप थे। उन्होंने प्रथम जिज्ञासा उपस्थित करते हुये प्रस्तुत ज्ञान सत्र के अधिष्ठाता ऋषि श्रेष्ठ याज्ञवल्क्य से पूछा।। १-३।।

कश्यप उवाच-

भवता हे महाभाग ! प्रथमे दिवसे नरः ।
स्वस्य भाग्यस्य निर्माता कथितः स्वयमेव हि ।। ४।।
तद् बोधयन् मनुष्यस्य पतनोत्थानयोरपि ।
कर्मणः प्रक्रियां हेतुं भवान् बोधितवान् प्रभो ।। ५।।
शुभाशुभानि कर्माणि क्रियन्ते कुत एव हि ।
हानीर्जानन् कथं मर्त्यो दुष्कर्म निरतोऽस्ति सः।। ६।।
लाभान् सत्कर्मजान् जानन्नपि नैतानि कुर्वते ।
कथं सदा शुभोपेक्षा चलत्यशुभ संरतिः ।। ७।।
ऋषिवर्य महत्यास्तु सृष्टेः सञ्चालने नरः ।
सहयोगी प्रभोः किं तत् प्रयासं याति नानुगम्।। ८।।
स्पष्टतां नीयतामेतद् रहस्यं येन मानवः ।
भवेदधन्यः प्रभोस्तस्य योजनामनुसंचलन् ।। ९।।

टीका- कश्यप बोले-हे महाभाग ! गत् दिवस आपने मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बताया और उसके उत्थान-पतन का कारण कर्म प्रक्रिया को बताया। वह शुभ-अशुभ कर्म क्यों कर बन पड़ते हैं? हानियों को समझने-समझाने पर भी मनुष्य क्यों दुष्कर्मों में प्रवृत्त होता है? सत्कर्मों का लाभ जानते हुये भी उन्हें करने के लिये क्यों तत्पर नहीं होता ? शुभ की अपेक्षा अशुभ की तत्परता का प्रवाह किस कारण चलता रहता है? हे ऋषि श्रेष्ठ ! इस महान सृष्टि के संचालन में मनुष्य ईश्वर का सहयोगी तो है, किन्तु वह उसके अनुरूप प्रयास क्यों नहीं करता ? इस रहस्य को स्पष्ट करें, ताकि मनुष्य ईश्वरीय योजना के अनुरूप चलकर अपना जीवन धन्य बना सके।। ४-९।।

यहाँ ऋषि ने तीन सूत्रों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है-

(१) अशुभ के प्रति आकर्षण।
(२) शुभ की उपेक्षा।
(३) मनुष्य जीवन के अनुरूप प्रयास का अभाव।

इनमें ऋषि स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य को प्राणि जगत में सर्वोपरि रखा गया है; बुद्धि और विवेक के रूप में अन्य श्रेष्ठ उपादान भी मिले हैं, जिनका अन्य जीवों में सर्वथा अभाव है; पर इतना सब होते हुये भी वह अपने क्रियाकलापों व प्रयास मनुष्य स्तर का नहीं रख पाता और क्षुद्र जीवों जैसी गतिविधियाँ अपना कर स्वयं को उस श्रेय-सौभाग्य से वंचित कर लेता है, जो उसे प्रदान किया गया है। वह चाहे तो शुभ कर्मों में संलग्न कर स्वयं को श्रेष्ठ बना सकता है और भगवान की इस विश्ववाटिका को सींचने-सँवारने में अपनी सहयोगी भूमिका निभा कर धन्य बन सकता है; पर बहुधा आज ऐसा देखा नहीं जाता। समाज का एक बड़ा वर्ग अशुभ कर्मों में ही प्रवृत्त पाया जाता है, यह सबसे बड़ी विडम्बना है।

याज्ञवल्क्य उवाच-

तात ! गूढस्तवैषोऽस्ति प्रश्नः श्रेयस्करस्तथा ।
आकर्ण्यास्य समाधानमरांख्यानां नृणां स्वयम् ।। १०।।
उन्मेषो दिव्यदृष्ट्यास्तु भविष्यति न संशयः ।
भ्रान्तेश्च विरतास्ते स्युर्लोकद्वयरताः सदा ।। ११।।
दिव्याभिः क्षमताभिस्तु सम्पन्नस्तात मानवः ।
सत्यमेतदिमे सन्ति अन्तःस्था बीजरूपगाः ।। १२।।
ऐश्वराणि तु कार्याणि यानि तेभ्य इमाः स्वयम् ।
विकासमधिगच्छन्ति प्रयुञ्जयन्ते च नान्यथा ।। १३।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षया विकासस्य तासां केवलमातुरा: ।
मानवा उपयोगाय त्रुटिरेषैव मौलिकी ।। १४ ।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-हे तात् ! आपका प्रश्न बहुत ही गूढ़ और श्रेयस्कर है। इसका समाधान सुनकर असंख्यों के ज्ञान कपाट खुलेंगे और वे भटकाव से विरत होकर अपने लोक-परलोक को समुन्नत बना सकेंगे। हे तात! मनुष्य दिव्य क्षमता सम्पन्न है-यह सत्य है, किन्तु यह सत्य भी अपनी जगह अटल है कि ये क्षमतायें अन्त: क्षेत्र में बीजरूप में अवस्थित होती हैं। वे ईश्वरीय उद्देश्यों के लिये ही विकसित एवं प्रयुक्त हो सकती हैं, अन्यथा नहीं। मनुष्य उन्हें विकसित करने की अपेक्षा उनके उपयोग के लिये आतुर हो उठता है, यही उसकी मौलिक भूल है।। १०-१४ ।।

यहाँ ऋषि यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि मनुष्य में जो दिव्य क्षमतायें हैं, वह ईश्वरीय अनुदान-उपहार नहीं, वरन् धरोहर स्वरूप हैं। स्पष्ट है, धरोहर चाहे जिस प्रकार की हो, उसके उपयोग के संबंध में व्यक्ति मनमानी नहीं कर सकता। इसमें उस व्यक्ति की सम्मति अभीष्ट होती है, जिसकी अमानत हैं। दिव्य क्षमताओं के संबंध में भी यही बात लागू होती है।

ईश्वर को उच्चस्तरीय निर्धारणायें, उच्चस्तरीय प्रयोजन प्रिय हैं। जो इस निमित्त क्षमताओं के विकास की बात सोचता और तत्परता दिखाता है, वही इन्हें उपलब्ध कर पाता है; किन्तु यदि कोई स्वार्थ के वशीभूत हो ऐसा करना चाहे, तो यह संभव नहीं। यह विशुद्धत: पारमार्थिक है और उसी को यह अनुदान मिल पाता है, जो प्रथम अनुबंध के रूप में परमार्थ परायणता का व्रत ले पाता है।

अन्त:करणमेवास्ति जीवात्मन स आश्रय: ।
जन्मान्तर कुसंस्कारा:क्षेत्रेऽस्मिन् सिञ्चितास्तु ये ।। १५ ।।
हेयस्तरानुरूपाणां प्राणिनामिव तत्र या: ।
आकांक्षास्ता: समुद्भूता: कुर्वन्त्येते भृशं सदा ।। १६ ।।
अध्यात्मनस्तु क्षेत्रस्य आकांक्षैवास्ति मुख्यत: ।
शक्तिस्तस्या:समुद्वेगा आश्रयन्ति तु यं स्तरम् ।। १७ ।।
तेषामेव तु पूर्तौ तन्मन: संस्थानमाचरेत् ।
नरस्य स्वामिभक्तस्य चेष्टा उच्चावचा: स्वयम् ।। १८ ।।
मनसस्तु शरीरं हि सेवकस्तस्य चाज्ञया ।
चेष्टते विवशं तात आकांक्षाजा विचारणा ।। १९ ।।
मता विचारणोत्पन्ना क्रिया ता: केन्द्रिता अपि ।
हेतवोऽन्तरिहोत्थान पतनाधाबोधका: ।। २० ।।

टीका- अन्त:करण ही जीवात्मा का आश्रय स्थल है। इस क्षेत्र में जन्म-जन्मान्तरों के भरे कुसंस्कार हेय स्तर के प्राणियों जैसी आकांक्षायें उत्पन्न करते हैं। आकांक्षा ही अध्यात्म जगत की प्रमुख शक्ति है। उसकी उमंगें जिस स्तर की होती हैं, उसी की पूर्ति में मन:संस्थान को स्वामिभक्त सेवक की तरह ताना-बाना बुनना पड़ता है। मन का शरीर सेवक है। शरीर को मन का आदेश मानना पड़ता है। आकांक्षा से विचारणा और विचारणा से क्रिया बनती है। उत्थान-पतन के आधारभूत कारण अन्त:करण में ही केन्द्रित रहते हैं।। १५-२० ।।

मनुष्य जीवन में आकांक्षा सर्वोपरि है। इस का चक्र जिस दायरे में घूमता है, चिन्तन भी उसी के इर्द-गिर्द चलता है और उसी स्तर की क्रिया के लिये विवश करता है। चिन्तन और क्रिया दोनों मिलकर व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। अब यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह निम्न स्तर की इच्छा, आकांक्षा और क्रिया द्वारा स्वयं को कुमार्गगामी बनाये या उत्कृष्ट चिन्तन और उदात्त क्रिया द्वारा सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करे। वस्तुत: उत्थान-पतन के मूल में व्यक्ति की इच्छा-आकांक्षा की ही प्रमुख भूमिका रहती है। **"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"**-इस सूत्र में भी इसी का प्रतिपादन है।

नचिकेता को जब ब्रह्म की जिज्ञासा हुई, तो उसने उसे पा ही लिया। यमाचार्य के अनेकानेक प्रलोभनों के बाद भी उसकी ब्रह्म को जानने की इच्छा-आकांक्षा मिटी नहीं और अन्तत: जान ही लिया।

रत्नाकर डाकू को जब तक लूट-पाट में मजा आता रहा, विचारणायें, आकांक्षाऐं क्षुद्रस्तरीय बनी रहीं, तब तक तो वह नर-पामर स्तर का दस्यु बना रहा; किन्तु नारद के संम्पर्क में आकर ज्योंही उसका चिन्तन बदला तो क्रिया स्वत: बदल गई और वह रत्नाकर से महान ऋषि वाल्मीकि बन गया।

अंगुलिमाल, अजामिल, अम्बपाली, गणिका आदि में भी जब उत्कृष्ट आदर्शवादिता की ललक उभरी, तो वे हेय से महान बन गये।

ऋषि कहते हैं कि वह आकांक्षा की ही फल-श्रुति है कि जब जिस ओर चल पड़ती है, उसे पाकर ही दम लेती है। प्रकारान्तर से यही उसकी प्रगति-अवगति है।

सञ्चितैस्तु कुसंस्कारैर्मुक्ता नैव तु ये नरा: ।
दुरास्थाश्च दुराकांक्षा: पशुतुल्या: श्रयन्ति ते।। २१ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवस्य शरीरस्यावाप्ति नैव परं मता ।
भाग्यवन्तस्तु ते मर्त्यास्तरान्त आश्रयन्ति ये ।। २२ ।।
मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम् ।
कथ्यते तात विद्वद्भिरन्तःकरणसंज्ञकम् ।। २३ ।।
टीका- संचित कुसंस्कारों से जो छुटकारा नहीं पाते, वे नर पशुओं जैसी हेयस्तर की आस्थायें, आकांक्षाऐं, आदतें अपने ऊपर लादे रहते हैं। मनुष्य शरीर पाना ही पर्याप्त नहीं, सौभाग्यशाली वे हैं, जो मनुष्य स्तर का अन्तःकरण उपलब्ध कर सकें। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का चतुष्टय ही अन्तःकरण कहलाता है।।२१-२३।।

महात्मा गाँधी, सन्त विनोबा, विवेकानन्द आदि अपने मानवी अन्तःकरण के कारण ही सौभाग्यशाली कहलाये और महान बने। निकृष्ट स्तर का विल्वमंगल अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में ही मनुष्य स्तर का अन्तः करण उपलब्ध करने का सौभाग्य अर्जित कर सका।

इन पंक्तियों में ऋषि यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य शरीर प्राप्त करना ही महत्वपूर्ण नहीं है, महत्ता इस बात की है कि व्यक्ति अपने अन्दर उच्चस्तरीय विचारणा, भावना, इच्छा, आकांक्षा, विकसित कर सका या नहीं। जो ऐसा कर पाते हैं, सही अर्थों में मनुष्य वही कहलाते हैं।

तथ्यमेतत् सुविदितं प्रवाहो वारिणः स्वयम् ।
निम्नं धावति भूमेः सा गुरुत्वाकर्षणेरिता ।। २४ ।।
सुशक्तिः सेव, सर्वास्ताः पाशव्यः शक्तयःसदा ।
सक्रियाः सन्ति पातायातिमात्रं प्रेरयन्ति च ।। २५ ।।
आत्मानं तु ततो मोक्तुं पौरूषं भावनामयम् ।
कर्तुं योग्या नरा एव उच्चां गच्छन्ति संस्थितिम् ।।२६।।
उच्चान् लोकाश्च गच्छन्ति सद्गतीः प्राप्नुवन्ति च ।
आत्मिकीः सुविभूतीस्ताः भौतिकीः सम्पदा अपि ।।२७।।
उपलब्धुं नरा आत्म परिष्काररतास्तु ये ।
सफलास्ते भवन्त्येव पराक्रम सु साधनाः ।। २८ ।।
टीका- यह एक सुविदित तथ्य है कि पानी का प्रवाह स्वभावतः नीचे की ओर होता है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति की तरह पाशविक प्रवृत्तियाँ निरन्तर सक्रिय रहती हैं और पतन के लिये आकर्षक दबाव डालती हैं। उससे मुक्त होने का भावनात्मक पुरुषार्थ कर सकने वाले ही ऊँचे उठते हैं। वे ही उच्च लोकों को गमन करते व सद्गति प्राप्त करते हैं। आत्मिक विभूतियों और भौतिक सम्पदाओं को उपलब्ध करने में ऐसे आत्म परिष्काररत पराक्रमी ही सफल होते हैं। ऐसा पराक्रम ही साधना कहलाता है।। २४-२८।।

प्रदाह की दो धारायें हैं-एक अधोगामी और दूसरी ऊर्ध्वगामी। अधोगामी धारा स्वतः गतिशील होती है; इसमें किसी अतिरिक्त बल अथवा प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ती, किन्तु ऊर्ध्वगामी धारा को व्यक्तिगत प्रयत्न-पुरुषार्थ के माध्यम से प्रवाहमान बनाया जाता है, तभी उसकी निरन्तरता बनी रहती है।

पतंग उड़ाते समय उसे ऊपर बनाये रखने के लिये सदा डोरी का नियंत्रण उस पर बनाये रखना पड़ता है और समय-समय पर डोरी की खींचतान करनी पड़ती है। ज्योंहि डोरी हाथ से छूटती, व नियंत्रण हटता हैं, पतंग का प्रवाह निम्नगामी हो जाता है, और वह गिर पड़ती है। इसी प्रकार पानी का प्रवाह यदि मोड़ना हो, उसे नीचे से ऊपर की ओर ले जाना हो, तो इसके लिये बड़े स्तर का प्रयास अभीष्ट होता है और विद्युत मोटरों जैसे यन्त्रों का सहारा लेना पड़ता है। इससे कम में वह प्रयोजन सधता नहीं है।

ऋषि यहाँ कहते हैं कि हमारी दुष्प्रवृत्तियाँ भी इसी स्तर की हैं। उसकी गति सदा नीचे की ओर होती है और गुरुत्वाकर्षण की तरह अधोगामी बनाने की अद्भुत शक्ति रखती है। इनसे उबरने और अपनी वृत्तियों को मोड़ने के लिये व्यक्ति को पतंगबाज एवं मोटर स्तर का प्रयत्न-पुरुषार्थ करना पड़ता है। इसी पराक्रम को साधना की संज्ञा दी गई है।

यों साधना आत्मिक शक्ति सम्पादन के लिये अपनाये गये क्रिया-कृत्यों को भी कहते हैं; पर ऋषि का कहना है कि व्यावहारिक जीवन में दुष्प्रवृत्तियों से मुक्त होना और अपने को परिष्कृत बनाना ही सही अर्थों में सच्ची साधना है। जो यह पराक्रम कर पाते हैं, वही पारलौकिक जीवन में स्वर्ग-मुक्ति जैसा आनन्द और इहलौकिक जीवन में तृप्ति, तुष्टि, शान्ति जैसी आत्मिक व धन-ऐश्वर्य जैसी भौतिक सम्पदाओं का लाभ उठा पाते हैं।

सन्तुष्टस्तु बभूवासौ जिज्ञासुः कश्यपो मुनिः ।
अन्यज्ज्ञातुं स औत्सुक्यात्प्राज्ञं संबोध्यचागदीत् ।।२९।।
कश्यप उवाच-
इदं ज्ञातम भूदेव ! मानवः क्षमता निजाः ।
उपयोक्तुं वर्धितुं च विधौ मुह्यन् पतत्यधः ।। ३० ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु जानन्ति ये त्वेतत् साधनां च पराक्रमम् ।
कथं क्रियान्विते कुर्युः प्रक्रियां स्पष्टय प्रभोः ।। ३१ ।।
टीका- जिज्ञासु कश्यप इस समाधान से सन्तुष्ट तो हुये, परन्तु और भी अधिक जानने की उत्सुकतावश उन्होंने महाप्राज्ञ को सम्बोधित करते हुये अपना दूसरा प्रश्न प्रस्तुत किया। कश्यप बोले- हे देव ! यह तो विदित हुआ कि मनुष्य अपनी क्षमताओं के सदुपयोग एवं उन्हें विकसित करने की आवश्यकता को न समझ पा सकने के कारण ही गिरता है; किन्तु जो इसे समझ पाते हैं वे इस साधना पराक्रम को कैसे क्रियान्वित करें, इस प्रक्रिया को स्पष्ट करें।। २९-३१।।

महाप्राज्ञो याज्ञवल्क्य उवाचात्र विचारयन् ।
तात आत्मपरिष्कारे निरतो ना हि बुद्धिमान ।। ३२ ।।
साधनात्मकरूपा या प्रयत्न परिशीलता ।
सैव तान् सार्वभौमाया उन्नतेर्दिव्यदानकैः ।। ३३ ।।
युतान् करोति ये चैतदवलम्बन संयुताः ।
नरजन्मस्थ सौभाग्यं श्रेयस्तेऽथापि यान्त्यलम् ।। ३४ ।।
अस्या आवश्यकतां ये न जानन्त्यपि संरताः ।
वासनेन्द्रिय लिप्साया प्रदर्शन कुदर्पके ।। ३५ ।।
भ्रमन्ति मृगतृष्णायां बहुमूल्यैश्च हापिताः ।
सौभाग्यैरात्मसंस्कार उन्नत्यै वर्त्मकेवलम् ।। ३६ ।।
टीका- महाप्राज्ञ याज्ञवल्क्य विचारकर बोले-हे तात! आत्मपरिष्कर में निरत मनुष्य ही सच्चे अर्थों में बुद्धिमान हैं। साधनात्मक प्रयत्नशीलता ही उन्हें सर्वतोमुखी प्रगति के दिव्य वरदानों से लादती है। जो इस अवलम्बन को अपनाते हैं, वे मनुष्य जन्म के साथ जुड़े हुये श्रेय सौभाग्य का लाभ लेते हैं। जो इसकी आवश्यकता नहीं समझते, इन्द्रियों की लिप्सा-वासनाओं की तृष्णा और प्रदर्शन की अहंता में उलझे रहते हैं, वे भ्रम जंजालों में भटकते और अपने बहुमूल्य सौभाग्य को हाथ से गँवा देते हैं। उत्थान का एक ही उपाय है- 'आत्मपरिष्कार'।। ३२-३६।।

महामुनि कश्यप की जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत करते हुये याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि मनुष्य का उत्थान और विकास आत्मशोधन के साथ जुड़ा हुआ है। जो उत्थान की आवश्यकता समझते और तदनुरूप जीवनक्रम अपनाते हैं, इस दिशा में तत्परता दिखाते हैं, वे सर्वतोमुखी प्रगति करते और मनुष्य जीवन के श्रेय-सौभाग्यों से कृत-कृत्य होते हैं; किन्तु जो इसकी उपयोगिता-आवश्यकता नहीं समझते और वासना, तृष्णा, अहंता के क्षुद्र प्रयोजनों तक ही सीमित रहते हैं, वे मृग तृष्णा की तरह भटकते हुये अपनी जीवनलीला समाप्त कर देते एवं मनुष्य जन्म के दिव्य वरदानों से सदा के लिये वंचित रह जाते हैं।

तुलसी दास जब तक इन्द्रियों और वासनाओं के कुचक्र में फँसे रहे, तब तक वे सामान्य से व्यक्ति बने रहे और सामान्य स्थिति में पड़े रहे; पर जैसे ही इन क्षुद्र लिप्साओं से उबरने की उनकी ललक जगी और इसके लिये साधनात्मक प्रयास आरंभ किया, तो वे रामायण के प्रणेता तुलसीदास बन गये।

कालिदास की पत्नी के प्रति जब मोह भंग हुआ तो संस्कृत के महान कवि बन गये। उनकी अमर कृतियाँ स्वतः उनकी विरुदावली गाती हैं।

प्रकारान्तर से यह आत्मपरिष्कार की ही फलश्रुतियाँ हैं; पर देखा जाता है कि समाज में बहुलता आज लोभ-लिप्सा के निकृष्ट उद्देश्यों में संलिप्त लोगों की है। ऋषि कहते हैं कि जो इनसे ऊपर उठने की बात सोचते हैं और तदनुरूप रीति-नीति अपनाते हैं बुद्धिमान वस्तुतः वही हैं, उत्थान ऐसे ही लोगों का हो पाता है।

कारणंपतनस्यैकं बहुसंख्यकसंमताः ।
नरास्तु पशुतुल्या ये तेषामन्धानुसंसृतिः ।। ३७ ।।
विज्ञा विवेकवन्तो हि श्रयन्ते दूरदर्शिताम् ।
स्वतंत्रं गततथ्यास्ते यान्ति सिद्धान्तसंमतम् ।। ३८ ।।
न भवन्ति परापेक्षाः सिद्धान्तानां क्रियान्वितौ ।
स्वंदृष्टिकोणं चिन्वतो रीतीर्नीती श्रयन्ति स्वाः ।।३९।।
आदर्श मार्गे चलितुं शक्ता एकाकिनस्तु ते ।
मनस्विनो वदन्त्येतास्तेजस्विन इहापि च ।। ४० ।।
सार्थक्यं जीवनस्यैतेऽनुभवन्ति नरा मुने ।
निश्चितं च स्वतो धन्या वदान्या जगतीतले ।।४१।।
टीका- पतन का एक ही कारण है-बहुमत वाले नर-पशुओं के चिन्तन और व्यवहार का अन्धानुकरण। विज्ञजन, विवेकवान होते हैं, दूरदर्शिता अपनाते हैं, तथ्यों पर स्वंतत्र विचार करते और सैद्धान्तिक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। सिद्धान्तों के क्रियान्वयन में वे परमुखापेक्षी नहीं होते। वे अपना दृष्टिकोण स्वयं बनाते और अपनी रीति-नीति स्वयं निर्धारित करते हैं। आदर्श मार्ग पर एकाकी चल सकने वाले साहसी लोग ही मनस्वी-तेजस्वी कहलाते हैं। जीवन की सार्थकता का अनुभव निश्चित रूप से इसी स्तर के लोगों को होता है। हे मुने ! यही लोग पृथ्वी पर धन्य हैं।। ३७-४१।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ नरपशु स्तर के व्यक्ति और विवेकशील के मध्य का अन्तर स्पष्ट किया जा रहा है। नरपशुओं की तुलना भेड़ों से की गई है। कहा जाता है कि भेड़ों की चाल अन्धी होती है। एक भेड़ जिस दिशा में चल पड़ती है,पूरा भेड़-समुदाय उसी का अनुगमन करने लगता है, भले ही अग्रिम भेड़ गड्ढे में गिर रही हो, इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं होती और सभी उसके साथ-साथ गड्ढे में गिर पड़ती हैं। अन्धीचाल-अन्धानुकरण इसे ही कहा गया है।

नरपशु इसी स्तर के होते हैं। वे अपना स्वतंत्र चिन्तन व विवेक का प्रयोग नहीं करते और प्रवाह में बहते हैं। हवा जिस दिशा में बहती है, उसी में सम्मिलित हो जाते हैं; धारा को चीर कर प्रवाह बदलने का साहस उनमें नहीं होता, फलतः पतन-पराभव के गर्त्त में जा गिरते हैं।

आज समाज में ऐसे ही लोगों का बाहुल्य है। विभिन्न प्रकार की प्रथा-परम्पराएँ, अवांछनीयताएँ, मूढ़-मान्यताएँ, जिनकी कि आज की परिस्थितियों में कोई औचित्य नहीं, ऐसे ही नरपशुओं के कारण जी रही हैं।

जबकि विवेकशीलों को दूरदर्शी कहा गया है। दूरगामी परिणतियों को ध्यान में रख कर वे अपनी रीति-नीति बनाते हैं। तथ्यों पर उनका स्वतंत्र चिन्तन और निष्कर्ष होता है। उनकी अपनी कसौटी पर खरा उतरने के बाद ही वे किसी तथ्य पर विचार करते और उसे क्रियान्वित करने की बात सोचते हैं तथा समय आने पर प्रवाह को चीर कर मछली की तरह आगे बढ़ने की भी सामर्थ्य रखते हैं।

याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि ऐसे ही लोग अपना मनुष्य जीवन सार्थक और धन्य बना पाते हैं।

याज्ञवल्क्य उवाच-

तात आत्मपरिष्कारश्चतुर्विध इहोदितः ।
समीक्षा संस्कृतिश्चास्य विकासो निर्मितिस्तथा।। ४२।।
मनुष्यस्तरतो हेया मान्यताः प्रकृतीस्तथा ।
दुष्प्रवृत्तीश्च विज्ञाय समीक्षक इव स्वयम् ।। ४३।।
हानीस्तासां च विज्ञाय तासां निष्कासनस्य च।
अनिवार्यानुभूतिस्तु प्रोक्तमात्म समीक्षकणम् ।।४४।।

टीका- याज्ञवल्क्य ने कहा-हे तात ! आत्म परिष्कार के चार उपाय हैं - आत्म समीक्षा, आत्म सुधार, आत्म निर्माण और आत्म विकास। मनुष्य स्तर से गये बीते स्तर की मान्यताओं और आदतों को अपने व्यक्तित्व के स्तर की दुष्प्रवृत्तियों को कटु समीक्षक की तरह ढूँढ निकालना, उनकी हानियों को समझना तथा उनके निष्कासन की आवश्यकता अनुभव करना ही आत्म समीक्षा है।। ४२-४४।।

विभिन्न योनियों से गुजरता हुआ जीव मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। विकास की इस लम्बी यात्रा के दौरान वह निम्न योनियों के निम्न संस्कारों को पूरी तरह नहीं छोड़ पाता और उनके कुछ संस्कार अन्तः करण में जमे रह जाते हैं। मनुष्य जन्म में कषाय-कल्मषों के रूप में विद्यमान इन हेय संस्कारों को हटाना आवश्यक होता है, अन्यथा इस योनि की अपनी गौरव गरिमा घटती है। आत्मशोधन की इसी प्रक्रिया को आत्म-परिष्कार के नाम से पुकारा गया है। इसके लिये मनुष्य का स्वयं का प्रयत्न-पुरुषार्थ अभीष्ट होता है। जो इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने का पराक्रम दिखा पाते हैं, वह महामानव, देवमानव स्तर के ऋषि तुल्य बन जाते हैं; पर जो ऐसा नहीं कर पाते, वे क्षुद्र स्तर में पड़े-पड़े ही अपना जीवन गुजार देते है।

आत्मशोधन की इसी प्रक्रिया को समझाते हुये ऋषि यहाँ इसके चार आवश्यक सोपानों का वर्णन करते हैं, जिसका प्रथम चरण आत्म-समीक्षा है। आत्म समीक्षा अर्थात् मनुष्य जन्म की गौरव-गरिमा और उद्देश्य को समझाते हुये अपने अन्दर विद्यमान हेय स्तर की इच्छाओं-आकांक्षाओं, आदतों, मान्यताओं को खोज निकालना, इनके दुष्परिणामों को समझना और इनके निष्कासन की बात सोचना।

पर विडम्बना यह है कि समाज में आज लोग इस आवश्यकता को अनुभव नहीं करते, फलतः इस सन्दर्भ में उनसे किसी प्रकार का प्रयास भी करते नहीं बन पड़ता।

स्वास्मिन्नवांछनीयं यद् गरिम्णः प्रतिकूलगम्।
निकृष्ट प्राणियोग्यं यत्तस्यदूशपसारणम् ।। ४५।।
तथा नरगरिम्णश्चानुरूपं दृष्टिकोणकम् ।
स्वीकर्तुं योजनारम्भोऽन्वितिश्चास्यात्मसंस्कृतिः ।। ४६ ।।
आत्मन आत्मनेत्यर्थं संघर्षः कर्तुमिष्यते ।
चर्चितः स तपश्चर्या मनोनिग्रहसंयमैः ।। ४७।।
अस्मिन्नेव शुभे मार्गे ये चलन्ति तु मानवाः।
आत्मसंस्कारवन्तस्ते जगत्कुर्युः सुसंस्कृतम् ।।४८।।

टीका- अपने में जो अवांछनीय है-मानव गरिमा के प्रतिकूल तथा निकृष्ट योनि वाले प्राणियों के योग्य है-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे हटाने तथा मानवी गरिमा के अनुरूप दृष्टिकोण अपनाने की योजना बनाना-उसे कार्यान्वित करना-'आत्मसुधार' है। इसके लिये अपने आपके साथ कठोर संघर्ष करना पड़ता है। इसी पराक्रम को मनोविग्रह, संयम, साधना तथा तपश्चर्या के नाम से जाना जाता है। इसी मार्ग पर चलने वाले आत्म सुधार कर पाते हैं और जगत को भी सुधार देते हैं।। ४५-४८।।

आत्म परिष्कार का दूसरा चरण ऋषि ने आत्म-सुधार के रूप में बताया है। इसमें जीवन की ऐसी रीति-नीति निर्धारित और क्रियान्वित करनी पड़ती है, जिससे अपने अन्दर की अवांछनीयताओं, अनुपयुक्तताओं, दुष्प्रवृत्तियों, हेय स्तर की इच्छाओं-आकांक्षाओं को कठोरतापूर्वक निष्कासित कर स्वयं को सुवर्ण की भाँति खरा बनाया और मानवी गरिमा के अनुकूल जीवनचर्या अपनाया जा सके।

आत्मशोधन प्रक्रिया का यह सबसे कठिन चरण है। इसमें पहाड़ को छेड़ने वाली दीमक जैसा धैर्य और संकल्प बल का परिचय देना व प्रतिकूल प्रवृत्तियों से कठोर संघर्ष कर उन्हें परास्त करना पड़ता है। इससे कम में वह पुरुषार्थ नहीं बन पड़ता, जिससे आत्म सुधार का प्रयोजन सध सके। प्रकारान्तर से यही पुरुषार्थ संयम साधना, मनोनिग्रह और तपश्चर्या के नाम से जाना जाता है। जो इस प्रक्रिया का अवलम्बन लेते हैं, वे निश्चित रूप से अपना और संसार का सुधार करते हैं।

नवीनस्तु शुभारम्भ, आत्मनिर्मितिरुच्यते ।
यासां तु सत्प्रवृत्तीनामभ्यासो ऽभून्न जीवने ।। ४९।।
जीवनस्य तु चर्यायां तासां नव्यतयान्विति:।
नरस्य सृजनात्मिक्या: प्रवृत्तेस्तत्प्रमाणकम् ।।५०।।
आत्मनिर्माणमेवास्ति भाग्यनिर्माणमुज्जवलम्।
इत्थं यत्नरता विश्व भविष्यद् भावयन्त्यलम् ।।५१।।
अवांछनीयतोच्छेदो वाञ्छितस्य च संस्थिति: ।
पूरकौ तौ मतौ नूनं विद्वदिभस्तु परस्परम् ।।५२।।
अनुपयुक्त संस्कार उपयुक्त प्रतिष्ठिति: ।
मिलित्वा कायकल्पस्य रूपे दृष्टिपथं व्रजेत् ।।५३।।
समर्था य इदं कर्तुं कृतकृत्या भवन्ति ते ।
भाग्यवन्तश्च कथ्यन्ते मोदन्त उभयत्र च ।।५४।।

टीका- 'आत्म-निर्माण नया शुभारम्भ है। जिन सत्प्रवृत्तियों का अभी अभ्यास नहीं हो पाया है, उनको नये सिरे से जीवन-चर्या में समावेश करने का कार्य मनुष्य की सृजनात्मक विशेषता का प्रमाण है। आत्म-निर्माण का नाम ही भाग्य-निर्माण है। ऐसे प्रयत्नरत ही विश्व के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकने में समर्थ होते हैं। अवांछनीयता का निष्कासन और वांछनीयता का संस्थापन परस्पर पूरक हैं-ऐसा विद्वानों का मत है। अनुपयुक्त का सुधार और उपयुक्त का प्रतिष्ठान मिलाकर ही कायाकल्प के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। जो यह कर सकते हैं, वे ही कृतकृत्य होते हैं और इहलोक तथा परलोक दोनों में सदा प्रसन्न रहते हैं।। ४९-५४।।

निर्माण स्वयं में एक कला है। यह चाहे आत्मिक क्षेत्र का हो अथवा भौतिक क्षेत्र का, इसमें कुशल कारीगरी का परिचय देना पड़ता है, संयम व धैर्य अपनाना पड़ता है, तभी समग्र सुन्दरता की बात बनती है। मूर्तिकार यदि मूर्तियाँ बनाने में जल्दीबाजी करें, तुर्त-फुर्त में वह उन्हें गढ़ना चाहे तो, वह मात्र खिलवाड़ बन कर रह जायेगा। उसका वह मूल्याकंन नहीं हो पायेगा, जो तत्परतापूर्वक बनायी गई मूर्ति का हो। इसके लिये उस स्तर का परिश्रम आवश्यक है।

आत्मनिर्माण भी ऐसी ही प्रक्रिया है। इसमें नयी सत्प्रवृत्तियों का जीवन में समावेश करना पड़ता है धीरे-धीरे उन्हें व्यवहार व आचरण में उतारना पड़ता है। इस प्रकार अनगढ़ व्यक्तित्व को सुगढ़ साँचे में ढालने का कार्य प्रारम्भ होता है। फिर लगातार प्रयास के द्वारा उसे तरासा और आकर्षक बनाया जाता है। तब कहीं जाकर व्यक्तित्व की एक ऐसी अभिनव व उत्कृष्ट संरचना खड़ी हो पाती है, जिस पर गर्व किया जा सके। इस स्तर से कम में न तो मूर्ति बनाने वाले की महिमा है और न व्यक्तित्व की गरिमा। संगतरास की महिमा विग्रह की सुगढ़ता, उसकी जीवन्तता में होती है, जबकि व्यक्तित्व की गरिमा उसकी उत्कृष्टता व श्रेष्ठता में है। इसी का अभ्यास-प्रयास इस प्रक्रिया के दौरान किया जाता है। प्रकारान्तर से यही व्यक्तित्व-निर्माण हैं। आत्म-निर्माण इसी को कहते हैं।

आत्मनस्तु विकास: स कथित आत्मविस्तर:।
महाव्यक्तित्व सम्पन्ना वसुधैव कुटुम्बकम् ।।५५।।
सिद्धान्तं जीवने नूनमन्वयन्ति दिने दिने ।
विभजन्तस्तु दु:खानि सुखानि वण्टयन्ति ते ।।५६।।
स्वीया एव समे तेषां यदात्मत्वं विवर्धते ।
उदारसहकारित्वं विकासमधिगच्छति ।।५७।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकीर्णस्वार्थ संत्यागो भवबन्धन मोचनम् ।
चिन्तनस्य प्रयासस्य सत्स्थितिर्मुक्तिरुच्चते ।। ५८ ।।
आदर्शार्पित व्यक्तित्वा ईश्वरैक परायणा: ।
कथ्यन्ते लघ्वहं भूम्नि दत्त्वा ते परमात्मताम् ।। ५९ ।।
यान्ति आत्मनं उच्चां तां पदवीं जीवनस्य च ।
लक्ष्यमेतदभीष्टं च परमात्मन एव तु ।। ६० ।।
स्तरमेनं तु यं यान्ति पूर्णतां प्राप्नुवन्ति ते ।
मन:स्थितिर्गतिश्चैव येषां चाऽपि गते:स्तरम् ।। ६१ ।।
सच्चिदानन्दसान्निध्यं परब्रह्मण एव ते ।
आजुवन्ति सदा दिव्यं दर्शनं कुर्वते प्रभो ।। ६२ ।।
दैवानिर्क्यनीयस्य सन्तोषस्य सदैव तु ।
उल्लासस्य च कुर्वन्ति तेऽनुभूतिं नरर्षभ् ।। ६३ ।।

टीका- 'आत्मविकास' का अर्थ है-आत्म विस्तार। महान व्यक्तित्व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित करते हैं। वे दूसरों का दु:ख बँटाते और अपना सुख बाँटते हैं। उनके लिये सभी अपने होते हैं। आत्मीयता बढ़ेगी तो उदार सहकारिता भी विकसित होगी ही। संकीर्ण स्वार्थपरता से छुटकारा पाना ही भवबंधनों से छूटना है। चिन्तन और प्रयास का सदुद्देश्यों में लग जाना ही मुक्ति है। आदर्शों के लिये समर्पित व्यक्ति ही ईश्वरपरायण कहलाते हैं। क्षुद्र अहंता को विराट् में समर्पण करने वाले ही आत्मा की सर्वोच्च पदवी 'परमात्मा' को प्राप्त करते हैं। यही जीवन का लक्ष्य और परमेश्वर को अभीष्ट है। पूर्णता इसी स्तर पर पहुँचने वाले को प्राप्त होती है। जिनने अपनी मन:स्थिति और गतिविधि इस स्तर की बना ली, उन्हें निरन्तर सच्चिदानन्द परब्रह्म की निकटता का दिव्य-दर्शन होता है और देवताओं के समान अनिर्वचनीय सन्तोष-उल्लास का सतत् अनुभव होता रहता है।। ५५-६३।।

ऋषि यहाँ आत्मविकास के चार सूत्र बताते हैं :-

(१) संकीर्ण स्वार्थपरता से छुटकारा पाना
(२) चिन्तन-प्रयास को सत्प्रयोजनों में लगाना
(३) आदर्शों के प्रति व्यक्ति का समर्पण
(४) क्षुद्र अहंता का विराट् में समर्पण

आत्मविकास अर्थात् आत्मविस्तार के प्रारम्भिक चरण के रूप में व्यक्ति को अपनी संकीर्णताओं से ऊपर उठना पड़ता है, *स्वजन-सम्बन्धियों* छोटे दायरे से निकल कर बाहर आना पड़ता है, अपने लाभ और भलाई के बारे में न सोच कर सबसे पहले समाज के बारे में सोचना और यह निर्धारित करना पड़ता है कि जो कार्य किया जा रहा है, उससे समाज को क्या और कितना लाभ है, इसी में इस प्रथम शर्त की पूर्णता है। प्रकारान्तर से इसमें अपने संकीर्ण स्वार्थ को उच्चस्तरीय स्वार्थ की दिशा में मोड़ना और दृष्टिकोण को इतना व्यापक बनाना पड़ता है कि व्यक्ति विश्व को अपने ही परिवार के रूप में स्वीकार कर सके। इतना बन पड़ने के बाद इस विश्व-परिवार को समुन्नत बनाने की दिशा में कदम बढ़ाने पड़ते है। चिन्तन और प्रयास को ऐसे सत्प्रयोजनों में नियोजित करना पड़ता है, जिससे सिरों को उठाने, पिछड़ों को बढ़ाने, दुखियारों का दु:ख बँटाने और सुख बाँटने, निर्धनों की सहायता करने जैसे सदुद्देश्य सध सकें। जीवन-मुक्ति इसे ही कहा गया है।

स्वर्ग-मुक्ति की पौराणिक मान्यता तो परलोक संबधी है। इसका मिलना-न-मिलना मरणोत्तर जीवन की बात है। लौकिक जीवन में मनुष्य उसका सुखोपभोग कहाँ कर पाता है ? पर ऋषि कहते हैं कि जो स्वयं को ऐसे सत्प्रयोजनों में नियोजित कर लेता है, वह हाथों-हाथ इसी जीवन में स्वर्ग मुक्ति का आनन्द लाभ लेता है। सीमित-संकीर्ण परिधि में पड़ा रहना ही भव-बन्धन कहा गया है। इससे बाहर निकलना ही व्यामोहों से छूटना और भवबन्धनों से मुक्ति है।

पर आज बहुधा देखा यह जाता है कि बहुसंख्य लोग कूपमण्डूक की तरह अपनी ही दुनिया में खोये रहते हैं। समय और संसार को उनकी कितनी आवश्यकता है, इसकी तनिक भी परवाह किये बिना अपने निरंकुश कार्यप्रणाली में संलग्न रह कर अपने ही प्रवाह में प्रवाहमान होते हैं, उसी गति में बहते रहते है, भले ही उससे देश और समाज को कितनी ही हानि क्यों न हो; किन्तु वे अपना लाभ लेने से चूकते नहीं। सत्य प्रयोजन और उत्कृष्ट चिन्तन अपनाने की बात तो दूर रही, वे स्वयं को इसके आस-पास भी नहीं महसूस कर पाते।

कश्यप उवाच-

अन्त:क्षेत्र परिष्कारं चतुश्चरण लक्षणम् ।
व्याख्याया भवता नूनं वयं सर्वेऽनुकम्पिता: ।। ६४ ।।
कृपयेदं भवान् ब्रूतां यन्नरेषु कथं त्विमान् ।
सिद्धान्तान् हि फलीभूतान् कर्तुं सा क्षमतोदयेत् ।। ६५ ।।
बहिरंगान्तरंगे तेऽप्यभ्यास प्रक्रिये तु ये ।
ताभ्यामिमाँश्चगृहणन्त: कथं सिद्धीरवाप्नुयु: ।। ६६ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- कश्यप बोले-हे प्रभु ! आपने अन्तः क्षेत्र के परिष्कार के चारों चरणों को स्पष्ट कर के हम सभी पर बड़ा अनुग्रह किया है। अब कृपा करके यह और बतायें कि मनुष्य में इन सिद्वान्तों का फलीभूत करने की क्षमता कैसे विकसित हो? अंतरंग एवं बहिरंग अभ्यास प्रक्रिया द्वारा उन्हें आत्मसात् करते हुए साधक सिद्धियाँ कैसे प्राप्त करें? ।। ६४-६६ ।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

तात प्रश्नस्तवैषोऽस्ति विचार परिशीलितः ।
तथ्यान्वेषि मतिद्योत्यः सावधानं ततः शृणु ।। ६७ ।।
उपायौ द्वौ मतावात्म समीक्षण कृते तथा ।
आत्मसंस्कृति निर्माण विकासानां कृतेऽपिच ।। ६८ ।।
एकान्तचिन्तनं चापि मननं प्रथमस्तथा ।
स्वाध्यायः स च सत्संगो बाह्य साधनजौ मुने ।। ६९ ।।
चिन्तने वर्तमानस्य भूतस्य पर्यवेक्षणम् ।
मनने तु विकासाग्रयोजना निर्मितिस्तु या ।
ततो निर्धारणोन्मेषः साहसोत्साहजो भवेत् ।। ७० ।।
स्वाध्यायो जायते तस्य साहित्यस्य सतो मुने ।
आत्मनः स्तर मुन्नेतुमर्हमन्तः समाहितुम् ।। ७१ ।।
उत्कृष्ट चिन्तना ये तु सादर्शचरितास्तथा ।
परमार्थ परास्तेषां नृणां संग सुसगंति ।। ७२ ।।
तुलितः पारदेनैव मणिना निर्मलेन तु ।। ७३ ।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-हे तात् ! यह प्रश्न आपकी विचारशीलता एवं तथ्यान्वेषी बुद्धि का परिचायक है। आप सभी इस विवेचन को ध्यानपूर्वक सुनें-

आत्म समीक्षा, आत्म सुधार, आत्म निर्माण और आत्म विकास की चार सीढ़ियों को पार करने के लिए दो उपाय हैं-एकान्त विचारणा के रूप में चिन्तन और मनन। दूसरा बाह्य साधनों के सहारे उपलब्ध होने वाला स्वाध्याय-सत्संग। 'चिन्तन' में भूत और वर्तमान का पर्यवेक्षण किया जाता है। 'मनन' में विकासोन्मुख योजना बनाने से लेकर निर्धारणों को कार्यान्वित करने की उत्साह और साहस से भरी-पूरी तैयारी की जाती है। 'स्वाध्याय' उस साहित्य का होता है जो आत्मिक स्तर ऊँचा उठाने और अन्तःक्षेत्र की गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ हो सके। सत्संग उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श चरित्र वाले परमार्थ परायण महामानवों के सान्निध्य को कहते हैं। उसे पारसमणि की उपमा दी गई है ।। ६७-७३ ।।

फैक्ट्री में कर्मचारियों के ऊपर एक निरीक्षक होता है। समय-समय पर वह उनके द्वारा किये कार्यों का निरीक्षण-पर्यवेक्षण करता रहता है और जो गलतियाँ देखता है, उसे सुधारने का परामर्श देता है। इससे दोनों को लाभ होता है-कर्मचारियों की गुणवत्ता बढ़ती, भूल घटती है और फैक्ट्री को भी आर्थिक घाटा नहीं उठाना पड़ता। यह निरीक्षण का परिणाम हुआ।

आत्मक्षेत्र में-व्यक्तिगत जीवन में भी ऐसी ही रीति-नीति अपनानी पड़ती है। मनुष्य से गलतियाँ होना स्वाभाविक है। जाने-अनजाने उससे छोटे-बड़े स्तर की गलतियाँ होती रहती है। समय रहते यदि उनका सुधार परिष्कार नहीं किया गया, तो वह जीवन का एक अंग बन जाती है, आदत में सम्मिलित हो जाती है और उनका निष्कासन कठिन हो जाता है, इसलिए समय-समय पर आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता पड़ती है, जिसमें यह देखा जाता है कि जीवन-प्रवाह सही दिशा में बह रहा है या नहीं। कोई ऐसी गलती या त्रुटि तो नहीं हो रही, जो उसे दिग्भ्रान्त करने का सरंजाम खड़ी कर दे-भूत और वर्तमान संबंधी इसका लेखा-जोखा तैयार करना पड़ता है। यही चिन्तन है। आत्मचिन्तन के रूप में इसी का सफल सम्पादन किया जाता है।

फिर मनन की बारी आती है। आत्मचिन्तन के दौरान ढूँढी गयी भूलों को सुधारने का प्रयास इसमें आरंभ किया जाता है और साथ-साथ ऐसी गतिविधियाँ अपनानी और योजनाएँ बनानी पड़ती हैं, जो जीवन को समुन्नत बना और ऊँचा उठा सकें।

यह चिन्तन-मनन की प्रक्रिया हुई; किन्तु इससे भूल सुधार और आत्मपरिष्कार की आधी-अधूरी ही बात बनती है । आगे के उत्थान के लिए महामानवों-मनीषियों का आश्रय लेना पड़ता है। स्वाध्याय-सत्संग इसी प्रयोजन की पूर्ति करते हैं। इनकी आवश्यकता आज इसलिए भी अधिक महसूस की जा रही है, कि समाज तमसाच्छन्न है। चारों ओर असुरता और अराजकता का ही साम्राज्य है। इनमें जकड़ा मनुष्य अशुभ सोचता और अनर्थ ही करता है। एकपक्षीय दबाव से ऐसी ही परिणति की आशा भी की जा सकती है। जब एक पक्ष के ही बयान, सबूत और वकील काम करे, दूसरी ओर से कोई कुछ कहने-करने वाला ही न हो, तो फिर मुकदमे का फैसला एक तरफा ही होगा। श्रेष्ठता की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तियों को भी हमारे ऊपर प्रभाव डालने का अवसर मिले, तो उत्कृष्टता की दिशा में भी कुछ करते बन पड़े यह कार्य स्वाध्याय-सत्संग से ही पूरा हो पाता है।

वस्तुत: यह एक ही क्रिया के दो पक्ष हैं। मनीषियों और महापुरुषों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क को सत्संग तथा साहित्य के माध्यम से परोक्ष मार्गदर्शन को स्वाध्याय कहा गया है। स्वाध्याय प्राय: उस साहित्य के पठन-अध्ययन को कहते हैं, जो समय के प्रवाह को परिस्थितियों-मन:स्थितियों को ध्यान में रखते हुए सिद्धान्तों का व्यवहार के साथ ताल-मेल बिठाने वाला परामर्श उपलब्ध कर सके और आन्तरिक गुत्थियों को सुलझाने व आत्मोत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करने का सुयोग बना सके। यह कार्य इतिहास पठन अथवा पुरातन प्रचलन को तलाश करते रहने से किसी भी प्रकार पूरा नहीं हो सकता। इस प्रयोजन की पूर्ति युग-पुरुषों के श्रेष्ठ साहित्य से ही हो सकती है । सत्साहित्य इन्हें ही कहते हैं। इसी कारण स्वाध्याय को साधना के समतुल्य ही आवश्यक एवं श्रेयस्कर माना गया है ।

दूसरा पक्ष सत्संग कहलाता है। बुद्धिजीवियों के लिए स्वाध्याय की जितनी महत्ता बतायी गई है, जनसामान्य के लिए सत्संग का वही महत्व है। सत्संग उत्कृष्ट आदर्शवादिता अपनाने और सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाली शिक्षा को कहते हैं, जो प्राय: महामानवों के सान्निध्य से प्राप्त होती है। कहा जाता है कि चंदन वृक्ष के आस-पास की झाड़ियों में सुगंध आ जाती है, पारस को छू कर लोहा सोना बन जाता है, स्वांति-बूँद के संसर्ग से सीप मोती पैदा करती है, केले में कपूर उत्पन्न होता है और बाँस वंशलोचन बनाता है। प्रकारान्तर से यह सत्संग-सान्निध्य के ही प्रभाव हैं। रामायण में इसे ही "काक होहिं पिक बकहु मराला" के रूप में अभिहित किया गया है। जब कुसंग का प्रभाव व्यक्ति को कुमार्गगामी बना सकता है तो कोई कारण नहीं कि सत्संग अपना अच्छा प्रभाव न छोड़ सके। यदि व्यक्ति सत्संग की शिक्षा अपने जीवन में अपना सके, चिन्तन,चरित्र, व्यवहार में उतार सके, तो निश्चय ही वह महामानवों की तद्रूपता प्राप्त कर सकता है। वाल्मीकि, अंगुलिमाल, अम्ब्रपाली सत्संग से ही सामान्य से असामान्य स्तर तक पहुँचे और महान बने।

आत्मोत्कर्षस्य विज्ञाता आधारास्तु त्वया मुने।
चत्वारो बाह्यक्षेत्रेतान् योक्तुमन्तर्विधिं शृणु ।। ७४ ।।
उत्पादन क्रियात्वेषा निजसीम्नि सु सम्भवेत् ।
परिपक्वां विधातु तां साधक: सेवितां व्रजेत् ।। ७५ ।।
चिन्तनेन दिशाप्राप्तिरादर्शाश्चरितुं तथा ।
संस्कारानिव संस्कर्तु स्तर कार्यविधिर्ध्रुवा: ।। ७६ ।।
विचारणा क्रियाशीलता द्वयोश्च समन्वयात् ।
संस्कारा:सन्तिव्यक्तित्वं संस्काराणां समुच्चय:।। ७७ ।।
सत्प्रवृत्तेस्व संवृद्धिरात्मोत्कर्षोऽस्ति चिन्तनम् ।
उत्कृष्टं परिणयेच्चास्मै सादर्शै विधिभिर्नर: ।।७८ ।।
सेवापरिणतिश्चैषा कथ्यते चास्य ये विधे: ।
स्वीकर्तारोऽर्जयन्त्येवं पुण्यं यावच्च हे मुने ।। ७९ ।।
ततोऽधिकमिमे ह्यात्म परिष्कारस्य लाभगा: ।
सन्ति सद्भाव पक्वत्वंसेविताऽऽसन्ति संभवम्।। ८० ।।

टीका- हे तात ! आत्मोत्कर्ष के चार आधार आपने सुने। उनको अंतरंग एवं बहिरंग क्षेत्र में उतारने के उपाय भी समझे। यह उत्पादन प्रक्रिया हुई, जो निजी क्षेत्र में सम्पन्न हो जाती है; किन्तु इसे परिपक्व करने के लिए हर साधक को सेवा क्षेत्र में प्रवेश करना होता है। चिन्तन से दिशा भर मिलती है। आदर्शों को अभ्यास में उतारने और संस्कारों की तरह परिपक्व करने के लिए उसी स्तर के काम करना आवश्यक है। विचारणा और क्रियाशीलता के समन्वय से ही संस्कार बनते हैं। संस्कारों का समुच्चय ही व्यक्तित्व कहलाता है। सत्प्रवृत्ति संवर्धन ही आत्मोत्कर्ष है। इसके लिए उत्कृष्ट चिन्तन को आदर्शवादी क्रिया-कलापों में परिणत करना पड़ता है। सेवा इसी की परिणति को कहते हैं। इस रीति-नीति को अपनाने वाले जितना दूसरों की सहायता का पुण्य अर्जित करते हैं, उससे भी अधिक वे आत्म परिष्कार का लाभ उठाते हैं। सद्भावनाओं की परिपक्वता उदार सेवा परायणता में निरत रहने पर ही सम्भव होता है ।। ७४-८० ।।

ऋषि यहाँ व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया समझाते हैं। व्यक्तित्व निर्माण में चिन्तन की उत्कृष्टता का जितना महत्व है, उतना ही उसके क्रियान्वयन का भी। चिन्तन चलता रहे; पर उसे क्रिया रूप में नहीं परिणत किया जाय, व्यवहार में नहीं लाया जाय, तो व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया अधूरी रह जाती है। कुम्हार का चाक घूमते रहने भर से ही बर्तन कहाँ बन जाते हैं। इसके साथ-साथ कुम्हार के हाथों की क्रिया भी अभीष्ट होती है। दोनों के समन्वय से ही वह प्रक्रिया पूरी होती है, जिसमें अनगढ़ मिट्टी सुगढ़ बर्तन बनती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व- निर्माण भी ऐसी ही क्रिया है। इसमें विचारणा और क्रिया का समभाव आवश्यक होता है। एकपक्षीय चिन्तन प्रभाव-परिवर्तन की वह भूमिका नहीं सम्पन्न कर पाता, जो महापुरुषों में दिखाई पड़ता है। इसी कारण चिन्तन का दूसरा, क्रियात्मक पक्ष को भी जीवन में सम्मिलित करने पर जोर दिया जाता है। इसके लिए स्वयं को कर्मक्षेत्र में उतारना पड़ता है, सेवा कार्य अपनाना पड़ता है, तभी उसका व्यवहारिक जीवन में सफल अभ्यास शक्य-संभव हो पाता है और वह स्थिति बन पड़ती है, जिसमें कथनी और करनी में-मनसा-वाचा-कर्मणा में एकरूपता दीख पड़े। दोनों के समन्वय से ही संस्कार रूपी बीज जमते और बढ़ते हैं। जब ऐसे ही संस्कारों को परिवर्धित-अभिवर्धित कर लिया जाता है, तो महामानवों जैसा व्यक्तित्व का निर्माण होता है। फिर ऐसे लोग जहाँ भी जिस भी स्थान अथवा वातावरण में चले जाते, वहीं अपनी छाप छोड़ते और लोगों को प्रभावित-आकर्षित करते हैं। व्यक्तित्व सम्पन्न इन्हें ही कहा गया है। इस निर्माण-प्रक्रिया का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे द्विविध प्रयोजन पूरा होता है। जहाँ एक ओर आत्मपरिष्कार का सुयोग बनता है, वहीं दूसरों की सेवा-सहायता द्वारा पुण्य अर्जन का लाभ मिलता है।

भौतिकैरिप कष्टैस्तु पीडितानां हि साधनै: ।
साहाय्यं यत्तदप्यास्ते सेवा यद्यपि निश्चिता ।।८१।।
परंततोऽपि सा श्रेष्ठा ययाऽन्ये सद्गुणान्विता: ।
क्रियन्ते प्रेरणादानं चरित्रचिति बोधकम् ।।८२।।
तत्तरस्थ प्रयासेषु नियोजनमपि स्वयम् ।
उच्चस्तरास्ति सेवैव साधना च महामुने ।।८३।।
पीडाकष्टविद: सर्वे परं पातस्य सा मुने ।
परिणितिस्ततोऽप्येषा भयदा भवतीह तु ।।८४।।
साधनानां प्रदानैर्यत् पीडावारण मिष्यते ।
पतनोद्धारकं श्रेष्ठं तत: सद्वृत्तिवर्धनम् ।।८५।।
साधनैर्येतु संपन्नास्ते पीडावारणेरता: ।
दृष्टास्तथात्मवन्तश्च सद्वृत्ति परिवर्धका: ।।८६।।
तेषां जीवनचर्या तु सामान्यानां तु लोभिनाम्।
सुविधाजीविनां तात दृष्ट्या भिन्नेव दृश्यते ।।८७।।

टीका- सेवा यों, भौतिक कष्टों से पीड़ितों की साधनों की सहायता से करने को भी कहते हैं। किन्तु उससे भी ऊँची वह है जिसमें दूसरों को सद्गुणी बनाया जाता है। चिन्तन और चरित्र को ऊँचा उठाने वाली प्रेरणाएँ देना, उस स्तर के प्रयासों में नियोजित कर देना उच्चस्तरीय सेवा साधना है। पीड़ा का कष्ट सभी जानते हैं किन्तु पतन की परिणति और भी अधिक भयावह होती है। अस्तु, पीड़ा निवारण की साधन-सहायता से भी बढ़कर पतन से उबारने वाले सत्प्रवृत्ति संवर्धन को महत्व दिया जाता है। साधन सम्पन्न पीड़ा निवारण का और आत्मवान् सत्प्रवृत्ति संवर्धन का प्रयास करते देखे गये हैं। उनकी जीवन चर्या सामान्य सुविधा जीवियों-लालचियों से भिन्न स्तर की आदर्शनिष्ठ होती है ।।८१-८७।।

चिन्तन और चरित्र को मनुष्य के दो सबसे बड़े बल माने गये हैं। चिन्तन यदि विधेयात्मक हो, तो व्यक्ति बुरी-से-बुरी स्थिति को हँसते-हँसते पार कर सकता है और उत्कृष्ट चिन्तन के माध्यम से श्रेय, सम्मान, सहयोग सब कुछ अर्जित किया जा सकता है। शरीर-मन से भी स्वस्थता बनी रहती है और प्रसन्नता का अतिरिक्त लाभ भी मिलता है। आत्मिक प्रगति का यही राज है। इसी प्रकार चरित्र यदि स्वच्छ-धवल हो, तो व्यक्ति अपनी प्रामाणिकता से लोगों पर अनुकरणीय छाप छोड़ सकता है और वाह्य दीन-हीन स्थिति होते हुए भी चिन्तन-चरित्र द्वारा अपनी आन्तरिक स्थिति सशक्त-सबल बनाये रख सकता है। ऋषियों-योगियों के संदर्भ में ऐसी ही बात देखी जा सकती है। भौतिक दृष्टि से वे विपन्न ही दीखते हैं; पर उनका आत्मबल इतना बढ़ा-चढ़ा होता है कि वातावरण और परिस्थिति को उलटने-पलटने जैसा करतब कर दिखाते हैं। खुद तो आत्मवान होते ही हैं, अन्य अनेकों को उस राह पर घसीट ले आते हैं। यह प्रकारान्तर से उत्कृष्ट चिन्तन-चरित्र की ही परिणति हुई, पर यदि दोनों ही क्षेत्रों में दिवालियापन आ जाय, तो स्थिति अत्यन्त भयावह हो जाती है। फिर उस व्यक्ति की स्थिति भँवर में फँसे उस नाविक जैसी होती है, जिससे बाहर तो निकलते नहीं बन पड़ता, उल्टे और उसमें उलझता चला जाता है। ऐसी स्थिति में यदि उसे कोई बाह्य सहारा नहीं मिला, तो भँवर में डूब जाना सुनिश्चित होता है।

चिन्तन और चरित्र से पतित लोगों के साथ ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस वक्त यदि उन्हें महापुरुषों-महामानवों का सत्परामर्श नहीं मिल पाय तो वे अध:पतन के शिकार बन जाते हैं, जिससे पुन: उबर पाना उनके लिए संभव नहीं हो पाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर भौतिक कष्टों से पीड़ित लोगों की स्थिति इससे भिन्न होती है। उन्हें सिर्फ भौतिक साधनों का अभाव होता है, अस्तु तरह-तरह की शारीरिक कष्ट-कठिनाइयाँ ही झेलनी पड़ती हैं। पतन-पराभव जैसी स्थिति नहीं आ पाती। यह तो चिन्तन-चरित्र है, जिसकी निकृष्टता मनुष्य को उस ओर धकेल देती है। शरीर कष्टों से तो समयान्तर में व्यक्ति स्वयं भी येन-केन-प्रकारेण उबर सकता है; मगर चिन्तन-चरित्र जब पतनोन्मुख हो जाय, तो उससे निकल पाना बहुत ही मुश्किल भरा काम होता है। पतन को इसीलिए पीड़ा से गंभीर माना गया है। इसी कारण ऋषि पतन-निवारण को यहाँ सबसे बड़ी सेवा बता रहे हैं।

संचयेच्छां विहायात्र प्रदर्शन सुकामनाः ।
वपुर्यात्रा करैस्तुष्टा शेषांशैरुपकुर्वते ।। ८८।।
आत्मोन्नतिकरा ये तु न वाह्ये जगति क्वचित।
साधनानामहो तेषां सहयोगस्य न्यूनता ।।८९।।
महत्तैषा तु तेषां यदुच्चस्तर सुभावगाः ।
निजापेक्षतयाऽन्येषां भोगैस्तुष्टाः सुखत्वयुः ।।९०।।
अल्पतुष्टा नरा विप्राः साधवो परमार्थगाः ।
आभिर्विशेषताभिश्च युक्ता भक्ताः प्रभोः स्मृता ।। ९१ ।।
अजस्रैरनुदानैश्च प्रभोर्लाभान्विताश्च ते ।
आत्मसाधनमाबद्धं लोकस्याराधनेन हि ।। ९२।।
आत्मोत्थानस्य पन्थास्तु मत एषोऽत्र ये नराः ।
चलन्ति तेऽधिगच्छन्ति पतनं न पराभवम् ।। ९३।।

टीका- संचय और प्रदर्शन की लालसा छोड़कर शरीर यात्रा भर के साधनों में सन्तोष करने वाले ही अपने उपार्जन का महत्वपूर्ण अंश परमार्थ प्रयोजनों में लगा पाते हैं। जो आत्मिक प्रगति करते हैं उन्हें बाह्य जगत् में न साधनों की कमी रहती है न सहयोग की। यह उनकी महानता है कि उच्चस्तरीय उदारता से प्रेरित होकर स्वयं खाने की अपेक्षा दूसरों को खिलाने में असंख्यगुना सन्तोष-आनन्द अनुभव करते हैं। स्वल्प सन्तोषी को ब्राह्मण और परमार्थ परायण को साधु कहते हैं। इन विशेषताओं से सम्पन्न व्यक्ति ही सच्चे ईश्वर भक्त कहलाते हैं और परमेश्वर के अजस्र अनुदानों से लाभान्वित होते हैं। हे तात ! आत्म साधना और लोक आराधना एक दूसरे के साथ अविछिन्न रूप से सम्बद्ध हैं। यही है आत्मिक-उत्थान का मार्ग। इस पर चलने वाले पतन-पराभव से अनायास ही बच जाते हैं ।। ८८-९३।।

संतोष को सबसे बड़ा सुख माना गया है। जो हर प्रकार से संतुष्ट होते हैं, सुख का आनन्द उन्हें ही मिल पाता है। आजीवन प्रसन्नता वही अनुभव कर पाते हैं। सीमित साधनों में निर्वाह करने में इन्हें ही सफलता मिल पाती है और ऐसे ही लोग अतिरिक्त संचय को पीड़ितों की, विपन्नों की सेवा व समाज की प्रगतिशीलता हेतु बाँटने-खर्चने में अपनी उदारता दिखा पाते हैं। भारतीय संस्कृति को इसी कारण देवसंस्कृति के नाम से पुकारा गया है; क्योंकि उसमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम' का विशाल दृष्टिकोण समाहित है। यह सैद्धान्तिक ही नहीं, वरन् व्यावहारिक आदर्श भी है। ऋषिकाल से लेकर अब तक महामानवों के जीवन का यह एक अभिन्न अंग रहा है। वे "सादा जीवन उच्च विचार" की रीति-नीति अपनाते और उसे अपने जीवन में चरितार्थ करते हैं। खुद तो स्वल्प निर्वाह पर गुजारा करते; पर समाज के लिए अपने उपार्जनका बड़ा भाग सुरक्षित रखते हैं। इसी कारण इन्हें देवमानव' कहा गया है। बाह्य कलेवर तो इनका भी मनुष्यों जैसा ही होता है; किन्तु आन्तरिक संरचना सामान्य जनों से भिन्न मानवी गरिमा के अनुकूल होती है। इन्हें न संचय में रुचि होती है और न खोखले प्रदर्शन का आडम्बर रचने में मन ललकता है। संचय यदि वे करते भी हैं, तो उसके पीछे लोककल्याण-परमार्थ प्रयोजन की ही भावना होती है। इसी कारण इन्हें ब्राह्मण व साधु दोनों की संज्ञा दी गई है ब्राह्मणवृत्ति से ही व्यक्ति में साधुवृत्ति आ पाती है। यदि निर्वाह खर्च सीमित न रखा जाय, तो परमार्थ परायणता कैसे बन पड़े। यही वह आदर्श है, जिससे व्यक्तिगत जीवन में किसी प्रकार का व्यसन भी नहीं पनपने पाता और परमार्थ परायणता का-समाज सेवा का सुयोग भी बन जाता है। इससे आत्मसाधना और लोक आराधना के दोनों प्रयोजन स्वतः सध जाते हैं। अपना भी कल्याण होता है और समाज कल्याण भी बन पड़ता है। भगवान के अनुदान ऐसे ही लोगों पर बरसते हैं। सच्चा ईश्वर-भक्त इन्हें ही कहा गया है।

द्वितीयोऽद्धि तु सत्संगो यस्तेनाधिकं ततः ।
समाधानमभूत्तेषां जिज्ञासूनां तु तत्क्षणात् ।।९४।।
सत्रावसानवेलां च समीपस्थां विलोक्य सः ।
अधिष्ठातातु तां गोष्ठीं समाप्ता विदधेस्वयम् ।।९५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धामृतोन्मेषैरानन्दित तनूरुहाः ।
जिज्ञासवस्तु संलग्नाः निशासान्ध्यक कर्मसु ।।९६।।
टीका- दूसरे दिन के सत्संग से आत्मविद्या के जिज्ञासुओं का और भी अधिक समाधान हुआ। सत्र की अवसान-वेला देखकर अधिष्ठाता ने उस गोष्ठी का समापन कर दिया। उपलब्ध अमृत वर्षा से आनन्दित होते हुए जिज्ञासुगण संध्या और रात्रि के लिए निर्धारित कार्यक्रमों में संलग्न हो गये ।। ९४-९६।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः महर्षि कश्यप याज्ञवल्क्य संवादे 'आत्म परिष्कार लोक साधना' इति प्रकरणो नाम ।।द्वितीयोऽध्यायः।।

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

व्यावहारिक तपोयोग प्रकरणम्

तृतीयेऽह्नि पुनर्ब्रह्मविद्यासत्रं तथैव तत् ।
स्वस्तिवाचनपूर्वं च प्रारब्धं समभूदथ ।।१।।
दिनस्यास्य जरत्कारुर्मुख्यो जिज्ञासुराहतम् ।
मनीषिमानितः सत्राध्यक्षं वाग्मी मुनिः स्वयम् ।।२।।
टीका- तीसरे दिन का ब्रह्मविद्या सत्र पुनः अपने नियत समय पर प्रारम्भ हुआ। स्वास्तिवाचन जैसे मंगलाचरण के साथ शुभारंभ किया गया। इस दिन के प्रमुख जिज्ञासु की भूमिका निभाते हुए मनीषियों में मूर्धन्य और विवेचकों में प्रख्यात मुनि जरत्कारु ने सत्राध्यक्ष से पूछा ।। २-३।।

जरत्कारुरुवाच-
भवता बोधितं रूपं दुरूहायास्तु देव ! नः ।
आत्मोत्कर्ष विधायिन्याः साधनाया जनानुगम् ।।३।।
उदेति च मनस्येकः प्रश्नो यच्छास्त्रसंमतौ ।
असम्भवा मता योगसाधनाया बिना तथा ।।४।।
तपोशक्तेर्बिना ह्युच्च लक्ष्यप्राप्तिरिह प्रभो ।
तपोयोगस्वरूपं किं सुलभमात्मसाधकम् ।।५।।
कृपया विस्तरेणैतद् बोध्यतां लोकमंगलम् ।
श्रुत्वा प्रश्नं प्रहृष्टश्च याज्ञवल्क्योऽगादीत्ततः।।६।।
टीका- जरत्कारु बोले- हे देव ! आपने गहन और दुरूह समझी जाने वाली आत्मोत्कर्ष की साधना का जन सुलभ स्वरूप समझाया। यहाँ एक प्रश्न और मन में उठ रहा है कि शास्त्रमतानुसार तप की शक्ति और योगसाधना के बिना उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति असंभव कही गयी है। आत्मसाधना को सफल बनाने वाले जन सुलभ तप और योग का स्वरूप क्या हो सकता है ? कृपया इसे हमें विस्तारपूर्वक समझायें। याज्ञवल्क्य जी प्रश्न सुनकर पुलकित हो उठे और बोले ।। ३-६।।

यहाँ जरत्कारु महर्षि जिज्ञासा प्रकट करते हैं कि अध्यात्म विज्ञान के इतिहास में उच्चस्तरीय उपलब्धियों के लिए आदर्शों के समुच्चय ईश्वर से जुड़ना और तप साधना का अवलम्बन ही एक मात्र विधान उपचार है। उसके बिना लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं।

दृष्टि पसार कर प्रगतिशील महामानवों-सिद्ध पुरुषों की रीति-नीति का पर्यवेक्षण करके यह जाना जा सकता है कि उन्होंने अपने जीवन में तपश्चर्या के प्रचण्ड पुरुषार्थ से अनेकानेक दिशाओं में प्रगति किया और ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी, यशस्वी बने। यह तप की ही गरिमा है। पौराणिक गाथाओं में स्पष्ट है कि तपस्वी और योगी ही चमत्कारिक वृद्धि-सिद्धि प्राप्त करने और ऋषि कल्प देवात्मा बनने में सफल हुए हैं। महामानवों एवं ऋषियों-अवतारी पुरुषों की अगणित गाथाएँ इस तथ्य की साक्षी हैं। शिव स्वयं योगारूढ़ एवं निरन्तर तप रत रहते थे। उनके वरदान तपस्वी होने की शर्त पर ही किसी को मिलते हैं। तप की महिमा महान है।

"तपसो ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपोब्रह्मेति"

एक बार भृगु ने अपने पिता वरुण के निकट जाकर प्रार्थना की कि हे भगवन् ! मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिए।

वरुण ने उत्तर दिया-हे भृगु ! जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं और अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं, तू उस ब्रह्म को जानने की इच्छा कर। उस अविनाशी ब्रह्म को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तप और योग साधना द्वारा ही जाना जा सकता है। पिता के आदेशानुसार पुत्र ने उस ब्रह्म को जानने के लिए तप आरंभ कर दिया। दीर्घकालीन तप के उपरान्त भृगु ने अन्नमयकोश-स्थूल शरीर में फैली ब्रह्म की विभूति को जान लिया और वह पिता के पास पहुँचे।

वरुण ने भृगु से फिर कहा- "तप सो ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति" अर्थात् हे पुत्र ! तू तप करके ब्रह्म को जानने का प्रयत्न कर क्योंकि ब्रह्म को तप द्वारा ही जाना जाता है ।

भृगु ने फिर तपस्या की और "प्राणमय जगत" की विभूति को जान लिया और फिर वह पिता के पास पहुँचे। वरुण ने फिर उन्हें तप करने का आदेश दिया। पुत्र ने पुन: कठोर तप किया और "मनोमय कोश" की विभूतियों का अभिज्ञान प्राप्त किया। पिता ने उन्हें फिर तप में लगा दिया। अब भृगु ने "विज्ञानमय जगत्" की विभूति को प्राप्त कर लिया और फिर वरुण जी के पास पहुँचे। पिता ने पाँचवीं बार भी तप में ही प्रवृत किया और भृगु ने उस आनन्दमयी विभूति को भी उपलब्ध कर लिया और जाना कि आनन्द ही ब्रह्म है।

तपश्चर्या की-तपबल की चमत्कारी शक्ति के फलितार्थों का धर्मशास्त्रों और आप्त वचनों में विशद् वर्णन विवेचन किया गया है।

शास्त्रमत:-

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंद नवमें अध्याय में भगवान ने अपने निज रूप का परिचय देते हुए कहा है-**"तपो मे हृदयं-साक्षादात्माहि तपसो हि वै।"**

अर्थात्-तप मेरा प्रत्यक्ष हृदय है और मैं भी तप का हृदय हूँ । दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं।

आगे इस तथ्य का और भी अधिक स्पष्टीकरण करते हुए वे कहते हैं -

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुन: ।।
विभर्मि तपसा विश्वं वीर्य मे दुश्चरं तप: ।।

अर्थात्- मैं इस समस्त विश्व को तप के सहारे उत्पन्न करता हूँ। तप के द्वारा ही अन्त में इसे आत्म रूप में विलीन कर लेता हूँ। विश्व का परिपोषण मैं तपोबल से ही करता हूँ। मेरी अद्भुत तप सामर्थ्य तप में ही केन्द्रीभूत है।

श्रीमद्भागवत् के आगे विवरण में अग्नि, ब्रह्मा, वायु आदि देवताओं का उल्लेख है। जिनके अपने लिए कर्त्तव्य और साधन सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर परब्रह्म ने एक ही उत्तर दिया है कि **'तपं तपस्य'** अर्थात् तप की तपस्या करो। इसी से शक्ति उत्पन्न होगी। शक्ति के बलबूते ही व्यक्तित्व प्रखर होता है। क्षमताओं का स्रोत खुलता है और उसी के सहारे सहजता से कठिन काम सम्पन्न होते।

उपनिषद्कार कहता है-

"सतपोऽतप्यत सतपस्तप्त्वा सर्वत्र सृजत यदिदं किञ्च।" उसने तप किया, कष्ट सहा तब ही यह सृष्टि बनी। तप ही दु:ख रूप में जगत में विद्यमान है। नवीन सृजन की वेदना माँ जानती है । तप का ताप मनुष्य के अन्त:करण में नये-नये रूप में नये प्रकाशों को अवतरित करता है। यह तपस्या आनन्द का ही एक अंग है। इसीलिए ऋषि कहता है कि आनन्द के सिवा, सृष्टि के इतने बड़े दु:ख को कौन वहन कर सकता है। **"कोह्येवान्यात् क: प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्।"** देशभक्त देश के लिये जब प्राण त्यागता है तो उसके लिये वह वेदना नहीं परम आनन्द है। ज्ञानी की ज्ञान प्राप्ति प्रेमी की प्रिय-साधना. भक्त का इष्ट मिलन इसी तरह की साधना है।

देवर्षि नारदजी का कथन है कि तपश्चर्या में असीम शक्ति है। वह होनहार को भी मिटा सकती है। हिमवन्त के यहाँ शैलसुता के सुलक्षणों को देखकर नारद जी कहते हैं-

जो जपु करै कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ।
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू ।
आन उपायँ न मिटहिं कलेसू ।

मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं-

तपु सुख प्रद दुख दोष नसावा ।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

मान्या ! जन्मान्तरस्थैस्तै: कुसंस्कारैरथैहिकै: ।
कुकृत्यै: प्रतिकूलाभिर्वृत्तिभिर्हेयपूरुषै: ।। ७।।
सह योगैरधोगामिप्रवाहो लौकिकस्तु य: ।
तस्य हेतो रतो मर्त्य: कुकृत्येऽचिन्त्यचिन्तने ।। ८।।
अस्मादेव भवत्यत्र चक्रव्यूह विनिर्मिति: ।
भवबन्धन शब्देन कीर्त्यते या तु भूतके ।। ९।।
भक्तुं कुचक्रमेतत्तु शारीरं मानसं तथा ।
प्रखरत्वं समुत्पाद्यं तपश्चर्याऽर्ज्यमुज्ज्वलम् ।। १०।।
प्रथम: प्रमुख: पन्था आत्मिक्या: प्रगतेर्मत: ।
तपश्चर्या, कुसंस्कारान् सञ्चितान् बलपूर्वकम् ।। ११ ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विरुणद्धि नरो यत्तत्तपः साधनमुच्यते ।
प्रथमः चरणः प्रोक्त आत्मिक्याः प्रगतेरयम् ।।१२।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-हे मनीषियो ! जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार, इसी जन्म के किये कुकृत्य, अनुपयुक्त वातावरण, हेयस्तर के व्यक्तियों का सान्निध्य एवं अधोगामी लोक प्रवाह के कारण मनुष्य अचिन्त्य चिन्तन में निरत होकर कुकृत्य करने लगते हैं। इसका एक भयावह चक्रव्यूह बनता है, इसी को भव-बन्धन कहते हैं। इस कुचक्र को तोड़ने के लिए मानसिक एवं शारीरिक प्रखरता उत्पन्न करनी पड़ती है। इस प्रखरता का उपार्जन 'तपश्चर्या' से होता है। अस्तु आत्मिक प्रगति का प्रथम एवं प्रमुख मार्ग तपश्चर्या माना गया है। संचित कुसंस्कारों का हठपूर्वक क्रियात्मक विरोध करने का नाम 'तप साधना' है। इसे आत्मिक प्रगति का प्रथम चरण कहा गया है ।। ७-१२।।

मानव जीवन बहुमूल्य है, पर जो उसका मूल्य और स्वरूप नहीं समझते, वे भोग परायण व्यक्ति दुश्चिन्तन में निरत रहते और दुष्कर्म करते रहते हैं। शरीर से मनुष्य होते हुए भी उनके गुण,कर्म, स्वभाव में पशु प्रवृत्तियों की निकृष्टता की भरमार होती है। यह पशु प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य के पतन और विनाश का कारण बनती हैं। वासना, तृष्णा और अहंता को भवसागर कहा गया है। अनगढ और भोगपरायण मनुष्य इसी में डूबते उतराते रहते हैं। लोभ को हथकड़ी, मोह को बेड़ी और गर्व को तौक कहते हैं। यही भवबन्धन है। जीव इन्हीं से बँधा रहता है, सामान्य जनों की यही गति है।महत्वाकांक्षा, ऐषणा, एवं इन्द्रियजन्य लिप्सालोलुपता से घिरा मनुष्य अभीष्ट सफलता प्राप्त करने के लिए औचित्य मर्यादा का उल्लंघन कर के उद्धत कर्म करता, आतंक जमाता और जो भी संभव है, उसे न्याय-अन्याय का भेद किये बिना कर गुजरता है। आत्म-विस्मृति के कारण मनुष्य प्रत्यक्ष शरीर को ही सब कुछ मान बैठता है और उसी के तथाकथित मनोरथों की पूर्ति में मरता खपता रहता है और सिर पर कुकृत्य जन्य पापों का बोझ सिर पर लादे इस संसार से विदा होता है।

यह जीवन का वह स्वरूप है जो सीमित दृष्टिकोण में दिखता तो शरीर तक ही सीमित है पर कषाय-कल्मषों की अमिट छाप संस्कारों के रूप में सूक्ष्म मनःसंस्थान पर अंकित होती रहती है। संचित कुसंस्कारों की परतें चट्टान जैसी कठोर होती हैं। उन्हें तोड़े बिना पथरीली जमीन में कुआँ खोदना और शीतल जल प्राप्त कर सकना संभव नहीं होता।

यहाँ ऋषि कहते हैं कि भवबन्धनों से मुक्ति पाने और संचित कुसंस्कारों के कुचक्र को तोड़ने के लिए प्रखरता उत्पन्न करनी पड़ती है। अनुपयुक्तता के विरुद्ध संघर्ष करना होता है। असंयमी, कुसंस्कारों से जूझना और अपने अनगढ़ स्वभाव के विरुद्ध संघर्ष करना होता है। यह साधना का महत्वपूर्ण पक्ष है। अध्यात्म विज्ञान में इस उपचार प्रक्रिया को 'तपश्चर्या' कहा गया है ।

तप का अर्थ है - तपाना-गरम करना। भूमि से निकले मिट्टी मिले लोहे को भट्टी में पकाकर शुद्ध किया जाता है तब उसकी स्थिति औजार,उपकरण बनाने जैसी बनती है। अन्य धातुओं का शोधन भी अग्नि संस्कार से ही होता है। पकाने के बाद ही ईट चिरस्थायी बनती है। पानी से भाप बनता और उससे रेलगाड़ी जैसा विशाल तन्त्र चल पड़ना यह सिद्ध करता है कि तपाने से उत्पन्न की गई गर्मी क्या-क्या चमत्कार उत्पन्न करती है।

व्यक्ति की सामर्थ्य भी तपश्चर्या के आधार पर ही उभरती है। अग्नि की उष्णता से संसार के सभी पदार्थ जल, बदल या गल जाते हैं। कोई ऐसी वस्तु नहीं हैं जिसमें अग्नि का संसर्ग होने पर भी परिवर्तन न होता हो। तपस्या की अग्नि भी ऐसी ही है। वह पापों के समूह को-संचित कुसंस्कारों को जलाकर भस्म कर देती है। कुसंस्कार,कुटेव, कुविचार एवं कुकर्म से छुटकारा पाने के लिए 'तपश्चर्या' एक रामबाण अस्त्र है। तप एक भावनात्मक पुरुषार्थ है। व्यावहारिक जीवन में इसे "संकल्प निष्ठ संयम" भी कहा जाता है। इसके चार स्तर हैं-इन्द्रिय संयम, समय-संयम, अर्थ संयम और विचार संयम के नाम से जाने जाने वाले तप संयम को अपना कर कोई भी महानता के पथ पर अग्रसर हो सकता है और दिव्य क्षमताओं विभूतियों का स्वामी बन सकता है।

चिन्तनस्य चरित्रस्य गरिम्णो दायिनीं सदा ।
उत्कृष्टतां प्रतिष्ठां स्वां मन्यमाना मनस्विनः ।।१३।।
साधना सफलाः सन्ति प्रलोभन विवर्जिताः ।
अवरोधदृढास्त्याज्यैर्योद्धारस्तु तपस्विनः ।।१४।।
तपस्विनोऽनिवार्यं हि युद्धयेत स्वयमात्मना ।
अभ्यस्त प्रकृतीर्युक्ता गतीश्च परिवर्तितुम् ।।१५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अत्रकाठिन्यमायाति ततः कष्टान्यनेकशः ।
पूर्वाभ्यासे तु सह्यानि तितिक्षेयं निगद्यते ।। १६ ।।

टीका- चिन्तन और चरित्र की गरिमा बनाये रहने वाली उत्कृष्टता को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाये रहने वाले मनस्वी ही साधना में सफल होते हैं। प्रलोभनों और दबावों के आगे न झुकने वाले-अवांछनीयता के साथ असहयोग-विरोध का शस्त्र संभाले रहने वाले तपस्वी कहलाते हैं। तपस्वी को अपने आप से लड़ना पड़ता है तथा अभ्यस्त आदतों और गतिविधियों को उलटना पड़ता हैं। इसमें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हीं का पूर्वाभ्यास करने के लिए कष्ट सहन करने पड़ते हैं। इसे तितीक्षा कहते हैं ।। १३-१६ ।।

यहाँ ऋषि कहते हैं कि मनस्वी अर्थात् सत्प्रयोजनों के निमित्त सुनिश्चित संकल्प करने और उसे पूरा करने के लिए साहसिक पराक्रम दिखाने वाले सचरित्र व्यक्ति ही साधना में सफलता प्राप्त करते हैं। मनस्वी ही तपस्वी होते हैं। मनस्विता एक ऐसी विभूति है जिसके सहारे ही कोई महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित हो सकता है। इसके अभाव में मात्र विडम्बना ही हाथ लगती है। मनोबल बढ़ाने का-साहस जगाने का-पराक्रम उभारने का-प्रगतिशील मार्ग अपनाने वाले तपस्वी को अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए संघर्षरत होना पड़ता है। रगड़ने से ही गर्मी उत्पन्न होती है और उत्पादित ऊर्जा के सहारे ही शक्तियाँ उभरती और गतिशील होती हैं। मजबूती भी उसी से आती है-प्रखरता भी। जनरेटर इसी प्रक्रिया के सहारे बिजली उत्पन्न करते हैं। व्यक्तित्व को तपाने के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता होती है, वह प्रतिरोध से ही उत्पन्न होती हैं। इसके लिए ऐसी रीति-नीति अपनानी पड़ती है जिसमें कठिनाइयों से जूझना पड़े। ऐसे दुस्साहस भरे कामों में हाथ डालना पड़ता है जो न केवल कष्ट साध्य होते है वरन् जोखिम भरे भी होते हैं। इसके लिए असंयम के छिद्रों को बन्द करना पड़ता है और अस्वाद व्रत से लेकर उपवास, ऋतु प्रभाव का सहन एवं कायकष्ट सहन की तितीक्षा का पूर्वाभ्यास करना पड़ता है जिससे तप निर्धारण के मार्ग में स्वभावगत ढर्रे के साथ जूझने का उस मार्ग के व्यवधानों से निपटने की आदत बनी रहे।

तितीक्षा अभ्यास है और तप उद्देश्यपूर्ण व्रतधारण। दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं। तलवार पर धार रखने के लिए उसे घिसा जाता है। कच्ची धातुओं से बहुमूल्य उपकरण बनाने के लिए उनका परिशोधन भट्टी के अतिरिक्त और किसी उपाय से संभव नहीं। मनुष्य कितना विवेकवान, सिद्धान्तवादी, चरित्रनिष्ठ और संकल्पवान है, इसकी परीक्षा प्रतिकूलताओं, असुविधाओं और विपत्तियों में से गुजरकर इस तप प्रतीक्षा में पक कर ही हो पाती है।

विज्ञाः प्रगतिमार्गे च यातुमग्रे य उच्यते ।
अनिवार्यः प्रयासः स कथितो योगसाधना ।। १७ ।।
योगः स आत्मसत्तायाः संयोगः परमात्मना ।
प्रकृत्याकांक्षया यश्च सञ्चितस्तु समुच्चयः ।। १८ ।।
आदर्शवादिनी या सा कथितोत्कृष्टता तया ।
सम्बन्धुं पुंभिरिष्येत क्रमात् संबद्धतोर्जिता ।। १९ ।।
स्वार्पणस्य सुभावस्तु चलतीष्टं यदा महान् ।
क्षुद्राहं त्वलयः कार्य औत्कृष्ट्येमहतस्ततः ।। २० ।।
उक्ता परिणतिश्चास्य जीवन्मुक्तौ तथैव च ।
लक्ष्य प्राप्तौ पूर्णतायामीशप्राप्तौ च निश्चिता ।। २१ ।।
सदा परमहंसास्तु तिष्ठन्त्यस्यां स्थितौ बुधाः ।
समाधिकालयुक्तायां देवत्व परिवाहिनः ।। २२ ।।

टीका- हे विज्ञजनो ! प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए जिस दूसरे प्रयास को अनिवार्य माना गया है उसका नाम योग साधना है। आत्मसत्ता को परमात्मा के साथ जोड़ना योग है। इसमें आकांक्षाओं और आदतों के संचित समुच्चय को आदर्शवादी उत्कृष्टता के साथ सम्बद्ध करना पड़ता है। यह सम्बद्धता क्रमशः बढ़ती है तो इष्ट के प्रति आत्म-समर्पण की उमंग उठती है। तब छुद्र अहंता का विलय-विसर्जन महान की उत्कृष्टता में करना पड़ता है। इसी की परिणति जीवनमुक्ति, लक्ष्य-प्राप्ति, पूर्णता एवं ईश्वर प्राप्ति के रूप में होती है। परमहंस इसी समाधि अवस्था में रहते हैं और देवत्व को वहन करने वाले देववाहन बनते हैं ।। १७-२२ ।।

यहाँ ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि आत्मोत्कर्ष के लिए तपश्चर्या के बाद जिस दूसरे साधन के अवलम्बन की आवश्यकता पड़ती है उसे 'योग' कहते है। चेतना के भावपक्ष को उच्चस्तरीय उत्कृष्टता के साथ एकात्म कर देने का नाम ही योग है। यह आस्थाओं, आंकाक्षाओं एवं प्रवृत्तियों का परिष्कार है। इसके लिए वैराग्य तथा अभ्यास द्वारा चित्तवृत्तियों पर अधिकार पाना होता है। योग की परिभाषा करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है-**"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः"**। अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। वृत्तियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरुद्ध होने से चित्त एकाग्र ही नहीं होता वरन् पूर्णतया आत्मस्थ हो जाता है और आत्मा का परमात्मा के साथ योग मिलन हो जाता है।

आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देने का तात्पर्य है-क्षुद्रता को महानता के साथ, कामना को भावना के साथ, स्वार्थ को परमार्थ के साथ बाँध देना-बदल देना और तद्नुसार बना देना। समर्पण इसी उच्चस्तरीय भूमिका का नाम है। विलय-विसर्जन, समन्वय समापन शरणागति उसी के दूसरे पर्याय हैं। इस आरम्भ की पूर्णाहुति जीव और ब्रह्म के साथ पूर्ण एकता स्थापित होने से होती है। इसी स्थिति को अद्वैत कहते है।

चेतना के विराट समुद्र में जीव बिन्दु का विसर्जित होना 'सायुज्य' है। यही परम पद की प्राप्ति है। व्यष्टि जीव सत्ता का समष्टि ब्राह्मी सत्ता में विसर्जित होना ही प्रभु समर्पित जीवन है। ईंधन आग की, नदी नाले की, दूध जल की, दीप पंतग की उपमा इसी स्थिति के लिए दी जाती है। व्यक्ति अपने स्वार्थ की परिधि से निकल जाता है - मन-मस्तिष्क में एकमात्र परमार्थ छाया रहता है। अहंता शरीर,परिवार तक सीमित न रहकर सोहम् शिवोहम्, सच्चिदानन्दोहम्, तत्वमसि,अयमात्मा ब्रह्म, शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरजयेसि की स्थिति में पहुँच जाती है। 'अपनी सत्ता सब में' और 'सब अपने में' दृष्टिगोचर होने लगते है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आत्मवत् सर्वभूतेषु की अनुभूति इसी स्तर पर पहुँचने में होती है। योग की सिद्धावस्था यही है, परमपद-जीवन मुक्ति इसी का नाम है।

इसी स्थिति को परमात्मा की प्राप्ति, कैवल्य पद पाना, जीव का ब्रह्म होना और आत्मा का परमात्मा बन जाना कहा गया है। इस स्थिति में ही शास्त्र कार ने कहा है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्

(योग १।३)

अर्थात्-तब द्रष्टा की शुद्ध परमात्म स्वरूप में अवस्थिति होती है।

योगाभ्यासस्य रूपे च क्रियाः कृत्यान्यनेकधा।
स्वीकार्याण्यस्ति येषां च प्रयोजनमिदं मतम् ।। २३ ।।
ससीम्नोऽसीम्निचैकात्म्यं यत्तस्यैवमनोभुवः ।
निर्मितिः क्रमरूपेण केवलं तु महर्षयः ।। २४ ।।
पूरकौ तु तपोयोगौ विनैकं नहि पूर्णता ।
तपोयोगौ प्रक्रिये स्तः सामान्यं जन जीवनम् ।। २५ ।।
उत्कृष्टकारिके सर्वसुलभे सार्वलौकिके ।
योगे स्वत्वं समर्प्य तदौत्कृष्ट्य प्रतितत्तथा ।। २६ ।।
समष्टिं प्रत्युभौ तौस्त आस्था पर प्रयोगकौ ।
धर्मलग्नाः साधकाहे स्वीकार्यं महत्वम्स ।। २७ ।।

टीका- हे महर्षियो ! योगाभ्यास के रूप में कई प्रकार के क्रियाकृत्य अपनाये जाते हैं। उन सभी का उद्देश्य सीमित को असीम में मिला देने की क्रमशः मनोभूमि तैयार करना मात्र है। तप और योग परस्पर पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की सफलता शक्य नहीं । योग और तप सामान्य जीवन को उत्कृष्ट बनाने ही की सर्व सुलभ और सार्वजनीन प्रक्रिया है। योग में अपना आपा उत्कृष्टता के प्रति-समाप्ति के प्रति समर्पित करना होता है। यह दोनों प्रयोग विशुद्धतः आस्थापरक हैं। हे धर्मपरायण सद्ज्ञान साधको ! आस्था को समुचित महत्व देना चाहिए ।। २३-२७ ।।

योग की दो दिशाधारायें हैं। एक में विचार परिष्कार, चरित्रशोधन, संयम साधन, पुण्य-परमार्थ जैसी ज्ञान-वैराग्य की साधना करनी पड़ती है। यह भक्त सन्तों का-सन्त-सज्जनों का मार्ग है। इस आधार पर जो शक्तिप्राप्त होती है वह आत्मकल्याण एवं लोक मंगल दोनों ही प्रयोजनों में काम आती है। दूसरी धारा है-अतीन्द्रिय क्षमताएँ जागृत करके असामान्य स्तर की चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त करना। इसके लिए कितने ही साधना विधान हैं कितने ही मार्ग हैं। इसमें स्थूल,सूक्ष्म और कारण शरीरों को जागृत,सशक्त और प्रखर बनाने के लिए उसी प्रकार सोपान निर्धारित हैं जैसे छत पर चढ़ने के लिए जीने की सीढ़ियों में सन्निहित होता है।

राजयोग, हठयोग, लययोग, प्राण योग, कुण्डलिनी योग, चक्रवेधन, ज्ञान योग, भक्तियोग, कर्मयोग, ध्यानयोग आदि अनेकानेक राजमार्ग निर्धारित हैं। उनमें से प्रत्येक में आरम्भ से चलकर अन्त तक क्रमबद्ध रूप से निर्धारण अपनाने पड़ते हैं यथा राजयोग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, समाधि की एक क्रमबद्ध योजना है। हठयोग में नाड़ी शोधन, वस्ति, वज्रोली, कपाल भाँति आदि का प्रयोग होता है। वही बात अन्यान्य योगों के सम्बन्ध में भी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उस समूचे विज्ञान को स्कूली कक्षाओं की तरह एक के बाद एक को अपनाया जाता है।

यहाँ ऋषि कहते हैं कि योग और तप का अनन्योश्रित सम्बन्ध है। तपश्चर्या की आग में कुसंस्कारों को गलाया जाता है और योगसाधना से उसे उपयुक्त ढाँचे मे ढाला जाता है। योगाभ्यास द्वारा मानव मन सशक्त एवं सक्षम बनता जाता है साथ ही निर्मल एवं परिष्कृत भी होता जाता है। तपश्चर्या से अचेतन में भरी हुई हठवादी पशु प्रवृत्तियों के कुसंस्कार छूटते जाते हैं और मन निर्मल होने से *चित्तवृत्तियों* का निरोध स्वयमेव होता जाता है। तप का उद्देश्य आत्मा को तपाना और उसे परमात्मा से मिलने के अनुरूप शुद्ध और तेजस्वी बनाना है एवं योग में मुख्यतया जीव चेतना कोब्राह्मी चेतना के साथ जोड़ देने वाला भावनात्मक एवं विचारणात्मक पुरुषार्थ करना पड़ता है।

शरीर और मन: क्षेत्र में अनेक प्रकार के सूक्ष्म शक्ति केन्द्र-चक्र, उपत्यिकाएँ, ग्रन्थि समुच्चय, प्लेक्सस, नाड़ियों के दिव्य प्रवाह मौजूद हैं। इनमें से कुछ स्थूल शरीर में होते हैं कुछ सूक्ष्म और कारण शरीर में। इन्हीं को जागृत करने के लिए अनेक स्तर की तपश्चर्याएँ एवं योगसाधनाएँ की जाती हैं। कुंडलिनी जागरण एवं सूक्ष्मीकरण की पंचकोशी साधनाएँ तपश्चर्यायुक्त प्रचण्ड पुरुषार्थ के बल पर ही संभव हो पाती हैं। तपश्चर्या एवं सतत् योगाभ्यास से चित्त जन पूर्णरूपेण शुद्ध हो जाता है तो साधक की अन्तर्प्रज्ञा जागृत होती है। यही सफलता की मूल है और इसी के आधार पर चेतना के उच्चस्तर तक पहुँचा जाता है।

ऋषि याज्ञवल्क्य आगे कहते हैं कि योग और तप की साधना से सिद्ध के रूप में परिणति तभी होती है जब इष्ट के प्रति-लक्ष्य के प्रति श्रद्धा और विश्वास का भी क्रमिक विकास होता है। प्राण विहीन शरीर को लाश कहते हैं। ठीक इसी तरह आस्था और श्रद्धा के बिना योग और तप-जप और अनुष्ठान मात्र समय का सत्प्रयोजनों में सदुपयोग भर कहा जा सकता है, परन्तु इतने भर से चमत्कारी सामर्थ्य अर्जित कर लेना संभव नहीं। लघु को विभु, क्षुद्र को महान, नर को नारायण और पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने की प्राण ऊर्जा जहाँ से निस्सृत होती है-वह केन्द्र बिन्दु है-अन्त: का श्रद्धा क्षेत्र। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में श्रद्धा और विश्वास को "भवानी शंकरौ" के रूप में मानकर अभ्यर्थना की है। सफलता का मूलाधार यही है।

जरत्कारुरुवाच-

देव ! सैद्धान्तिकं व्यक्तं विज्ञानं साधनात्मकम् ।
भवताऽत्र क्रियापक्ष:बोध्योऽभ्यासस्य बोधक:।। २८।।

टीका- जरत्कारु बोले-हे देव ! साधना विज्ञान का सैद्धान्तिक विवेचन आपने अभी हमें स्पष्ट किया। अब इसका क्रियापरक पक्ष और समझाएँ ताकि उन्हें अभ्यास में उतारने का मार्गदर्शन मिल सके ।। २८।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

ऋषिवर्य ! मया पूर्वं व्याख्यातं यत्तपस्तथा।
योगो नैव विशेषाभि: क्रियाभिर्बाध्यतां गतौ।। २९।।
आस्था सम्बद्धतां यातौ पारम्पर्यक्रमागता: ।
क्रियास्तयोर्जनानां न सुलभा इति मन्यताम् ।। ३०।।
प्रभोरूपवनं विश्वं यदि चोपहृतिं तथा ।
जीवनं रम्यतां नेतुं भावमादाय चेष्ट्यते ।। ३१।।
जीवनेऽस्मिंस्तपोयोगौ साध्यावुन्मूलनान्मुने ।
दुष्प्रवृत्तेस्तपो, योग: सद्वृत्तेर्वधनश्रमात् ।। ३२।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-हे ऋषि श्रेष्ठ ! पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि योग और तप क्रिया विशेष से बँधे नहीं हैं। यदि प्रभु के इस उपवन-विश्व को और प्रभु के उपहार इस जीवन को सुरम्य बनाये रखने का भाव रखते हुए चला जाय, तो इस जीवन में ही तप और योग सध सकता है। ऐसी स्थिति में दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन प्रक्रिया से तप वृत्ति और सत्प्रवृत्ति संवर्धन के प्रयास से योग वृत्ति की साधना सधती है ।। २९-३२।।

यहाँ ऋषि स्पष्ट करते हैं कि योग और तप किसी क्रिया विशेष से बंधे हुए नहीं हैं। निजी जीवन में आस्थाओं, आकांक्षाओं का परिष्कार एवं कुसंस्कारों का उन्मूलन-अपनी भौतिक ललक-लिप्साओं को पैरों तले रौंद कर ईश्वरीय संकेतों और उच्चस्तरीय आदर्शों का अनुसरण करते रहने से सरलता पूर्वक किया जा सकता है। योगी की मनोभूमि इसी प्रकार की होती है। वह शरीरगत और मनोगत वासनाओं-तृष्णाओं की उपेक्षा करता, उन्हें नगण्य, हेय और महानता के पथ में बाधक मानता है और तीनों ऐषणाओं से छुटकारा पाता है। विश्व को ईश्वर की साकार प्रतिमा मानकर उसके कण-कण में परमेश्वर को देखने वाले हर किसी से प्रेम करते हैं। उनके इस प्रेम में दुलार और सुधार का विवेक सम्मत समन्वय होता है। व्यष्टि, समष्टि और प्रकृति के गतिचक्र को समझकर उसमें अपनी स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमल पत्रवत् बनाये रहकर रंगमंच पर अभिनय करने वाले नट की तरह सोचा और अपना कर्तव्य पूरा किया जा सकता है। मान-अपमान, हानि-लाभ से विचलित न होकर विनोद की मन: स्थिति बनाये रहकर हर घड़ी आनन्द, उल्लास, उमंग, तृप्ति, तुष्टि, शान्ति का अनुभव किया जा सकता है। अपनी सारी क्षमता सत्कर्मों, सद्विचारों और सद्भावों में नियोजित किये रहने वाला ही वस्तुत: सच्चा योगी और तपस्वी है। निजी स्वार्थपरता को परमार्थ परायणता में, व्यक्तिवाद को समूहवाद में,संकीर्णता को उदारता में, निकृष्टता को उत्कृष्टता में विसर्जन समर्पण करके सहज ही योग की विभूतियों से सम्पन्न बना जा सकता है। संसार के असंतुलन को संतुलन में बदलने, पतन प्रवाह को उत्थान की दिशा में मोड़ने वाले लोक मंगल के लिए समर्पित व्यक्ति को ईश्वर उदारता पूर्वक अपना सारा वैभव सौंप देता है। योग और तप का यही लक्ष्य है।

स्वभाव वैपरीत्याय योऽन्तर्विग्रह विग्रह: ।
तितीक्षाभ्यास इत्युक्तो न वसंस्कारकारक: ।। ३३।।
सत्साहस मुदेत्येवमनर्हाभ्यस्त नाशक: ।
सद्वृत्तिस्थापकश्चायमिति जानीहि निश्चितम् ।।३४ ।।
सदादर्शान् *समुच्छिश्य* प्रतियुद्धयन्त एव ये ।
अनौचित्यैस्तु गृहणन्ति काठिन्यं प्रतिकूलता: ।।३५ ।।
अभावग्रस्ततां यान्तोऽसहयोगं पदे पदे ।
सहन्ते तप एतद्धि त्यागश्चापि मतो बुधै: ।। ३६ ।।
साहस्रं शौर्यमेतत्तु तदाध्यात्मिकमुच्यते ।
बीजं स्थूलांश नाशो हि वृक्षतां याति तत्पुन: ।। ३७ ।।
तथ्यमेतद् विजानन्ति ये न तो संकुचन्त्यहो ।
विभूतीर्मूल्यत: क्रेतुं ब्रह्मवर्चस्तप: श्रितम् ।। ३८ ।।

टीका- तितीक्षा का अभ्यास आदतों को उलटते समय होने वाले अन्त:विग्रह से जूझने के लिए किया जाता है जो नये संस्कारों को उभारता है। इससे सत्साहस उभरता है और अभ्यस्त अनौचित्य के उन्मूलन तथा सत्प्रवृत्तियों के संस्थापन में काम आता है। आदर्शों के लिए अड़ने वाले और अनौचित्य से जूझने वाले स्वेच्छापूर्वक कठिनाइयों तथा प्रतिकूलताओं का वरण करते हैं। उन्हें अभाव और असहयोग भी सहने पड़ते हैं। इसी को तप - त्याग कहते हैं। यही अध्यात्म क्षेत्र का शौर्य-साहस है। बीज के स्थूलांश गलने पर ही उसे विशाल वृक्ष बनने का अवसर मिलता है, जो इस तथ्य को जानते हैं, वे मूल्य देकर विभूतियाँ खरीदने से हिचकते नहीं। तप-तितीक्षा से ब्रह्मवर्चस प्राप्त करने का रहस्य सर्व विदित है ।। ३३-३८।।

तप-तितीक्षा में जानबूझकर शरीर और मन को कष्ट दिया जाता है जिससे शारीरिक वासना और लौकिक सुखों की कामना मर जाय एवं आत्मभाव प्रकट होने लगे। अहंता गले और जीवभाव से मुक्ति मिले उच्चस्तरीय शक्ति का उत्पादन और अभिवर्धन इसी आंतरिक संघर्ष के आधार पर संभव होता है। यही *आध्यात्मिक* पराक्रम एवं पुरुषार्थ है। आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पादित करने के लिए अवांछनीयता के प्रति-प्रतिकूलता के प्रति संघर्ष करना होता है। तप साधना यही है। साधना का दूसरा नाम-'समर' है। इस समर में अपने आप से-अपनी कमजोरियों, कुसंस्कारों से वासना, तृष्णा, अहंता, लोभ, मोह आदि आतंरिक असुरों से लड़ना पड़ता है। योगी, तपस्वियों, महामानवों ने इसी संघर्ष की तप तितीक्षा में तपकर महानता अर्जित की है। ब्रह्मवर्चस अर्थात् ब्रह्मतेज-आत्मा का प्रत्यक्ष प्रकाश इसी आधार पर प्रकट होता है।

जिह्वाचंचलताऽलस्यं मदसेवनकामना ।
उच्छृंखलत्व कामित्वेऽनियन्त्रित्वं तथैव च ।। ३९ ।।
उद्दण्डताऽ व्यवस्थाप्व्यय: संकीर्णतास्वता ।
मालिन्यादीनि दृश्यन्ते दुष्प्रवृत्तिषु सर्वदा ।। ४० ।।
मदस्तरेण तिष्ठन्ति सम्पदां जीवनस्य च ।
घुणवन्नाशयन्त्यन्त उद्धतानि च तान्यलम् ।। ४१ ।।
सापराधानि रूपाणि लभन्ते नाशकानि च ।
तीव्रा आगस्करा मन्दा दुर्गुणा दुष्प्रवृत्तय: ।। ४२ ।।
त्याज्यास्तालघुरूपाश्च क्षणाद् वृद्धिप्रयान्त्यपि ।
स्फुलिंग: कालमासाद्य दावाग्निरिव नाशक: ।। ४३ ।।
दुष्प्रवृत्तय एतास्तु रोगा इव भयानका: ।
संकटोत्पादिका नूनं मन्यतां तु विभीषिका ।। ४४ ।।
नोपेक्ष्या जातमात्राणां विनाश: क्रियतां लघु ।
वृद्धा:सुदृढमूला: स्युश्छिन्नारोहन्ति ता:पुन: ।। ४५ ।।

टीका- दुष्प्रवृत्तियों में चटोरापन, नशे में दुर्व्यसन, कामुक चिन्तन, आलस्य-प्रमाद, अनियमितता, उच्छृंखलता, उद्दण्ड उत्तेजना, अपव्यय, अव्यवस्था, मलीनता, संकीर्ण स्वार्थपरता आदि प्रमुख मानी जाती हैं। ये मदस्तर की रहती हैं तो जीवन सम्पदा को घुन की तरह खोखला करती रहती हैं। जब उद्धत हो जाती हैं तो अपराधों के रूप में विकृत-विनाशकारी रूप धारण करती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दुष्प्रवृत्तियाँ दुर्गुणों के रूप में मन्द हों या अपराधों के रूप में तीव्र, दोनों ही भयावह और त्याज्य हैं। वे प्रारंभ में छोटी भले ही दीखें पर उन्हें बढ़ते देर नहीं लगती। छोटी चिनगारी अवसर पाने पर दावानल बनती-सर्वनाश करती है। दुष्प्रवृत्तियाँ भी बीमारियों की तरह भयानक संकट उत्पन्न करने वाली विभीषिकाएँ ही हैं। इसलिए उनकी उपेक्षा न की जाय। उत्पन्न होते ही उन्मूलन किया जाय अन्यथा बढ़ने पर जड़ें गहरी चली जाती हैं और काटने पर भी फिर उग पड़ने की विपत्ति सामने आती है ।। ३९-४५ ।।

भगवान ने मनुष्य को असीम शक्ति साधनों से सुसज्जित किया है। शरीर, इन्द्रियाँ एवं मस्तिष्क के रूप में उसे जो अनुदान मिले हैं वे अद्भुत एवं अनुपम हैं। उनके सदुपयोग तथा सुनियोजन की फलश्रुतियाँ भी उतनी ही विलक्षण हो सकती हैं। परन्तु मनुष्य की संचित कुसंस्कारिता और अदूरदर्शिता उसे अनुपयुक्त छिद्रों में होकर जिधर तिधर बहा देने को विवश करती हैं और उपलब्ध अनुदानों से समुचित लाभ उठा सकने का सुयोग अकारण ही चला जाता है। जिस तरह दीपक में तेल भरा रहने पर भी हवा का झोंका उसकी ज्योति को बुझा देता है ठीक उसी तरह क्षमताओं से सम्पन्न होते हुए मनुष्य को भी असंयम का-दुष्प्रवृत्तियों का झोंकाउसे समय से पहले ही बुझ जाने के लिए विवश करता है।

दुष्प्रवृत्तियों का अवांछनीयताओं का आरम्भ जिह्वा के चटोरेपन से होकर जहाँ तक जगह मिलती है वहाँ तक बढ़ता जाता है। जिह्वा को चटोरी बनाकर अनावश्यक मात्रा में भक्ष्य-अभक्ष्य करते रहने वाले अपना पाचन तंत्र बिगाड़ते और रोगों से आक्रान्त होते हैं। शराब, सिगरेट, मार्फीन, कोकीन, चरस, हसीस, हेरोइन आदि घातक नशाओं का सेवन दिखावे और जिह्वा को उसका रसास्वादन कराने से आरंभ होता है और अंततः सेवन करने वाले को खोखला करके मृत्यु शैय्या पर ला पटकता है। जीभ का चटोरापन कामुकता भड़काता है। जननेंद्रिय मार्ग से बहुमूल्य जीवन रस नालियों में बहाते रहने वाले किस प्रकार अपनी जीवनी शक्ति और बौद्धिक क्षमता गँवा बैठते हैं यह किसी से छिपा नहीं है। अन्यान्य इन्द्रियों के दुरुपयोग के सम्बन्ध में भी यही है। यह मनोविकार अकेला नहीं हैं। इनकी एक पूरी सेना है। जहाँ एक चलता है वहाँ साथी संगतों की पूरी बारात चल पड़ती है। वासना, तृष्णा और अहंता का समुदाय है। लोभ, मोह, और क्रोध का एक समूह है। यह सब आपस में गुथे हुए हैं। एक के साथ दूसरा चलता है। जहाँ वासना भड़केगी, वहाँ तृष्णा भी पीछे न रहेगी। लोभ-लालच में मन भटकेगा। सम्पदा की ओर मन ललचाएगा और धन संग्रह के लिए, अंहकार की पूर्ति के लिए नीति-मर्यादा का उल्लघंन करना पड़ता है। उद्दंडता बरतने और उच्छृंखल आचरण करने वाले झूठ, हत्या,बेईमानी जैसे कुकृत्य करने लगते हैं। उन्हें ऐसा करने में भय, लज्जा, संकोच का अनुभव नहीं होता, वरन् रस आने लगता है और रस की कोई सीमा नहीं होती कि वह अमुक सीमा तक पहुँच कर तृप्त कर देगी। जीव से आरम्भ हुआ दुष्प्रवृत्तियों का रसास्वादन मन सहित इन्द्रियों की ललक लिप्साऐं भड़काने लगता है। फुलझड़ी में माचिस लगाने के उपरान्त एक के बाद दूसरी चिनगारी छूटने लगता है और फिर ऐसा तमाशा बनता कि पूरे खेल का सफाया करने के उपरान्त ही समाप्त होता है। अतः यहाँ ऋषि कहते हैं कि दुष्प्रवृत्तियों को आरम्भ में ही, जब वे विचारों के रूप में अंकुरित हो रही हों, तभी सद्विचारों की सेना के माध्यम से समाप्त कर देना चाहिये, अन्यथा वे विषवेलि की तरह पनपती, फैलती और विपत्ति का सर्वनाश का कारण बनती है।

स्वभावे दुर्गुणा एवं सन्ति चेत्संस्थिता मुने ।
तेषां हानिषु सर्वैस्तु विचारः कार्य एव हि ।। ४६ ।।
चिन्त्यान्येवं विधान्यत्र सदोदाहरणान्यपि ।
दुष्प्रवृत्युद्भवा यैः स्युः परिणामाः स्मृता हि नः।।४७ ।।
एवं विधश्च तर्काणां तथ्यानामपि संग्रहः ।
कर्त्तव्यो दुर्गुणा येन स्युरस्त्रेण पराजिताः ।। ४८ ।।
एकदैव न चेत्त्याज्या दुर्गुणाः स्युस्तदाशनैः ।
मात्राणामूनया शक्यस्तेषां नाश दिशोदयः ।। ४९ ।।
यो मनस्वी तपस्वी स सहसैकपदे तु तान् ।
संकल्पशक्तितैक्ष्ण्याद्विदधाति तिरस्कृतान् ।। ५० ।।

टीका- हे मुनिवर ! इस प्रकार के दुर्गुण यदि स्वभाव में सम्मिलित हों तो उनकी हानियों पर विचार करना चाहिए। ऐसे उदाहरण चिन्तन में लाने चाहिए जिनसे दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणामों का स्मरण बना रहे। ऐसे तर्क और तथ्य संग्रह कर रखने चाहिए जिन्हें दुर्गुणों को परास्त करने में शस्त्र की तरह प्रयोग किया जा सके। दुर्गुणों को एक बारगी छोड़ सकना संभव न हो तो उनकी मात्रा घटाते हुए भी क्रमशः समाप्त करने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिशा में बढ़ा जा सकता है। तपस्वी-मनस्वी तो संकल्पशक्ति की प्रखरता के सहारे एक बार में ही उनका तिरस्कार-बहिष्कार कर सकते हैं ।। ४६-५०।।

महानता अर्जित करने के लिए स्वभाव में सम्मिलित दोष-दुर्गुणों की बुराइयों एवं उनसे होने वाली हानियों को समझना और उन्हें बुहार बाहर करना अनिवार्य है। इससे सम्बन्धित तर्क,तथ्य और प्रमाण एकत्रित करके सहज ही दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा पाया जा सकता है। अणुव्रत के रूप में एक-एक करके दोष-दुर्गुणों को छोड़ते रहने और उसके स्थान पर एक-एक अच्छाई का सत्संकल्प करते रहने से धीरे-धीरे अपना पूरा परिष्कार किया जा सकता है। संकल्प बल और विचारणा की सृजनात्मक क्षमता से जो परिचित हैं वे तत्परता पूर्वक अपनी कमजोरियों को ढूंढ़ निकालते और उनसे छुटकारा पाने में समर्थ होते हैं। संकल्पशक्ति के रूप में मनुष्य को मिला वरदान इतना सामर्थ्यवान है कि उसके आधार पर वह भौतिक अथवा आत्मिक किसी भी क्षेत्र में प्रगति कर सकता है और मार्ग में आने वाली बाधाओं-प्रतिकूलताओं तथा अपने दोष-दुर्गुणों को पैरों तले रौंद कर आगे बढ़ सकता है। तपस्वी-मनस्वी यही प्रक्रिया अपनाते और आत्मोन्नति करते हैं।

श्रम शीलत्व शालीनत्वे तथा सहकारिता ।
मितव्ययत्वसंघर्ष शीलते सत्प्रवृत्तिषु ।। ५१।।
जीवनव्यवहारे तु योक्तुं युक्ततरं ध्रुवम् ।
पञ्चशीलसुशब्देन स्मृतमेतन्मनीषिभिः ।। ५२।।
गजसाहस्रशक्त्या स शीलभावो निरूप्यते ।
ईदृशा न परास्ताः स्युर्नता वाग्रे नृणां नरा ।। ५३।।
कार्याणि यानि गृह्णन्ति सफलाः सन्ति तेषु ते ।
परिस्थित्यानुकूल्येन व्यवहारेण जीविनः ।। ५४।।

टीका- सत्प्रवृत्तियों में श्रमशीलता, मितव्ययिता, शालीनता, सहकारिता,संघर्षशीलता को व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट करना बुद्धिमत्तापूर्ण है। इन्हें पंचशील कहते हैं। शील में हजार हाथी के बराबर बल माना गया है। ऐसे लोग न किसी के सामने झुकते हैं, न परास्त होते हैं। जिस काम में हाथ डालते हैं उसी में सफल होकर रहते हैं। परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाना उनके जीवन का व्यावहारिक गुण है ।। ५१-५४।।

जो जीवन को शीलयुक्त बनाएँ, आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त करें, उन्हीं गुणों को ऋषिश्रेष्ठ ने यहाँ पंचशील की उपमा दी है। इसे व्यक्ति निर्माण की, आत्मोत्थान की आचार संहिता भी माना जा सकता है। कोरा तत्वदर्शन किसी काम का नहीं, यदि उसे व्यवहार में न उतारा गया हो। व्यवहार में गुण, सम्पदा, श्रम के प्रतिनिष्ठा, साधनों अर्थसम्पदा के, आय-व्यय के संबंध में औचित्य के निर्वाह, वाणी में मिठास एवं सज्जनता, समुदाय का एक अंग होने के नाते परस्पर एक दूसरे का हित चाहने की भावना तथा अनीति अनौचित्य एवं सड़ी-गली मान्यताओं से मोर्चा लेने की क्षमता विकसित करने के रूप में अर्जित की जाती है। व्यक्तित्व विकास के इन्हें पाँच सोपान कहा जा सकता है। जो इतना कर सके समझ लेना चाहिए, उसने आध्यात्म क्षेत्र में प्रगति की प्रथम परीक्षा उत्तीर्ण करली। उनकी जानकारी का अभाव या इन्हें व्यवहार में उतार सकने में असमर्थता ही अंततः व्यक्ति की अवगति एवं पतन का कारण बनती है।

नियोजितेन ये मर्त्याः क्रमेण श्रमसंरताः ।
न श्लथास्ते परं पुष्टाः प्रखराः सर्वतोदिशः ।। ५५।।
स्वीकृतं कर्मपूर्णेन श्रमेणोत्साह पूर्वकम् ।
स्फूर्त्या कर्त्तव्यमेवाथ मनोयोगेन सर्वदा ।। ५६।।
कार्यस्तरं प्रतिष्ठां तां मत्त्वा चैवानुसञ्चरेत् ।
चातुर्येण समग्रेण कार्यं कर्मेत्थमेव यत् ।। ५७।।
इष्टे सफलताऽवाप्तिर्यशस्वित्वाप्तिरप्यलम् ।
क्रियेतात्र च यत्कर्म सत्यं तत्सुन्दरं शिवम् ।। ५८।।
दुष्प्रवृत्तिप्रदं कर्म न कार्यमपि लाभदम् ।
सत्यता व्यवहारे स्यादास्था कर्तव्य कर्मणि ।। ५९।।
केचिद्दुष्कर्म कृत्वापि साफल्यं यान्ति चेन्नहि ।
अस्माँकमनुकार्यास्ते श्रेष्ठं स्वल्यं वरं भवेत् ।। ६०।।

टीका- सुनियोजित क्रम से श्रमरत रहने से कोई थकता नहीं वरन् हर दृष्टि से प्रखर एवं परिपुष्ट बनता है। हाथ में लिए हुए काम को परिपूर्ण श्रम, स्फूर्ति, उत्साह और मनोयोग के साथ किया जाय। काम के स्तर को प्रतिष्ठा मानकर चला जाय। इस प्रकार समग्र कौशल के साथ कार्य किया जाय तो अभीष्ट सफलता भी मिलती है और कर्त्ता को यशस्वी बनने का अवसर भी मिलता है। जो भी काम किया जाय, वह आदर्शों की कसौटी पर खरा और लोकोपयोगी होना चाहिए। दुष्प्रवृत्ति बढ़ाने वाला कोई काम न किया जाय, भले ही उसमें कितना ही लाभ क्यों न होता हो। व्यवहार में सचाई और ईमानदारी जुड़ी रहनी चाहिए। दूसरे दुष्कर्म करके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफलता पाते हैं तो अपने को उनका अनुकरण करने की क्या आवश्यकता ? जो किया जाय उत्कृष्टतम किया जाय भले ही थोड़ा क्यों न हो ।। ५५-६१।।

श्रम करने से कोई थकता नहीं। थकता तो तब है, जब उसकी कार्य पद्धति अस्त-व्यस्त होती है, कोई लक्ष्य नहीं होता एवं जो भी कुछ किया जा रहा है उसका क्या प्रतिफल होना है अथवा उत्पादित श्रम का क्या सुनियोजन होना है ? यह निर्धारण नहीं होता। सबसे बड़ी बात यह है कि जो भी कुछ हाथ में लिया गया है, उसके पीछे भावना जुड़ी या नहीं, कार्य की सफलता को अपने सम्मान, आत्मसत्ता का गौरव मानकर किया गया या नहीं।

श्रम के मूल में भावना प्रधान-भावना ही कर्म को बल देती है। श्रम तो मजदूर भी करता है, मन्दिर की ईंटों को जोड़-जोड़कर नक्काशी करते हुए सुन्दर रूप दे देता है। पर उसे तो धन राशि से मतलब रहता है जो वह अपनी दिहाड़ी पूरी होते ही पाता है, जबकि एक कलाकार अपना पूरा मनोयोग लगाकर अपने इष्ट देवता की मूर्ति बनाता है। अपने अंतः का सारा सौन्दर्य वह उसमें उड़ेल देता है। वह जीती जागती मूर्ति जो अर्जित व्यक्तियों की श्रद्धा का प्रतीक बन जाती है, एक मनोयोग पूर्ण श्रम की ही परिणति है।

प्रतिकूलस्थितौ नित्यमानुकूल्यस्य मार्गणम् ।
सर्वस्थितिस्थिरत्त्वं च धैर्यसाहस शालिता ।। ६१।।
लोभापातत्वमुच्चत्वं मानसं सद्भविष्यतः ।
आशाया अपरित्यागश्चित्तस्यापि प्रसन्नता ।। ६२।।
उपायमार्गणं चिन्तास्थाने चा नान्य संश्रितः।
आत्मावलम्बनेनाथ पादन्यासः सुयोजितः ।। ६३।।
लब्धसन्तोष भावश्चाप्यधिकं प्राप्तुमुत्सुकः ।
गुणास्त्वेवं विधाह्येते यानाश्रित्य नराः सदा।। ६४।।
स्थितिष्वपि तु हेयासु स्वल्पसाधन संयुता ।
प्रगतेः पथिनित्यं ते चलितुं प्रभवन्त्यलम् ।। ६५।।

टीका- प्रतिकूलता में अनुकूलता उत्पन्न करने के लिए मार्ग खोजते रहना-किसी भी स्थिति में असन्तुलित न होना, धैर्य और साहस को हर हालत में बनाये रहना, प्रलोभनों में न फिसलना, मनोबल न गिरने देना, उज्ज्वल भविष्य की आशा न छोड़ना, चित्त को प्रसन्न बनाये रहना, चिन्ता करने के स्थान पर उपाय खोजना, दूसरों के सहयोग-समर्थन पर आश्रित न रहकर आत्मावलम्बन के सहारे कदम बढ़ाना, जो है उसमें सन्तोष करना तथा अधिक पाने के लिए उत्साहपूर्वक प्रयत्न करना-ऐसे सद्गुण हैं जिनके सहारे हेय परिस्थितियों एवं स्वल्प साधनों के रहते हुए भी प्रगति पथ पर निरन्तर अग्रसर रहा जा सकता है ।।६१-६५।।

मानव शावक धरती पर माँ के गर्भ से आता है तो सबसे पहले परावलम्बी से स्वावलम्बी बनता है। जब तक बच्चा भ्रूण रूप में माँ के गर्भाशय में पल रहा था, तब तक मातृसत्ता उसके भरण-पोषण जीवन को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी थी। अब बाहर आते ही उसे स्वयं श्वांस लेना पड़ता है ताकि प्राण वायु अंग-प्रत्यंग तक पहुँच सके। यह स्वावलम्बन की प्रक्रिया जीवसत्ता के जीवित बने रहने के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। यही तथ्य जीवनचर्या के सभी प्रसंगों पर लागू होता है। मनुष्य अपने आपे पर विश्वास न रख साहस खो बैठता है तो जो भी कुछ सामर्थ्य है, उसका भी सुनियोजन नहीं हो पाता। हाथ आए अवसर खोते चला जाता है। किसी और पर निर्भर न रह मानसिक समस्वरता बनाये रखी जाय, मनोबल-संकल्पशक्ति को सतत् सशक्त बनाया जाता रहे एवं दृष्टिकोण विधेयात्मक हो तो "एकला चलो रे" के सिद्धान्त पर चलते रहकर वह निरन्तर प्रगति करता रह सकता है। परिस्थितियाँ किसी को भी कभी अनुकूल नहीं मिलतीं। संघर्षशीलता ही जीवन है। धारा को उल्टी चीरकर चलने वाले जीवन ही आदर्श बनते एवं दूसरों के प्रेरणा श्रोत बनते हैं।

कालः सर्वोत्तमा संपत्तस्य चांशोपयोगिता ।
सत्प्रयोजनसिद्ध्यर्थं कर्त्तव्या सन्ततं मुने ।। ६७।।
कालं विभज्य कार्यार्थं पालनं तस्य नित्यशः।
अस्तव्यस्तः नरेऽभ्यस्ते संयता सफला बहुं ।। ६८।।
काल साधनया नूनं विना कश्चिद् भवेन्नरः।
महाकालदयायास्तु नाधिकारी क्वचिन्मुने ।। ६९।।

टीका- समय को सर्वोपरि सम्पदा माना जाय। उसके एक-एक क्षण का सत्प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाय। प्रस्तुत कार्यों के लिये समय विभाजन करके जो इस निर्धारण का तत्परतापूर्वक पालन करते हैं, वे नियमितता के सहारे अस्तव्यस्त लोगों की तुलना में अनेक गुनी सफलताएँ पाते हैं। हे तात ! काल-साधना किये बिना कोई, महाकाल, की अनुकम्पा का अधिकारी नहीं बन सकता ।। ६७-६९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काल अर्थात् समय को ही महाकाल कहा गया है। महाकाल जीवन के स्वामी और उसके संहारकर्त्ता हैं। काल और जीवन एक ही तथ्य के दो नाम हैं। समय की सम्पदा ही जीवन की निधि है। हर साँस हीरे-मातियों से तौलने योग्य है। अत: हर पल को बहुमूल्य समझा जाना चाहिए। समय विभाजन करके उसके प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करने वाले-आलस्य और प्रमाद बरतने वाले एवं समय को कुचक्रों के उलझनों में *गँवाने* वालों की तुलना में अनेक गुनी सफलताएँ पाते और उन्नति के चरम शिखर तक जा पहुँचते हैं। सुनियोजित ढंग से समय का क्रमबद्ध सदुपयोग श्रेष्ठतम् प्रयोजनों में करने वाले कम समय में ही इतनी उपलब्धियाँ अर्जित कर सके हैं जितनी सौ-दो सौ वर्ष तक जीकर भी नहीं पाई जा सकती। आचार्य शंकर, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि महापुरुष इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

सम्पन्नतोपमायां तु प्रामाण्यं श्लाघ्यतेतराम् ।
ऋषे ! एतभ्य उत्साह: सर्वेषां मनसिस्थित: ।। ७०।।
परं मार्गे तु कष्टानि यान्यायान्ति पदे पदे ।
प्रवृत्ति: साधनायां न जायते तद्मयान्मुने ।। ७१।।
तपस्वि जीवनात्कष्ट तितीक्षा वर्धते भृशम् ।
अतएवोक्तमेतद्यद् योगो नैव तपो विना ।। ७२।।

टीका- सम्पन्नता की तुलना में प्रामाणिकता की गरिमा कहीं अधिक है। हे ऋषिवर ! इन सबके लिए मनुष्य के मन में उमंग तो रहती है, पर मार्ग में आने वाले कष्टों के भय से साधना की ओर प्रवृत्ति हो नहीं पाती। तपस्वी जीवन से कष्ट सहने की क्षमता बढ़ती है। इसीलिए कहा गया है कि तप के बगैर योग नहीं सधता ।।७०-७२।।

व्यक्ति भौतिक दृष्टि से सम्पन्न हो; पर यह आवश्यक नहीं कि वह प्रामाणिक भी हो। व्यक्तित्व की प्रामाणिकता सम्पदा से नहीं,चिन्तन-चरित्र और आचरण की उत्कृष्टता से आती है। यदि चरित्र और आचरण घटिया हो, और आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति सम्पन्न हो, तो भले ही साधन-सम्पदा के बल पर वह बड़े-बड़े काम पूरा करने का कौतुक पूरा कर ले; पर उस स्तर के कार्य उससे कदापि नहीं बन पड़ेंगे, जो जनश्रद्धा उभार कर जनसमर्थन जुटा सके, जनसमुदाय के अन्तराल को उद्वेलित कर सामयिक आवश्यकता के अनुरूप चलने और रीति-नीति अपनाने पर विवश करे। यह तो व्यक्तित्व और उसके उत्कर्ष का विषय है और उसी की उपलब्धि भी। महामानवों की यही विशेषता होती है। कथनी और करनी की एकरूपता, जीवन की समस्वरता, विचारणा - भावना की उदात्तता और वाणी की मधुरता उनके ऐसे गुण हैं, जो व्यक्तित्व की प्रामाणिकता को और प्रखरता प्रदान कर सोने में सुगंध जैसी भूमिका सम्पन्न करते हैं। भौतिक दृष्टि से तो वे प्राय: उतने ही समर्थ होते हैं, जिससे कि निर्वाह भर की आवश्यकताएँ पूरी होती रह सकें। इतने पर भी देखा यह जाता है कि दूसरों पर वे इतनी गहरी अनुकरणीय छाप छोड़ते हैं कि उनके एक इशारे पर विशाल जनबल हर प्रकार के त्याग-उत्कर्ष के लिए तैयार हो जाता है।

यह सब कुछ धन-दौलत की वरिष्ठता से नहीं व्यक्तित्व की प्रामाणिकता से ही प्राप्त किये जा सकते हैं जो कि मानवी गरिमा के अनुरूप भी है। अस्तु, भौतिक सम्पन्नता की तुलना में आन्तरिक सम्पन्नता ही कहीं अधिक श्रेयस्कर व गरिमामयी है और इसी का सम्पादन भी किया जाना चाहिए - ऋषि यहाँ इसी बात पर बल देते हैं।

व्यवस्था बुद्धिमाश्रित्य स्वल्पैरपिचसाधनै: ।
प्रयोजनानि पूर्याणि वृहन्त्यपि न नाञ्जसा ।। ७३।।
सावधानत्व भावस्य परीक्षा कौशलस्य च ।
निकषे हि भवत्यस्मिन् कलात्वं सुव्यवस्थिति:।। ७४।।
अस्तव्यस्तत्व भावस्तु कुरूपत्वस्य बोधक: ।
यद्दृष्ट्वा व्यक्तिमानस्य हेयत्वं तु प्रतीयते ।। ७५।।
मनस: कर्मणोऽथापि वचनस्य गंभीरता ।
शालीनत्वं व्यवस्था च निकृष्टोत्कृष्टबोधका: ।। ७६।।

टीका- व्यवस्था बुद्धि के सहारे स्वल्प साधनों से भी बड़े-प्रयोजन पूरे किये जा सकते हैं। जागरूकता और कौशल की परीक्षा इसी कसौटी पर होती है। सुव्यवस्था ही सच्ची कलाकारिता है। अस्तव्यस्तता ही कुरूपता है, उसे देखकर व्यक्ति के स्तर का घटियापन प्रतीत होता है। मन, कर्म और वचन की गंभीरता, सुव्यवस्था और शालीनता को देखकर ही किसी के स्तर की श्रेष्ठता-निकृष्टता का भान होता है ।। ७३-७६।।

सुव्यवस्था को कला के अन्तर्गत रखा गया है जो कलाकार स्तर के होते हैं, सुव्यवस्था उन्हीं से बन पड़ती है। हर व्यक्ति प्रस्तर के अनगढ़ खण्ड को प्रतिमा का रूप कहाँ दे पाता है। यदि कोई छात्र लायब्रेरियन की भूमिका सम्पन्न करना चाहे, तो वह उसके बूते की बात नहीं होगी। इसी प्रकार घर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था यदि कोई पुरुष सम्भालना चाहे, तो संभवत: वह उसमें उतना सफल नहीं हो जायेगा, जितना कि महिलाएँ। तात्पर्य यह कि व्यवस्था चाहे किसी भी क्षेत्र की हो, इसके लिए बुद्धिकौशल, जागरूकता और सतर्कता की आवश्यकता पड़ती है। इनके अभाव में वह बात नहीं बन पड़ती, जिससे *अस्तव्यस्तता* की कुरूपता मिटने और श्रेय लाभ मिलने जैसा सुयोग बने।

यह तो भौतिक क्षेत्र का संदर्भ हुआ। सामान्य लोगों में आत्मिक क्षेत्र में भी ऐसी ही अस्तव्यस्तता देखी जाती है। जिस प्रकार मूर्ति की सुगढ़ता-अनगढ़ता के आधार पर कलाकार के स्तर का अनुमान लगाया जाता है, उसी तरह व्यक्ति की दिनचर्या ,आचार,व्यवहार, गुण-कर्म स्वभाव, मन, वचन-कर्म और समय का उपयोग इनमें-पारस्परिक सामंजस्य को देखकर यह अन्दाज लगाया जाता है कि व्यक्ति किस कोटि का है और जीवन में कितना सफल हो सकता है। जन *सामान्यों* में पाय: इस क्षेत्र में व्यतिक्रम ही दिखाई पड़ता है, जिससे न तो वे अपने जीवन में कोई कहने लायक सफलता अर्जित कर पाते हैं, न अनुकरणीय-अभिनन्दनीय ही बन पाते हैं।

सुव्यस्थित जीवन में इन्हीं की उपलब्धि की जाती है। व्यवस्थित जीवन के तीन मुख्य आधारों में नियमितता, समय और विचार संयम प्रमुख हैं। यदि जीवन में नियमितता का समावेश न हो, तो वह प्रखरता और प्रतिभा विकसित नहीं हो पाती, जो व्यवस्थित जीवन में दिखाई पड़ती है। इसीलिये नियमितता को जीवन का पारस कहा गया है। समय इसका दूसरा पक्ष है। यदि जीवन में समय का ध्यान न रखा जाय उसके सदुपयोग की बात न सोची जाय, तो नियमितता निभ नहीं पायेगी। इस प्रकार यदि जीवन में नियमितता और समय दोनों की उपेक्षा हो, तो किसी प्रकार की सफलता की आशा नहीं की जा सकती। नियमितता और समय की ही तरह विचारों का भी व्यक्तिगत जीवन में बड़ा महत्व है। विचार संयम न बन पड़े, वह इधर-उधर भटकता रहे, तो किसी भी काम को मनोयोगपूर्वक नहीं किया जा सकता। और जब कार्य में तत्परता न हो, गुणवत्ता न हो, तो उसके परिणाम भी उसी स्तर के मिलेंगे।

अस्तु उपरोक्त तीन गुण ऐसे हैं जो जीवन को सुगठित, सुव्यवस्थित बनाते हैं। सुव्यवस्था ही जीवन देवता की सच्ची आराधना है। जो यह आराधना सफलतापूर्वक कर पाते हैं, वही जीवनकला के सच्चे कलाकर कहलाने के श्रेयाधिकारी बनते हैं - ऋषि यहाँ यही स्पष्ट करना चाहते हैं।

न्यायाप्ताजीविकायास्तु वर्धने गौरवं वरे ।
अर्जितं विनियोक्तव्य प्रध्या सदुपयोगके ।। ७७ ।।
श्रेय: पथस्य ये सन्ति साधकास्ते प्रदर्शने ।
स्वेभ्योऽतिरिक्त वित्तस्य सञ्चयेस्युर्गतेषणा: ।। ७८ ।।

टीका- न्यायोपार्जित आजीविका बढ़ाने में गौरव है, किन्तु बुद्धिमानी इस बात में है कि उपार्जन का एक-एक कण मात्र श्रेष्ठतम् सदुपयोग में ही नियोजित होता रहे। श्रेयपथ के साधकों को चाहिये कि आडम्बरों में खर्च करने अथवा मोह वश अपनों के लिये अतिरिक्त धन छोड़ जाने के मोह से बचें।। ७७-७८।।

विधाता ने मनुष्य में बुद्धि का समावेश इस आशा से किया है कि वह समझदारी से काम कर सके और अपनी गरिमा बनाये रख सके। मानवेतर प्राणियों में इसका सर्वथा अभाव है। वे प्रकृति-प्रेरणा पर आश्रित रहते हैं। जीवन चर्या सम्बन्धी उन्हें किसी तरह की छूट नहीं रहती और ढर्रे की जिन्दगी जीते हैं; पर मनुष्य के साथ ऐसी कोताही नहीं की गई है। उसे स्वतंत्र स्वच्छन्द जीवन जीने की पूरी छूट है; पर यह छूट मानवी गरिमा की परिधि तक में ही सीमाबद्ध है। इससे आगे बढ़ जाना उच्छृंखला हुई और मानवी गरिमा के प्रतिकूल भी।

उपार्जन और संचय के संबंध में भी यही बात लागू होती है। भगवान ने अनेक प्रकार की स्वतंत्रता के साथ ही उपार्जन और संचय की भी मनुष्य के साथ उदारता बरती है। उसे पूरी स्वतंत्रता दी है, चाहे वह कितना भी उपार्जन और संचय करें, किन्तु साथ में एक अनुबंध भी है कि उस उपार्जन और संचय का श्रेष्ठतम् सदुपयोग हो। स्वयं पर मनुष्य उतना ही खर्च करे जितना सामान्य स्तर की जिन्दगी के लिए आवश्यक है और शेष विराट ब्रह्म की सेवा में लगाये सृष्टा की ओर से मानवी-गरिमा के अन्तर्गत उपार्जन और उसके व्यय का ही निर्धारण है। परन्तु हम में से अधिकांश इस क्षेत्र में उपेक्षा ही बरतते देखे जाते हैं। हम उपार्जन तो करते हैं, संग्रह भी करते हैं, परन्तु उसका सदुपयोग हमसे नहीं बन पड़ता। उपार्जन का उपयोग हम अपनी ही साधन-सुविधा बढ़ाने मे करते हैं और संचय को भावी पीढ़ी के लिए छोड़ मरते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह विशुद्ध स्वार्थ हुआ निम्न स्तरीय स्वार्थ। उच्चस्तरीय स्वार्थ उसे कहते-हैं जो परमार्थ परक हो। साधन-सुविधा की दृष्टि से, उन्नति-प्रगति की दृष्टि से जितना ध्यान हम स्वयं पर देते हैं, उतना ही अन्यों पर भी दिया जाय, यही उच्चस्तरीय स्वार्थ हुआ और इसका क्रियान्वयन उपार्जन का श्रेष्ठतम् सदुपयोग। ऋषि यह तथ्य यहाँ स्पष्ट करना चाहते हैं।

सत्प्रवृत्युदयायास्ते स्नेह आवश्यको यथा ।
दुष्प्रवृत्ति निरोद्धुं प्रखरताऽपेक्ष्यते तथा ।। ७९ ।।
अनर्हेण ममत्वेन विकारो जायते तथा ।
सुसंस्कारधिया न दुर्व्यवहारोऽपि चेष्टदः ।। ८० ।।
स्नेहसंस्कारहेतोर्यः व्यवहार : स सर्वदा ।
संयतश्च विवेकेन युक्तः कार्यो नरैर्मुने ।। ८१ ।।
इदं सन्तुलनं लोकजीवनस्यास्ति निश्चितम्।
श्रेष्ठाऽथ सार्थकी चापि साधना शास्त्रसम्मता ।। ८२ ।।
चिन्तनस्य चरित्रस्य दृष्ट्वा व्यवहृतेस्तथा ।
एतस्यां साधनायां स्वं पक्वं संसाधयेत्सदा ।। ८३ ।।
मार्गेऽस्मिन् योऽभियात्यग्रे यावत्तस्यानुपातिकम्।
गौरवं वैभवं चापि लभते मंगलोन्मुखम् ।। ८४ ।।

टीका- हे साधको ! सत्प्रवृत्ति उभारने के लिये स्नेह तथा दुष्प्रवृत्ति निरोध के लिये प्रखरता की आवश्यकता है। अनुचित प्यार से बिगाड़ होता है और सुधार के नाम पर किया गया दुर्व्यवहार भी अभीष्ट उद्देश्य पूरे नहीं करता। प्यार और सुधार के निमित्त किये जाने वाले व्यवहार में विवेक और सन्तुलन बनाकर रखा जाय। यह सन्तुलन लोक जीवन की श्रेष्ठ और सार्थक साधना है, साथ ही शास्त्र-सम्मत भी। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की दृष्टि से अपने आपको इस साधना में खरा सिद्ध करने की हर किसी को चेष्टा करनी चाहिये। इस मार्ग पर जो जितना आगे बढ़ सकेगा उसे उसी अनुपात में मंगलमय गौरव एवं वैभव की प्राप्ति होगी।। ७९-८४।।

वीणा के तार को जब अधिक कस दिया जाता है, तो उसकी आवाज बिगड़ जाती है, एवं और अधिक कस देने पर उसके टूटने का भय रहता है। इसी प्रकार यदि उसे आवश्यकता से अधिक ढीला कर दिया जाय, तो भी उसमें वह मधुरता नहीं आ पाती है, जो अभीष्ट होती है। इसके लिये आवश्यक है कि तार को न तो अधिक कसा जाय, न ढीला ही रहने दिया जाय, अर्थात् ऐसी स्थिति में रखा जाय कि जिसमें तनाव और ढीलापन दोनों का समन्वय बना रहे। यह मध्यम स्थिति हुई। इसी स्थिति में उसके स्वर ठीक बने रहते हैं।

यह मानवी जीवन में भी अक्षरशः लागू होता है। बच्चों में सत्प्रवृत्तियों उभारने के लिये प्यार और दुलार का सहारा लेना पड़ता है। उन्हें स्नेहपूर्वक उसके लाभ समझाने पड़ते हैं और यह बताना पड़ता है कि इससे जीवन में महानता आती और सफलता मिलती है। यदा-कदा इसके लिये उन्हें छोटे स्तर के लोभ-लालच भी दिये जाते हैं। पौधों की वृद्धि जब रुक जाती है, तो उन्हें खाद के रूप में अतिरिक्त पोषण देना पड़ता है; किन्तु यह पोषण इतना अधिक न हो जाय कि पौधा समय से पहले ही इतना बढ़ जाय कि वह अपना भार ही न सम्भाल सके और गिर पड़े। बच्चों के मामले में भी इसका ध्यान रखना पड़ता है। लाड़प्यार इतना अधिक नहीं होना चाहिये कि वह निरंकुश हो जाय और अपनी मनमर्जी चलाये।

इसी प्रकार यदि उसके अन्दर दुष्प्रवृत्तियाँ पनपने लगें, तो कड़ाई आवश्यक हो जाती है। पौधों में जब अनावश्यक शाखाएँ निकल पड़ती हैं, तो उसकी शोभा बिगड़ जाती है, अस्तु उन्हें काट-छाँट कर निकालना पड़ता है; पर ऐसा करते वक्त ध्यान यह रखना पड़ता है कि कतर-व्योंत इतना अधिक न हो जाय कि पौधा ठूँठ जैसी स्थिति में पहुँच जाये। बालकों के साथ भी इसका ध्यान रखना पड़ता है। अधिक शासन, पाबंदी व कड़ाई रखने से बालक टूटने लगते हैं, उनकी आन्तरिक वृद्धि रुक-सी जाती है। फिर वे किसी कार्य में स्वतंत्र निर्णय लेने से कतराने लगते हैं और दब्बू प्रकृति के बन जाते हैं, अथवा कभी-कभी उस बन्धन को तोड़ कर बाहर आ जाते हैं एवं अभिभावक की चिन्ता न कर बगावत कर बैठते हैं। अतः कड़ाई तभी होनी चाहिये जब उसकी आवश्यकता महसूस हो। इमरजेन्सी और राष्ट्रपति शासन हर वक्त नहीं लगाये जाते। जब स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है, तभी इनका प्रयोग किया जाता है। शासन को इससे दोहरा लाभ होता है - स्थिति भी सम्हल जाती है तथा इनकी गरिमा भी बनी रहती है; किन्तु यदि लम्बे काल तक ऐसे शासन लगे रहें तो, संम्भवतः लोग फिर इनकी परवाह किये बिना अपने पुराने ढर्रे पर आ जायेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अतः ऐसे प्रकरणों में सदा सन्तुलन जैसी स्थिति बनाये रखनी पड़ती है। स्नेह और कड़ाई के पलड़ों को बराबर रखना पड़ता है। किसी भी ओर का पलड़ा झुकने पर कार्यसिद्धि संदेहास्पद बन जाती है- ऋषि इसी का संकेत इन पंक्तियों में कर रहे हैं।

साधनास्ता व्यक्तिगामिस्तैरभि नियोजयेत् ।
पारिवारिकगैश्चापि मुने सामाजिकै: स्तरै: ।। ८५ ।।
संघस्तरेण चैतानि योक्तं वृत्तिरपेक्ष्यते ।
सहयोगस्य सर्वेषां योगपादस्तु य: स्मृत: ।। ८६ ।।
यो न दातुं न वा प्राप्तुं सहयोगं नरोऽर्हति ।
असाध्यस्तस्य योगोऽस्ति निश्चितं ज्ञायतां मुने ।। ८७ ।।

टीका- इन साधनाओं को व्यक्तिगत स्तर पर भी चलाना चाहिये तथा पारिवारिक-सामाजिक स्तर पर भी। सामूहिक स्तर पर इन्हें चलाने के लिये सहयोग वृत्ति की आवश्यकता पड़ती है। हे जिज्ञासुओ ! सहयोग को योग का ही प्राथमिक चरण माना गया है। जिसे सहयोग पाना या देना कठिन लगता है, उसके लिये योग भी असाध्य है, हे मुनिवर यह निश्चित समझ लें।। ८५-८७ ।।

'सह' अर्थात साथ और 'योग' अर्थात जोड़ना अर्थात् स्वयं को दूसरों के साथ जोड़ना ही सहयोग है। योग इससे आगे की स्थिति है। इसमें आत्मसत्ता को परमात्मसत्ता से जोड़ा जाता है, अतः बड़े स्तर का पराक्रम करना पड़ता है, आत्मपरिष्कार जैसी भूमिका सम्पादित करनी पड़ती है, तभी यह सफल हो पाता है। किन्तु सहयोग में उदारता और करुणा जैसे मानवी गुणों के विकास से भी काम चल जाता है। परिवार के सदस्यों की सहायता तो अपना सगा-संबंधी होने के नाते आवश्यक कर्तव्य मानकर करना पड़ता है अतः इन गुणों के न भी रहने से पारस्परिक सहयोग सहकार अजस्र रूप से चलता रहता है; परन्तु अपने परिकर से बाहर भी यदि यह क्रम चलाना हो, तो इसके लिये अपने भीतर उन मानवोचित गुणों को विकसित करना आवश्यक होता है, जिससे परदुःखकातरता बन पड़े, जिसका अन्तराल सूखा होता है, दुखितों-पीड़ितों को देख कर भी नहीं द्रवित होता, उससे सहायता भी कहाँ बन पड़ती है। चोर-डाकू आये दिन लोगों का नुकसान करते रहते हैं, नृशंसतापूर्वक रक्तपात और हत्याएँ करते हैं, ऐसे दृश्यों का उन पर कहाँ कुछ प्रभाव पड़ता है, अस्तु दैनिक जीवन में उनसे किसी की मदद भी नहीं बन पड़ती। इसीलिये करुणा उदारता को सहयोग का पर्याय माना गया है और सहयोग को योग का प्रारंभिक चरण; क्योंकि 'सहयोग' में क्षेत्रीय स्तर पर आदान-प्रदान चलाना पड़ता है; जबकि 'योग' में यह आत्मविस्तार बढ़कर विराट्ब्रह्म के स्तर तक जा पहुँचता है। इसी कारण ऋषि कहते हैं कि जो सहयोग का सफल सम्पादन कर लेता है, योग उसी के लिये सरल-साध्य पड़ता है।

महर्षिर्याज्ञवल्क्य: स चर्चां कुर्वन् समाप्तिगाम् ।
उवाच साधका: नृणां मार्गमार्गणतन्त्रता ।। ८८ ।।
सैवं तपोयोगयोश्च साधना वरणाय हि ।
प्रयोक्तव्येत्यमर्हेत्स आत्मकल्याण हेतवे ।। ८९ ।।
लोकस्यापि हितायेशानुदानानि बलादिव ।
आकर्षितानि कर्तुं हि याति चादर्शतां तत: ।। ९० ।।
सत्प्रवृत्तिरुपादाय सुखी चापि समुन्नत: ।
भवेद् यात्यध एवायं दुष्प्रवृत्तिरतो यदि ।। ९१ ।।
जगदेतत्समाकीर्णमशुभैश्च शुभैरपि ।
तत्वैर्योयस्य मार्गस्य पथिकस्तत्र तत्र ते ।। ९२ ।।
सहायका: प्रकृत्यैव समाकृष्टा: सदाऽजसा ।
मिलन्तीत्थं नरा यान्ति सीमामुत्थानपातजाम् ।। ९३ ।।

टीका- महर्षि याज्ञवल्क्य ने चर्चा का समापन करते हुये कहा-हे साधक श्रेष्ठ ! मनुष्य को अपने मार्ग निर्धारण की जो स्वतंत्रता प्राप्त है, उसे इस प्रकार की तप और योगसाधना के वरण के लिये प्रयुक्त किया जाना चाहिये। ऐसा करके वह अपने आत्मकल्याण और लोकहित के लिये ईश्वरीय अनुदानों को बलात् आकर्षित कर सकता है तदन्तर जगत का आदर्श बन जाता है। सत्प्रवृत्तियाँ अपनाकर वह सुखी समुन्नत बन सकता है और दुष्प्रवृत्तियों की दिशा में चल पड़े तो वह अपने अधःपतन का मार्ग भी स्वयं ही प्रशस्त करता है। यह संसार भले-बुरे तत्वों से भरा पूरा हैं। जो जिधर चलता है, उसे उस मार्ग में सहायता करने वाले भी स्वभावगत् आकर्षण से प्रेरित होकर अनायास ही मिलते रहते हैं और मनुष्य उत्थान-पतन की पराकाष्ठा तक जा सकता है।। ८८-९३ ।।

ऋषि कहते हैं कि मनुष्य को जो मार्ग निर्धारण की स्वतंत्रता मिली है, उसका वह दुरुपयोग न करे। वह स्वयं को पहचानें, लक्ष्य जाने और उसी की प्राप्ति के लिये प्रयत्न-प्रयास करे। वह आत्मा है और आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का लक्ष्य परमात्मा से मिलन का है; किन्तु इस मार्ग में एक बाधा आती है-वह है जन्म-जन्मान्तरों के संचित कुसंस्कार। जैसे संस्कार होते हैं, मन उसी ओर प्रवृत्त होता है। अत: उस परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि मन को-अन्त:करण को कुसंस्कारों से मुक्त किया जाय। इसके लिये तप और योग स्तर की साधनाएँ बतायी गई हैं। तप से अन्त:करण को सुसंस्कारी बनाया जाता है और योग से मन को नये ढाँचे में ढाला जाता है। इतना सब सम्पन्न कर अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के बाद ही ईश्वरीय अनुदानों की साधक पर वर्षा होती है, जिससे उसका आत्मकल्याण तो होता ही है, उपलब्ध विभूतियों से लोककल्याण करते रहकर दुहरा प्रयोजन पूरा करने में वह सफल होता है। किन्तु जो ऐसा नहीं कर पाते, अधोगामी प्रवाह में बह जाते हैं, वह पतन-पराभव के गर्त्त में जा गिरते हैं, और यह दुर्लभ मनुष्य जन्म गँवा देते हैं।

तृतीयस्य दिनस्येदं पीयूषपरिवर्षणम्।
यत्तेन मत्रसंथास्ते तोषं जिज्ञासव्रो ययु:।। ९४।।
भ्रान्तिनाशे रहोज्ञाने मन: स्वास्थ्यं कियद्भवेत्।
इति ज्ञातं समैस्तत्र प्रत्यक्षज्ञानसत्रके ।। ९५।।
सायं सन्ध्यां विलोक्याथ समाप्तिं सत्रमभ्यगात्।
जिज्ञासवो नमन्तश्च कुटीराभिमुखा ययु: ।। ९६।।

टीका- तीसरे दिन की इस अमृत वर्षा से सत्र में सम्मिलित सभी जिज्ञासुओं को बहुत सन्तोष मिला। भ्रान्तियाँ मिटने और तथ्यों की यथार्थता विदित होने पर मन कितना हल्का और प्रसन्न होता है - इसका प्रत्यक्ष अनुभव उस ज्ञान-सत्र में उन सभी ने किया। सायंकाल का उपासना-काल निकट आया देखकर नियत समय पर सत्र विसर्जित हुआ और जिज्ञासु वर्ग अभिवन्दन प्रक्रिया को पूर्ण करते हुये अपने-अपने कुटीर-कक्षों की ओर चला गया।। ९४-९६।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो: युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयो: महर्षि जरत्कारु याज्ञवल्क्य संवादे "व्यावहारिक तपोयोग" इति प्रकरणो नाम ।। तृतीयोऽध्याय:।।

।। अथ चतुर्थोऽध्याय: ।।

आत्मबोध प्रकरणम्

यथाक्रमं समारब्धं ज्ञानसत्रं समागता: ।
समये नियतस्थाने तत्वार्थमृषय: समे ।। १।।
चतुर्थे दिवसे तत्र प्रज्ञासत्रस्य सोऽगिंरा: ।
ब्रह्मविद्यारुचिर्नम्र: सत्राध्यक्षमथाब्रवीत् ।। २।।

टीका- यथाक्रम ज्ञान सत्र आरम्भ हुआ। ऋषि-मनीषीगण यथासमय नियत स्थान पर तत्वचर्चा के लिये एकत्रित हुये। प्रज्ञा सत्र के चौथे दिन ब्रह्म विद्या में अगाध अभिरुचि रखने वाले अंगिरा ने सत्राध्यक्ष से विनयावनत् हो पूछा।। १-२।।

अंगिरा उवाच-

मान्या विगतकाले यदमृतं प्राप्तुमुत्सुकै: ।
अस्माभि: कृतकृत्याश्च वयं शंकाकुला: पुन: ।। ३।।
ज्ञानमात्रेण चैतेषां लाभान् मर्त्योऽतिदुर्लभान्।
प्राप्तुमर्हति किं?ज्ञात्वा नो पथिश्रेयसा चलेत्।। ४।।
तथ्यं किञ्चिदविज्ञातं मन्ये तत्रावशिष्यते ।
यतो नैतद् भवत्येषा ग्रन्थिर्नश्छिद्यतां मुने ।। ५।।

टीका- अंगिरा बोले- मान्यवर ! आपने पिछले दिनों जो अमृत पान कराया, उससे हम कृतकृत्य हुये लेकिन एक शंका हमें अभी भी व्यग्र कर रही है कि क्या यह सब जान लेने मात्र से ही मनुष्य उन दुर्लभ लाभों को पा सकेगा ? देखा यह जाता है कि जानकर भी मनुष्य श्रेय पथ पर गतिशील नहीं हो पाता। लगता है कोई ऐसा तथ्य अविज्ञात रह गया है जिसके कारण वह सुयोग नहीं बन पाता। कृपया इस उलझन को और भी सुलझावें।। ३-५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

याज्ञवल्क्य उवाच-

गहनं मार्गणं ये तु भवतामिव कुर्वते ।
सत्यमुच्चस्तरं ब्रह्मन् सत्यं द्रष्टुमीश्वराः ।। ६।।
ब्रह्मवेतृत्वलाभं ते पूर्णतां लक्ष्यगां तथा ।
प्राप्नुवन्ति न चाऽन्येऽत्र सफलाः संभवन्ति हि ।। ७।।

टीका- तत्वज्ञानी याज्ञवल्क्य जी बोले- ब्रह्मविज्ञान में अनुसंधानरत हे ब्रह्मचारी ! आप जैसी गहरी खोज करने वाले ही उच्चस्तरीय सत्य का दर्शन कर पाते हैं। उन्हें ही ब्रह्मवेत्ता होने का लाभ मिलता है और वे ही पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करते हैं, अन्य लोग इसमें सफल नहीं हो सकते।। ६-७।।

अध्यात्मदर्शन का सूत्र -"जिन ढूँढा तिन पाइयाँ"- अक्षरशः सही है। जो ढूँढता है,वही पाता है; किन्तु जो परिश्रम करने से जी चुराता है, उसे कहाँ कुछ हस्तगत हो पाता है।

तैरने की इच्छा रखने वाले तैराक को गहरे पानी में उतरना पड़ता है, तभी उसे उसका आनन्द मिल पाता है; पर जो गहराई में जाने से डरते हैं, वे उस आनन्द से वंचित रह जाते हैं।

गोताखोर के लिये यह आवश्यक है कि वह समुद्र की अतल गहराई में डुबकी लगाये, तभी मूँगा-मोती जैसे बहुमूल्य रत्न मिल पाने का सुयोग बन पाता है। जो यह साहस नहीं सँजो पाते, उथले प्रयास भर करते हैं, उन्हें निराशा ही हाथ लगती है।

आत्मक्षेत्र में भी यही बात लागू होती है। जो निरन्तर अनुसंधानरत रहते हैं, वही इस क्षेत्र के मणि-माणिक्य उपलब्ध कर ब्रह्मपरायण बनने का लाभ हस्तगत कर पाते हैं; मगर जो तैराक, गोताखोर की भाँति गहराई में जाने से कतराते हैं, उथले प्रयास करते और ढूँढ-खोज के नाम पर लकीर भर पीटते हैं, उन्हें करतलगत कुछ नहीं हो पाता और सदा छूँछ रहते हैं। इसी तथ्य को ऋषि ने यहाँ स्पष्ट करते हुये जिज्ञासु साधकों की तथ्यान्वेषी बुद्धि को सराहा है।

महत्ताज्ञानजा तात ! शास्त्रैः सत्पुरुषैरपि ।
एकस्वरेण गीतोक्ता विश्वश्रेष्ठोपलब्धि का ।। ८।।
ज्ञानं तत्केवलं नैव ज्ञानमात्रे तु सीमितम् ।
ज्ञातं बोधस्तरं यावद् विकास्यं ज्ञानमुच्यते ।। ९।।
प्रशंसितमिदं सर्वैर्मुक्तकण्ठेन निश्चितम् ।
बोधस्य विविधा धारा विज्ञानेनान्वयन्ति तत् ।। १०।।
अन्तःक्षेत्र विशिष्टानि ज्ञानान्येव मतानि तु ।
स्वस्वक्षेत्रस्य तान्यत्र विज्ञानानि महाप्रभुने ।। ११।।
एतादृशस्य ज्ञानस्योपार्जनं सौभगं नृणाम् ।
पुरुषार्थः परः प्रोक्तो जगन्मंगलकारकः ।। १२।।
प्राप्तुं ज्ञानमृतं सर्वे भवन्तो यादृशं सदा ।
तत्वचर्चां विचाराणां मन्थनं कुर्वते तथा ।। १३।।
ताभ्यां तथोपलब्धीश्च करिष्यन्त्यर्जिता यथा ।
आदिकाले समुद्रस्य मन्थनेनार्जिताः सुरैः ।। १४।।

टीका- हे तात् ! ज्ञान की महत्ता शास्त्रों और सत्पुरुषों ने एक स्वर से गाई है, उसे विश्व की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि कहा है, किन्तु वह ज्ञान मात्र जानकारी तक ही सीमित नहीं है। जानकारी को बोध के स्तर तक विकसित किया जाय तभी वह ज्ञान बनता है, जिसकी प्रशस्ति मुक्त कण्ठ से की जाती रही है। बोध की अनेकों धाराएँ हैं जो मात्र जानकारी को उनसे सम्बन्धित विज्ञान से जोड़ देती हैं। अन्तःक्षेत्र के विशिष्ट ज्ञान अपने-अपने स्तर के विज्ञान कहे जाते हैं- ऐसा ज्ञान उपार्जन ही मनुष्य का सर्वोपरि पुरुषार्थ और सौभाग्य है, जो जगत का कल्याण करने वाला है। आप लोग ज्ञानरूपी अमृत प्राप्ति के लिये जिस प्रकार तत्व चर्चा और विचार मन्थन कर रहे हैं, उससे वैसी ही उपलब्धियाँ अर्जित करेंगे जैसी कि आदिकाल में देवताओं द्वारा समुद्रमन्थन से उपार्जित की गई थीं।। ८-१४।।

ज्ञान का मोटा अर्थ-जानकारी है। कामचलाऊ ज्ञान-जानकारी तो प्रायः सभी को होती है; पर जिस ज्ञान की चर्चा यहाँ ऋषि कर रहे हैं, उसका तात्पर्य बाह्य जानकारी-भौतिक ज्ञान से नहीं है। अध्यात्म तत्वज्ञान में इस 'ज्ञान' को विशेष अर्थ में प्रयुक्त किया गया है और उसकी विरुदावली गाते हुये यहाँ तक कहा गया है कि **"न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते"** अर्थात् ज्ञान से बढ़ कर पवित्र इस संसार में और कुछ नहीं है। इसीलिये ऋषि ने भी यहाँ उस ज्ञान को उपलब्ध कर उसका अमृत पान करने पर जोर दिया है।

अध्यात्म में ज्ञान सत्य को कहा गया है। विभिन्न स्त्रोतों से हम जो जानकारी अर्जित करते हैं, वह ज्ञान सत्य नहीं है। वह तो अवास्तविक है बाह्य है, अज्ञान है। इसी अज्ञान के कारण हमें यह संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके प्राणी, वस्तुएँ कुछ-के-कुछ भासते हैं; हम स्वयं को भी हाड़-माँस का पुतला भर मानते हैं; पर वस्तुतः ऐसा है नहीं। सत्य वह है, जो नहीं बदलता, न नष्ट होता न मरता और न क्षय होता है। इसी शाश्वत सत्य को, यथार्थ को जान लेना ही वास्तविक ज्ञान है।

शास्त्रों में ज्ञान की तुलना सूर्य से की गई है। सूर्य जब उदित होता है, तो अन्धकार के साम्राज्य को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार मनुष्य में जब ज्ञान का सूर्योदय होता है, तो उसका अज्ञानान्धकार स्वतः समाप्त हो जाता है, फिर उसे जो कुछ दीखता है वह सत्य होता है और उसकी यह स्थिति कल्याणकारी, सर्वसमर्थ, सर्ववित्ता जैसी होती है। इसीलिये ऋषि ने **"तमसोमां ज्योतिर्गमय"** कह कर उस दिव्य ज्ञान को प्राप्त करने की आकांक्षा परम सत्ता से प्रकट की है। मनुष्य के इसी स्वरूप का उद्घोष शास्त्रकार ने **"य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्व भवति"** के रूप में किया है। **"ऋतुम्भरा प्रज्ञा"** के रूप में इसी ज्ञान को अर्जित करने की प्रेरणार्थ ग्रन्थों में दी गई हैं।

इस आत्मिक ज्ञान, आत्मबोध की लक्ष्य सिद्धि ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। इसी का विवेचन अनुसंधान आत्मिकी की ज्ञानयोग धारा के अन्तर्गत किया जाता है।

जिज्ञासवः समस्ता हे अंगिरः प्रमुखा इह ।
स्थूलः परिचयो नृणां शरीरेणैव प्राप्यते ।। १५।।
दृश्यत्वान्नामरूपाभ्यां युक्तः कायोऽभिमन्यते ।
कर्मकर्ता तदाश्रित्य दण्ड्यते पूज्यतेऽपि च ।। १६ ।।
नेयं श्रेष्ठा मता लोकमान्यता बुधसत्तमैः ।
करणं तु शरीरं हि मनः स्वामिनिदेशगम् ।। १७ ।।
मनुष्यत्वस्य रूपं तत्सत्यं मानवचिन्तने ।
चेतनायां च प्रच्छन्नं तस्यैव स्तर एष च ।। १८ ।।
शोभनोऽशोभनः स्वस्य प्रकृत्याऽऽकांक्षयापि च ।
सन्मार्गे वा कुमार्गे वा चलितुं प्रेरयत्यलम् ।। १९ ।।
अत एव विनिर्मेयश्चेतनायाः स्तरः सदा ।
ऊर्ध्वगाः कर्मणीहस्यान्नैष्कृष्ट्यंसंसृतेःस्तरात् ।। २०।।

टीका- हे अंगिरा सहित समस्त जिज्ञासुओ ! मनुष्य का स्थूल परिचय उसके शरीर से मिलता है। दृश्यमान होने के कारण नामरूपधारी काया ही कर्मकर्त्ता मानी जाती है और इसी आधार पर उसे दण्ड-पुरस्कार की उपलब्धि भी होती है, किन्तु विद्वानों का मत है कि यह लोकमान्यता सही नहीं है। वस्तुतः शरीर उपकरण मात्र है,उसे वाहन की तरह मनरूपी स्वामी का निर्देश पालना पड़ता है। मानवी सत्ता का वास्तविक रूप तो उसकी चिन्तन-चेतना में छिपा होता है। उसी का भला-बुरा स्तर अपनी आदतों और आकांक्षाओं के अनुरूप सन्मार्ग-कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा उत्पन्न करता है। इसी कारण चेतना के स्तर को ही ऊर्ध्वगामी बनाया जाना चाहिए। ऐसा न बन पड़े तो कर्म में विश्व प्रवाह के अनुरूप निकृष्टता ही बनी रहेगी ।।१५-२०।।

सर्वविदित है, हर प्राणी के क्रिया-कलाप उसके चेतनात्मक स्तर के अनुरूप ही होते हैं। कई बार देखा जाता है कि मानवी शिशु बिछुड़ कर जब जंगर्ल. जानवरों के झुण्ड में सम्मिलित हो जाता है, तो अपना व्यवहार, चाल-ढाल उसी के अनुरूप बना लेता है। यह चेतनात्मक अधोगमन हुआ। आम जीवन में भी आदतों-आकांक्षाओं, वासनाओं तृष्णाओं के रूप में जो निकृष्टता-क्षुद्रता दिखाई पड़ती है, वह भी उसी अधोगामी चेतना का ही परिणाम है; किन्तु गहराई से विचारें तो ज्ञात होगा कि मनुष्य का चेतनात्मक स्तर प्रकृतितः इतना निम्न है नहीं, वह उसे जानबूझ कर क्षुद्र प्राणियों जैसा बना लेता है।

ज्ञातव्य है, प्राणियों का जिस क्रम में उद्भव-विकास होता गया, उनका चेतनात्मक स्तर भी तदनुसार ऊँचा उठता गया। चींटी जैसे छोटे जीव-जन्तु में चेतना का स्तर काफी निम्न होता है। वे प्रकृति-प्रेरणा से ही अपना काम चलाते हैं। उनसे कुछ विकसित जीव बन्दर, कुत्ते, बिल्ली आदि हैं। इनका भी काम प्रकृति प्रेरणा से ही होता है; पर उनमें कुछ सीखने समझने की भी सामर्थ्य होती है। चिम्पांजी इनसे भी विकसित है, अस्तु उसमें कुछ हद तक सोचने की भी क्षमता पायी जाती है।

इस चेतना का चरमोत्कर्ष मनुष्य में हुआ है, क्योंकि इसे सर्वांगीण प्राणी बनाकर इस धरित्री पर भेजा गया है। उसमें सोचने-समझने से लेकर भूल सुधारने-ऊँचा उठने स्वभाव संवदेना की गहराई तक की क्षमताओं का समावेश स्रष्टा ने किया है और उसे सर्वोपरि बनाया है; पर इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि मनुष्य इतनी समर्थ स्थिति में पहुँच कर भी निम्न योनि के जीवों जैसा ही अपने क्रिया कलाप रीति-नीति चिन्तन चरित्र बनाये रखता और दीन-हीन स्थिति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ा रहता है। वह चाहे तो अधोगामी दिशाधारा अपनाते हुये, क्षुद्र अहमक बन सकता है अथवा ऊर्ध्वगमन करके सर्वसमर्थ सर्वज्ञ स्थिति तक पहुँच सकता है। महामानव महापुरुष इसी चेतना को परिष्कृत कर, उसके स्तर को ऊँचा उठाकर, ऊर्ध्वगामी बनाकर ऊँचा उठते और महान बनते हैं। इसी स्थिति में उनके अन्त: प्रवाह के विपरीत मछली जैसा चल पड़ने का सत्साहस जगता और वह पराक्रम प्रस्तुत करने का सुयोग बन पड़ता है, जो एकाकी प्रयास से सामान्य जन प्रस्तुत नहीं कर पाते।

आदर्शवादिनी शिक्षा याति नान्तर्यदि स्वयम्।
व्यवहारे न साऽऽ याति श्वासवत्क्रियते बहि:।। २१।।
बाह्या ये ह्युपदेशास्ते ज्ञानमात्रं ददत्यद: ।
निर्भरं मानवे कं स उपदेशं समाश्रयेत् ।। २२।।
अन्यथा कर्तुमिच्छाया: स्तरं सहमतं मन: ।
कर्तुं तदिष्यते कार्यं चेदं सम्भवमस्ति च ।। २३।।
चित्तोद्बोधनयोग्याभि: साधनाभिस्तपोबलै:।
पूर्णो ब्रह्मज्ञ एतद्वा प्रेरयेत्सरलं भवेत् ।। २४।।
गहनेनात्ममन्थेनाप्येतत् संभवति स्वत: ।
ज्ञानस्य स्वप्रकाश्यत्वाज्ज्ञानवत्त्वात्त्थात्मन: ।। २५।।

टीका- आदर्शवादी शिक्षण अन्तराल तक न पहुँचने पर जीवन में उतर नहीं पाते और कुछ ही क्षणों में श्वाँस-प्रश्वाँस की तरह बाहर निकाल कर फेंक दिये जाते हैं। बाह्य उपदेश तो मनुष्य को जानकारी भर देते हैं। उनमें से कौन किसको, कितनी मात्रा में हृदयंगम करे-यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। इस इच्छा का स्तर बदलने के लिये अन्त:करण को सहमत करना पड़ता है। यह कार्य या तो अन्तराल को जगाने वाली साधना-तपश्चर्या द्वारा संभव है या फिर कोई पारंगत ब्रह्मज्ञानी अपनी पुण्य-प्रेरणा देकर उस प्रयोजन को सरल बनाता है। गहन आत्म-मन्थन से भी यह कार्य संभव हो सकता है, क्योंकि आत्मा ज्ञानवान् होता है। और ज्ञान स्वप्रकाश्य भी है।। २१-२५।।

ऋषि यहाँ अन्त:करण को सुसंस्कारी बनाने के तीन उपाय सुझाते हैं :-

(१) साधना तपश्चर्या द्वारा।
(२) ब्रह्मज्ञानी की पुण्य-प्रेरणा द्वारा।
(३) गहन आत्म-मंथन द्वारा।

साधना-तपश्चर्या का प्रयोग आरंभ से ही आत्म-शोधन-आत्मपरिष्कार के रूप में किया जाता रहा है। साधना कहते हैं-'जीवन-साधना' को। जीवन में जो भी अनुपयुक्तताएँ-अवांछनीयताएँ, हेय स्तर की इच्छाएँ-आकांक्षाएँ घुस पड़ी हों, उन्हें बलपूर्वक निष्कासित कर जीवन को अनुशासित बनाना-यह साधना है। तपश्चर्या अर्थात् तप। तप का अर्थ होता है-तपाना। जिस प्रकार धातु शोधन के लिये उसे अग्नि से संस्कारित करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने कुसंस्कारों को घटाने-मिटाने के लिये स्वयं को संयम रूपी तपश्चर्या में तपाना पड़ता है। इससे उत्पन्न ऊर्जा से ही अन्त:करण की कुसंस्कारिता का निष्कासन और सुसंस्कारिता अभिवर्धन शक्य-संभव हो पाता है।

यह कार्य तत्वज्ञानी-ब्रह्मज्ञानी के सम्पर्क सान्निध्य से भी सम्पन्न किया जा सकता है। सर्व विदित है, अध्यात्म क्षेत्र में श्रद्धा को आधारभूत तत्व कहा गया है। इसी के माध्यम से गुरु-शिष्य के मध्य सम्पर्क- मार्गदर्शन का प्रेरणा-प्रवाह चलता है। ज्यों-ज्यों श्रद्धा का आरोपण घनीभूत होता जाता है, यह प्रवाह भी तदनुरूप तीव्र से तीव्रतम् होता चला जाता है। यद्यपि इसमें प्रत्यक्ष सम्पर्क जैसी कोई बात नहीं होती, फिर भी चेतना-प्रवाह इतना तीव्र होता है, कि यदि व्यक्ति उसे आत्मसात् करता रहे, तो आत्मशोधन-सुसंस्कारिता अभिवर्धन की प्रक्रिया उसके लिये सरल-सहज बन जाती है।

अन्तराल को सुसंस्कारी बनाने के तीसरे उपाय के रूप में ऋषि आत्म-मन्थन की प्रक्रिया समझाते हैं। प्राय: इस क्षेत्र में जनसामान्य से जो आम भूल होती है, वह यह कि वह स्वयं को आत्मा न मान कर शरीर मान बैठता है और उसी की सेवा-सुश्रूषा, उन्नति-प्रगति साज-सम्भाल में निरत रहने लगता है। वस्तुत: यही वह मौलिक भूल है, जिसके कारण उससे अनैतिकताएँ-अवांछनीयताएँ बन पड़ती हैं और कषाय-कल्मषों के रूप में वे उसके अन्तराल को घेर लेती हैं। इससे बचने का एक ही उपाय है कि हम अपना सही स्वरूप-आत्मस्वरूप समझें और उसे जानने-प्राप्त करने का प्रयत्न करें। इसके लिये जिस साधना अनुशासन का आश्रय लिया जाता है वह है-आत्म-मन्थन,आत्म-चिन्तन, आत्म-मनन। कहा भी गया है-**"आत्मा वाऽरे ज्ञातव्य! श्रोतव्य: मन्तव्यो"** अर्थात् आत्मा सुनने और मनन करने योग्य है। इसी के द्वारा उसकी अनुभूति और प्राप्ति संभव है। विद्वज्जन उसी अक्षय, अविनाशी, अजर, अमर, आत्मा का चिन्तन करते हैं। लौकिक जीवन से उतना ही संबंध रखते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिससे समाज और शरीर का काम चलता रहे, अन्यथा आत्मा के गुणों और उसे समुन्नत बनाने का चिन्तन ही उनका स्वभाव होता है। उसी में उन्हें असीम तृप्ति मिलती है।

प्रभावितं नरं कर्तुं चत्वारो हेतवो मताः ।
पूर्वसञ्चित संस्काराः स्वाभ्यासाः स्वजनाग्रहाः ।।२६।।
समीपवर्त्ति यच्चैतद्वातावरणमरित तु ।
चत्वारीमानिबध्नन्ति बन्धनेऽवाञ्छिते नरम् ।।२७।।
एतादृशा नराः सन्ति पाषाणहृदयास्ततः ।
ज्ञानशिक्षावर्षणेन नार्द्रता तत्र जायते ।।२८।।

टीका- हे तात ! मनुष्य को प्रभावित करने वाले चार कारण हैं - पूर्वसंचित संस्कार, वर्त्तमान में पाले गये अभ्यास, प्रियजनों का आग्रह और समीपवर्त्ती वातावरण। ये चारों ही मनुष्य को अवाञ्छनीयता के बन्धन में जकड़ लेते हैं। ऐसे मनुष्य उस चट्टान जैसे कठोर हो जाते हैं, जिस पर सद्ज्ञान शिक्षण की वर्षा से भी कोई नमी नहीं आती।। २६-२८।।

यहाँ व्यक्ति को प्रभावित करने वाले चार कारक बताये गये हैं - पूर्वजन्मों के संस्कार, इस जीवन के आदत-अभ्यास, स्वजन-संबंधियों का अनुरोध और स्थानीय वातावरण।

संस्कारों के बारे में कहा जाता है कि वह जीव से छाया की तरह चिपके रहते हैं और अपने बुरे-भले प्रभाव छोड़ते हैं। जीव के पिछले संस्कार जैसे रहते हैं, उसकी झलक इस जन्म में भी दिखाई पड़ती है। मनुष्य के पिछले जन्म की इच्छाएँ-आकांक्षाएँ, आस्थाएँ-मान्यताएँ, विचारणा-भावना जैसी रहती है, उसका वर्तमान जीवन भी उसी के अनुरूप बन जाता है। इसी कारण व्यक्तित्व बनाने-बिगाड़ने में संस्कार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है; क्योंकि जीव उस पूर्व के अभ्यास को पूरी तरह भुला नहीं पाता और स्वतः उन आदतों-अभ्यासों की ओर आकृष्ट हो जाता है। इस संदर्भ में भगवान बुद्ध के एक शिष्य की वह कथा ध्यातव्य है, जिसमें वह बार-बार मठ के समीपवर्ती आम्रवृक्ष की ओर आकृष्ट हो जाता था और दिन-रात उसी के नीचे जप-ध्यान किया करता, जबकि अन्य सभी आश्रम परिसर में रहते। शिकायत जब तथागत तक पहुँची, तो उनने कारण स्पष्ट करते हुये रहस्य उद्घाटित किया और बताया कि पिछले जन्म में इसे शुक योनि प्राप्त थी और वह उसी पेड़ पर निवास करता था। उस पूर्व संचित संस्कार के कारण ही उसका मोह उस तरुवर से टूट नहीं पाया है, जिससे स्वभावतः उधर आकर्षित हो जाता है।

ऐसी होती है संस्कार की प्रबलता कि वह जीव को उसकी पुरानी प्रवृत्ति की ओर घसीट ले जाती है और वह करने पर विवश कर देती है, जोआदर्शवादिता और न्यायनिष्ठा के विपरीत हो।

इसी प्रकार अवांछनीय अभ्यास जब आदत में उतर आता है, तो वह व्यावहारिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाता है और फिर जाने-अनजाने उसकी आवृत्ति होने लगती है।

जुआरी को जब जुए में रस आने लगता है, तो धीरे-धीरे यह एक व्यसन का रूप धारण कर लेता है, फिर उसे जुआ खेले बिना चैन नहीं आता।

मादक द्रव्यों, नशों का सेवन करने वालों को जब एक बार इसका चस्का लग जाता है तो फिर वे इसके चंगुल से निकल नहीं पाते। व्यभिचारियों की भी यही गति होती है। वे दिन-रात वेश्यालयों की खाक छानते फिरते हैं। ऐसे ही जब कोई अश्लील शब्द आदतवश वाणी में उतर आता है, तो जाने-अनजाने उसकी पुरावृत्ति होने लगती है। ऐसी ही अनेकानेक वर्जनाएँ हैं, जो अभ्यासवश मनुष्य अपने जीवन में उतार लेता है और उसका आदी बन जाता है। यदि व्यक्ति इन अवांछित अभ्यासों से बचा रह सके, तो इनके कुप्रभावों से बचा रहना सहज संभव हो जाता है तथा जीवन में ऊँचा उठना भी सरल पड़ता है।

बन्धु-बान्धवों के आग्रह-अनुरोध भी मनुष्य को कोई कम प्रभावित नहीं करते। देखा जाता है कि बच्चा न्यूनाधिक उन्हीं प्रवृत्तियों में ढल जाता है जैसी उसके अभिभावकों की होती है। इसमें उनके लाड़-प्यार, डाँट-फटकार की ही मुख्य भूमिका रहती है। फिर जब बच्चा बड़ा होता है, तो उनके बीच का मोहपाश इतना सघन होता है कि उचित-अनुचित जैसे भी प्रस्ताव आते हैं, उसे नकारते नहीं बनता और इच्छा-अनिच्छा से पूरा करना पड़ता है। क्रिया जब आदत में परिवर्तित होती है, तो फिर व्यक्तित्व का एक अंग बन जाती है।

मनुष्य को प्रभावित करने वाला चौथा और सबसे महत्वपूर्ण कारण है - वातावरण। वातावरण की समर्थता सर्व विदित है। इसमें बनाने और बिगाड़ने की चुम्बकीय व्यक्तित्वों जैसी क्षमता होती है। बालकों को जैसा वातावरण मिलता है, उनके गुण, कर्म, स्वभाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैसे ही ढल जाते हैं; भौंरा, झींगुर को एक विशेष वातावरण में रख अपनी बिरादरी का बना लेता है; ऋषि काल में गाय और शेर के एक ही घाट में पानी पीने की कथा प्रसिद्ध है। सामान्य-सा व्यक्ति भी जब पुलिस का अदना-सा सिपाही बन जाता है, तो उसी प्रकार का रौब-दाब दूसरों पर दिखाने लगता हैं। मुर्गी के अण्डे जब उसकी छाती के नीचे पकते हैं, तभी चूजे के रूप में विकसित हो पाते हैं। मैसूर के चन्दन के बारे में प्रसिद्ध है कि उसमें विशिष्ट सुगंध पायी जाती है।

प्रकारान्तर से यह सब संसर्ग और वातावरण के ही प्रभाव हैं, जो मनुष्य में भी अक्षरशः लागू होते हैं। संत-सज्जनों की संगति से उसमें श्रेष्ठता का अभिवर्धन होता है, पर दुष्ट-दुर्जनों का कुसंग उसे पतनजन्य पराभव में पहुँचा देता है। कलार की दुकान और नशेवाजी के अड्डों का अपना एक चुम्बकीय क्षेत्र होता है; उसके प्रभाव से व्यक्ति अनायास उधर खिंचने लगता और दुर्मतिजन्य दुर्गति उठाता है। यह सब सामान्यजनों के प्रकरण हुये।

वरिष्ठ व्यक्तियों का मनोबल इससे भिन्न होता है। उनकी निज की प्रतिभा एवं प्रखरता इतनी पैनी और तीखी होती है कि स्वयं वातावरण के प्रभाव में न आकर वातावरण को अपने प्रभाव में ले आते व उसे अपने अनुरूप बना लेते हैं। रस्सी खींचने के खेल में जिस ओर ताकत अधिक होती है, उसी ओर खिंचाव बढ़ता जाता है और वही पक्ष विजय प्राप्त करता है। मनस्वी ऐसे ही स्तर के होते हैं।

उपरोक्त के ये चारों ही प्रकरण ऐसे हैं, जो सामान्य व्यक्ति पर बड़े अमिट छाप छोड़ते हैं। इनमें ढला व्यक्तित्व फिर फौलाद की भाँति एसा कठोर हो जाता है कि किसी शिक्षण-उपदेश का कोई असर नहीं पड़ता। पका बाँस कहाँ झुक पाता है। पके घड़े को मिटाकर खिलौना कैसे बनाया जा सकता है! सामान्यजनों पर भी इनके प्रभाव ऐसें ही दिखाई पड़ते हैं।

चक्रव्यूहाद् बहिर्गन्तुं ज्ञानलोकं च दीपितुम् ।
श्रेयोऽर्थी विविधानत्र विधीन्नूनं समाश्रयेत् ।। २९ ।।
अभ्यस्ताया वृतेर्गत्वा प्रेरणाप्रदसंवृतौ ।
निवासः कार्य एतस्मिन् संगतिः प्रभवल्यलम् ।। ३० ।।
वातवृतिर्न चाऽऽयाति परिवर्तनतां यदि ।
कठिनं दृश्यते दृष्टौ स्वभावे परिवर्तनम् ।। ३१ ।।
तीर्थसेवनधर्मानुष्ठानादीन्यत् एव तु ।
कुर्वन्ति स्म, लभन्ते च प्राणतां महतां ततः ।। ३२ ।।
सत्संगति समग्रत्वं परामर्शेन वा पुनः ।
प्रवचनैर्न परं सिद्ध्त्येत् तत्वति सन्निधौ ।। ३३ ।।

टीका- इस चक्रव्यूह से निकलने और आत्मज्ञान का आलोक जगाने के लिये श्रेयार्थी को कई उपाय अपनाने होते हैं। अभ्यस्त वातावरण से हटकर कहीं प्रेरणाप्रद वातावरण में निवास करना पड़ता है। संगति का प्रभाव पड़ता ही है। वातावरण न बदले तो दृष्टि कोण और स्वभाव का बदलना कठिन है। तीर्थ सेवन जैसे धर्मानुष्ठान इसी उद्देश्य के लिये किये जाते हैं। महामानवों के सान्निध्य से उनकी प्राण ऊर्जा का लाभ मिलता है। सत्संग की समग्रता प्रवचन-परामर्श से नहीं, घनिष्ठ सान्निध्य से उपलब्ध होती है।। २९-३३।।

आत्मज्ञान का आलोक जगाने और प्रखरता उभारने की प्रक्रिया समझाते हुये ऋषि कहते हैं कि इसके लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति को अभ्यस्त वातावरण से हटकर कहीं उत्तम स्तर की परिस्थितियों में रहने और प्रेरणाप्रद वातावरण में ढलने का अवसर दिया जाये, अन्यथा पुस्तकीय ज्ञान वाली शिक्षा मनुष्य के चरित्र को उत्कृष्ट ढाँचे में न ढाल सकेगी। पुस्तकों में व्यक्तित्व निर्माण-आत्मोत्थान की नागरिकता और सामाजिकता की शिक्षा का उल्लेख हो सकता है, विद्यार्थी उसे रट भी सकते हैं; किन्तु उसे वे जीवनचर्या में भी उतार लें-यह आवश्यक नहीं।

खेत को जोतने और बोने की प्रक्रिया आवश्यक है, किन्तु खाद-पानी के बिना बात पूरी नहीं होती। फसल काटने और सुसम्पन्न बनने का अवसर नहीं आता। मनुष्य का चिन्तन सज्जनोचित होना चाहिये, उसमें आदर्शवादिता के तत्वों का समावेश होना चाहिये। यह मानसिक शिक्षण, स्वाध्याय, सत्संग के माध्यम से पठन और परामर्श द्वारा पूरा होता है। यह आवश्यक चिन्तन को सही दिशा देने के लिये है फिर भी यह नहीं मान बैठना चाहिये कि व्यक्तित्व को प्रखर बनाने में इतना भर कर लेने से काम चल जायेगा। साथ ही यह भी आवश्यक है कि विचारों के अनुरूप वातावरण में रहने और निर्धारणों को चरित्र एवं व्यवहार में उतारने का अवसर मिले। व्यक्ति वैसे ही वातावरण में भी रहे। सम्पर्क क्षेत्र के लोगों को वैसे ही आचरण करते देखे, ताकि वैसा ही अनुकरण करने की प्रेरणा भी मिले।

पुरातन काल में गुरुकुलों की शिक्षण पद्धति यह थी कि बच्चों को ऋषि-आश्रमों में निवास करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये भेज दिया जाता था, वहीं वे पढ़ते भी थे और साथियों का, आचार्यों-गुरुओं-ऋषियों का आचरण प्रवाह देखते हुये, उसी ढाँचे में ढलते भी थे। प्रकृति के सान्निध्य में वन्य क्षेत्र में बने हुये गुरुकुलों में सुविधाएँ कम थीं। फिर भी निर्धन और सम्पन्न लोग साथ-साथ रहकर एक विशिष्ट जीवन पद्धति में रहने की सुविधा प्राप्त करते थे। नगरों के साधारण जनों में सभी स्तर के लोग होते थे, उनके सम्पर्क-प्रभाव से वे छात्र सहज ही बच जाते थे। कुविचारों और कुकर्मों को अपनाने वाले लोग घिच-पिच ग्राम-नगरों में प्राय: अधिक संख्या में रहते हैं, उनकी उत्तेजक गतिविधियाँ कच्ची आयु के लोगों को अधिक प्रभावित करती हैं। उनसे बचाव रखा जाना आवश्यक समझा जाता था, इसलिये पाठ्य-विधि की अपेक्षा जीवनचर्या को अधिक महत्व दिया जाता था। यही कारण था कि बड़े नगरों में विद्यालय बनाने की अपेक्षा, वे ऐसे स्थानों में बनाये जाते थे, जहाँ विद्यार्थी वांछनीय वातावरण और उपयुक्त परिस्थितियों में बने रहें। आश्रम की निर्धारित पद्धति के ढाँचे में ढलते रहें। अध्यापन के विषयों की तुलना में छात्रावास की निवास निर्वाह शैली को अधिक महत्व दिया जाता था। यही कारण था कि जब छात्र कच्ची आयु, किशोरावस्था गुरुकुलों में व्यतीत करने के उपरान्त यौवन की परिपक्वता में प्रवेश करते हुये घर वापिस लौटते थे, तब न केवल वे जीवनोपयोगी सभी प्रसंगों का अध्ययन कर चुके होते थे, वरन् व्यक्तित्व की दृष्टि से भी वे इस स्तर के होते थे कि दूसरों का अनुपयुक्त प्रभाव ग्रहण करने के खतरे से दूर रहते हुए, अपनी विशिष्टता की छाप सम्पर्क में आने वालों पर छोड़ सकें।

प्राचीन काल में इसी प्रयोजन की पूर्ति तीर्थसेवन की पुण्य प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न की जाती थी।

आत्मनश्च शरीरस्य स्वस्व पक्षौ तु लाभकौ।
आत्मने श्रेयसोदातृकार्यं निर्धारणं सदा ।। ३४।।
शरीरं साधनं विश्वं क्रीडाक्षेत्रं समर्थितुम् ।
आत्मानं स्वगरिम्ण्येव योक्तु यत्नो रहो भवेत्।।३५।।
शरीर सुख संसार विनोद द्वयतोऽपि च ।
आत्मकल्याण सम्बद्धा विभूतिर्बहुमन्यताम् ।।३६।।

टीका- शरीर और आत्मा के अपने-अपने पक्ष और अपने-अपने लाभ हैं। आत्मा को श्रेय प्रदान करने वाला निर्धारण ही करना चाहिये। शरीर को उपकरण और संसार को क्रीड़ाक्षेत्र समझने की आस्था उगाने और आत्मा को उसकी गरिमा में अपने अस्तित्व की अनुभूति करने का निरन्तर एकान्त अभ्यास करना चाहिये। शरीर सुख और संसार विनोद की तुलना में आत्म कल्याण के साथ जुड़ी हुई महान् विभूतियों को अधिक महत्वपूर्ण मानना चाहिये।। ३४-३६ ।।

यहाँ ऋषि जीवन की ऐसी रीति-नीति अपनाये जाने पर जोर देते हैं, जो आत्मा की गरिमा का बोध कराने के साथ आत्मकल्याण की भी भूमिका सम्पन्न कर सके।

शरीर और आत्मा के अपने अपने लाभ हैं, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। शरीर नही हो तो यह संसार-यात्रा कैसे हो? भौतिक उपार्जन और श्रम-साधन कैसे बन पड़े ? यह सब क्रियाएँ शरीर द्वारा ही सम्भव हो सकती हैं। इतने पर भी यह नहीं मान लिया जाना चहिये कि हम शरीर हैं। शरीर तो साधन मात्र है, उपकरण जैसा है। इसका संचालक तो अन्तर्निहित आत्मा ही है, अस्तु प्रधानता साधन को नहीं साध्य को आत्मा को दिया जाना चाहिये। उसी की उन्नति-प्रगति की बात सोचनी व ऐसे निर्धारण अपनाये जाने चाहिये, जो आत्मा को श्रेय प्रदान कर सके। ऐसा तभी संभव हो सकता है, जब हम शरीर को गौण और आत्मा को प्रधान मानें, अन्यथा शरीर की प्रमुखता की स्थिति में तो हमारे सारे क्रिया-कलापों का निर्धारण शरीर के अनुरूप होगा,उसी धुरी में हमारी गतिविधियाँ चलेंगी और फिर उसे सजाने-सँवारने के लिये औंधे-सीधे जैसे भी कृत्य बन पड़ेंगे, उससे हम बाज नहीं आयेंगे।

ऐसी संभावना उपस्थित न हो, आत्मा का अस्तित्व सदा स्मृति में बना रहे, उसकी गरिमा का ध्यान रहे, इसके लिये उसका एकान्त चिन्तन-मनन आवश्यक है। हम परमात्मा के अंशधर आत्मा हैं। आत्मा शुद्ध, बुद्ध,नित्य, पवित्र, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है, अत: हमारी प्रवृत्तियाँ भी इन्हीं के अनुरूप होनी चाहिये। गाड़ी का इंजन जैसा होता है, गाड़ी वैसी ही चलती है। उन्नत किस्म का इंजन गाड़ी को तीव्र गति प्रदान करता है। आत्मा को इंजन के समतुल्य माना जा सकता है। जब हमारी आत्मा इतनी शुद्ध-पवित्र है तो हमारे क्रिया कलाप इतने निम्नस्तरीय क्यों होने चाहिये। हमारी विचारणाएँ-भावनाएँ, आस्थाएँ, मान्यताएँ, इच्छाऐं-आकांक्षाएँ इतनी हेय क्यों हों? इन्हीं के एकान्त चिन्तन से दैनिक जीवन में वैसी निर्धारणाएँ संभव बन पड़ती है, जिसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा की गरिमा और इस जीवन की महिमा के साथ आत्मकल्याण जैसा उच्चस्तरीय प्रयोजन शक्य हो पाता है। मनुष्य का गौरव उसके शरीर के कारण नहीं, वरन् आत्मा की विभूतियों-विशेषताओं के कारण है, अस्तु महत्ता इन्हीं को दिया जाना चाहिये और इन्हें ही हस्तगत करने का प्रयत्न-उपक्रम चलना चाहिये।

सुरदुर्लभ मेतच्च जीवनं तस्य सौभगम् ।
उद्देश्यं चोपयोगं च सन्ततं चिन्तयेन्नर ।। ३७।।
साहसं चार्जितव्यं तद् येन मूढाश्च मान्यता:।
त्यक्त्वाऽसीम्नि च सम्बुद्धं स्वातन्त्र्यं प्राप्यतां मुने ।। ३८।।
पुरूषार्थ: परश्चैष य: स्वरूपं परं स्वकम् ।
यद्रूपेऽनुभवेद्यावच्छ्रेष्ठां दृष्टिं तथा भजेत् ।। ३९।।
अस्मिन् लोकेस्थितोऽप्येष परलोकस्य साधनाम्।
करोति साधनैर्लब्धै श्चात्मभूति: समर्जयन् ।। ४०।।
पूर्णतां लक्ष्यगां याति कर्त्तव्या अस्य कारणात्।
आत्मबोधस्य चैकान्तसाधना: साधकै: सदा ।। ४१।।
अभ्यस्तां प्रकृतिं भिन्नां कर्तुं कार्यं तु साहसम्।
प्रवाहाद् वैपरीत्ये च यातुं मत्स्यस्यवद् यथा।। ४२।।

टीका- सुरदुर्लभ जीवन सौभाग्य के स्वरूप, उद्देश्य और सदुपयोग पर निरन्तर विचार करना चाहिये, साथ ही ऐसा साहस जुटाने चाहिये जिससे कुसंस्कारी मान्यताओं के मायाजाल को तोड़कर असीम के साथ जुड़ने की स्वतंत्रता मिल सके। यही परम पुरुषार्थ है। जिसे अपने वास्तविक स्वरूप की जितनी सघन अनुभूति होती है वह उसी अनुपात से उत्कृष्ट दृष्टिकोण अपनाता है। इस लोक में रह कर परलोक की तैयारी करता है। उपलब्ध साधनों के सहारे आत्मिक विभूतियों का सम्पादन करते हुये वह पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचता है। इसके लिये आत्मबोध की एकान्त चिन्तन साधना करनी पड़ती है। अभ्यस्त ढर्रे को उलटने के लिये प्रवाह से विपरीत चल सकने का मछली जैसा साहस करना पड़ता है।। ३७-४२।।

मनुष्य को ईश्वर ने इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाया है, उसे सुरदुर्लभ जीवन प्रदान किया है, ताकि वह अन्य प्राणियों की ही तरह गई बीती स्थिति में न पड़ा रह कर जीवन की गरिमा समझे और उसी के अनुरूप रीति-नीति अपनाये। क्षुद्र आस्थाओं, मान्यताओं, परम्पराओं, प्रचलनों, भावनाओं-कल्पनाओं को त्यागें और ससीम से असीम की ओर कदम बढ़ायें, क्षुद्र से महान बनने की तैयारी करें, नर से नारायण की अभीप्सा सँजोयें; परन्तु ऐसा तभी संभव है, जब हम अपना जीवनोद्देश्य समझें, स्वरूप पहिचानें, लक्ष्य जानें और सदुपयोग की बात सोचें। उद्देश्य और लक्ष्य के ज्ञान न रहने पर भटकाव ही हाथ लगता है। जंगल में भटक जाने वाले पथिक को यदि रास्ता न मालूम हो तो, वह उसी में भूलता-भटकता मर खप जाता है। मनुष्य भी स्वयं को इसी स्थिति में पाता है। स्वरूप और उद्देश्य की जानकारी न होने की स्थिति में वह इस महान जीवन को तुच्छ समझता व लोभ-मोह के, वासना-तृष्णा के भवबन्धनों में खपा कर समाप्त कर देता है। इस प्रकार जो एक अच्छा अवसर उपलब्ध हुआ था, उसे गँवा देता है।

इस स्थिति से उबरने का एक ही उपाय है कि हम सदा मानव जीवन की गरिमा को ध्यान में रखें, इसके स्वरूप एवं उद्देश्य पर विचार करते रहें, तभी वह सब निर्धारणाएँ बन पड़ती हैं, जो परम लक्ष्य तक पहुँचा सकें, अन्यथा अज्ञानता की स्थिति में हनुमान जैसी आत्मविस्मृति ही बनी रहती है और वैसा कुछ करते नहीं बन पड़ता है,जो किया जाना चाहिये। हाथी सम्भवत: मनुष्य के वशीभूत इसलिये हो जाता है कि उसे अपना आकार-प्रकार, डील-डौल दीख नहीं पड़ता। यदि वह अपने विशालकाय को देख सके तो शायद मनुष्य के नियंत्रण में न रहे। मनुष्य के साथ भी यही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे उबरना ही आत्मबोध है।

संकीर्णस्वार्थतायाश्च नाशकं महदाहतम् ।
उदात्तं दृष्टिकोणं तं स्वीकर्तुं यत्नमाचरेत्।। ४३।।
आत्मकल्याणमेवापि सन्तोषं परमात्मन: ।
श्रेयो ददति ये ते नु वासनासक्ति कर्दमे ।। ४४।।
कीटव्याकुलतायास्तु भगवत्प्राप्तिजं मुने ।
मकरन्दं पिवन्तं तं मन्यन्ते मधुपं बहु ।। ४५।।

टीका- संकीर्ण स्वार्थपरता के विचारों को काटने वाले महामानवों द्वारा अपनाये जाने वाले उदात्त दृष्टिकोण को समझने और अपनाने का प्रयत्न करना चाहिये। आत्मकल्याण और परमात्मा के सन्तोष को जो महत्व देते हैं, वे वासना-तृष्णा की सड़ी कीचड़ में कृमि-कीटकों की तरह कुलबुलाते रहने की अपेक्षा सुसंस्कारी भौरे की तरह परमात्म प्राप्ति का मकरन्द पान करते हैं।। ४३-४५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता की हार्दिक आकांक्षा होती हैं, कि बेटा उसकी इच्छा के अनुसार चले, कार्य करे और भविष्य की ऐसी रीति-नीति निर्धारित करे, जिससे आगे चलकर वह परिवार-संस्था का दायित्व अपने कंधों पर उठाकर जिम्मेदारी पूर्वक उसका निर्वाह करे, सजाये-सँवारे और अपने सहोदरों का सहयोग-सहकार करते हुये उसे भी अपनी ही जैसी समर्थ स्थिति तक पहुँचा दे। इसी में पिता को सन्तोष होता है और परिवार कल्याण भी।

यह संसार भी परिवार जैसा ही है। हम उसके उद्धारक-सुधारक हैं और परमेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र भी। निराकार व सूक्ष्म होने के नाते इस विश्व को सजाने-सँवारने की जिम्मेदारी उनने हम पर सौंप रखी है, और आशा की है कि बड़े पुत्र होने के निमित्त हम इस बड़े उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह करेंगे; पर ऐसा हम कर नहीं पाते। अपनी जिम्मेदारी को भुला कर अपने को ही सजाने-सँवारने, समुन्नत-सुविकसित बनाने की संकीर्ण स्वार्थपरता में निरत हो जाते हैं, जिससे सही अर्थों में न तो हम अपनी उन्नति प्रगति कर पाते हैं और न इस विश्व-परिवार को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने में ही किसी प्रकार का सहयोग-सहकार करते हमसे बन पड़ता है। आत्मकल्याण और विश्वकल्याण का कोई भी प्रयोजन न सध पाने की स्थिति में हमारी गति त्रिशंकु व उस धोबी के कुत्ते जैसी हो जाती है, जो न तो घर का रह पाता है, न घाट का ही। न तो हम अपना जीवन सुधार पाते हैं, न तो ईश्वर के इस विराट् परिवार को ही कुछ योगदान दे पाते हैं और कृमि-कीटकों जैसी हेय जिन्दगी जीते हुए मर जाते है; पर जो इस विश्व-वसुधा को समुन्नत बनाने का सत्साहस जुटा पाते हैं, पराक्रम दिखा पाते हैं, वे इस जीवन को तो धन्य बना ही लेते, अपना परलोक भी सुधार लेते हैं। इसी में उसका कल्याण है और परम पिता परमेशवर का संतोष।

वसुधैव कुटुम्बं च नीतिरेव च धुर्यताम् ।
गता धर्मस्य चक्रस्याध्यात्मनश्चापिनिश्चितम् ।।४६।।
आत्मानं ये तु सर्वेषु भूतेष्वात्मनि तान्यपि ।
पश्यन्ति प्रथितास्ते तु वस्तुतस्तत्त्वदर्शिनः ।। ४७।।
विराड्विश्वे तदात्मत्वं यान्ति ये ब्रह्मपारगाः।
उच्यन्ते स्वार्थकार्येर्ये परकार्याणि मानवाः ।। ४८।।
प्रियाणि मन्वते ते वै साधनैः सीमितैरपि ।
प्रसन्नतां भजन्तोऽत्र जीवनं यापितुं क्षमाः ।। ४९।।
आदर्शैश्च महत्यस्ता आकांक्षा यर्हि हे मुने ।
युज्यन्ते, वैभवं दर्पा उपेक्ष्यन्ते शनैः समे ।। ५०।।
तथान्येतानि सन्त्यत्र स्वर्ग्यमन्तः प्रकुर्वते ।
यानि निर्माणमेतच्च नरस्यास्ति कलाऽतिगा ।। ५१।।

टीका- वसुधैव कुटुम्बकम् की नीति ही धर्म और अध्यात्मरूपी दो पहियों की मध्यवर्ती धुरी है। जो सबमें अपने को, अपने में सबको देखते हैं, वे ही तत्वदर्शी हैं। विश्व-विराट् में अपने को घुला देने वाले ही ब्रह्मपरायण कहे जाते हैं। स्वार्थ-साधना की तुलना में जिन्हें परमार्थ प्रिय लगने लगे, समझना चाहिए कि वे सीमित साधनों में प्रसन्नतापूर्वक जीवन यापन कर सकेंगे। महत्वाकाक्षांएँ जब आदर्शों के साथ जुड़ती हैं तो वैभव-बड़प्पन सब की उपेक्षा होने लगती है। यही हैं वे तथ्य जो अन्तर्जगत को स्वर्गोपम बनाते हैं। यह निर्माण मनुष्य का सर्वोपरि कला कौशल है ।। ४६-५१।।

सामान्यतया मनुष्य की स्वार्थपरता ही प्रधान होती है। वह अपने ही वैभव, विलास, पराक्रम, यश, सम्मान एवं स्वर्ग-मुक्ति की बात सोचता है। परन्तु जिस व्यक्ति का 'स्व' सीमित न रहकर असीम बन जाता है, वह जो सोचता है, जो करता है उसमें विश्व व्यवस्था को समुन्नत श्रेष्ठ बनाना ही लक्ष्य होता है। जिसने "आत्मवत् सर्व भूतेषु" की "वसुधैव कुटुम्बकम्" की धारणा परिपक्व कर ली, वह अपनी महत्वाकांक्षी कामनाओं एवं चेष्टाओं को विश्व कल्याण के निमित्त ही केन्द्रित कर देता है। उसका अपना कहने योग्य कुछ रहता ही नहीं। जिसने द्वैत को अद्वैत में विसर्जित कर दिया-अपने एकाकीपन को समष्टिगत चेतना में घुला दिया, कामना को भावना बना लिया, चिंतन और कर्तव्य को विश्व विराट् के लिए समर्पित कर दिया, वही ब्रह्मपरायण कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति ही सच्चे धर्मपरायण और अध्यात्मवादी कहे जाते हैं।

अन्तरंगं निजं यस्तु सत्संस्कार समुज्ज्वलम् ।
सज्जितं विदधात्यस्य जगद् वै नन्दनायते ।। ५२।।
एतादृशा नरा ये तु तेषां नृणां क्रियास्वलम् ।
सत्प्रवृत्तय एतास्तु यान्ति दृष्टिपथं सदा ।। ५३।।
कषायैः कल्मषैर्मुक्त चित्तं तद् विद्यते यदि ।
बाह्योपचारजा सारहीना सद्भावना मता ।। ५४।।
वात्यया मन्दयाप्येषा तृणानीव क्षणान्मुने ।
इतस्ततो ब्रजन्ती न कल्याणं भजते क्वचित् ।।५५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना ऽवसरा ऽ प्राप्तिवशादग्निर्विनेन्धनम् ।
इव शान्ता भवन्त्येता दुष्प्रवृत्तय आहता: ।। ५६ ।।
छिन्नमूलास्त दैवैता जायन्तेऽन्तर्यदा भवेत् ।
आध्यात्मिक्यास्तु दृष्टे:स आरोहोमंगलोन्मुख:।। ५७ ।।
भयदान् परिणामान् ये दुष्प्रवृत्युदितान् नरा:।
सद्वृत्तिपरिणामाँश्च जानन्त्ये तैर्विचार्यताम् ।। ५८ ।।
कायाकल्पसमंयोगं लब्धुं तद्धृदयं तथा ।
परिष्कर्तुं निमित्त तद् बाह्यस्योक्तं चवस्तुत:।। ५९ ।।

टीका- जिसने अपने अंतरंग को सुसंस्कारिता से सुन्दर-सुसज्जित कर लिया उसे सर्वत्र नन्दनवन जैसी सुविधा भरी-पूरी दृष्टिगोचर होगी। ऐसे लोगों के समस्त क्रियाकलापों में सत्प्रवृत्तियाँ ही दृष्टिगोचर होंगी। अन्त:करण कषाय-कल्मषों से भरा रहे तो बाह्योपचार से उत्पन्न की गई सदाशयता खोखली होती है और वह तनिक सी हवा चलने पर हल्के तिनके की तरह कहीं से कहीं जा पहुँचती है तथा कल्याणयुक्त नहीं हो पाते। साधन एवं अवसर न मिलने की विवशता होने पर भी बिना ईंधन के आग बुझ जाने की तरह दुष्प्रवृत्तियाँ पीड़ित हो स्वयं शान्त हो जाती हैं, पर उनकी जड़ तभी कटती है जब अन्तराल में उत्कृष्टता भरे आध्यात्मिक दृष्टिकोण का आरोपण हो। अत: जो दृष्प्रवृत्तियों के भयावह परिणामों को समझते हैं-जो सत्प्रवृत्तियों के परिणामों से परिचित हैं, वे कायाकल्प जैसे सुयोग की प्राप्ति के लिए अन्तराल के परिष्कार की बात सोचें। भीतर का सुधार ही बाहरी सुधार का वास्तविक निमित्त बनता है ।। ५२-५९ ।।

अंतरंग जिस स्तर का होता है, दृष्टिकोण भी उसी के अनुरूप बनता है और दृष्टिकोण जैसा हो, मनुष्य को संसार वैसा ही दीखता है। पीलिया के मरीज को सर्वत्र पीलापन बिखरा नजर आता है। कुएँ की मेंढ़की समझती है कि दुनिया कुएँ तक में ही सिमटी है। वस्तुत: यह दृष्टिकोण का अन्तर है-दृष्टिभ्रम है। दृष्टिकोण यदि उच्चस्तरीय हो, तो वह बुराई में भी अच्छाई ढूँढ निकालता है; किन्तु अगर अन्तराल घटिया स्तर का रहा, तो वह बाल की खाल निकालने से भी नहीं चूकता। चोर सभी को शक की निगाह से देखता है। टिटहरी समझती है कि आकाश यदि टूट कर गिरे, तो वह उसे अपनी टाँगों में थाम लेगी। इन सब प्रकरणों में अन्तरंग की ही भूमिका रहती है। वह जिस प्रकार के उपादानों से बना होता है, बाह्य वस्तुएँ हमें वैसी ही नजर आती हैं। व्यक्ति जिस रंग का चश्मा चढ़ा लेता है, हर चीज उसे उसी रंग की दीखने लगती है। इसमें दोष चश्मे का नहीं, उसे लगाने वाले का है। अस्तु दृष्टिकोण बदलने का एक ही उपाय है कि हम अपने अन्त:करण को सुसंस्कारी बनालें, कषाय -कल्मषों, दोष-दुर्गुणों को नियमित रूप से धोते रहें। वृक्षों की बोन्साई पद्धति में पेड़ों की वृद्धि रोकने के लिए उनकी जड़ों को समय-समय पर काटते रहना पड़ता है। इससे उनकी बाढ़ रुक जाती है और पेड़ ठिंगने-बौने स्थिति में ही आजीवन पड़े रहते हैं। जब पर्याप्त पोषण ही न मिले, तो वृद्धि कहाँ से हो !

जीवन में भी दुष्प्रवृत्तियों को निकालने के लिए इसी प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। दुष्प्रवृत्तियों की जड़ें प्रयासपूर्वक काटनी पड़ती हैं और सत्प्रवृत्तियों को उभारना पड़ता है, तभी अंतरंग और बहिरंग में एकरूपता आ पाती है। इतना नहीं बन पड़े, तो बाह्योपचार की सदाशयता ढोल की पोल ही साबित होती है।

अन्तर्जीवनगं यच्च परिर्वनमद्भुतम् ।
परिष्कारश्चबाह्येऽस्मिन् जीवने प्रतिभां पराम् ।।६०।।
प्राखर्यं कौशलं निष्ठां प्रतिष्ठां च विशिष्टताम् ।
सम्पन्नतादिलाभास्तानर्जितुं प्रभवत्यलम् ।। ६१।।
जीवनस्य क्रमे बाह्ये कर्मकौशलजं बलात् ।
परिवर्तनमाश्रित्योपाय आदर्शचरिता ।। ६२।।
द्वितीयश्चान्तरंगं तदाविर्भूतं विधाय तु ।
ज्ञानचेतनयाप्युच्चस्तरया वपुरुद्भवा: ।। ६३।।
प्रवृत्तीरज्जसा चोच्चस्तरगा भविता मुने ।
उभयो: सुविधायुक्तं रूचियुक्तं स्वमाश्रयेत् ।।६४।।

टीका- अन्तर्जीवन का परिवर्तन-परिष्कार बाह्यजीवन में प्रतिभा, प्रखरता, कौशल, निष्ठा, विशिष्ठता, सम्पन्नता, प्रतिष्ठा जैसे अनेकों लाभ उपार्जित करता है। बाह्य जीवन क्रम में बलपूर्वक कर्म-कौशल से परिवर्तन करके आदर्शवादी प्रक्रिया में ढल जाना एक उपाय है। दूसरा उपाय है-अन्तरंग को उच्चस्तरीय ज्ञान चेतना से आविर्भूत करके शरीरगत प्रवृत्तियों को अनायास ही उच्चस्तरीय बना देना। दोनों में से जो जिसे सुविधाजनक, रुचिकर लगे उसें अपनाये ।। ६०-६४ ।।

अंगारे में जब राख की पर्त चढ़ जाती है, तो उसका स्वरूप ही बदल जाता है। उसकी प्रखरता, उष्णता, रोशनी सभी कुछ विलुप्त हो जाती है और वह मात्र एक ठण्डा पिण्ड-सा प्रतीत होता है, किन्तु जैसे ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह पर्त हटती है, अंगारा अपनी समस्त विशिष्टताओं के साथ प्रखर अग्नि-पिण्ड के रूप में प्रकट होता है।

मनुष्य के साथ भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वह अद्भुत क्षमता सम्पन्न है; मगर कषाय-कल्मषों की पर्त के पीछे उसकी प्रतिभा, क्षमता, विशिष्टता, योग्यता सब कुछ छिप जाती है और अन्य प्राणियों की ही तरह वह निरीह और सामान्य प्रतीत होने लगता है। जो इन कषाय-कल्मषों को, दुष्प्रवृत्तियों-अवांछनीयताओं को निकालने में सफल होते हैं, वे सामान्य से असामान्य,अक्षम से सक्षम, और मलीन से प्रखर बन जाते है। महापुरुष-महामानव इसी विधि से विशिष्ट बनते देखे जाते हैं। ऋषि यहाँ क्षुद्र से महान बनने वाले इसी प्रसंग की चर्चा करते हैं।

श्रेयोमार्गस्य पान्था हे ब्रह्मविद्यासु धारणाः।
क्रियान्विता विधातुं द्वावुपायौ परिकीर्तितौ ।।६५।।
ज्ञानयोगः कर्मयोगः पूर्णौ च स्वत एव यौ ।
अत्रापि प्रथमं ज्ञानं द्वितीयं कर्म चाहृतम् ।।६६।।
धारा भक्तेस्तृतीया सा याऽनयोश्च समन्वयात्।
जाताऽध्यात्मन एषोऽस्ति तीर्थराजस्त्रिसंगमः।।६७।।

टीका- *हे श्रेयमार्ग के पथिकजनो ! ब्रह्मविद्या की तात्विक धारणाओं को क्रियान्वित करने के ये दो उपाय-ज्ञानयोग और कर्मयोग स्वयं में पूर्ण हैं। इतने पर भी ज्ञान को प्रथम और कर्म को द्वितीय कहा गया है। तीसरी धारा भक्तियोग की है, जो इन दोनों के समन्वय से आविर्भूत होती है। अध्यात्म क्षेत्र का तीर्थराज त्रिवेणी संगम इन तीनों धाराओं के सम्मिलन से बनता है ।। ६५-६७।।*

भक्तियोग ज्ञान और कर्मयोग का सम्मिलित स्वरूप है, क्योंकि ज्ञानयोग में आत्मा से प्रेम करना पड़ता है और कर्मयोग में अपनी कार्यकुशलता सिद्ध करनी पड़ती है, जबकि भक्तियोग में उस प्रेम को अपने तक, अपनी आत्मा तक सीमित न रख कर उसे विराट्ब्रह्म के स्तर तक विस्तृत करना पड़ता है और उसी की उन्नति-प्रगति, सेवा-सहायता में अपनी तत्परता दिखानी पड़ती है। उसे कर्त्तव्य मान कर चलना पड़ता है तथा जिस प्रकार कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं हो सकती उसी प्रकार स्वयं को उसी के लिए जीना और उसी में समर्पित कर देना पड़ता है। इस प्रकार भक्तियोग में ज्ञान और कर्म दोनों धाराओं का समावेश हो जाता है; क्योंकि यदि विराट् ब्रह्म के प्रति प्रेम नहीं हुआ, तो ज्ञानयोग का सम्पादन नहीं हो सकेगा और जब प्रेम नहीं हो, तो किसी की सेवा-सहायता, सहयोग-सहकार कैसे हो। इसीलिए भक्तियोग के अवलम्बन से ज्ञान और कर्मयोग दोनों के सम्पादन हो जाते हैं।

भक्तेरर्थो महान् स्नेहः सर्वेष्वात्मानमात्मनि ।
सर्वान् द्रष्टुं स्वताऽवाप्ति भक्तेःपरिणतिर्मता।।६८।।
संकीर्ण स्वार्थतामुक्ति विराड्ब्रह्मैक्यमेव च।
समाजनिष्ठता बोधो भक्तेः परिणतिमर्ता ।।६९।।
सा निर्झरसमानित्यं सरतीह समन्ततः।
वातावृतिश्च तेनेयं लाभमाप्नोति मुक्तिदम् ।।७०।।
कासारयोर्द्वयोर्मध्ये जलमार्गे विनिर्मिते ।
स्तरमेकमुभौ तौ तु यातएषाऽत्र संस्थितिः ।।७१।।
भक्तिभावनयाऽऽयाति जीवस्येह तु कर्मणि ।
गुणस्वभावे चेशस्योत्कृष्टतायाः समागतिः ।।७२।।
सम्पादनं तु सर्वेषामेतेषां जीवनस्य च ।
कर्मक्षेत्रे सतां संगैः स्वाध्यायैः क्रियते मुने ।।७३।।

टीका- *भक्ति का तात्पर्य है-प्यार। सबमें अपने को और अपने में सबको देखने वाली सुविस्तृत आत्मीयता सघन उपासना की ही परिणति है। संकीर्ण स्वार्थपरता के भव-बन्धनों से छुड़ाने और विराट् ब्रह्म के साथ घुल-मिल कर समाजनिष्ठ बनने की प्रेरणा भक्ति भावना की ही परिणति है। वह निर्झर की तरह निरन्तर झरती रहती है उसका मुक्तिदायक लाभ समूचे वातावरण को मिलता है। दो तालाबों के बीच नाली बनाने पर दोनों की सतह समान हो जाती है। उसी प्रकार भक्ति-भावना अपनाने पर जीव के गुण,कर्म, स्वभाव में ईश्वरीय उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश होता है। इन सभी का सम्पादन जीवन रूपी कर्म क्षेत्र में सत्संग, स्वाध्याय के माध्यम से किया जाता है ।। ६८-७३।।*

भक्ति कहते हैं प्रेम को, प्यार को; वह प्रेम जो विशुद्ध हो, वह प्यार जो स्वार्थहीन हो। इस स्तर का प्रेम-प्यार भक्ति की ही परिणति है। इसके लिए ईश्वर को प्रथम उपकरण मानकर अभ्यास आरंभ करना पड़ता है और फिर उस अभ्यास द्वारा विकसित प्रेम को विराट् ब्रह्म के स्तर तक लाना पड़ता है। पानी जब आग के सम्पर्क में आता है, हवा का जब ताप से संसर्ग होता है तो वे अपने सीमित-संकीर्ण बन्धनों को तोड़ कर विकास-विस्तार कर लेते हैं।

उपासना से मनुष्य में यही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उपासना अर्थात् भगवान के निकट बैठना। भगवान आदर्शों के समुच्चय को कहते हैं, अतः ईश्वर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भक्ति का अर्थ हुआ आदर्शवाद का पक्षधर। प्रेम के विकास का आधार भी यही है।

शास्त्रों के अनुसार उपासना में स्वर्ग की प्राप्ति का जो माहात्म्य बताया गया है, उसमें उपासना करने वाले को भक्ति मार्ग अपनाना पड़ता है। परमात्मा को, आत्मा को आदर्शवाद को जो भी प्यार करना सीख लेगा, अनिवार्यता प्राणिमात्र से प्रेम का अभ्यास उसी को हो पायेगा और इस कारण उसका निवास स्थान एवं समीपवर्ती वातावरण स्वर्गीय अनुभूतियों से भी भरपूर रहेगा।

उपनिषद् का वचन है- **"रसो वैसः"** अर्थात्-प्रेम ही परमेश्वर है। यह अक्षरशः सही है। ईश्वर से सच्चा तादात्म्य प्रेम से ही जुड़ सकता है। उपासना में हम इसी का अभ्यास करते हैं। निर्जीव निष्प्राण मूर्ति में गहन श्रद्धा, भक्ति, प्रेम का आरोपण कर भगवान को प्रकट होने के लिए विवश करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ भगवान है, वहाँ प्रेम-भक्ति है और जहाँ प्रेम है, वही भगवान है। **'एकोऽहम बहुस्याम'** के आधार पर यह विराट् विश्व उसी भगवद् सत्ता का दृश्य रूप है। जीव सत्ता उसी की अंशधर है। उनमें वही चेतना विद्यमान है जो स्वयं ब्रह्म में है। अतः यदि भगवान से हमें सच्चा प्रेम है, तो सम्पूर्ण प्राणियों से भी होना चाहिए। उपासना का यही तत्वदर्शन है, और इसी की उपलब्धि हमें उससे होती है जिस समाज में, जिस समुदाय में ऐसा निश्छल प्रेम विकसित होगा निश्चित रूप से वहाँ का वातावरण स्वर्गिक होगा और देवतुल्य होंगे वहाँ के निवासी।

पतनं सरलं तत्रोत्थानं च कठिनं मतम् ।
सरलो व्यय उक्तो ऽत्रोपार्जनं कठिनं बुधाः ।। ७४ ।।
कुसंगः सरलो मृग्यः सत्संगो यत्नतो नरैः ।
पक्षं सहमतं कर्तुं परं काठिन्यमापतेत् ।। ७५ ।।
अहंत्वं सरलं नूनं महत्ता कठिना मता ।
अल्पाऽभ्यास सुसाध्यं तत्सभ्यताशिक्षणं मतम् ।
सुसंस्कारित्व भावार्थं साधनां श्रमतां व्रजेत् ।। ७६ ।।
कठिनं कर्म गृह्णन्ति तत्परत्वं च सन्ततम् ।
ये स्वीकृत्य प्रकुर्वन्ति पूर्णं मान्या मनीषिणाम् ।। ७७ ।।
अन्तर्महत्वसम्पन्ना बाह्यक्षेत्रे ऽविलम्बतः ।
लभन्ते गौरवं चान्तं परिष्कारे विनिर्मितौ ।। ७८ ।।
यथा येषां प्रवृत्तिस्ते तथा भूतिमदुच्चताम् ।
देवत्वं चार्जितुं श्रेयः सौभाग्यं ते भजन्त्यलम् ।। ७९ ।।

टीका- हे मनीषियो ! यह समझ लेना चाहिए कि पतन सरल है, उत्थान कठिन। व्यय सरल है, उपार्जन कठिन। कुसंग सर्वत्र बिखरा पड़ा है, सत्संग के लिए भारी खोज करनी पड़ती है और दूसरे पक्ष को कठिनाई से ही सहमत किया जाता है। बड़प्पन सरल है, महानता कठिन। सभ्यता का प्रशिक्षण तो थोड़े से अभ्यास से हो सकता है, किन्तु सुसंस्कारिता सम्पादन के लिए तो साधना पुरुषार्थ करना पड़ता है जो कठिन कार्य को हाथ में लेते हैं व उन्हें अनवरत तत्परता अपनाकर पूर्ण कर दिखाते हैं, उन्हें ही महान कहते हैं। जिनमें आन्तरिक महानता है उन्हें बाह्य क्षेत्र में गौरव गरिमा प्राप्त करते देर नहीं लगती । अन्तराल के परिष्कार और निर्माण में जिनकी जितनी प्रवृत्ति होती है. उन्हें उसी अनुपात में विभूतिवान् देवत्व अर्जित करने का श्रेय-सौभाग्य मिलता है ।। ७४-७९ ।।

आत्मिक प्रगति का राजमार्ग कण्टकों से भरा है। यदि महानता अर्जित करना इतना ही सरल होता तो हर कोई देवदूत, महापुरुष, अवतार बन गया होता। बाह्य प्रगति, रहन सहन की सुगढ़ता, बोलचाल में मिठास व शालीनता आदि तो प्रशिक्षण से संभव भी है, पर अन्तर्जगत का विकास इतना सरल नहीं है। किसी की आकृति बदली जा सकती है, प्रकृति सहज ही नहीं बदली जा सकती।

यहीं पर सामान्य व असामान्य पुरुषों में अन्तर देखा जा सकता है। सामान्य व्यक्ति वे, जो चकाचौंध में विश्वास रखते हैं व बड़ा कहलाना चाहते हैं, कहलाने के लिए एक भीड़ भी खड़ी कर लेते हैं पर असामान्य व्यक्ति अंतः की उत्कृष्टता व सुसस्करिता के आधार पर महान बनते हैं। उन्हें सहज ही सम्मान मिलता है व दैवी अनुग्रह उन पर अनवरत बरसता है। यह श्रेय उन्हें सहज ही नहीं मिल जाता। पतन-पराभव की ओर ले जाने वाले आकर्षणों से स्वयं को विरत रख वे सदैव श्रेष्ठ ही सोचते हैं, श्रेष्ठता ही जीवन में उतारते व स्वयं प्रवाह से उल्टे चलते हुए स्वयं को ऊँचा उठाते हैं।

विद्वांसो ! वेदितव्यं च भवद्भिः साधनारतैः ।
व्यक्तित्वस्यान्तरंगं तं पक्षं बाह्यं समुन्नतम् ।। ८० ।।
कर्तुमुच्चास्थिरादृष्टिः स्वीकार्या च तथा सदा ।
आत्मबोधस्य तज्ज्योतिरुत्पाद्यं भवति ध्रुवम् ।। ८१ ।।
संस्कारस्यात्मनो नूनं बाह्य सिद्धिस्थितौ तथा ।
अन्त ऋद्धिस्वरूपेषु लब्धिर्भवति कीर्तिदा ।। ८२ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- हे साधनारत विद्वजनो ! आप सबको समझना चाहिए कि व्यक्तित्व के अंतरंग और बहिरंग पक्ष को श्रेष्ठ समुन्नत बनाने के लिए उच्चस्तरीय दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है तथा अन्तराल में आत्मबोध का आलोक उत्पन्न करना होता है। इस आत्म परिष्कार की परिणति भीतरी ऋद्धियों और बाहरी सिद्धियों के रूप में उपलब्ध होती हैं। ।। ८०-८३।।

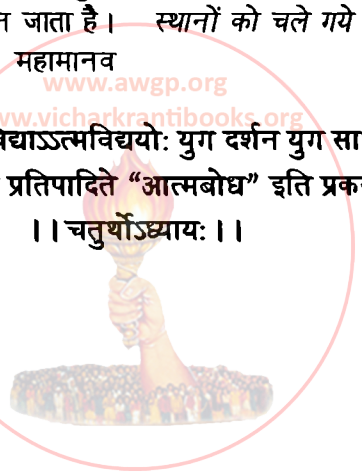
साधनाओं में सर्वश्रेष्ठ है व्यक्तित्व की साधना। साधा किस प्रकार जाय, यह व्याख्या विस्तार से पूर्व में हो चुकी है। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि चिंतन की श्रेष्ठता व अंत: के जागरण की प्रतिक्रिया व्यवहार रूप में जीवन में उतरी अथवा नहीं ? आत्मपरिष्कार की सबसे बड़ी कसौटी यही है उस व्यक्ति ने किस अनुपात में कितनी विविधता से भरी विभूतियाँ अर्जित कीं। जो स्वयं को विकसित कर इस समुन्नत स्थिति तक पहुँचा देता है, वह ऋद्धि-सिद्धियों का अधिकारी बन जाता है। विभूतिवान ही, सिद्धियों के धनी ही महामानव कहलाते हैं। वे ही जीवन संग्राम में प्रतिकूलताओं से जूझने, उन्हें निरस्तकर अन्य अनेकों के लिए प्रगति का पथ प्रशस्त करते हैं। महामानव सदैव अपनी विभूतियों का सुनियोजन परहितार्थ करते हैं। आत्म बोध का प्रकाश अपने अंदर जगाकर वे स्वयं एक प्रकाशस्तम्भ बन जाते हैं जो अंधकार में भटकते जहाजों को दिशा दिखाते व सही मार्ग बताते हैं।

चतुर्थस्य दिनस्यायं प्रसंग: सत्र संभव: ।
समाप्त: पूर्ववत्तस्मिन् दिने सर्वेऽपि साधका: ।। ८४ ।।
व्यवस्थामनुसृत्याथ नित्यकर्माणि तानि ते ।
कर्तुं ययुर्निवासान् स्वान् प्रणमन्तो महर्षय: ।। ८५ ।।

टीका- चौथे दिन का सत्र-प्रसंग समाप्त हुआ और नित्य की तरह सभी उस दिन भी निर्धारित नियम-व्यवस्था के अनुसार शारीरिक-आध्यात्मिक नित्य कर्मों के निमित्त अभिवादन पूर्वक अपने-अपने निवास स्थानों को चले गये ।। ८४-८५ ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो: युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयो:
महर्षि याज्ञवल्क्य प्रतिपादिते "आत्मबोध" इति प्रकरणो नाम
।। चतुर्थोऽध्याय: ।।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

धर्म धारणा प्रकरण

पञ्चमे दिवसे प्रज्ञासत्रस्याथ मनीषिणः ।
ब्रह्मचारिगणाः पुण्ये त्रिपुरारण्यके समे ।। १।।
पूर्ववत् पुण्यवेलायां प्रभातस्य समागताः ।
तत्त्वचर्चां विधातुं ते धर्मसारसमुद्भवाम् ।। २।।

टीका- पाँचवें दिन प्रज्ञासत्र के मनीषी ब्रह्मचारीगण त्रिपुरारण्यक में गतदिनों की भाँति प्रभात की पुण्यवेला में धर्म की सारभूता तत्त्वचर्चा के लिए एकत्रित हुए।। १-२।।

ब्रह्मचारिण ऊचुः-

आयोजनेन पुण्यस्य ज्ञानसत्रस्य चास्य तु ।
भवतानुगृहीताः स्म महाभाग ! वयं समे ।। ३।।
गतिशीलानुकम्पेयं विधेयाऽग्रेऽपि सन्ततम् ।
पायं पायं तु पीयूषमेततृप्तिर्नजायते ।। ४।।

टीका- सभी ब्रह्मचारियों ने समवेत स्वर में कहा- हे महाभाग ! इस ज्ञान-सत्र का आयोजन कर आपने हम सबके ऊपर महान् अनुग्रह किया है। इस अनुकम्पा को अभी और गतिशील रखें। इस अमृत को पीते-पीते तृप्ति नहीं होती।। ३-४।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

विगतानां चतुर्णां तु दिनानां हि प्रसंगतः ।
प्रस्तोतव्याः स्वजिज्ञासा अनुरूपाः समा अपि ।। ५।।
आधारं तमुपादाय समाधानमिह स्वयम् ।
विधातुं तु करिष्यामि प्रयासं क्रमशः पुनः ।। ६।।
आह्वानेन महर्षेस्तु स्नेहे नोद्बोधितस्ततः ।
रोमाञ्चितःस्वजिज्ञासामृषिःकौण्डिन्य आह सः।।७।।

टीका- सत्राध्यक्ष याज्ञवल्क्य जी ने कहा-आप लोग गत चार दिनों के प्रसंगों के अनुरूप अपनी सभी जिज्ञासा प्रस्तुत करें। उसी आधार पर मैं समाधान करने का क्रमशः प्रयास करूँगा। महर्षि के आह्वान पर उनके स्नेह-उद्बोधन से रोमाञ्चित ऋषि कौण्डिन्य ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की ।। ५-७।।

कौण्डिन्य उवाच-

देव ! कर्मव्यवस्थेयमुच्चालब्धिस्तथाऽऽत्मनः ।
व्यावहारिकमेतच्च चित्रणं तपसस्तथा ।। ८।।
योगस्यापि समक्षं नः क्रतं गतदिनेष्वहो ।
तन्नास्ति कल्पनीयो नु इत्यस्माकं विनिश्चयः।।९।।
जीवने योगतस्त्वेषां जनसाधरणस्य तु ।
आत्मनः प्रगतेर्मार्गः प्रशस्तः सम्भवेष्यति ।। १०।।
आशंका पुनरप्येका मनसीयमुदेति नः ।
सनातने तु धर्मस्य रूपे चेश्वरसंस्थितौ ।। ११।।
मतैक्यं नैव भिन्नेषु समुदायेषु दृश्यते ।
विभिन्ना मान्यताः सन्ति समेषां तु निजा निजाः ।। १२ ।।
विभिन्नमत संग्रस्ताः सम्प्रदाय जनाः समे ।
एषु प्रारम्भिकेष्वेव जालेष्वालीन मानसाः ।। १३।।
अधिगच्छन्ति नैवेते परमं सत्यमन्ततः ।
आत्मनः प्रगतेर्यात्रा तेषां रुद्धाभवत्यतः ।। १४।।

टीका- कौण्डिन्य बोले-हे देव ! आपने कर्म व्यवस्था, उच्चस्तरीय आत्मोपलब्धि एवं व्यावहारिक योग-तप का जो चित्रण हम सबके समक्ष विगत दिनों किया वह अकल्पनीय है, ऐसा हमारा विचार है। इन्हें जीवन में उतारने से निश्चित ही जनसाधारण की आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त होगा। एक आशंका फिर भी मन में उठती है वह यह कि धर्म के सनातन रूप एवं ईश्वरीय सत्ता के सम्बन्ध में विभिन्न समुदाय के वर्गों में मतैक्य नहीं दिखाई पड़ता। सबकी अपनी भिन्न प्रकार की मान्यताएँ हैं। विभिन्न मत-सम्प्रदाय को मानने वाले सांसारिक जन इन प्रारंभिक जंजालों में उलझकर रह जाते हैं, परम सत्य तक नहीं पहुँच पाते। इससे उनकी आत्मिक प्रगति की यात्रा अवरुद्ध हो जाती है ।। ८-१४।।

ईदृशी परिभाषा किं मान्यता सार्वभौमिकी।
विराट् सत्ता विधौ नैव विनिर्मातुं हि शक्यते।।१५।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मतावलम्बिनः सर्वे ज्ञात्वा यां भ्रान्तितः स्वकान् ।
मुक्तान् कुर्युर्भवेद्येन जगन्निर्वैर विग्रहम् ।। १६ ।।
धर्मशाश्वत रूपस्य सामान्याय जनाय चेत् ।
ज्ञानं दीयेत तन्नूनं भवत्प्रस्तुतमुत्तमम् ।। १७ ।।
व्यावहारिकमध्यात्म प्रतिपादनमाश्रिताः ।
बहुसंख्या जना धन्यजीवनाः स्युर्मतं हि नः ।। १८ ।।
ऋषेस्तत्कथनं पुण्यं श्रुत्वा मुदितमानसः ।
याज्ञवल्क्यो महर्षिः स बभाषे हर्षगद्गदम् ।। १९ ।।

टीका- हे देव ! क्या ऐसी कोई परिभाषा, सार्वभौम मान्यता उस विराट् सत्ता के सम्बन्ध में नहीं बनाई जा सकती जिसे जानकर-समझकर जिज्ञासु मतावलम्बी जन भ्रान्तियों से मुक्त हो सकें ? जिससे संसार वैर-विग्रह से मुक्त हो जाय। यदि धर्म के शाश्वत रूप की जानकारी जन-सामान्य को करायी जा सके, तो हमारे विचार से आप द्वारा प्रस्तुत अध्यात्म के इन उत्तम व्यावहारिक प्रतिपादनों का आश्रय लेकर बहुसंख्य व्यक्ति अपना जीवन धन्य बना सकेंगे। ऋषि का वह सुन्दर अनुकूल कथन सुनकर प्रमुदित मन से महर्षि याज्ञवल्क्य हर्ष से गद्गद होकर बोले- ।। १५-१९ ।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

तात ! अध्यात्मतत्त्वस्य दर्शनं सुगमं त्विह ।
सामान्यजन लाभाय कर्तुं सं प्रस्तुता स्वयम् ।। २० ।।
भवता यातु जिज्ञासा तृप्तिदा हृदयस्य सा ।
हृदि जागर्ति साधूनां लोक कल्याण कामना ।। २१ ।।
गूढतत्त्वान्तरालेषु निष्कर्षवाप्ति काम्यया ।
यानस्य भावना लोक कल्याणी सार्थयेदिमान् ।। २२ ।।
तात ! धर्मस्तु तां सत्तां परमां गन्तुमुन्मुखान् ।
मार्गानेकतमे सूत्रे बद्धुं तन्तुरिव स्थितः ।। २३ ।।
धर्मस्य लक्ष्यमस्त्येतन्मानवं प्रापयत्यसौ ।
चरमं विन्दुसीमानं पूर्णताया युगे युगे ।। २४ ।।
शक्तिर्महत्तमा नूनमीश्वरोऽस्ति निराकृतिः ।
नैकं स्थानं च तस्यास्ति व्याप्तः सर्वत्र स सदा ।। २५ ।।
स परोक्षतया चैतान् संचालयति सन्ततम् ।
ब्रह्माण्डस्य समग्रस्य क्रियाश्चापि प्रतिक्रिया ।। २६ ।।
ईश्वरस्य समग्रा सा सत्ता प्राणिसुखावहा ।
नरैर्विज्ञायते धर्म मार्गे संचलनादिह ।। २७ ।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले- हे तात ! अध्यात्म तत्त्वदर्शन को जन साधारण के लिये सुगम बनाने हेतु प्रस्तुत की गई आपकी जिज्ञासा हृदय को तृप्ति देने वाली है। सज्जनों के हृदय में लोककल्याण कामना सदा जगी रहती है। गूढ तथ्यों की गहराई में उतरने तथा निष्कर्षों तक पहुँचने की लोक-कल्याणकारी भावना ही ऐसे समागमों को सार्थक बनाती है।

हे तात् ! धर्म परमसत्ता तक पहुँचने के कई मार्गों को एक सूत्र में बाँधने वाला धागा है। धर्म का लक्ष्य मनुष्य को प्रत्येक युग में पूर्णता के चरम विन्दु तक पहुँचाना है। ईश्वर एक महानतम शक्ति है जिसका कोई आकार नहीं, कोई स्थान नहीं। वह तो सर्वत्र समान रूप से संव्याप्त है। वह परोक्षरूप से समग्र ब्रह्माण्ड की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का संचालन कर्ता है। ईश्वरीय सत्ता, जो प्राणिमात्र को सुख देने वाली है, को धर्म के मार्ग पर चलकर ही जाना जा सकता है।। २०-२७ ।।

धर्मशब्दस्य संक्षिप्तः सारगर्भश्च विद्यते ।
अर्थोऽभ्युदयानःश्रेयः सिद्धिः प्राणिभृतां मुने ।। २८ ।।
उन्नतिर्लौकिकी पारलौकिकी चापि निश्छला ।
सूत्र संकेतकस्याऽस्य विस्तृते हि विवेचने ।। २९ ।।
कृतेऽस्यान्तः स्थितानां हि स्वभावगुणकर्मणाम् ।
श्रेष्ठानां सुसमावेश स्तेषां भवति विद्यते ।। ३० ।।
येषां जीवन संस्कारे सम्बधो जीवनोन्नतौ ।
दुर्गुणानां समेषां च तेषां निष्कासनं तथा ।। ३१ ।।
परिष्करणमप्यस्मिन् समाविष्टं च सूत्र के ।
पतनस्य पराभूतेर्हेतवोऽत्र भवन्ति ये ।। ३२ ।।
जीवनं लौकिकं येन समृद्धिं तात गच्छति ।
अध्यात्मप्रगतेर्लक्ष्यं सिध्येत्स धर्म उच्यते ।। ३३ ।।
सोऽपि धर्मो नरं कुर्यात्कर्मठं संयमान्वितम् ।
परायणं परार्थे सत्परामर्शो ध्रुवं मुने ।। ३४ ।।
शिक्षा सा धर्म एवास्ति मानवं मानवैस्तथा ।
समष्टौ प्राणिमात्रेण कारयेत्प्रेम सन्ततम् ।। ३५ ।।
यो वै यापयितुं व्यक्तिं जीवनं मानवोचितम् ।
शिक्षयेत् वस्तुतः प्रोक्तः स धर्मो वेदसम्मतः ।। ३६ ।।

टीका- हे ऋषिप्रवर ! धर्म शब्द का अत्यन्त संक्षिप्त सारगर्भित अर्थ है - अभ्युदय एवं निःश्रेयस अर्थात् छल प्रपंचरहित लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति। इस सूत्र संकेत का विस्तृत विवेचन करने पर इसके अन्तर्गत उन सभी श्रेष्ठ गुण-कर्म, स्वभावों का समावेश हो जाता है, जिनका जीवन को समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने से सीधा सम्बन्ध है। उन सभी दुर्गुणों का सुधार निष्कासन भी इसी सूत्र में समाविष्ट है, जो पतन पराभव का निमित्त कारण बनते हैं। हे तात ! जिससे लौकिक जीवन की समृद्धि एवं आत्मिक प्रगति की लक्ष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धि होती है, वही धर्म है। हे मुनिवर ! जो व्यक्ति को संयमी, कर्त्तव्यनिष्ठ, परमार्थपरायण बनाये-वही सत्परामर्श धर्म है। जो मानव को मानव एवं समष्टिगत प्राणि-सत्ता से सदा प्रेम करना सिखाये, वही शिक्षा धर्म है। जो मानवोचित जीवन जीना सिखाये, वही सच्चा धर्म है।। २८-३६।।

यहाँ जीवन की उस प्रणाली को धर्म की संज्ञा दी गई है, जिसमें दुर्गुणों को निकाल कर उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास किया जाता है, फिर उन्हें गुण-कर्म-स्वभाव में समाविष्ट कर जीवन को ऐसा उदात्त बना लिया जाता है, जिसमें छल-प्रपंच जैसे निकृष्ट स्तर के क्रिया-कलाप की गुंजाइश ही न रहे। यही वह आधार है, जिस पर चल कर व्यक्ति आत्मिक जीवन में प्रगति करता हुआ पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचता है और भौतिक जीवन में सुख, समृद्धि, सफलता जैसी प्रसन्नता दायक स्थिति प्राप्त कर पाता है। इसी से व्यक्तिगत जीवन में सेवा-सहकार जैसे पुण्य परमार्थ एवं समाज निर्माण, व्यक्ति उत्थान जैसे कर्त्तव्य निभ पाते हैं। इसलिये ऋषि यहाँ उस तत्वदर्शन को ही सच्चा धर्म मानते हैं, जो ऐसे मानवोचित जीवन जीने की प्रेरणा देता और प्रेम-सौहार्द का पाठ पढ़ाता हो।

यथा प्राणैर्बिना नैव जीव्यते क्षणमप्यहो ।
नैति जीवनयात्रैवं धर्मधारणया विना ।। ३७।।
कारणं चेदमेवास्ति विद्वद्भिर्धममुत्तमम् ।
व्याख्यातृभिर्व्यापकं स नीतिकर्तव्यतोदितः ।। ३८।।

टीका- हे तात ! धर्म मानव जीवन का प्राण है। प्राण वायु के बिना जिस प्रकार एक क्षण भी जीवित नहीं रहा जा सकता, उसी प्रकार धर्म-धारणा को जीवन में उतारे बिना जीवन यात्रा एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती। यही कारण है कि धर्म की एक व्यापक व्याख्या करते हुये विद्वज्जनों ने उसे नीति-मत्ता एवं कर्त्तव्य-परायणता का ही एक रूप माना है।। ३७-३८।।

जिस प्रकार प्राण के बिना कलेवर का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार धर्म-धारणा के बिना मनुष्य जीवन भी निष्प्राण-निरर्थक है। यदि प्राण न रहें, तो मृत कलेवर सड़न और बदबू ही पैदा करता है और जहाँ रहता है, वहाँ वातावरण दूषित करता है।

मनुष्य जीवन के साथ भी यही बात लागू होती है। नीतिमत्ता, कर्त्तव्यपरायणता, सहयोग, सहकार, प्रेम-सद्भाव को मानव-जीवन का धर्म माना गया है। यदि व्यक्ति इनका परिपालन न करे और मानवी गरिमा के अनुरूप जीवन न जिये, तो वह ईर्ष्या-कलह, विग्रह, विद्वेष के रूप में दुर्गन्धि ही पैदा करेगा। दुर्गन्धि अर्थात् मौत और ऐसी स्थिति में जब काया ही निष्प्राण हो, तो उसका विकास-विस्तार कैसे संभव हो ? प्राण की उपस्थिति में ही यह शक्य हो सकता है।

धर्मविहीन जीवन की भी यही गति होती है। जीवन-विकास होता रहे, इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति धर्म धारणा को जीवन में अपनाये, अन्यथा इसके बिना तो उसकी भाव-संवदेनाएँ पशु तुल्य ही बनी रहेंगी। अस्तु धर्म मनुष्य को जहाँ एक ओर उसे उसकी गरिमा प्रदान कर सच्चे अर्थों में मनुष्य की श्रेणी में ला खड़ा करता है, वहीं दूसरी ओर उसके जीवन विकास को भी गतिमान बनाये रखता है। इस प्रकार एक धर्म के पालन से उसके दो उद्देश्य पूरे होते हैं। इसलिये ऋषि यहाँ धर्म को मानव-जीवन का प्राण की संज्ञा देते हुये प्राणवायु से उसकी तुलना करते हैं और कहते हैं कि जीवित रहने के लिये प्राणवायु की जितनी आवश्यकता महसूस की जाती है, मानव-जीवन के लिये धर्म की भी उतनी ही महत्ता है।

संस्कृतिः भारतीयैषा दैवीसंस्कृतिरुच्यते ।
महतासागरेणेयं विराजा तुल्यतां गता ।। ३९।।
यस्यां विशन्ति निर्यान्ति यस्या भिन्नाः सदाभुवि।
सम्प्रदायास्तथासर्वास्तास्ताःसंस्कृतयःसमाः।। ४०।।
उदारा व्यापका धर्म व्याख्येयं देवसंस्कृतेः ।
यथैतैर्ऋषिभिः प्रोक्ता महत्ताबोधिनी तु सा ।। ४१।।
धर्मस्य धारणायास्तु स्वीकृते रूपयोगिता ।
वस्तुतोऽत्रास्तियन्नृणां चिन्तन प्रोन्नयेत्तु सा।। ४२।।
आत्मनो गौरवस्यामनुभूतिं तथैव च ।
सुजनता व्यवहारस्य साहसं वितरेच्च सा ।। ४३।।
धर्मस्य धारण व्यक्तिमुच्चास्थां प्रतिनिष्ठितम्।
आस्थायुक्तांकरोत्येवं विश्वंयाति कुटुम्बताम्।।४४।।
यदि सा विग्रहे द्वेषे तथैव च दुराग्रहे ।
समुदेति न सा धर्मः परं विकृत चिन्तनात् ।। ४५।।
जाता सा हि मताऽनास्था जन्मदासम्प्रदायगा।
मनोवृत्तिर्यया विश्वं त्रस्तं संदृश्यतेऽभितः ।। ४६।।

टीका- हे तात ! भारतीय संस्कृति देव संस्कृति है। यह एक विराट् महासागर की तरह है, जिसमें भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदाय संस्कृतियाँ आकर मिलती हैं और समय पर निकलती भी रहती हैं। धर्म की व्याख्या जितने उदार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं व्यापक अर्थों में देवसंस्कृति के पक्षधर ऋषिगणों द्वारा वर्णित की गई है, उससे इसकी महत्ता का बोध होता है। वस्तुतः धर्मधारणा को अपनाने की उपयोगिता इसी में है कि वह मानवी चिन्तन का स्तर ऊँचा उठाये। उसे आत्म गौरव की अनुभूति कराने के साथ-साथ सज्जनता को व्यवहार में उतारने का साहस प्रदान करे। धर्म धारणा व्यक्ति को उच्च स्तरीय आस्थाओं के प्रति निष्ठावान् बनाती है, जिससे सारा विश्व एक कुटुम्ब बन जाता है। यदि वह विग्रह, विद्वेष एवं दुराग्रह के रूप में प्रकट होती है, तो उसे धर्म नहीं, अपितु मानव के विकृत-चिन्तन से जन्मी, अनास्था को जन्म देने वाली सम्प्रदायवादी मनोवृत्ति मानना चाहिये, जिससे पग-पग पर विश्व त्रस्त दिखाई, देता है।। ३९-४६।।

भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता है जीवन और जगत को देखने का उसका अध्यात्मिक दृष्टिकोण। इसके पक्षधर ऋषियों ने जिन उच्चादर्शों की स्थापना की, वह इस संस्कृति की महानता के ही परिचायक हैं। **'आत्मवत् सर्वभूतेषु', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'निर्वैरिः सर्वभूतेषु,' ' न पापे प्रति पापः स्यात्साधुरेव सदा भवेत्, 'सर्व भवन्तु सुखिनः'** आदि ऐसे आदर्श हैं जिन्हें उन्होंने सच्चा मानव धर्म बताया और जीवनपर्यन्त इसका परिपालन करते रहे। इन्हीं उदात्तताओं के कारण भारतीय संस्कृति देव संस्कृति कहलायी और इसे अपनाने वाले ऋषि महानता की ऊँचाइयों को छू सके।

इसके विपरीत यदि उनका दृष्टिकोण इतना विशाल न होता, कूपमण्डूक रहे होते, स्वार्थ परता अपनाते और हेय चिन्तन में ही उलझ कर विग्रह-विद्वेषपूर्ण जीवन जीते होते, तो शायद ऋषि कदापि नहीं बन पाते और न यह धरती **'स्वर्गादपि गरीयसी'** कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर पाती। निस्संदेह इन उपलब्धियों के पीछे उनके देवोपम व्यक्तित्व और धार्मिक कर्तृत्व की ही प्रमुख भूमिका है। उनने सच्चे अर्थों में धर्म को जिया था और अध्यात्म को जीवन में उतारा था। अस्तु धर्म धारणा की सार्थकता तभी मानी जा सकती है, जब वह व्यक्ति के चरित्र, चिन्तन, व्यवहार को ऊँचा उठाये, उच्चस्तरीय आस्थाओं के प्रति निष्ठा जगाये और सही अर्थों में मनुष्य जैसा जीना सिखाये।

संस्कृतिः सभ्यता भिन्नौ यथा शब्दावनर्थतः।
रक्ष्योऽर्थो सम्प्रदायं तं भिन्नं मत्वा हि धर्मतः।। ४७।।
परिस्थिति गताः सर्वे मान्यताऽधिष्ठिताश्च ते।
रीतिप्रचलनास्थाश्च सम्प्रदायाः सदा भुवि ।। ४८।।
काल प्रभावाद् ये यान्ति परिवर्तनमन्ततः ।
धर्मस्तु शाश्वतं तथ्यमध्यात्मं हि सनातनम् ।। ४९।।

टीका- जिस प्रकार संस्कृति और सभ्यता दो पृथक शब्द हैं, उसी प्रकार धर्म और सम्प्रदाय को अलग-अलग मानकर अर्थ का अनर्थ होने से बचाना चाहिये।सम्प्रदाय सदा परिस्थितियों, मान्यताओं, प्रचलन एवं रीति-रिवाज पर ही संसार में टिके होते हैं, जो कि समयानुसार बदलते रहते हैं, जबकि धर्म एक शाश्वत-सनातन तथ्य है,जो कि आत्मिकी का पर्याय है।। ४७-४९।।

विश्व में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, ताओ, सिंटो, जैन, बौद्ध, यहूदी, पारसी आदि कितने ही मत-मतान्तर हैं। इनके क्रिया-कर्मकाण्डों, प्रथा-प्रचलनों, रीति-रिवाजों में भी जमीन-आसमान जितना अन्तर है। सभी के अपने-अपने भगवान और अलग-अलग आचार व नीतिशास्त्र हैं। सम्बद्ध मतावलम्बी इन्हीं नीति-नियमों की परिधि में चक्कर काटता हुआ इन्हें ही धर्म मानने का दुराग्रह कर बैठता है; पर वस्तुतः यह धर्म नहीं है, वरन् इससे निकलनेवाली शाखा-प्रशाखाएँ हैं; इन्हें सम्प्रदाय कहते हैं। यह समयानुसार बदलते रहते हैं। कपड़े जब जीर्ण-शीर्ण पड़ जाते हैं, तो उन्हें बदल कर नया वस्त्र धारण करना पड़ता है। सम्प्रदाय ऐसे ही होते हैं। जब ये देश, काल, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल नहीं रह जाते, पुराने और प्रतिगामी पड़ जाते हैं, तो इन्हें परिवर्तित कर इनकी जगह नये सिद्धान्त और आचार-शास्त्र निर्मित करने पड़ते हैं।

तात धार्मिकताऽऽस्तिक्यमध्यात्मं त्रयमेव हि।
लौकिक्याः प्रगते र्हेतोरनिवार्या मता मम ।। ५०।।
एषु चैकतमं नैव पृथग द्रष्टुं हि शक्यते ।
परस्परं हि त्रीण्यत्र गुम्फितानीव सन्ततम ।। ५१।।
प्रोक्ता धार्मिकता कर्मनिष्ठा कर्त्तव्यपालनम्।
आस्तिक्यार्थो विराट्सत्ता पर ब्रह्मव्यवस्थितेः।। ५२।।
अनुशासनसम्मानस्तास्मिन विश्वस्य स्वं सदा।
सत्कर्मणामनुष्ठाने योजयेच्च निरन्तरम् ।। ५३।।
आध्यात्मिक्यं तथैवात्मसत्ता सामर्थ्य उत्तमे।
दृढ़ विश्वस्य मानव्यां स्थिता संजीवयत्यमून्।। ५४।।
कर्मयोगी नरो यः स परब्रह्मानुशासने ।
विनिर्माति स्वकीयां तु श्रेष्ठां जीवनपद्धतिम्।। ५५।।
आत्मावलम्बनं चैव करोत्यस्मै तु यः सदा ।
आस्तिकः स नरः सत्यं मतो धर्मपरायणः ।। ५६।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- हे तात् ! धार्मिकता, आस्तिकता एवं आध्यात्मिकता तीनों ही आत्मिक एवं सांसारिक प्रगति हेतु अनिवार्य हैं। इनमें से किसी एक को अलग नहीं देखा जा सकता। तीनों परस्पर एक दूसरे से गुँथे हैं। धार्मिकता कर्तव्य-परायणता का कर्मनिष्ठा का नाम है। आस्तिकता का अर्थ है-उस विराट् सत्ता-परब्रह्म की व्यवस्था के अनुशासन को मानना, उस पर विश्वास रखते हुये सदैव स्वयं को सत्कर्मों में नियोजित रखना। आध्यात्मिकता आत्मसत्ता की सामर्थ्य पर दृढ़ विश्वास रख मनुष्यों को मानवी गरिमा के अनुरूप जीवन जीना सिखाती है। जो कर्मयोगी है, परब्रह्म के अनुशासन के अन्तर्गत अपनी जीवन की रीति-नीति बनाता है। इसके लिये जो आत्मावलम्बन का आश्रय लेता है, वही सच्चे अर्थों में धर्म परायण है-आस्तिक है।। ५०-५६।।

परिस्थितय आयाता: परिवर्तनमद्य तु ।
ऋषे धर्मस्वरूपं तु विकृतिं प्रापितो नरै: ।। ५७।।
श्रेष्ठ: स्वकीयो धर्मस्तु निकृष्टश्च परस्य स:।
स्वकीया मान्यता: सत्या असत्या अपरस्य च ।।५८।।
दुराग्रहोऽयं संव्याप्तश्चतुर्दिक्षु जना अपि ।
सामान्यास्तुच्छमूलेषुविषमेषु परस्परम् ।। ५९।।
धर्ममर्मानभिज्ञत्वाद् विग्रहस्य पृथक् स्थिते: ।
विषवल्लरिका पुष्टौ जायन्ते दृष्टिगोचरा: ।। ६०।।
एको धर्मस्तथैक: स ईश्वरोऽस्तीति मान्यताम्।
मत्वा मिथ्यां स्वकीयां च श्रेष्ठतां घोषयत्य हो।।६१।।
दुराग्रह: पक्षपात: सत्यस्य स्वीकृति सदा ।
निषेधतइहैतीत्थं सम्प्रदायोऽविवेकताम् ।। ६२।।

टीका- हे ऋषिवर ! आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं। धर्म का स्वरूप विकृत कर दिया गया है। अपना धर्म श्रेष्ठ-दूसरे का निकृष्ट, अपनी मान्यता सच्ची, दूसरे की झूठी। यह दुराग्रह ही चारों तरफ संव्याप्त है। सामान्यजन छोटी-छोटी बातों पर, धर्म का मर्म न समझ पाने के कारण परस्पर झगड़ते, विग्रह एवं अलगाव की विषवेलि का पोषण करते दृष्टिगोचर होते हैं। धर्म एक है, इस मान्यता को झुठला कर सभी अपनी श्रेष्ठता की दुहाई देते नजर आते हैं। पक्षपात और दुराग्रह सत्य को समझने से इन्कार कर देता है और ऐसी स्थिति में समुदाय विवेक ही खो बैठता है।। ५७-६२।।

जिस प्रकार समस्त विश्व के लिये सूर्य-चंद्र एक हैं और अपनी उत्पत्ति के आरम्भ से अब तक एक जैसी स्थिति में बने हुये हैं, उसी प्रकार समस्त मानव का एक ही धर्म है। वह चाहे किसी भी देश अथवा समय से सम्बद्ध हो सदा एक जैसा रहता है, और प्रेम-सद्भाव, सहयोग-सहकार की ही शिक्षा देता है; किन्तु दुर्भाग्यवश आज इसने अपना सार्वभौम स्वरूप ही खो दिया है और जो स्वरूप अपनाया है, वह सम्प्रदायवाद का पक्षधर है। हम सम्प्रदाय को धर्म मान बैठे हैं। इतने पर भी विडम्बना यह है कि हम उसके श्रेष्ठ व व्यावहारिक पक्ष को अपनाने की तुलना में कौन पंथ श्रेष्ठ कौन निकृष्ट-इसी उलझन में पड़े रहते हैं, जिससे न तो अपना कल्याण हो पाता है, न ही समाज का, उल्टे इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। यदि गंभीरता पूर्वक विचारा जाय तो पायेंगे कि सभी सम्प्रदायों के मूल सिद्धान्त प्राय: एक ही हैं; पर धर्मध्वजी अपना बड़प्पन और स्वार्थ सिद्ध करने के लिये अपने-अपने पंथों की श्रेष्ठता का बखान करते और दूसरे मतों को नीचा दिखाने की हठधर्मिता अपनाते हैं, फलत: विग्रह पनपता है और मनोमालिन्य बढ़ता है, द्वेष उपजता है और दुराग्रह बढ़ता है, जिससे धर्म, धर्म न रहकर अधर्म का पृष्ठपोषण करता दिखाई पड़ने लगता है।

अद्य धर्मो विभिन्नैश्च समुदायैर्नरैरपि ।
गृहीत: साधनत्वेन पूर्तये तूदरस्य स: ।। ६३।।
विस्मृत्य धर्म मर्मैते सर्वेऽकर्मठतां श्रिता: ।
पराश्रयं हि जीवन्ति बाधन्तेऽज्ञाँश्च शोषणै:।। ६४।।
धर्मोपदेशकानां च वेषेणच्छन्न मूर्तय: ।
दृश्यन्तेऽसंख्यका धर्मधृतिर्येषां न जीवने ।। ६५।।
वस्तुतत्त्वाऽनभिज्ञास्ते धर्मबद्धादरदृढादरा: ।
भावुका: पुरुषा: प्रायो धर्मोन्मादिनृणामिह ।।६६।।
एतादृशानां तर्कैस्तैर्मान्यताभिर्वृता विषम् ।
वमन्त: सम्प्रदायेषु समाजं ध्वसयन्ति ते ।।६७।।
समस्यास्ति वाच्छेयं जन: साधारणस्तुतम् ।
धर्मस्यार्थं विजानीया मन्येतापि च शाश्वतान्।। ६८।।
सिद्धान्तानथसद्भावान्निवसन्तु तथैव च ।
व्यवहरन्तु च नि:शंकं सर्वेऽप्येते परस्परम् ।। ६९।।
सम्भवेच्च तदैवैतत्समुदायेषु समेषु ते ।
धर्मसंस्कृतिदूतास्तु कुर्युंस्तामतिविस्तृताम् ।।७०।।

टीका- आज धर्म को किन्हीं किन्हीं व्यक्तियों अथवा समुदायों ने उदरपूर्ति का साधन बना लिया है, इसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जरा भी सन्देह नहीं। धर्म का मर्म कर्तव्य-परायणता को भूलकर वे अकर्मण्य, परावलम्बी जीवन जीते एवं दूसरे नासमझ व्यक्तियों का शोषण करते दिखाई देते हैं। धर्मोपदेशक का लबादा ओढ़े ऐसे अगणित व्यक्ति देखे जा सकते हैं, जिनके जीवन में धर्मधारणा का किंचित् मात्र भी अंश नहीं होता। वास्तविकता को न जान-पाने एवं धर्म के प्रति अपनी दृढ़ आस्था होने के कारण भावुक व्यक्ति बहुधा ऐसे धर्मोन्मादियों के तर्कों-मान्यताओं के चंगुल में फँसकर तथा कथित 'सम्प्रदायवाद' का विष उगलते, समाजरूपी भवन को ध्वस्त करते दिखाई देते हैं। समय की माँग है कि जनसाधारण धर्म के सही अर्थ को समझें, धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों को मानें एवं परस्पर निःशंक होकर सद्भाव से व्यवहार करना सीखें। यह तभी सम्भव है, जब सारे समुदाय में धर्म संस्कृति के अग्रदूत सर्वधर्म समभाव की भावना का विस्तार करने का सत्साहस करें ।। ६३-७०।।

सार्वभौम धर्म में, धर्म का एक अर्थ कर्तव्य-परायणता- कर्मनिष्ठा भी है। जो मानवोचित जीवन के अनुकूल हो, उन कर्तव्यों का निर्वाह करना और सेवा-श्रमरत् रह कर ही जीवन व्यतीत करना-इसे सर्वोपरि धर्म माना गया है। इस दायित्व की अनदेखी करना और अकर्मण्य परावलम्बी जीवन जीना व्यक्ति को धर्म-च्युत बनाता है तथा ऐसी स्थिति में पहुँचाता है, जहाँ सिवाय चिन्तन-प्रदूषण के और कुछ नहीं बन पड़ता है।

आज तथा कथित धार्मिकों और धर्मोपदेशकों की यही दशा है। धर्म का स्वांग तो वे बढ़-चढ़ कर लेते हैं, पर जहाँ कथनी और करनी का, आचरण व व्यवहार का प्रश्न आता है, वहाँ उनकी अपनी स्थिति ढोल की पोल जैसी बन जाती है। ऐसे में जब उन्हें पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान नहीं मिल पाता, तो वे धर्म की आड़ लेकर तरह-तरह के ढोंग रचते और भोले-भाले लोगों को अपने कुचक्र में फँसाते एवं उनके नेता बन बैठते हैं। इस प्रकार इन धर्मभीरु लोगों द्वारा उनकी उदरपूर्ति होती रहती है, तथा बदले में वे साम्प्रदायकिता का विष-बीज बोकर समाज में फूट-फसाद पैदा करते तथा अवसर का अनुचित लाभ उठाते हैं।

समाज को इस दुरवास्था से उबारने का एक ही उपाय है कि सभी मत-मतान्तरों के जीवन्त जागरूक प्रतिनिधि उभर कर सामने आयें और शाश्वत धर्म के तत्वदर्शन को अपने-अपने प्रकार से जनसामान्य को समझायें कि सभी धर्मों का सार एक ही है - कर्तव्य-परायणता-न्यायनिष्ठा। इससे एक ही साथ दो उदेद्श्य पूरे होंगे लोग धर्म के सही मर्म को समझ सकेंगे तथा सर्वधर्म समभाव की भावना का विस्तार होने से वैमनस्य और कटुता का दुर्भाव मिटेगा तथा समाज में सौमनस्य का वातावरण बनेगा।

ब्रह्मचारिण ऊचुः-

भवतः प्रतिपाद्यानि बुद्धियुक्तानि देव तु ।
लाभा अपि न सन्दिग्धास्तथाप्येतत्तु दृश्यते ।। ७१।।
अनेका व्यक्तयो राजमार्गं त्यक्त्वा तृणाकुलम्।
अपथं यान्ति शोचन्ति मन्यन्ते ऽयोग्यमान्यताः ।। ७२ ।।
देव ! धर्मस्य सिद्धान्तान् सार्वभौमान् वद प्रियान्।
समस्तानां च धर्माणां सम्प्रदायेषु सम्मतान् ।। ७३।।
तेषामेव करिष्यामो विविक्तिं च प्रचारणम् ।
संकीर्णयिन ज्ञास्यन्ति भिन्नतां सत्यरोधिनीम्।।७४।।
सत्याऽविरोधिनीं चात्र वस्तुतस्त्वेकतां समे ।
ब्रह्मज्ञो सुप्रसन्नोऽभूदुवाचार्थयुतं वचः ।। ७५।।

टीका- ब्रह्मचारियों ने कहा-भगवन ! आपके द्वारा व्यक्त किये गये सभी प्रतिपादन सर्वथा बुद्धि-संगत दीखते हैं। उनके लाभ भी असंदिग्ध हैं इतने पर भी देखा जाता है कि अधिकांश लोग इस राजमार्ग को छोड़कर झाड़-झंखाड़ जैसी पगडंडियों पर भटकते हैं, उल्टा सोचते और अनुपयुक्त मान्यताएँ अपनाते हैं। हे देव ! उन धर्म सिद्धान्तों को बताइये जो सार्वभौम हैं। समस्त धर्म-सम्प्रदायों में जिनकी समान मान्यता है। हम उन्हीं का विवेचन और प्रचार करेंगे। इससे संकीर्णतावादी यह समझने में समर्थ होंगे कि भिन्नता अवास्तविक है और एकता वास्तविक। यह सुनकर ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुये और सारगर्भित वाणी में बोले-।। ७१-७५ ।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

सार्वभौमस्य धर्मस्य व्याख्येयभृषिसत्तम ।
दशभिर्धर्मसारस्तैः शक्या कर्तुं हि लक्षणैः ।। ७६।।
सर्वेषां प्राणरूपाश्च धर्माणां सन्ति ते ध्रुवम् ।
धर्मतत्व विविक्तौ च स्वेनैव विधिना समे ।। ७७।।
एतेषामेव शाखानां कुर्वते तु निरूपणम् ।
युग्मैः पञ्चभिरप्यत्र ज्ञातुं शक्यानि पूर्णतः ।। ७८।।
लक्षणानि तु धर्मस्य सर्वाणीमानि मानवै ।
युग्मेष्वन्यतमं वक्तुं शक्यते मुनिपुंगव ।। ७९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समन्वयं तु सत्यस्य विवेकस्य परस्परम् ।
युज्यते संयमं वक्तुं कर्तव्यं च द्वितीयकम् ।। ८०।।
मर्यादापालनं सर्वं तृतीयामनुशासनम् ।
पराक्रमस्य तुर्येऽस्ति सौजन्यस्थाथ मिश्रणम् ।। ८१।।
सहकारं परार्थं पञ्चमं मन्यतामिह ।
पञ्चस्वेतानि वक्तुं वा शक्यान्यथदशस्वपि ।। ८२।।
न्यूनाधिकासु संख्यासु सामान्यानां हितेच्छया।
दैवीसम्पत्ति नाम्नेमान् गीताकारो व्यभूषयत्।। ८३।।
समेषां सारसंक्षेपो वक्तुं शक्यत एव तु ।
कर्तव्यपालनं सामाजिकदायित्व निर्वहः ।। ८४।।
जीवनस्य परिष्कारः समुदायोदयस्य च ।
सारनिष्कर्ष एवास्ति लक्षणेषु दशस्वपि ।। ८५।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-हे ऋषिश्रेष्ठ ! सार्वभौम धर्म की व्याख्या-विवेचना धर्म के सार तत्व दस लक्षणों से की जा सकती है। वे ही सब धर्मों के प्राण हैं। इन्हीं की शाखा-प्रशाखाएँ धर्मतत्व विवेचना में अपने-अपने ढंग से निरूपित की जाती है। इन्हें मानव मात्र के द्वारा पाँच युग्मों के रूप में भी जाना जा सकता है। हे मुनिवर! इन युग्मों में से एक को सत्य और विवेक का समन्वय कह सकते हैं। दूसरे को संयम और कर्तव्य कहा जाना चाहिये। तीसरे को मर्यादापालन और अनुशासन निर्वाह कहते हैं। चौथें में सौजन्य और पराक्रम का सम्मिश्रण है। पाँचवें को सहकार-परमार्थ कहना चाहिये। इन्हें सामान्य व्यक्तियों की बोध दृष्टि से पाँच-दस या न्यूनाधिक संख्या में भी कहा जा सकता है। इन्हीं को गीताकार ने दैवी सम्पत्ति के नाम से विभूषित किया है। इन सबका सार-संक्षेप कहना हो तो उसे कर्त्तव्य पालन और सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह भी कह सकते हैं। जीवन के सर्वांगपूर्ण परिष्कार एवं समष्टिगत मानव समुदाय के अभ्युदय का सार-निष्कर्ष धर्म के इन दस लक्षणों में सन्निहित है।। ७६-८५।।

यहाँ ऋषि सार्वभौम धर्म की व्याख्या सत्य, विवेक, संयम, कर्त्तव्य, मयार्दापालन, अनुशासन, सौजन्य, पराक्रम, सहकार, परमार्थ के दस प्रमुख लक्षणों के रूप में करते हैं और कहते हैं कि भिन्न-भिन्न धर्मों में यही पाँच युग्म अपने-अपने प्रकार से वर्णित हैं। इन्हें धर्म का सार माना गया है। मनुष्य के सारे कर्त्तव्य और दायित्व इन्हीं पाँच युग्मों के दायरे में आते हैं, अतः जो इनका परिपालन भली-भाँति कर लेते हैं, जीवन में ध र्म का निर्वाह भी उन्हीं से बन पड़ता है और वैसे ही लोग आत्मपरिष्कार और आत्मोत्थान की कठिन परीक्षा उत्तीर्ण करने में सफल हो पाते हैं।

तात ! धर्मं कर्मकाण्ड पर्यन्तं रीतिसीमितम्।
स्थितं प्रचलनेष्वत्र मन्यन्ते पुरुषास्तु ये ।। ८६।।
कुर्वते हृदगतं ते नाऽऽस्तिकता तत्त्वदर्शनम्।
अतएव त्रसन्त्येते संक्षोभ भरितं पुनः ।। ८७।।
जीवनं यापयन्तस्ते दृश्यन्ते परितो भुवि ।
धर्ममर्माधिगन्तायस्तेन प्राप्तो हि वस्तुतः ।। ८८।।
मार्गो यः प्रापयेन्मर्त्यं सीमानं परमात्मनः ।
धर्मोरक्षति तं यो वै धर्मं सम्मनुते स्वयम् ।। ८९।।
न चलेद्धर्म मार्गे यस्तं स नाशान्न त्रायते।
सन्ति ये तु नरश्रेष्ठ ! सत्या धर्मपरायणाः ।। ९०।।
स्वानां भगवतां नैव विनिर्माणोन्मुखास्तु ।
तेषां नाम्ना न कुर्वन्ति विग्रहादिविडम्बनाम् ।। ९१।।
मन्यन्ते केवलं तस्याः सत्ताया अनुशासनम् ।
एतादृशास्तु सन्त्यत्र ये ये वै नरपुंगवाः ।। ९२।।
अस्तिका वस्तुतः सर्वे ते हि धर्मपरायणाः ।
सारगर्भं समाधानं श्रुत्वाऽपृच्छत्स्वयं नतः ।। ९३।।

टीका- हे तात ! धर्म को कर्मकाण्ड तक, प्रचलन-रीति-रिवाजों तक सीमित मानने वाले व्यक्ति आस्तिकता के तत्वदर्शन को हृदयंगम नहीं कर पाते। इसी कारण त्रास पाते, संक्षोभों-विक्षोभों से भरा जीवन जीते पृथ्वी पर चारों ओर देखे जाते हैं। जिसने धर्म का मर्म जान लिया, समझ लेना चाहिये कि उसने परमात्मसत्ता तक पहुँचने का सच्चा मार्ग खोज लिया। हे नरश्रेष्ठ ! धर्म उसी की रक्षा करता है, जो धर्म को मानता है। पर जो उसके कहे पर नहीं चलता, धर्म स्वयं उसे नाश से नहीं बचा पाता है। सच्चे धार्मिक व्यक्ति अपना भगवान स्वयं विनिर्मित करने, उस नाम पर भाँति-भाँति के विग्रह खड़े करने की विडम्बना में न उलझ कर उस एक परमसत्ता के अनुशासन को ही मानते हैं। ऐसे नर पुंगव ही सही अर्थों में आस्तिक, धर्मपरायण कहलाते हैं। अपनी जिज्ञासा का सारगर्भित समाधान सुनकर कृतकृत्य हृदय से ऋषि कौण्डिन्य ने खड़े होकर विनम्र भाव से पूछा-।। ८६-९३।।

यहाँ सच्चे आस्तिक और धर्मपरायण व्यक्ति की परिभाषा दी गई है। ऋषि कहते हैं कि सच्चा धार्मिक वह नहीं, जो धर्म को प्रथा-प्रचलन, रीति-रिवाज, विधि-विधान के रूप में देखता है, वरन् वह है, जो परब्रह्म के अनुशासन को सर्वोपरि मान कर चलता और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका पालन करता है। मिलिट्री में सच्चा सैनिक उसी को माना जाता है, जो अनुशासन पूर्वक चल कर निष्ठापूर्वक कर्त्तव्यों का पालन करता हो। पदोन्नति ऐसे ही सैनिकों को मिल पाती है; किन्तु जो अनुशासन भंग करने तथा कर्त्तव्यों की उपेक्षा बरतने की धृष्टता करते हैं वे तरह-तरह के दण्ड पाते और बरखास्त भी कर दिये जाते हैं।

धर्म को ईश्वरीय अनुशासन माना जा सकता है। जो इसे जीवन में सही-सच्चे ढंग से निभा लेता है, वही अपने अस्तित्व की रक्षा करते हुये जीवन-विकास कर पाता है; पर जो ऐसा नहीं कर पाता, वह तरह-तरह के त्रास पाता हुआ पतन-पराभव के गर्त में समा जाता है।

कौण्डिन्य उवाच-

देव ! धर्मस्तु व्याख्यातो यथाऽयं भवतावयम्।
धन्या जातास्तु तेनाद्य यश्चैतन्मर्मजीवने ।।९५।।
धारयिष्यति सोऽवश्यमात्मनः प्रगतेः स्वतः ।
दुर्लभां लक्ष्य सिद्धिं तामञ्जसैव गमिष्यति ।।९६।।

टीका- कौण्डिन्य बोले- हे देव ! धर्म की व्याख्या जिस प्रकार आपने की है, उसमें हम सभी धन्य हुये हैं। जो भी इस मर्म को जीवन में उतारेगा, वह निश्चित ही आत्मिक प्रगति की दुर्लभ लक्ष्य सिद्धि को सरलता से प्राप्त कर लेगा।। ९४-९५।।

पूर्णतामद्य सम्प्राप्त समयस्तु यतस्ततः ।
गोष्ठीं समापयस्तां स सत्राध्यक्ष उवाच यत् ।।९६।।
भद्राः ! धर्मधृतेः सोऽयं प्रसंगो जटिलस्तथा।
विस्तृतोऽस्तिदिनेनैव व्याख्यातुं नैवसम्भवम्।।९७।।
उचितं तत एवैतत् प्रसंगेऽस्मिन् पुनस्त्विह।
भवेत्तन्मंथन मान्याः निष्कर्षं प्राप्तुमुत्तमम् ।।९८।।
महर्षयः समेऽप्यस्माद् याज्ञवल्क्य प्रणम्य च।
प्रस्थिताः स्वकुटीरांस्ते चिन्तनैकरतास्ततः ।।९९।।

टीका- चूँकि आज समय पूरा हो चुका था, अतः सत्राध्यक्ष ने ज्ञानगोष्ठी के समापन की घोषणा करते हुये कहा-उपस्थित भद्र जनो ! धर्मधारणा सम्बन्धी प्रस्तुत प्रसंग काफी जटिल एवं लम्बा है। एक दिन में इस विषय पर पूरी चर्चा हो पाना सम्भव नहीं है। अतः उचित होगा कि इस प्रसंग पर कल और मन्थन किया जाय, ताकि हम अन्तिम निष्कर्ष तक पहुँच सकें। सभी महर्षि याज्ञवल्क्य का अभिवादन कर वहाँ से सन्धया-वन्दन हेतु अपनी-अपनी कुटिया को चिन्तन में संलग्न होते हुये प्रस्थान कर गये।। ९६-९९।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः महर्षि याज्ञवल्क्य प्रतिपादिते "धर्म धारण" इति प्रकरणो नाम ।।पंचमोऽध्यायः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

सर्वधर्म समभाव प्रकरण

प्रारब्धा ज्ञानगोष्ठी सा षष्ठस्याथ दिनस्यतु ।
स्वस्तिवाचनं पूर्वं च गायत्री पाठपूर्वकम् ।। १।।
ज्ञानविज्ञानयोः केन्द्रमालोकस्य निधिं प्रभुम् ।
ध्यात्वासवितृदेवं च संमद्धिर्ज्ञानयज्ञजम् ।। २।।
जिज्ञांसवस्तदालोकं ज्वालयामासुरुत्तमम् ।
ओतप्रोता तदालोकैः सृष्टिरेषा समन्ततः ।। ३।।
याज्ञवल्क्यस्य संकेतं सत्राध्यक्षस्य स ऋषिः ।
प्राप्य कौण्डिन्य उत्थाय जिज्ञासां संन्यवेदयत् ।। ४।।

टीका- छठे दिन की ज्ञान गोष्ठी मंगलाचरण पूर्वक आरंभ हुई। उपस्थित जिज्ञासुओं ने सस्वर गायत्री पाठ और ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश केन्द्र सविता देव का ध्यान करते हुए ज्ञान यज्ञ में समिधा डालकर आलोक प्रज्ज्वलित किया, जिस आलोक से यह समस्त सृष्टि ओतप्रोत है। सत्राध्यक्ष याज्ञवल्क्य जी का संकेत मिलते ही ऋषि कौण्डिन्य खड़े हुए एवं उन्होंने विनम्रभाव से अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा ।। १-४।।

यहाँ ज्ञान यज्ञ से तात्पर्य सद्ज्ञान से, विवेक के सम्वर्धन से, महाप्रज्ञा के परिपोषण एवं सदाशयता के अभिवर्धन से है। परब्रह्म परमात्मा की चेतना, प्रेरणा, सक्रियता एवं समर्थता को ही मनीषियों में गायत्री कहा है। **"गायत्री छन्दसामहम"** और **"बुद्धिर्बुद्धिमता ह्यस्मि"** कहकर गीता में भगवान ने गायत्री को अपना स्वरूप बताया है। गायत्री का देवता सविता है। आध्यात्मिक अर्थ में इसे ब्रह्माण्ड व्यापी चेतन ऊर्जा के रूप में माना गया है और कहा गया है-**"सवितावा देवानाम् प्रसविता"** अर्थात् सविता ही देवों का प्रसविता है। वे मानों उस चेतन सूर्य की रश्मियाँ हैं। देवता प्राणस्वरूप माने गये हैं और उनके अभिवर्धन, परिपोषण तथा रक्षण करने वाली शक्ति ही गायत्री है। गायत्री महामंत्र में सूक्ष्म रूप से इन्हीं देव शक्तियों का समावेश है। लौकिक एवं पारलौकिक उत्कर्ष, जीवन की व्यक्तिगत तथा सम्पूर्ण विश्व की समष्टिगत समस्याओं का सर्वतोमुखी समाधान गायत्री महामंत्र में सन्निहित है। यही कारण है कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक ऋषि-मनीषियों, अवतारी, महामानवों की गायत्री आराध्य रही है। यहाँ भी ऋषियों ने उसी का आश्रय लिया और आगे बढ़े।

कौण्डिन्य उवाच-

देव ! धर्मस्य सम्बन्धिह्यस्तनं हि विवेचनम् ।
श्रुत्वा मन्थनमस्माभिर्विहितं विषये बहु ।। ५।।
भवतः प्रतिपाद्यानि बुद्धियुक्तानि देव तु ।
असमञ्जसमेकं तु चित्तेऽस्माकमुदेति यत् ।। ६।।
तत्त्वदर्शनरूपाया धर्मस्यास्य धृतेः समान् ।
जानन्तोऽपिमतान् भिन्नानाचरन्त्येषु नोकथम् ।। ७।।
समागमेषु सर्वेषु धार्मिकेषु च पर्वसु ।
जपानुष्ठानयोः स्नानरात्रिजागरणेषु च ।। ८।।
देवस्थानेषु सामान्यजनानां दृश्यते महान् ।
संमर्दो धर्मचर्चां चाऽसंख्यां शृण्वन्ति ते सदा ।। ९।।
दृश्यते च तथाप्यत्रानैतिकत्वं पदे पदे ।
आक्रामकत्वचौर्यादि विद्वेषा विग्रहास्तथा ।। १०।।
धर्मच्छायासु पुण्यासु धर्मनाम्ना कथं पुनः ।
भीषणो नरसंहारः पशुहत्यादिकं तथा ।। ११।।
धर्मस्तु सार्वभौमोऽस्ति कथं तत्ते मतान्तराः ।
कल्पिताश्चनिजाव्याख्या दृश्यन्ते बाह्यडम्बराः ।।१२।।
धर्मस्य परिवृत्तौ ते जना धर्मपरायणाः ।
लग्ना व्यग्रतया देव ! दृश्यन्ते किमिदंकथम् ।। १३।।
विसंगते रहोदर्शिन् कारणं नस्तु बोध्यतां ।
अस्माद् विपर्ययान्मोक्तुमुपायो बोध्यतां प्रभो ।। १४।।

टीका- कौण्डिन्य बोले-हे देव ! धर्म सम्बन्धी कल का विवेचन सुनने के बाद हम सबने उस विषय पर काफी मन्थन किया है। भगवन् ! आपके द्वारा व्यक्त किये गये सभी प्रतिपादन सर्वथा बुद्धिसंगत दीखते हैं। एक असमंजस हमारे मन में और उठा है कि तत्वदर्शन, धर्मधारणा के इन विभिन्न पक्षों को जानते-समझते हुए भी सामान्यजन इस पर आचरण क्यों नहीं कर पाते? धार्मिक समागमों, पर्व-त्यौहारों, अनुष्ठानों, अखण्ड जप, सामूहिक स्नान, रात्रि जागरण में एवं देवस्थानों पर जन साधारण की अपार भीड़ दृष्टिगोचर होती है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्मोपदेशकों के सन्देश भी अगणित व्यक्ति सुनते दिखाई देते हैं। फिर भी अनैतिकता, आक्रामकता, विग्रह-विद्वेष, चोरी-लूटमार एवं धर्म की आड़ में परस्पर मारकाट क्यों कर पद-पद पर दिखाई देती है ? सार्वभौम धर्म एक होते हुए भी अनेक मत-मतान्तर, प्रत्येक की अपनी-अपनी अलग-अलग मनगढ़न्त विवेचनाएँ एवं बाह्याडम्बर क्यों देखे जाते हैं? हे देव ! धर्म परिवर्तन की विडम्बना में धर्म परायण कहे जाने वाले व्यक्ति ही उलझे दिखाई देते हैं, ऐसा क्यों ? हे तत्वदर्शी ! इस विसंगति का कारण बताइये और साथ ही इस विपर्यय से बचने-छूटने का उपाय भी सुझाइये ।। ५-१४।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

जिज्ञासा श्रखलां श्रुत्वा मोदं याति मनस्तु नः ।
भवता पृच्छता प्रश्नमिमं मानवता समा ।। १५।।
धन्यी कृता नवोत्साहो भविताऽस्य समाहितेः ।
भद्रा आकर्ण्यतामेतद्रहस्यंऽसमञ्जसम् ।। १६।।
प्राणाः शरीरं हे तात ! मिलित्वा जायते यथा ।
पुरुषस्तथैव धर्मोऽस्ति घटकद्वयनिर्मितः ।। १७।।
बाह्यरूपं तु तस्यैकं यत्पूजास्तवनादिषु ।
दीपनीराजनाख्येषु कर्मकाण्डेषु दृश्यते ।। १८।।
परमाया हि सत्ताया ध्यानायात्र तु कर्हिचित् ।
प्रतीकानाश्रयन्त्येषा निराकारा यतः स्वतः ।। १९।।
सम्प्रदायेषु भिन्नेषु देशकालादि कारणात् ।
प्रतीकाः सन्ति भिन्नास्ते लक्ष्यमेकं तथापि तु।। २०।।
समष्टौ व्याप्तया ब्राह्मया तया चैतन्यसत्तया ।
एकात्मता प्रतिष्ठा सा तद्गुणाचरणं तथा ।। २१।।
उपासनाविधिर्भिन्नो रीतयः पर्वणामपि ।
भिन्ना भवन्ति सन्त्येता यतः पद्धतयः परम् ।। २२।।
स्वीकृत्य पद्धतीर्यास्तु लक्ष्यमाप्तुं समेऽपितम् ।
यतन्ते परमात्मानं सत्प्रवृत्तिसमुच्चयम् ।। २३।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-आपकी जिज्ञासा श्रंखला सुनकर हमारा मन प्रमुदित होता है। आपने यह प्रश्न पूँछकर सारी मानवता को धन्य किया है। इसके समाधान से शीघ्र ही नया उत्साह उत्पन्न होगा। हे भद्र जनो ! इस असमंजस भरे आश्चर्य का रहस्य सुनो ! हे तात ! जिस तरह शरीर और प्राण दोनों मिलकर पूर्ण पुरुष बनते हैं, धर्म भी ऐसे ही दो घटकों से मिलकर बना है। एक उसका बाह्यरूप है, जो पूजा-अर्चा, स्तवन, दीप-आरती इत्यादि कर्मकाण्ड के रूप में देखा जाता है। परमसत्ता का ध्यान करने के लिए कभी-कभी प्रतीकों का आश्रय लिया जाता है, वस्तुतः वह सत्ता स्वतः निराकार है। प्रत्येक सम्प्रदाय में इसके भिन्न-भिन्न रूप हो सकते हैं, चूँकि प्रतीकों में देश-काल आदि कारण होते हैं, पर उन सबका लक्ष्य एक ही होता है-समष्टि में संव्याप्त ब्राह्मी चेतना सत्ता से एकात्मता स्थापित करना, उस भगवत्सत्ता के गुणों को अपने जीवन में उतारना। उपासना के विधि-विधान, पर्वों के रीति-रिवाज भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, पर गहराई से देखा जाय, तो ये सभी मात्र पद्धतियाँ हैं; जिन्हें अपनाकर सभी एक ही लक्ष्य-सत्प्रवृत्तियों के समुच्चय उस परमसत्ता के निकट पहुँचने का प्रयास करते हैं ।। १५-२३।।

धर्मस्याऽस्यापरं रूपमान्तरंगं तु विद्यते ।
भावना प्रमुखं कर्मकाण्डे प्राणास्तु केवलम् ।। २४।।
भावनायाः समावेशादागच्छन्ति विना च ताम्।
निर्जीवचिन्हमात्रं तन्मनोनोदि च साधनम् ।। २५।।
प्राणिनां समुदायेन समष्ट्या प्रेम सर्वदा ।
अविशेषं नरश्चैषां सेवा, धर्मासवो मताः ।। २६।।
धर्मस्य पूर्णता सेयं सार्थक्यं जीवनस्य च ।
सेवाप्रेममयं कृत्वैवात्मानं सम्भवत्यपि ।। २७।।

टीका- धर्म का दूसरा अन्तरंग रूप भावना प्रधान है। कर्मकाण्ड इत्यादि में प्राण भावना के समावेश से ही आता है। उसके बिना तो वे निर्जीव मात्र चिन्ह-पूजा मन-बहलाव का साधन बन कर रह जाते हैं। समस्त प्राणि-समुदाय एवं मानव-मात्र से निर्विशेष प्रेम एवं सेवा-साधना को ही धर्म का प्राण मानना चाहिए। धर्म की पूर्णता-जीवन की सार्थकता स्वयं को प्रेममय एवं सेवामय बनाने से ही सम्भव हो पाती है।। २४-२७।।

यहाँ ऋषि धर्म के अंतरंग पक्ष-इष्ट के प्रति भावना और प्रेम की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इसके अभाव में पूजा-उपासना के सभी क्रियाकृत्य निर्जीव मात्र चिन्ह-पूजा भर रह जाते हैं। मानसकार ने श्रद्धा भावना को "**भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ**"। कह कर यह स्पष्ट किया है कि उसके बिना उपासना की सिद्धि या अन्तःकरण में स्थित परमात्म देव के दर्शन सम्भव नहीं हो सकते। कहा जाता है कि भगवान भाव के भूखे होते हैं। श्रद्धाभावना से पत्र पुष्प भी समर्पित करने पर वे उसे ग्रहण कर लेते हैं। मनुष्य का अपना अन्तः देवता भी श्रद्धा भावना के वश में है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भावना स्वयं अंत:करण में इष्ट के प्रति प्रेम का उद्रेक करती है तो ऐसा आभास होता है कि अपनी प्रिय वस्तु अपने बहुत समीप, अपनी कल्पना में ही ओत प्रोत है।

इष्ट के प्रति समर्पण को ही प्रेम कहते हैं। प्रेमयोग का साधक अपने अंतरंग में भावनात्मक और बहिरंग में क्रियात्मक प्रेमतत्व की दिव्य संवेदनाओं का परिचय देता है। यही धर्मधारणा का प्राण है। भगवान से प्यार करने का तात्पर्य है-उसकी दुनिया के पीड़ित पक्ष की सेवा करना। इसी में जीवन की सार्थकता है।

अनगढ़ चेतना को सुगढ़ और सुसंस्कृत बनाने में धर्म-धारण ही महती भूमिका सम्पन्न करती है। चेतना का परिशोधन, परिष्कार एवं व्यक्तित्व का निखार धर्मधारणा के सहारे ही सम्पन्न होता है। पूर्णता प्राप्ति की सहज प्रवृत्ति मानव अन्त:करण में विद्यमान है पर धर्म धारणा के अभाव में वह ईश्वर सान्निध्य प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाता, क्योंकि नियामक सर्वव्यापी सत्ता निराकार है, अनादि और अनन्त है। उस निराकार ब्रह्म से सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम क्या बने? इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए धर्म के बाह्य स्वरूप उपासनात्मक कर्मकाण्ड के विधि-विधानों को दैनिक जीवन में नित्य कर्म की तरह अपनाने का निर्धारण किया गया है। उपासना में अपनी श्रद्धा को दृढ़ आधार प्रदान करने के लिए किसी न किसी प्रतीक को चित्र अथवा मूर्ति को एक अनिवार्य माध्यम माना गया है। प्रतीक जीव और ब्रह्म के मिलन में सहायक भूमिका निभाते हैं। हिन्दुओं के मन्दिर, देवी-देवताओं के चित्र अथवा मूर्ति, गीता आदि, वेदान्तियों का सोऽम्, सविता और अग्नि के तेज का ध्यान, तथा ईसाईयों का गिरजा, बाइबिल तथा क्रूस, मुसलमानों का काबा और कुरान, पारसियों का अग्नि का ध्यान, *साम्यवादियों* का मार्क्स और लेनिन की कब्रों पर पुष्प चढ़ाना, महापुरुषों के चित्रों सद्ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा का होना आदि सभी उपासना की ही पूर्ति करते हैं।

उपासना वाला परमेश्वर-ससीम है। इसे सुपर चेतना तथा परम ज्योति कहा गया है। विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में इसे ही 'ईश्वर', 'खुदा', 'अल्लाह', 'गाड' आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। ससीम परमात्मा को उन सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय समझना चाहिए जो मानवी गरिमा का स्तर ऊँचा रखने की प्रेरणा देती है साथ ही पात्रता के अनुरूप प्रतिफल, अनुग्रह, अनुदान प्रदान करती है। वस्तुत: परब्रह्म असीम है। निराकार और सर्वव्यापक होने के कारण वह न तो एक देशीय हो सकता है और न सीमित कहा गया है कि उसकी कोई प्रतिमा नहीं **"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** और **"न स्वरूप न छवि"** आप्त वचनों भी कहा गया है **"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति", "एको विश्वस्य भुवनस्य राजा"** अर्थात् एक ही परब्रह्म को विद्वानों ने अनेक नामों से सम्बोधित किया है। उसे ही सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय बताते हुए ऋषि यहाँ कहते हैं कि पूजा उपासना से लेकर रीति-रिवाजों तक के क्रियाकृत्य अपनाकर मनुष्य अपने व्यक्तित्व को पवित्र एवं प्रखर बनाने का अभ्यास करता है और आत्म परिष्कार करते हुए ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करता है।

परमात्म प्रेम संयुक्ता जना ये शुद्धचेतस: ।
सृष्टे: कणेषु पश्यन्ति छायां तस्याभितोमुने ।। २८ ।।
वनस्पतिषु पश्यन्ति चराचरगतं प्रभुम् ।
जीवेषु भिन्नवर्णादियुतेष्वेते नरेष्वपि ।। २९ ।।
योजना उच्चनीचानां धनिनिर्धनिनां तथा ।
लघूनां महतां भेदं विस्मृत्येह तु प्राणिन: ।। ३० ।।
प्रेमदृष्ट्यैव पश्यन्ति धर्मात्मानस्तु तेऽर्थत: ।
परमेशप्रिया: प्रेमाऽसीमाऽनन्तं हि वस्तुत: ।। ३१ ।।
यदा मनुष्य: सेवायां साधनायां रत: सदा ।
मत्वा पूजां निजं कर्म कुरुतेऽहंकृतिस्तत: ।। ३२ ।।
नाशमेति स्वयं हेतुरस्ति याऽपूर्णतास्थिते: ।
परमात्मसत्तया चैक्यं पूर्णतामनुयाति च ।। ३३ ।।

टीका- हे ऋषिश्रेष्ठ ! परमात्मसत्ता से सच्चे हृदय से प्रीति रखने वाले मुमुक्षुजनों को सृष्टि के प्रत्येक कण में चहुँ ओर उन्हीं की छाया दिखाई देती है। वृक्ष-वनस्पति, जीव-जन्तु, विभिन्न वर्ण, वर्ग, जाति व लिंग के नर-समुदाय में उन्हें एक ही चराचर सत्ता के दर्शन होते हैं। जो व्यक्ति धनी-निर्धन, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच का भेदभाव भुलाकर प्राणिमात्र को प्रेम की दृष्टि से देखते हैं, वही सच्चे अर्थों में धर्मपरायण हैं, परमेश्वर को प्यारे हैं। वस्तुत: प्रेम की परिधि असीम है-अनन्त है। जब मनुष्य सेवा-साधना में निरत हो हर काम को पूजा मानकर करता है, तो उसका अहंकार, जो अपूर्णता का कारण है, स्वयमेव मिटता चला जाता है एवं उसे परमात्म सत्ता से एकत्व की पूर्णता की अनुभूति होने लगती है ।। २८-३३ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ महर्षि प्रेम की असीमत और अनन्तता को स्पष्ट करते हैं। वस्तुत: प्रेम को ही परमेश्वर कहा गया है। देवर्षि नारद का कथन है कि-**"सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा।"** ईश्वर से प्रेम करने का अर्थ है-उसके प्रति, उसकी संरचना के प्रति समर्पण। सच्चे ईश्वर भक्त की यही पहचान है। उसे सर्वत्र **"आत्मवत् सर्वभूतेषु"** की अनुभूति होती रहती है। विश्वात्मा की **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की सजीव अनुभूति तभी संभव होती है जब मनुष्य मात्र से, प्राणी मात्र से स्नेह सद्भाव का सघन संबंध होता है। सच्चे धर्मपरायण के लिए आत्मीयता मात्र सिद्धान्तों तक सीमित नहीं रहती वरन् वह सरस सम्वेदना बन कर अन्त:करण से फूट पड़ती है। सबके कल्याण की भावना जग पड़ती है। ईश्वरीय प्रेम अपने आप में सामर्थ्य का पुंज है और उस प्रेम भावना से ओत प्रोत मनुष्य जब अपने छुद्र 'स्व' को लाँघ कर दिव्य प्रेम की अनन्तता में प्रवेश करता है तब वह परमसत्ता से एकत्व स्थापित कर लेता है। यही अद्वैत अनुभूति धर्म की अध्यात्म की पूर्णता है।

दुर्भाग्यादेष मर्त्यानां समुदायस्तु वर्गश: ।
बाह्ये धर्मस्वरूपे हि दत्तचित्तस्तु तिष्ठति ।। ३४ ।।
अस्याविडम्बनायाश्च मोक्तव्या जनता समा।
सर्वधर्म समं भावं कर्तुं तु हृदयंगमम् ।। ३५ ।।
परेषामनिवार्यं तु संस्कृते रूपदेशका: ।
धृति धर्मस्य स्वीये ते जीवने विदधत्विमाम् ।। ३६ ।।
प्रमाणैर्ब्रह्मण: सत्तां प्रतिपाद्येश्वरास्थया ।
तस्यास्तैःफलितार्थैश्चविज्ञान् कुर्वन्तु ते जनान् ।।३७ ।।
दृढेष्वास्तिक्यमूलेषु धर्मगे सम्प्रदायगे ।
भेदे ज्ञाते स्वयं भ्रान्तेर्नीहारो नाशमेष्यति ।। ३८ ।।

टीका- दुर्भाग्यवश विभिन्न वर्गों के मनुष्य समुदाय धर्म के बाह्य-स्वरूप में उलझकर रह जाता है एवं उसी को सब कुछ मानते हुए पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो जाता है। इस विडम्बना से जन समुदाय को मुक्ति दिलानी चाहिए। सर्वधर्म समभाव के स्वरूप को हृदयंगम कराने हेतु यह अनिवार्य है कि संस्कृति के उपदेष्टा धर्मधारणा को स्वयं जीवन में उतारें एवं परब्रह्म की सत्ता को विभिन्न प्रमाणों द्वारा प्रतिपादित कर ईश्वर विश्वास एवं उसके फलितार्थों से सबको परिचित करायें। आस्तिकता की जड़ें मजबूत होने पर एवं धर्म-सम्प्रदाय का अन्तर समझ में आ जाने पर भ्रान्तियों का कुहासा स्वयमेव मिटता चला जायेगा ।। ३४-३८ ।।

यहाँ ऋषि उस विडम्बना की ओर इंगित करते हैं जिसमें हर धर्म-सम्प्रदाय के लोग भोलेपन में कर्मकाण्डों को-क्रिया कृत्यों को ही सब कुछ मान लेते हैं और भावनाओं के परिष्कार को भूल जाते हैं। वस्तुत: भजन पूजन से लेकर तीर्थ यात्रा तक के क्रिया-कृत्यों के पीछे छिपा मूलभूत उददेश्य एक ही है कि मानवी चिन्तन पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों से विरत होकर-पवित्रता और प्रखरता अपनाये, संयमी और उदार चेता बने, चरित्रनिष्ठ और समाजनिष्ठ बने। पर लोग पूजा पाठ के लोकाचार मात्र से यह समझ बैठते हैं कि भगत भक्ति का प्रयोजन पूरा हो गया। जप, पाठ,कीर्तन, सज्दा, अजान, आदि के बाह्य कृत्यों से सन्तोष कर लेते हैं कि देवता की-भगवान की प्रसन्नता अर्जित कर ली। मन्दिरों में देवदर्शन, नदी सरोवरों में स्नान, ब्रह्मभोज आदि के क्रिया-कृत्यों से अपनी धर्म-श्रद्धा पूर्णकर लेते हैं। यह परख नहीं करते कि हमारी भावनाएं कितनी गहरी या उथली हैं। धर्म के ठेकेदार भगवान के एजेण्ट, महन्त, कथावाचक, उपदेशकगण भी जो उपदेश देते हैं उसमें भी क्रिया-कृत्यों की ही प्रधानता होती है और इसी के आधार पर मनोकामना से लेकर स्वर्गमुक्ति तक का अनुपम माहात्म्य बताया जाता है। धर्म क्षेत्र की यह सबसे बड़ी विडम्बना है। इस से मुक्ति दिलाने और सर्वधर्म समभाव के स्वरूप को जन-जन तक पहुँचाने के लिए ऋषि का यहाँ कथन है कि धर्माचार्य उपदेष्टा स्वयं धर्म को धारण करे और जीवन में उतारे। प्रत्यक्ष आचरण द्वारा ही किसी को सिखाया जा सकता है। आस्तिकता का पक्षधर बनने पर ईश्वर पर अडिग विश्वास होने पर ही धर्म और सम्प्रदाय का वास्तविक स्वरूप समझ में आता है और तब विग्रह की कहीं कोई गुंजायश नही रह जाती।

कृतं निष्काम भावेन कर्म धर्मोऽस्ति वस्तुत: ।
स्वार्थ हेतुकृतं कर्म भौतिकाऽध्यात्मबाधकम् ।। ३९ ।।
स्वत: सिध्यति स्वार्थस्तु सेवते प्राणिनो नर: ।
यर्हि मत्वा निजं धर्मं परमार्थे रतो भवेत् ।। ४० ।।
विक्रये गोरसस्यात्र हरे र्मिलनमुत्तमम् ।
एकस्मिन् पयि लाभोऽयं कर्मणोऽस्तु द्वयोरपि ।। ४१ ।।
साधनायां च सेवायां नियुक्ता व्यक्तयस्तु या: ।
लभन्ते सहयोगं ता: सम्मानमनुदानकम् ।।४२ ।।
अतोऽस्माभिरिदं बोध्यं परमार्थो हि वस्तुत: ।
स्वार्थो यत:समष्टौ तु व्यष्टिराविशतिस्वयम् ।। ४३ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

टीका- वस्तुतः निष्काम भाव से किया गया कर्म ही धर्म है। जो कार्य अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु किया जा रहा हो, वह मनुष्य की भौतिक एवं आत्मिक दोनों ही प्रगति में बाधक बनता है। स्वार्थ तो स्वतः ही सधने लगता है, जब मनुष्य प्राणि-मात्र की सेवा को अपना धर्म मानकर परमार्थ में जुट जाता है, यह तो 'गोरस बेचन हरि मिलन एक पंथ दो काज' की तरह लाभ ही लाभ है। सेवा-साधना में नियोजित व्यक्ति स्वतः जन सम्मान, सहयोग एवं भौतिक अनुदान पाता रहता है। वस्तुतः परमार्थ ही सच्चा स्वार्थ है, चूँकि समष्टि में व्यक्ति (व्यष्टि) स्वतः ही आ जाता है ।। ३९-४३।।

यहाँ महर्षि ने उच्चस्तरीय स्वार्थ को ही परमार्थ बताया है। स्वार्थ और परमार्थ में संघर्ष तब होता है जब वे प्रथक रहते, भिन्न दिशा अपनाते, विवादों में फँसते और परस्पर टकराते हैं। परन्तु जब कर्म निष्काम भाव से किया जाता है तब स्वार्थ और परमार्थ दोनों में पति-पत्नी की तरह, आग ईंधन की तरह पूर्ण एकात्मता रहती है एवं उनकी सम्मिलित प्रक्रिया ऐसी होती है जिससे लौकिक सम्पदाओं और आत्मिक विभूतियों की उपलब्धि साथ-साथ होती चलती है। परमार्थ का तात्पर्य है-सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन, सदाशयता का प्रचलन, पीड़ा और पतन का उन्मूलन। परमार्थ अपने आप में एक उच्चस्तरीय तप है जिसके साथ सूर्य की सप्तवर्णी किरणों की तरह उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, श्रमशीलता, जागरुकता, मितव्ययता, सुसंस्कारिता, मर्यादा के सात सद्गुणों की शृंखला साथ रहती है। जिन्हें अपना कर कोई भी अपनी छुद्र संकीर्ण स्वार्थपरता से विरत होकर महामानव बन सकता है।

परमार्थ परायणता की पृष्ठभूमि में सज्जनता की चरित्रनिष्ठा अविछिन्न रूप से जुड़ी रहती है। परमार्थ करते करते-"बाटन हारे के लगे ज्यों मेंहदी को रंग" की तरह स्वार्थ स्वयमेव निभ जाता है। इस रहस्य को जानने वाले कभी घाटे में नहीं रहे। इतिहास साक्षी है कि स्वार्थ परायणों ने जो कमाया, उसकी तुलना में परमार्थ परायणों का उपार्जन हर दृष्टि से हजारों-लाखों गुना अधिक रहा। सम्मान सहयोग से लेकर दैवी अनुग्रह तक उनके पीछे छाया की तरह लगी रहती है।

धर्मो वक्तव्य एषोऽत्र कार्यशैली करोति या ।
जीवनं मानवानां तु सफलं सार्थकं तथा ।। ४४।।
व्यक्तित्वस्य च सर्वांगपरिष्कार विधायिका ।
अस्या विवेकशीलैस्तत्कर्तव्यमनुशासनम् ।। ४५।।
बाह्यं रूपं सदाचार धर्मस्यास्ति यथा तथा ।
रूपमान्तरिकं तस्य सद्भावो विद्यते ध्रुवम् ।। ४६।।
धर्मवाह्यप्रवृत्तीर्या व्यक्तिः सेवां श्रमादिकम् ।
आदायाथ च धर्मस्य रूपमान्तरिकं पुनः ।। ४७।।
शालीनतां च सौजन्यं सारल्यं शान्तजीवनम्।
संवेद्यता तथौदार्यं दयां मैत्रीं तथैव च ।।४८।।
जीवनं यापयन्तस्तु शान्तिं सन्तोषमुत्तमम् ।
अनुभवन्ति तु ये सन्ति ते वै धर्मपरायणाः ।। ४९।।

टीका- धर्म को, मानव जीवन को सफल, सार्थक बनाने एवं व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण परिष्कार कर दिखाने वाली एक कार्यशैली कहा जाना चाहिए। हर विवेकशील व्यक्ति को इसका अनुपालन करना चाहिए। धर्म का बाह्य स्वरूप जहाँ सदाचार है, वहाँ सद्भाव उसका आन्तरिक स्वरूप है। जो व्यक्ति श्रम-सेवा आदि धर्म की बहिरंग प्रवृत्तियों एवं सज्जनता, शालीनता, सरलता, सादगी, संवेदनशीलता, उदारता, करुणा, मैत्री जैसी अन्तरंग सत्प्रवृत्तियों को अपनाकर जीवनक्रम चलाते हुए दैनन्दिन जीवन में शान्ति एवं सन्तोष की अनुभूति करता है, वही सच्चे अर्थों में धर्म परायण है।।४४-४९।।

यहाँ ऋषि स्पष्ट करते हैं कि धर्म एक महान तथ्य और जीवन चेतना का यथार्थ विज्ञान है जिसके बाह्याभ्यन्तर दोनों ही स्वरूप व्यक्ति और समाज दोनों के लिए कल्याणकारी हैं। आचरण की श्रेष्ठता, विचारों की उत्कृष्टता तथा भावनाओं की पवित्रता ही धर्म का व्यावहारिक लक्ष्य है, जिसका परिपालन समस्त मानव समुदाय को करना चाहिए। शालीनता और नीतिमत्ता को धर्म की धुरी माना गया है। जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं जो इसकी परिधि में न आता हो। धर्म का वास्तविक तात्पर्य ही है-मानवी चेतना में ऐसी सत्प्रवृत्तियों का समावेश जो सदाचरण,सद्भावना और कर्तव्यपालन के रूप में वातावरण को उल्लासपूर्ण बनाने में समर्थ हो सकें। सहिष्णुता, विनम्रता, मैत्री, दया, करुणा, उदारता, प्रेम, विवेक,संयम, सेवा जैसे सद्गुणों में सच्ची धर्मनिष्ठा का परिचय मिलता है। धर्म को धारण करने वाले अपने जीवन में आचरण करने वाले, धर्म के आधार पर अपने जीवन को जीने वाले, कर्तव्य परायणता को प्रमुखता देने वाले व्यक्ति ही सही अर्थों में 'धर्मात्मा,''धार्मिक,' 'धर्मपरायण' कहे जाते हैं। धर्म का पालन और पोषण करने वाले मनुष्य के जीवन में एक विशेष प्रकार का विलक्षण आह्लाद भरा रहता है, वह सर्वत्र सौरभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिखेरता चलता है और वातावरण को उल्लास और उमंग से भर देता है। निर्जीव को भी सजीव बना देने की सामर्थ्य धार्मिक प्राणवत्ता से ही आती है।

तात ! मानवधर्मे ये त्वास्थावन्तो नरा न ते ।
मान्यतासु स्वकीयासु कुर्वते हि दुराग्रहम् ।। ५०।।
सत्यान्वेषणयुक्तास्तु कर्मयोगिन एव च ।
जिज्ञासुस्तरका नूनं साधकाः सन्ति ते ध्रुवम् ।। ५१।।
एतादृशं हि सद्भावं स्वान्तःकरण उत्तमम् ।
विकासयन्ति ते विश्वे वैविध्य भरिते स्थिताः।।५२।।
मान्यता या विभिन्नानां वर्गाणां वा परम्पराः।
मानयँस्ताःसमान् बन्धून मन्यन्ते सहयोगिनः।।५३।।
तर्कतथ्यप्रमाणानां भाषायां ब्रह्मवर्णनम् ।
कृत्वा कुर्वन्ति चाश्ववस्तानन्या नास्तिकपक्षगान्।। ५४।।
एतादृशा उदारा ये धार्मिकाः सन्ति ते ऽर्चतः।
अध्यात्मवादिनो धर्मरता धर्मोपदेशकाः ।। ५५।।
विपरीतानि येषां तु नृणामाचरणानि वै ।
तात्कालिकं परं लाभं प्राप्नुयुस्ते तु चान्ततः।। ५६।।
तेषां यथार्थताऽऽयाति समेषां सम्मुखे ततः ।
भर्त्सना पात्रतां यान्तिकोप भाजनतां प्रभोः।। ५७।।

टीका- हे तात ! मानवधर्म में आस्था रखने वाले कभी अपनी मान्यता के प्रति दुराग्रही नहीं होते। वे सत्यान्वेषी, कर्मयोगी एवं जिज्ञासुस्तर के साधक होते हैं। वे इस स्तर की सदाशयता अपने अन्तःकरण में विकसित करते हैं कि विविधता से भरी इस सृष्टि में विभिन्न वर्गों की मान्यताओं-परम्पराओं का सम्मान करते हुये उन्हें अपना ही बन्धु-सहयोगी मानें। वे तर्क-तथ्य प्रमाणों की भाषा में परब्रह्म की व्याख्या कर अन्य अनेकों को आश्वस्त करते एवं आस्तिकता का पक्षधर बनाते हैं। ऐसे उदार धर्मचेत्ता ही सही अर्थों में धर्मपरायण, धर्मोपदेशक, अध्यात्मवादी कहलाने योग्य हैं। इस के विपरीत आचरण करने वाले तात्कालिक अर्थ लाभ एवं सम्मान भले ही पालें, अन्ततः उनकी यथार्थता सबके सम्मुख आ ही जाती है। वे भर्त्सना के पात्र एवं ईश्वरीय सत्ता के कोप भाजन बनते हैं।। ५०-५७।।

मानवधर्म आत्मा की एकता, समता, शुचिता, शालीनता और उदार सहकारिता की आस्था पर आधारित है। उसमें विग्रह-विद्वेष की कहीं कोई गुंजाइश नहीं। अड़चन तब पैदा होती है, जब विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के बीच पायी जाने वाली भिन्नताओं तथा प्रथा परम्पराओं को ही लोग सब कुछ मान कर दुराग्रह पूर्वक यह कहते सुनते पाये जाते हैं कि हमारी मान्यताएँ एवं प्रथा परम्परायें ही सही हैं। इसके अतिरिक्त सब झूठे हैं। अपनी धर्मपुस्तकों में जो कहा गया है वही ईश्वर का वचनं है और जिसकी मान्यता इससे भिन्न है उसे इस धरती पर रहने का कोई हक नहीं है। यह मान्यता ही विग्रह-विद्वेष का कारण बनती है। विवेकवान उदार चेता धर्मपरायण इससे बचते और आन्यान्यों को भी इसका पक्षधर बनाते हैं कि ईश्वर और धर्म एक है। धर्म की मूल आत्मा, न्याय, कर्तव्य एवं औचित्य का समर्थन करती है। साम्प्रदायिक प्रथा परम्परायें, विभिन्न वर्गों के दर्शन, तत्वज्ञान, धर्मशास्त्र की भिन्नताएँ ऐसी ही हैं जैसा कि एक उद्यान में उगे हुये विभिन्न रंग और गंधों के पुष्पों की भिन्नता। उसके कारण बगीचे की शोभा ही बढ़ती है, घटती नहीं। विभिन्न रंग के विशेषताओं वाले पुष्प एक दूसरे के शत्रु नहीं होते वरन् आपस में गले लिपटते और सुगन्ध एवं सौन्दर्य बिखेरते हैं। विभिन्न प्रकार की पोषाकें पहनने वाले एक रेलगाड़ी में सफर कर सकते हैं तो मजहवों की भिन्नता रहते भी कोई कारण नहीं कि सदाशयता की एकता समता की उपेक्षा की जाय।

यहाँ ऋषि स्पष्ट करते हैं कि मानवी गरिमा के अनुरूप श्रेष्ठ आचरण करने वाले ही सच्चे धर्मात्मा कहलाते हैं। किन्तु समय विचित्र है, इसमें भीतर और बाहर के स्तर में भारी अन्तर दिखाई पड़ता है। धर्मोपदेशकों का जीवन सार्वजनिक लोक सेवी का जीवन है। किन्तु देशभक्ति के नारे लगाने वाले, धर्म के नाम पर लोक सेवा का आवरण पहनने वाले जब कपटमुनि के रूप में छद्म ओढ़े विपरीत आचरण करते और जनता का शोषण करते हैं, तो आश्चर्य होता है। ऐसे लोगों की वास्तविकता का जब पर्दाफाश होता है तो सर्वत्र उनकी भर्त्सना होती है। इस विसंगति से धर्मोपदेशक को बचा जाना चाहिये और बाहर तथा भीतर का स्तर एक रखना चाहिये।

कौण्डिन्य उवाच-

धर्माः कति विधा मुख्या सन्ति विश्वेऽधुना तु ते ।
ब्रूहि तेषां स्वरूपं नः प्रभो मानव मंगलम् ।। ५८।।

टीका- कौण्डिन्य बोले- हे देव ! इन दिनों संसार भर में प्रमुख धर्म कितने हैं? उनके स्वरूप बतायें जो मनुष्य के लिये मंगल कारी हैं।। ५८।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

याज्ञवल्क्य उवाच-

मनीषिणोऽधुनालोके भाषा बह्व्यः समुद्गताः।
असंख्याः सम्प्रदायाश्च प्रादुर्भूताः पदे पदे ।।५९।।
विभिन्नानां मतानां च बाहुल्ये विद्यतेऽधुना ।
संख्या येषां समुल्लंघ्य सहस्रमति वर्द्धते ।।६०।।
अधुनोद्व्यन्ति ते नित्यमुद्भिजा इव वार्षिकाः।
देवीनामथ देवानां संख्याऽप्येवे विवर्द्धते ।।६१।।
गणना संभवा तेषां नैव नावश्यकं तथा ।
संक्षेपादद्य चत्वारः सम्प्रदायास्तु धर्मजाः ।।६२।।
अन्ये शाखा प्रशाखाश्च तेषामेवेति मन्यताम्।
एषु भारतमूलौ द्वौ मानवोत्कर्षसाधकौ ।।६३।।
हिन्दू धर्म इति ख्यात एकस्तत्राऽपरस्तु सः ।
प्रसिद्धो विश्वमात्रे च बौद्धधर्माभिधानकः ।।६४।।
पाश्चात्यमूलौ द्वौ ख्रीष्ट-इस्लामश्च मताविह।
चतुर्णामेव चैतेषां सदस्या विश्वविस्तृताः ।।६५।।
धर्मस्य सम्प्रदायानां समेषां मूल आहिता ।
सिद्धान्तानां समानैव प्रायः सा हि प्रधानता ।।६६।।
सानातनं धर्मतत्वं तेषु सम्यङ् निरूपितम् ।
तेषु कुत्रापि नास्त्येव भिन्नता कापि वस्तुतः।।६७।।
तात ! सूर्येण चन्द्रेण पवनेनर्तुभिस्तथा ।
नदीभिश्चसरोभिस्तैःसम्बन्धोऽस्ति नृणां यथा।।६८।।
अधिकारोऽपि तेष्वस्ति समानस्तर्हि सा कथम्।
भिन्नता धर्मतत्त्वे स्या यत्तु सर्वोपकारम् ।।६९।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-हे मनीषियों ! यों इन दिनों संसारभर में भाषाएँ अनेकों उभरी हैं और सम्प्रदाय भी सर्वत्र अगणित उपज पड़े हैं। मत-मन्तान्तरों की भरमार है और वे सहस्रों की संख्या में पहुँच चुके हैं। अभी वे बरसाती उद्भिजों की तरह आये दिन उगते रहते हैं। देवी-देवताओं की संख्या भी इसी प्रकार बढ़ रही है। उनकी गणना सम्भव नहीं, न ही आवश्यक है। संक्षेप में इन दिनों चार धर्म-सम्प्रदाय प्रमुख हैं। अन्यान्यों को उन्हीं की शाखा-प्रशाखा समझना चाहिये। इनमें भारत मूल के दो हैं, जो मानव के आत्मोत्कर्ष में सहायक हैं। एक हिन्दू धर्म, दूसरा-बौद्धधर्म। पाश्चात्यमूल के दो हैं-ख्रीष्ट और इस्लाम। इन चारों ही धर्मों के व्यक्ति विश्वभर में फैले हुये हैं। सभी धर्म-सम्प्रदायों के मूल में एक जैसे ही सिद्धान्तों की प्रधानता है। उनमें सनातन धर्मतत्त्व का ही निरूपण किया गया है। उनमें कहीं कोई भिन्नता नहीं। हे तात ! जब सूर्य, चन्द्र,पवन, ऋतु, नदी, सरोवरों से सबका सम्बन्ध और अधिकार है, तो फिर धर्म तत्व में ही भिन्नता क्यों होगी? जो कि सर्वोपकारक सिद्धान्त है।। ५९-६९ ।।

अनादि काल से एक ब्रह्माजी के ही सब पुत्र थे जो मनुष्य कहलाये। तब मनुष्य की एक भाषा, एक संस्कृति, एक जाति और एक ही धर्म था। सभ्यता के विकास के साथ देश, काल और परिस्थितियों को देखते हुये मनीषी, अवतारी, महामानवों में श्रेष्ठता संबर्धन एवं निकृष्टता निवारण के लिये जो सिद्धान्त एवं आचार शास्त्र विनिर्मित किये, कालान्तर में वे ही धर्म-सम्प्रदाय के नाम से जाने पहचाने लगे। देश, धर्म, भाषा और संस्कृत तब एकता के पक्ष धर थे। कालान्तर में दुर्भाग्य वश निहित स्वार्थों ने इन चारों को विभाजन की दीवार बना दिया। आज विश्व में २०९६ भाषायें प्रचलित हैं। अनेक प्रकार की बोलियाँ ही बोली जाती हैं। अकेले भारत में ६०० प्रकार की भाषाएँ पाई जाती हैं। विश्व में प्रचलित धर्म-सम्प्रदायों की संख्या भी प्रायः ६०० है। संसार के प्रसिद्ध ग्यारह धर्म-मत प्रमुख हैं-जापान का शिन्तोमत, चीन का ताओ और कन्फ्युशियस मत, यहूदी, ईसाई, मुस्लिम मत, हिन्दुस्तान का वैदिक मत, जैन मत, बौद्धमत, सिक्खमत, पारसी मत। इन सभी धर्मों की अनेकों शाखा-प्रशाखायें हैं। अकेले हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ३८०० से अधिक सम्प्रदाय-उपसम्प्रदाय हैं। यह वस्तुतः एक ही धर्म-संदेश को विभिन्न रूपों में समझाने का प्रयास है। बाह्य कलेवर में विविधता होते हुये भी मौलिक सिद्धान्त सभी धर्म-सम्प्रदायों में एक ही समान है। सभी ने एक सार्वभौम सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करना मानव का अन्तिम लक्ष्य माना हैं। सभी में एक स्वर से दुख से त्राण पाने का उपाय और सुख प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।**"सर्वभूत हितेरताः"** तथा **"आत्मवत् सर्वभूतेषु"** का सनातन सिद्धान्त ही सभी धर्म-सम्प्रदायों का मूलभूत आधार है। अवांछनीयताओं, अनाचार, असुरता को निरस्त करना और देवत्व का अभिवर्धन ही सनातन धर्म का वास्तविक उद्देश्य है। **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना का परिपोषण करने वाली सार्वभौम सार्वजनीय तथा सर्वोपयोगी सनातन शिक्षा का ही सबमें समावेश है। इन्हीं सूत्रों को विश्व धर्म की आधार शिला मानकर आज मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँधे जाने की आवश्यकता है।

यदा यदा हि हे तात ! वसुधावासिनो नराः।
धर्मस्य शाश्वतं रूपमिमं मत्वा दधुः स्वयम् ।।७०।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तदाऽभूच्च पृथिव्यां सा कृतवातावृतिः शुभाः ।
अनास्थोदेति धर्मस्य विकृता मान्यता ग्रहैः ।। ७१ ।।
विवेक शीलतादूरदर्शितायाः अभावतः ।
नियामक्याश्च सत्ताया अनुशासनहेलया ।। ७२ ।।
धर्मस्य धारणयास्तु फलितार्थो महत्त्वगः ।
मानवे देवतात्वस्य धरण्यां स्वर्गसुस्पृशाम् ।। ७३ ।।
स्थितीनामवतारे च द्रष्टुं शक्योऽञ्जसा नरैः ।
विकटास्वद्य जातासु परिस्थितिषु हे मुने ।। ७४ ।।
धर्मस्य सार्वभौमं तद्यथार्थं च चिरन्तनम् ।
रूपं स्थापयितुं नूनं मिदमावश्यकं मतम् ।। ७५ ।।
धर्मे वृद्धिंगते तस्य समीपे संस्थिता बलात् ।
अयोग्यताऽऽवृत्तिर्भग्ना स्यादेव स्वयमेव सा ।। ७६ ।।

टीका- हे तात ! जब-जब इस विश्व वसुधा पर रहने वाले धर्म के इस शाश्वत स्वरूप को मानकर उसे धारण करते रहे हैं, इस पृथ्वी पर सतयुगी वातावरण रहा है। अनास्था तो धर्म के विकृत स्वरूप, मान्यताओं के प्रति दुराग्रह, दूरदर्शी विवेकशीलता का अभाव एवं नियामक सत्ता के अनुशासन की अवज्ञा से ही पनपती है। धर्म-धारणा का महत्वपूर्ण फलितार्थ मानव में देवत्व एवं धरती पर स्वर्ग जैसी परिस्थितियों के अवतरण के रूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। आज की विकट परिस्थितियों में धर्म के इस यथार्थ, चिरन्तन एवं सार्वभौम रूप को प्रतिष्ठित करने की ही सबसे बड़ी आवश्यकता है। धर्म बढ़ेगा तो, उसके इर्द-गिर्द लिपटा अनुपयुक्तताओं का आवरण टूटेगा ही।। ७०-७६ ।।

धर्म के सार्वभौम स्वरूप को पुनः प्रतिष्ठापित किये जाने की आवश्यकता पर बल देते हुये ऋषि याज्ञवल्क्य यहाँ कहते हैं कि धर्म की अभिवृद्धि होने पर ही धर्म का-अनुपयुक्तता का निवारण सम्भव हो सकेगा।

समता, एकता, सहिष्णुता, उदारता, सहृदयता, सार्वभौम धर्म की शाश्वत विशेषतायें हैं, जो हर काल में एक समान रहती हैं। जब तक इनका परिपालन-धर्माचरण का अनुसरण यहाँ होता रहा है तब तक श्रुति के कथानानुसार -**"ध्रुवां भूमिं पृथ्वीं धर्मणाधृताम्"** अर्थात् यह ध्रुवभूमि, यह पृथ्वी धर्म द्वारा धारण की गई है, यह सत्य साबित होता रहा है और यह पृथ्वी प्रत्यक्ष स्वर्ग की उपस्थिति का एहसास कराती रही, किन्तु इससे विमुख होकर मनुष्य ने न केवल अनास्था का वातावरण विनिर्मित किया वरन् स्वयं को असुर तुल्य बना लिया और पृथ्वी पर भी भार बन बैठा। यह भार धर्म की अभिवृद्धि होने पर ही कम हो सकता है। सार्वभौम धर्म के अवलम्बन की आज महती आवश्यकता है वही मनुष्य को सुख प्रदान कर सकता है।

धर्मोब्रह्मण उक्तं वै स्वरूपं सक्रियं बुधैः ।
धर्मज्ञो यः स एवोक्तो ब्रह्मज्ञो वेदपारगैः ।। ७७ ।।
ऋषयस्तु महात्मानो धर्ममर्माधिगत्य ते ।
धर्मानुचरणादापुर्ब्राह्मं पदमिहैव ते ।। ७८ ।।
जीवन्मुक्तस्थितावेते स्वयं तरितुमाप्नुवन् ।
अन्यास्तारयितुं शक्तिं धर्मस्याचरणादिह ।। ७९ ।।
एताद्दृशा यते युश्चेदृष्यात्मानोऽधुनाऽपि तु ।।
एकां संस्कृतिमत्रैक धर्मं स्थापयितुं पुनः ।। ८० ।।
भवितैवाऽचिरान्नूनं युगस्य परिवर्तनम् ।
सम्पूर्णां वसुधामेककुटुम्बे प्रेमपूरिते ।। ८१ ।।

टीका- धर्म को ब्रह्म का सक्रिय स्वरूप कहा गया है। जो धर्म विद् है, वही ब्रह्मविद् है- ऐसा वेदवेत्ताओं का मत है। सभी ऋषिगणों, महामानवों ने धर्म के मर्म को धारण कर, उस पर आचरण करके इस जीवन में ही ब्राह्मी पद प्राप्त किया है। जीवन्मुक्त स्थिति में वे स्वयं तरने एवं दूसरों को तारने की सामर्थ्य धर्माचरण से ही प्राप्त कर सके हैं। ऐसी ही ऋषि आत्माएँ एक संस्कृति एवं एक ही धर्म की स्थापना हेतु पुनः प्रयासरत हों, तो युग परिवर्तन अवश्यमेव होकर रहेगा।। ७७-८१ ।।

विराट् परब्रह्म निराकार है,उसका सक्रिय स्वरूप धर्म के रूप में धर्मपरायणों के जीवन में देखा जाता है। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं **"सुगां ऋतुस्य पन्थाः"** अर्थात् धर्म का मार्ग धारण करने योग्य है, यह सुखमय है। इसी को अपनाने से-आचरण में लाने से संसार में विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के ऋषि, मनीषी, अवतारी महामानवों ने वह सामर्थ्य-क्षमता अर्जित की थी जिसके सहारे वे जीवन संग्राम में कर्म का गांडीव उठा सके, स्वयं तरे एवं असंख्यों को अपनी नाव पर बिठा कर भवसागर से पार लगाया। समय की माँग है कि धर्म मात्र पूजा उपचार या प्रचलनों तक सीमित न रहकर न केवल व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता, प्रखरता का सम्बर्धन करे, वरन् चिन्तन के हर क्षेत्र पर अपनी छाप छोड़े -उसे अवांछनीयता से विरत करके सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिये मोड़े-मरोड़े। यह अनिवार्य हो गया है कि धार्मिकता आज न केवल बिखराव को निरस्त करे, वरन् धर्म के सार्वभौम स्वरूप को भी प्रतिष्ठापित करे। इसके लिये मूर्धन्यों को आगे आना होगा। मानवी गरिमा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को अक्षुण्ण और प्रखर बनाये रखने में युग मनीषा ही पावस की भूमिका निभाती है। उसे ही सर्व धर्म समभाव के लिये कुछ ऐसा ही सोचना तथा बौद्धिक एवं रचनात्मक ढाँचा खड़ा करना है जो युग परिवर्तन जैसे महान प्रयोजन की पूर्ति भली प्रकार कर सकने में समर्थ हो सके।

ग्रथितुं तात ! धर्मं च सार्वभौम तु वर्गशः ।
विभक्तेभ्यः प्रदातुं त ऋष्यात्मानोऽभवन्निह ।। ८२ ।।
धरण्यां सक्रियाः शान्ताश्चिन्तनैकरतास्तु ये ।
भवन्तः सन्तु चाश्वस्ता देवसंस्कृतिपक्षगाः ।। ८३ ।।
नवसर्गस्य स्वप्नं तं साकारं कर्तुमुद्यताः ।
स्रष्टुरेवेच्छया तस्यां यतते दिशि प्रत्यहम् ।। ८४ ।।
सन्देशोऽयं तु सर्वेभ्यो दत्त्वा कार्याश्च ते पुनः ।
अभावाज्ञान संग्रस्ताः सन्तोषामृततृप्तिगाः ।। ८५ ।।

टीका- हे तात ! सारी वसुधा को एक परिवार के रूप में गूँथने एवं सार्वभौम धर्म की विभिन्न सम्प्रदायों, समुदाय-वर्गों को जानकारी कराने हेतु शान्त एवं निरन्तर चिन्तन में संलग्न ऋषि आत्माएँ धरती पर सक्रिय हो चुकी हैं। आप सब आश्वस्त हों कि देव संस्कृति के पक्षधर नवसृजन का स्वप्न साकार करने हेतु स्रष्टा की इच्छानुसार वे उस दिशा में प्रतिदिन प्रयत्नशील हैं। आप सब यह सन्देश जन-जन तक पहुँचा कर अभाव-अज्ञान से ग्रसित जन समुदाय को सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त करावें।। ८२-८५ ।।

ऋषि याज्ञवल्क्य यहाँ सभी को आश्वस्त करते हुये स्पष्ट करते हैं कि युगपरिवर्तन की दिशा में-संसार को सार्वभौम धर्म के एक सूत्र में बाँधने के लिये ऋषि आत्माओं ने धरती पर सक्रिय होकर विचार परिवर्तन के प्रचण्ड प्रवाह के रूप में अपने कार्य को द्रुतगामी बना दिया है। युगपरिवर्तन एक अवश्यम्भावी प्रक्रिया है जो होकर रहेगा तथा एकता, समता तथा शुचिता के वातावरण से यह धरती फिर से स्वर्गोपम बनेगी।

जिज्ञासा शान्तिरेतै सा चोपयोगतया मता ।
व्यवहारयुता चाऽपि तत्त्वज्ञानयुतं समे ।। ८६ ।।
समागमेन सर्वेऽद्य जना रोमाञ्चिता भृशम् ।
व्यवहारानुकूलस्य तस्यैवाऽध्यात्मनः समे ।। ८७ ।।
व्याख्याया अनुरुपं तु धर्मस्येदं सनातनम् ।
रूपं पुष्ट प्रमाणं तु व्याख्यातं हृदयंगमम् ।। ८८ ।।
विधायज्ञानसत्रे च निजायास्तु उपस्थितेः ।
कारणात् सार्थकं सर्वं जीवनं मेनिरे समे ।। ८९ ।।
सन्ध्यावन्दनकालः स समुपस्थित इत्यतः ।
सत्राध्यक्षं प्रणम्येमे सस्नेहं प्रतिनिवृताः ।। ९० ।।

टीका- जिज्ञासा के निराकरण को सभी ने बहुत उपयुक्त एवं व्यावहारिक माना। आज के समागम से सभी रोमांचित थे। व्यावहारिक अध्यात्मवाद की व्याख्या के अन्तर्गत धर्म के सनातन रूप की सप्रमाण विवेचना को हृदयंगम कर सभी ज्ञान सत्र में अपनी उपस्थिति से जीवन सार्थक मानने लगे। सन्ध्यावन्दन का समय हो चुका था। अतः सभी सत्राध्यक्ष को अभिवादन कर परस्पर स्नेह-भाव से मिलते हुये विदा हुये।। ८६-९० ।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः
महर्षि याज्ञवल्क्य प्रतिपादिते "सर्वधर्म समभाव" इति प्रकरणो नाम
।। षष्ठोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

उपासना-साधना-आराधना प्रकरण

यथाक्रमं समारब्धं ज्ञान सत्रं समागताः ।
जिज्ञासवो यथाकालमुपविष्टाः सुशासनाः ।। १।।
सत्राध्यक्षो याज्ञवल्क्य आगतांस्तु मनीषिणः ।
विज्ञाः पप्रच्छ सत्रस्य समाप्तिः साद्य विद्यते ।। २।।
शंकाः शेषास्तु याः सन्ति निःसंकोचं ब्रुवन्तु ताः।
प्रसंगानां समाधाने संशयोच्छेद दृष्यते ।। ३।।
अन्त्यनिष्कर्षतां याति चित्तं विश्वासपूर्वकम् ।
ईदृश्यां चित्तवृतौ हि दृढः शक्य उपक्रमः ।। ४।।
निर्णयं व्यवहारे च नेतुं शक्यं क्रियात्मताम् ।
अस्तु तत्पृच्छ्यतांयद्वः पृच्छ्यं प्रकटितुं भवेत् ।।५।।

टीका- यथाक्रम ज्ञान सत्र आरम्भ हुआ। जिज्ञासुगण नियत समय पर पधारे और अनुशासनपूर्वक अपने-अपने स्थानों पर बैठे। सत्राध्यक्ष याज्ञवल्क्य जी ने उपस्थित मनीषियों से पूछा- हे विज्ञजनो ! आज सत्रावसान है। जो शंका-आशंकाएँ शेष रही हों, उन्हें निःसंकोच प्रकट करना चाहिये। प्रसंगों का सही समाधान होने पर ही संशयों का निराकरण होता है और चित्त विश्वासपूर्वक अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचता है। ऐसी मनःस्थिति में ही कुछ ठोस कदम उठाना-निर्णय को व्यवहार में उतारना संभव होता है। अस्तु जो पूछना हो, उसे प्रकट करना चाहिये।। १-५ ।।

जिज्ञासूनामग्रणीः स उदगाद् गालवो मुनिः ।
सहचारिमनस्थाश्च जिज्ञासा आह प्रस्तुवन् ।। ६ ।।

गालव उवाच-

ऋतम्भरा तु या प्रज्ञा तस्या गौरवमुच्चगम् ।
आत्मविद्यापथः पान्था जानन्त्यनुभवन्ति च ।। ७।।
प्रेरणास्तस्य नैवैते व्यवहर्त्तुं स्वजीवने ।
अर्हन्त्यतोऽनुमानं यत्तत्त्वज्ञानस्य हे मुने ।। ८।।
अभ्यासक्रम एतेषां विदितो न स तत्ततः ।
विघ्नापत्त्या न तज्ज्ञानं कर्मत्वमधिगच्छति ।। ९।।
हेतुं तं ज्ञातुमिच्छामो वयं सर्वेऽवरोधकम् ।
मार्गं दर्शय तं येन महाप्रज्ञा तु या मता ।। १०।।
तस्या जीवनचर्यायामवधारण संभवः ।
भवेच्छ्रुत्वा प्रसन्नोऽभूत्सत्राध्यक्ष उवाच च ।। ११।।

टीका- जिज्ञासुओं में अग्रणी गालव मुनि उठकर खड़े हुये और साथियों में से अधिकांश के मन में उठने वाली जिज्ञासुओं का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुये बोले-हे देव! ऋतम्भरा प्रज्ञा की सर्वोच्च गरिमा को हमारी ही तरह अन्य अनेक आत्म विद्या के पथिक जानते और अनुभव करते हैं, फिर भी उसकी प्रेरणाओं को जीवन में उतारते नहीं बन पड़ता। लगता है उस तत्वज्ञान का अभ्यास क्रम विदित न होने से ही ऐसी अड़चन आती है कि ज्ञान की कर्म में परिणति हो नहीं पाती। इस अवरोध के कारण को हम सब जानना चाहते हैं, साथ ही उस मार्गदर्शन के भी इच्छुक हैं, जिससे महाप्रज्ञा का जीवन में अवधारण संभव हो सके। सत्राध्यक्ष इस जिज्ञासा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और बोले-।। ६-११।।

याज्ञवल्क्य उवाच-

ज्ञानं परिणमेच्चेत्तरत्कर्मणीति मनीषिणः ।
तस्य सार्थकता प्रोक्ता जगत्स्वर्गकरं च तत् ।। १२।।
ब्रह्मविद्या रहो ज्ञानमत्यन्तः पौष्टिको मतः ।
आध्यात्मिकःस आहारस्तपस्विश्रम पाच्यकः ।। १३।।
विदितं यच्च विश्वस्तं तत्र गन्तुं मनस्विनः ।
ससाहसं यतन्तेऽन्ते सफलाश्च भवन्ति ते ।। १४।।

टीका- याज्ञवल्क्य बोले-ज्ञान को कर्म में परिणत करने में ही उसकी सार्थकता है और इससे संसार स्वर्ग बन सकता है। ब्रह्मविद्या का तत्वज्ञान अत्यन्त पौष्टिक आध्यात्मिक आहार है, उसे पचाने के लिये तपस्वियों जैसी साधना करनी पड़ती है। जो जाना गया है, जिस पर विश्वास किया गया है, मनस्वी उस पर चलने का भी साहस पूर्वक प्रयत्न करते हैं और इसमें सफल होते हैं।। १२-१४।।

तत्वज्ञानियों ने ज्ञान की उपमा सूर्य से दी है। परन्तु इस उपमा की ठीक स्थिति तब बनती है जब वह आचरण में उतरे अर्थात् ज्ञानवान्-विवेकवान में न केवल आत्म-बोध का उदय हो वरन् ऐसी प्रखरता और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊर्जा भी उत्पन्न हो जिसके सहारे वह स्वयं का आत्मकल्याण तो करे ही, अज्ञान के भटकाव के दलदल में फँसे अन्य असंख्यों को भी उबारने में-प्रकाश देने में सक्षम हो सके। यही ब्रह्म विद्या का तत्वदर्शन है। ज्ञान-वान होने के दो लक्षण बताये गये हैं-एक आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना और दूसरे विश्वबन्धुत्व की अनुभूति। हँसती-हँसाती जिन्दगी जीना और मिलबाट कर खाना, अपने सुखों को दूसरे के निमित्त बाट देना और दूसरों के दुखों में हिस्सा बटा लेना-यही वह लक्षण है जिसे देखकर यह समझा जा सकता है कि ज्ञान ने कर्म में-मान्यता ने प्रयास में परिवर्तित होने का साहस भरा कदम उठाया। इसी की परिणति धरती को स्वर्ग बनाने के रूप में परिलक्षित होती है।

आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान इसी का नाम है। इसे आत्मसात करने के लिये व्यक्तित्व में से अनगढ़ तत्वों को निकाल बाहर करना और उसके स्थान पर प्रकाश को प्रतिष्ठापित करना होता है। यही वह साधना है जिसे अपनाकर कोई भी मनस्वी व्यक्ति अपने प्रचण्ड संकल्पशक्ति-साहस और धैर्य के बलबूते अपने को, अपने वातावरण को, अपने प्रभाव क्षेत्र को, यहाँ तक कि सारे विश्व को बदल सकने में समर्थ हो सकता है।

जिज्ञासवोऽस्ति ब्रह्माण्ड मोतं प्रोतं त्रिभिस्त्विदम् ।
जीवेश्वरप्रकृत्याख्यैस्तत्वैरिति मतास्थितिः ।।१५।।
शक्तयस्तिस्रईशस्य ब्रह्मा विष्णुस्तथा च सः ।
रुद्रः सृष्टेः स्थितेः कर्त्र्यः परिवर्तनकस्य च ।।१६।।
त्रिभिश्चावरणैर्मर्त्य आवृतो ज्ञायतां त्विदम् ।
स्थूलेन चापि सूक्ष्मेण कारणेन च निश्चितम् ।।१७।।
लक्ष्यत्रयं च लब्धेव्यं सच्चिदानन्द संज्ञकम् ।
तथ्य त्रयं च द्रष्टव्यं सत्यंतत्सुन्दरं शिवम् ।।१८।।
त्रयो लोकास्तथा तिस्रो गतय सा मनःस्थितिः ।
त्रिधा परिस्थितिश्चापि त्रिधैव च मनीषिता ।।१९।।
गुणकर्मस्वभावाश्च त्रिप्रकारा त्रिधा च या ।
इयं विधि व्यवस्थैव त्रिपदा कथ्यते बुधैः ।।२०।।
इयमेवाद्यशक्ति सा गायत्री तिस्र आदृताः ।
धारा यस्या बुधैर्निष्ठा प्रज्ञाश्रद्धाभिधानतः ।।२१।।
इमा ये त्वधिगच्छन्ति तेषां हस्तगतं स्वयम् ।
उपलब्धित्रयं तृप्तिःतुष्टि शान्ति सदामृतम् ।।२२।।
सद्गतिश्चेयमेवास्ति स्वर्गसंवेदना तथा ।
जीवन्मुक्तिश्च सर्वस्वं जीवनस्य समीहितम् ।।२३।।
विज्ञास्त्रिधा ब्रह्मविद्या समग्रे जीवने व्रजेत् ।
व्यवहारांगतां व्यक्तित्वांगतां लाभ उत्तमः ।।२४।।

टीका- हे जिज्ञासुओ ! यह विश्वब्रह्माण्ड--ईश्वर, जीव, प्रकृति, के तीन तत्वों से ओत प्रोत है। परमात्मा की तीन शक्तियाँ- ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के रूप में सृजन, परिपोषण और परिवर्तन की व्यवस्था बनाती हैं। मनुष्य के तीन आवरण हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण। उपलब्ध करने योग्य तीन लक्ष्य हैं- सत्-चित्त-आनन्द। इस सृष्टि में दर्शनीय तीन तथ्य हैं-सत्यं, शिवम्, सुन्दरम्। लोक तीन हैं, गति भी तीन और मनः स्थिति-परिस्थिति भी तीन-तीन प्रकार की ही हैं। तीन प्रकार के ही गुण-कर्म-स्वभाव पाये जाते हैं। इस त्रिधा विधि व्यवस्था को त्रिपदा कहते हैं। यही आद्यशक्ति गायत्री है। इसकी तीन धाराऐं हैं- निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा। इन्हें अपनाने वाले तीन उपलब्धियाँ हस्तगत करते हैं- तृप्ति, तुष्टि और शान्ति, जो अमृत स्वरूप हैं। सद्गति, स्वर्ग-संवेदना और जीवनमुक्ती भी यही हैं, जो जीवन के सर्वस्व माने जाते हैं। हे विज्ञजनो। इस त्रिधा ब्रह्मविद्या को समग्र जीवन में उतारने-व्यक्तित्व का अंग बनाने से ही समुचित लाभ की प्राप्ति होती है।। १५-२४।।

यहाँ ऋषि स्पष्ट करते हैं कि जड़-एवं चेतन जगत में जो कुछ भी हलचल है उन सबका सम्बन्ध गायत्री महाशक्ति से है। गायत्री को त्रिपदा कहा गया है। त्रिपदा अर्थात् तीन पद-चरण वाली तीन शरीर, तीन लोक, तीन गुण, तीन साधन, तीन अवस्था,त्रैत ब्रह्म, तीन देव, तीन शक्ति, तीन काल के रूप में इस त्रिपदाशक्ति का विस्तार माना और विवेचन किया जाता है। अमृत, पारस और कल्पवृक्ष के रूप में इसके तीन प्रतिफल, तीन अनुग्रह, तीन वरदान तत्वदर्शियों ने बताये हैं। भौतिक सम्पत्तियाँ और आत्मिक विभूतियाँ इन तीनों के ही अन्तर्गत आ जाती हैं। आयु, प्राण, प्रज्ञा, पशु, कीर्ति, द्रव्य और ब्रह्मवर्चस के तृप्ति, तुष्टि, शान्ति के,सद्गति, स्वर्ग एवं मुक्ति के सभी प्रतिफल इस अमृत, पारस और कल्पवृक्ष की परिधि में आ जाते हैं। देवी भागवत में **"परब्रह्म स्वरूपा च निर्वाण पद दायिनी"** कहते हुये त्रिपदा गायत्री को ब्रह्मतेजशक्ति की अधिष्ठात्री देवी बताया गया है। यही परब्रह्म का प्रकट स्वरूप है जो साधक को ब्रह्म निर्वाण पद तक सुविधा पूर्वक पहुँचाती है। समग्र उपासना करने वाले को वह अमृत-पद प्रदान करती है। गायत्री माता की सत्ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण शरीर में श्रद्धा,सूक्ष्म शरीर में प्रज्ञा और स्थूल शरीर में निष्ठा बनकर प्रकट होती है। निष्ठा अर्थात् संकल्प, धैर्य, साहस, पराक्रम, तप, कष्ट सहन। यही हैं वे आधार जिनका अवलम्बन लेने पर साधना का समग्र स्वरूप बनता है और उसका प्रतिफल मिलता है।

पुरुषार्थत्रयं कार्यं ब्रह्मोपासनमप्यहो ।
साधना जीवनस्यास्मै लोकाराधनमुत्तमम् ।। २५ ।।
एकदा त्रीणि ग्राह्याणि तदन्नपानीय वायुजा: ।
आकांक्षा यदि पूर्णा: स्युर्जीवन निर्वहेद्यथा ।। २६ ।।
ब्रह्मोपासनमासाद्यं सामीप्य श्रमत: सदा ।
अग्नीन्धनमिवैतच्च शलभोज्जवलदीपवत् ।। २७ ।।
पय: पानीयवद् विन्दुसिन्धुवच्चैकतां गत: ।
द्वैतंत्यक्त्वा न्ततोऽद्वैतंगृह्णात्यत्र नरःक्रमात।। २८ ।।
शरणागतिरेषैव समर्पण विसर्जने ।
कथिते, सौरभं यान्ति चन्दनात्ते तृणादय: ।। २९ ।।
स्वातिविन्दून्निगीर्येयं शुक्तिरुद्गिरतिस्वत: ।
मौक्तिकानिमहामूल्यान्युज्जवलानि वृहन्त्यपि ।। ३० ।।
वल्लरी वृक्षमाश्रित्य वृक्षस्योच्छ्रयतां व्रजेत ।
दम्पतिस्तरतां गच्छेदुभयो: स्तर एष तु ।। ३१ ।।
उपासनमतो व्यक्तमात्मिक्या: प्रगतेर्मखम् ।
आधारभूतमत्यर्थमवलम्बनमत्र तु ।। ३२ ।।
सामीप्याद् ब्रह्मणो नूनमात्मनीह परात्मन: ।
जायते महत: सेयं क्षुद्रे परिणति: शुभा ।। ३३ ।।
लौहपारदयोर्योगात्स्वर्णोत्पत्तिरिवस्थिति: ।
सामीप्यस्याथ सारूप्यस्य सालोक्यस्यश्रेयस: ।। ३४ ।।
सायुज्यस्येयमेवास्ति परिणामो बुधैर्मत: ।
लक्ष्यमेतज्जीवनस्योपासनालभ्यतां गतम् ।। ३५ ।।

टीका- हे विज्ञजनो ! इसके लिये तीन पुरुषार्थ करने होते हैं। प्रथम-ब्रह्म उपासना, द्वितीय-जीवन साधना, तृतीय-लोक आराधना। तीनों को साथ उसी प्रकार अपनाना पड़ता है, जैसे अन्न, जल और वायु की तीन आवश्यकताएँ पूर्ण करने पर जीवन निर्वाह संभव होता है। परब्रह्म की उपासना उसकी अधिकाधिक समीपता का प्रयत्न करने से बन पड़ती है। आग-ईंधन की तरह, बिन्दु-सिन्धु की तरह निकट आया और अन्ततः द्वैत का परित्याग कर एकत्व अद्वैत अपनाया जाता है। समर्पण, विसर्जन और शरणागति यही है। चन्दन वृक्ष के निकट उगे झाड़-झंखाड़ सुगन्धित हो जाते हैं। स्वाति बूँदों को उदरस्थ करने पर सीप मूल्यवान उज्ज्वल बड़ी-बड़ी मोती उगलती है। वृक्ष से लिपट कर बेल उतनी ही ऊँची उठ जाती है। पति-पत्नी की तरह दोनों का स्तर एक हो जाता है। इसलिये उपासना को आत्मिक प्रगति का प्रथम और आधारभूत आवश्यक अवलम्बन माना गया है। ब्रह्म की समीपता से आत्मा में परमात्मा की-क्षुद्र में महान की शुभ परिणिति होती है। पारस और लोहे की समीपता से स्वर्ण बनने जैसी स्थिति उपासना करने वाले की बनती है। सामीप्य, सारुप्य, सालोक्य, सायुज्य मुक्ति की चरम परिणिति यही है। जीवन लक्ष्य यही है, जो उपासना अपनाने से प्राप्त होता है।। २५-३५ ।।

यहाँ ऋषि स्पष्ट करते हैं कि आत्मिक प्रगति के लिये उपासना, साधना और आराधना के त्रिविध सोपानों पर चढ़ना होता है। यह तीनों कोई क्रिया काण्ड नहीं है वरन् चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में होने वाले उच्च-स्तरीय परिवर्तन हैं। कारण शरीर-अन्तःकरण की भावश्रद्धा उभारने के लिये उपासना की जाती है। इसे आत्मिक प्रगति का प्रथम और आधारभूत अवलम्बन माना गया है।

आत्मा की श्रेष्ठता परमात्मा की उपासना से ही प्राप्त होती है। उपासना का अर्थ है-समीप बैठना, समीप्य अथवा उपसंग। जिसके समीप रहा जायगा, उसकी विशेषता अपने में आ जाना स्वाभाविक है। गर्म लोहे के सम्पर्क से ठण्डा लोहा गरम हो जाता है। हिम के सम्पर्क में जाने वाली वस्तु ठण्डी हो जाती है। चन्दन वृक्ष के समीप उगे वृक्ष उसके सम्पर्क से सुगन्धित हो जाते हैं और प्रकाश के संग में आने वाली वस्तु प्रकाशित हो जाती है। ईंधन की हस्ती दो कौड़ी की होती है, पर जब वह अग्नि के साथ जुड़ जाता है तो उसमें सारे गुण अग्नि के आ जाते हैं। गंदा नाला गंगा में मिलकर पवित्र और महान बनता, पारस के सम्पर्क से लोहा सोना बनता है तथा बूँद समुद्र में मिलकर समुद्र बन जाती है। पानी दूध में मिलकर उसी भाव बिकता है। यही है उपासना का तत्वदर्शन। परमात्मा की उपासना करने से उसकी श्रेष्ठताओं का उपासक में आत्मान्तरित होना एक अटल सत्य है। इसके लिये उच्चस्तरीय आस्थाओं के साथ एकात्म भाव की-अद्वैत की स्थापना करने के लिये शरणागति, समर्पण, विसर्जन, विलय की मनोभूमि बनानी पड़ती है। वृक्ष के साथ बेल लिपटने और उसके साथ उतनी ही ऊँचाई तक जा पहुँचने की-पतंग और कठपुतली की तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने को तथा भगवान को डोरी पकड़ने वाला और अपने इशारे पर नचाने वाले की मान्यता बनानी पड़ती है। श्रद्धा भावना की गहनता के साथ यही मान्यता अन्त में अनुभूति में बदल जाती है और इसकी परिणिति छुद्र का महान में, नर का नारायण के रूप में होती है। यही मानव जीवन का लक्ष्य है। स्वर्ग मुक्ति यही है।

बहुन्युपासनायास्तु विद्यानानि महीतले ।
क्रियाभिर्दैनिकै: कृत्यैरत्र साहाय्यमाप्यते ।। ३६ ।।
जपध्यानार्चनायोगलया दीननुगच्छति ।
सामीप्यस्यैकतायाश्चाभ्यासइत्यस्ति संस्थिति: ।। ३७ ।।
एभि: कृत्यैर्यथा यस्य भावसंवदेना घना ।
भवेत्सत्वनुपातेन स्वेनाभीष्टं समाश्रयेत् ।। ३८ ।।
पूजाचिह्नार्चनैर्भावरहितैराह्निकं भवेत् ।
प्रभो: सा सन्निधिश्चैक्यं भक्तौ भक्तैरपेक्ष्यते ।। ३९ ।।

टीका- हे मुनिवर ! उपासना के अनेकानेक विधि-विधान हैं। *दैनिक क्रिया-कृत्यों से इसमें सहायता मिलती है। जप, ध्यान, पूजा, अर्चा, लय योग इत्यादि के अनेकानेक उपचारों के पीछे समीपता और एकात्मकता का अभ्यास किया जाता है। इन कृत्यों के साथ जितनी गहरी भाव संवेदना होगी, वे उसी अनुपात से अभीष्ट को प्राप्त कराने में समर्थ होंगे। भाव-रहित पूजा कृत्यों की चिन्ह पूजा से तो मात्र नित्य-नियम ही किसी प्रकार सधता है। समग्र उपासना में भक्त को भगवान की समीपता और एकता का अनुभव अभ्यास करना पड़ता है।। ३६-३९ ।।*

यहाँ ऋषि स्पष्ट करते हैं कि उपासना एवं साधनाएँ भावनात्मक पृष्ठभूमि पर ही उगती और फलती फूलती हैं। भावना से युक्त अन्त:करण में ही ईश्वर का प्रकाश अवतरित होता है। पूजा, अर्चा, जप, ध्यान, योग, लय आदि सभी उपचारों का एक तत्वदर्शन है, उस क्रिया के माध्यम से कुछ सोचना और सीखना पड़ता है और तदनुरूप ढलने के लिये इष्टदेव के प्रति आत्मसमर्पण की-एकत्व की भाव-श्रद्धा उभारनी पड़ती है। इष्ट और उपासक का-भक्त और भगवान का परस्पर सम्बन्ध भावनात्मक आदान-प्रदान का है। परमात्मा से गहन भक्ति भावना द्वारा ही तादात्म्य स्थापित होता है क्योंकि वह परमात्मा भाव श्रद्धा-प्रगाढ़ निष्ठा-दृढ़ विश्वास का समुच्चय है। कहा भी गया है कि भगवान भाव के भूखे होते हैं। "देवान् भावता नेक" अर्थात् देवता भावनाओं पर निर्भर है। परमात्मा भावनाओं में निवास करता है और उसी के आधार पर अन्त:करण में दर्शन देता है। जिन्हें केवल क्रिया-कृत्य ही सब कुछ प्रतीत होते हैं, वे मृगतृष्णा में भटकते हैं। श्रद्धा भाव रहित उपासना तो ढोल के समान पोल व आडम्बर मात्र है। उसे प्रदर्शन मात्र कहा जायगा। ऐसी पंगु उपासना में कोई भी सामर्थ्य नहीं होती। उपासना को सामर्थ्य प्रदान करने के लिये श्रद्धा-अनन्त आत्मीयता, और अटल विश्वास-भगवत निर्देश, अनुशासन का निष्ठापूर्वक परिपालन अपरिहार्य माना गया है। परमात्मा के साथ उपासक जितना भाव और कर्म से एकीभूत होता जाता है, उसी अनुपात में उसका प्रभाव-प्रतिफल सामने आता है।

द्वितीय: पाद उक्तश्च साधना जीवनस्य सा ।
असंख्योनिषु भ्रान्त: कुसंस्कारयुतो नर: ।। ४० ।।
पृथक् कार्या इमे यत्नाद् भूमेर्धातव उद्गता: ।
भवन्ति मलिना बह्वौ तेषां शुद्धिरपेक्ष्यते ।। ४१ ।।
प्राकृतं जीवनं तुल्यं पशुभिस्तदसंस्कृतम् ।
कदाचिच्च पिशाचानामिवोदेति च भावना ।। ४२ ।।
असंस्कृतं स्तरं व्यक्तुमाधातुं संस्कृतं तथा ।
प्रयत्ना ये क्रियन्ते ते साधना शब्दगोचरा: ।। ४३ ।।
सर्पा: सिंहाश्चभल्लूका वानराश्चाप्यसंस्कृता: ।
साधनाभिर्नराणां ते भवन्त्येवोपयोगिन: ।। ४४ ।।
स्वयं श्रेयोऽधिगच्छन्ति सम्पन्नं पालकं तथा ।
कुर्वन्त्यपि धरामर्त्यैर्दन्तुरादौ समोर्वरा ।। ४५ ।।
शोभनापि कृता चैष प्रयास: पारिवारके ।
परिष्कारेऽपि कर्तव्यस्ततो जन्म फलं भवेत् ।। ४६ ।।

***टीका-** दूसरा चरण है-जीवन साधना। असंख्य योनियों में परिभ्रमण करते-करते जीव मनुष्य योनि में पहुँचने पर कुसंस्कारों से लदा रहता है। इन्हें प्रयत्न पूर्वक पृथक करना पड़ता है। भूमि से धातुएँ कच्चे रूप में ही निकलती हैं, अग्नि संस्कार से उन्हें शुद्ध किया जाता है। प्राकृत जीवन पशुतुल्य अनगढ़ होता है। उसमें कभी-कभी पिशाचों जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ उभरती रहती हैं। इस अनगढ़ स्तर को निरस्त करने और उनके स्थान पर सुसंस्कारों को जगाने के लिये जो प्रयत्न पुरुषार्थ करने पड़ते हैं, उन्हें साधना कहते हैं। साधने पर सर्प, सिंह, रीछ, वानर जैसे अनगढ़ प्राणी उपयोगी बनते हैं स्वयं श्रेय पाते और पालने वाले को सुसम्पन्न बनाते हैं। यह धरातल आरम्भ में ऊबड़-खाबड़ था। मनुष्य ने ही*

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे समतल, सुन्दर, ऊर्वर बनाया। यही प्रयास जीवन-परिष्कार के लिये भी करना पड़ता है।। ४०-४६।।

पौराणिक मान्यता है कि जीव चौरासी लाख योनियों के चक्कर में कोल्हू के बैल की तरह घूमता और अपने कर्मों का फल उन तुच्छ प्राणियों के शरीर में रहकर प्राप्त करता है। निकृष्ट योनियों में मात्र पेट और प्रजनन-यही दो लक्ष्य रहते हैं, इसी पूर्ति में निम्नस्तरीय प्राणियों की जीवन सम्पदा निमग्न रहती है। वे अपने को शरीर ही मानते हैं और उसी की परिधि में सोचते और उसी की सुविधा के लिये विभिन्न कर्म करते हैं। लाखों योनियों में भ्रमण करते समय जो चिन्तन और कर्म अभ्यास में आते हैं, मनुष्य जन्म के बाद भी वही मन:स्थिति पर छाये रहते हैं। जन्म-जन्मान्तरों के पाशविक-पैशाचिक कुसंस्कारों की मोटी परत उस पर जमा होती है। उसे उतारने के लिये जिस खराद का उपयोग किया जाता है-उसे साधना कहते हैं। पशुता को-पिशाच वृत्ति को परिष्कृत करके उसे मनुष्यता के-देवत्व के रूप में विकसित करना, अनगढ़ पत्थर को कलात्मक प्रतिमा के रूप में गढ़ देने की प्रवीणता में पारंगत होने का नाम ही साधना है। साधना का मूल प्रयोजन है- कुसंस्कारों का निष्कासन एवं उनके स्थान पर सुसंस्कारों का स्थापन-अभिवर्धन। सूक्ष्म-शरीर में गुण, कर्म, स्वभाव की चिन्तन परक उत्कृष्टता के अभिवर्धन के लिये साधना की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। सुसंस्कारों का अभिवर्धन ही प्रत्यक्षत: दैवी वरदान है जिसके मूल्य पर सब कुछ खरीदा जा सकता है।

अन्तरेवोद्गता याश्च बाह्या वा दुष्प्रवृत्तय:।
ताभ्य:सतर्क:स्यात्तासां निरासो जीवसाधना।। ४७।।
विभक्ता दिनचर्या च निर्धार्या चास्य हेतवे ।
क्षणे क्षणे प्रकर्त्तव्य औचित्य ग्रहणाऽऽग्रह: ।। ४८।।
साधारण्ययुतं ग्राह्यं जीवनं श्रेष्ठचिन्तनम् ।
कर्त्तव्यं, वासनाऽहंत्वतृष्णाभी रक्षितो भवेत्।।४९।।
लोभ व्यामोहपाशाश्च खण्डनीया: स्वयं सदा।
सत्प्रयोजनसंलग्नै: साधनै र्भाव्यमत्र च ।। ५०।।
साधना जीवनस्यास्ति या स्वरूपमिदं मतम् ।
तस्या मलिनताऽऽवर्ते गते सत्यं विभाति न:।।५१।।

टीका- भीतर से उभरने वाली और बाहर से घुस पड़ने वाली दुष्प्रवृत्तियों से सतर्क रहना और उन्हें निरस्त करते रहना जीवन-साधना है। इसके लिये सन्तुलित दिनचर्या निर्धारित करनी होती है। औचित्य को ही अपनाने का आग्रह हर घड़ी जीवन्त रखना पड़ता है। सादगी से भरे जीवन व उत्कृष्ट चिन्तन की रीति-नीति अपनानी होती है। वासना, तृष्णा, अहंता के आक्रमणों से अपनी ढाल सदा सही रखनी पड़ती है। लालच और व्यामोह की हथकड़ी-बेड़ी अपने हाथों आप ही काटनी होती है। निरन्तर सत्प्रयोजनों में निरत रहने की रीति-नीति अपनाये रहने में साधक को तत्पर रहना पड़ता है। जीवन साधना का यही स्वरूप है। मलीनताओं का आवरण हटने पर सत्य का दर्शन होता एवं अनुग्रह मिलता है।। ४७-५१।।

जीवन साधना अर्थात् आदतों, मान्यताओं, आकांक्षाओं को साध लेना। साधना में अपने चिन्तन को उत्कृष्ट और कर्तृत्व को आदर्श बनाने के लिये हर घड़ी प्रयत्नशील रहने की सुनिश्चित योजना बनाकर चलना पड़ता है। परिष्कृत दृष्टिकोण एवं विवेक सम्मत कार्य पद्धति का निर्धारण करना होता है। इसमें ढील या छूट की तनिक भी गुंजाइश नहीं है। आत्मचेतना की जागृति ही साधना विज्ञान का लक्ष्य है। इसके लिये अपनी दुर्बलताओं और लौकिक आकर्षणों से अपना बचाव करने की तत्परता बरतनी पड़ती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह के आलस्य-प्रमाद के विकार ही मानवी चेतना के पतन के कारण बनते हैं। उनके प्रति सतत् जागरूक बने रहना तथा अपने को बचाये रहना पड़ता है। समय, श्रम, साधन सम्पदा, प्रभाव एवं चिन्तन का सुनियोजन इस ढंग से करना पड़ता है जिसमें अस्तव्यस्तता एवं इनके दुरुपयोग की तनिक भी गुंजायश न रहे। विवेकयुक्त दिशा निर्धारण और जागरूकता जहाँ विचारों को उच्चस्तरीय बनाते हैं वहाँ व्यवहार में उतरकर वे चरित्रनिष्ठा का स्वरूप ग्रहण करते हैं। निर्मल एवं उदात्त चरित्र ही साधक को साधनामार्ग में आगे बढ़ाता तथा विक्षोभों से रक्षा करता है। इसके लिये "सादा जीवन उच्च विचार" की रीति-नीति अपनानी पड़ती है। यही हैं वे आधार जिनका अवलम्बन लेकर कोई भी साधक प्रगति के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है।

शक्ति: साधनया शक्त्या सिद्धि: सिद्धान्त एष हि।
साधनास्ति तपश्चर्या तत्र युद्धयेत कल्मषै: ।।५२।।
मूलैराबरणैर्भूयो विक्षेपैर्हठपूर्वकम् ।
प्रकृते: संस्कृतावन्त र्विग्रहो जायते महान् ।।५३।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धैर्येण साहसेनाथ तैः संघर्षे मनोजयः ।
जायते प्रोच्यते यश्च बुधैरात्मजयो महान् ।।५४।।
आत्मानं योजयेत्तस्य जयदुन्दुभिरुद्ध्वनिः ।
दशदिक्षु भवेद् विश्व विजयी सदूहोच्यते ।।५५।।
जीवनाराधनैरेव सामान्या अपि मानवाः ।
महामानवतां यान्ति देवर्षिष्ववतारिषु ।।५६।।
जीवनं कल्पवृक्षोऽस्ति आत्मा देवो महत्तमः।
तस्य चाराधकाः सद्यो विभूतीर्यान्ति चाढ्यताम् ।।५७।।
येनेश्वर प्रदत्तस्य न्यासस्यानुपमस्य तु ।
अपव्ययः कृतोन्यस्तः कुमार्गे चात्महा मतः ।।५८।।

टीका- साधना से शक्ति और शक्ति से सिद्धि मिलने का सिद्धान्त सर्वविदित है। साधना ही तपश्चर्या है, उसमें कषाय-कल्मषों से, मल-आवरण-विक्षेपों से हठपूर्वक जूझना पड़ता है। आदतें सुधारने में आन्तरिक विग्रह खड़ा होता है। उनसे धैर्य और साहस के साथ जूझने पर ही मनोविग्रह सधता है- यही आत्मविजय है। जो अपने आपको जीतता है, उसकी विजय दुदुंभी दशों दिशाओं में बजती है। वह विश्व विजयी कहा जाता है। जीवन साधना से ही सामान्य स्तर के मनुष्य महामानव, ऋषि, देवता एवं अवतारी बनते हैं। जीवन कल्पवृक्ष है। आत्मदेव सबसे बड़ा देव है। उसकी साधना-तपश्चर्या करने वाले नकद धर्म की तरह विभूतियाँ पाते और सम्पदाओं के अधिकारी बनते हैं। जिसने इस ईश्वर प्रदत्त अनुपम धरोहर का ऐसे ही अपव्यय किया और कुमार्ग में लगाया, उसे अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने वाले की तरह अभागा ही कहा जायेगा।। ५२-५८।।

गाड़ी जब पुरानी पड़ जाती है, तो उसके कल-पुर्जे अव्यवस्थित हो जाते हैं, जिसके कारण ऊर्जा का अपव्यय होने लगता है, वह ईंधन अधिक उपभोग करने लगती है। इसे रोकने के लिये नये सिरे से उसकी मरम्मत की जाती है। पुर्जों को कसा और ढीलापन निरस्त किया जाता है, तभी वह श्रेष्ठ स्थिति में आ पाती है।

मानवी स्तर पर यह प्रक्रिया साधना कहलाती है। मनुष्य में विभिन्न प्रकार के दोष-दुर्गुणों के जो कषाय-कल्मष चढ़े होते हैं, उसके कारण शक्ति का सदुपयोग उससे नहीं बन पड़ता और वह निरन्तर क्षीण होती जाती है। इसे रोकने के लिये साधना-प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के क्रिया-कृत्यों का सहारा लेना और उसे अभिवर्धित करना पड़ता है, फिर इस सम्वर्धित शक्ति को जिस भी दिशा में, जिस लक्ष्य पर लगा दिया जाता है, उसी क्षेत्र में सिद्धियाँ-विभूतियाँ सम्पदा हस्तगत होती चली जाती हैं। इसीलिये जीवन को कल्पवृक्ष-आत्मदेव की संज्ञाएँ दी गई हैं। व्यक्ति इसकी साधना कर इसके ढीलेपन को कसकर, उसे सुव्यवस्थित-अनुशासित बना कर चाहे जो प्राप्त कर ले, अथवा इसका दुरुपयोग कर, शक्ति का अपव्यय कर कुमार्गगामी बन जाय और पतन-पराभव की स्थिति तक जा पहुँचे।

जीवन जीने का आज का सामान्य ढर्रा यही है। इसी कारण ऋषि जीवन साधना को विश्व-विजय स्तर का कार्य मानते हैं और वैसे व्यक्ति को जिसने अपनी आदतें सुधार लीं, मन को वश में कर लिया एवं अन्तः को परिष्कृत कर जीवन को अनुशासित बना लिया, उसे विश्व जीतने जैसा कठिन पराक्रम करने के कारण विश्व विजयी की संज्ञा देते हैं। इसी पराक्रम द्वारा सामान्य व्यक्ति असामान्य स्तर के ऋषि,महामानव, व अवतारी महापुरुष बनते हैं।

आत्मोत्कर्षस्य हेतोश्च य उपायस्तृतीयकः ।
आश्रीयते स संप्रोक्त आराधनमिहर्षय ।।५९।।
आराधनार्थं सेवाया धर्म आश्रीयते तथा ।
लोकमंगलसंलग्नैर्भवितव्यं सदा नरैः ।।६०।।
आकांक्षाया दयायाश्च मैत्र्याश्चात्मनदूष्यते ।
सेवायाश्चाप्युदारत्वे गृहीते तृप्तिरुत्तमा ।।६१।।
प्राणी सामाजिको मर्त्यस्तस्य याः सुविधास्तथा।
सुरक्षाः प्रगतिश्चापि समाज सहयोग गाः ।।६२।।
ऋणादस्माद् विमुक्त्यै च लोक मंगल कर्मसु।
दत्तचित्तैः सदा भाव्यं न जिह्मोपस्थसेवने ।।६३।।
आत्मकल्याण हेतोश्च सद्गुणा ये त्वपेक्षिताः।
सेवाधर्मं विना ते तु नोपलभ्या भवन्ति नः ।।६४।।

टीका- ऋषियो ! आत्मोत्कर्ष के लिये जिस तीसरे उपाय का अवलम्बन करना होता है, उसका नाम 'आराधना' है। आराधना के लिये सेवा धर्म अपनाना होता है और लोकमंगल में निरत रहना पड़ता है। आत्मा की आकांक्षा दया, करुणा, मैत्री, सेवा की उदारता अपनाने से ही तृप्त होती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसकी सुविधा, सुरक्षा एवं प्रगति के आधार समाज के अनुदानों से ही बनते हैं। इस ऋण से मुक्ति पाने के लिये लोकमंगल के पुण्य प्रयासों में भी दत्त चित्त होना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिये। सारी श्रम सम्पदा पेट प्रजनन में ही नहीं लगा देनी चाहिये। आत्मकल्याण के लिये जिन सद्गुणों की आवश्यकता है, उन्हें सेवाधर्म अपनाये बिना उपलब्ध नहीं किया जा सकता ।। ५९-६४।।

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है, कि जिस समाज में पलकर उसने उन्नति-प्रगति की, सुविधा-साधन प्राप्त किये, उसके उत्थान विकास का भी वह ध्यान रखे और अपने ही जैसा दूसरों को भी प्रगतिशील बनाने के लिये अपने समय का कुछ भाग समाज में लगाये। श्रम-सम्पदा का उपयोग वह मात्र अपनी सुख-सुविधा बढ़ाने के लिए ही न करे, वरन् समाज में सत्प्रवृत्ति संवर्धन और सेवा कार्यों में भी उनका उपयोग करे। यह मनुष्य का नैतिक दायित्व के साथ समाज ऋण भी है, जिससे मुक्ति लोकमंगल के कार्यों द्वारा ही उसे मिल सकती है। इससे जहाँ एक ओर लोककल्याण का, समाज उत्थान का परमार्थ प्रयोजन सधता है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति को सेवाधर्म का पुण्य लाभ भी मिलता है। इससे जीवन में उन सद्गुणों का विकास-अभ्यास भी शक्य-संभव हो जाता है, जो आत्मकल्याण के लिये अभीष्ट होता है। इसीलिये ऋषि ने लोक आराधना को आत्मोन्नति का आवश्यक उपाय बताया है और जीवन में इसे अपनाये जाने पर जोर दिया है।

अनादिकालमारभ्य भक्ता भगवतस्तु ये ।
ते सदा निरता दृष्टा लोक मंगल कर्मसु ।। ६५।।
महात्मानां च विप्राणामर्पितं जीवनं सदा ।
एतदर्थमभूत्पूर्वं जगत्सन्मगलं वभौ ।। ६६।।
मनोयोगः प्रभावश्च श्रमः कालो धनं तथा ।
सद्वृत्ति वर्धने येन मात्रया च यया तथा ।। ६७।।
यावता साहसेनाथ योजितानि तथैव च ।
मात्रयातेनपुण्यस्यफलान्याप्तानि निश्चितम्।।६८।।
पुण्यैः सदाऽऽत्म सन्तोषो लोक सम्मानमेव च ।
दैवानुग्रह प्राप्तिश्च भवत्येव न संशयः।। ६९।।

टीका- अनादिकाल से भगवद्भक्तों को लोकमंगल की सेवा-साधना में निरत रहना पड़ा है। साधु-ब्राह्मणों का जीवन इसी प्रयोजन के लिए समर्पित होता रहा है, इसी से वह समय मंगलमय रहा है। श्रम, समय,मनोयोग, धन, प्रभाव को सत्प्रवृत्ति संवर्धन में जिनने जिस अनुपात से जितने साहस के साथ नियोजित किया है उन्हें उतना ही बड़ा पुण्यफल प्राप्त हुआ है। पुण्य से ही आत्म सन्तोष, लोकसम्मान और दैवी अनुग्रह की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ।। ६५-६९।।

गुरु का सच्चा शिष्य वही कहलाता है, जो गुरु के कथनानुसार चले, उसके बताये कार्यों को करे, स्वयं संतुष्ट रहे व अपने उत्तम कार्यों द्वारा गुरु को भी संतोष प्रदान करे। सच्ची गुरुभक्ति यही है।

भगवद्भक्ति भी ऐसी ही होती है। इसमें पूजा-उपासना तो अपनी जगह होती है, उनका अपना महत्व भी है; पर वे गौण होते हैं। मुख्य होता है, भगवान के अनुशासन को मानते हुए उसके कार्यों को प्रधानता देना। भगवान का कार्य है, उसकी सृष्टि को समुन्नत बनाना। अपने समय, श्रम, सम्पदा और सत्परामर्श का अधिकाधिक प्रयोग कर समाज को-विश्व को सजाना-सँवारना, गिरों को उठाना और उठों को आगे बढ़ाना। यही साधु ब्राह्मण परम्परा है और इसमें निरत रहने वाले लोग ही साधु-ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी हैं। प्राचीनकाल से इस परम्परा का निर्वाह भगवद्भक्तों द्वारा होता आ रहा है। चूँकि प्राचीनकाल में यह परम्परा जीवन्त-जागृत थी, सभी सेवा-साधना को अपना नैतिक कर्त्तव्य मानते थे एवं अपना कुछ समय लोकमंगल के कार्यों में लगाते थे, इसलिए वह समय हर प्रकार से श्रेष्ठ व उत्कृष्ट रहा। चारों ओर खुशहाली और शांति थी। किसी को किसी से कोई शिकायत नहीं थी। सभी प्रसन्न थे। किन्तु आज जब उस परम्परा का पूर्णतः लोप हो चुका है, लोग स्वार्थपरायण बन गये हैं, फलतः चारों ओर आपाधापी और अशांति दीख पड़ती है। इसीलिए ऋषि यहाँ लोकमंगल के कार्यों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते हैं तथा सम्मान, संतोष व दैवी अनुग्रह प्रदान करने वाला इसे सबसे बड़ा पुण्यफल बताते हैं।

सद्गतेरधिकारित्वे सेवाव्रत परायणाः ।
अर्हन्ति, परमार्थत्वं यज्ञो मागंलिकः स्मृतः ।। ७०।।
वारिदश्च जगत्प्राणो मार्तण्डोऽमृतदीधितिः ।
सर्वेसेवारताः सन्ति बहन्त्यः सरितस्तथा ।। ७१।।
निर्झराश्च सरन्त्येवमानन्दाय, फलानि ते ।
वृक्षाददाति गृह्णन्ति प्रतिवर्षं फलानि च ।। ७२।।
यज्ञाः परार्थयोज्यास्ते परिणामेन तस्य तु ।
याजकःप्राणिनोऽन्ये च कृतकृत्या भवन्ति हि।। ७३।।
उत्साहवर्धकं वातावरणं जायतेऽस्ति च ।
सेवायाः साधनायाश्च परिणामोऽयमद्भुतः ।। ७४।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- सद्गति के अधिकारी सेवापरायण ही होते हैं। परमार्थ ही मागंलिक यज्ञ है। मेघ, पवन,सूर्य, चन्द्र सभी सेवारत रहते हैं। नदियाँ इसी निमित्त बहती हैं। निर्झर इसी आनन्द लाभ के लिए झरते हैं। वृक्ष फल देते हैं और हर साल नये फल पाते हैं। परमार्थ के निमित्त ही यज्ञ किये जाते हैं। यज्ञ के प्रतिफल से याजक ही नहीं, समस्त प्राणी कृतकृत्य बनते हैं और उत्साहवर्धक वातावरण बनता है। यह सेवा-साधना का ही प्रतिफल है ।। ७०-७४।।

यहाँ ऋषि परमार्थ को यज्ञ की संज्ञा देते हैं। यज्ञ का तात्पर्य है-त्याग-बलिदान, सेवा-परोपकार, पवित्रता-शुचिता। इन गुणों का कथा-प्रवचनों में बखान करने से काम नहीं चलता, वरन् निज की जीवनचर्या को खुली पुस्तक की तरह रख कर सर्वसाधारण को यह बताना पड़ता है कि राजमार्ग क्या है? जिस पर चलते हुए लक्ष्य तक पहुँचा जा सके। चूँकि इन गुणों के जीवन में समावेश से व्यक्ति और समाज का हर प्रकार से कल्याण होता है, इसीलिए परमार्थ को मांगलिक यज्ञ कहा गया है और नित्य-नैमित्तिक क्रिया की तरह इसे भी आवश्यक माना गया है। पवन, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, नदियाँ सभी इसी प्रयोजन में निरत रहते हैं तथा मनुष्य को भी ऐसे ही कार्यों में संलग्न रहने की प्रेरणा देते हैं। ऐसे ही व्यक्ति प्रतिष्ठा, सम्मान, प्रशंसा के रूप में जीवन में सद्गति प्राप्त करते और कृतकृत्य बनते हैं।

जीवनं तु सुसम्पन्नं स्रष्टुर्विश्वमिदं महत् ।
रम्यमुद्यानमत्यर्थं रम्यतं नेतु माश्रितम् ।।७५।।
विधिः सदुपयोगस्य जीवनस्यास्य संमतः ।
परार्थो, गलितं बीजं सहस्रं फलति स्वयम् ।।७६।।
रिक्ता न वारिदाः क्वापि पूरितान् वारिधिस्तुतान् ।
विदधाति न नद्यश्च शुष्काः क्वापि भवन्ति ताः ।।७७।।
हिमालयादि मूलेभ्योऽनुदानं सन्ततं तु ताः ।
प्राप्नुवन्तिशरीराङ्गान्यपि पुष्टानि साच्छ्रतेः।।७८।।
श्वासे गते नवं श्वासं गृह्णन्त्येते च प्राणिनः।
उदरे रिक्ततां याते नवाहारस्तु लभ्यते ।।७९।।
परार्थैकरता येते लाभान् गृह्णन्त्यनेकशः ।
न्यूनता कृपणैर्मर्व्यैः सकीर्णैः प्राप्यते ध्रुवम् ।।८०।।
मेषा ददति चोर्णां ते नव्योर्णां प्राप्नुवन्ति च ।
कृपणो भल्लुकः केशान् नो ददात्याददाति नो ।।८१।।
उदुम्बरगताजीवा इव ते कृपणा मताः ।
तोषं मानं च पुण्यं च लभन्ते मधुमक्षिकाः ।।८२।।
सत्प्रयोजन संलग्ना विज्ञाः सन्त्येव सर्वदा ।
उदार साहसस्यैते लभन्ते फलमुज्ज्वलम् ।।८३।।

टीका- यह सुसम्पन्न जीवन स्रष्टा के विश्वउद्यान को सुरम्य बनाने के निमित्त ही धरोहर रूप में मिला है। उसके सदुपयोग का एक मात्र उपाय परमार्थ ही है। बीज गलता है तो हजार गुना होकर फलता भी है। बादल खाली नहीं होते, समुद्र उनकी सम्पदा को भरी-पूरी रखता है। नदियाँ सूखती नहीं, उन्हें हिमालय आदि इनके मूल स्थानों से सदा सर्वदा अजस्र अनुदान मिलते रहते हैं। शरीर के अवयव एक दूसरे को देते और बदले में समर्थ, परिपुष्ट रहते हैं। साँस छोड़ने पर ही नई साँस लेने का सुयोग मिलता है। पेट खाली करने पर ही नया आहार उदरस्थ करने का सुयोग मिलता है। परमार्थ-परायण अनेकानेक लाभ प्राप्त करते हैं। घाटा तो कृपणता-संकीर्णता अपनाने वालों को ही पड़ता है। भेड़ ऊन देती और नई पाती है। कृपण रीक्ष अपने बाल किसी को देता नहीं, तो अधिक देने में प्रकृति भी अपना हाथ सिकोड़ लेती है। कृपण गूलर के भुनगे बनकर रहते हैं, किन्तु परमार्थरत रहने वाली मधुमक्खियाँ सम्मान, सन्तोष और पुण्य का त्रिविध लाभ अर्जित करती हैं। अस्तु, विज्ञजन सदा सत्प्रयोजनों के लिए सेवा परायण रहते हैं और अपनी उस उदार साहसिकता का आनन्ददायक प्रतिफल प्राप्त करते हैं ।। ७५-८३।।

यहाँ ऋषि परमार्थपरायणता का लाभ समझा रहे हैं। देखने में तो प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है, मानो परमार्थी घाटे में रहा हो; पर वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। वह सदा अनेक गुना फायदे में रहता है। बीज गलने पर ही वह वृक्ष बन कर फलता-फूलता है। नहीं गलने पर हजार गुना होने का सौभाग्य वह नहीं प्राप्त कर सकता। बादल बरसने पर ही फिर समुद्र से जल वाष्प प्राप्त कर पाते हैं। नदियाँ-झरने अपनी जल-राशि लुटाते रहते हैं, इसी कारण हिमालय जैसे उद्गम से अजस्र अनुदान प्राप्त होता है। तालाब इस मामले में कृपणता बरतता है, अतः वह सूखता रहता है। नई साँस लेने के लिए अशुद्ध वायु को बाहर निकालना पड़ता है। पेट यदि खाली न हो तो नया आहार कैसे लिया जाय? भेड़ हर वर्ष ऊन देने का सत्साहस करती है, फलतः प्रकृति की ओर से उसे यह अनुदान बराबर मिलता रहता है; मगर भालू इस संदर्भ में कोताही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिखाता है, अस्तु प्रकृति भी उस पर अपनी उदारता नहीं दिखाती। कहने का तात्पर्य यह कि जो परमार्थ परायण हैं, वह कभी घाटे में नहीं रहते। मधुमक्खी की भाँति वे सम्मान, संतोष और पुण्य का त्रिविध लाभ साथ-साथ उठाते हैं। घाटे में तो वे रहते हैं, जो पुण्य-परमार्थ,सहयोग सहकार से कतराते रहते व गूलर के भुनगों की तरह अपने तक सीमित रहते हैं। इसलिए विज्ञजन सदा पुण्य-परमार्थ का सेवा-धर्म अपनाते हैं।

ईश्वरोपासनास्याथ साधनायाश्च ते समे ।
जीवनस्यापि लोकस्य समाराधनकस्य च ।। ८४ ।।
त्रिविधा उपचारा येऽध्यात्मनस्तु मता बुधैः ।
श्रुत्वा तानृषयः सर्वे सत्रस्थास्तोषमाययुः ।। ८५ ।।
तैज्ञातश्चार्चनस्यार्थः स्वाध्यायस्यापि शोभन ।
सत्संगंस्य, महार्हंतमाहारं पक्तुमेवया ।। ८६ ।।
व्यायाम-पुरुषार्थस्य विद्यतेऽपरिहार्यता ।
प्रखरतां सुसम्पन्नतां तां वापि पवित्रताम् ।। ८७ ।।
या ददात्यलमेतासां त्रिवेण्यामवगाहनात् ।
संभवत्यापि हे विज्ञाः ! पवित्राणां सुश्रद्धया ।। ८८ ।।
साधनोपासना लोकाराधनानां च सत्ततम् ।
प्राप्तुं सफलतांनान्यःपन्थाःकश्चितु विद्यतेः ।। ८९ ।।

टीका- ईश्वर उपासना,जीवन साधना और लोक आराधना के त्रिविध अध्यात्म उपचारों का विस्तृत विवरण और प्रतिफल जानकर सत्र के सभी जिज्ञासु जन संतुष्ट हुए। उनने जाना कि स्वाध्याय, सत्संग, पूजा-भजन के बहुमूल्य आहार को पचाने के लिए जिस व्यायाम-पुरुषार्थ की अनिवार्य आवश्यकता है-वह पवित्रता, प्रखरता एवं सम्पन्नता प्रदान करने वाली उपासना, साधना और आराधना की त्रिवेणी का अवगाहन करने से ही संभव हो सकती है। सफलता प्राप्त करने हेतु और कोई मार्ग नहीं है ।। ८४-८९ ।।

अध्यात्मनस्तु क्षेत्रस्य साफल्यमथते ततः ।
असाफल्यं विदित्वा च सन्तुष्टाः सत्र पूरणे ।। ९० ।।
क्रियान्वितांस्तु विश्वासान् कर्तुं निश्चित्य प्रस्तुताः ।
स्वस्वावास दिशाः सर्वे नव सृष्टि महोत्सवाः ।। ९१ ।।
आयोजन सुसंयोगं प्रशशं सुरिमे समे ।
पुनस्तथा सुयोगं प्राप्तु भावानभादिषुः ।। ९२ ।।

टीका- अध्यात्म क्षेत्र की सफलता, असफलता का रहस्य समझने के उपरान्त सत्र की समाप्ति पर सन्तोष व्यक्त करते हुए विश्वासों को क्रियान्वित करने का संकल्प लेकर सभी जिज्ञासु जन अपने -अपने स्थानों को लौट गये। नये सृजन की कल्पना से सभी उत्साहित थे। सभी ने आयोजन में सम्मिलित होने के सुयोग को सराहा और फिर वैसा अवसर मिलने का मनोभाव प्रकट किया ।। ९०-९२ ।।

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः महर्षि याज्ञवल्क्य प्रतिपादिते "उपासना साधना आराधना" इति प्रकरणो नाम ।। सप्तमोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

षष्ठ मण्डल

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

देवात्म हिमालय प्रकरण

पुण्यं पर्वावतारस्य भागीरथ्यास्तु विद्यते ।
भगवत्या ज्येष्ठशुक्लदशमी तिथिरुत्तमा ।। १।।
तस्मिन्नेव दिने तस्य हिमाद्रेर्देवतात्मनः ।
गर्भाद् विनिसृतायास्तु गंगाधरजटालयात् ।। २।।
च्युताया दिव्यतोयाया अमृताम्भस एव च ।
कृते श्रद्धाञ्जलीन् कर्तुभवगाहनजं तथा ।। ३।।
लब्धुं लाभमसंख्यास्तु जनाः श्रद्धालवः सदा ।
समायान्ति मुदा दूरदेशाद् यात्रा प्रसंगतः ।। ४।।
गंगोत्रीं गोमुखं यान्ति शिवलिंगतपोवनम् ।
कैलारां नन्दनं मेरुं मानसं स्फटिकोपमम् ।। ५।।
स्वर्गारोहण भूभागं मार्गमुल्लंघ्यदुर्गमम् ।
यान्ति लोका वदन्त्येव हिमाद्रेर्हृदयं च यत् ।। ६।।
विद्यते चेदमेवाहो महाप्रज्ञात्मनः प्रियम् ।
गायत्र्या जन्मनश्चापि पुण्यं दिव्यं हिमं महत् ।। ७।।
स्वर्णे सुगन्धसंयोग इव इतादृशाः शुभाः ।
क्वचनावसरा लोके दृश्यन्ते पुण्यदायिनः ।। ८।।

टीका- भगवती भागीरथी का अवतरण पर्व, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि का है। उस दिन देवात्मा हिमालय के गर्भ से, शिवजी की से प्रादुर्भूत अमृत सलिला जाह्वी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए दूर-दूर देशों से प्रसन्नमन अगणित श्रद्धालुजन यात्रा करते हैं। गंगोत्री, गोमुख पहुँचते हैं। कई तो तपोवन, नन्दनवन, शिवलिंग, कैलाश, स्फटिक स्वच्छ मानसरोवर, सुमेरू, स्वर्गाहिरण के उपभाग तक दुर्गम मार्ग को पार करते हुए पहुँचते, जिसे 'हिमालय का हृदय' कहा जाता है। यही ज्येष्ठ शुक्ल दशमी का दिन महाप्रज्ञा गायत्री का प्रिय दिव्य पुण्यदायी अवसर कदाचित् ही कहीं दृष्टिगोचर होते हैं ।। १-८।।

पुण्ये पर्वणि तस्मिंश्च समायाता सुदूरतः ।
संगता एकदा सर्वे मुनयश्च मनीषिणः ।। ९।।
गंगावतार पुण्ये च स्थाने तैः शिवरायितैः ।
पूर्वकाले समायाते स्नानं ध्यानमथापि च ।। १०।।
जपतर्पण मुख्यानि धर्म कृत्यानि यान्यपि ।
विहितानि मनोबुद्धि कायसंस्कारकाण्यलम् ।। ११।।
प्रेम पूर्वकमेतेऽथ मिलितास्तु परस्परम् ।
भवैः परिचिताः सर्वे संगतैः प्रथमं जनैः ।। १२।।
एकत्रितानि पूर्वं हि वन्यै पर्वागतस्य तु ।
धर्मात्मनो जनस्यात्र कन्दमूलफलान्यलम् ।। १३।।
आरोग्यदानि सम्प्राप्य सर्वैरेबौष धीनि वा ।
इमानि नीता शान्तिं च बुभुक्षा मुनिभिः समैः।।१४।।
वपुः शैथिल्यमेवं सा चित्तचञ्चलताऽपि च ।
गते दूरं ततः सर्वे ज्ञानचर्चार्थमुद्यताः ।। १५।।
पर्वोत्सवानां लाभस्तु विद्यते हि महानयम् ।
एताट्टशानामाश्रित्य यत्तु पुण्यफलं भवेत् ।। १६।।
अधुना हृदि सर्वेषां हिमाद्रेर्देवतात्मनः ।
उत्तराखण्ड भागस्य ज्ञाताज्ञातानि तानि तु ।। १७।।
क्रमबद्धतयाज्ञातुं रहस्यान्युत्थिता नवा ।
उत्कण्ठोत्तराखण्डभूमिः पुण्यप्रदा श्रुता ।। १८।।

टीका- उस पुण्यपर्व पर एक बार दूर-दूर से मुनि मनस्वी एकत्रित हुए। गंगा-अवतरण के पुण्य स्थान गंगोत्री-गोमुख के निकट डेरा डाला। पर्वकाल में सभी ने स्नान, ध्यान, जप, तर्पण आदि शरीर, मन व बुद्धि को संस्कारयुक्त बनाने वाले धर्मकृत्य किये। तत्पश्चात् एक दूसरे से प्रेम पूर्वक मिले। जो पहली बार नये सम्मिलित हुए थे, उनका परिचय प्राप्त किया। वनवासियों द्वारा इस पर्व पर आने वाले धर्मात्माओं के लिए पहले से ही कन्द, मूल,फल एकत्रित कर रखे थे। आरोग्यदायी औषध स्वरूप इन्हें प्राप्त करके आगन्तुकों ने भूख बुझाई, जिससे शरीर की थकान व मन की चंचलता जाती रही। सभी मिलजुल ज्ञान चर्चा की तैयारी में लग गये। ऐसे पर्व समारोह का यही सबसे बड़ा लाभ है। पुण्यफल की उपलब्धि इसी आधार पर होती है। इस बार सभी के मन में देवात्मा हिमालय में उत्तराखण्ड क्षेत्र के ज्ञात-अज्ञात रहस्यों को क्रमबद्ध रूप से जानने की उत्कण्ठा उठ रही थी। चूँकि उत्तराखण्ड की देवभूमि पुण्यदायी है-ऐसा सभी ने सुन रखा था ।। ९-१८।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तराखण्डयात्रास्तु कृता एभिरनेकश: ।
स्थानानि तस्य दृष्टानि दर्शनीयानि यानि तु ।। १९ ।।
य यैतिहासिकान्यत्र सन्ति चान्यानि तानि च ।
देवालया गुहा नद्यो निर्झरा शिखरा अपि ।। २० ।।
दृश्यदर्शनमात्रस्य कौतकस्य हि केवलम् ।
समाधानमनेनात्र जातमेव हि केवलम् ।। २१ ।।
रहस्यमस्य न ज्ञातं तत्तुकैश्चिद् यदुच्यते ।
देवात्मेति जनै: शून्यं स्थानं पाषाणशोभितम् ।। २२ ।।
चत्वारि तानि धा मानि देशकोणगतानि तु ।
समुल्लसन्ति भव्यानि दूरदेशास्थितानि च ।। २३ ।।
उत्तराखण्ड भूमौ तु बदरीवन शोभिते ।
सन्ति चत्वरि धामानि समीपे संस्थितान्य हो ।। २४ ।।
तेषां दर्शनजं पुण्यमवगाह समुद्भवम् ।
अन्यतीर्थ तुलायां तु मन्यतेऽधिकमुत्तमै: ।। २५ ।।
ऋषयो मुनयश्चात्र धावं धावं पुन: पुन: ।
समायान्ति तपस्तप्तुं तप: सिद्धा भवन्ति च ।। २६ ।।
सिद्धीरुच्चगताश्चात्राऽपेक्षया प्राप्नुवन्त्यपि ।
वैशिष्ठ्य हेतुमेतं च पर्वस्था ज्ञातुमुत्सुका: ।। २७ ।।

टीका- उत्तराखण्ड की यात्राएँ तो इन सभी ने कई बार की थी और उनके दर्शनीय ऐतिहासिक स्थानों, देवालयों, शिखरों, गुफाओं, नदी-निर्झरों को भी देखा था, किन्तु इतने से दृश्य-कौतूहल का समाधान मात्र हो सका था, वह विवरण और रहस्य अभी तक विदित न हो सका, जिसके कारण इस जन-शून्य पाषाण समुच्चय को देवात्मा कहलाने का श्रेय मिला। चार धाम देश के चारों कोनों पर भव्य बने हैं और एक दूसरे से बहुत दूरी पर अवस्थित हैं; पर बदरीवन से सुशोभित इस उत्तराखण्ड क्षेत्र में छोटे-छोटे स्थान में निकट रहने पर भी चार-धाम कहलाते हैं। उनके दर्शन-अवगाहन का पुण्य अन्य तीर्थों की तुलना में अत्यधिक माना गया है। ऋषि मुनि इसी क्षेत्र में तप-साधना करने के लिए दौड़ते हैं, उच्चस्तरीय तपश्चयायें करते हैं और अपेक्षाकृत अधिक ऊँची सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। इन विशेषताओं का कारण क्या है, यह जानने की इस महापर्व पर एकत्रित सभी को अनायास ही तीव्र इच्छा उठ खड़ी हुई ।। १९-२७ ।।

एकत्रिते समाजे च वरिष्ठोऽभूत्तु नारद: ।
मनुष्यैरिव देवैश्च सम्बन्धास्तस्य सुप्रिया: ।। २८ ।।
आयुष्यानुभवाभ्यां च श्रेष्ठ: स लोक सम्मत: ।
समन्वितेच्छया तस्य समुदायस्य तत्र च ।। २९ ।।
मुनिरूत्तुंग आहैनं बद्धहस्तो मुनिं कथम् ।
ऋषिभूमिस्तपोभूमि: सिद्धापुण्या च भूरियम् ।। ३० ।।
भूमि: समाना सर्वत्र तरवश्च जलाशया: ।
सन्ति सर्वत्र तुल्याश्च ते वनस्पतयोऽपि तु ।। ३१ ।।
उत्तराखण्ड भूमेस्तद् हिमाद्रेर्वोधितं कथम् ।
माहात्म्यमुत्तमं श्रेय: कारकं स्वर्गदं नृणाम् ।। ३२ ।।
रहस्यं ज्ञातुमेतच्च भृशमुत्कण्ठिता वयम् ।
अनुकम्या: समाधानकृपया भवता मुने ।। ३३ ।।

टीका- इस एकत्रित समुदाय में सबसे वरिष्ठ नारद मुनि थे। मनुष्यों की तरह देवताओं के भी उनके निकटवर्ती सम्बन्ध थे। आयुष्य और अनुभव की दृष्टि से वही ज्येष्ठ थे। अस्तु, समुदाय की समन्वित इच्छा से अवगत मुनि उत्तुंग ने करबद्ध होकर देवर्षि से निवेदन किया कि इस क्षेत्र को ऋषि भूमि, तपोभूमि, सिद्धभूमि, पुण्यभूमि कहे जाने का रहस्य समझायें, भूमि तो सर्वत्र एक ही है। जलाशय और वृक्ष, वनस्पति भी न्यूनाधिक मात्रा में सर्वत्र पाये जाते हैं, फिर क्या कारण है कि हिमालय के उत्तराखण्ड को ही इतना श्रेय मिला और उसे स्वर्गोपम माना गया? इस रहस्य को जानने के लिए हम सब अतीव इच्छुक हैं, सो मुनिवर ! कृपाकर समाधान करने का अनुग्रह करें ।। २८-३३ ।।

तथ्यमूलं गतां तेषां सगंतानां मनीषिणाम् ।
बीक्ष्यसूक्ष्मां मतिं मोदभगाढ़ देवर्षिराशु स: ।। ३४ ।।
उवाचाऽपि मया सार्धं भवन्त: प्रबलन्तु च ।
यद्यपि सर्वमेतच्च क्षेत्रं दिव्यभिरेव तु ।। ३५ ।।
क्षमताभि: सदापूर्णं स्वर्गलोकसमं मतम् ।
परं तत्राऽपि सन्त्येव स्थानान्यत्र तु कानिचित् ।। ३६ ।।
कृतान्युच्चात्मभिर्यत्र लोककल्याणकाभ्यया ।
दिव्यानुभूति सम्पन्नान्यनुसन्धानकान्यलम् ।। ३७ ।।
प्रयासैस्तै: समस्तश्च समाजो लाभमाप स: ।
धन्या जाता महर्षीणां दिव्येयं च परम्परा ।। ३८ ।।
स्थानेषु तेषु चाऽद्यापि तरंगा: प्रेरणामया: ।
शब्दनित्यतया सन्ति विद्यमानानि निश्चितम् ।। ३९ ।।
तान गृहीतुं क्षमा ये च ते तु तै: साधयन्त्यपि ।
सम्पर्कं लाभमायान्ति तत्रताभिर्विभूतिभि: ।। ४० ।।

टीका- देवर्षि उपस्थित मनीषियों के तथ्यों की गहराई तक पहुँचने वाली सूक्ष्मबुद्धि का परिचय प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए और कहा-आप लोग मेरे साथ-साथ चलें। यों यह समूचा क्षेत्र ही स्वर्गलोक के समान दिव्य क्षमताओं से भरा-पूरा है; किन्तु इसमें भी कुछ ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्थान हैं, जहाँ प्राचीन काल में उच्चस्तरीय आत्माओं ने लोक मंगल के लिए अतिमहत्वपूर्ण अनुभव-अनुसन्धान किये हैं। उन प्रयासों से समस्त मानव समाज लाभान्वित हुआ। साथ ही ऋषि परम्परा भी धन्य हुई। उन स्थानों में अभी भी वे प्रेरणा-तरंगें शब्द की नित्यता के कारण विद्यमान हैं, जिनमें उन्हें पकड़ सकने की क्षमता है, वे अभी भी उसके साथ सम्पर्क साधते और विद्यमान विभूतियों से लाभान्वित होते हैं ।। ३४-४०।।

नारद उवाच-

स्रष्टा सृष्टिविधौ पृथ्वीं रचयामास यर्हि सः।
तर्हि पूर्वं समुत्पन्नो हिमाद्रेर्भाग उत्तमः ।। ४१।।
यः स एव च लोकेऽस्मिन्नुत्तराखण्ड नामतः।
प्रथित आदिदेशात्र देवान् वासाय सृष्टिकृत् ।। ४२।।
देववासात्समृतः स्वर्गो देवलोकोऽपि वा पुनः।
आद्यशक्तिं स आराध्य गायत्रीं शक्तिमाप च।। ४३।।
उपार्जनं तदाश्रित्य सृष्टिं कर्तुमभूत्क्षमः ।
सह तेन विधेयोऽभूत्सहयोगश्च दैवतः ।। ४४।।
सृजनस्याथ पुष्टेश्च परिवर्तनकस्य च ।
दायित्वं त्रिविधं प्राप्तं गायत्री स श्रयात्सुरैः।। ४५।।
उपासनाविधौ तेऽत आदिष्टा ब्रह्मणा स्वयम् ।
युक्तास्ते तत आदेशं पूर्णं कर्तुं च सत्वरम् ।। ४६।।
ब्रह्मवर्चोमयं रूपं दर्शयामास सा निजम् ।
वेदमाता देवमाता विश्वमातेति यज्जगुः ।। ४७।।

टीका- नारद जी ने कहा-ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना करते हुए जब पृथ्वी बनाई, तब सर्वप्रथम हिमालय का वह भाग विनिर्मित हुआ, जिसे हिमालय का उत्तराखण्ड कहते हैं। सृजे हुए देवताओं को उस पर निवास करने के लिए सृष्टि कर्ता द्वारा कहा गया। उस क्षेत्र का नाम देवलोक एवं स्वर्ग रखा गया। ब्रह्मा जी को सृष्टि सृजन की क्षमता आद्यशक्ति गायत्री की उपासना करने से प्राप्त हुई थी। उसी उपार्जन के आधार पर वे सृष्टि बना सकने में समर्थ हो रहे हैं। देवताओं को उनके कार्य में हाथ बटाँना था। सृजन, पोषण और परिवर्तन के त्रिविध उत्तरदायित्वों को वहन करने की सामर्थ्य देवताओं को भी महाप्रज्ञा गायत्री का आश्रय लेने से ही मिल सकती थी। अस्तु, उन सभी को उपासना यज्ञ में लगा दिया गया। देवगण उस निर्देशन को पूरा करने में जुट गये। उन्हें भगवती ने देव वेदमाता, विश्वमाता के रूप में ब्रह्मवर्चस से युक्त दर्शन दिया ।। ४१-४७।।

देवानां च तपश्चर्या कारणाद् गरिमाऽस्य तु ।
स्वर्गलोकोक्तिरूपेण गदिता चैतिहासिकैः ।। ४८।।
क्षेत्रेऽस्मिंस्ते स्थिताः सर्वे शिखराः पावनाः शुभाः ।
सुमेरुः शिवलिगंश्च कैलासः स्वर्गगोऽय च ।। ४९।।
सुरोद्यानानि तान्यत्र नन्दनादीनि सन्ति च ।
तपोवनादिसंज्ञानि पुष्पोद्यानानि बै क्रमात् ।। ५०।।
पुण्यतोया वहन्तीह देवनद्योऽति निर्मलाः ।
शरीराणि तु देवानां स्थूल सूक्ष्मान्यलंस्वतः ।। ५१।।
समर्थानि बभूवुस्तच्चेतना क्षेत्र संभवाः ।
विभूतीः सूक्ष्मतन्वा वे स्थूलया भौतिकीस्तथा ।।५२।।
तन्वा जगृहुरन्तेऽस्य मनुजाः सृष्टिमागताः ।
ऋषिरूपे च सृष्टिः सा मुनिरूपे तथोदिता ।। ५३।।
वैज्ञानिका अभूवंस्त ऋषयो मुनयस्तु ते ।
निर्धारका अभूवंश्च शान्ता दान्ताः प्रचारकाः ।। ५४।।
एभ्यो निवासभूमिश्च निश्चिताधस्ततः शुभे।
अगम्ये प्रोन्नते क्षेत्र उत्तराखण्ड संज्ञके ।। ५५।।

टीका- देवताओं की तपश्चर्या से इस क्षेत्र की गरिमा स्वर्गलोक कहकर बखानी गई। उसी क्षेत्र में सुमेरू, शिवलिंग, कैलास, स्वर्गारोहण आदि शिखर शोभायमान हैं। यही तपोवन, नन्दनवन जैसे पुष्पोद्यान हैं। पुण्य सलिला स्वच्छ देव सरिताएँ उसी क्षेत्र से निःसृत होती हैं। देवताओं के सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीर सक्षम थे, वे चेतना क्षेत्र की विभूतियाँ सूक्ष्म शरीर से और भौतिक उपलब्धियों के लिए स्थूल शरीर का उपयोग करते रहे। इसके उपरान्त मनुष्यों को सृजा गया। उनकी प्रथम संरचना पवित्र ऋषि-मुनियों के रूप में हुई। ऋषि वैज्ञानिक थे और शान्त-दान्त मुनि निर्धारक प्रचारक। इस समुदाय को स्वर्ग वाले उच्च अगम्य क्षेत्र से नीचे वाले भाग में बसाया गया। उसी को उत्तराखण्ड कहते हैं। ।। ४८-५५।।

देवता अन्तरिक्षे च पदार्थैर्व्याप्तिभागतैः ।
साधनानि निजान्यत्र समाचिन्वन्ति ते त्वलम् ।।५६।।
बहषि वर्गस्य कायस्तु स्थूलेन्द्रिय युतो ह्यभूत् ।
जलान्नवायु वस्त्रादि निवासेन्धनरूपतः ।। ५७।।
साधनान्यनिवार्याणि जातान्येषां कृते त्विह ।
तन्निवासस्थले स्रष्टा समुत्पन्नं व्यधादिदम् ।। ५८।।
निवसन्तु सुखेनैते सृष्टेरस्या व्यवस्थितौ ।
यदपेक्ष्यं प्रयासं ते तत्प्रकुर्वन्तु सत्वरम् ।। ५९।।
व्यवस्थायै च सृष्टेस्तट्टषीणां बहपेक्षितम् ।
अर्जनस्याभिवृद्धेश्च ग्राह्यं दायित्वमुत्तमम् ।। ६०।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नियन्त्रणस्य चाप्यत्रापेक्ष्या शक्तिरतो बहुः ।
लग्ना उपार्जने योग तपोभ्यां ते निरन्तरम् ।। ६१।।
योगेनात्रात्मविज्ञानं तपसा च पदार्थगम् ।
विज्ञानं सूत्ररूपेण जातं हस्तगतं ततः ।। ६२।।
ऋद्धीनामथ सिद्धीनां विपुलो निधिरुत्तमः ।
उपलब्धस्तदाश्रित्य जगता भूतये भृशम् ।। ६३।।

टीका- देवता अन्तरिक्ष में संव्याप्त दिव्य पदार्थ सम्पदा से अपने निर्वाह साधन आकर्षित कर लेते थे; पर ऋषि वर्ग की काया स्थूल स्तर की इन्द्रिय प्रधान थी। उसे अन्न, जल, वायु, वस्त्र, निवास, ईंधन उपकरण आदि की आवश्यकता थी। अस्तु, उनके निवास क्षेत्र में स्रष्टा ने इन सभी साधनों को उपजाया; ताकि वे सुखपूर्वक रह सकें और सृष्टि व्यवस्था के लिए जो जुटाना आवश्यक था, उसके लिए तत्परता पूर्वक प्रयास करते रह सकें। ऋषियों को सृष्टि व्यवस्था के लिए बहुत कुछ करना था। उपार्जन, अभिवर्धन और नियन्त्रण के अनेकानेक उत्तरदायित्व उन्हें सँभालने थे। इसके लिए सामर्थ्य की आवश्यकता थी, सो उसे योग और तप के माध्यम से अर्जित करने वे लोग जुट गये। योग से आत्म विज्ञान और तप से पदार्थ विज्ञान के सूत्र हस्तगत हुए। उनके सहारे ऋद्धियों और सिद्धियों का विपुल भण्डार विश्व कल्याण के लिए उपलब्ध कर सके ।। ५६-६३।।

बहूँल्लोकान् ससर्जायं नक्षत्राणि ग्रहानपि ।
ब्रह्मा तु दृश्यरूपेण पदार्था एव तानि तु ।। ६४।।
परमन्तस्तु सर्वेषां चेतना सुनियोजिता ।
जड़चेतनयोगाच्च सृष्टिरेषा विनिर्मिता ।। ६५।।
देवकर्तव्यमासीच्च ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
एकसूत्रगतं कर्तुं दानादाने नियोजिते ।। ६६ ।।
पृथिव्या सहयोक्तुं च ब्रह्माण्डस्य निरन्तरम् ।
अशरीरगताप्याप्ता सुविधा च शरीरगा ।। ६७।।
ग्रहपिण्डैरिवैते च योगयैरिह नरैः सह ।
कृत्वा सम्पर्कमेतैश्च कुर्वते लाभगानपि ।। ६८।।

टीका- ब्रह्माजी ने अनेक लोक-लोकान्तरों का सृजन किया-अगणित ग्रह नक्षत्र बनाये-वे दृश्य रूप में पदार्थ थे, पर उनके अन्तराल में विचारवान चेतना का समावेश किया गया। इस प्रकार सृष्टि जड़-चेतन के समन्वय से बनी। देवताओं का कार्य क्षेत्र उस समस्त चराचर ब्रह्माण्ड को एक सूत्र में बाँधे रहना था। साथ ही यह भी कि वे पृथ्वी के साथ ब्रह्माण्ड का आदान-प्रदान का क्रम सुनियोजित रखे रहें। उन्हें शरीर और अशरीरी स्तर की दोनों ही सुविधाएँ प्राप्त हुईं। वे ग्रह-पिण्ड की तरह मनुष्यों के साथ भी सम्पर्क साधते और जो उपयुक्त होते,उन्हें पात्रता के अनुरूप लाभान्वित करते रहते हैं ।।६४-६८।।

निश्चितं तत्रकर्तव्यमृषीणां देवसंगतिः ।
तदाप्तैरनुदानैश्च धरित्री वैभवं तथा ।। ६९।।
मानवानां च तद्वर्चो वर्द्धितुं तु निरन्तरम् ।
स्वतस्ते पूर्णरूपेण चात्मारामास्तु निःस्पृहाः ।। ७०।।
अन्तराले जगत्यास्तु सन्त्यसंख्या विभूतयः ।
प्रच्छन्नाश्चयश्च गृह्णन्ति जीवा अन्विष्यताः स्वयम् ।।७१।।
अज्ञातानां रहस्यानां मार्गणे प्राप्तिकर्मणि ।
समर्था ऋषयः सर्वे स्तरस्तेषां स ईदृशः ।। ७२।।
स्वस्था विशिष्टतायाश्च कारणात्ते क्षमाः समे ।
प्रकटीकर्तुमत्यर्थं सुगुप्तमपि चाञ्जसा ।। ७३।।
अदृश्यं प्रष्टुमेते च समर्थाः प्राप्तुमप्यथ ।
अप्राप्यमस्ति सामर्थ्यं तपः प्राप्तं महत्तमम् ।। ७४।।
तपः शक्त्या पदार्थेषु जायते परिपक्वता ।
प्रखरत्वमिहात्यर्थं वर्द्धतेऽपिं तथैव च ।। ७५।।

टीका- ऋषियों का कार्य देवताओं के साथ सम्पर्क साधने और उनके अनुदानों से धरती के वैभव और मनुष्यों के वर्चस्व में अभिवृद्धि करने का नियत हुआ। वे स्वयं में पूर्णरूपेण आप्तकाम व निःस्पृह थे। प्रकृति के अन्तराल में अगणित विभूतियाँ हैं, वे सभी प्रकट नहीं हैं। आवश्यकता के अनुरूप प्राणी उसमें से खोजते और प्राप्त करते रहते हैं। जो अविज्ञात और रहस्यमय है, उसे खोजने और प्राप्त करने की सामर्थ्य ऋषि स्तर के लोगों में होती है। वे अपनी विशिष्टता के कारण अप्रकट को प्रकट कर सकते हैं। अदृश्य को देख सकते हैं। अप्राप्त को पा सकते हैं। यह विशेषता उन्हें तप बल से प्राप्त होती है। तपाने से हर वस्तु में परिपक्वता आती और प्रखरता बढ़ती है ।। ६९-७५।।

अस्ति प्रयोगशालैव मानवस्य वपुः समम् ।
तस्मिन् सृष्टिरहस्यानां भूतेः प्राप्तिकराण्यपि ।।७६।।
उपकरणान्यलं लग्नान्याश्चर्यजनकानि तु ।
सामान्यास्तु जनाः लोकयात्रैक रुचिकाः समे ।।७७।।
उपलब्धस्य एतेषां सीमितास्तु तथैव ताः ।
परं दृष्टिर्विशालास्ति लक्ष्यं च महदुत्तमम् ।। ७८।।
कार्यक्षेत्रमतिव्याप्तं येषां ते विश्ववैभवम् ।
कुर्वते हस्तगं स्वेन मनोयोगेन नित्यशः ।। ७९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भौतिकाध्यात्मिक क्षेत्रविज्ञान ज्ञानिना सदा ।
भवत्यायोजितं चास्यां दिशायां पौरुषं भृशम् ।।८०।।
स्थिरलक्ष्यानुरूपाणि साफल्यानि सदैव ते ।
नराश्चर्यकराण्यत्र प्राप्नुवन्ति पदे पदे ।। ८१।।

टीका- मानव शरीर एक समग्र प्रयोगशाला है। उसमें इस सृष्टि के सभी रहस्यों को समझने और समस्त वैभवों को उपलब्ध करने के विस्मयकारी उपकरण लगे हैं। सामान्य-जन निर्वाह भर में रुचि लेते हैं। इसलिए उनकी उपलब्धियाँ भी उतनी ही सीमित रहती हैं; किन्तु जिनकी दृष्टि व्यापक है-लक्ष्य महान व उत्तम है और कार्य क्षेत्र व्यापक है। ऐसे महान मानव इसी संसार में पग-पग पर विद्यमान विभूति सम्पदा में से अपने प्रबल मनोयोग द्वारा बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं। भौतिक और आत्मिक क्षेत्र के विज्ञानियों का पुरुषार्थ इसी दिशा में नियोजित रहता है और वे निर्धारित लक्ष्य के अनुरूप पद-पद पर आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त करते हैं ।। ७६-८१।।

विभूतिनिधयो देवाः सन्तिसत्पात्रमार्गणे ।
लग्ना भवन्ति प्राप्यैतान् कृतार्थान् कुर्वतेऽपि च ।।८२।।
पात्रतावर्द्धनं चात्र देवाराधनमुच्यते ।
एतदर्थमिहोक्तास्तु सन्ध्यायज्ञजपादयः ।। ८३।।
लभन्तेऽलभ्यमप्येवमृषयः प्रापयन्ति तत् ।
यत्र यत्राऽस्ति चास्येहानिवार्यत्वं प्रयत्नतः ।। ८४।।
सामान्यास्तु जना लोभमोहयोर्बन्धनैरथ ।
अहंकारस्य तस्याऽपि बद्धास्ते त्रिविधैरपि ।। ८५।।
पशूनामिव चैतेषां जीवनं पक्षिणामिव ।
निद्राऽऽहाराविहारादिमात्रमत्राऽऽश्रयन्ति च ।। ८६।।
ऋषिकल्पास्तु ये धन्या उच्चात्मानो नरा भुवि ।
मान्यता भावनाऽऽकांक्षाभिर्भवन्त्युच्चबुद्धयः ।। ८७।।
चिन्तनेऽथ चरित्रे च व्यवहारे निजे सदा ।
आदर्शान् कुर्वते नूनं समाविष्टान्निरन्तरम् ।। ८८।।
जनाः किं कुर्वते नैतज्जातु पश्यन्ति ते न च ।
प्रभाविता भवन्त्येते तेषां गतिविधेरपि ।। ८९।।
परं स्वं गरिमाणं च जानेन्तः सञ्चलन्त्यलम् ।
तस्मिन् मार्गेऽनुगन्तॄणां यतः श्रेयो भवेदलम् ।।९०।।
स्तररयैतादृशस्यैव व्यक्तित्वस्य तथैव च ।
स्वभावस्य विनिर्माणं तपोयोगोद्भवं फलम् ।। ९१।।

टीका- देवता विभूतियों के भण्डार हैं, वे सत्पात्रों को तलाशते और उन्हें निहाल करते रहते हैं। पात्रता का संवर्धन ही देवाराधन है। इसी के लिए सन्ध्या, जप, यज्ञ, दानादि का विधान किया गया है। ऋषि अलभ्य को अर्जित करते हैं और जहाँ उसकी आवश्यकता है, वहाँ स्वयं ही प्रयत्नपूर्वक पहुँचाते हैं। सामान्यजन जहाँ लोभ, मोह और अहंकार के त्रिविध भव-बन्धनों से जकड़े रहते और पशु-पिशाचों जैसा आहार-विहार-निद्रा आदि मात्र का जीवन-यापन करते हैं; किन्तु ऋषि कल्प आत्माएँ अपनी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं और विचारणाओं को उच्चस्तरीय बना लेते हैं। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में आदर्शों का समावेश करते हैं। लोग क्या करते हैं, इसे नहीं देखते और न उनकी गतिविधियों से प्रभावित होते हैं, वरन् अपनी गरिमा को समझते हुए उस मार्ग पर चलते हैं, जिसका अनुगमन करने वाले असंख्यों को श्रेयाधिकारी बनने का सुयोग मिल सके। इस स्तर का व्यक्तित्व और स्वभाव विनिर्मित करना ही योग-साधना एवं तपश्चर्या का उद्देश्य है ।। ८२-९१।।

साफल्यं यावदेवात्र प्राप्नुयादात्मनिर्मितेः ।
योऽपि सूक्ष्मे जगत्यस्य प्रवेशः स्यान्न दुर्गमः ।।९२।।
न च प्राप्तुं विभूतीस्ताः काठिन्यमनुगच्छति ।
योगेन मानसं ये तु तपोभिः कायिकं तथा ।। ९३।।
कुरुते पुरुषार्थं ते सिद्धीऋद्धीर्व्रजन्त्यलम् ।
समुद्रनलगन्तारो लभन्ते मणिमौक्तिकान् ।। ९४।।
साधनां प्रवदन्त्येवं पुरूषार्थं महाजनाः ।
ऋषयो मुनयः सन्ति साधनारतमानसाः ।। ९५।।
तेषामुपार्जनैर्विश्वं भवेल्लाभान्वितं सदा ।
आदर्शचरितानां च देवमानवसन्नृणाम् ।। ९६।।
श्लाघ्यते भुवि सर्वत्र पदार्थैकरतिर्नृभिः ।
सम्मानमात्मसन्तोषं यान्ति दैवमनुग्रहम् ।। ९७।।

टीका- आत्मनिर्माण की, जो-जितनी सफलता प्राप्त कर लेता है, उसके लिए सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने और बहुमूल्य विभूतियाँ हस्तगत करने में अधिक कठिनाई नहीं पड़ती। योग साधना को मानसिक और तपश्चर्या को शारीरिक पुरुषार्थ करने वाले ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। समुद्र में गहरे गोते लगाने वाले ही मणिमुक्तक प्राप्त करते हैं। इसी स्तर के पुरुषार्थ को ही महापुरुष साधना कहते हैं। ऋषि मुनि साधनारत रहते हैं। उनके उपार्जन से समस्त संसार लाभान्वित होता है। अस्तु, इन आदर्श चरित्र वाले देव-मानवों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमार्थ परायणता सर्वत्र सराही जाती है, उन्हें आत्म-सन्तोष लोक-सम्मान और दैवी-अनुग्रह की कमी नहीं रहती ।। ९२-९७ ।।

यथा नाविकचातुर्य साहसाभ्यामसंख्यका: ।
नद्या: पारं जना यान्ति तथैषां सर्वएव हि ।। ९८ ।।
पुरुषार्थो मुनीनां स ऋषीणामपि पूर्णत: ।
समस्तं विश्वमेवात्रं युज्यते कर्तुमुन्नतम् ।। ९९ ।।
तेषां सम्पर्कगा मर्त्या भवन्त्यत्रोन्नतास्तथा ।
अभियान्ति च सर्वेषु लक्ष्येष्वेते दृढक्रमा: ।। १०० ।।
कल्पवृक्षेणलोकास्तान् मणिना पारदेन च ।
तुलयान्ति जना लोके सर्वदैतादृशान् भृशम् ।। १०१ ।।
समीपवर्तिनस्ते तु चन्दनस्य द्रुमा इव ।
गौरवं ददति स्वातौ वर्षेवान्योपकारका: ।। १०२ ।।

टीका- जिस प्रकार नाविक की प्रवीणता और साहसिकता के सहारे असंख्यों को नदी पार करने का लाभ मिलता है, उसी प्रकार ऋषियों-मुनियों का पुरुषार्थ और परमार्थ समस्त संसार को सुखी समुन्नत बनाने में प्रयुक्त होता है। उनके सम्पर्क में आने वाले ऊँचे उठते और क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ते हैं, उन्हें कल्पवृक्ष-पारस की उपमा दी जाती है। चन्दन वृक्ष की तरह वे समीपवर्तियों को गौरव प्रदान करते हैं। स्वाति वर्षा की तरह उनका लाभ कितनों को ही मिलता है ।। ९८-१०२ ।।

नारद: पुनरेवैतान् सम्बोध्याह बलादिव ।
उत्तराखण्ड भूमेस्तु गौरवं ज्ञातुमुत्सुका: ।। १०३ ।।
भवन्तस्तेन श्रण्वन्तु याऽत्रत्या तु विशेषता ।
ऋषिभूमेर्देवभूमे: कारणादस्ति निश्चितम् ।। १०४ ।।
वैश्वानरे यथादीप्ते जायते सा पवित्रता ।
ऊष्मवोत्पत्तिरप्येवं सम्पूर्ण क्षेत्रमुत्तमम् ।। १०५ ।।
इदं गौरवतां यातं वासादुच्चात्मनां नृणाम् ।
अतोऽत्रैव तपस्तप्तुमायाता ऋषि पुंगवा: ।। १०६ ।।
नरनारायणावत्र तपस्तावृषि सत्तमौ ।
कुर्वाते च तयोर्यो गान्नरो नारायणो भवेत् ।। १०७ ।।

टीका- नारदजी ने पुन: कहा-हे भद्रजनो ! जिस उत्तराखण्ड की गरिमा आप लोग जानना चाहते हैं, उसमें जो कुछ विशेषता है, वह देवताओं और ऋषियों की क्रीड़ा-भूमि रहने के कारण ही उत्पन्न हुई है। अग्नि के प्रज्ज्वलन से वातावरण में जिस प्रकार ऊष्मा व पवित्रता भर जाती है, उसी प्रकार यह समूचा क्षेत्र उच्चस्तरीय आत्माओं की क्रीड़ा-भूमि रहने के कारण गौरवशाली बना है, इसीलिए बड़े-बड़े ऋषि यहीं तपस्या करने आये। ऋषि श्रेष्ठ नर-नारायण अनादिकाल से यहाँ तपस्या में रत हैं, उनके सम्पर्क से नर मात्र नारायण बन जाता है ।। १०३-१०७ ।।

सायं समय आयात इत्थं चर्चारतेषु तु ।
समेष्वेव विरामोऽत सोऽपेक्ष्यो नितरामिह ।। १०८ ।।
जिज्ञासा हृदये नृणां सर्वेषामेव साध्यभूत् ।
ज्ञातुमत्रत्यभागानां विवृत्तिं च रहो भृशम् ।। १०९ ।।
अत आगामिवारेषु द्रष्टुं दर्शयितु तथा ।
योजना निश्चिताद्यैष प्रसंगोऽगाद् विरामताम् ।।११० ।।

टीका- चर्चा कहते-सुनते सायंकाल हो गया। अस्तु, वार्ता को विराम देना आवश्यक था। जिज्ञासा सभी के मन में इस क्षेत्र के अनेक स्थानों का विवरण और रहस्य जानने की थी। सो अगले दिनों उन्हें देखते हुए समझने-समझाने की योजना बनी। आज का प्रसंग यहीं समाप्त हो गया ।। १०८-११० ।।

इति श्रीमद्प्रज्ञोपनिषदे देव संस्कृतिखण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो, युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयो, महर्षि नारदप्रतिपादिते "देवात्म हिमालय:" इति प्रकरणो नाम ।।प्रथमोऽध्याय: ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

ऋषि प्रकरण

द्वितीयेऽह्नि प्रभाते च कृतनित्यक्रियादश ।
प्रमुखा ऋषयस्तत्र नेतृत्वे नारदस्य ते ।। १।।
देवतात्मन एतस्य हिमाद्रेर्भागं संस्थितम् ।
पश्यन्तः प्रकृतेरम्यं सौन्दर्यं कन्दराययुः ।। २।।
आत्मविज्ञान सन्धान कर्तारोयासु कर्हिचित् ।
ऊषुर्यैर्मृग्यते पन्थाः समृद्धेः प्रगतेर्नृणाम् ।। ३।।

टीका- दूसरे दिन प्रभात काल नित्यकर्म से निवृत होकर दस प्रमुख ऋषि-मनीषियों की मण्डली देवर्षि नारद के नेतृत्व में हिमालय के देवात्मा भाग का प्रकृति सौन्दर्य का पर्यवेक्षण करते हुए उन कन्दराओं की ओर चले, जिनमें कभी आत्म विज्ञान के अनुसंधान कर्ता निवास करते थे और वह खोजते थे जिसके ऊपर व्यक्ति और समाज की प्रगति एवं समृद्धि अवलम्बित है ।। १-३।।

देवर्षिश्च प्रवासे स ऐतिह्यं तद् विवेचयन् ।
चचालाथ महत्त्वं तदुत्तराखण्डजं ह्यभूत् ।। ४।।
निवासेन तु देवानामृषीणां तपसा तथा ।
स्वानुकूलं स्थलं श्रेष्ठमिदं तैर्दृष्टमद्भुतम् ।। ५।।
क्षेत्रेऽस्मिन् स्वमभीष्टं ते प्राप्तुं तन्मयतां गताः ।
अवात्सुरनयोः कार्ये: कृतकृत्या मनुष्यता ।। ६।।
आध्यात्मिक्यस्तु संप्राप्ता भौतिक्यो या विभूतयः ।
क्षेत्रेऽस्मिंस्तान चेल्लब्धा अभविष्यन् विभूतयः ।। ७।।
नात्यक्ष्यन् दुर्गतिं मर्त्या तत्रस्था स्यान्मनुष्यता ।
क्षेत्रेषु च बहुष्वेषा पशुपक्षि समाभवेत् ।। ८।।

टीका- देवर्षि प्रवास में चर्चा करते हुए कहते चल रहे थे। उत्तराखण्ड की गरिमा देवताओं के निवास और ऋषियों के तप साधन से बन पड़ी है। उन्होंने अपने लिए अनुकूलता का यह सर्वश्रेष्ठ स्थान देखा और इसी क्षेत्र में तन्मयता पूर्वक अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति हेतु बस गये। इन दोनों द्वारा जो कार्य बन पड़े उनसे समूची मनुष्य जाति कृतकृत्य बनी। आत्मिकी और भौतिकी की जो विभूतियाँ इस क्षेत्र में खोजी गईं यदि वे न मिलतीं तो मनुष्य दुर्गति से नहीं निकल पाते तथा सारी मनुष्य जाति नितान्त गई गुजरी स्थिति में पड़ी रहती। उसे अनेक क्षेत्रों में पशु-पक्षियों से भी गई गुजरी स्थिति में पड़ा रहना पड़ता ।। ४-८।।

यात्रायां विविधान् ताश्च प्रसंगांस्तु पुरातनान् ।
अगाद् विवेचयद् व्यासगुहां पुण्यां तु मण्डलम् ।। ९।।
बद्रीधामतश्चेयमग्रे सन्निकटे स्थिता ।
वसुधारा प्रपातस्य पीयूषोपमितस्य तु ।। १०।।
अष्टादश पुराणानि कृष्ण द्वैपायनो मुनिः ।
रचयामास ज्ञानस्य निधीन् सर्वविधस्य सः ।। ११।।
सहयोगं गणेशस्य कार्येऽस्मिन प्राप स मुनिः ।
लोककल्याण लग्नानां नृणां सन्मनसां सुराः ।। १२।।
कुर्वते मुक्तहस्तेन साहाय्यं सर्वदैव ते ।
शृण्वन्तः प्रार्थनां पूरयन्ति मनोरथान् ।। १३।।
अतः पूर्वं च पश्यन्ति याचते कः कथं तथा ।
परीक्षैषा च प्रत्येकक्षेत्रे वैचारिकेऽस्ति च ।। १४।।

टीका- यात्रा में अनेक पुरातन प्रसंगों की चर्चा करते हुए मण्डली महर्षि व्यास की गुफा पर पहुँची। यह बद्रीनाथ धाम से आगे अमृततुल्य वसुधारा जल प्रपात के निकट है। यहाँ निवास करते हुए द्वैपायन ने सब प्रकार के ज्ञानों के भण्डार अठारह पुराणों की रचना की थी। इस कार्य में उन्हें गणेश का अनवरत सहयोग मिला था। देवता लोकमंगल के सत्प्रयोजन में निरत सदाशयता सम्पन्न लोगों की मुक्तहस्त से सहायता करते हैं। वे प्रार्थना सुनते हैं और कामना की पूर्ति भी करते हैं। पर इससे पूर्व यह भी देखते हैं कि कौन माँगता है ? किस प्रयोजन के लिए माँगता है ? ऐसी परख हर विचारशील क्षेत्र में होती है ।। ९-१४।।

पुरस्कृतानि जायन्ते सत्पात्राणि न संशयः ।
कुर्वते परमार्थस्य त्रिविधायां तु ये नराः ।। १५।।
परीक्षायां निजान् पूर्णान् दृढांस्तत्र प्रमाणितान् ।
अलसाःस्वार्थिनो हेयस्तरा लोका यदि स्वयम् ।।१६।।
भिक्षुका इव याचन्ते तस्करा इव वा पुनः ।
लिप्सा पूर्त्यै च देवानामनुकम्पा तु केवलम् ।। १७।।
उपहारच्छलेनैते निराशां यान्ति निश्चितम् ।
एते पशु समानां च भजन्ते वृत्तिमन्ततः ।। १८।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- सत्पात्र ही पुरष्कृत किए जाते हैं, इसमें संदेह नहीं और परमार्थ की त्रिविधि परीक्षाओं में अपने को खरा प्रमाणित करते हैं। स्वार्थी, आलसी और हेय स्तर के लोग यदि भिक्षुकों या तस्करों की तरह लिप्सा पूर्ति के लिए देवताओं की अनुकम्पा मात्र मनुहार उपहार के बदले सस्ते मोल में माँगते हैं तो उन्हें निराश ही होना पड़ता है। अन्ततः पशुओं के समान उदरादि पूर्ति में ही जीवन नष्ट कर देते हैं ।। १५-१८।।

उच्चं लक्ष्यं गतो व्यासो यः कथामाध्यमेन च ।
जनं साधारणं धर्म धृतिमादर्श वादिताम् ।। १९।।
गृहीतुं प्रेरयामास यमुद्दिश्य लिलेख सः ।
नाहंकारो निजस्तस्य न लोभः स्वार्थ एव वा ।। २०।।
यल्लिलेख महर्षिः स आदर्शान् परिशोधितुम् ।
तदभूत्केवलं गूढो विषयो ज्ञान तत्वगः ।। २१।।
तज्ज्ञानं ज्ञापनं चैव विद्वद्वर्गेण संभवम् ।
सामान्यांनां कथाशैली नृणां रूचिकरीत्विह ।। २२।।
बालावृद्धायुवानोंवाऽशिक्षिताः शिक्षिता अपि ।
कथां शृण्वन्तिजानान्तिस्वीकुर्वन्त्यापि चाञ्जसा।।२३।।

टीका- व्यास का उद्देश्य ऊँचा था। वे कथा-माध्यम से जन साधारण को धर्मधारणा और आदर्शवादिता अपनाने की प्रेरणा देने का उद्देश्य लेकर लेखन कार्य में निरत हुए थे। उनका निजी स्वार्थ लोभ या अहंकार उसमें तनिक भी नहीं था। जो लिखा केवल आदर्शों के परिशोधन हेतु था। तत्व ज्ञान का विषय गूढ है। उसे समझना-समझाना विद्वान वर्ग के लिए ही सम्भव है। सर्व साधारण को कथा शैली रुचिकर लगती है। उसे बाल-वृद्ध, शिक्षित, अशिक्षित सभी सरलता पूर्वक समझते और अपनाते हैं ।। १९-२३।।

वर्गमेतं विचार्यैव व्यासो लेखं लिलेख सः ।
शिवपुत्रो गणेशश्च दृष्ट्वोद्देश्यस्य पावनीम् ।। २४।।
महत्तामाजगामाशु विशेषमाग्रंह विना ।
प्रयोजने महत्यस्मिन् सहयोग समीहया ।। २५।।
व्यासोऽवदल्लिलेखासौ गणेशोऽनारतं समम्।
महाभारत मित्थं तत्पुराणान्यपि चान्ततः ।। २६।।
अल्पेनैव च कालेन गतान्येतानि पूर्णताम् ।
आरण्यकेषु तच्छिष्या व्यधुस्तेषां प्रतीरपि ।। २७।।
कृतस्तेषां विस्तरश्च विद्वद्भिर्जगती तले ।
जातो जगद्गुरुर्लोक हित साधनयाऽनया ।। २८।।
नमन्ति चरणौ व्यास पूर्णिमायां जनास्ततः।
जातेयं विश्रुता लोके पूर्णिमा गुरु पूर्णिमा ।। २९।।
अविच्छिन्ना विधातव्या सेयं दिव्य परम्परा ।
अस्माभिरपि कालेऽस्मिन् भीषणे भ्रान्ति पूरिते ।। ३०।।

टीका- व्यास ने इसी वर्ग को ध्यान में रख कर लेखनी उठाई। शिवपुत्र गणेश ने उद्देश्य की महानता को देखा और बिना आह्वान निमन्त्रण की प्रतीक्षा किये उस महान प्रयोजन में सहायता करने के लिये स्वयं जा पहुँचे। व्यास बोलते और गणेश लिखते गये। इस प्रकार महाभारत आदि अठारह-पुराण थोड़े से समय में पूरे हो गये। उनकी प्रतिलिपियाँ अनेक तीर्थ आरण्यकों में हुईं और उनका विस्तार विद्वज्जनों द्वारा समस्त संसार में हो गया। इसी लोकहित साधना से यह जगद्गुरु कहलाये तथा व्यास पूर्णिमा के दिन सारा संसार इनके चरणों की वन्दना करता है, इनकी यह व्यास-पूर्णिमा गुरुपुर्णिमा बन गई। भ्रान्ति से भरे पूरे इस भीषण युग में हमें इस दिव्य परम्परा को अविच्छिन्न बनाये रखना है, ताकि लोक कल्याण हो सके।। २४-३०।।

देवर्षिः श्रावयामास सोऽन्यत्सृष्टं सुविस्तृतम्।
लोक चित्त परिष्कार कर्तृ साहित्य मुत्तमम् ।। ३१।।
आश्रमेषु च केष्वेताः स्मृतयस्तु विनिर्मिताः ।
ऋषिभिः कैः कदेत्येवमैतिह्यं विस्तराज्जगौ।। ३२।।
परिवर्तनमायाते काले कालानुसारतः ।
नूतनान्यपि शास्त्राणि निर्मेयानि बुधैः सदा ।। ३३।।
विपरीतासु सदा मान्याः ! स्थितिष्वत्र तु कानिचित्।
प्रतिपादनकान्येवं गच्छन्त्यनुपयोगिताम् ।। ३४।।
तत्स्थाने च नवीनं हि संस्कृतं परिवर्तनम् ।
अपेक्ष्यते नवाश्चातो धर्म ग्रन्था विनिर्मिताः।। ३५।।
चतुर्विंशति संख्यानां स्मृतीनां नारदो मुनिः ।
नामान्यजीगणद् भिन्न समये लिखितास्तु याः।। ३६।।

टीका- देवर्षि ने लोकमानस के परिष्कार में निरत अन्यान्य ऋषियों के उत्तम साहित्य सृजन का विवरण सुनाया। स्मृतियाँ किन आश्रमों में किन ऋषियों द्वारा विनिर्मित हुईं इसका इतिहास उन्होंने विस्तारपूर्वक रास्ता चलते-चलते सुनाया। समय बदल जाने पर नये समय की आवश्यकता के अनुरूप नये शास्त्रों का सृजन विद्वानों को करना पड़ता है। हे मान्य मनीषियो ! कुछ पुराने प्रतिपादन परिस्थिति बदल जाने पर अनुपयोगी हो जाते हैं। तब उनके स्थान पर नये सुधार परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ती है। नये धर्म ग्रन्थों के निर्माण का यही उद्देश्य रहा है। नारद जी ने चौबीस प्रमुख स्मृतियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के नाम गिनाये, जो भिन्न-भिन्न समय में लिखी गई थीं।। ३१-३६।।

शास्त्र निर्माण कर्तृणां साधना लेखनस्य तु ।
योगाभ्यास तपोऽभ्यास प्रकारां घोषयन्मुनिः।। ३७।।
स्थानान्येषां च नामानि ययावग्रे विबोधयन्।
वक्तव्यं स्वं यथापूर्वं कृत्वाऽऽरब्धमुवाच च।। ३८।।
निर्धारणानि गंभीर विचारानुसृतानि च ।
विज्ञानाविष्कृतिर्नूनमेकान्तोत्पाद्यतां गता ।। ३९।।
वातावृतौ सुयोग्यायां कार्याण्येवं विधानि तु ।
संभवन्ति मनोबुद्धियोग योग्यानि वै यतः ।। ४०।।
साहित्य सृजने तूच्चे स्रष्टुः स्वीया परिस्थितिः।
विचार पद्धतिः शान्ता स्युः सा दैनन्दिनी तथा।।४१।।

टीका- शास्त्रकारों की लेखन साधना को योगाभ्यास और तप साधना का ही एक प्रकार ठहराते हुये सृजन कर्त्ताओं के नामों और स्थानों का दर्शन कराते हुये देवर्षि जिज्ञासु मण्डली समेत आगे बढ़ते गये। अपने वक्तव्य को जारी रखते हुये उन्होंने कहा-गम्भीर विचार-निर्धारण भी वैज्ञानिक आविष्कारों जैसे ही एकान्त में बन पड़ने वाला उपयुक्त वातावरण में मन व बुद्धि की एकाग्रता से सम्भव हो सकने वाला कार्य है। उच्चस्तरीय साहित्य सृजन में सृजेता की जीवन-चर्या,विचार-पद्धति एवं परिस्थिति सात्विकता से भरी पूरी होनी चाहिये।। ३७-४१।।

निर्धारकास्तु ये देव संस्कृते स्तेऽस्य पूर्तये ।
उद्देश्यस्य सतः सृष्टिं साहित्यस्य तु मे निरे।। ४२।।
आत्मलोको भयोर्भव्यं पुण्यं कार्यं समान्वितम्।
शक्तिरात्मरूचिर्येषां योग्यऽभूज्जीवने स्वके।। ४३।।
तत्र तन्मयता पूर्वं जाता लग्ना निरन्तरम् ।
परमार्थ प्रयासं ते प्रभु शक्तिं च मेनिरे ।। ४४।।
पूजा भगवतः सत्या क्रियते कर्मभिः शुभैः ।
पूजाया उपहारस्य वाञ्छा नैवेश्वरस्य तु ।। ४५।।

टीका- देव संस्कृति के निर्धारकों ने उस ऊँचे उद्देश्य की पूर्ति के लिये सत् साहित्य सृजन को आत्म-कल्याण और लोक-मंगल का समन्वित पुण्य कार्य माना और जिन्हें उसके उपयुक्त अपनी क्षमता एवं आत्मरुचि प्रतीत हुई उसमें वे तन्मयता पूर्वक आजीवन लगे रहे। यह परमार्थ प्रयास ही उनके लिये ईश्वर भक्ति थी। भगवान की सच्ची पूजा सत्कर्मों से ही की जाती है। उन्हें मनुहार उपहार की न इच्छा रहती है, न आवश्यकता। ऋषियों में से जो साहित्य-सृजेता थे उन्हें वह समग्र श्रेय प्राप्त हुआ जो भगवद् भजन से प्राप्त होता है।। ४२-४५।।

ऋषीणां ये च साहित्य स्रष्टारः श्रेय उत्तमम्।
समग्रं लब्धमेतैस्तद् भक्त्या यत्प्राप्यते नरैः।। ४६।।
अद्य प्रवासे तेषां स परिव्राजां मनीषिणाम्।
निवासन् दर्शयामास येषु चात्म परिष्कृतेः ।। ४७।।
हेतोस्तपोऽभिवृद्धेस्ते न्यवात्सुरिह सन्ततम्।
मनः स्थितौ सुपक्वायां तीर्थयात्रां च कुर्वते।। ४८।।
पदयात्रा तु धर्मार्थं तीर्थयात्रा निगद्यते ।
अतो मार्गेऽभियाता ये तेषां चित्तास्थितेस्तथा।।४९।।
परिस्थितेः स्वरूपेण सर्वानुपदिशन्त्यपि ।
रात्रौ तिष्ठन्ति यत्रैव कथाकीर्तन मप्यलम् ।। ५०।।
तत्र ते कुर्वते धर्म चेतनाया नवांकुरान् ।
वपन्त्येव च सिञ्चान्ति परिपक्वांश्च कुर्वते।। ५१।।

टीका- आज के प्रवास में नारद ने उन परिव्राजक मनीषियों के स्थान दिखाये जिनमें आत्मशोधन और तपोबल सम्बर्धन के निमित्त हिमाचल क्षेत्र में निवास करते थे और फिर अपनी मनःस्थिति परिपक्व होते ही तीर्थयात्रा पर निकल पड़ते थे। धर्म प्रचार की पदयात्रा ही तीर्थयात्रा है। मार्ग में जो मिले उन्हें उनकी मनःस्थिति एवं परिस्थिति के अनुरूप परामर्श देते चलते थे। रात्रि को जहाँ ठहरते थे, वहाँ कथा-कीर्तन के माध्यम से धर्म चेतना का बीजांकुर बोते उगाते, सींचते एवं परिपक्व करते थे।। ४६-५१।।

गृहोस्थिता जना देव मानवानां यदृच्छया ।
आगतानां लभन्ते चेत्सत्संगं मार्ग दर्शनम् ।। ५२।।
उज्जवलोत्तरमेतत्तु वरदानायितं नृणाम् ।
भवन्तिस्म च तीर्थेषु पर्वगायोजनान्यपि ।। ५३।।
संगता ऋषयस्तत्र कालिकीस्ताः परिस्थितीः।
विचार्योपायमप्यासां निर्दिशन्ति सदैव च ।। ५४।।
आयोजनेषु तेष्वेते धर्मात्मानो जनाः समे ।
सम्मिलन्ति विशालायां संख्यायामुत्सुका भृशम्।। ५५।।
क्षेत्रेषु च निजेष्वेते मुनि निर्धारणानि तु ।
क्रियान्वितानि कर्तुं चायान्ति दायित्व संयुताः।। ५६।।
कुम्भादीनां तु जागृत्यै क्षेत्रजानामथापि च।
स्थानजानामुत्सवानामुपयोगित्व मस्ति तत् ।। ५७।।
ऋषयः कुर्वते तेषां सूत्र सञ्चालनं सदा ।
चातुर्मासे व्यधुर्मुख्यं सत्सगोपक्रमं स्वकम् ।। ५८।।
दूरस्था अपि चागत्य जनास्तिष्ठन्ति तत्र च।
विकसितं जीवनं कर्तुं समाजोन्नतिकारिकाम्।। ५९।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्त्वमहितां सर्वे व्यवस्थां प्राप्नुवन्त्यपि ।
तेन सन्तुलनं तत्र समाजे तिष्ठति स्वयम् ।। ६०।।

टीका- घर बैठे देव मानवों का सत्संग मिलना और उनके परामर्श से उज्ज्वल भविष्य का मार्ग दर्शन प्राप्त होना वरदान प्राप्त होना जैसा है। तीर्थों में समय-समय पर पर्व आयोजनों की व्यवस्था बनती थी। ऋषिगण उनमें एकत्रित होकर सामयिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में विचार विनिमय करते और उपाय निकालते थे। उन आयोजनों में धर्म प्राण उत्सुक लोग बड़ी संख्या में पहुँचते थे, और अपने-अपने क्षेत्र में ऋषि निर्धारणों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व ओढ़कर वापस लौटते थे। कुम्भ पर्वों से लेकर क्षेत्रीय,स्थानीय अनेकानेक धार्मिक मेलों का होते रहना जन जागृति की दृष्टि से अतीव उपयोगी सिद्ध होता था। ऋषियों द्वारा उनका सूत्र संचालन होता था। चातुर्मास में वे अपना विशेष सत्संग उपक्रम रखते थे, जिसमें दूर-दूर के लोग आकर वहाँ ठहरते और जीवन को विकसित करने तथा समाज को समुन्नत बनाने वाले महत्त्वपूर्ण परामर्श प्राप्त करते थे। इसी से उस समय समाज में सन्तुलन बना रहता था।। ५२-६०।।

छात्राअपि प्रयान्त्येवं तीर्थ यात्रा गतौ सदा ।
ऋषिभि: सह दिव्यैस्तै: सदाचारयुतै: सदा ।। ६१।।
अधीयानाश्च ते विद्याश्चारयन् गाश्च तत्र तु।
सह पर्यटनेनैव समस्या जीवनोद्भवा: ।। ६२।।
सकारणाश्च विज्ञाय विचार्यापि निवारणम् ।
स्वकीयं ज्ञान भण्डारं वर्द्धयन्ति निरन्तरम् ।। ६३।।
कारणं चेदमेवाभूद् यद् हिमालयवासिन: ।
ऋषय आत्मशक्तेस्तु व्यक्तिगा: साधनास्तुता:।। ६४।।
सम्पाद्याविपरतं सर्वे प्रवासे निवसन्ति च ।
मिथ्याडम्बर हीनास्ते पावयन्ति जनं जनम्।। ६५।।
शिष्या अपि च तै: सार्धं समयेऽस्मिन् सदैव च।
निवसन्त: स्वयं सिद्धाश्चलन्त्यभ्युदयाध्वनि ।। ६६।।
प्रायो गुरुकुलानां तु चलनं भ्रमतां सदा ।
अभूदृषिकुलानां च लोकसम्पर्क कारणात् ।। ६७।।
विद्यालया अतस्तत्र भव्यशालास्तु केचन ।
न्यूना एव बभूवुश्च निर्मितास्ते सुसज्जिता: ।। ६८।।

टीका- उन सदाचारी दिव्य ऋषियों के साथ तीर्थयात्रा पर छात्र मण्डली भी चलती थी। विद्यार्थी विद्याध्ययन करते गौएं चराते एवं पर्यटन के समय जनजीवन की अनेकानेक समस्याओं स्वरूप कारण एवं निवारण समझते हुये ज्ञान भण्डार को निरन्तर बढ़ाते चलते थे। यही कारण था कि हिमालयवासी ऋषिगण कुछ समय आत्मबल सम्पादन की व्यक्तिगत साधनाएँ सम्पन्न करने के उपरान्त निरन्तर प्रवास में रहते थे। अपनी मिथ्याडम्बरहीनता से प्रत्येक व्यक्ति को पवित्र हृदय बना देते थे। इसी बीच उनके शिष्यगण साथ रहते चलते जीवन साधना द्वारा सर्वतोमुखी अभ्युदय का पथ-प्रशस्त करते रहते थे। उन दिनों लोक सम्पर्क की दृष्टि से भ्रमणशील ऋषिकुलों-गुरुकुलों का अधिक प्रचलन था। अतएव भव्य भवनों वाले साज-सज्जायुक्त स्थिर विद्यालय कम ही निर्मित होते थे।। ६१-६८।।

विद्यते वैभवं सत्यं सज्ज्ञानं मानवस्य तु ।
तदाश्रित्य विकासं च व्यक्तित्वं भजते दृढ़म्।। ६९।।
प्रतिभा पक्वतायां तु विद्यते ज्ञान सम्पद: ।
इहासाधारणं योगदानं हितकरं नृणाम् ।। ७०।।
संसारस्य समस्तस्य मानवानां विशेषत: ।
सेवा सज्ज्ञान बृद्धे: सा जायते तुष्टिदाऽऽत्मने।।७१।।
दत्त्वौषधमथेहान्न वस्त्रादीनि च कस्यचित् ।
सेवाकृता भवेन्नैव स्थायिनीति विविच्यताम् ।। ७२।।
पुरूषार्थेन निजेनैव तीर्त्वा कष्टानि संभवेत् ।
नर: समुन्नतो लोके सुखी चैव निरन्तरम् ।। ७३।।
सज्ज्ञानं च विनानैव स्वरूपं पुरूषार्थगम् ।
विवेको व्यवहारस्य तस्य लोके च संभवेत् ।। ७४।।
कुर्वते ज्ञानदानं ये श्रेष्ठास्ते दानिनो मता: ।
अपरिग्रहिणस्तत्वदर्शिन: साधवो मता: ।। ७५।।
सञ्चितेन विवेकेन कुबेरादपि वस्तुत: ।
नरा आढ्यतरा आढ्यान् कुर्वते दयया नरान्।। ७६।।

टीका- मनुष्य का सच्चा वैभव सद्ज्ञान है। उसी आधार पर प्रखर व्यक्तित्व विकसित होते हैं। प्रतिभा परिपक्व करने में ज्ञान सम्पदा का हितकारी असाधारण योगदान रहता है। मानव जाति की-समस्त संसार की सेवा सद्ज्ञान संवर्धन से ही होती है। इसी से आत्म सन्तोष भी प्राप्त होता है। अन्न, वस्त्र ओषधि आदि देकर किसी की स्थायी सेवा नहीं हो सकती , यह प्रत्येक को विचारना चाहिये। अपने पुरुषार्थ से ही कठिनाइयों से उबरा और सुखी समुन्नत बना जाता है। पुरुषार्थ का ही सही स्वरूप और उसे अपनाये रहने का विवेक सद्ज्ञान के बिना और किसी प्रकार संभव नहीं। ज्ञान-दान करने वालों को सबसे बड़ा दानी माना गया है। इसलिये तत्वदर्शी अपरिग्रही सन्त संचित विवेकशीलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के कारण कुबेर से बढ़कर सम्पत्ति वाले माने गये हैं। वे जिस पर भी अनुग्रह करते हैं, उसे धनवान बना देते हैं।। ६९-७६।।

क्षमा बोधायितुं तेऽपि शिष्टाचारं तु लौकिकम्।
सामान्याः शिक्षकाः सर्वे परं स्यात्तु यया ध्रुवम।।७७।।
गुणकर्म स्वभावानां परिष्कारस्तथा भवेत् ।
स्फीतं व्यक्तित्वमत्यर्थं मर्त्य गौरवरूपगम् ।। ७८।।
महत्वमुद्भवेत्तां तु प्रेरणामृषयः पराम् ।
दातुमत्र समर्थास्तु स्वयं सिद्धास्तपस्विनः ।। ७९।।
अध्यापका अनेकेऽत्र सन्ति नूनं तथापि ये।
प्राण चेतनयात्वन्यान् सम्पर्के समपागतान्।। ८०।।
कुर्वते प्रखर प्राणानीदृशा देव मानवाः ।
ऋषि तुल्यास्तु लोकेऽस्मिन्यूना एव भवन्ति तु।।८१।।
ये भवन्ति समे ते तु ज्ञानेनैव सह स्वयम् ।
उत्कृष्टताऽमृतं सर्वान् पाययन्ति निरन्तरम्।। ८२।।
दृष्टिं स्फीतां च कुर्वन्ति दिशायां जीवनस्य च।
उच्चस्तरं महामूल्यं कुर्वते परिवर्तनम् ।। ८३।।

टीका- लोक व्यवहार की जानकारी तो सामान्य शिक्षक भी दे सकते हैं। पर जिससे गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार हो-व्यक्तित्व निखरे एवं मानवीय गरिमा के अनुरूप महानता का उद्भव हो ऐसी अन्तःप्रेरणा मात्र स्वयं सिद्ध तपस्वी ऋषि ही दे सकते हैं। अध्यापक अनेकों होते हैं पर जो अपनी प्राण चेतना से सम्पर्क में आने वालों का प्राण उभार सके, ऐसे ऋषि कल्प देव मानव कम ही होते हैं। जो होते हैं वे ज्ञान के साथ-साथ सदा उत्कृष्टता का अमृत पिलाते हैं, दृष्टिकोण बदलते हैं और जीवन की दिशा धारा में उच्च स्तरीय महान् परिवर्तन करते हैं।। ७७-८३।।

कृत्वा गौरवपूर्णं च व्यक्तित्वं सञ्चितां निजाम्।
भूतिमाश्रित्य तेषां च पौरूषं योजयन्त्यलम्।। ८४।।
परिष्कारे नृणामन्तः करणस्य सदैव च ।
एष एव मतो लोक ऋषि धर्मः सनातनः ।। ८५।।
अस्मै प्रयोजनायैते योजनाः कालिकीः सदा ।
स्थिरयन्ति यथायोग्यं चालयन्ति पुरोगमान्।। ८६।।
महत्वं नास्ति लोकेऽस्मिन्नुच्चता कारणादथ।
प्रकृतेः सम्पदाया वा परं वासस्य कारणात्।। ८७।।
ऋषिणामस्ति तेषां तु यैरुप्ता ज्ञान सम्पदा ।
कृताऽप्यंकुरिता जाताः स्थितयः सुखदा यथा।। ८८।।
कृतयुगः स हि नैवान्यत् सत्फलं विना ।
मुनिभिर्बोधितस्यास्य सज्ज्ञानस्य तु केवलम्।। ८९।।
उत्पादनमिदं यत्र क्षेत्रे सञ्जायते सदा ।
देवात्मेत्येच्यते क्षेत्रं सार्थकं तत्तु सर्वतः ।। ९०।।

टीका- इसलिये व्यक्तित्व को गौरवशाली बनाने के उपरान्त वे इस संचित विभूति के आधार पर अपने उदार पुरुषार्थ का उपयोग जन-जन का आन्तरिक परिष्कार करने में लगाते हैं। यही सनातन ऋषि धर्म है। इस प्रयोजन के लिये वे समयानुसार अनेक योजनाएँ बनाते व कार्यक्रम चलाते रहते हैं। महानता ऊँचाई एवं प्रकृति सम्पदा के कारण नहीं, निवास करने वाले उन ऋषियों के कारण है जिनने इस क्षेत्र में ज्ञान सम्पदा बोई, उगाई और उससे सर्वत्र प्रगति और सम्पत्ति भरी, सुखद परिस्थितियाँ बनायीं। पुरातन काल का सतयुग और कुछ नहीं केवल मुनि मनीषियों द्वारा उत्पन्न किये और बखेरे गये सद्ज्ञान का ही प्रतिफल था। यह उत्पादन जिस क्षेत्र में होता रहे उसे देवात्मा कहा जाना हर दृष्टि से सार्थक है।। ८४-९०।।

सज्ज्ञान विग्रहा देवा ऋषयः स्थापनां व्यधुः।
वातावृतौ शुभायां ते तीर्थानां पुण्यदायिनाम्।। ९१।।
गतयो विधयस्तत्रारण्यकस्तरगाः सदा ।
चलन्ति स्म व्यतीते च जीवनस्यार्धभागके ।। ९२।।
प्रयोजनेषु संसार सम्बन्धिषु च युञ्जते ।
उत्तरार्धं परार्धेषु देवसंस्कृतिगा नराः ।। ९३।।
वानप्रस्थस्तरेणैव जीवन्तीह व्यवस्थितिः ।
तेषामध्यापनस्या भूदभ्यासस्यकृते तथा ।। ९४।।
तपसोऽपि तथा तत्र केन्द्रेष्वेव तु सादरम् ।
नेशुराधय एतेन व्याधयो भास्वतेव तु ।। ९५।।

टीका- सद्ज्ञान के शरीरधारी देवता ऋषियों ने अनुकूल वातावरण में अनेकानेक पुण्यदायी तीर्थों की स्थापना की। उन सभी में आरण्यक स्तर की गतिविधियाँ चलती थीं। आधा जीवन सांसारिक प्रयोजन में लगाने के उपरान्त देव-संस्कृति के सच्चे अनुयायी जीवन का उत्तरार्द्ध परमार्थ प्रयोजन में लगाते थे। वानप्रस्थ स्तर का जीवन जीते थे। उसके लिये आवश्यक अध्यापन अभ्यास एवं तप साधन की व्यवस्था उन्हीं धर्म केन्द्रों में ससम्मान रहती थीं। उनके वहाँ निवास से मानसिक आधियाँ (कष्ट) उसी प्रकार से नष्ट हो जाती हैं, जैसे तेजस्वी सूर्य के प्रभाव से शारीरिक व्याधियाँ ।। ९१-९५।।

जनाः साधारणा अत्र प्रायश्चित्तं तु पापजम्।
कर्तुमायान्ति स्वं तच्च भविष्यत्कर्तुमुज्जवलम्।। ९६।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निश्चेतुं च तदर्थं ते नव्यान् गतिविधीन् शुभान्।
व्यपैत्यनेन तेषां स बुद्धेः ज्वर इव समः ।। ९७।।
सावकाशा जनाः स्वस्य साधनायै तु यत्नतः।
जीवनस्य व्रजन्ति स्म नित्यमारण्यकेषु ते ।। ९८।।
व्यवहारे तथा स्वस्य दृष्टिकोणे शुभोदयम् ।
उच्चस्तरं समावेशं कृत्वा प्रत्यावजन्त्यपि ।। ९९।।
चचालारण्यकेष्वेषा नियता कल्प साधना ।
संस्कारांश्च शिशूनां ते व्रत धारणमुज्जवलम्।। १००।।
वयस्कानां तथा श्राद्ध तर्पणं स्वर्गगामिनाम्।
पितृणामेषु माहात्म्यमसंख्यं प्रोक्तमन्यतः ।। १०१।।

टीका- साधारण जन यहाँ पापों का प्रायश्चित करने उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिये अभिनव गतिविधियाँ निर्धारित करने के निमित्त आते थे। इससे उनकी बुद्धि में समाई कुण्ठित भावनाएँ दूर हो जाती थीं। अवकाश के समय जीवन साधना के लिये लोग आरण्यकों में पहुँचते थे और अपना दृष्टिकोण व्यवहार में उच्च स्तरीय समावेश करके वापस लौटते थे। ऐसी कल्प साधना सभी आरण्यकों में नियमित रूप से चलती थी। बालकों के संस्कार, वयस्कों के व्रत धारण, सब दिवंगतों के श्राद्ध-तर्पण तीर्थ आरण्यकों में करने का माहात्म्य साधारण स्थानों की अपेक्षा असंख्य गुना अधिक माना गया है।। ९६-१०१।।

सजीवामि तु तीर्थानि प्रोच्यन्ते स्म महर्षयः।
तदा तीर्थात्मतां याता मन्यन्तेऽपि सदाश्रयात्।। १०२।।
वसन्ति यत्र तान्येव यान्ति स्थानानि तीर्थताम्।
तीर्थावगाहि मर्त्यानां जीवनेऽभूत्परिष्कृतिः ।। १०३।।
ऋषि व्यक्तिगता योग साधनाऽथापितत्तपः।
एतदर्थमभूतां ते यान्तु सज्ज्ञान सन्निधिम्।। १०४।।
भूति सम्पदया ते च तया कुर्वन्ति सन्ततम्।
व्यवस्थां सकलां जीवकल्याणानुगतां शुभाम्।। १०५।।

टीका- ऋषियों को सजीव तीर्थ कहा जाता था। उन्हें सत् की आराधना व सिद्धि से तीर्थ की आत्मा कहा जाता था। जहाँ वे रहते थे, वहीं तीर्थ बन जाते थे। तीर्थों का अवगाहन करके मनुष्यों की जीवनचर्या में आशाजनक सुधार परिवर्तन होता था। ऋषियों की व्यक्तिगत योग साधना और तपश्चर्या इसी निमित्त थी कि वे सद्ज्ञान के भण्डागार बनें और उस विभूति सम्पदा से जन-जन के कल्याण का सरंजाम जुटायें।। १०२-१०५।।

नारदो दर्शयामास रतानां ज्ञान साधने ।
ऋषीणां ता गुहा भूत कालिकानां सुमंगलाः।। १०६।।
परिचयं तन्निवासस्य कार्यक्षेत्रस्य स व्यधात्।
अन्वभून्मण्डलं तच्च जातं क्षेत्रमिदं कथम्।। १०७।।
विपिनं चान्दनं धन्यमिव वा नन्दनं वनम् ।
जातं सुरभितं विश्वं सौरभेणास्य तत्कथम्।। १०८।।
कारणं चैकमेवात्र क्षेत्रे बाहुल्यमत्र तु ।
ऋषीणामुच्च व्यक्तित्व पौरुषाणां पदे-पदे।। १०९।।

टीका- नारद जी ने ज्ञान साधना में संलग्न रहे भूतकाल के अनेकानेक ऋषियों की मंगलमय गुफाएँ दिखाईं। उनके निवास एवं कार्यक्षेत्र का परिचय कराया। सभी मण्डली ने अनुभव किया कि चन्दन वन-नन्दन वन की तरह यह क्षेत्र क्यों धन्य बना और क्यों उसकी सुगंध संसार भर में फैली ? कारण एक ही था- इस क्षेत्र में ऋषि समुदाय का बाहुल्य और उनका उच्चस्तरीय व्यक्तित्व एवं पराक्रम।। १०६-१०९।।

हिमाद्रि संगतानां तु महत्त्वानां समेऽपि ते ।
ज्ञात्वा हेतुं रहस्यं च भृशं तोषमुपागमन् ।। ११०।।
अनन्तरं विशालायां गुहायां श्रम शान्तये ।
गतास्ते कन्दमूलैश्च फलैः शान्तां व्यधुः क्षुधाम्।।१११।।
समये चागते सन्ध्यां नियतां तते समाप्य च।
हापिता रात्रिरत्यर्थं पुण्ये क्षेत्रेऽत्र विह्वलैः ।। ११२।।

टीका- सभी को हिमालय के साथ जुड़ी हुई महानता का रहस्य और कारण समझने के उपरान्त बहुत सन्तोष हुआ। बड़ी कंदरा में विश्राम के लिये चले गये। समीप ही उगे कंद फलों से क्षुधा निवृत्ति की और समय आने पर नियमित सन्ध्या-वन्दन के उपरान्त इसी पुण्य क्षेत्र में भाव-विभोर उन लोगों ने रात्रि बिताई।। ११०-११२।।

इति श्रीमद्प्रज्ञोपनिषदे देव संस्कृति खण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो, युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः, महर्षि नारद प्रतिपादितेऋषि प्रकरणम्" इति प्रकरणो नाम
।। द्वितीयोऽध्यायः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

हिमाद्रि हृदय प्रकरण -

दिनं तृतीयमद्याऽभूत्प्रवासस्य हिमालये ।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय कृत नित्य क्रियास्ततः ।। १।।
नारदस्य तु नेतृत्वे सज्जाः प्रवसितुं समे ।
पुनीतानां स्थलानां च दशनै सहते पुनः ।। २।।
ज्ञानेनास्येतिहासस्य पौरूषोद्देश्ययोरपि ।
हृदयंगानि तथ्यानि कर्तुं सौविध्यमाययुः ।। ३।।
ईदृशो नैव सम्प्राप्तो योगस्त्वानन्ददायकः ।
पूर्वमेतेन क्वाप्यत्र भ्रमता मण्डलेन तु ।। ४।।
प्रश्नोत्तर विधिश्चात्र चलतामेव शोभनः ।
हृद्योऽभूच्च नृणां मार्गश्रमखेदं न ते गताः ।। ५।।
मनोविनोदयन्तस्ते लक्ष्यस्थानानि चाञ्जसा ।
तरन्त्येव नवं दृश्यं पश्यन्तश्चोत्सुका भृशम् ।। ६।।
मण्डलस्थः सदस्यः स ऋषिश्रेष्ठ उवाच च ।
कणादः सहसा तत्र नारदं मुनिसत्तमम् ।। ७।।

टीका- आज हिमालय परिसर में प्रवास का तीसरा दिन था। ब्रह्ममुहूर्त में मुनि-मनीषियों की मण्डली उठकर नित्यकर्म से निवृत्त हुई। महाभाग नारदजी के नेतृत्व में सभी प्रवास के लिये तत्पर हो गये। पुनीत स्थलों को देखने के साथ-साथ उसका इतिहास जानने एवं उद्देश्य-पुरुषार्थ का स्वरूप समझते चलने से तथ्यों को हृदयंगम करने में बड़ी सहायता मिल रही थी। ऐसा आनन्ददायक सुयोग इस भ्रमणशील मण्डली को इससे पूर्व कभी भी मिला नहीं था। चलते-चलते अनेक प्रश्न पूछने और उनके समाधान प्राप्त करने की पद्धति सभी को उत्तम लगी। इससे मार्ग का श्रम किसी को खलता नहीं था। हँसते-हँसते मंजिल पार होती रहती थी। नये दृश्यों को देखते हुये वह और भी उत्सुक हो रहे थे। मण्डली के एक सदस्य ऋषिवर कणाद ने मुनि श्रेष्ठ नारद जी से पूछा।। १-७।।

कणाद उवाच-

देवान्यासऽपि सन्त्येव शोभाः प्रकृतिजास्तथा ।
जलवायुकृतं चास्ति वातावरणमुत्तमम् ।। ८।।
तदुपेक्ष्य कथं सर्व आत्मवेत्तार एव च ।
शीताधिक्यमथाप्यत्र विद्यमानं पदे पदे ।। ९।।
अवरोहमथारोहम सौविध्यकरं परम् ।
अविचार्यैव वासं स्वं निश्चिन्वन्ति कथं त्विह ।। १०।।
त्यक्त्वा सामाजिकं चात्र गुहावासकरं कथम् ।
एकान्तं जीवनं सर्वे वाञ्छन्त्येते महर्षयः ।। ११।।
बोद्धयतां कृपया चैतद्रहस्यं भवताऽद्भुतम् ।
आकर्ण्य प्रश्नमेतत्तु जगाद नारदो मुनि ।। १२।।

टीका- कणाद ने कहा- हे देव ! संसार में अन्यत्र भी अनेक प्राकृतिक शोभा और अनूकूल जलवायु वाले स्थान हैं। उनकी उपेक्षा करके आत्मवेत्ता उत्तराखण्ड को ही अपनी साधनाओं के लिये क्यों उपयुक्त समझते हैं। शीत अत्यधिक होने तथा पद-पद पर चढ़ने-उतरने की असुविधा को ध्यान न देकर वे यहीं क्यों अपना निवास क्षेत्र चुनते हैं? समूह में न रह कर एकाकी गुहा जीवन किस लिये पसन्द करते हैं, इसका रहस्य समझाने का अनुग्रह करें। इस प्रश्न को सुन कर महर्षि नारद ने कहा-।। ९-१२।।

नारद उवाच-

यथैवान्तर्ग्रहदानप्रदानाभ्यां भुवस्त्विदम् ।
उत्तरस्थं ध्रुवस्थानं भृशं संवेद्यतां गतम् ।। १३।।
चुम्बकक्षमता तत्र विशाला विद्यते तथा ।
पृथिव्यां विपुलान्यत्र ब्रह्माण्डोदरगानि तु ।। १४।।
अनुदानान्यनेनैव पथा मध्यंगतेन तु ।
अवतरन्ति समग्रं च यान्ति नूनं धरातलम् ।। १५।।
व्यापकानां तथा ब्रह्मचेतनानां तथैव तु ।
तत्स्थानमनुदानानां वसुधाचुम्बिनां ध्रुवम् ।। १६।।
यद् वदन्ति बुधा दिव्यं हिमाद्रेर्हृदयं त्विदम् ।
उत्तराखण्डशीर्षस्थं सुमेरोस्तु समीपगम् ।। १७।।
सर्वसाधारणागम्य निवसन्ति च यत्र ते ।
सूक्ष्म कायानुगा देवमानवा एव केवलम् ।। १८।।
ऋषयः स्थूलकायास्तु सर्वे ते च मनीषिणः ।
अध्यात्मध्रुवशक्तेश्च भागे तत्र प्रभाविते ।। १९।।
वसन्तीह सदा येषु क्षेत्रेष्वत्रोत्तमेषु तु ।
जीवनं यापितुं नूनं विद्यन्ते साधनानि तु ।। २०।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टीका- नारद जी ने कहा- जिस प्रकार अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान के लिये पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव अत्यधिक संवेदनशील है, वहाँ की चुम्बकीय क्षमता बढ़ी-चढ़ी है तथा पृथ्वी पर अगणित ब्रह्माण्डीय अनुदान इसी क्षेत्र के माध्यम से अवतरित होते और फिर वे समूचे धरातल पर प्रवाह की तरह फैलते हैं, उसी प्रकार व्यापक ब्रह्मचेतना के पृथ्वी पर अवतरित होने वाले अनुदानों का केन्द्र वह स्थान है जिसे विद्वान लोग हिमालय का हृदय कहते हैं। यह उत्तराखण्ड के शीर्ष सुमेरु शिखर के समीपवर्ती क्षेत्र में है एवं सर्वसाधारण के लिये अगम्य है। वहाँ सूक्ष्म शरीर प्रधान देवमानव ही निवास करते हैं। स्थूल शरीरधारी ऋषि-मनीषी, उसे अध्यात्म ध्रुव के प्रभाव क्षेत्र में उन स्थानों पर रहते हैं, जहाँ जीवनयापन के साधन हैं।। १३-२०।।

तादृशं विद्यते नूनमुत्तराखण्डमुत्तमम् ।
स्थानं वातावृतौ यत्र प्रभावोऽध्यात्मसम्भवः ।। २१।।
विद्यतेऽधिक एवान्य स्थानेभ्यश्चाञ्जसाऽस्ति सः।
ब्रह्माण्डव्यापि चैतन्यधारा सम्पर्क सम्भवः ।। २२।।
देवशक्तिभिरांदानप्रदानस्थितयेऽधिकम् ।
उपयुक्तं मतं क्षेत्रमिदं श्रेष्ठं मनीषिभिः ।। २३।।
शीतमुख्येषु भागेषु शक्तिः सा जीवनानुगा ।
लभ्यतेऽधिक मात्रायां तत्रत्या अतएव तु ।। २४।।
जना अपेक्षया स्वस्थतराः सौन्दर्यशालिनः ।
भवन्त्येषां स्वभावश्च कोमलो भवति स्वतः।। २५।।
आहाराय विहाराय सामग्री विपुलास्ति च।
वर्ततेऽत्र मनःस्थैर्यशान्तिभ्यामनुकूलता ।। २६।।
निवासिनश्च तेऽत्रत्या जीवन्त्यधिकमुत्तमाः ।
एतादृशे कृताः सर्वेर्वातावरण उत्तमे ।। २७।।
प्रयासा लब्धुमध्यात्म विभूतीः सफलाः सदा।
जायन्तेऽधिकमात्रायां शीघ्रं चाऽपि न संशयः।। २८।।

टीका- उत्तराखण्ड वैसा ही क्षेत्र है। यहाँ के वातावरण में अन्यत्र की तुलना में अध्यात्म प्रभाव अधिक है। ब्रह्माण्डव्यापी ब्रह्मचेतना की अनेकानेक धाराओं में से यहाँ रहकर सरलता पूर्वक सम्पर्क साधा जा सकता है। दैवी शक्तियों के साथ आदान-प्रदान चलाने की दृष्टि से यह क्षेत्र श्रेष्ठ एवं अधिक उपयुक्त पाया गया है। शीतप्रधान क्षेत्रों में जीवनीशक्ति की मात्रा अधिक पायी जाती है। वहाँ के निवासी अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ और सुन्दर होते हैं। स्वभाव भी मृदुल होता है। आहार-विहार के लिये उपयुक्त सामग्री का बाहुल्य रहता है। मन की स्थिरता और शान्ति के लिये यहाँ अधिक अनुकूलता रहती है। यहाँ के श्रेष्ठ निवासी अधिक दिन जीते हैं। ऐसे वातावरण में अध्यात्मिक विभूतियाँ प्राप्त करने के लिये किये गये प्रयास अपेक्षाकृत अधिक जल्दी और अधिक मात्रा में सफल होते हैं।। २१-२८।।

सेवार्थं साधनार्थं च मत आवश्यकस्त्वयम् ।
जनसम्पर्क एकान्तोऽपेक्ष्य एवात्मानः सदा ।। २९।।
परिष्काराय तस्मै च मनोनिग्रह हेतवे ।
विनैतन्नैव सिद्धिं ते लभन्ते साधका इह ।। ३०।।
वातावृतौ सदेदृश्यां सर्वेवैज्ञानिकास्तथा ।
साहित्यिका महान्तस्ते कवयो योगिनोऽपि च।। ३१।।
जना उच्चस्तराः स्वेषु विषयेष्विच्छितेष्वलम्।
चित्तं स्थिरयितुं शक्ता भूतीर्लब्धुं परा अपि।। ३२।।
महान्तः पुरुषा यत्र घटनाश्च महत्वगाः ।
सम्पद्यन्ते तु यत्रैव प्रभावस्तत्र शिष्यते ।। ३३।।
उच्चश्चेत्स प्रभावस्तु चिरं तिष्ठति सर्वतः ।
क्षेत्रेऽस्मिन विद्यते-वार्ता हिम गिरावपि ।। ३४।।
लीलाभूमिरिदं क्षेत्रं देवानां च तपस्विनाम् ।
ऋषीणां महतां नृणां हिमाद्रेर्निकट स्थितम्।। ३५।।
पुरातनः प्रभावः स विद्यते चाऽधुनाऽपि तु ।
क्षेत्रेऽस्मिन् बीजमुप्तं तदुर्वरायां फलेद् भुवि।। ३६।।
क्षेत्रेऽस्मिन् विहिता शीघ्रं साधना सा फलत्यलम्।
ऐतिह्यस्मरणादेव प्रेरणा प्राप्यतेऽञ्जसा ।। ३७।।

टीका- सेवा-साधना के लिये जन सम्पर्क आवश्यक है; किन्तु मनोनिग्रह और आत्मपरिष्कार के लिये अन्तर्मुखी होना पड़ता है, उसके लिये एकान्त की आवश्यकता पड़ती है, उसके बिना साधक सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है। ऐसे ही वातावरण में वैज्ञानिक, साहित्यकार, कवि, योगीस्तर के महत्वपूर्ण व्यक्ति अभीष्ट विषयों पर अधिक ध्यान एकाग्र कर सकते हैं और अधिक गहराई में उतरकर अधिक मूल्यवान् विभूतियाँ हस्तगत कर सकते हैं। महान् व्यक्ति जहाँ जन्म लेते हैं और महान् घटनायें होती हैं, वहाँ अपना प्रभाव छोड़ती हैं और यदि वह उच्चस्तरीय है, तो चिरकाल तक बना रहता है, वह बात इस हिमालय क्षेत्र में पाई जाती है। हिमालय देवताओं, ऋषियों, तपस्वियों महामानवों की लीला भूमि रही है। उस क्षेत्र में वह पुरातन प्रभाव अभी भी विद्यमान है। उर्वरभूमि में बोया हुआ बीज जल्दी और अधिक फलित होता है। इस क्षेत्र में बोई हुई साधना भी अधिक फलवती होती देखी गई है। ऐतिहासिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

घटनाओं के स्मरण से भी अनायास ही तद्विषयक प्रेरणाएँ मिलती हैं।। २९-३७।।

एतत्क्षेत्र समुत्पन्ना वनस्पतय उत्तमाः ।
सन्ति चैवं विधास्तस्य वातावरणमुत्तमम् ।। ३८।।
क्षेत्रस्यैतत्प्रभावेण भावितं सेवनं विना ।
प्रभावयति सर्वांश्च साधकां स्तान्निरन्तरम् ।। ३९।।
वायुस्तत्स्पर्श निर्यातः शरीरं मन एव च ।
अन्तरुल्लासयत्याशु यदाश्रित्य मनोबलम् ।। ४०।।
तिष्ठत्युच्चगतं स्याच्च भावनोत्कृष्टताऽधिका।
सहायका भवन्त्येवं स्थितयोऽध्यात्मतोदये ।। ४१।।
उत्तराखण्डसंभूता नद्य आरोग्यवर्धकम् ।
चित्तसन्तुलनोद्गारि वहन्त्यादाय वारि च ।। ४२।।
शिखरस्था हिमानीयं प्रवत्यादित्य तेजसा ।
क्षेत्रे पाषाणयुक्ते चाऽक्षुण्णं वैशिष्ट्यमस्य तु।। ४३।।
हिमजलस्य सदा तिष्ठत्यग्रे नागरिके स्थले ।
दूषितं जलमेतच्च शुद्धतां नो जहाति तु ।। ४४।।
अत्रत्यानां नदीनां तु निर्झराणां च विद्यते ।
जलं सहायकं शक्तेर्वृद्धौ च मलशोधने ।। ४५।।

टीका- इस क्षेत्र में उगने वाली वनस्पतियाँ भी ऐसी हैं, जिनका सेवन किये बिना भी उस क्षेत्र का वातावरण बहुत प्रभावी रहता है तथा समस्त साधकों को प्रभावित करता है। उनको स्पर्श करके बहने वाली वायु शरीर, मन और अन्तराल को ऐसा उल्लास प्रदान करती है, जिनके सहारे मनोबल ऊँचा रहे और भावनाओं में उत्कृष्टता का अनुपात बढ़ा रहे। ऐसी परिस्थितियाँ आत्मिक प्रयोजनों की सफलता में बहुत सहायक सिद्ध होती हैं। उत्तराखण्ड की सभी नदियाँ आरोग्यवर्धक और मानसिक सन्तुलन बनाने वाला जल लेकर बहती हैं। शिखरों पर जमा हुआ हिम सूर्यताप से पिघलता है, जो पत्थर वाले क्षेत्रों में अपनी विशिष्टता अक्षुण्ण बनाये रखता है। आगे चल कर नगरों की गंदगी मिलने पर वह दूषित होता है; फिर भी अपनी शुद्धता को खोता नहीं । अस्तु, यहाँ के नदी-निर्झरों द्वारा प्राप्त हुआ जल मलों के शोधन एवं बल अभिवर्धन में विशेषरूप से सहायक सिद्ध होता है।। ३८-४५।।

नदीष्वेतासु गंगा तु मुख्येयं वर्ततेऽनद्या ।
जलमस्यामृतं दिव्यमाधिव्याधि विनाशकम् ।। ४६।।
पुण्येनास्या जलेनात्र खनिजानामथापि च ।
वन्यानामौषधीनां च मिश्रणं विपुलं मतम् ।। ४७।।
ओषधं जाह्नवीतोयमतएव तदुच्यते ।
वैशिष्ट्यं च निजं नूनं क्षेत्रजं भवति स्वतः।। ४८।।
गुणास्तदनुरूपाश्च तत्र जातेषु निश्चितम् ।
पदार्थेषु समेष्वेव जायन्ते च यथा तथा ।। ४९।।
गंगावतरणरूपे च गंगायाः परमाद्भुतम् ।
कृतं वैज्ञानिकं चेत्थं विद्वद्भिस्तु विवेचनम् ।। ५०।।
मरीचिरूपं यच्चात्र जलं तत्पूर्णरूपतः ।
निर्दोषं कथितं तेजो जले परिणतं भवेत् ।। ५१।।
अन्तरिक्षस्थितेष्वेतत्तेजो युक्तेषु सम्भृतम् ।
जलमाकाशगंगादिपिण्डेष्वस्ति तु यच्छुभम् ।। ५२।।
उत्तरस्थे ध्रुवक्षेत्रे याति सूर्यास्त्रसंगतेः ।
विष्णुपादाब्जसंभूता सोच्यते ह्यतएव तु ।। ५३।।
उत्तरस्थं ध्रुवक्षेत्रं नाभिरस्य च मन्यताम् ।
ब्रह्माण्डस्यात एवोक्तं सैति ब्रह्मकमण्डलौ ।। ५४।।
पतत्येषाऽन्तरिक्षेऽतो जटायां शंकरस्य तु ।
अन्तरिक्षं जटा तस्य व्योमकेशस्य सम्मतम् ।। ५५।।
पतत्येवं हिमाद्रौ सा हिमरूपतया सदा ।
गोमुखादथनिर्याति प्रत्यक्षं वारितां गता ।। ५६।।
मरीचिजलदिव्यत्व कारणादेव निर्मले ।
गंगाजले समायान्ति नैव विकृतयोऽशुभाः ।। ५७।।
औषधं जाह्नवीतोयं यतोऽस्याः सलिलस्य तु।
मुख्यं स्रोतोऽन्तरिक्षेऽस्ति न पृथिव्यां तु कुत्रचित।।५८।।
पार्थिवेषु पदार्थेषु प्रायो विकृतयः सदा ।
तत्कालं हि समायान्ति यातयामं तदुच्यते ।। ५९।।
गंगाजलं तु तद्दिव्यमपवादतयाऽस्य तु ।
विद्यते कारणं चात्र वर्तते चेदमेव हि ।। ६०।।

टीका- गंगा इन सभी नदियों में प्रधान है। उसका जल आधिव्याधियों का निवारण करने वाला माना गया है, उसके साथ दिव्य वनौषधियों तथा खनिजों की उपयोगी मात्रा घुली रहती है; अतएव वह ओषधि रूप बन जाता है। हर क्षेत्र की अपनी विशेषता होती है, उसके अनुरूप ही वहाँ उत्पन्न होने वाले खाद्य-पदार्थों में गुण रहते हैं। गंगावतरण में गंगा की अद्भुत वैज्ञानिक विवेचना विद्वान इस प्रकार बताते हैं। संसार में विद्यमान जलों में मरीचि-जल (किरण रूप में विद्यमान जल) पूर्ण निर्दोष माना गया है- यही तेज जल रूप में परिणत होता है। आकाश में अनेक तेजस्वी पिण्डों (आकाशगंगा आदि) में विद्यमान यह मरीचि-जल उत्तरी ध्रुव में सूर्य की किरणों के सम्पर्क से पहुँचता है। यही गंगा का विष्णु (सूर्य) के चरणों (किरणों) से निकल

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर ब्रह्म कमण्डलु में जाना कहा गया है। उत्तरी ध्रुव इस अपने ब्रह्माण्ड की धुरी है, यही ब्रह्मा (ब्रह्माण्ड) का कमण्डलु (धुरी या नाभि) है। वहाँ से वह (गंगा) अन्तरिक्ष में गिरती है, अन्तरिक्ष ही शिवजटा है, क्योंकि शिवजी को व्योमकेश भी कहते हैं। व्योम अर्थात् अन्तरिक्ष जिनके केश अर्थात् बाल स्वरूप है। वहाँ से वह (गंगा) हिमालय पर घनीभूत बर्फ बन कर गिरती है। तदन्तर जल रूप में गोमुख से बहती हुई दीखती है। उसी मरीचि-जल की दिव्यता के कारण गंगा-जल में सहसा विकृति नहीं आती है। चूँकि इसके जल का मुख्य स्रोत पृथ्वी में नहीं है-अन्तरिक्ष में है, इसीलिये यह औषध-रूप में है। पार्थिव पदार्थों में तत्काल विकृतियाँ देखी जाती हैं, उसे बासी कहा जाता है; किन्तु गंगाजल इसी कारण इसका अपवाद है।। ४६-६०।।

हिमाद्रिवासिनो येषां वृक्षाणां ज्वालयन्ति ते।
दारूणि, भुञ्जते शाकफलकन्दान्नमुत्तमम् ।। ६१।।
तेन नैव नृणामेवान्येषामपि शरीरिणाम् ।
शरीरं चित्तमेवाऽपि जायते सात्विकं परम् ।। ६२।।
नन्दन वनमालिंग्य क्षेत्रजा वान्ति ये सदा ।
वायवः प्राणसञ्चारमिव ते कुर्वते भृशम् ।। ६३।।
विना श्रमं च ते ऽत्रत्या लाभं वातावृतेर्भृशम्।
वैशिष्ट्यस्य जनाः सर्वे प्राप्नुवन्ति निरन्तरम्।। ६४।।
सर्वांगसुन्दरो नैवं सुयोगोऽन्यत्र लभ्यते ।
अध्यात्ममार्गयोक्तारो वसन्त्यत्रैव सर्वदा ।। ६५।।
अन्यत्राऽधिककालेन विपुलेन श्रमेण च ।
लभ्यते यत्तदल्पेन कालेनात्राप्नुवन्ति च ।। ६६।।
हिमाद्रिहृदयं चैतदुत्तराखण्डमुत्तमम् ।
साधकेभ्यस्त्वसंख्येभ्यः साफल्यं प्रददात्यलम् ।। ६७।।
अनुभवं तं समाश्रित्य वसन्त्यत्रैव साधकाः।
उत्साहश्चलितुं येषां विद्यतेऽत्र पथि स्वयम्।। ६८।।
अन्तर्ग्रहानुदानं तदन्तर्लोकं तदुत्तमम् ।
वरदानमिहाप्तुं चापेक्षया सुविधाकरम् ।। ६९।।

टीका- हिमालय निवासी जिन वृक्षों की लकड़ियों को जलाते हैं, जो शाक, कन्द ,फल, अन्न खाते हैं, उससे मनुष्य के ही नहीं, अन्य प्राणियों के शरीर मन भी अपेक्षाकृत अधिक सात्विक रहते हैं। नन्दन वन को स्पर्श करके बहने वाली इस क्षेत्र की हवाएँ प्राण-चेतना का संचार करती हैं और बिना परिश्रम के भी यहाँ के निवासी वातावरण की विशिष्टता का लाभ उठाते रहते हैं -. यह सर्वांग सुन्दर सुयोग अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। अस्तु, अध्यात्म मार्ग के प्रयोक्ता इसी भूमि में डेरा डालते हैं और अन्यत्र अधिक दिन तक कठोर श्रम करने पर जो उपलब्ध होता है, उसे वे स्वल्प समय और स्वल्प प्रयास में ही प्राप्त कर लेते हैं। हिमालय का हृदय कहा जाने वाला उत्तराखण्ड क्षेत्र अगणित साधकों को मूल्यवान सफलताएँ प्रदान करता रहा है। उस अनुभव के आधार पर जिन्हें इस मार्ग में उत्साह है, वे अन्यत्र की अपेक्षा यहाँ डेरा डालते हैं। अन्तर्ग्रही अनुदानों और अन्तर्लोकीय वरदानों को उपलब्ध करने में यहाँ अन्यत्र की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधा है।। ६१-६९।।

अनुपेक्षस्तु सम्मर्दोऽकारणं विक्षिपत्यलम् ।
दुर्गुणैश्चनिजैर्दोषैः प्रभवन्ति च साधकान् ।। ७०।।
एतादृशानां सम्मर्दो जनानां याति तत्र च ।
मनोरञ्जनमत्यर्थं विलासव्यवसाययोः ।। ७१।।
साधनानि तु विद्यन्ते तानि कौतूहलस्य च ।
क्षेत्रे हिमालयस्यात्र नैव किञ्चित्तु विद्यते ।। ७२।।
शैत्याधिक्याद थारोहावरोहासुविधाविधेः ।
विलाससाधनाल्पत्वान्नायान्त्यत्रानुरागिणः ।। ७३।।
आयान्त्यपि न तिष्ठन्ति चिरमेतत्तु विद्यते ।
स्वच्छता पूतताहेतोरध्यात्मन्युत्तमं क्रमे ।। ७४।।
ये वसन्तीह सन्त्येते प्रायः सौभ्याश्च सात्विकाः।
निर्धना अपि ते सन्ति सच्चरित्राश्च निश्छलाः।।७५।।
हिंसका पशवोऽप्यत्र पक्षिणश्च भवन्ति तु ।
अन्यत्रापेक्षया नूनमाक्रान्तारोऽल्परूपतः ।। ७६।।
मनुष्यैः सह तेषां च कादाचित्को विलोक्यते ।
जनैर्दुर्व्यव्हारस्तु प्रसंगैः कैश्चिदेव तु ।। ७७।।
साधका निर्भयं तेषां मध्ये स्वदैनिकं क्रमम् ।
निर्वहन्ति जनाः सन्ति संकुलक्षेत्रवासिनः ।। ७८।।
छलिनो व्यसनासक्ता आक्रान्तारोऽथ दुर्धियः।
दुर्गुणैकरताः शान्तमेकान्तमिदमुच्यते ।। ७९।।

टीका- निरर्थक भीड़ अकारण विक्षेप करती है। अपने दोष दुर्गुणों का प्रभाव साधकों पर छोड़ती है। ऐसे लोग वहाँ अधिक संख्या में पहुँचते हैं, जहाँ विलास-व्यवसाय के-मनोरंजन-कौतूहल के-साधन अधिक रहते हैं। हिमालय क्षेत्र में वैसा कुछ है नहीं। शीत की अधिकता उतार-चढ़ाव की असुविधा, विलास-साधनों की न्यूनता के कारण संसारी प्रवृत्ति के लोग यहाँ पहुँच नहीं पाते, पहुँचते हैं तो रुकते नहीं। यह पवित्रता और स्वच्छता दोनों ही दृष्टि से अध्यात्म प्रयोजनों के लिये अतीव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उत्तम है। जो निवास करते हैं, उनमें से अधिकांश सौम्य-सात्विक प्रवृत्ति के होते हैं। निर्धन होने पर भी उन्हें निष्कपट सदाचारी पाया जाता है। यहाँ तक कि हिंसक पशु-पक्षी तक अन्यत्र की तुलना में कम आक्रामक पाये जाते हैं। मनुष्यों के साथ तो उनका दुर्व्यवहार कभी-कदाचित विशेष प्रसंगों में ही देखा जाता है। साधक प्रकृति के लोग उनके बीच निर्भय होकर निर्वाह कर लेते हैं। घिच-पिच क्षेत्रों का जन-समुदाय, दुर्व्यसनी, दुर्गुणी, छली और आक्रामक पाया जाता है, यह क्षेत्र एकान्त-शान्त है। ७०-७९।।

संकुलक्षेत्रजा वासः साधनादृष्टिः सदा ।
चित्तोद्वेगकरो दृष्टः प्रयासाऽनर्थकृत्तथा ।। ८०।।
अस्ति प्रयोगशालेव सम्पन्ना साधनैः स्वयम् ।
हिमाद्रिः शक्तयोऽसंख्या दृश्यन्ते स्फुरितास्तु ताः।।८१।।
एतत्सम्पर्कतश्चात्र साधकानां वपुः स्वयम् ।
स्थूलं सूक्ष्मं प्रसुप्ताः स्वाः शक्तीरुद्बोद्धुमर्हति।। ८२।।
मानवस्य शरीरं तु ब्रह्माण्डानुकृतिः स्वयम् ।
सर्वोपकरणान्यत्र विद्यन्ते संस्थितानि तु ।। ८३।।
उद्बुद्धानि विधायात्र यानि योक्तं च संभवेत् ।
आत्मानं प्रकृतेः शक्त्या यावदावश्यकं तथा ।।८४।।
गृहीतुं धर्तुमेवाऽपि संभवेत्तावदेव च ।
उपलब्धुमिहास्त्येव पूर्णा सम्भावनाऽपि सा ।। ८५।।
एतदर्थं प्रसुप्तं च बोद्धुमन्तर्गतं समैः ।
साधकैर्जागृतं कर्तुमिष्यते सर्वदैव तु ।। ८६।।
प्रक्रिया साधमाभिश्च सिद्धिः सा लभ्यते जनैः।
आदातुमपि शक्तीस्ता दिव्यास्तासां दयाप्तये।। ८७।।
विधिरेक इहास्त्येष प्रसुप्तां दिव्यतां निजाम् ।
कुर्याज्जनः साधकोऽत्र तामुद्बुद्धां तु केवलम्।। ८८।।

टीका- साधना की दृष्टि से घिच-पिच स्थानों में निवास मन को उद्विग्न करने वाला और प्रयास को असफल बनाने वाला देखा गया है। हिमालय स्वयं एक साधन -सम्पन्न प्रयोगशाला है। उससे प्रकृति की अगणित शक्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक सजग पाई जाती हैं। इनके सम्पर्क में साधकों के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जगाने में अधिक सफल रहते हैं। मनुष्य का काय पिण्ड इस ब्रह्माण्ड की अनुकृति है। उसमें वे सभी उपकरण समाहित हैं, जिन्हें जागृत और सक्षम बना लेने पर प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों के साथ अपने को जोड़ा जा सकता है और धारण किया जा सकता है; उसे उपलब्ध करने की पूरी सम्भावना रहती है। इसके लिये अन्तर्निहित पसुप्त को जगाना पड़ता है। इसी प्रक्रिया को साधना से सिद्धि की उपलब्धि कही जाती है। दैवी शक्तियों को आकर्षित करने और उनकी अनुकम्पा पाने के लिये एक ही उपाय है - साधक का अपनी प्रसुप्त दिव्यता को जगा लेना।। ८०-८८।।

योगाभ्यासे च चैतन्यं व्यक्तेः सम्बद्ध्यते तया।
ब्रह्मचेतनया प्रोक्ता विद्वद्भिस्तु समाष्टिगा ।। ८९।।
सम्बन्धे चोभयोर्जाते दानादाने क्रमात्ततः ।
जायेते समतां जीवशक्तिरेति परात्मनः ।। ९०।।
आधारमिमाश्रित्य दृष्टाः सिद्धा नरा इह ।
दिव्यतामर्जयन्तस्ते कुर्वन्तो देव भूमिकाम् ।। ९१।।
चुम्बकत्वस्य यस्यैवानिवार्यत्वमपेक्ष्यते ।
आकर्षणाय पात्रत्वधृतयेऽपेक्ष्यते च यत् ।। ९२।।
तपसा प्राप्यते तत्तु तपश्चात्मपरिष्कृतिः ।
तितीक्षाग्नौ प्रतप्तस्य प्रखरत्वमदोषता ।। ९३।।
तपश्चर्या न वै देवान् बाध्यान् कर्तुं दुराग्रहः।
विद्यतेऽपि तु चैतन्याच्छादिकानां तु वर्तते ।। ९४।।
पशुजन्यप्रवृत्तीनां पुरुषार्थेन भूयसा ।
समूलोन्मूलनं येन स्वरूपं स्वं प्रपद्यते ।। ९५।।
अस्मिन्नग्नौ नरस्तप्त्वा स्वर्णकान्तिं भजत्यलम्।
जायते प्रतिभावाश्च लभते परिपक्वताम् ।। ९६।।

टीका- योगाभ्यास में व्यक्ति की चेतना को समष्टिगत ब्रह्म चेतना के साथ जोड़ा जाता है। दोनों के मिलन पर ऐसा आदान-प्रदान चल पड़ता है, जिसमें जीवात्मा की सामर्थ्य परमात्मा के समतुल्य बन सके। सिद्ध पुरुष इसी आधार पर दिव्यता अर्जित करते और देवताओं जैसी भूमिका सम्पन्न करते देखे गये हैं। आकर्षण के लिये जिस चुम्बकत्व की आवश्यकता है-धारण के लिये पात्रता की आवश्यकता है-उसे तपश्चर्या द्वारा प्राप्त किया जाता है। तप का तात्पर्य है-आत्मशोधन। अपने आपको तितीक्षा की अग्नि में तपाकर निर्मल और प्रखर बना लेना। तपश्चर्या देवताओं को बाधित करने का दुराग्रह नहीं है; वरन् चेतना पर चढ़ी हुई पशु-प्रवृत्तियों को पुरुषार्थ पूर्वक उखाड़ना है, जिससे साधक अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करते हैं। इस अग्नि में तपने से मनुष्य सोने के समान कान्तिवान और प्रतिभावान् बनता है। परिपक्वता इसी आधार पर आती है।। ८९-९६।।

यस्यां कष्टानि सह्यन्ते तयैव दिनचर्यया ।
बर्द्धते पौरूषं शौर्यं तथैतच्च मनोबलम् ।। ९७।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आसाद्येमा विभूतीश्च तापसाः शक्तिशालिनः ।
जायन्ते सुविधासक्ता निःसत्वाश्च विलासिनः ।। ९८ ।।
न ते कर्तुं समर्थाश्च शौर्यसाहससंयुतम् ।
पराक्रमं, यतो लभ्यं साफल्यं भौतिकस्तरम् ।। ९९ ।।
भवेदध्यात्मगाः स्युश्च हस्तगास्ता विभूतयः ।
जायते तपसा चास्य दौर्बल्यस्य निराकृतिः ।। १०० ।।
संयमैकधना ये तु विक्रमैकरसा नराः ।
अनौचित्येन युद्ध्यन्ते ये ते शूरास्तपस्विनः ।। १०१ ।।
तप एव च विश्वेऽस्मिन् बलं प्रोक्तं परं महत् ।
यथा व्यायामशालायां पूर्णायां साधनैर्नरः ।। १०२ ।।
शिक्षकस्योपयुक्तस्थ वातावरणकस्य च ।
साहाय्येन क्रमान्मल्लो जायते दृढ़विग्रहः ।। १०३ ।।
तथा विशेषतास्वस्य हिमाद्रेर्ये वसन्ति तु ।
प्रायन्ते तैर्महत्यस्ताः सिद्धयोऽध्यात्मसंभवा ।। १०४ ।।
प्रतिबन्धो न तस्मिंस्तु यद्यपि क्वापि विद्यते ।
स्थितिरत्र तु सा यद्वत्सफलं स्याद्दतौ कृतम् ।। १०५ ।।

टीका- कष्ट सहिष्णु जीवनचर्या से मनोबल और शौर्य-पराक्रम बढ़ता है। इन्हीं विभूतियों को अर्जित करने के कारण तपस्वी लोग परम शक्तिशाली बनते हैं। सुविधाओं से खेलने वाले विलासी लोग भीतर से खोखले होते हैं और वे शौर्य-साहस भरा वैसा पराक्रम कर नहीं पाते जिससे भौतिक स्तर की सफलताएँ तथा आत्मिक स्तर की विभूतियाँ हस्तगत हो सकें। इस दुर्बलता का निराकरण तपश्चर्या द्वारा होता है। संयमी, पराक्रमी एवं अनौचित्य से लड़ने वाले शूरवीरों को तपस्वी कहते हैं। तप ही इस संसार का सबसे बड़ा बल है। जिस प्रकार साधन-सम्पन्न व्यायामशाला में-उपयुक्त शिक्षक एवं वातावरण की सहायता से मनुष्य एक सधा हुआ पहलवान बनता है। उसी प्रकार हिमालय की विशेषताओं में रहते हुए अध्यात्म क्षेत्र की सिद्धियाँ अधिक अच्छी तरह प्राप्त की जा सकती हैं। यों उस उर्पाजन पर प्रतिबन्ध कहीं भी नहीं है, परन्तु यहाँ वही स्थिति है, जैसे ऋतु के अनुकूल किये गये कार्य सदा सफल होते हैं ।। ९७-१०५ ।।

तापसा एव जायन्ते योगिनो नैव निर्गताः ।
जायन्ते ते विकारा वा विलासा विविधा मलाः ।। १०६ ।।
यावत्तावन्न जीवस्य सिद्ध्येदत्र परात्मना ।
योगः सञ्जायते येन सच्चिदानन्दरूपता ।। १०७ ।।
अध्यात्मसाधकै र्भाव्यं प्रथमे चरणे त्विह ।
तापसैरथ कर्तव्यो योगाभ्यासोऽपरे क्रमे ।। १०८ ।।
समन्वित तया चोभौ पादन्यासौ तु कुर्वता ।
सम्भाव्या लक्ष्यसम्प्राप्तिः पूर्णतायास्ततः स्वतः ।। १०९ ।।
तत्र चाद्यतनायां स यात्रायां नारदो मुनिः ।
दर्शयामास सर्व तन्मण्डलं तु मनीषिणाम् ।। ११० ।।
स्थानानिं दिव्यरूपाणि बहून्येवं विधाने तु ।
ऋषिभिर्यत्र योगस्य तपसश्च कृतः श्रमः ।। १११ ।।
तेषां नामानि चैतिह्यं बोधयन्नारदो मुनिः ।
तथ्यमेतदवोचच्च मानवः कथमेष तु ।। ११२ ।।
वपुः प्रयोगशालायां तपोयोगसमुद्भवम् ।
प्रखरत्वं समुत्पाद्य देवभूतियुतो भवेत् ।। ११३ ।।
कार्यं तच्च हिमाद्रेस्तु क्षेत्रे वासेन तत्कियत् ।
सरलं जायते नृणां साधक क्षेत्रगामिनाम् ।। ११४ ।।

टीका- तपस्वी ही योगी बनते हैं। विलास और विकार की गन्दगी जब तक बुहारी नहीं जाती, तब तक आत्मा और परमात्मा का योग सधता नहीं, जिससे सच्चिदानन्दरूपता की उपलब्धि होती है। अस्तु, अध्यात्म साधकों को प्रथम चरण-तपस्वी बनने का और दूसरा चरण योगाभ्यास करने का उठाना होता है। इसी प्रकार दोनों कदम समन्वित रूप से उठाते हुए पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव होता है। आज की यात्रा में नारद जी ने मनीषियों की मण्डली को ऐसे अनेक स्थान दिखाये, जिनमें ऋषियों ने तपश्चर्या और योग-साधना का प्रबल पुरुषार्थ किया। उनका नाम जताते, इतिहास बताते हुए यह तथ्य समझाया कि काया की प्रयोगशाला में योग-तप की प्रखरता उत्पन्न करके मनुष्य किस प्रकार देवोपम विभूतियों से सम्पन्न हो सकता है। वह कार्य हिमालय के क्षेत्र में निवास करने पर साधक-मनुष्यों को कितना सरल पड़ता है ।। १०६-११४ ।।

विना शौथिल्यमेवाद्य यात्रेयं पूर्णतां गता ।
योजनाबद्धरूपेण विधाय भ्रमणं तथा ।। ११५ ।।
दृष्टवा सर्वमपि स्वान्तं जातं नैव निरुत्सुकम् ।
अभूदुत्किण्ठितं भूयो ज्ञातुं बोद्धुं मनः पुनः ।। ११६ ।।
परं विवशता तत्र जाता सूर्यो यतोऽगमत् ।
अस्ताचलं विरामोऽतः प्रवासस्य कृतः समैः ।। ११७ ।।
देवप्रयागो रामस्य भगवतस्तु तपः स्थलम् ।
लक्ष्मणस्य च कुब्जाम्रतपोभूमेरदूरतः ।। ११८ ।।
भरतस्यापि विज्ञाय विस्मिताः सर्व एव ते ।
उत्तराखण्डमाहात्म्यं मेनिरे परमाद्भुतम् ।। ११९ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयुक्तं नवं स्थानमन्विष्याथ विधाय च ।
विश्रमस्य व्यवस्थां तु निशां तेऽ गमन् सुखम् ।।१२०।।
टीका- आज की लम्बी यात्रा बिना थके पूरी हो गई। योजना भ्रमण कर लेने और बहुत कुछ देख लेने पर भी मन भरा नहीं। अधिक जानने-देखने की उत्कण्ठा बनी रही, किन्तु विवशता थी। सूर्य अस्त हो जाने पर प्रवास को विराम देना पड़ा। देवप्रयाग भगवान राम की तथा (ऋषिकेश से) कुब्जाम्र तीर्थ से थोड़ी दूरी पर स्थित लक्ष्मण झूला-लक्ष्मण की व पास ही भरत की तपस्थली है-यह जानकर सभी को आश्चर्य हुआ व उन्होंने उत्तराखण्ड के माहात्म्य का अद्भुत अनुभव किया। अन्ततः, उपयुक्त स्थान खोजकर सभी ने विश्रामव्यवस्था बनाई और सुख-पूर्वक रात्रि बिताई ।। ११५-१२०।।

इति श्रीमद्प्रज्ञोपनिषदे देव संस्कृति खण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो,युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः, महर्षि नारद प्रतिपादिते "हिमाद्रि हृदय प्रकरण" इति प्रकरणो नाम
।। तृतीयोऽध्याय : ।।

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

अदृश्य लोक प्रकरण

पर्यवेक्षणजश्चाद्य प्रवासस्तु हिमालये ।
चतुर्थं दिवसं प्राप्तः सहान्चोषि मनीषिणाम् ।। १।।
मण्डलं नव्य ज्ञातव्य प्राप्तौ प्रतिदिनं तुत त् ।
अगात्परममानन्दं जीवनोत्कर्ष दायकम् ।। २।।
अग्रिमे दिवसे यच्च प्राप्यते ज्ञानमुत्तमम् ।
प्रतीक्षा तस्य सर्वेषां हृदये तिष्ठाति स्मसा ।। ३।।
पूर्वं चतुरता हेतोब्रह्मिकालादिप प्रियात् ।
जाग्रति स्म समे प्रश्नान् कुर्वते लिखितान् बहून्।। ४।।
उपलब्धं भवेद्येन सवेषामग्रिमे दिने ।
समाधानं निजेज्ञाने वृद्धिः स्याद् विपुला च सा।। ५।।
टीका- हिमालय पर्यवेक्षण प्रवास का आज चौथा दिन था। रहस्यान्वेषी मनीषियों की मण्डली नित नई जानकारियाँ मिलने व जीवन में उत्कर्षता आने से बहुत प्रसन्न थी। अगले दिन जो जानने को मिलेगा उसकी प्रतीक्षा सभी के मन में रहती थी। सब लोग ब्रह्म मुहूर्त में पहले ही उठ बैठते और प्रश्नों की बड़ी संख्या एकत्रित कर लेते ताकि अगले दिन उनका समाधान उपलब्ध हो सके व अपने-अपने ज्ञान में विशाल वृद्धि हो सके ।। १-५।।
समाप्ते पूर्व सन्ध्यादौ यथा पूर्व मिहाद्य च ।
विज्ञः स समुदायस्तु नेतृत्वे नारदस्य तु ।। ६।।
पर्यवेक्षितुमत्रत्यां प्रकृतेः सम्पदं तथा ।
क्षेत्र गौरवजं जातो रहस्यं ज्ञातुमुत्सुकः ।। ७।।
चर्मचक्षूंषि पश्यन्ति वस्तुनो वाह्यमेव तु ।
स्वरूपं तस्य सत्ता सा महत्ता गरिमाऽपि च ।। ८।।
उपयोगित्वमप्येतच्छक्यन्ते ज्ञातुमुत्तमैः ।
सूक्ष्मेणैव नरैः सर्वैः पर्यवेक्षणकेन तु ।। ९।।
अवलम्बनमेतस्यास्तत्वदृष्टेश्च मण्डलम् ।
स्वीचकाराथ ज्ञातं च सर्ववस्तुगतं रहः ।। १०।।
नारदः स्वयमेवात्र प्रारब्धां कृत्वांस्ततः ।
चर्चा दिव्येन ज्ञानेन सम्पन्नः साधुसत्तमः ।। ११।।
टीका- नित्य की भाँति सन्ध्यावन्दन के उपरान्त आज भी वह विज्ञ-समुदाय नारद जी के नेतृत्व में प्रकृति सम्पदा का पर्यवेक्षण करने के साथ-साथ इस क्षेत्र की गरिमा के रहस्य जानना चाह रहा था। चर्म-चक्षुओं से मात्र वस्तुओं के स्वरूप देखे जा सकते हैं; किन्तु उसकी सत्ता, महत्ता, गरिमा एवं उपयोगिता समझनी हो तो सूक्ष्म पर्यवेक्षण की आवश्यकता होती है। मण्डली को इसी तत्व दृष्टि का अवलम्बन लेना पड़ रहा था। इसी से उन्होंने वस्तु मात्र के सारे रहस्यों को समझा। साधु-शिरोमणि दिव्यज्ञानी नारद जी ने अपनी ओर से चर्चा आरम्भ करते हुए कहा ।। ६-११।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारद उवाच-

दृश्यस्य जगतः पृष्ठ भूमाविह तु वर्तते ।
अदृश्यं जगदत्यर्थं क्षमं चास्याप्यपेक्षया ।। १२ ।।
जानन्तीदं च सर्वेऽपि प्राणादीनामभावतः ।
अवकरत्वं शवत्वं च शरीरं याति सुन्दरम् ।। १३ ।।
तुच्छं जानन्ति मत्पिण्डं जनाः सर्वेऽपिकेवलम् ।
परमाणोस्तु विस्फोटे सामर्थ्यं ज्ञायतेऽतुलम् ।। १४ ।।
यद व्याप्तमन्तरिक्षेऽत्रासीमिते तत्र केवलम् ।
दृश्यन्ते ग्रहन क्षत्र प्रभृतीन्येव मानवैः ।। १५ ।।

टीका- नारद जी बोले-दृश्य जगत के पीछे एक अदृश्य जगत है। परोक्ष की क्षमता तथा महत्ता प्रत्यक्ष की तुलना में कहीं अधिक है। दृश्य शरीर से, अदृश्य प्राण, आत्मा की सत्ता कितनी मूल्यवान है। प्राण न रहने पर काया मात्र कचरा शव बन कर रह जाती है - यह बात सभी जानते हैं। मिट्टी का ढेला तुच्छ है, किन्तु उसके सब से छोटे अदृश्य घटक परमाणु की सामर्थ्य का पता विस्फोट होने पर ही चलता है। असीम अंतरिक्ष में जो भरा है, उसमें से ग्रह नक्षत्र जैसी कुछ ही वस्तुएँ दीखती हैं ।। १२-१५ ।।

वायु सम्पत्तिरेषा या भ्रमति प्राणदायिनी ।
मूल्यमस्या भुवोऽपेक्ष्य मतं बह्वधिकं गुरु ।। १६ ।।
प्रकृतेश्च प्रवाहस्य ताप शब्द प्रकाशजाः ।
वरगंद्रष्टुमेते न नेर्भैयोग्याः कदाचन ।। १७ ।।
परं विश्वस्य सर्वस्य चेष्टाया उद्गमास्तु ते ।
मन्यन्ते समभूवंस्त आविष्काराः समेऽपि च ।। १८ ।।
वेज्ञानिका, रहस्येषु प्रकृतेर्बोधितेषु हि ।
पूर्वाभास क्षमत्वं चाज्ञात ज्ञाने क्षमोऽभवत् ।। १९ ।।
क्षमता भौतिक क्षेत्र संभवा विस्मयान्विताः ।
अध्यात्म पुरूषार्थेन लभ्या या सिद्धयस्तु ताः ।। २० ।।

टीका- प्राणदायिनी वायुभूत सम्पदा इतना मँडराती रहती हैं कि मूल्यांकन करने पर वह पृथ्वी की तुलना में असंख्यों गुनी भारी तथा मूल्यवान सिद्ध होती हैं। प्रकृति प्रवाह के ताप, शब्द एवं प्रकाश की तरंगें नेत्रों से दृष्टिगोचर नहीं होतीं; पर समस्त संसार की हलचलों का उद्गम उन्हीं को माना जाता है। उच्चस्तरीय वैज्ञानिक आविष्कार प्रकृति की रहस्यमयी क्षमताओं को जानने पर ही संभव हो सके हैं। अविज्ञात का पता लगाने में मनुष्य की पूर्वाभास क्षमता ने ही योगदान दिया है। भौतिक क्षेत्र की जिन चकित करने वाली क्षमताओं को अध्यात्म पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त किया जाता है, उन्हें सिद्धियाँ कहते हैं। ।। १६-२० ।।

चेतनायाश्च प्रत्यक्षं कार्यमत्र तु विद्यते ।
शरीरस्याऽनिवार्यत्व पूर्ति रेव ततश्च सा ।। २१ ।।
मन इन्द्रियजन्यानामाकांक्षाणां कृते सदा ।
यतते कर्तुमस्यैव चिन्तनस्य वशानुगा ।। २२ ।।
परं वाह्याच्छरीराच्चे दन्तर्द्रष्टुं क्षमं भवेत् ।
संभवेत्तर्हि ज्ञातुं यच्छरीरे ग्रन्थिषु क्वचित् ।। २३ ।।
विभिन्नेषु च चक्रेषु भण्डागाराः सुपूरिताः ।
विद्यन्ते दिव्य शक्तीनां विश्वबीजस्य चास्य तु ।। २४ ।।

टीका- चेतना का प्रत्यक्ष कार्य शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करना मात्र है। इन्द्रियजन्य और मनोजन्य आकांक्षाओं के लिए ही वह चिन्तक के चिन्तनानुसार ताना-बाना बुनती रहती है। किन्तु यदि इस बहिरंग कलेवर से भीतर झाँककर देखा जा सके तो प्रतीत होगा कि ब्रह्माण्ड वृक्ष के बीज स्वरूप मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में चन्द ग्रन्थियों एवं विभिन्न चक्रों के रूप में दिव्य शक्तियों के भण्डार भरे पड़े हैं ।। २१-२४ ।।

यथालब्धेस्तुतलेदृश्ये दृश्यतेऽवकरः परम् ।
मज्जद्भिर्गहने मर्त्यैः प्राप्यन्ते मणि सम्पदः ।। २५ ।।
तथा शरीरे मर्त्यस्य विपुलास्तु विभूतयः ।
एवं विद्यास्तु वर्तन्ते यासां भागेऽल्प एवतु ।। २६ ।।
जाते हस्तमते सिद्धः पुरूषो मन्यते जनः ।
कार्यं तत्कुरूते यत्र सामान्य स्थिति संभवम् ।। २७ ।।

टीका- जिस प्रकार समुद्र की ऊपरी सतह में कूड़ा-करकट भर दीखता है; किन्तु गहरी डुबकी लगाने पर मणिमुक्तकों की बहुमूल्य सम्पदा हाथ लगती है, उसी प्रकार मानवीकाया के अन्तराल में ऐसी विभूतियाँ भरी पड़ी हैं, जिनका थोड़ा सा भी भाग हस्तगत होने पर मनुष्य सिद्ध पुरुष माना जाने लगता है और वह ऐसे काम कर सकता है जो सामान्य स्थिति में मनुष्य के लिए कभी संभव नहीं हो पाते ।। २५-२७ ।।

प्रकृतेस्तु रहस्यानां बोधेनात्र तथैव च ।
अज्ञातानां सुशक्तिनां प्राप्त्या हस्तगतानि तु ।। २८ ।।
साफल्यानि च विज्ञान संभवानि हि सम्पदः ।
उच्यन्ते पुरूषार्थेन नैवाह्याः केवलं नरः ।। २९ ।।
प्रकृते रहस्य युक्तानां शक्तीनां ज्ञातवान सौ ।
उपयोगं समृद्धीनां ततोऽधिष्ठातृताभगात् ।। ३० ।।
एतासामुपलब्धौ च तस्या ऽदृश्यस्य दर्शकः ।
विवेकः सहयोगित्व मगादत्र निरन्तरम् ।। ३१ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जागृतं कर्तुमेतं च साफल्यं यो गतो यथा ।
भाग्यवान् स तथैवात्र जातो लोकेऽभिनन्दितः ।। ३२ ।।

टीका- प्रकृति के रहस्यों को जानने और अविज्ञात शक्तियों को हस्तगत करने से मनुष्य को जो वैज्ञानिक सफलताएँ हस्तगत हुई हैं, उन्हीं को सम्पदा कहते हैं। मात्र पुरुषार्थ से ही मनुष्य सुसम्पन्न नहीं बना है। उसने प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों का उपयोग जाना और तदनुसार चित्र-विचित्र समृद्धियों का अधिष्ठाता बना है। इन उपलब्धियों में उसकी अदृश्यदर्शी सूझबूझ ही सहायक रही है। इसे जागृत करने में जो जितना सफल हो सका, वह उतना ही भाग्यवान बना है व लोक में सम्मान प्राप्त कर पाया है ।। २८-३२ ।।

स्थानान्यत्र हिमाद्रेः सोऽदर्शयत्तानि नारदः ।
येषु चैतन्य सिन्धुं तु मथित्वा मूल्यवत्ति च ।। ३३ ।।
रत्नान्यादाय वासं स्वं स्वीचक्रुः सर्व एव च।
वैज्ञानिका महान्तस्ते प्रकृतिशक्ति पारगाः ।। ३४ ।।
तेषामेव प्रयासेन त्तानि सूक्ष्माणि भूतले ।
प्रथमं हस्तगान्यत्र जातान्यथ यदाश्रिता ।। ३५ ।।
उपलब्धिरसामान्या पदार्थ प्रकृति द्वयोः ।
क्षेत्रयोरुभयोर्ब्रह्म चैतन्यस्यापि सत्ततम् ।। ३६ ।।

टीका- नारद जी ने हिमालय में स्थित ऐसे अनेकों स्थान दिखाये, जिनमें चेतना के महासमुद्र का मंथन कर के बहुमूल्य रत्न निकालने वाले प्रकृति शक्ति के पारखी महान् वैज्ञानिकों का निवास रहा था। उनके प्रयास से वह सूत्र हस्तगत हुए थे, जिनके सहारे पदार्थ, प्रकृति और ब्रह्मचेतना के दोनों ही क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धि बन पड़ी ।। ३३-३६ ।।

पर्यवेक्षणमेतत्तु प्रकृतेः सरलं तथा ।
तस्या रहस्ययुक्तानि सर्वाण्यावरणानि च ।। ३७ ।।
बुद्धिमान पुरूषस्तीक्ष्ण विवेकस्य निजस्य तु ।
आधारेणाधिगच्छन्ति परं क्षेत्रं तु तन्महत् ।। ३८ ।।
असीमितमनन्तं चाऽगोचर ह्यद्भुत तथा ।
चेतनायास्तु ब्राह्म्या याऽवगाह्या प्रज्ञयैव तु ।। ३९ ।।
अध्यात्म क्षेत्र विज्ञान पण्डिता अवगाहनम् ।
कुर्वते त्रिविधानां तु क्षेत्राणां सन्ततं भृशम् ।। ४० ।।
श्रद्धा प्रज्ञा सुनिष्ठानां जायन्तेऽपि ततः समे ।
देवमानवगानां च भूतीनां निधयः स्वयम् ।। ४१ ।।

टीका- प्रकृति का पर्यवेक्षण सरल है। उसकी रहस्यमयी परतों को बुद्धिमान व्यक्ति अपनी पैनी सूझबूझ के आधार पर प्राप्त कर लेते हैं; किन्तु ब्रह्मी चेतना का क्षेत्र तो असीम, अनन्त, अद्भुत एवं अगोचर हैं, उसका अवगाहन महा प्रज्ञा द्वारा ही संम्भव है। अध्यात्म विज्ञानी श्रद्धा प्रज्ञा और निष्ठा के त्रिविध क्षेत्रों का अवगाहन करते हैं और देवमानव स्तर के विभूतिवान बनते हैं ।। ३७-४१ ।।

नारदोऽदर्शयाद्दिव्यदर्शिनां स्तरगामिनाम् ।
ब्रह्मज्ञानां तु सिद्धानां स्थानान्यत्र निवासिनाम् ।। ४२ ।।
कथं ते किमकार्षुश्च व्यधाद् व्याख्यामिमां स्फुटम् ।
ऊवोचच्च दिनेष्वेवं तेषु चात्मविदस्तु ते ।। ४३ ।।
भूमेर्गौरवमस्यास्तु वर्द्धयन्ति स्म सन्ततम् ।
सत्पात्रेभ्यो ददत्येव विद्यां तां लोक मगंलाम् ।। ४४ ।।
निगमागमनान्नाऽथ योगतन्त्रेति वा पुनः ।
रहोविभूतयस्तेताः प्रसिद्धानि महीतले ।। ४५ ।।

टीका- नारद ने इस स्तर के दिव्यदर्शी ब्रह्मपरायण महासिद्धों के अनेक निवास स्थान दिखाये। उनने किस प्रकार क्या किया, इसका विवरण सुनाया और कहा कि उन दिनों आत्मविज्ञानी इस भूमि की गरिमा अपनी विभूतियों के आधार पर बढ़ाते थे, सत्पात्रों को उस विद्या की शिक्षा देते थे। आगम' और 'निगम'-'योग' और 'तन्त्र' इन्हीं रहस्यमयी विभूतियों के नाम हैं ।। ४२-४५ ।।

संबोधयन् स जिज्ञासून् यथापूर्वं विवेचनम् ।
व्यधात्प्रारब्धमेवैतत्प्रकृतिज्ञान बोधकम् ।। ४६ ।।
प्रत्यक्षं जगादेषोऽत्र भूलोको दृश्य एवं यः ।
इन्द्रिय ग्राहय एवं चाऽनेके लोकास्तथापरे ।। ४७ ।।
परलोका निगद्यन्ते वासा ये चाऽशरीरिणाम् ।
त्रिलोक्यन्तर्गताः सर्वे स्थूल दृष्टेरगोचराः ।। ४८ ।।
जन्म मृत्योरन्तरे च तत्रात्मानो वसन्ति तु।
तेषामेव विभागौ च नरकः स्वर्ग एव च ।। ४९ ।।

टीका- जिज्ञासुओं को सम्बोधित करते हुए देवर्षि नारद ने प्रकृति ज्ञान के बोधक अपने विवेचन को जारी रखते हुए फिर कहा। प्रत्यक्ष जगत भूलोक है। यह दृश्यमान और इन्द्रियगम्य है। ऐसे ही अन्य अनेक लोक हैं जिन्हें परलोक कहते हैं। इसमें अशरीरी आत्माओं का निवास है। ये त्रिलोकी के अन्दर ही है जो स्थूल दृष्टि से अग्राह्य है। जन्म और मरण के मध्यान्तर में आत्माएँ इन्हीं में से किसी में रहती हैं। स्वर्ग-नरक उन्हीं के विभाजन हैं ।। ४६-४९ ।।

आत्मानः केचनात्रैव भाविकार्यविधेरथ ।
निर्धारण प्रतीक्षायां विश्रमन्ति निरन्तरम् ।। ५० ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिकरत्वे विशिष्टे च नियन्तु: सन्ति केचन।
प्रयोजनेभ्य एवाति विशिष्टेभ्य: सुरक्षिता: ।। ५१।।
जीवन्मुक्ता इमे सर्वेऽप्युच्यन्ते देववर्गगा: ।
आत्मान: सृष्टि संस्थायामदृश्या: सन्ति संरता: ।। ५२।।
सत्पात्राण्यभियान्त्येते साहाय्यार्थमयाचिता: ।
दुष्टतां च पराजेतुं तेषां योगस्तु विद्यते ।। ५३।।
शरीरिणामिवैतेषां कार्याण्यत्राऽशरीरिणाम् ।
भवन्ति सत्ता सूक्ष्मा च सामान्यानामपेक्षया।। ५४।।
नृणामधिक सामर्थ्य मुक्ता सा द्रुत गामिनी ।
व्यापकाऽस्ति लभन्ते च नरा एभि: सहायताम्।। ५५।।
पूर्वाभासमनेके च लभन्ते च नरा इह ।
मुच्यन्ते संकटेभ्यश्च तथोत्कर्षं भजन्त्यापि ।। ५६।।

टीका- कुछ आत्माएँ भावीकार्य निर्धारण की प्रतीक्षा में विश्राम करती रहती हैं। कुछ नियन्ता के विशिष्ट परिकर में विशिष्ट प्रयोजनों के लिए सुरक्षित रहती हैं, इन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं। देवता वर्ग की आत्माएँ सृष्टि के सुसंचालन में अदृश्य रूप से संलग्न रहती हैं। सत्पात्रों के पास अयाचित सहायता के लिए दौड़ जाती हैं। दुष्टता को परास्त करने में भी उनका योगदान रहता है। अशरीरी होते हुए भी इनके क्रियाकलाप शरीरधारियों जैसे होते हैं। इनकी सूक्ष्म सत्ता सामान्य मनुष्यों से अधिक सशक्त, द्रुतगामी एवं व्यापक होती है। मनुष्यों की पात्रता के अनुरूप उनका अविज्ञात सहयोग मिलता रहता है। कितनों को ही वे ऐसे पूर्वाभास कराती हैं, जिससे संकट से बचा जा सके और उत्कर्ष का अप्रत्याशित सुयोग मिल सके ।। ५०-५६।।

भूलोकेन सम्बद्धं प्रकृतेरेकमस्ति तत् ।
प्रतिविश्वं च लोकाद् यद विपरीतं हि विद्यते ।। ५७।।
प्रतिगामिभिरेवाद: पदार्थैरिव संभृतम् ।
द्वयो: समन्वयेनैव सृष्टि सन्तुलनं स्थितम् ।। ५८।।
छिद्रमस्यां व्यवस्थायां यदि सञ्जायते क्वचित् ।
भवेद् विपर्यय: कोऽपि प्रलयो वा लघुर्महान् ।। ५९।।
ईदृश्य: स्थितय: प्रायो जायन्ते मानवैर्यदि ।
गृहयन्तेऽभीप्सिता लोके विधय: प्राणिकष्टदा: ।। ६०।।

टीका- इस भूलोक से सटा हुआ एक विपरीत प्रकृति का प्रतिविश्व भी है। उसमें प्रति पदार्थ भरा है। दोनों के समन्वय से सृष्टि सन्तुलन बना है। यदि इस व्यवस्था में कहीं छिद्र पड़ जाय या विपर्यय चल पड़े तो फिर समझना चाहिए कि महाप्रलय या खण्ड प्रलय जैसा संकट आ खड़ा होगा। ऐसी विपत्ति भरी परिस्थितियाँ मनुष्यों द्वारा अपनाई गई अवांछनीय प्राणिमात्र विरोधी गतिविधियों द्वारा उत्पन्न होती हैं ।। ५७-६०।।

महत्वं सम्पद: सर्वे जानन्त्येव नरास्तथा ।
वपु: शक्तिं बुद्धि शक्तिं शस्त्र शक्तिं तथैव च।। ६१।।
संशक्तिं विजानन्ति मानवा: सर्व एव च । आत्मशक्तिस्तु सर्वेभ्य: श्रेष्ठा प्रोक्ता बुधैरिह ।। ६२।।
तयाधिपत्यं लोकेऽस्मिन् प्रकृतौ कर्तुमञ्जसा ।
संभवेच्चेतनस्यात्र स्तर एतादृशश्च स: ।। ६३।।
परिष्कृतो विधातुं च संभवोऽस्ति यत: स्वयम् ।
स हि स्रष्टेव स्यात्सर्वशक्तिमानात्मभूर्विभु: ।। ६४।।
प्रसुप्तं जागृतं कर्तुं विधिर्य: साधनाऽस्ति सा ।
मानवो निर्मित: स्रष्टा युवराजो निजो महान् ।। ६५।।
दायित्वं तच्चं निर्वोढुं शक्तिस्तु विपुलाऽपि सा ।
बीजरूपे प्रदत्तायां कुर्यात्सुफलितां नर: ।। ६६।।

टीका- सम्पदा का महत्त्व सभी जानते हैं। शरीर बल,बुद्धि-बल, शस्त्र-बल, संघ-बल आदि से भी सब परिचित हैं। इन सब से बड़ा आत्मबल है। उसके द्वारा प्रकृति पर आधिपत्य पाया जा सकता है और चेतना को इस स्तर तक परिष्कृत किया जा सकता है कि वह स्रष्टा की भाँति सर्वशक्तिमान स्वयंभ् बन सके। प्रसुप्त को जागृत करने की विधा को ही साधना कहते हैं। मनुष्य को स्रष्टा ने अपना महान् उत्तराधिकारी युवराज बनाया है और उस उत्तरदायित्व का भली प्रकार निर्वाह कर सकने जैसा शक्ति भण्डार उसे बीज रूप में प्रदान किया है। उसे अंकुरित और फलित करना मनुष्य का काम है ।। ६१-६६।।

सीमितं दृश्यपर्यन्तं यत्तत्तुच्छं तु वर्तते ।
अदृश्य विस्तरं यस्तु वैभवं ज्ञातवानुत ।। ६७।।
प्रविष्टस्तत्र तस्माच्च भण्डागारादगृहीतवान् ।
किञ्चित्स ज्ञापतां जातो महान्नैवात्र संशय: ।। ६८।।
महत्ता प्राप्तये दृष्टिरुदाता हृदयं महत् ।
विश्वास: साहसं गन्तुमपेक्ष्यन्तेऽपि चैकत: ।। ६९।।
महामानव संज्ञानां चिन्तनं चरितं महत् ।
तथैव व्यवहारश्च निर्धारणमथापि वा ।। ७०।।
तत्स्तरं स्पृशति प्रोच्चं महत्तायां तुन्यक्कृतम् ।
सम्पन्नत्वं भवेदेव श्रेष्ठा सा भुविसर्वत: ।। ७१।।

टीका- जो दृश्य तक सीमित है वह तुच्छ है। जिसने अदृश्य का विस्तार वैभव समझा, उस क्षेत्र में प्रवेश किया, उस भण्डार में से कुछ समेटा-बटोरा, समझना चाहिए वह महान बन गया। महानता की प्राप्ति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लिए उदात्त दृष्टिकोण, विशालहृदय और एकाकी चल पड़ने योग्य साहस तथा विश्वास चाहिए। महामानवों का चिन्तन, चरित्र, व्यवहार, रुझान, निर्धारण इसी स्तर का होता है। महानता पर सम्पन्नता को न्योछावर किया जा सकता है, महानता सर्वश्रेष्ठ है ।। ६७-७१।।

आदौ शब्दः समुत्पन्नः सृष्टेरस्या महानयम् ।
ततस्तयोश्च संहत्या लोके ताप प्रकाशयोः ।। ७२।।
शक्तिस्रोतांसि जातानि विविधानि ततोऽभितः ।
पञ्चप्राणादयः पञ्चतत्वान्युत्पन्नतां ययुः ।। ७३।।
सृष्टि रेषा समुत्पन्ना तेषां योगेन विस्तृता ।
मूलं प्रकृतेः शब्दोऽस्ति य ओंकार इहोदितः ।। ७४।।
सष्टुरिच्छानुसारं च बहुधा भवितुः स्वतः ।
ध्वनि प्रवाह रूपेऽग्रे वैखरीं समुपागतः ।। ७५।।
नादशब्दौ बुधा यच्च ब्रह्मलोके वदन्ति ते ।
सर्वोपरि च सामर्थ्यमे तस्याऽस्ति महत्त्वगम् ।। ७६।।

टीका- सृष्टि के आदि में शब्द उत्पन्न हुआ। उससे ताप और प्रकाश की संहति से शक्ति के कितने ही स्रोत उमड़े और पाँच प्राण तथा पंच-तत्व विनिर्मित हुए। समस्त सृष्टि उन्हीं के सहयोग-समन्वय से उत्पन्न हुई है। प्रकृति का मूल 'शब्द' है। स्रष्टा की इच्छा शक्ति जब एक से बहुत बनने के लिए अग्रसर हुई तो सर्वप्रथम उसका प्रकटीकरण 'ओंकार' शब्द के ध्वनि-प्रवाह में बैखरी रूप से परिलक्षित हुआ। यह शब्द ही नाद ब्रह्म और शब्द ब्रह्म है। उसकी सामर्थ्य सर्वोपरि है ।।७२-७६।।

जीविताः प्राणिनस्तस्य सहयोगेन भावनाः ।
स्वकीया व्यञ्जयन्त्यत्र सहयोगस्य सन्ततम् ।। ७७।।
मार्गं प्रशस्तं कुर्वन्ति दानादानगतं तथा ।
व्यष्टेरथ समष्टेश्च गतौ वा प्रगतावपि ।। ७८।।
शब्दस्य योगदानं तदति सर्वं हिमन्यते ।
ज्ञान विज्ञानयोस्तारतम्यं चलति तच्छ्रितम् ।। ७९।।

टीका- जीवित प्राणी इसी के आधार पर अपनी भावनाएँ व्यक्त करते और सहयोग का आदान-प्रदान का पथ प्रशस्त करते हैं। समष्टि और व्यष्टि की सामान्य गति और विशेष प्रगति में शब्द का योगदान सर्वोपरि माना जाता है। ज्ञान और विज्ञान का तारतम्य उसी के सहारे चल रहा है ।। ७७-७९।।

ऋषयो-नादब्रह्माथ शब्दब्रह्माप्युपास्य वा ।
विभूतीरर्जयामासुरध्यात्म क्षेत्रजा भृशाः ।। ८०।।
सामर्थ्यामिदमाश्रित्य विश्वकल्याणगं तथा ।
आत्मकल्याणगं चेमे प्रशस्तां पद्धतिं व्यधुः ।। ८१।।
ज्ञानचर्चा विधावत्र सत्सगेऽथ प्रशिक्षणे ।
उच्चारणं यदस्त्येतच्छब्द ब्रह्मेदमुच्यते ।। ८२।।
नामरूपाश्रितं ध्यानं क्रियते स्वरतालगः ।
ध्वनिप्रवाह एवात्र नादयोगोऽभिधीयते ।। ८३।।
उपयुञ्जत एनं च विकासेऽन्तर्गत बुधाः ।
तत्त्वदर्शिन आत्मज्ञाः प्रकृतिज्ञान पारगाः ।। ८४।।

टीका- ऋषियों ने शब्द-ब्रह्म और नाद-ब्रह्म की उपासना से अध्यात्म क्षेत्र की अनेकानेक विभूतियाँ अर्जित की। उस सामर्थ्य के सहारे आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण का पथ-प्रशस्त किया। ज्ञान-चर्चा सत्संग और प्रशिक्षण की विधा में उच्चारण का प्रयोग होता है। यह शब्द-ब्रह्म है। ध्यान में नाम, रूप का आश्रय लिया जाता है। स्वरताल-बद्ध ध्वनि प्रवाह को नादयोग कहते हैं। आन्तरिक विकास में उसका उपयोग प्रकृति विज्ञान के पारखी आत्मज्ञ तत्वदर्शी किया करते हैं ।।८०-८४।।

परिष्कृतेन चित्तेन चरित्रेणाथ मानवाः ।
परिष्कृताभ्यामाहार विहाराभ्यां च सर्वदा ।। ८५।।
पाठेनाथ जपेनाऽपि स्वर साधनया पुनः ।
कुर्वते मन्त्र सिद्धिं च विश्वकल्याण कारिकाम् ।।८६।।
अस्त्य साधारण शक्तिर्मन्त्रेयस्य प्रभावतः ।
स्थितिर्वातावृतिर्व्यक्तिः परिवर्तन्त एव तु ।। ८७।।
मन्त्र सिद्धिरथैषा च वाक् सिद्धिर्नापरामता ।
भौतिकाध्यात्मकार्याणि यया सिद्ध्यन्ति चाञ्जसा ।। ८८।।

टीका- परिष्कृत अन्तःकरण परिष्कृत चरित्र और परिष्कृत आहार-विहार वाले मनुष्य जप, पाठ और स्वर साधना द्वारा विश्वकल्याण कारक मन्त्र सिद्धि करते हैं। मन्त्र में असाधारण शक्ति है। उसके प्रभाव से व्यक्ति परिस्थिति और वातावरण को बदला जाता है। वाक् सिद्धि और मन्त्र सिद्धि एक ही बात है। उससे भौतिक और आत्मिक दोनों ही क्षेत्रों के अनेकानेक प्रयोजन सिद्ध होते हैं ।। ८५-८८।।

वाचः सिद्धिः कृता यैस्तु शापैरथ वरैर्निर्जैः।
तैः समर्थं विधातुं त धर्मं दूरयितुं तथा ।। ८९।।
अधर्मं भूमिका दिव्या निरुढा संयतात्मभिः ।
मन्त्रशक्त्युपयोगोऽस्ति धर्मकृत्येषु स महान् ।। ९०।।
तस्मादेव च हेतोस्तु फलन्त्येतानि पूर्णतः ।
अन्यथा यज्ञ पूजादि स्तुतयः सामगीतयः ।। ९१।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नैव महत्त्वमायान्ति यथोक्तं तु पदे पदे ।
मन्त्रे महत्ताया गीता शब्दोच्चारणजा बुधैः ।। ९२।।
विधिश्रिता ततो वक्तुर्व्यक्तित्वस्याधिकामता।
साधकैः संयमोऽपेक्ष्यः कर्मकाण्ड गतैरपि ।। ९३।।
सीमितं सुविचार्यैव वक्तुमभ्यास इष्यते ।
आहार संयमश्चास्य कृते प्रोक्तोऽनिवार्यतः ।। ९४।।
संयतस्य च वागेषा रामवाण इव स्वतः ।
लक्ष्यंविध्यति यन्त्रेभ्योऽधिका शक्तिश्च मन्त्रजा।।९५।।
ऋषिष्वनेके निष्णाता मन्त्रविद्या विधाविह ।
साधनायाः स्थलान्येष दर्शयामास मण्डलम् ।। ९६।।

टीका- जिनने वाणी सिद्ध की थी, आत्म संयमी उनने अपने शाप वरदान से धर्म को समर्थ बनाने और अधर्म को निरस्त करने की महती भूमिका सम्पन्न की। धर्मानुष्ठानों में मन्त्र शक्ति का असाधारण उपयोग है। उन्हीं के कारण वे फलित होते हैं अन्यथा यज्ञ, पूजा-उपचार, स्तवन, सामगान आदि का वैसा महत्त्व नहीं रहता जैसा कि बताया गया है। मन्त्र में विधिवत शब्दोच्चार की जितनी महत्ता है उससे भी अधिक उच्चारणकर्त्ता के व्यक्तित्व की है। मन्त्र साधक को मन्त्र साधना के लिए उच्चारणपरक कर्म-काण्डों की तरह वाक् संयम भी अपनाना होता है। वचन सीमित और सोच समझकर बोलने का अभ्यास करना होता है। इस प्रयोजन के लिए आहार संयम नितान्त आवश्यक है। संयमी की वाणी ही रामबाण की तरह लक्ष्य वेधती है। यंत्रों से भी बड़ी शक्ति मंत्रों में मानी गई है। ऋषियों में से अनेक मंत्र विद्या के निष्णात थे। उनके अनेकों साधना स्थल इस मंडली को नारद जी ने दिखाये ।। ८९-९६।।

ऊषुरत्रमहामर्त्याः कियन्तो जगतश्चकिम् ।
हितमेभिः कृतं लोकेऽनुसन्धानैरूपार्जनैः ।। ९७।।
इति विस्तरशः प्रोक्तं नारदेन महर्षिणा ।
यतः स पूर्वमोभिस्तु संगतोऽनेकशो मुनिः ।। ९८।।
शृण्वन्तः सर्व एवात्र मण्डलस्था व्यचारयन्।
परम्पराः पुराणास्ता नव्य कालानुरूपतः ।। ९९।।
नवीनेन प्रकारेण कर्तुं सर्वाश्च जीविताः ।
पुरुषार्थस्तथाऽस्माभिः कार्य आर्षोय था ह्यभूत ।।१००।।
स्वयं धन्यास्तु ते जाता गौरवं च हिमालयः।
देवात्मनो गतस्तेषां कृपया गौरवेण च ।। १०१।।

टीका- हिमालय के क्षेत्र में कितने महामानवों ने निवास किया और उनके अनुसंधानों उपार्जनों ने संसार का क्या क्या हित साधन किया इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया, चूँकि वह उनसे अनेक बार पहले मिले थे। श्रवण करते हुए उस यात्रा-मण्डली में से प्रत्येक ने सोचा उन पुरातन परम्पराओं को नये समय के अनुरूप नये सिरे से जीवन्त करने के लिए हमें वैसा ही पुरुषार्थ करना चाहिए जैसा कि पुरातन काल के ऋषियों ने किया। वे स्वयं धन्य हुए और हिमालय को देवात्मा कहे जाने का गौरव दिलाया ।। ९७-१०१।।

यात्रा पूर्णा यथापूर्वमद्य सोत्साहमुत्तमा ।
अतिवाहयितु रात्रि योग्यमन्वोषितं स्थलम् ।। १०२।।
कन्दमूलानि मार्गेषु यान्याप्तानि मुनीश्वरैः ।
खादित्वा कृतसन्ध्यैश्च शयितं सुखपूर्वकम् ।। १०३।।

टीका-आज भी कल की ही तरह यात्रा अतीव उत्साह के साथ पूर्ण हुई। रात्रि बिताने के लिए उपयुक्त स्थान खोज निकाला गया। रास्ते में जहाँ-तहाँ से कन्दमूल लोग समेटते गये थे। सन्ध्या-वन्दन कर के उसी से पेट भरे और सन्तोष पूर्वक शयन किया ।। १०२-१०३।।

इति श्रीमद्प्रज्ञोपनिषदे देव संस्कृति खण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः,युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः
"अदृश्य लोक प्रकरण" इति प्रकरणो नाम
।। चतुर्थोऽध्याय।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

।। अथ पञ्चमोऽध्यायः ।।

यज्ञ विज्ञान-वनस्पति विज्ञान प्रकरण

पञ्चमो दिवसोऽद्याभूत्प्रवासस्य हिमालये ।
हिमालय रहस्यानि देवर्षेर्मार्गदर्शने ।। १।।
मण्डलं ब्रह्मवेतृणांमृषीणां पर्यवेक्षणम् ।
विदधत्क्षेत्र यात्राया आनन्दं परमं ययुः ।। २।।
दृश्यं नेत्रैस्तु संदृष्टं केवलं कौतुकं नृणाम् ।
समाधत्ते परं तेन भावनाश्च विचारणाः ।। ३।।
संयुज्यन्ते यदा दिव्यदर्शनं तत्तदोच्यते ।
संक्षिप्तं नाम चास्यैव दर्शन सन्निगद्यते ।। ४।।
ऋषीणां देवमूर्तीनां दर्शनस्यैवमेव हि ।
माहात्म्यं कथितं लोके विद्वद्भिस्तत्व पारगै ।। ५।।
अन्यथा नयनैर्मात्रमाकृर्तिर्दृश्यते तु सा ।
छविस्मरण मात्रस्य सिद्ध्यत्यत्र प्रयोजनम् ।। ६।।
प्रेरणा प्राप्तये त्वत्र नूनमावश्यकं मतम् ।
दृश्यानां गौरवं चोच्चस्तराणां तु रहस्यगम् ।। ७।।
ज्ञायेतैभिश्च तादात्म्य भावनास्याच्च निर्मिता ।
अतोन्यूनेन सिद्धं स्यादृर्शनस्य प्रयोजनम् ।। ८।।

टीका- आज प्रवास का पंचम दिन था। देवर्षि नारद के मार्मदर्शन में हिमालय के रहस्यों का पर्यवेक्षण करती हुई ब्रह्मवेत्ताओं की मण्डली उस क्षेत्र के पर्यटन का आनन्द ले रही थी। मात्र नेत्रों से देखा गया दृश्य तो मात्र कौतूहल का समाधान करता है। उसके साथ जब विचारणाएँ व भावनाएँ जुड़ जाती हैं तब उसे दिव्य दर्शन कहते हैं। इसी का संक्षिप्त नाम 'दर्शन' है। देव प्रतिमाओं एवं ऋषियों का ऐसा ही दर्शन करने का माहात्म्य तत्वज्ञ विद्वानों ने कहा है। अन्यथा आँखों से देखने पर तो आकृति भर दिखती है। उससे तो छवि स्मरण आने जितना ही प्रयोजन भर सधता है। प्रेरणा प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि उच्चस्तरीय दृश्यमानों की रहस्यमयी गरिमा समझी जाए और साथ ही उसके साथ तादात्म्य होने की भावना बनाई जाए। इससे कम में दर्शन का महान् प्रयोजन सधता नहीं ।। १-८।।

मनीषिमण्डलं तच्च रहस्यं नारदो मुनिः ।
बोधयस्तदृषीणां च स्थानान्येवं क्रिया अपि ।। ९।।
दर्शयन्नग्रतोऽगात्स येषां हेतो हिमालयः ।
जडोऽपि जातः श्रद्धेयो देवश्चैतन्य सम्भृतः ।। १०।।

टीका- नारद जी मनीषि मण्डल को यह रहस्य बताते हुए उन ऋषियों के स्थानों एवं क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराते चल रहे थे जिनके कारण हिमालय का जड़ दिखने वाला क्षेत्र चैतन्य देवता जैसा श्रद्धास्पद एवं सामर्थ्यवान बना ।। ९-१०।।

पञ्चमे दिवसे चाद्य दर्शयामास नारदः ।
कार्यक्षेत्राणि सर्वेषामृषीणां यत्र सन्ततम् ।। ११।।
अनुसन्धानकर्मैषां वनस्पति विधावगात् ।
शरीरं मानुषं चास्ति वनस्पति समुद्भवम् ।। १२।।
मांस पिण्डमिदं सर्वे वदन्त्येव तथैव च ।
मांसं रूपान्तरं नूनमाहारस्यैव वर्तते ।। १३।।
आहारो जीवनस्योक्तं प्रमुखं साधनं तथा ।
आहारस्यानुकूलश्च वपुश्चित्तस्तरो भवेत् ।। १४।।
यत्स्तरं वपुरिष्टं स्यात्तथाऽऽहार व्यवस्थितिः ।
विधातव्या तथा येषां विशेष रस संभृताम् ।। १५।।
पदार्थानामिहाधिक्यान्न्यूनतायाश्चं कारणात् ।
कायसन्तुलनं नृणां प्रायस्तद् व्यतिगच्छति ।। १६।।
तत्पूर्तयेऽनुरूपेण शुद्धाहारेण, तद् भवेत् ।
परिवर्तनमप्यत्र परिवर्द्धनमुत्तमम् ।। १७।।

टीका- आज पाँचवें दिन नारद जी ने उन ऋषियों के कार्यक्षेत्र दिखाए जिनमें वनस्पतियों के सम्बन्ध में उनका अनुसन्धान कार्य चला था। मनुष्य शरीर भी वनस्पतियों की ही उत्पत्ति है। उसे मांस पिण्ड कहा जाता है और मांस आहार का ही रूपान्तरण है। आहार को जीवन का प्रमुख साधन कहा गया है। शरीर और मन का स्तर वैसा ही बनता है जैसा आहार ग्रहण किया जाता है । अस्तु जिस स्तर का भी उन्हें बनाना अभीष्ट हो, वैसे ही आहार का प्रबन्ध करना चाहिए। जिन रासायनिक पदार्थों की न्यूनाधिकता से काय-सन्तुलन प्रायः गड़बड़ाता है उनकी पूर्ति के लिए तदनुरूप आहार से परिवर्तन अभिवर्द्धन किया जाना चाहिए ।।१२-१७।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्यात्वाहार सम्बद्धा मानवोत्कर्षबोधकम् ।
अगं जीवन विज्ञान सम्बद्धं तु महत्त्वगम् ।। १८।।
ऋषिभिश्चात्रसन्दर्भे त्वनुसन्धितमुत्तमम् ।
गहनं प्रस्तुतं यच्च सर्वसाधारणस्य तत् ।। १९।।
सम्मुखे व्रतचर्याभि: खाद्याऽखाद्य विवेचनै: ।
अयं विधिस्तु यैर्मत्यै: स्वीकृतो दीर्घजीविन: ।। २०।।
नीरोगा अपि ते जाता उपयोगं व्यधु: शुभम् ।
स्वास्थ्यसम्पद आप्ताया स्थितिस्तेषां तथेदृशी ।। २१।।

टीका- आहार विद्या जीवन विज्ञान का मानवोत्कर्ष-वोधक अति महत्वपूर्ण अंग है। ऋषियों ने इस संदर्भ में गहरी खोजें कीं और सर्व साधारण के सम्मुख व्रतों व ओषधियों व खाद्याखाद्य विवेचनों के रूप में प्रस्तुत कीं। यह विधान अनुशासन जिनने सीखा अपनाया, वे निरोग रहे, दीर्घजीवी बने और उपलब्ध स्वास्थ्य सम्पदा का श्रेष्ठतम सदुपयोग कर सकने की परिस्थितियों में रहे ।। १८-२१।।

यदा स्वास्थ्य विधेरत्र व्यतिगामितया नर: ।
आधिव्याधिभिराक्रान्तो जायतेऽत्र तदा सदा ।। २२।।
असन्तुलनमत्रैतत्कर्तुं सन्तुलनस्थितम् ।
औषधीनां तु वन्यानामाश्रयो गृह्यते नरै: ।। २३।।
उचित: सरलश्चैष चिकित्साधार उत्तम: ।
विधिष्वन्येषु लाभोऽल्पो हानिश्च विपुला मता ।। २४।।
चरक: सुश्रुतश्चक्रदत: शाङ्र्गधरस्तथा ।
वाग्भट्ट: स तथैवान्ये तत्त्वज्ञान विदाश्चिरम् ।। २५।।
अन्विष्य गहनं वन्या: सर्वेऽप्यौषधयस्तु तै: ।
अन्वेषिता: शरीरस्य मनसो ये च कुर्वते ।। २६।।
असन्तुलनमत्रैतत्पूर्णत: सुव्यवस्थितम् ।
विषाक्तत्वं विजातीय द्रव्यजं सारयन्त्यलम् ।। २७।।
तत्त्वाना न्यूनता येषां जायते पूरयन्ति तत् ।
क्षेत्रजानां क्षेत्र जानि वस्तून्यनुगतान्यलम् ।। २८।।
स्वकीय क्षेत्र सम्भूता वनौषधय उत्तमा: ।
खाद्या: पदार्था: सर्वेषामुपयोगाय सम्मता: ।। २९।।

टीका- जब भी स्वास्थ्य अनुशासन के व्यतिरेक से आधि-व्याधियों में उलझना पड़ता है तब उस असंतुलन को सन्तुलन में बदलने के लिए बनौषधियों का आश्रय लिया जाता है। चिकित्सा का यही सरल और सही आधार है। अन्य उपाय अपनाने पर लाभ कम और हानि अधिक है। चरक, सुश्रूत, वागभट्ट, चक्रदत्त, शार्गधर आदि तत्वज्ञानियों ने लम्बे समय तक गहरी खोजें की और उन वनौषधियों को खोज निकाला जो शारीरिक और मानसिक असन्तुलन को ठीक करती हैं; विजातीय द्रव्यों की विषाक्तता को निकाल फेंकती हैं। जिन तत्वों की कमी पड़ जाती है, उनकी पूर्ति करती हैं। जो प्राणी जिस क्षेत्र में जन्मते हैं, उन्हें वहीं की उपजी हुई खाद्य वस्तुएँ अनुकूल पड़ती हैं। अस्तु यथासंभव अपने क्षेत्र में उत्पन्न हुए खाद्य पदार्थों और वनौषधियों के उपयोग का विधान है ।। २२-२९।।

एकस्मिन् समये चैकं पदार्थं लब्धुमामतम् ।
हितकारक मत्यर्थं बहूनां मिश्रणेन तु ।। ३०।।
मौलिकास्ते गुणास्तेषां समेषां व्यतियान्त्यपि ।
तत्तत्खाद्यैरपेक्ष्यं च लाभं नाप्तुं नरोऽर्हति ।। ३१।।
आहार कल्पे चैकस्य वस्तुन: सेवनं मतम् ।
औषधीनां च सम्बन्धे व्यवस्थैषैव वर्तते ।। ३२।।
सम्मिश्रणं यथान्यूनं भवेत्ततु तथोत्तमम् ।
रक्षितं मौलिकत्वं स्याद् वर्गाणां प्रायशोयथा ।। ३३।।
सम्मिश्रण समुत्पन्नं संकरत्वं यदस्ति तत् ।
आकर्षकं तथोत्तेजकमारम्भे प्रतीयते ।। ३४।।
परं कालान्तरे हानिरस्मात्संजायते तु सा ।
अनुभवस्य च सारोऽयं वनस्पति विदामिह ।। ३५।।
प्रवासभिरतं विद्वन्मण्डलं पर्यवेक्षणम् ।
कुर्वदभिन्नेषु भागेषु रहस्यं त्वध्यगादिदम् ।। ३६।।
ततोलाभमवाप्तुं तमन्येभ्यो दातुमप्यलम् ।
निश्चयं कृतवन्तस्ते मण्डलस्था: समेऽपितु ।। ३७।।

टीका- एक बार में एक ही पदार्थ लेना अधिक हितकर हैं। कइयों को मिला देने से उस सम्मिश्रण से सभी के मौलिक गुण बदल जाते हैं और जिस खाद्य से जो लाभ मिलने की अपेक्षा की गई थी वह मिल नहीं पाता। अस्तु आहार कल्प विधान में एक ही वस्तु का सेवन कराया जाता है। यही बात ओषधियों के सम्बन्ध में भी है। सम्मिश्रण से जितना बचा जा सके उत्तम है। हर वर्ग की मौलिकता बनी रहनी चाहिए। मिश्रण से जो संकरत्व होता है वह आरम्भ में ही आकर्षक-उत्तेजक लगता है। कालांतर में उससे हानि ही होती है। यही है वनस्पति विज्ञानी ऋषियों के अनुभवों का सार संक्षेप। प्रवास-रत विद्वान मण्डली ने विभिन्न क्षेत्रों का पर्यवेक्षण करते हुए इस रहस्य को भली प्रकार समझा और उससे लाभ प्राप्त करने तथा कराते रहने का निश्चय किया ।। ३०-३७।।

सन्दर्भेऽस्मिन् स देवर्षि: पक्षं प्राबोधयत्व तम् ।
वानस्पत्यस्य विज्ञानस्यास्ति य: सूक्ष्म शक्तिग: ।। ३८।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असन्तुलत: सूक्ष्म शरीरस्याक्ति रक्षणम् ।
पदार्थस्य स्वरूपं तत्कठोरं द्रवमप्यलम् ।। ३९।।
नेत्रैद्रष्टुं भवेच्छक्यं वायुभूतं तृतीयकम् ।
नैवाक्षि गोचंर सूक्ष्मं महाप्राणं महाबलम् ।। ४०।।
जलं हिमस्य रूपे तु कठोरं दृश्यते तथा ।
प्रवाहे द्रवरूपं च वायुभूतं तु वाष्पके ।। ४१।।
प्रत्येकास्मिन् पदार्थे च स्थितिरैषैव विद्यते ।
नात्र नश्यति किञ्चित्तु केवलं परिवर्तते ।। ४२।।
गुणास्तदनुसारं च परिवर्तन्त एव ते ।
न्यूनतामधिगच्छन्ति तथैवाधिकतां क्वचित् ।। ४३।।
वनस्पतीन् विधातुं च वायुभूतास्तु वर्तते ।
विशेषं त्वेक विज्ञानमग्निहोत्रं वदन्ति यत् ।। ४४।।
वृक्षांस्तु समिधारूपे हविष्ये च वनस्पतीन् ।
उपयुञ्जत एवात्र यज्ञे मंगलकारिणी ।। ४५।।
सूक्ष्मा शक्तिरुदेत्येषामेवं स्थूलाच्च वर्तते ।
सूक्ष्मे सामर्थ्यमत्यर्थं जानन्त्येतज्जना: समे ।। ४६।।

टीका- इसी संदर्भ में देवर्षि ने वनस्पति विज्ञान का वह पक्ष समझाया जिसमें उनकी सूक्ष्म शक्ति का उपयोग किया जाता है और सूक्ष्म शरीर के असंतुलन से त्राण पाया जाता है। पदार्थ के ठोस और द्रव स्वरूप प्रत्यक्ष होने के कारण नेत्रों से देखे जा सकते हैं। तीसरा स्वरूप वायुभूत होता है जो आंखों से दीखता नहीं है। यह सूक्ष्म रूप महाप्राणवान् एवं महाबलशाली है। जल को हिम के रूप में ठोस प्रवाही रूप में द्रव और वाष्प रूप में वायुभूत होते देखा जा सकता है। यही स्थिति हर पदार्थ में है। यहां कुछ भी नष्ट नहीं होता, परिस्थितिवश उनमें परिवर्तन होता रहता है। तदनुसार उसके गुण भी बदलते और न्यूनाधिक होते रहते हैं। वनस्पतियों को वायुभूत करने का एक विशेष विज्ञान है जिसे अग्निहोत्र कहते हैं। प्राणिमात्र के लिये मंगलमय इस कार्य में समिधा रूप में और वनस्पतियों को हविष्य बनाया जाता है। इस प्रकार उनकी सूक्ष्म शक्ति उभरती है। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की सामर्थ्य अत्याधिक होती है, इस तथ्य को सभी जानते हैं ।। ३८-४६।।

अग्निहोत्रे वायुभूतान् निर्मान्तपत्र वनस्पतीन् ।
नासामार्गेण तान् बुद्धौ फुप्फुसे प्रापयन्त्यथ ।।४७।।
रक्तस्य माध्यमेनात्र श्वासस्यपि च संभवम् ।
शरीरे प्रेषितुं तस्मात्तत्कालं जायते ऽज्जसा ।। ४८।।
द्रवरूपे कठोरे च सेवितानां तु पाचने ।
पदार्थानां प्रभावोऽत्र शरीरे जायते सदा ।। ४९।।
तस्मिन् विधौ मले मूत्रे शक्तिरेषा प्रयात्यपि।
विलम्बेन प्रभावश्च जायते वपुषि क्रमात् ।। ५०।।
गृहीते त्वग्निहोत्रे च स्वरूपं वायुतां गतम् ।
वानस्पत्यं सपद्येव मर्मस्थानानि गच्छति ।। ५१।।
चित्तोपचार दृष्ट्या चाऽमोघोऽयं विधिरुत्तम:।
मस्तिष्कस्य समेष्वेव भागेष्वेवं तदज्जसा ।। ५२।।
औषधि प्रेषणं श्वास मार्गेणैव सुसंभवम् ।
विज्ञानं पृथगेवैतद् गन्धस्यास्ति निजं महत् ।। ५३।।

टीका- अग्निहोत्र में वनस्पतियों को वायुभूत किया जाता है। उन्हें नासिका द्वारा मस्तिष्क तथा फेफड़ों में पहुँचाना तथा रक्त और श्वांस के माध्यम से समस्त शरीर में तत्काल पहुँचाना संभव होता है। ठोस और द्रव रूप में सेवन किए पदार्थों का प्रभाव पचने पर ही होता है। उस प्रयास में बहुत कुछ मल-मूत्र में निकल जाता है और प्रभाव भी देर में होता है। अग्निहोत्र विद्या को अपनाने पर वनस्पतियों का वायुभूत स्वरूप अतिशीघ्र शरीर के मर्मस्थलों तक पहुँच जाता है। मानसोपचार की दृष्टि से तो यह उपाय अमोघ है क्योंकि मस्तिष्क के हर क्षेत्र में किसी ओषधि को पहुँचाना श्वांस मार्ग से ही संभव हो सकता है। गंध का अपना अलग विज्ञान है ।। ४७-५३।।

विभिन्नानां च गन्धानां नासया ग्रहणेन तु ।
शारीरिक्यां स्थितौ भेदो मानसिक्यां विजायते ।।५४।।
अग्रिहोत्रोपयोगोऽत आधि व्याधि विनाशने ।
अस्माद्धेतोर्मतो लोके प्राणिकल्याण कामुकै: ।। ५५।।
अवाञ्छनीयतानाश एव नैवापिस महान् ।
गुण: सामर्थ्यवृद्धे: स वर्ततेऽस्मिन् शुभावह:।।५६।।
अग्निहोत्रेणत्व ग्रामे कूपैर्योगृह्यते तत: ।
आरोग्यं वर्द्धतेयश्च भाग: श्वासेनगृह्यते ।। ५७।।
प्रतिक्रिया मन: क्षेत्रे शीघ्रं तस्य तु दृश्यते ।
अग्रिहोत्रे पदार्थानां सूक्ष्मशक्ते: शुभोदय: ।। ५८।।
शक्तिपूर्ण तथैवास्या विजृम्भणमपीह च ।
भावनाशब्दशक्तिभ्यामिह संभवत: स्वत: ।। ५९।।

टीका- विभिन्न गन्धों के नासिका द्वारा ग्रहण करने पर मनुष्य की शारीरिक-मानसिक स्थिति में विशेष प्रकार का अन्तर होता है। अग्निहोत्र की उपयोगिता आधि-व्याधियों के निवारण में प्राणि मात्र के हितैषी ऋषियों ने इसी कारण मानी गयी है। उसमें अवांछनीयता निवारण का ही नहीं, समर्थता-अभिवर्द्धन का भी महान् गुण है। अग्निहोत्र के माध्यम से त्वचा के रोमकूपों द्वारा जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्रहण किया जाता है वह आरोग्य बढ़ाता है और जो भाग श्वांस द्वारा ग्रहण किया जाता है, उसकी प्रतिक्रिया मन:-क्षेत्र पर जल्दी ही दृष्टिगोचर होती है। अग्निहोत्र में पदार्थों की सूक्ष्म शक्ति का प्रकटीकरण व शक्तिपूर्ण विजृम्भण (फैलाव) भावना एवं शब्दशक्ति का समावेश होने पर ही संभव होता है ।। ५४-५९ ।।

प्रयोज्या ये पदार्थास्ते विशेष विधिना समे ।
प्रखरा अपि पूताश्च विधीयन्ते विधान गै: ।। ६० ।।
आधारेण च तेनैव सामान्या अपि ते तत: ।
असामान्यास्तु जायन्ते पदार्था: पूर्णत: समे ।। ६१ ।।
जलाग्नि समिधागव्यावृतादि हविषामिह ।
येषां प्रयोग इष्टस्तु क्रियन्तेऽथोच्चगान्यपि ।। ६२ ।।
यज्ञे प्रयुज्यमानस्य कर्मकाण्डस्य विद्यते ।
इदमेव रहस्यं तु नित्यकर्म विधेरलम् ।। ६३ ।।
विधेरस्य प्रयोक्तृणां व्यक्तित्वं ब्राह्मणोचितम् ।
भवेत्तदैव कर्मैषां वाणीस्यातां परिष्कृते ।। ६४ ।।
एतादृशै: प्रयुक्तैस्तैर्मन्त्रैश्च विधिभि: स्वत: ।
अग्निहोत्रं स्तरं तं तु याति यो यज्ञ उच्यते ।। ६५ ।।

टीका- प्रयुक्त किए जाने वाले पदार्थों को विशेष विधि से पवित्र और प्रखर बनाया जाता है। उसी आधार पर वे पदार्थ सामान्य से असामान्य बनते हैं। जिस जल, अग्नि, समिधा, हविष्य, गोघृत आदि का उपयोग होता है उसे विधि विशेष से उच्चस्तरीय बनाया जाता है। यही यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले नित्य कर्म विधि स्वरूप कर्म काण्ड का रहस्य है। इस विधान के प्रयोक्ताओं का व्यक्तित्व भी ब्राह्मणोचित होना चाहिए। तभी उनकी वाणी एवं क्रिया परिष्कृत होती है। ऐसे ही लोगों द्वारा प्रयुक्त किए गए मन्त्रों एवं विधानों द्वारा अग्निहोत्र उस स्तर का बनता है जिसे यज्ञ कहते हैं ।। ६०-६५ ।।

यज्ञ माहात्म्यमुक्तं च शास्त्रेष्वाप्त वच: स्वपि ।
अग्नि प्रज्वलनं नेदं वस्तुहोमफलं न च ।। ६६ ।।
केवलं मन्यतां, किन्तु प्रयुक्तानां यथाविधि ।
वस्तूनां सूक्ष्म शक्ते सन्नयनं प्रमुखं मतम् ।। ६७ ।।
कर्मकाण्डाय यद्यत्र मन्त्रोच्चाराय लभ्यते ।
उपयुक्त: प्रवक्ता तत्साफल्ये नहि संशय: ।। ६८ ।।
कर्मेदं यज्ञ कर्तृणां भवत्येव पुरोधसाम् ।
पूततामधिकृत्याथ प्रखरत्वमपि स्वयम् ।। ६९ ।।
अग्निहोत्रस्य चाश्चर्यजनक फलमद्भुतम् ।
अस्मिन्नेवविधौ सर्वमवलम्बितमस्ति तत् ।। ७० ।।

टीका- यज्ञ के माहात्म्यों का वर्णन शास्त्रों और आप्त वचनों में सर्वत्र मिलता है। यह मात्र अग्निप्रज्वलन और वस्तु हवन का प्रतिफल नहीं है। विधिपूर्वक प्रयुक्त वस्तुओं का सूक्ष्म शक्ति का उन्नयन उसमें प्रमुख है। कर्मकाण्ड और मन्त्रोच्चार के लिए उपयुक्त प्रवक्ता यदि मिल सकें तो उसकी सफलता में सन्देह नहीं रह जाता। यह कार्य यज्ञ पुरोहितों की पवित्रता और प्रखरता के आधार पर बन पड़ता है। अग्निहोत्र के आश्चर्यजनक प्रतिफल इसी विधि व्यवस्था पर अवलम्बित है।। ६६-७०।।

उपयोगोऽग्निहोत्रस्य वपु: सम्बन्धिनामथ: ।
मन: सम्बधिनां चैव रोगाणां नाशने तथा ।। ७१ ।।
उभयो: क्षेत्रयोश्चापि तस्मिन्नुन्नयने सदा ।
जायते यज्ञ एषोऽत्र विद्यते स्तर उच्चग: ।। ७२ ।।
वातावृते: परिष्कारे ससदैव प्रपूज्यते: ।
राजसूयादियज्ञेषु भौतिकानां तु प्रायश: ।। ७३ ।।
समस्यानां समाधान हेतवे भवति स्म च ।
तत्स्तर प्रतिभानां तु तदेकीकरणं शुभम् ।। ७४ ।।
वाजपेये च यज्ञेतु धर्मज्ञास्ते मनीषिण: ।
जायन्ते च रिष्कर्तुं संगता जनमानसम् ।। ७५ ।।
उभे चायोजने वायुमण्डलं परिशोधितुम् ।
निर्धारणं च निश्चेतुं भवतस्तत्र तत्र तु ।। ७६ ।।
प्रयोजनानि चालक्ष्य विशेषाणि तु पर्वसु ।
स्थानेषु हि विशेषेषु यज्ञानायोज़यन्त्यपि ।। ७७ ।।
आस्थां प्रति समायातं दूरीकर्तुं तु संकटम् ।
गायत्री यज्ञ एवास्ति संस्कर्तु मानसं विधि: ।। ७८ ।।
उत्कृष्टतममेतच्च विधातुं जनजीवनम् ।
मतं विशेषमेवास्य महत्वं वेद पारगै: ।। ७९ ।।

टीका- अग्निहोत्र का उपयोग शारीरिक-मानसिक रोग निवारण और दोनों ही क्षेत्रों के उन्नयन (अभिवर्धन) के निमित्त होता है। यज्ञ इसी का ऊँचा स्तर है। उसे वातावरण के परिशोधन करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। राजसूय यज्ञ समारोहों में भौतिक समस्याओं के समाधान हेतु उसी स्तर की प्रतिभाओं का एकीकरण होता है। वाजपेय यज्ञ में जनमानस के परिष्कार की आवश्यकता पूरी करने के लिए धर्म क्षेत्र के मनीषियों का संगम होता है। दोनों ही प्रकार के आयोजन वायुमण्डल का परिशोधन का उपाय खोजने और निर्धारण निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए होते हैं। विशेष प्रयोजनों के लिए विशेष स्थानों और पर्वों पर विशेष यज्ञों के अनुष्ठान आयोजन भी होते रहते हैं। आस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संकट निवारण और जनमानस को परिष्कृत करने के लिए गायत्री यज्ञ ही एकमात्र उपाय है। जनजीवन में उत्कृष्टता भरने के लिए उसका विशेष महत्व वैदिकों द्वारा माना गया है ।। ७१-७९ ।।

यज्ञे व्यक्तेस्तु चैतन्ये देवत्वस्य सुभावनाम् ।
परिवर्द्धयितुं नूनं विशेषोऽस्ति गुणो महान् ।। ८० ।।
ब्रह्मकर्मसु यज्ञस्य सर्वत्रैवात एव तु ।
समावेशोऽनिवार्योऽस्ति मन्त्रशक्तिस्तदाश्रयात् ।। ८१ ।।
प्रखरत्वमुपैत्यैवं परिपक्वत्वमप्यलम् ।
ऋषयः पुरोधसोऽजस्रं श्रयन्ते यज्ञ सन्निधिम् ।। ८२ ।।
वायुमण्डलमत्यर्थं दूषितं तत्र विकृतम् ।
वातावरण मप्येतन्नृणां दुर्बुद्धि संभवम् ।। ८३ ।।
निराकर्तुमसंदिग्धं क्षमत्वं वर्तते ध्रुवम् ।
यज्ञोपचारकार्यस्य बलाद्बुद्धि प्रभाविणः ।। ८४ ।।

टीका- यज्ञ में व्यक्ति चेतना में देवत्व की मात्रा बढ़ाने का विशेष महान् गुण है। इसलिये ब्रह्मकर्मों में सर्वत्र यज्ञ का अनिवार्य रूप से समावेश किया जाता है। मंत्र शक्ति उसी आधार पर प्रखर परिपक्व होती है। पुरोहित और ऋषि निरन्तर यज्ञ के सान्निध्य में रहते हैं। दूषित वायुमण्डल और विकृत मानवीय वातावरण के निराकरण में यज्ञोपचार की क्षमता असंदिग्ध है क्योंकि वह बुद्धि को बलपूर्वक प्रभावित करता है।। ८०-८४ ।।

यज्ञैर्विधिकृतैः प्राण पर्जन्यो वर्द्धते दिवि ।
वर्षत्यपि जलेनैष वायुना भुवि चान्ततः ।। ८५ ।।
न्यूनातायास्तु दुर्भिक्षमाधिक्येन च जायते ।
सुभिक्षं प्रकृतेश्चापि प्रातिकूल्यं तथैव च ।। ८६ ।।
आनुकूल्यं तु तत्प्रायस्तिष्ठत्येव तदाश्रितम् ।
यज्ञाद्प्राणदपर्यन्य वर्षणं भवतीह तु ।। ८७ ।।
तेनाभिवर्षणेनात्र तत्त्वानां पुष्टिदायिनाम् ।
वाहुल्यं जायते नूनं वनस्पत्यादिषु स्वयम् ।। ८८ ।।
तेषां चैवोपभोक्तारः पशवः पक्षिणोऽथ च ।
मनुष्या अपि जायन्ते समर्था वलवत्तराः ।। ८९ ।।
कृषावुद्यान वृक्षेषु कृमयो हानिकारकाः ।
उत्पद्यन्ते न कुत्रापि यान्त्युत्पन्ना विनाशताम् ।। ९० ।।

टीका- विधिवत् किये गये यज्ञों से अन्तरिक्ष में प्राण पर्जन्य बढ़ता है और बरसता है। जल और वायु के साथ पृथ्वी पर आकाश से प्राण भी बरसता है। उसी की न्यूनाधिकता से दुर्भिक्ष सुमिक्ष पड़ते हैं। प्रकृति की प्रतिकूलता अनुकूलता भी बहुत कुछ उसी स्थिति पर निर्भर रहती है। प्राण-पर्जन्य वर्षा यज्ञ से उपयुक्त मात्रा में होती है। उस अभिवर्षण के कारण वनस्पतियों में पोषण तत्वों का बाहुल्य रहता है और उसका सेवन करने वाले पशु पक्षी और मनुष्य समर्थ एवं बलिष्ठ रहते हैं। कृषि-उद्यानों में हानिकारक कृमि-कीटक नहीं लगते व लगे हों तो नष्ट हो जाते हैं ।। ८५-९० ।।

इयदेव न मर्त्यानां दुर्विचारा विशन्त्यलम् ।
वाया वव्यक्त शब्दानां रूपे तेनेदमन्ततः ।। ९१ ।।
भूमण्डल मशेषं तु दूषित जायतेऽथवा ।
वातावरणमत्यर्थं स्थानानां दूषितं भवेत् ।। ९२ ।।
दुर्विचारा इमे सर्वे जले नायान्ति भूतले ।
प्रविशन्ति फलान्नेषु वनस्पत्यादिषु स्वतः ।। ९३ ।।
एतेषामुपयोकृणां दोषेणैषा धराऽखिला ।
दूषिता जायते यज्ञः परिष्कर्तुं क्षमः समान् ।। ९४ ।।

टीका- इतना ही नहीं मानवों के दुर्विचार जब अव्यक्त शब्द रूप में वायु में प्रवेश करते हैं तो क्रमशः सारा भूमण्डल या तत्तत् स्थानों का वातावरण दूषित हो जाता है। यही दुर्विचार जल के साथ पृथ्वी पर आते हैं व फल वनस्पति अन्न में प्रवेश कर जाते हैं और इनका उपयोग करने पर समस्त पृथ्वी दुर्विचार वाली हो जाती है। इन सब का परिष्कार यज्ञ से ही संभव है ।। ९१-९४ ।।

प्राणी सामाजिको मर्त्यश्चर्यास्य जीवनस्य तु ।
प्रगतिश्च बहूनां सा सहयोगस्य लब्धिभिः ।। ९५ ।।
व्यवतिष्ठत आदान प्रदानाभ्यां परस्परम् ।
साधनानि नरा नूनं संगृहणन्ति तथैव च ।। ९६ ।।
लाभंतेऽनुभवोत्पन्नं हस्तग कारयन्ति च ।
जन्मदात्री समृद्धेः सा प्रगतेः सहकारिता ।। ९७ ।।
आधारमिममाश्रित्य नरः सामर्थ्यवानपि ।
बुद्धिमान् धनवांश्चैव बभूवाद्यापि जायते ।। ९८ ।।

टीका- मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसकी जीवनचर्या और प्रगति अनेकानेकों का सहयोग उपलब्ध होने पर ही ठीक प्रकार चलती है। मनुष्य पारस्परिक आदान-प्रदान से एक दूसरे के लिए सुविधा साधन जुटाते और अनुभवजन्य लाभ लोगों को हस्तगत कराते हैं। सहकारिता ही प्रगति और समृद्धि की जन्मदात्री है। इसी आधार पर मनुष्य बुद्धिमान, सामर्थ्यवान और सम्पत्तिवान् बना है व आज भी बन रहा है ।। ९५-९८ ।।

समुदायानुदानेऽस्मिन् पशूनां पक्षिणामपि ।
योगदानं नहिन्यूनं विद्यते सुमहांस्तथा ।। ९९ ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहयोगोऽस्ति वृक्षाणां येषामेवानुदानतः ।
मानवः प्रगतिंयाति जीवत्यपि महीतले ।। १००।।
एभ्यो लभ्यो भवत्येष प्राणवायुः सदैव तु ।
आहारो बीज पत्रादिकन्द प्रसव रूपतः ।। १०१।।
प्राणिनः प्रापुवन्त्यत्र मेघा आकर्षणेन च ।
वर्षन्त्येषां च मूलानि जलं रुन्धन्ति भूतले ।।१०२।।
खाद्योर्वरां धरा शक्तिं पत्रैः प्रान्नोति सन्ततम् ।
तच्छत्तानीन्धनानीह भवनानां विनिर्मितौ ।। १०३।।
बिना नैवेन्धनैः कार्य सिद्धयत्यन्नानितान्यलम् ।
वस्त्राण्यपि ददत्येते वनस्पतय उत्तमाः ।। १०४।।

टीका- इस सामुदायिकता में पशुपक्षियों का भी कम योगदान नहीं है, इससे भी बड़ा सहयोग वृक्ष वनस्पतियों का है। वृक्ष वनस्पतियों के अनुदानों से ही मनुष्य जीवित रहता और प्रगतिशील बनता है। प्राण वायु उन्हीं से मिलती है। आहार उन्हीं के बीज, पत्तों, कन्दों और फलों से उपलब्ध होते हैं। वर्षा के बादल उन्हीं के खिंचाव से बरसते हैं। वर्षा के जल को भूमि में रोकने का काम जड़ें ही करती हैं। धरती को उर्वरक खाद उनके पत्रों से मिलती है। ईंधन उन्हीं की देन है। भवन निर्माण में लकड़ी के बिना काम नहीं चलता। अन्न वस्त्र जैसी आवश्यकता वनस्पतियाँ ही पूरी करती हैं ।। ९९-१०४।।

आलक्ष्यैवानुदानानि महान्तीह वनस्पतीन् ।
संजीवनीतिनान्मैव कीर्तयन्ति जनाः समे ।। १०५।।
वनस्पति वृक्षेषु बहवो देवता इव ।
पूज्यन्ते पूजिताः पूर्वं कृतज्ञैः पुरुषैः सदा ।। १०६।।
कुटुम्बेन यथामर्त्यः सुखं वसति स तथा ।
सुखिने जीवनायैव निवासेऽस्य तथैव च ।। १०७।।
कार्यक्षेत्रे भवेदेव हरितत्व तु प्रायशः ।
सुमनः सुहसत्स्वत्र सुषमा सा विलोक्यते ।। १०८।।

टीका- इन अनुदानों को देखते हुये वनस्पतियों को "जीवन मूरि" (संजीवनी) कहा जाता रहा है। वृक्षों और वनस्पतियों में से अनेकों को देवता की तरह पूजा जाता रहा है व आज भी पूजे जाते हैं। जिस प्रकार परिवार के साथ सुखपूर्वक रहा जाता है, उसी प्रकार सुखी जीवन के लिए निवास स्थान एवं कार्य क्षेत्र में हरीतिमा का बाहुल्य रहना चाहिए। हँसते-हँसाते पुष्पों में शोभा सौन्दर्य का भण्डार माना गया है।। १०५-१०८।।

अभिवर्द्धन मेतेषां परिपोषणमप्यथ ।
सरक्षणं कथं कार्यं वृक्षादीनां विधाविह ।। १०९।।
ऋषयो ज्ञानमापुस्ते गहनं चक्रुरत्र च ।
उद्यानानां नृभिः सार्धं स्थापनां स्वयमप्यथ ।। ११०।।
वनस्पतिभिरावास प्रेरणामृषयो दपुः ।
साधारणेभ्यो मर्त्येभ्यो वसन्तः तैः सह स्वयम् ।।१११।।
कारणं चेदमेवास्ति यदृषीणां वनौकसाम् ।
आवास वर्णने वृक्ष लतानां सरसामपि ।। ११२।।
वनस्पत्यादिकानां च निर्झराणां च वर्णनम् ।
पशुपक्षि कलाराव वर्णनं विद्यते बहु ।। ११३।।
स्वर्गस्यगौरवं प्रोक्तं नन्दनं वनमाश्रितम् ।
सुखिनःसमुन्नतान् कर्तुमानवास्ते व्यधुः स्वयम्।।११४।।
कृष्युद्यानादि सम्बद्धशोधकार्याण्यथापि च ।
सोत्साहांश्च नरांश्चक्रुः प्राप्तुं प्रावीण्यमत्र तु ।। ११५।।
क्षेत्राणि विविधान्यत्र प्रवासस्थं तु मण्डलम्।
सोत्साहं तत्र चाद्राक्षीन्ननन्दुश्च मनीषिणः ।। ११६।।

टीका- वृक्ष वनस्पतियों का अभिवर्धन, परिपोषण, संरक्षण कैसे किया जाय, इस विधा की ऋषिगण गहरी जानकारी प्राप्त करते रहे हैं। वे स्थान-स्थान पर अगणित उद्यान लगाते-लगवाते रहे हैं। वनस्पतियों के साथ गुथे रहने की प्रेरणा वनस्पतियों के साथ रहने वाले ऋषिगण सदैव जन-साधारण को देते रहे हैं। स्वर्ग का गौरव नन्दन वन पर आधारित बताया गया है। मनुष्यों को सुखी समुन्नत बनाने के लिए उनने कृषि, उद्यान से सम्बन्धित अगणित तथ्यों को खोजा और उस कला में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए जन जन को उकसाया। इस कार्य में प्रयुक्त हुए अनेक क्षेत्र प्रवास मण्डली ने उत्साह पूर्वक देखे और सभी मनीषीगण अति प्रसन्न हुए ।। १०९-११६।।

नारदो दर्शयामास तानि स्थानानि तत्र च ।
असंख्यानि तु येष्वत्र क्षेत्रेऽभूवन् बहून्यहो ।।११७।।
अनुसन्धान कार्याणि यज्ञ विज्ञान गानि च ।
तद्वनस्पति विज्ञान सम्बद्धान्यपि सन्ततम् ।। ११८।।
तत्प्रयोजन हेतोश्च यत्र जातानि तानि तु ।
आयोजनानि सोत्साहैराप्तो लाभो नरैरपि ।। ११९।।
ऊर्जो विज्ञानगः प्रोच्च उपयोगः कथं कियान् ।
अग्निहोत्रेस्तथा यज्ञैस्तत्राक्रियत शोभनः ।। १२०।।
तस्याधारेण संसारः कियन्तं लाभमाप्तवान् ।
इतिहासमिमं सर्वं श्रावयामास नारदः ।। १२१।।
तत्प्रयोगाभिसम्बद्ध क्षेत्रमस्याक्षिगोचरम् ।
मण्डलस्य व्यधात्तत्र नारदो यर्हि तर्हि ते ।। १२२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदस्या मण्डलस्थास्तु परमानन्दमाययुः ।
पर्यवेक्षण यात्रायां सन्तुष्टास्ते विशेषतः ।। १२३।।
टीका- नारदजी ने उन अगणित स्थानों को भी दिखाया जहाँ इस क्षेत्र में वनस्पति विज्ञान तथा यज्ञ विज्ञान के गहन अनुसन्धान होते थे। जहाँ उस प्रयोजन के निमित्त बड़े-बड़े आयोजन हुए और अनेकानेकों ने उत्साह पूर्वक लाभ उठाये। ऊर्जा विज्ञान का उच्चस्तरीय उपयोग अग्निहोत्र एवं यज्ञादि द्वारा किस प्रकार किया जाता रहा और उस आधार पर समस्त संसार को कितना लाभ मिला, यह इतिहास देवर्षि नारद द्वारा सुनाया गया। तथा उस प्रयोग से सम्बन्धित अनेकानेक स्थलों क्षेत्रों का दिग्दर्शन कराया गया तो प्रवास मण्डली के प्रत्येक सदस्य को बहुत आनन्द मिला और उस यात्रा पर्यवेक्षण पर विशेष सन्तोष हुआ ।। ११७-१२३।।

दिनं परिणतं दृष्टा खाद्यचिन्ता तथैव च ।
योग्यावासस्य चिन्ताऽपि समायाता तु सम्मुखे।। १२४ ।।
उभयोश्च समाधाने सूर्योऽस्ते स्थगिता समैः।
यात्रा नित्यविधिं कृत्वा रात्रिवासं व्यधुः सुखम्।।१२५।।
टीका- दिन ढलने लगा तो खाद्य पदार्थ ढूँढ़ने और रात्रि विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान खोजने की चिन्ता होने लगी। दोनों ही साधन जुट गए तो सूर्यास्त होने पर यात्रा को विराम दिया गया। नित्यकर्म से निवृत होकर मण्डली के सदस्य सुखपूर्वक रात्रि बिताने लगे।

इति श्रीमद्प्रज्ञोपनिषदे देव संस्कृति खण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो,
युग दर्शन साधना प्रकटीकरणयो महर्षि नारद प्रतिपादित "यज्ञ विज्ञान वनस्पति विज्ञान"
इति प्रकरणो नाम
। पंचमोऽध्यायः ।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ।।

आत्म शोधन प्रकरण

षष्ठस्य दिवसस्याथ प्रवासे मण्डलस्य ते ।
सदस्याः साभिलाषाः संजाता ज्ञातुमिदं कथम् ।। १।।
वैभवं वर्च एवापि मानवोचितमुत्तमम् ।
प्राप्तुं शक्यं कुतो येन सुखिनः स्युः समेऽप्यलम्।। २।।
तत्परत्वस्य यद्येष आकांक्षायाश्च विद्यते ।
परिणामस्तदा त्वेते सर्वेष्वात्र तिष्ठतः ।। ३।।
इच्छायामपि सत्यां च साफल्यं यान्ति नो जनाः ।
प्राप्तुमेतत्कथं सर्वे कारणं किं च विद्यते ।। ४।।
अनुग्रहोऽयं दैवश्चेत्समदर्शितया ततः ।
भगवतो मानवैः सर्वैः प्राप्येतैव सुनिश्चितम् ।। ५।।
प्रगतेरिच्छुकानां च समृद्धेरपि ते कथम् ।
असंख्याः सन्ति साफल्यहीनास्ते दुर्मनायिताः ।। ६।।
समानाः स्थितयः सर्वैः प्रायः प्राप्ता अपीह च ।
न्यूनाधिक्यतया चित्तं शरीरं च समं नृणाम् ।। ७।।
अनुन्नतस्थितावेव केषाञ्चित्तु नृणामिह ।
केषाञ्चित्प्रगतेरुच्चशिखरेऽत्र स्थितिस्तदा ।। ८।।
पतनस्य पराभूतेर्यन्त्रणासहनं नृणाम् ।
कथं भवति तत्सर्वं रहस्यं ज्ञेयमेव तु ।। ९।।
नृणां चित्तगतज्ञाने निष्ठातो नारदो मुनिः ।
मण्डलस्य सदस्यानां जिज्ञासां प्राप्य चाह सः ।। १०।।
टीका- छठें दिन के प्रवास में मंडली के सदस्यों को यह जानने की अभिलाषा हुई कि मनुष्योचित वैभव-वर्चस किस प्रकार कहाँ से उपलब्ध होता है, जिससे सभी सुखी हो सकते हैं। यदि यह आकांक्षा और तत्परता का परिणाम है, तो वह सभी में रहती है; फिर लोग इच्छा रहते हुए भी सफल क्यों नहीं होते ? यदि वह दैवी अनुग्रह है, तो फिर भगवान के समदर्शी होने के नाते वह सभी को समानरूप से क्यों उपलब्ध नहीं होता? प्रगति और समृद्धि की आकांक्षा करने वालों में से क्यों असंख्यों को मन-मसोस कर असफल रह जाना पड़ता है परिस्थितियाँ न्यूनाधिक मात्रा में सभी को एक जैसी उपलब्ध हैं। शरीर और मन की संरचना भी प्रायः

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलती-जुलती ही है; फिर किसी का पिछड़ी स्थिति में पड़े रहना, किसी का प्रगति के उच्चशिखर पर जा पहुँचना और किसी का पतन-पराभवजन्य यन्त्रणाएँ सहते रहना क्यों कर होता है? यह रहस्य जानना चाहिए। जन-जन के मन-मन की बात जानने में निष्णात महाभाग नारद जी ने मण्डली के साथियों की जिज्ञासा का आभास पाया और मुस्कुराते हुए बोले ।। १-१०।।

नारद उवाच-

नैव भाग्यविधानस्य विधिः शोच्यः कदाचन् ।
भवद्भिर्न विचार्यं च यन्मन्त्रस्याऽथवा पुनः ।। ११।।
देवस्य कस्यचिच्छिव्यचमत्कारेण वाऽञ्जसा ।
नरः साफल्यमाप्नोति वैभवं चातुलं तथा ।। १२।।
प्राप्यते यत्पौरुषस्य फलं तन्मन्यतां ध्रुवम् ।
पुरुषार्थेषु मुख्यं तदात्मशोधनमुच्यते ।। १३।।
जन्मान्तरकुसंस्कारान् दूरीकर्तुं निजात्मना ।
तप आदाय संघर्षः कार्य एवं नरैः समैः ।। १४।।
आकांक्षामान्यतास्वत्र प्रकृतिष्वपि संगतैः ।
पशुस्तरैर्निकृष्टैस्तैर्भावैर्मर्त्या वृता इह ।। १५।।
चक्रव्यूहे च तस्मिंस्ते स्पशिताश्च भ्रमन्त्यलम् ।
यन्त्रवृषभतुल्यास्ते शर्म विन्दन्ति नो क्षणम् ।। १६।।
न चैवं प्राप्नुवन्त्येते किमपीप्सितमुत्तमम् ।
मानवं जीवनं येन भवेत्सार्थकमन्ततः ।। १७।।

टीका- नारद ने कहा-आप लोग भाग्य-विधान की बात न सोचें। किसी देवता या मन्त्र के चमत्कार से मनुष्य अनायास ही सफलताएँ प्राप्त कर सकते हैं; ऐसा भी न सोचें। जो मिलता है, वह मनुष्य के पुरुषार्थ का प्रतिफल होता है। पुरुषार्थों में प्रमुख आत्मशोधन है। जन्म-जन्मान्तरों के संचितकुसंस्कार को निरस्त करने के लिए अपने आप से तपश्चर्या का माध्यम अपनाकर लड़ना पड़ता है। आकांक्षाओं, मान्यताओं और आदतों में घुसी हुई पशु-स्तर की निकृष्टता से सामान्य जन घिरे रहते हैं। वे उसी चक्रव्यूह में फँसे, कोल्हू के बैल की तरह जुते रहते हैं, उन्हें एक क्षण भी सुख नहीं मिल पाता तथा उनके पल्ले कुछ ऐसा नहीं पड़ता, जिससे मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध हो सके।। ११-१७।।

मनोरथा अहंकारसम्भवा लोभमोहजाः ।
भवबन्धनशब्देन कथ्यन्ते मुनिभिर्वरैः ।। १८।।
भंक्तुमेतदपेक्ष्यं तदन्तः साहसमुत्तमम् ।
इदमेवोद्गतं कर्तुं सम्भवेच्चेत्तदैव तु ।। १९।।
आत्मशोधन होतोश्च सम्भवेदात्मना स्वयम् ।
योद्धुं लोके नरः पुण्यो भविष्यत्कर्तुमुज्ज्वलम् ।। २०।।
गीतायां वर्णित दिव्य य एव जयति स्वतः ।
इदमान्तरिकं मर्त्यो महाभारतमुत्तमम् ।। २१।।
नरं तं वृणुते शीघ्रं विजयश्रीस्तथैव सः ।
ऋद्धिसिद्धिखाप्नोति भौतिकाध्यात्मिकीर्द्वितम् ।। २२।।

टीका- लोभ-मोह और अहंकार के क्षुद्र मनोरथों को ही मुनि-गण भव-बन्धन कहते हैं। इन्हें तोड़ने के लिए आन्तरिक साहस की आवश्यकता पड़ती है, उसे उभारा जा सके, तो आत्मशोधन के लिए अपने आपसे लड़ सकना सम्भव होता है, ऐसा कर सकने वालों का भविष्य उज्ज्वल बनता है, वे वही पुण्यात्मा होता है। जो गीता में वर्णित इस आन्तरिक महाभारत को जीतता है, उसे विजय श्री वरण करती है और भौतिक सिद्धियों तथा आत्मिक ऋद्धियों का उपहार अनायास ही प्राप्त होता है ।। १८-२२।।

मनोनिग्रहरूपे च तपश्चर्याविधौ तु ये ।
स्वभावा अनुपयुक्तास्तु स्पष्टं द्रोह्याः श्रमेऽपि ते।।२३।।
एतदर्थं नरैर्ग्राह्यमनुशासनमुत्तमम् ।
व्रतधारणमप्यत्र विधेयं च यथाविधि ।। २४।।
मनो जयति यो विश्वविजयी सभवेन्नरः ।
अभ्यासेऽस्मिन समग्रास्यात्साधना संयमस्य तु ।। २५।।
चतुर्था संयमः प्रोक्तो विचारेन्द्रिययोरथ ।
कालार्थयोश्च मर्त्यस्य जीवने सर्वदैव तु ।। २६।।
य इमान् साधयेन्मर्त्यः साधको वस्तुतस्तु सः ।
साधना परिणामश्च सिद्धिरूपे भवेदिह ।। २७।।

टीका- मनोनिग्रह की तपश्चर्या करने में अभ्यस्त आदतों में से जो अनुपयुक्त है, उनके विरुद्ध खुला विद्रोह करना पड़ता है। इसके लिए अनुशासन अपनाने और व्रत धारण करने पड़ते हैं। जो मन को जीतता है, वह विश्वविजयी बन सकता है। इस अभ्यास में समग्र संयम साधना होती है। संयम चार प्रकार हैं-इन्द्रिय संयम, अर्थ-संयम, समय-संयम और विचार-संयम, जो मनुष्य के जीवन में सदा अपेक्षित हैं। जो इन्हें साध लेता है, वही सच्चा साधक है। साधना की परिणति 'सिद्धि' के रूप में हो कर रहती है ।। २३-२७।।

कुसंस्कारैश्च योद्धुं यो मानवस्तु प्रवर्तते ।
अयने प्रथमे सोऽत्र पशुस्तरगतास्तु तान् ।। २८।।
आदर्शरहितान् मर्त्यान्नानुकर्तुं तथैव च ।
तैर्दत्तं च परामर्शं वाञ्छत्यल्पमपीह नो ।। २९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

साधकस्त्वात्मनो लक्ष्यं निश्चिनोति स्वयं तथा ।
आत्मानं परमात्मानं सद्भूयञ्चौ प्रविचारयन् ।। ३०।।
ताभ्यां विनिश्चतो मार्गोऽवलम्ब्यः प्रेरणां च ये ।
अधिगच्छन्ति हीनैस्ते तथा हीना भवन्त्यपि ।। ३१।।
आदर्शास्ते सदैवात्र गृहणन्त्यध्यात्मवादिनः ।
असंख्याननुकर्तुं च प्रेरकं मार्गमुत्तमम् ।। ३२।।
चिन्वन्ति दूरदर्शित्वयुतेनैतेन चात्मनः ।
विवेकेन त्यजन्त्येनं नैवालस्यादिभिः क्वचित् ।। ३३।।
संघर्षेणात्मनों विद्युदुदेति स्वयमेव सा ।
प्रयोजनानि पूर्यन्ते ययाऽऽश्चर्यकराणि तु ।। ३४।।
मनोबलं न कश्चित्तु लभते पुरुषोऽञ्जसा ।
तदाप्तुं च निजेनात्र स्वभावेनाथवा पुनः ।। ३५।।
स्वजनोत्पादिता बह्वीः सिद्धान्तरहितास्तु ताः ।
बाध्यतास्त्यक्तुमभ्येति साहसं ज्ञायतां ततः ।। ३६।।
अर्जितु विपुलामात्मशक्तिं तस्य कृते ध्रुवम् ।
अपावृत्तमिवद्वारं पूर्णत्ते मंगलोन्मुखम् ।। ३७।।

टीका- कुसंस्कारों से लड़ने के प्रथम मोर्चे पर जो जूझता है, उसे पशुस्तर के आदर्शहीन लोगों का अनुकरण करने, परामर्श अपनाने की तनिक भी इच्छा नहीं होती है। साधक को अपना लक्ष्य स्वयं निर्धारित करना पड़ता है और आत्मा तथा परमात्मा के दो साथियों को पर्याप्त मान कर उनके बताए हुए मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है। गये-गुजरे लोगों से जो प्रेरणा ग्रहण करते हैं, वे उन्हीं के जैसे क्षुद्र बन जाते हैं। अध्यात्मवादी आदर्श अपनाते हैं और असंख्यों को अनुकरण की प्रेरणा दे सकने वाला मार्ग दूरदर्शी विवेकशीलता के आधार पर चयन करते हैं तथा इस मार्ग को आलस्यादि कारणों से भी कभी नहीं छोड़ते हैं। इस निजी परिकर के संघर्ष से ही वह आत्म-विद्युत उत्पन्न होती है, जिसके सहारे अनेकानेक आश्चर्यजनक प्रयोजन पूरे किये जा सकें। मनोबल अनायास ही किसी को नहीं मिलता। उसे प्राप्त करने के लिए अपनी आदतों से, तथाकथित स्वजनों द्वारा पड़ने वाले सिद्धान्त रहित दबावों को अस्वीकार करने की हिम्मत पड़ गई, तो समझना चाहिए कि उसके लिए अजस्र आत्मबल एकत्रित करने का मंगलमय द्वार पूर्णरूप से खुल गया है ।। २८-३७।।

घर्षणाज्जायते विद्युद् विदन्तीदं समेऽपि तु ।
युद्ध्यते यः कुसंस्कारैः स्वजनैर्मन्दबुद्धिभिः ।। ३८।।
प्रमाथिभिस्तथा लोभैरोजस्वी स नरस्तथा ।
मनस्वी कथ्यते लोके तेजस्वी वा नरैः सदा ।। ३९।।
आत्मशक्तिधनाः सन्ति नरास्ते वस्तुतस्तथा।
तदाश्रित्य च संव्याप्ता विभूतीः प्राप्तमन्ततः ।।४०।।
अशुभानि निराकर्तुं समर्थास्ते भवन्त्यपि ।
प्रयोजनद्वयं चात्मशक्तिः पूरयति स्वतः ।। ४१।।
वैभवार्जनमेवं च संकटानां विनाशनम् ।
येनात्मतेजसा सिद्धेत्तद् ब्रह्माग्निरुदाहृतः ।। ४२।।
इदमेव तदूर्जस्तु यदाश्रित्यात्र संभवेत् ।
प्रगति भौतिकेऽध्यात्मक्षेत्रे लब्धिरनुत्तमा ।। ४३।।
एतादृशा जना स्वस्यां मार्गनावि विधाय च।
असंख्यानुपविष्टांस्तु प्रापयन्ति तटं परम् ।। ४४।।

टीका- सभी जानते हैं कि रगड़ से बिजली उत्पन्न होती है। अपने कुसंस्कारों से, मूढ़मति प्रियजनों से, आकर्षक प्रलोभनों से, जो लड़ सका, उसी को ओजस्वी, मनस्वी और तेजस्वी कहते हैं। ऐसे लोग आत्मबल के धनी बनते है और उसके सहारे संव्याप्त विभूतियों को खींचने तथा अशुभ-अनुपयुक्त को फेंकने में समर्थ होते हैं। आत्मशक्ति यह दोनों ही प्रयोजन पूरे करती है। संकट को टालना और वैभव को बटोरना, जिस आत्मतेज के माध्यम से बन पड़ता है, उसे प्राणाग्नि या ब्रह्माग्नि कहते हैं। यही वह ऊर्जा है जिसके सहारे भौतिक क्षेत्र में द्रुतगति से आगे बढ़ना और अध्यात्म क्षेत्र में असाधारण ऊँचाई तक उठ जाना संभव होता है। ऐसे लोग अपनी नाव पर बिठाकर असंख्यों को इस किनारे से उस किनारे तक पहुँचाते हैं ।। ३८-४४।।

विलासाभिरता लुब्धा लिप्सा जलधिमज्जिताः ।
येन-केन प्रकारेण कर्मकाण्डोयचारतः ।। ४५।।
देवानात्मकृते तुष्टानिव कर्तुं कथञ्चन ।
यतन्ते स्वार्थसिद्ध्यै चाऽपात्रायैस्पृह्यन्त्यपि ।। ४६।।
सन्त्येवासफला मर्त्या निराशाश्चेदृशाः समे ।
अध्यात्मनि कृता नैव सफला स्याद्विडम्बना ।। ४७।।
लाञ्छितं साधनायास्तु तत्वज्ञानं हि कुर्वते ।
गोपायान्ति स्वदुर्बुद्धिं नरा एतादृशा इह ।। ४८।।

टीका- विलासी, लालची, लिप्साओं में डूबे हुए व्यक्ति जिस-तिस प्रकार कर्मकाण्ड उपचार के सहारे देवताओं को फुसलाने का प्रयत्न करते हैं और उनसे ऐसे स्वार्थ साधना चाहते हैं, जिनकी पात्रता नहीं है। ऐसे लोग सदा निराश और असफल रहते हैं। अध्यात्म के नाम पर अपनाई गई विडम्बना कभी फलीभूत होती नहीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे लोग ही साधना के तत्वज्ञान पर लांछन लगाकर अपनी दुर्बुद्धि छिपाते रहते हैं ।। ४५-४८।।

नारदो दर्शयामास विविधानां तपस्विनाम् ।
कार्यक्षेत्राणि सिद्धानामर्जितो यैर्निधिर्महान् ।। ४९।।
दिव्यशक्तेः परिष्कार साधनानि निजात्मनः ।
कर्माण्यसम्भवान्यन्यैहितान्या चरितान्यपि ।। ५०।।
साफाल्यानां विभूतीनां सम्पदां शक्तिरेव तु ।
जननी, संग्रहो यस्याः पौरूषेणैव सम्भवेत् ।। ५१।।
आध्यात्मिकैस्तथैवैतन्निमितं संयमस्तपः ।
परार्थरतिरेतानि मतान्यावश्यकानि तु ।। ५२।।

टीका- नारद जी ने ऐसे अनेक तपस्वी सिद्ध-पुरुषों के कार्य क्षेत्र दिखाये, जिनने आत्म-परिष्कार की साधना से दिव्यशक्ति का भण्डार अर्जित किया और लोकहित के ऐसे काम कर दिखाए, जो सामान्य लोगों द्वारा, सामान्य परिस्थितियों में सम्भव नहीं होते। शक्ति ही सम्पदाओं, विभूतियों और सफलताओं की जननी है। उसका संग्रह आध्यात्मिक पुरुषार्थों द्वारा ही सम्भव होता है। इसके लिए संयम-साधने, तप करने और परमार्थ में निरत रहने की आवश्यकता पड़ती है ।। ४९-५२।।

सुविधानां साधनानां साफल्यानां च संश्रयैः ।
उल्लासं परमं यान्ति जनाः सर्वेऽपि सन्ततम् ।।५३।।
आधारमिममाश्रित्य साहसं कौशलं तथा ।
स्वास्थ्यं मनोबलं तेषां वृद्धिं यान्ति क्रमादिह ।। ५४।।
अध्यात्मक्षेत्र विज्ञानवेत्तारः श्रद्धया तथा ।
विश्वासेनापि निर्मान्ति मनोभूमिं तथा यया ।।५५।।
प्रसन्नता तथाऽऽनन्दो या यातं वृद्धिमुत्तमाम् ।
ब्रह्मानन्दं वदन्त्येनं सच्चिदानन्दमप्यथ ।। ५६।।
परमानन्दमप्यत्राऽनुभूतीरीदृशीर्नहि ।
असाफल्यानि कुर्युश्च काठिन्यानीह पीडिताः ।। ५७।।
साधनेषु निजेष्वेव सीमितेषु परिग्रहम ।
पालयन्तो व्रतं सर्वे स्थिरप्रज्ञस्तरं सुखम् ।। ५८।।
अनुभवन्ति च सन्तोषं गन्धेनेवास्य कुर्वते ।
वातावरणमत्यर्थमुल्लासेनाभिपूरितम् ।। ५९।।
असंख्याः प्राप्नुवन्त्यस्मादुत्साहं साहसं तथा।
आदर्शवादितामत्र स्वीकर्तुं जीवने स्वके ।। ६०।।

टीका- साधनों, सफलताओं और सुविधाओं के सहारे सभी प्रसन्न-उल्लसित होते हैं। इस आधार पर उनका स्वास्थ्य, साहस, कौशल और मनोबल भी बढ़ता है; पर अध्यात्म क्षेत्र के विज्ञानी श्रद्धा-विश्वास के सहारे भी ऐसी मनोभूमि विनिर्मित कर लेते हैं, जिसमें प्रसन्नता और प्रफुल्लता की मात्रा अत्यधिक बढ़ सके। इस मनः स्थिति को परमानन्द, ब्रह्मानन्द, सच्चिदानन्द आदि नाम दिये गये हैं। ऐसी अनुभूति वालों को सांसारिक कठिनाइयाँ और असफलताएँ भी व्यथित नहीं करती। सीमित साधनों में अपरिग्रह का व्रत पालते हुए ऐसे लोग स्थितप्रज्ञ स्तर के सुख-सन्तोष का अनुभव करते रहते हैं। प्रसन्न व्यक्ति अपनी अनुभूति की सुगन्धि से वातावरण को उल्लसित किये रहते हैं। उससे असंख्यों को अपने जीवन में आदर्शवादिता अपनाने का साहस उत्साह मिलता है ।। ५३-६०।।

ब्रह्मचैतन्यमेतच्च विराड्विश्वं तु वर्तते ।
तत्राहं भावसंन्यासमान्यतां संविधाय च ।। ६१।।
परिपक्वां व्रजेत्क्षुद्रः महत्तां साधकस्ततः ।
सीमाबन्धनगा लोभमोहाहंकार चक्रगाः ।। ६२।।
श्चोतयन्ति रसं सर्वं जीवनस्यात्र सम्पदः ।
तीव्रलिप्सा कुचक्रे च हापयन्तीशकृत्स्थितिम् ।। ६३।।
श्लथतायां निराशायाः क्षोभतायां अथापि च ।
अतिरिक्तं च पापान्न लभ्यते किमपि क्वचित्।। ६४।।
परमाध्यात्मिकं दृष्टिकोणं ये तूत्तमं नराः ।
स्वीकृत्यात्मनि सर्वांश्च सर्वेष्वात्मानमप्यथ ।। ६५।।
द्रष्टुं जाताः समर्थास्तु सर्वं पश्यन्ति ते स्वकम् ।
अनुभवन्ति धनं लब्धं सममिन्द्रकुबेरयोः ।। ६६।।

टीका- विराट् विश्व की ब्रह्मचेतना में अपने आपे का समर्पण करने की मान्यता परिपक्व करके साधक क्षुद्र से महान बनता है। सीमा-बन्धनों से जकड़े हुए लोग मात्र लोभ,मोह, अहंकार के कुचक्र में पिलते हुए जीवन-सम्पदा का सारा रस निचोड़ डालते हैं और न बुझने वाली लिप्सा के कुचक्र में ईश्वर प्रदत्त सुयोग को बुरी तरह गवाँ बैठते हैं। थकान, निराशा, खीज और पाप के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता, किन्तु जिनने अध्यात्मवादी उदात्त दृष्टिकोण अपना कर अपने में सबको और सबमें अपने को देखना सीख लिया उन्हें सब कुछ अपना ही दीखता है और इन्द्र-कुबेर जैसे वैभव प्राप्त कर लेने जैसा अनुभव होता है ।।६१-६६।।

एकमस्तीश्वरस्येह दर्शनस्य तु वस्तुतः ।
स्वरूपं विश्वमेतत्तु पश्येत्तस्मिन् परात्मनि ।। ६७।।
ओतप्रोतं तथोद्यानं कर्तुं विकसितं श्रयेत् ।
पौरूषं मुदितः स्याच्च तस्य सामीप्यतो नरः ।।६८।।
मनःस्थितौ तथेदृश्यां व्यक्तेश्चिन्तनमप्यथ ।
प्रयासा लोककल्याण निरतास्ते भवन्ति हि ।। ६९।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आत्मार्पणेन तस्मै च साधका विन्दु सिन्धुवत् ।
स्फुलिंगाग्निसमस्तेन विराजैकत्वमाप्नुयात् ।। ७०।।
विराजं ब्रह्ममत्वा च विश्वं श्रद्धायुतेन तु ।
चेतसा तस्य सेवायां लग्नता भक्तिरुत्तमा ।। ७१।।
भक्ता एवं विधा नित्यमीश सान्निध्यजं समे ।
लभन्ते परममानन्दमनुकम्पाः प्रभोश्च ते ।। ७२।।
एकता भगवतोऽत्यर्थं भक्तस्यातश्च सम्भवेत् ।
निजं भक्तसय किञ्चिन्न शिष्यते तत्र चेश्वरः ।।७३।।
समाविष्टौ भवत्येव प्रथक्त्वं तत्तथैव च ।
वैमुख्यं तिष्ठतस्तावद् यावल्लिप्सोन्मदो नरः ।। ७४।।
ईश्वरेच्छैव स्वेच्छा च यदा संजायते तदा ।
शिष्यतेकाम्नानैवयाञ्चाया न स्थितिः क्वचित्।। ७५।।
पूर्णता लक्ष्यसम्प्राप्तिरस्यामेव मनः स्थितौ ।
जायते प्राणिषु ब्रह्मावेशस्तत्प्रभुदर्शनम् ।। ७६।।

टीका- ईश्वरदर्शन का एक ही वास्तविक स्वरूप है। इस संसार को ईश्वर से ओत-प्रोत देखना और विश्व उद्यान को सुविकसित बनाने के लिए पुरुषार्थ कर उसकी निकटता का आनन्द लेना। ऐसी मनःस्थिति में व्यक्ति का चिन्तन और प्रयास मात्र लोकमंगल में ही निरत रहता है। ईश्वर को आत्मसमर्पण करने पर साधक विन्दु-सिन्धु की तरह, आग-चिनगारी की तरह उस विराट् सत्ता से तादात्म्य एकाकार हो जाता है। विश्व को विराट् ब्रह्म मान कर उसकी सेवा साधना में श्रद्धापूर्वक जुट जाना सच्ची भक्ति है। ऐसे भक्तजन निरन्तर ईश्वर-सान्निध्य का आनन्द लाभ करते हैं। उन पर ईश्वर की अनुकम्पा निरन्तर बरसती है। भक्त और भगवान की एकता-एकात्मता इसीलिए बनती है कि भक्त का अपना कुछ रहता ही नहीं, तो उस खालीपन में भगवान का भर जाना स्वाभाविक है। पृथकता और विमुखता तभी तक रहती है, जब तक ललक-लिप्सा का उन्माद चढ़ा रहता है। जब भगवान की इच्छा ही अपनी इच्छा बन गई, तो फिर न कुछ कामना रहती है, न याचना की आवश्यकता पड़ती है। पूर्णता का लक्ष्य इसी मनःस्थिति में प्राप्त होता है। भगवान का दर्शन - सब में ब्रह्मसत्ता का समावेश देखना है ।। ६७-७६।।

सेवा सा साधना चैव भक्तिरत्रोच्यते तथा ।
उदातोदृष्टिकोणश्च स्वर्ग एव न संशयः ।। ७७।।
अहंकारस्य लोभस्य मोहस्य त्रिविधं च यत् ।
भवबन्धनमेतस्मान्मोचनं मुक्तिरुच्यते ।। ७८।।
इच्छायां भगवतोऽथापि व्यवस्थायां निजस्य च ।
तत्परत्वं च विद्वद्भिः प्रोक्ता लोक उपासना ।। ७९।।
संस्कार पद्धतौ स्वस्य जीवनस्य गतिश्च सा ।
उच्यते साधनेशस्य मित्रं नो शत्रुरेव वा ।। ८०।।
नोपहारं स्तुतिं वा स वाञ्छतीह तु कस्यचित् ।
तस्य नावश्यकं चैतद् विद्यते परमात्मनः ।। ८१।।
न निजो न परस्तस्य न शत्रुर्मित्रमेव वा ।
अस्ति वास्तविकं रूपं पूजायाः श्रमसीकरैः ।। ८२।।
विश्वोद्यानस्य तस्यालं सिञ्चनं श्रेष्ठताविधेः ।
बीजारोपणमादर्शवादिता वृद्धिरत्र च ।। ८३।।

टीका- 'भक्ति' सेवा-साधना को कहते हैं। उदात्त दृष्टिकोण का नाम 'स्वर्ग' है। लोभ-मोह-अहंकार के त्रिविध भव-बन्धनों से छुटकारा पाने का नाम 'मुक्ति' है। भगवान की इच्छा और व्यवस्था में अपने-आपको खपा देना 'उपासना' है। 'साधना' का अर्थ है, जीवन को सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढाल लेना । ईश्वर का न कोई मित्र है, न कोई शत्रु। उन्हें किसी का उपहार-मनुहार नहीं चाहिए। इसकी उन्हें आवश्यकता भी नहीं है। न उनका कोई अपना है, न पराया। न मित्र है, न शत्रु,। 'पूजा' का वास्तविक स्वरूप है-भगवान् के विश्व उद्यान को श्रम-सीकरों से सींचना और उसमें उत्कृष्टता का बीजारोपण, आदर्शवादिता का अभिवर्धन करना।। ७७-८३।।

आत्मनः शोधने लग्नाः परमार्थे रताश्च ये ।
पुरुषास्ते मता लोके वस्तुतो भक्तसत्तमाः ।। ८४।।
वरदानांश्च तान्सर्वान् प्राप्नुवन्त्यदि ते सदा ।
अनादिकालाद् भक्ता यान् योगिनोऽथ तपस्विनः।। ८५।।
महात्मानश्च विप्रास्ते प्रापुरस्या न ते जनाः ।
अधिकारिणि आहुर्ये व्यवहारेण सन्त्ययथ ।। ८६।।
चिन्तनेन चरित्रेण निकृष्टाः स्वार्थपूरकम् ।
मन्त्रतन्त्र क्रियाभिस्तं वश्यं वाञ्छन्ति पूजया।। ८७।।
दिग्भ्रान्तानां नृणां नैव न्यूनता क्वचनास्ति सा ।
बहवोऽध्यात्ममार्गेऽपि भ्रान्ताः सन्ति नरा इह।।८८।।
हेयं जीवन्ति स्वार्थाय दैवीः शक्तीरिह स्वयम् ।
उपयोक्तुं दिवा स्वप्नं पश्यन्ति प्राय एव च ।। ८९।।
ऋषयो बहवश्चात्र हिमाद्रेः क्षेत्र उत्तमे ।
वसन्तः सत्य भक्तानामिव संस्कारसंयुताम् ।। ९०।।
चकुर्जीवनचर्यां च प्रापुरस्माच्च संन्ततम् ।
भगवतश्चानुकम्पां ते दिव्या मंगलसंयुताम् ।। ९१।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एतादृशा इह प्रोक्ता ऋषयस्तत्वदर्शिनः ।
कृतकृत्याश्च ते जाता सर्वतः सन्ततं स्वतः ।।९२।।
तेषां शरणमायाता ऋद्धयः सिद्धयोऽपि च ।
धन्यास्ते पूर्णतो जाता जीवने च निजे शुभे ।।९३।।

टीका- आत्मशोधन और परमार्थ में निरत व्यक्ति ही सच्चे भक्त माने जाते हैं और वे ही उन वरदानों को प्राप्त करते हैं, जो अनादिकाल से समय-समय पर भगवद् भक्तों, योगी-तपस्वियों, सन्त-ब्राह्मणों, को मिलते रहे हैं। इस अनुकम्पा के अधिकारी वे नहीं बन सकते जिनका चिन्तन चरित्र और व्यवहार तो निकृष्ट स्तर का है, पर पूजा-अर्चा,मन्त्र-तन्त्र और क्रिया-कृत्यों के बदले दिव्य सत्ता को वशवर्ती बनाना और भले-बुरे मनोरथ पूरे कराना चाहते हैं । दिग्भ्रान्तों की किसी क्षेत्र में कमी नहीं ।अध्यात्म क्षेत्र में भी ऐसे भटके लोग बहुत हैं, जो हेय जीवन-जीते और स्वार्थपूर्ति के लिए दैवी शक्ति का उपयोग करने के दिवास्वप्न देखते हैं। अनेकों ऋषिगणों ने पावन हिमालय क्षेत्र में निवास करते हुए सच्चे भक्तों जैसी जीवनचर्या बनाई और बदले में भगवान की अजस्र अनुकम्पा पाई। ऐसे तत्वदर्शी तपस्वी ही ऋषि कहाये और हर दृष्टि से कृत-कृत्य हुए ऋद्धि-सिद्धियों ने उनके चरण चूमे। वे अपने जीवन में धन्य हो गये ।। ८४-९३।।

प्रवासोऽद्यतनश्चायं व्यतीतश्चर्चयाऽनया ।
ऋषीणामांश्रमांस्तत्र सर्वेषां पश्यतां ततः ।। ९४।।
नवीना अपि यत्रेव मिलिता मुनयोऽथ च ।
मनीषिणोऽपि यात्रायां सश्रद्धं प्रणमच्चतान् ।।९५।।
सौहार्द्रं चार्पयत्तत्र ततोऽगाऽग्रेऽगाच्च मण्डलम् ।
सायं समय आयाते यातुमग्रेतमस्यथ ।। ९६।।
कठिनं प्रविचार्यैव मण्डलं पूर्ववत्ततः ।
विश्रमं संनियोज्यैव सुखं रात्र्यतिवाहिता ।। ९७।।

टीका- आज का प्रवास इस चर्चा के साथ ऋषि-आश्रमों के पुरातन स्थान देखते हुए व्यतीत हो गया। जहाँ-तहाँ अर्वाचीन मुनि-मनीषी भी इस यात्रा प्रसंग में मिले,उन सबको नमन करती और श्रद्धां-सौहार्द्र प्रस्तुत करती हुई मण्डली आगे बढ़ती रही। सायंकाल होने पर रात्रि के अन्धकार में आगे चलना कठिन देखकर मण्डली ने नित्य की तरह विश्राम का सुयोग बिठा लिया और आनन्दपूर्वक रात्रि बिताई ।। ९४-९७।।

इति श्रीमद्प्रज्ञोपनिषदे देव संस्कृति खण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो, युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः, महर्षि नारद प्रतिपादिते "आत्म शोधन" इति प्रकरणो नाम
।।षष्ठोऽध्यायः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

।। अथ सप्तमोऽध्यायः ।।

ऋषि परंपरा पुनर्जीवन प्रकरण

दिवसोऽन्त्यः प्रवासस्य सोऽद्याभून्मुनिमण्डलम् ।
सप्ताहमवधिं कृत्वा पर्यवेक्षणयोजनाम् ।। १।।
हिमाद्रेः प्रविधायैतत्क्षेत्र गौरवगानि तु ।
कारणानि परिज्ञातुं निर्गतं सोत्सुकं ततः ।। २।।
नारदस्य बहुज्ञत्वकारणाल्लब्धमेव च ।
एभिरेतन्निजं सर्वमीप्सितं ज्ञानवर्द्धकम् ।। ३।।
सामान्यास्ते जनास्त्वेनं हिमाद्रिं प्रोच्चमुज्ज्वलम् ।
कठोरं सजलं किं वा हिमाच्छादितमुत्तमम् ।। ४।।
हरितं पार्श्वभागेषु प्रकृतेः सुषमायुतम् ।
मेनिरे द्रष्टुमायान्ति यं तु कौतुक पूर्तये ।। ५।।
परिवर्तनजं लाभं प्राप्य यान्ति स्म ते गृहान ।
परं मण्डलमेतत्तु दृष्टिं भिन्नां व्यधान्निजाम् ।। ६।।
उल्लासोऽतः प्रकाशश्च प्राप्तौ नव्यस्तरावपि ।
ज्ञातं तैः कथमेतस्य भारतस्य जगत्यलम् ।। ७।।
भारते च हिमाद्रेस्तद् गौरवं विद्यते महत् ।
यस्माद्धेतोर्वदन्त्येनं भारतं तु जगद्गुरुम् ।। ८।।
इदं सर्व महर्षीणां व्यक्तित्वेनोच्चतां गतैः ।
क्रियाविधिभिरेवात्र जातं सम्भवमन्ततः ।। ९।।
अन्यथाभूमिखण्डानि न्यूनाधिकतया भुवि ।
समानानि हि सर्वत्र विद्यन्ते तानि तानि तु ।। १०।।

टीका- आज प्रवास का अन्तिम दिन था । एक सप्ताह के लिए हिमालय पर्यवेक्षण की योजना बनाकर मनीषी-मण्डली इस क्षेत्र की गरिमा के आधार भूत कारणों को खोजने चली थी। नारदजी की बहुज्ञता ने उन सभी को अपने ईप्सित की यह उपलब्धि करा दी, जो ज्ञानवर्धक सिद्ध हुई। सामान्यजनों को हिमालय ऊँचा, उज्ज्वल, हिमाच्छादित, कठोर, सजल बढ़िया, हरीतिमा सम्पन्न, मात्र प्रकृति शोभा-सज्जाओं से भरा-पूरा शोभायमान ही लगता था। उसे देखने लोग कौतुहलपूर्ति भर के लिए आते थे और परिवर्तन का लाभ लेकर वापस चले जाते थे। पर इस प्रवासी मण्डली ने दृष्टिकोण भिन्न रखा। तदनुरूप प्रकाश-उल्लास भी नये स्तर का पाया। उनने जाना कि विश्व भर में भारत की और भारत भर में हिमालयकी गरिमा किस कारण है, यह वही कारण है, जिससे भारत जगद्गुरु कहलाया ।-यह सब ऋषियों के महान् व्यक्तित्वों और उनके उच्चस्तरीय क्रिया-कृत्यों के कारण ही सम्भव हुआ है; अन्यथा भूमिखण्ड तो न्यूनाधिक मात्रा में सर्वत्र एक जैसे ही हैं ।। १-१०।।

मनुष्येष्वपि चाकृत्या निर्मित्या वपुषोऽथवा ।
नैव कश्चिन्महान् भेदो जायते दृष्टिगोचरः ।। ११।।
तेषु भेदो महान् योऽसौ लभ्यते तस्य कारणम् ।
सद्भावस्य संस्कारः केवलं विद्यते त्वयम् ।। १२।।
स यत्रैव यावांश्च जायतेऽधिक एव तु ।
औत्कृष्ट्यं तावदेवासावुत्पादयति तत्र च ।। १३।।
दृष्टिगोचरतां याति तावती चोपयोगिता ।
तत्र तत्र तथा लोक श्रद्धाऽप्येषाऽभिवर्षति ।। १४।।
धन्यतां ये गताश्चान्यान् धन्यान् येऽकार्षुरत्र तु ।
रहस्यं चेदृशां नृणां स्थानानां गुप्तमस्त्यदः ।। १५।।
तथ्यमेतच्च विज्ञातुं यतन्ते ये च कुर्वते ।
मार्गदर्शनमस्त्येषां प्रवासः सार्थकस्त्वयम् ।। १६।।
अन्ये मृगकपोतानां गणा इव दिशो दश ।
मनोविनोद हेतोस्तु प्रधावन्त निरन्तरम् ।। १७।।
शाखामृग समास्ते च शाखाभ्योऽन्या निरन्तरम् ।
समाश्रयन्ति शाखास्तु श्रमकाल विनाशकाः ।। १८।।

टीका- मनुष्यों के बीच भी आकृति एवं शरीर-संरचना की दृष्टि से कोई बड़ा अन्तर नहीं है, फिर उनके बीच जमीन-आसमान जैसा जो अन्तर पाया जाता है, उसका एक मात्र कारण सदाशयता का पुट लगना ही है । वह जहाँ जितनी मात्रा में अधिक होता है, वहाँ उतनी ही उत्कृष्टता उत्पन्न करता है-वहाँ उतनी ही उपयोगिता भी दृष्टिगोचर होती है। तदनुरूप लोक-श्रद्धा भी उतनी ही बरसती है । धन्य बनने और बनाने वाले व्यक्तियों तथा स्थानों के पीछे यही रहस्य छिपा रहता है, जो इस तथ्य को समझने का प्रयत्न करते हैं, उन्हीं का प्रवास-पर्यटन सार्थक होता है। अन्य लोग तो हिरन-कबूतरों की तरह मन बहलाव के लिए इधर-उधर दौड़ लगाते रहते हैं । बन्दरों की तरह इस डाली से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस डाली पर उचकने मचकने वाले अपने समय-श्रम को जिस तिस प्रकार बिताते भर रहते हैं ।। ११-१८ ।।

प्रवासस्य श्रमो विज्ञ वर्गस्याभूतु सार्थक: ।
यतस्तैर्दृष्टि रादत्ता दिव्या वैज्ञानिकी बुधै: ।। १९ ।।
ज्ञातुं दृश्य गतान्यत्र तथ्यान्युच्चस्तराणि तु ।
अकार्षुरिदमेवात्र तत्वदर्शिन उत्तमा: ।। २० ।।
कृष्णागांर समादस्मात्संसाराद् बहुमूल्यकान् ।
लभन्ते हीरकान् क्षारात् समुद्रात्ते यथा सदा ।। २१ ।।
मज्जका गहने गत्वालभन्ते मणि मौक्तिकम् ।
प्रतिमैव नरानुच्चान् कुरुते सूक्ष्मदृष्टित: ।। २२ ।।
नेत्राभ्यां दृश्यते यत्तु तदेवास्तीतिवादिन: ।
इन्द्रिय प्रियवस्तूनामनुगन्तार एव ये ।। २३ ।।
नरास्ते पशुभिस्तुल्यं जीवन्तीह तथाऽन्तत: ।
पश्चात्तापभराक्रान्ता रिक्तहस्ता: प्रयान्त्यत: ।। २४ ।।
विचारेणाद्य चैतेन दिने सम्पूर्ण एवतु ।
स्थित्वैकस्मिंस्तु देशे तन्मण्डलं निश्चयं व्यधात् ।।२५ ।।
यद् दृष्टं तु तदाश्रित्य निर्मेयं किमपि स्वयम् ।
परित्यज्य प्रवासं तु ज्ञानगोष्ठी सुयोजिता ।। २६ ।।
संगमेऽलकनन्दाया भागीरथ्या: स्थितेशुभे ।
देवप्रयाग तीर्थे ते शिलाखण्डं समाश्रिता: ।। २७ ।।
विचारे संनिमग्नास्ते शोभामापुर्यथा दिवि ।
सप्तर्षि मण्डलं रात्रौ वैशिष्ट्यं द्योतयन्त्यलम् ।। २८ ।।

टीका- इस विज्ञ समुदाय का प्रवास श्रम सार्थक हुआ; क्योंकि उनने दृश्य के पीछे छिपे हुए तथ्यों को समझने की वैज्ञानिक दृष्टि अपनाई। तत्वदर्शी यही करते रहे हैं और इस कोयले की खंदान जैसे कुरूप संसार में से बहुमूल्य हीरक उपलब्ध करते रहे हैं। खारी समुद्र में से गोताखोर ही गहरी डुबकी लगाते और मणिमुक्तक बटोरते हैं। सूक्ष्मदृष्टि में प्रतिभा ही मनुष्य को ऊँचा उठाती-आगे बढ़ाती है। जो दीखता है, उसी को सब कुछ मान बैठने वाले और जो इन्द्रियों को प्रिय है, उसी के पीछे दौड़ने वाले व्यक्ति नर-पशुओं जैसा जीवन बिताते और अन्तत: पश्चाताप का पोटला शिर पर लाद कर हाथ मलते हुए इस संसार से विदा होते हैं । इस विचारणा के साथ आज का दिन मंडली ने एक स्थान पर बैठ कर जो देखा, उसके आधार पर किसी निर्णय-निष्कर्ष तक पहुँचने का निश्चय किया। सो प्रवास स्थगित रख कर ज्ञान-गोष्ठी की योजना बनाई गई । अलकनन्दा और भागीरथी के संगम पर बसे हुए देव प्रयाग के एक सुरम्य शिला खंड पर बैठकर वे लोग विचार मग्न हो गये। वे ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो आकाश में रात्रि के समय सप्तऋषि मण्डल प्रकाशवान् होकर अपनी विशिष्टता का परिचय दे रहे हों ।।१९-२८।।

मण्डलस्य सदस्यास्ते कृतवन्त: स्वकां तत: ।
जिज्ञासां भगवन् सोऽयं हिमाद्रि: संस्कृतिश्च सा ।। २९ ।।
नरा अपि तथा चैव स्थितावेव तिरोहिता ।
पुण्या लोकहिता श्रद्धायुतैर्षि परम्परा ।। ३० ।।
पूर्वस्मिन् समयेत्वल्पा ऋषयो दिव्यतेजस: ।
भारतस्य समस्तस्य विश्वस्यापि निरन्तरम् ।। ३१ ।।
मत्यगौरवजं पुण्यमौत्कृष्ट्यं स्थापितं व्यधु: ।
वर्द्धिताश्चक्रुरेषोऽद्य समाप्तो वर्ग एव तु ।। ३२ ।।
तथावेषधरामर्त्यास्तदाडम्बरकारिण: ।
सन्तो लक्षाधिका दृष्ट्या पौरुषेण तथैव च ।। ३३ ।।
चरित्रेण तथा नैव सन्ति चैवं स्थितावयम् ।
हिमगिरेर्दृश्यभागस्तु दुर्गतो ध्वंसदु:खत: ।। ३४ ।।
शोभायां विद्यमानायामपि तद्गौरवस्य स: ।
निर्माता मुख्य आधारो मृग्यते नैव मार्गणात् ।। ३५ ।।
देवास्य कारणं ब्रूतां निवारणमपि प्रभो ।
मनोऽस्माकं व्यथाव्याप्तं ग्लान्या भारायितं तथा ।। ३६ ।।

टीका- मण्डल के सदस्यों ने पूछा-भगवन् ! हिमालय वही है, संस्कृति का अस्तित्व भी है, मनुष्य भी वैसे ही है; इतने पर भी अब लोक हितैषिणी श्रद्धेय ऋषि परम्परा तिरोहित कैसे हो गई ? पूर्वकाल में मुट्ठी भर ऋषि ही इस देश की-समस्त संसार की-मानवी गरिमा की उत्कृष्टता बनाते और बढ़ाते रहते थे; पर अब तो वह वर्ग एक प्रकार से समाप्त हुआ जैसा ही लगता है। वैसा वेष और आडम्बर बनाने वाले लाखों की संख्या में रहते हुए भी न वैसा दृष्टिकोण है, न चरित्र, न पुरुषार्थ। ऐसी दशा में हिमालय का दृश्यमान कलेवर भी ध्वंसावशेष की तरह दु:खी दुर्गतिग्रस्त हो रहा है। प्रत्यक्ष शोभा बनी रहने पर भी उसकी गरिमा बनाये रहने वाला आधार कहीं खोजे नहीं मिलता। हे देव ! इसका कारण और निवारण बताने की कृपा करें। हम सबका मन ग्लानि से बोझिल और व्यथित हो रहा है ।। २९-३६ ।।

नारद उवाच-

भद्रा: परणितिस्त्वेषा स्थूल दृष्टेर्हि वर्तते ।
तथ्यान्वेषकरी बुद्धिर्दुर्बुला जायते तत: ।। ३७ ।।
बाह्यं कलेवरं मत्वा सर्वस्वं पुरुषा अथ ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अन्धानुसरणेनैवमुपहासं व्रजन्ति च ।। ३८।।
स्वयं भान्ता भवन्त्येवमसंख्यान् भ्रामयन्त्यपि ।
भ्रान्ता विन्दन्त्यनर्थं च जानन्त्येतत्समयेऽपितु ।। ३९।।
अन्यक्षेत्रमिवैषाऽपि दुर्गतिं भजते पराम् ।
शोच्यां, पुण्यतमा लोक इयमृषि परम्परा ।। ४०।।
बल्कलैर्वसनैरत्र हिमाद्रावृषयः पुरा ।
कुर्वते कार्यसिद्धिं ते गैरिकाम्बर धारणात् ।। ४१।।
तथा वेषोऽधुना मर्त्यैः स्वीकृतः शीतवारणम् ।
तदा वन्यैरकार्षुश्च दारुभिः कृष्णवर्त्मगैः ।। ४२।।
निगतं भस्मगात्रे ते लेपने चोपयुञ्जते ।
शीतोष्णसहने ऽनेन सारल्यं जायते स्म च ।। ४३।।
नाधुना सुलभान्येव दारुण्येवं न चाधुना ।
वस्त्राणां न्यूनतास्तीह तथाप्यत्र तु साधवः ।। ४४।।
छायाग्राहितया तस्य चलनस्य तु कुर्वते ।
अन्धानुसरणं तेऽद्यविचारेण विनैव तु ।। ४५।।

टीका- नारद बोले-हे भद्रजनो ! यह स्थूल दृष्टि का परिणाम है। जब तथ्यान्वेषी बुद्धि पार कर जाती है, तब मनुष्य मात्र बहिरंग कलेवर को ही सब कुछ मान बैठते हैं और अन्धानुकरण करके उपहासास्पद बनते हैं, स्वयं भ्रमित होते और असंख्यों को भ्रम में डालते हैं। भ्रमित जनों के पल्ले अनर्थ ही पड़ता है-इसे सभी जानते हैं। वैसी ही दुर्गति अन्य क्षेत्रों की तरह पवित्र ऋषि परम्परा की भी रही है। कभी ऋषियों को हिमालय क्षेत्र में उपलब्ध वल्कल वस्त्रों से काम चलाना पड़ता था। अब उसकी चिन्ह-पूजा के लिए गेरूये वस्त्र पहन कर वैसा ही स्वरूप बनाया जाता है । उन दिनों शीतनिवारण के लिए वन क्षेत्र में विपुल मात्रा में लकड़ी रहती थी। उसे साफ करने और शीत निवारण करने के लिए वे उसे धूनी के रूप में जलाते रहते थे। निकलने वाली भस्म को शरीर पर लपेटते थे, इससे सर्दी-गर्मी का सहन कर पाना सुगम हो जाता था; पर अब न तो लकड़ी सुलभ है और न वस्त्रों का अभाव, फिर भी तथा-कथित साधु जन लकीर पीटने के लिए उसी प्रचलन का बिना विचारे अन्धानुकरण करते हैं ।।३६-४५।।

नारिकेलस्य तुम्ब्याश्च जलपात्रणि चाञ्जसा।
सुलभानि तदाऽभूवन्न परिग्रहमानि तु ।। ४६।।
पात्रेषु चाल्पमूल्येन प्राप्तव्येष्वापि तेष्वलम् ।
आग्रहः क्रियते नैतत्समयानुमतं नृणाम् ।। ४७।।
अग्निं व्यवस्थितिं कर्तुं सन्देशोऽपेक्ष्यते तथा ।
छेत्तुं गुल्मादिकं तत्र कुठारोऽपेक्ष्यतां गतः ।। ४८।।
अस्मतां गच्छति क्वापि तथावश्यकता विधेः ।
तथा स्थिता वसत्यां ते धारयन्त्यद्य तानि च ।। ४९।।
स्वयं मृतानां वन्यानां पशूनां तूपयुञ्जते ।
चर्मते चासनस्थाने परं हत्वाऽद्यतान पशून् ।। ५०।।
चर्मप्राप्तौ विशुद्धत्वं कुतस्तद् विद्यते तथा ।
पुराणे समये चाति विशिष्टान्वेषणेच्छया ।। ५१।।
अभ्यासार्थमिहैकान्तवनानां भवति स्म सा ।
इहावश्यकता लभ्या जाताश्चास्मै गुहास्तदा ।। ५२।।
परमद्य तथा शोध प्रयोजनमृतेऽपि तु ।
वातपूर्णकुटीनां च व्ययेऽल्पेऽधिगतावपि ।। ५३।।
गुहा निर्मान्ति व्यर्थं च तत्र ते च दिवानिशम् ।
विलेशया इव स्थित्वा समयं नाशयन्त्यलम् ।। ५४।।
विना कारणमत्रैव तदावरणनिर्मितिः ।
उदरम्भरितामात्रं बालबुद्धिरयास्ति वा ।। ५५।।

टीका- उन दिनों तूम्बा और नारियल के जल-पात्र वन क्षेत्र में सहज उपलब्ध होते थे, अस्तु वे अपरिग्रह के चिन्ह थे; किन्तु आज बर्तन सस्ते और सुविधाजनक होने पर भी उन्हीं वस्तुओं के लिए आग्रह रखा जाना समय के अनुकूल नहीं है। अग्नि सँभालने के लिए बड़ा सा चिमटा-झाड़ियाँ साफ करने के लिए कुल्हाड़ी नित्य की आवश्यकता पूरी करती थी। वह आवश्यकतानुसार अस्त्र का भी काम करती थी, पर आज वैसी परिस्थिति न होने पर भी लोग इन उपकरणों को धारण किये फिरते हैं। वन प्रदेश में अपनी मौत मरने वाले पशुओं का चर्म आसन आदि के काम आता था; किन्तु अब हत्या करके उन्हें प्राप्त किये जाने पर शुद्धता कहाँ रही? पुराने समय में अतिमहत्वपूर्ण अन्वेषण-अभ्यास के लिए एकान्तवन की आवश्यकता पड़ती थी, इसके लिए पर्वतीय गुफाएँ सहज उपलब्ध थी; पर अब वैसा शोध प्रयोजन सामने न रहने पर भी-हवादार झोंपड़े सस्ते पड़ने पर भी लोग गुफा बनाते और उनमें अजगर की तरह निरर्थक समय नष्ट करते हुए पड़े रहते हैं। कारण न होने पर आवरण बनाना बाल-बुद्धि का चिन्ह या उदरपूर्ति मात्र का साधन माना जायेगा ।।४६-५५।।

परिस्थित्यनुरूपेण निर्धारणमथापि वा ।
परिवर्तनमस्त्येव बुद्धिमत्तादि लक्षणम् ।। ५६।।
अदूरदर्शिताभावक्रमेऽन्धानुगतेस्तु ताः ।
गृह्यन्ते मान्यतामूढ़भावपुष्टा नरैः सदा ।। ५७।।
मूढा परम्पराणां तु कुर्वते ते दुराग्रहम् ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहुः प्रचलनान्येव कुरीतीर्यानि चान्ततः ।। ५८।।
उपहासास्पदान्येवं मर्त्यहानिकराण्यपि ।
सिद्धत्येतानि संत्यक्तुं चलन्त्यान्दोलनान्यपि ।। ५९।।
सामान्यानां नृणामेव स्थितिश्चेत्संचलेदिह ।
परम्परायां दिव्यायामृषीणामपि तत्तदा ।। ६०।।
दुर्भाग्यविषयो नूनं वक्तव्यः स्याद् बुधैः समैः।
अद्य दुर्भाग्यगर्तेऽस्मिन् मज्जत्येषा परम्परा ।। ६१।।
हिमाद्रिक्षेत्रमेतच्चाऽभावेऽस्य जायतेऽधुना ।
तेजो रहितमत्यर्थं सर्पो लुप्तमणिर्य था ।। ६२।।
तस्मिन् क्षेत्रे समस्तेऽपि बाह्यं सौन्दर्यमुत्तमम् ।
प्रकृतेस्तु तथैवेतद् विद्यते परमस्य ते ।। ६३।।
प्राणाः क्षीणा इवाद्या भूद् येषां हेतोश्च गौरवम् ।
स्वर्गोपमं सहैवास्य तेजस्वित्वेन हन्त ते ।। ६४।।

टीका- परिस्थिति के अनुरूप निर्धारण एवं परिवर्तन करते रहना बुद्धिमत्ता का चिन्ह है, पर अदूरदर्शिता का, दौर चढ़ने पर तो अन्धानुकरण की मूढ़मान्यताएँ ही अपनाई जाने लगती हैं। मूढ़मति लोग परम्पराओं का दुराग्रह करते हैं। ऐसे प्रचलन ही कुरीतियाँ कहलाते, उपहासास्पद और हानिकारक ठहरते हैं। उन्हें बदलने के लिए सुधार आन्दोलन भी चलते हैं। सामान्य जनों की भाँति यदि ऋषि परम्परा के सम्बन्ध में भी वैसी ही विडम्बना चल पड़े, तो उसे दुर्भाग्य का विषय माना जायेगा। आज इस दुर्भाग्य के गर्त में ही ऋषि परम्परा समाती चली जा रही है। अस्तु, हिमालय क्षेत्र इस अभाव में मणिविहीन सर्प की तरह निस्तेज होता चला जा रहा है। उसमें प्रकृति शोभा-सौन्दर्य का बाह्य कलेवर तो यथावत् बना हुआ है, पर वह प्राण क्षीण हो चला, जिसके कारण उसकी तेजस्विता और गरिमा कभी स्वर्गोपम बनी हुई थी ।। ५६-६४।।

निस्तेजस्त्वविधे हेतुमस्याजानन् समेऽपि ते ।
विडम्बनास्थितिं दिव्यां समाप्यर्षि परम्पराम् ।। ६५।।
दुःखमापुरथैतस्मिन्नवसादे समेऽपि ते ।
नारदं पृष्टवन्तस्ते विधिं च सरलं शुभम् ।। ६६।।
दुर्गतेरन्त एतस्याः कथं स्यात् परिवर्तनम् ।
शोधकार्यं दिनेष्वत्र स्यातां किं निकटेष्वपि ।। ६७।।
देवसंस्कृतिरेषोक्ता लोकेऽस्मिन्नजराऽमरा ।
तत्तस्या दुर्गतिं दूरीकर्तुं मृग्यो विधिर्नवः ।। ६८।।
निराशा नैव संचित्या जीर्णता समुपैत्यपि ।
न स्थिरा सृज्यतेऽस्यास्तु स्थाने नव्योविधिपुनः ।। ६९।।
वृद्धारुग्णामशक्तां च स्थितिं यान्त्यथ तद्वपुः ।
तेषां प्रकृतिरादाय ददात्यन्यद् भवान्तरे ।। ७०।।
उपसंहारमेत्येष मध्याह्नान्ते तु भास्करः ।
अन्तेऽस्ताचलमभ्येति क्रमः प्राकृतिकस्त्वयम् ।। ७१।।
परमस्मात्समुत्पन्नो नान्धकारोऽत्र तिष्ठति ।
सदा प्राभातिकस्तं च नाशयत्यरूणोदयः ।। ७२।।

टीका- हिमालय क्षेत्र की निस्तेजता का कारण ऋषि-परम्परा का अवसान और उसके स्थान पर विडम्बना का ठाठ-बाट के साथ विराजमान हो जाना मण्डली के सभी सदस्यों ने जाना। इस अवसाद पर दुःख मनाया। साथ ही नारद जी से पूछा-इस दुर्गति का अन्त कैसे होगा ? उसमें सुधार-परिवर्तन के लिए क्या कुछ अगले दिनों बन पड़ेगा? देव संस्कृति को अजर-अमर माना जाता रहा है, तब फिर उसकी दुर्दशा को दूर करने का कोई नया उपाय भी बनना चाहिए। नारद जी ने कहा-निराश होने की कोई बात नहीं। जीर्णता आती तो है पर वह स्थिर नहीं रहती। उसके स्थान पर नव सृजन का भी विधि-विधान है वृद्ध जन अशक्त और रुग्ण स्थिति में जा पहुँचते हैं, तो प्रकृति उनका वह कलेवर छीन लेती है और नया जन्म देकर नया शरीर प्रदान करती है। सूर्य मध्याह्न के उपरान्त ढलने लगता है और अन्ततः अस्त हो जाता है-यह प्रकृति का निश्चित क्रम है, किन्तु इस कारण उत्पन्न हुआ अन्धकार भी सदा ठहरता नहीं, प्रभातकालीन अरुणोदय उसका भी अन्त करके रहता है ।। ६५-७२।।

पत्र शातनकाले च गते किसलयास्तथा ।
सुमनांसि च रम्याणि मधुराणि फलान्यपि ।। ७३।।
उत्पद्यन्ते तथा नैवावसानं तिष्ठतिक्वचित् ।
चिरायास्य भजत्येव स्थानमभ्युदयः क्रमात् ।। ७४।।
व्यवस्थां नियतेरेनां जानता चिन्त्यतामिदम् ।
परिवर्तनमेषोऽत्र समयस्तु गमिष्यति ।। ७५।।
देवसंस्कृतिसम्बद्धं गौरवं पुनरेव च ।
नवोत्कर्षं सुयोगं च प्राप्स्यतीह सुनिश्चितम् ।। ७६।।
विज्ञैराशा च कर्तव्या सदोज्ज्वलभविष्यतः ।
निराशैर्नैव भाव्यं च विपन्नासु स्थितिष्वपि ।। ७७।।
निराशस्य जनस्यैवं तिष्ठतो न मनोबलम् ।
पौरुषं च ततो हानिं भजते व्यर्थमेव सः ।। ७८।।
क्षतेः स्वनिर्मितायाः स्वं बुद्धिमान् रक्षति स्वयम् ।
मनःस्थित्या तथा भाव्यमस्माकमपि सन्ततम् ।। ७९।।
चेष्टितव्यं परिष्कर्तुं तथैव परिवर्तितुम् ।

टीका- पतझड़ के उपरान्त पेड़ों पर नये कोपल ही नहीं, सुरम्य फूल और मधुर फल भी आते हैं। अवसान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी सदा नहीं रहते। उनका स्थान अभ्युदय भी यथा समय ग्रहण करता है। इस नियति व्यवस्था को समझाते हुए यह सोचा जाना चाहिए कि समय बदलेगा और देव संस्कृति की गरिमा का नये सिरे से उत्कर्ष अभ्युदय का सुयोग बनेगा। विज्ञ जन को उज्ज्वल भविष्य की ही सदा आशा करनी चाहिए। विपन्न परिस्थितियों में भी निराश नहीं होना चाहिए। निराश व्यक्ति मनोबल और पुरुषार्थ दोनों ही खो बैठता है और अकारण घाटा उठाता है, इस स्वनिर्मित क्षति से हर बुद्धिमान अपने को बचाता है। हमारी मन: स्थिति भी वैसी ही रहनी चाहिए और यथा संभव सुधार-परिवर्तन की चेष्टा करनी चाहिए ।।७३-७९ ।।

अवोचंस्ते बुधा: श्रेष्ठस्त्रिकालज्ञो भवानिह ।। ८० ।।
उपायं कृपया ब्रूतां येन स्याज्जीविता पुन: ।
लोकमंगल सद्भाषा दिव्यैषर्षिपरम्परा ।। ८१ ।।
स्वरूपं नूतनं तस्यास्तथा स्याद् दृष्टिगोचरम् ।
यथाऽभूच्च पुराकाले तीर्थ क्षेत्रेषु सर्वदा ।। ८२ ।।
परिवर्तनकाले च युगस्यैष महत्तमाम् ।
उवाह भूमिका प्राणप्रवाहो हिमभूभृत: ।। ८३ ।।
समय: कांक्षते तस्या: पुनरावृत्तिमेकदा ।
पुनरेव ततो ब्रूतामस्माभि: किं विधीयताम् ।। ८४ ।।

टीका-- मनीषी मण्डल ने पूछा-आप ऋषियों में मूर्धन्य और त्रिकालदर्शी हैं। कृपया ऐसा उपाय बताइये जिससे लोगमंगल की सद्भावना से युक्त ऋषि परम्परा पुनर्जीवित हो सके। उसका अभिनव स्वरूप वैसा ही दृष्टिगोचर होने लगे जैसा कि पुरातन काल में तीर्थ क्षेत्रों में सदा दृष्टिगोचर होता था। युग परिवर्तन के अवसर पर हिमालय क्षेत्र का प्राण-प्रवाह सदा अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता रहा है। समय की मांग उसी की पुनरावृत्ति की है। सो बतायें कि हम लोगों को इस निमित्त क्या करना चाहिए ।। ८०-८४ ।।

इमं हृदय सम्भूतं विचारं भवतामहम् ।
मन्ये परात्मन: प्राप्तमात्मनश्च विशेषत: ।। ८५ ।।
प्रतीक्षा त्यज्यतामन्यै: कर्तव्यस्यात्र कर्मण: ।
ग्राह्यानां कर्मणानां च मूकदर्शनभूमिकाम् ।। ८६ ।।
स्वयं चैव शुभारम्भ: क्रियतामचिरेण तु ।
नि: शंकमभियातव्यमत्रैकाकिभिरप्यलम् ।। ८७ ।।
शूरै: सत्साहसैरग्रगामिनस्तु पदक्रमा: ।
न्यस्तास्तानननुजगमुश्चाऽसंख्यास्ते भावनायुता: ।। ८८ ।।
भवितव्यं तदेवास्मिन् शुभे चावसरे पुन: ।
नवनिर्धारणेऽस्मिन् स्यात्प्रयासो भवतां मुख: ।। ८९ ।।
पिपीलिका अपि घ्नन्ति संहत्या बलिनंगजम् ।
कुर्वते रसयुक्तां च शरघां मधुमक्षिका: ।। ९० ।।
विहितं वानरेर्ऋच्छै रामकार्यमभूत्तदा ।
गोपबालै: कृतं कृष्णकार्यं तत्सफलं महत् ।। ९१ ।।
सर्वेषां विदितं चैतद् देवसंयुक्तशक्तिजम् ।
दुर्गावतरणं जातमृषिरक्त निधेर्घटात् ।। ९२ ।।
सीताया जन्मसञ्जातं व्याप्ता चासुरता तत: ।
समाप्ताऽथभवन्त:स्वान् मन्यन्तां नाल्पपौरूषान् ।। ९३ ।।

टीका- नारद जी ने कहा-आपकी इस अन्त:करण में उद्भूत होने वाली विचारणा को हम आत्मा और परमात्मा का अपने लिए विशेषरूप से भेजा गया परामर्श मानें। अन्यान्यों के द्वारा कुछ किये जाने की प्रतीक्षा छोड़ें और अकर्मण्यों की तरह मूक दर्शक की भूमिका न निभायें, शुभारम्भ अपने से करें। एकाकी चलें, साहसी शूरवीरों ने सदा से अग्रगामी कदम उठाये हैं, उनके पीछे अनायास ही अगणित भावनाशील चलते रहे हैं। इस अवसर पर भी वही होना चाहिए। इस नवनिर्धारण में आप सबका प्रयास प्रमुख रहना चाहिए। मिलजुल कर प्रयास करने से चीटियाँ भी हाथी को मार सकती हैं और मधुमक्खियाँ भी रस भरा छत्ता बना सकती हैं। रीछ-वानरों द्वारा किया गया राम कार्य और ग्वाल-बालों द्वारा किया गया कृष्ण-सहयोगी कार्य कितना सफल हुआ, यह सर्वविदित है। देवताओं की संयुक्त शक्ति से दुर्गा का अवतरण हुआ था। ऋषियों के रक्त संचय से घड़ा भरने पर सीता का जन्म हुआ और संव्याप्त असुरता का समापन हुआ था। आप लोग अपने को सामान्य न मानें ।।८५-९३ ।।

संकल्पान् महत्तो ये तु कुर्वते पौरुषेषु च ।
महत्स्वत्र प्रवर्तन्ते महान्त: कथितास्तु ते ।। ९४ ।।
सफलं यशस्विनं देवो निर्मात्येषां पराक्रमम् ।
भवन्तो यदि संनद्धा: कर्तुं च किमपि स्वत: ।। ९५ ।।
शुभं मुहूर्तमद्यैव ज्ञात्वा सर्वोत्तमं तत: ।
संकल्प: क्रियतां विश्वकल्याणाभिमुखो द्रुतम् ।। ९६ ।।
किं कार्यं क: प्रकारश्च कुत: कार्यमिति क्रमात् ।
श्रुत्वाप्रश्नान् महर्षि: स उदतारीच्च नारद: ।। ९७ ।।
स्मरन्त्वद्य भवन्तस्तां दिव्यामृषिपरम्पराम् ।
प्रयासास्तत्कृता ग्राह्या: कार्यं कार्यं च संहतै: ।। ९८ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवेकशीलताऽथापि दायित्वं सचरित्रता ।
पराक्रमो भवद्भिः स आश्रितव्यः समैः सदा ।। ९९ ।।
महत्वाकांक्षया नैव पृथग् भूतैरसंहतैः ।
कार्यं कर्तुं विचार्यं तु कदाचिदपि पूरुषैः ।। १०० ।।
शक्तेरपव्ययो नूनं पृथग् भावात्तु जायते ।
उद्भवः सहयोगच्च प्रगतेस्तु प्रपद्यते ।। १०१ ।।
तथ्यस्यास्य स्मृतावत्र स्वीकृतावपि विद्यते ।
कल्याणं परमं नृणां न तु विस्मरणेक्वचित् ।। १०२ ।।

टीका- महान् संकल्प करने वाले और महान् पुरुषार्थ में जुट पड़ने वाले महान् कहलाते हैं। उनके पराक्रम को भगवान् यशस्वी और सफल बनाते हैं। आप भी कुछ करने के लिए उद्यत् हो सकें, तो इसके लिए आज का मुहूर्त ही सर्वोत्तम है। विश्वकल्याणकारी संकल्प आप लें। क्या करना चाहिए ? किस प्रकार करना चाहिए? कहाँ से करना चाहिए? इन प्रश्नों के उत्तर में नारदजी ने कहा-आप लोग ऋषि-परम्परा का स्मरण करें। उनके द्वारा जो किया गया था, उन प्रयासों को अपनाएँ और मिल-जुलकर काम करें। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी का आश्रय लें। महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित होकर अलग-अलग काम करने की बात कभी न सोचें। बिखराव में शक्ति का अपव्यय और सहयोग से प्रगति का उद्भव होता है; इस तथ्य को स्मरण रखने और अपनाने में ही कल्याण है, विस्मरण में नहीं ।।९४-१०२।।

पुरासप्तर्षयः सप्तस्रोतः क्षेत्रे तु पावने ।
एकत्रिताः प्रयासैः स्वैर्व्यधुरुग्रं तपः समे ।। १०३ ।।
दुः स्थितीः कालजाः सर्वाः परिवर्तितुमन्ततः ।
जातास्ते सफलास्तेन पूज्यतां ते गताः समे ।। १०४ ।।
तत्र स्थाने च गन्तव्यं भवद्भिरपि संगतैः ।
प्रयासः सोऽनुकार्यः सा ग्राह्या दिव्या परम्परा ।। १०५ ।।

टीका- पुरातनकाल में सप्तऋषियों ने हरिद्वार की पावन भूमि में सप्तसरोवर नामक स्थान पर एकत्रित होकर संयुक्त प्रयासों से तपश्चर्या की थी और उस समय की बिगड़ी हुई परिस्थिति को बदलने-सुधारने में सफलता पाई थी तथा सभी के पूज्य बन गये। आप लोगों को भी वहाँ जाना और उसी प्रयास-परम्परा का अनुसरण करना चाहिए ।। १०३-१०५ ।।

उपस्थिते समस्तेऽपि समुदाये स्थितास्तु ये ।
सदस्यास्तत्र तैः सर्वैः व्यक्तिशः क्रमशस्ततः ।। १०६ ।।
एकैकस्य महर्षेस्तु मंगलां तां परम्पराम् ।
कर्तुं प्रचलितां तत्र दायित्वं स्वीकृतं शुभम् ।। १०७ ।।
सहतैरेव सर्वैश्च कार्यं कर्तुं तथा ततः ।
प्रतिज्ञातं यथा सत्ता प्रयासः स्यात्तु सुन्दरः ।। १०८ ।।
संयुक्तावयवैः पूर्तिः शरीरस्य निरन्तरम् ।
सदावश्कतानां तु विविधानां विधीयते ।। १०९ ।।
वयं तथा करिष्याम इति तैर्निश्चितं ततः ।
एकस्त्वनुसरंस्तेषु पतञ्जलि परम्पराम् ।। ११० ।।
कालानुकूलं कर्तुं तद् योगविज्ञानमुत्तमम् ।
निश्चिकाय यतो गात्रं मृण्मयं स्वर्णतां व्रजेत् ।। १११ ।।
अपरो याज्ञवल्कस्य च्छिन्नप्रायां तु सर्वतः ।
यज्ञविद्यामिहान्वेष्टुं योक्तुं निश्चयमागतः ।। ११२ ।।
तृतीयश्चरकस्याथ वनौषध्युपयोगिताम् ।
कर्तुं मूर्तिमतीं तत्र दायित्वं तु गृहीतवान् ।। ११३ ।।

टीका- उपस्थित समुदाय में से प्रत्येक ने एक-एक ऋषि की मंगलमय परम्परा प्रचलित करने का शुभ उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर उठाया। सभी ने इस प्रकार मिलजुल कर काम करने की शपथ उठाई मानों वह एक सत्ता का ही संयुक्त प्रयास हो। समस्त अवयव मिलकर शरीर की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वैसा ही हम सब भी करेंगे-ऐसा उन्होंने निश्चय किया। एक ने पतञ्जलि परम्परा का अनुसरण करते हुए योग विज्ञान को समयानुकूल बनाने का निश्चय किया; ताकि मिट्टी से विनिर्मित शरीर,दोषरहित सुवर्ण बन जाय। दूसरे ने ऋषि याज्ञवल्क्य की तरह यज्ञ विद्या की टूटी हुई कड़ियों को फिर से खोजने और जोड़ने की प्रतिज्ञा की। तीसरे ने चरक की तरह वनौषधियों की उपयोगिता फिर से मूर्तिमान करने की जिम्मेदारी उठाई ।। १०६-११३ ।।

तीर्थानां च चतुर्थः स आरण्यकपरम्पराम् ।
कर्तुं प्रचलितां कार्यं विधिना निश्चयं व्यधात् ।। ११४ ।।
पुरोधसां परिव्राजकानां दिव्या तु योजनाम् ।
प्रशिक्षण्स्य निर्माणस्याऽकरोद् बहुसंख्यया ।। ११५ ।।
प्रज्ञांसस्थान रूपे च देश देशान्तरेष्वपि ।
युगतीर्थानि निर्मातुं निश्चितं दृढरूपतः ।। ११६ ।।
पञ्चमो निश्चिकायाथ ज्योतिर्विज्ञानसंभवम् ।
आधार तु समाश्रित्य प्रभावं ग्रहसंभवम् ।। ११७ ।।
गृहीत्वा पौरूषं नव्यं कर्तुं किमपितद्विधौ ।
शब्दशक्तेरहो मन्त्र विज्ञानस्याथ तत्र तु ।। ११८ ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

षष्ठः कर्तुं च प्रत्यक्षं निश्चय स्वं व्यधाच्छुभम् ।
वर्तते मन्त्र विज्ञानं क्षमं सूक्ष्माभिबन्धने ।। ११९ ।।

टीका- चौथे ने तीर्थों की आरण्यक-परम्परा से सम्बन्धित सभी प्रचलनों को कार्यान्वित करने का निश्चय किया। पुरोहितों-परिव्राजकों का बड़ी संख्या में निर्माण तथा प्रशिक्षण की बनाई। युग तीर्थों को प्रज्ञा संस्थानों के रूप में देश-देशान्तरों में विनिर्मित करने की ठान ली। पाँचवें ने ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर अन्तर्ग्रही प्रभावों के साथ ताल-मेल बिठाने का पुरुषार्थ नये सिरे से करने का निश्चय किया। छठे ने शब्दशक्ति-मन्त्रविज्ञान के रहस्यों को प्रत्यक्ष करने की ठानी। मंत्र विज्ञान व सूक्ष्म तत्वों को - शक्तियों को बाँधने उन्हें सद्बुद्ध करने में समर्थ हैं।। ११४-११९ ।।

आस्थासंकटमप्येष सप्तमश्चाश्रयन्नथ ।
तर्कतथ्यप्रमाणनि कर्तुं च जनमानसम् ।। १२० ।।
परिष्कृतं स्वयं भारं वोढुं निश्चयमागतः ।
नाम प्रज्ञाभियानं च स्थापितं तस्य वै ततः ।। १२१ ।।
पूर्वं सुनिश्चितस्याथ प्रभोः प्रेरणयाऽपि च ।
क्रियान्वितमिदं कर्तुं सप्तर्षीणां स्थलस्य तु ।। १२२ ।।
निकटे कर्मठैर्विश्वचिन्तासंव्याप्त मानसैः ।
विशिष्टैर्निश्चयोऽकार्षीद् गायत्री तीर्थ संस्थितेः ।। १२३ ।।

टीका- सातवें ने आस्था-संकट का निवारण करने के लिए तर्कों, तथ्यों और प्रमाणों के सहारे जन-मानस के परिष्कार का भार अपने शिर पर वहन करने का निश्चय किया। इस संयुक्त प्रयास का नाम प्रज्ञा-अभियान रखा गया। इसी पूर्व निश्चय व ईश्वर की प्रेरणा के वशीभूत होकर इसे कार्यान्वित करने के लिए प्रमुख सप्तऋषियों की तपस्थली के सन्निकट विश्व कल्याण की चिन्ता से युक्त कर्मठ व्यक्तियों ने गायत्री तीर्थ स्थापित करने का निश्चय किया ।। १२०-१२३ ।।

उत्साहेन विशालेन निष्ठया च सहैव तु ।
कर्मठास्ते सहैवाशु प्रस्थितास्तत्र सत्वरम् ।। १२४ ।।
स्थाने च नियते तस्मिन् समायाते च योजना ।
पूर्वोक्ताः सप्तसंयुक्ताः स्थान तच्छरणं गताः ।। १२५ ।।
प्रज्ञाभियानमायातं कतुमृषिपरम्पराम् ।
जीवितां पूर्णविगेन चोत्साहेन बलीयसा ।। १२६ ।।
साफल्यं तस्य वीक्ष्यै तच्चकिताः सर्व एव तु ।
पुरातनं पृथिव्यां च पुनः सत्ययुगं समे ।। १२७ ।।
आयातुं पूर्णमाधारमभियानमिदं शुभम् ।
अमन्यन्त न यत्र स्याद् दुराचारादि दूषणम् ।। १२८ ।।

टीका- अपूर्व उत्साह व निष्ठा से ये सभी कर्मठ व्यक्ति साथ-साथ चल पड़े। नियत स्थान पर पहुँचकर उपर्युक्त सातों योजनाएँ संयुक्त होकर एक स्थान पर आ गयीं और ऋषि परम्परा को पुनर्जीवित करने वाला प्रज्ञा अभियान अत्यन्त उत्साह के साथ तूफानी वेग से चल पड़ा। उसकी सफलता देखकर सभी चकित रह गये और पुरातन सतयुग को फिर से वापिस लौट आने का आधार प्रत्यक्ष देखने लगे ,सभी ने सोचा अब दुराचार आदि नहीं रहेंगे ।। १२४-१२८ ।।

आशिषस्तु यथा दत्ता नारदेन हिमालये ।
मण्डलस्य सदस्येभ्यो विश्वासश्चपि बोधितः ।। १२९ ।।
महर्षेर्निश्चितं तेन संकल्पेनोत्तमेन तु ।
सफलेनैव भाव्यं तत्साफल्यं गच्छतीह सः ।। १३० ।।

टीका- नारद जी ने सभी को जैसा आशीर्वाद हिमालय में दिया था और विश्वास दिलाया था कि उनका संकल्प निश्चित रूप से सफल होना था,वह यहाँ सफल होने लगा ।।१२९-१३० ।।

इति श्रीमद्प्रज्ञोपनिषदे देव संस्कृति खण्डे ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययो, युग दर्शन युग साधना प्रकटीकरणयोः, महर्षि नारद प्रतिपादते "ऋषि परंपरा पुनर्जीवन" इति प्रकरणो नाम
।। सप्तमोऽध्यायः ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वन्दना परिशिष्ट

कथावाचक का आदर्श यह रहा है कि वह अपने आपको शाश्वत ज्ञान का विनम्र सन्देशवाहक मात्र मानकर चले। इसीलिए स्वयं को वक्ता न मानकर आदि वक्ताओं का प्रतिनिधि माने। कथा प्रारम्भ करने के पूर्व अपना यह भाव उद्दीप्त करने के लिए वन्दना एक बड़ा उपयोगी माध्यम रहा है। भावभरी वन्दना से न केवल अपने अनुशासन का निर्वाह होता है, बल्कि अपनी शालीनता का उभार होने से दिव्य अनुदान के रूप में सूक्ष्म प्रवाह का भी सहज ही लाभ मिलने लगता है। अस्तु हर कथा के पहले भावभरी वन्दना अवश्य की जाय।

वन्दना में पहले ईश वन्दना तथा फिर गुरु वन्दना के श्लोक बोले जायें। समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप २-३ मन्त्र दोनों ही प्रसंगों के बोले जा सकते हैं। यहाँ ईश वन्दना और गुरु वन्दना के पर्याप्त श्लोक दिए जा रहे हैं। ईश वन्दना के श्लोक इस तरह के हैं, कि उसमें किसी विशेष नाम रूप का वर्णन न होकर प्रभु की सामर्थ्य सार्वभौम सत्ता का, उनकी विशेषता सामर्थ्य एवं गुणों आदर्शों का ही उल्लेख है। गुरु वन्दना के श्लोक भी सार्वभौम हैं।

ईश-वन्दना

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ।।१।।

त्वमादिदेवः पुरूषः पुराणः, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम, त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ! ।।२।।

भानीशकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।३।।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं, सच्चित्सुखं परमहंस गतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं, तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ।।४।।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्ण पूर्ण सनातनपदं पुरूषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ रज्जवां भुजगंम इव प्रतिभासितं वै ।।५।।

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ।।६।।

यं ब्रह्मा वरूणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः
स्तवै र्वेदैः सागंपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ।।७।।

पितासि लोकसस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।८।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरूषो मतो मे ।।९।।

प्रातर्नमामि मनसा वचसा समूर्ध्ना पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ।।१०।।

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं वाचो विभन्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचंस्तं देववमजमच्युतमाहुरग्र ह्यम् ।।११।।

भयानां भयं भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृत्वमेकं परेषां परं रक्षणं रक्षाणानाम् ।।१२।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।। १३ ।।
वायुर्यमोऽग्निर्वरूणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्चभूयोऽपि नमो नमस्ते ।। १४ ।।
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।। १५ ।।
त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः प्राणोन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन् नान्यत् त्वदस्त्यपि मनो वचसा निरुक्तम् ।। १६ ।।
अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ।। १७ ।।
नमस्ते नमस्ते विभो ! विश्वमूर्ते ! नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते! ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ।। १८ ।।
अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ।। १९ ।।
सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्तस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्तस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ।। २० ।।
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत् साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ।। २१ ।।

गुरु वन्दना

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुरेव महेश्वरः । गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।। १ ।।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।। २ ।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।। ३ ।।
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरूं शंकररूपिणम् । यमाश्रितो हिःवक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।। ४ ।।
अखण्डानन्दबोधाय शिष्यसन्तापहारिणे । सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः ।। ५ ।।
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं द्वंन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि ।। ६ ।।

युगदेव स्तवन

अहो तां गायत्रीमखिल जगदानन्द निलयामुपास्या ब्रह्मासावसृजदमलां सृष्टिमधिकाम् ।
मता या वेदानामपि निखिल विश्वस्य जननी सुशान्त्यै शान्तां तां जपत मनुजा ! देवजननीम् ।। १ ।।

समस्त जगत् के आनन्द की आधारभूत जिस गायत्री की उपासना करके ब्रह्माजी ने सृष्टि रची । जिसे वेदमाता,देवमाता व विश्व माता कहा जाता है । हे मुनष्यो ! अपार शान्ति के लिए शान्त-स्वरूप उस गायत्री को भजो-उसका जप करो ।। १ ।।

त्रयोलोका यस्याश्चरण वरणास्तेऽपि च समे, त्रयो देवास्तिस्रः प्रथितविभवा देव्य इति सा ।
त्रिवेणी व्याख्याताऽक्षरगण इहाख्यातिमभजच्चतुर्विंशत्याहु ऋषित्रिदश दिव्यावतरणाः ।। २ ।।

जिसके तीन चरणों को तीन लोक, तीन देव, तीन वैभवशाली देवी-त्रिवेणी कहते हैं। जिसके चौबीस अक्षर अवतारों, देवताओं, ऋषियों के रूप में प्रख्यात हुए ।। २ ।।

सुदैव्याः संस्कृत्या इहनिगदिता मूलमखिलं, बुधाः प्राहुः यांचामृतममरवृक्षं परमणिम् ।
शिखासत्रे यस्या दधुरमृतचिह्नं जपत तां, युगप्रज्ञोन्मेषप्रबलकरुणां सिद्धि जननीम् ।। ३ ।।

जो देव संस्कृति की मूल है। जिसे पारस, कल्पवृक्ष और अमृत कहा जाता है, जिसे शिखा-सूत्र के रूप में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारण किया जाता है। जो अमृत तत्वदायी चिह्न है-ऐसी युग परिवर्तन का उन्मेष करने में अत्यन्त करुणामयी सिद्धि-दात्री गायत्री को जपो ।। ३।।

अहो आद्यां शक्तिं कलियुगकला विस्मृततनुमुपेक्षाक्षीणां तामऋतनिधिकां बुद्धिविभवाम् ।
महाप्राज्ञो ह्येनां पुनरुदधरद्देवसदृश ऋतां प्रज्ञां तुभ्यं युगपुरूष ! नः सन्तु नतयः ।। ४।।

उस आद्यशक्ति को काल-प्रवचना से विस्मृत रूप वाली, उपेक्षित हुई ऋतम्भरा-प्रज्ञा का जिसने पुनरुद्धार किया-उस महा प्राज्ञ युग पुरुष को देव संस्कृति का, उसके कोटि-कोटि अनुचरों का-कोटि कोटि नमन वन्दन।। ४।।

सदा भास्वान् भूत्वा तपति गगने यज्ञ इह यो, भृशं पर्जन्योऽयं यमनुसततं वर्षति रसम् ।
य ओतः प्रोतश्च प्रबलतमतत्प्राणमरुता तदेतद्देवत्वं श्वसिति कृपया यस्य हि चितेः ।। ५।।

जो यज्ञ सूर्य के रूप में तपता है। जिसके प्रताप से पर्जन्य बरसते हैं। जो प्राण-ऊर्जा से ओत-प्रोत है। जिसकी चेतना से देवत्व जीवित है ।। ५।।

यदके देवानां गण उदयमासाद्य लुठति भृशं पोषं प्राप्य प्रखरतरतां याति सततम् ।
निधिर्ऋद्धेः सिद्धेरपि च कथिता यत्र वपुषि, तदोजस्तेजस्त्वे वसत इह वर्चोऽभिलषति ।। ६।।

देवगण जिससे, जिसकी गोद में जन्मते, पलते, प्रखर होते और समर्पण करते हैं। जो ऋषि-सिद्धियों का भण्डार है। जिसमें ओजस्, तेजस् और वर्चस के सभी तत्व विद्यमान हैं ।। ६।।

तिरस्कारं यातो विकृतिमभजद्यः कलिबलादुपेक्षां संप्राप्तोऽप्यहह निखिलारोग्यसदनम् ।
अहो विष्णुं यागं पुनरुदधरद् यो बुधवर ! प्रणामास्तुभ्यं हे युगपुरूष ! नः कोटिश इमे ।। ७।।

ऐसे कलि-विडम्बना से उपेक्षित, तिरस्कृत, विकृत, हुए, आरोग्य के उत्पत्ति स्थल विष्णु रूप यज्ञ का जिसने पुनरुद्धार किया, उस महाप्राज्ञ युग पुरुष को देव संस्कृति का, उसके अनुचरों का कोटि-कोटि नमन-वन्दन।। ७।।

अहो विश्वस्तानामिव हि हृदयं यस्य सरसं, तदास्ते भक्तानामिव, गहनमाचिन्तनमपि ।
सदाब्रह्मज्ञानामिव च चरित तदृषि सम, प्रणामास्तुभ्यं हे युग-पुरूष ! नः कोटिश इमे ।। ८।।

जिसका हृदय विश्वासी भक्त जैसा सरस, जिसका गहन चिन्तन ब्रह्म वेत्ताओं जैसा जिसका चरित्र ऋषियों जैसा जो महाप्राज्ञ है, ऐसे युग-पुरुष को हम करोड़ों भक्तों का प्रणाम ।। ८।।

उपास्ते य ईशं ह्यविरतमहो जीवनविधौ सदासक्ते लोकाधिक सुखसमाराधनविधौ ।
सदादर्शादर्शो भुवि विदित सत्सौख्य विभवः, प्रणामास्तुभ्यं हे युगपुरूष ! नः कोटिश इमे ।। ९।।

जो ईश्वर उपासना, जीवन साधना और लोक को सुखी करने की आराधना में संलग्न आदर्शों के लिए समर्पित स्वयं आदर्श (दर्पण) के समान हैं, उस महाप्राज्ञ युग-पुरुष का, देवसंस्कृति और उसके अनुचरों द्वारा कोटि-कोटि नमन-वन्दन।। ९।।

य उत्सेहे पातोन्मुखमनुजसत्संस्कृतिमहो, निरोद्धुं नाशस्य प्रबलतमगर्तादनलसः ।
दधीचेर्व्यासस्य परशुधर श्रृंगिप्रथियोर्दधीरूपं यस्त्वां युगनर ! नताः कोटिश इमे ।। १०।।

जिसने पतनोन्मुख मानवी-संस्कृति को महाविनाश के गर्त से बचाने का आलस्य त्याग कर एकाकी साहस किया। जिसने दधीचि, व्यास, परशुराम, शृंगी, पिप्पलाद की भूमिका निभाई, हे युग पुरुष ! आपको कोटि-कोटि हम अनुचरों का प्रणाम ।। १०।।

सुरर्षिं यो वाजिश्रवसमपि कार्यादनुगत, ऋषिं विश्वामित्रं मुनिवर वशिष्ठं सगरजम् ।
ज्वलन्दीपान् स्नेहोद्भरित हृदयोऽज्वालयदसौ, महावर्चः ! सन्तु युगपुरूष ! तुभ्यं प्रणतयः ।। ११

जिसने नारद, वाजिश्रवा, ऋषि विश्वामित्र, मुनिवर वशिष्ठ व सगरवंशज भगीरथ की भूमिका एकाकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निभाई। जिसने स्वयं ज्वलन्त होकर-स्नेहयुक्त होकर-अगणित दीप जलाये, उस साहस के धनी, ब्रह्मवर्चस् से ओत-प्रोत महाप्राज्ञ युगपुरुष को देव सस्कृति का, उसके कोटि-कोटि अनुचरों का कोटि-कोटि नमन-वन्दन।।११।।

महाकालाष्टकम्

असम्भवं सम्भवं कर्तुमुद्यते, प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माण कृते समुद्यतम्, परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।। १।।

'असम्भव को सम्भव करने को उद्यत प्रचण्ड झंझावातों को रोकने में सक्षम, युग का निर्माण करने को समुद्यत, सर्वश्रेष्ठ, उन महाकाल को मैं नमस्कार करता हूँ ।। १।।'

यदा धरायामशान्तिः प्रवृद्धा, तदा च तस्यां शान्तिं प्रवर्धितुम् ।
विनिर्मितं शान्तिकुञ्जाख्यतीर्थं, परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।। २।।

'जब संसार में चतुर्दिक अशान्ति बढ़ रही थी, तब उसमें शान्ति (अमन-चैन) लाने के लिए 'शान्तिकुञ्ज' नामक तीर्थ की स्थापना की, उन सर्वश्रेष्ठ महाकाल को मैं नमस्कार करता हूँ ।। २।।

अनाद्यनन्तं परमं महान्तं, विभोः स्वरूपं लोकानदर्शयत् ।
युगानुरूपञ्च मार्गं व्यदर्शयत्, परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।। ३।।

'जिसने अनादि, अनन्त महतो महीयान् परमात्मा के विभु स्वरूप का लोगों को दर्शन कराया, स्वरूप समझाया और युग के, अनुरूप उनकी पूजा-उपासना का मार्ग प्रशस्त किया, उन सर्वश्रेष्ठ महाकाल को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ३।।'

उपेक्षिता यज्ञयागादि कार्या, विलुप्तप्रायाः सन्ध्याद्युपास्याः ।
समुद्धृता येन जगद्धिताय, परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।। ४।।

'जिसने जगत के कल्याण के लिए उपेक्षित पड़े यज्ञ, यागादि परम लोक कल्याणकारी कार्यों तथा विलुप्तप्राय सन्ध्या-वन्दन, गायत्री-उपासना आदि आत्मकल्याणकारी परम्पराओं का पुनरुद्धार किया, उन सर्वश्रेष्ठ महाकाल को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ४।।'

तिरस्कृतं विकृतमप्युपेक्षितं, आरोग्य वाहं यज्ञं प्रचारितुम् ।
कलौकृतं यः रचितु समुद्यतं, परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।। ५।।

'तिरस्कृत, विकृत एवं उपेक्षित पड़े आरोग्यदायी 'यज्ञ' का प्रचार-प्रसार करने के लिए तथा कलियुग को सतयुग में बदलने के लिए जो समुद्यत (तत्पर) हैं, उन सर्वश्रेष्ठ महाकार को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ५।।'

तपः कृतं येन जगद्धिताय, विभीषिकायाश्च पातुं प्रयुक्तम् ।
समुज्ज्वलं यस्य भविष्यघोषणां, परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।। ६।।

'जिसने जगत् के कल्याण के लिए आजीवन 'तप' किया और अनेकानेक विभीषिकाओं से संत्रस्त संसार की रक्षा के लिए उसे प्रयुक्त किया । जिसने (इक्कीसवीं सदी को) भविष्य को समुज्ज्वल होने की घोषण की है, उन सर्वश्रेष्ठ महाकाल को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ६।।'

मृदुन्युदारं हृदयं हि यस्य, तथैव तीक्ष्णं गहनं च चिन्तनम् ।
ऋषेश्चरित्रं परमं पवित्रं, परं महाकाल ममुं नमाम्यहम् ।। ७।।

'जिनका हृदय अति विनम्र रहा और चिन्तन अति गहन तथा तीक्ष्ण, जिनका चरित्र ऋषियों जैसा परम पवित्र था। उन सर्वश्रेष्ठ महाकाल को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ७।।'

जनेषु देवत्ववृत्तिं प्रजागृतुं, वसुन्धरायां च स्वर्ग विधातुम् ।
युगस्य निर्माणकृता च योजना, परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।। ८।।

'जन-जन में देवत्ववृत्ति-दिव्यगुण जाग्रत् करने के लिए और धरती पर स्वर्ग का वातावरण बनाने के लिए, जिसके द्वारा) युग निर्माण योजना बनाई गई, उन परम महाकाल को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ८।।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यः पठेच्चिन्तयेच्चापि, महाकाल स्वरूपकम् ।
स लभेत्परमां प्रीतिं, महाकाल कृपा दृशा ।। ९।।

'जो भी व्यक्ति महाकाल के स्वरूप को प्रकट करने वाले (इस महाकालाष्टक को) पढ़े और चिन्तन करे, वह महाकाल की कृपादृष्टि के फलस्वरूप परम प्रसन्नता को प्राप्त करे ।। ९।।'

गुरु-मातृ वन्दना

ॐमातरं भगवतीं देवी, श्रीरामञ्चजगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा, प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।। ४।।

'(जगत) माता 'भगवती देवी' एवं जगत पिता 'श्री राम' के चरण-कमलों में तदाश्रित होकर बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।। ४।।'

ॐ प्रखर प्रज्ञाय विद्महे, महाकालाय धीमहि तन्नो श्रीरामः प्रचोदयात् ।।
ॐ सजलश्रद्धायै विद्महे, महाशक्त्यै धीमहि तन्नो भगवती प्रचोदयात् ।।
ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है, जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी, जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं, जो कभी महाकाली, कभी मां जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योति पुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद्, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो की प्रजातंत्र की,कार्ल मार्क्स की साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवन चरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिताश्री, पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा । उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ । नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था ।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं । औपचारिक शिक्षा पाँचवीं तक ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह स्कूली पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है । हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके

छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी । वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया ।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनको गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में । उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं । चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा-पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था । २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना ।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया । पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ । दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धत: परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी । वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया । सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा ।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी । उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं । इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था । १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे बच्चों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आगन-सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवीदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आए । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं । लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी

आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्याय रत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं परम वंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी । उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं । यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी ।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ । गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी । धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी । २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है । १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है । १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया । कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं । संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था । तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं । हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया । परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं ।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ । तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप:पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था । तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं

छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किए।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण की एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही इनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org